

॥ श्रीः ॥

श्रीचरकाचार्य्येण प्रतिसंस्कृता
चरकसंहिता.

मधुगन्धिवसि-श्रीकृष्णलाल-कृतभाषानुवाद-
समलंकृता संशोधिता परिवर्द्धिता च ।

यह ग्रन्थ

श्यामलाल श्रीकृष्णलालने
मुंबई

के टाईपसे विभूषित "मुंबईमित्राख्य"

चित्रालपमें छपवाकर प्रसिद्ध किया ।

सन् १९६० सन् १९०३

Registered under Act XXV of 1867.

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
गुल्मचिकित्सितं नाम पञ्चमोऽध्यायः		वर्तिप्रयोग	७३८
गुल्मोत्पत्तिका हेतु	७३०	हिङ्गवादि चूर्ण विधि	"
गुल्मके स्थान भेद	"	वातगुल्म में अन्यप्रयोग	७३९
वातिक गुल्म का हेतु	"	शल्यादि चूर्ण	"
वातिक गुल्मके लक्षण	७३१	अन्यप्रयोग	"
पैत्तिक गुल्मका हेतु	"	अन्यप्रयोग	"
पैत्तिक गुल्मके लक्षण	"	लहसनकादूध	"
श्लेष्मिक गुल्मका हेतु	"	शिलाजीतका प्रयोग	७४०
श्लेष्मिक गुल्मके लक्षण	"	अन्यप्रयोग	"
द्वन्द्वज गुल्मके लक्षण	"	गुल्ममें वस्तिविधान	"
त्रिदोषज गुल्मके लक्षण	७३२	गुल्मपरतैलविधान	"
रक्त गुल्मका कारण	"	गुल्मपर घृतविधान	"
वातज गुल्ममें चिकित्साक्रम	"	नीलिन्यादि घृत	७४१
अन्य विधि	७३३	वातगुल्म में पथ्यादि विधि	"
अन्यविधि	"	पित्तगुल्मकी चिकित्सा	"
पैत्तिक गुल्म में चिकित्साक्रम	"	रोहिण्यादि घृत	"
गुल्ममें रक्त मोक्षण विधि	७३४	त्रायमाणाय घृत	७४२
अपक्व गुल्मके लक्षण	"	आंवलकादि घृत	"
विदह्यमान गुल्म के लक्षण	"	द्राक्षादि घृत	"
सपक्व गुल्मके लक्षण	"	वासाघृत	"
कफज गुल्मका चिकित्सादि वर्णन	७३५	दूसरात्रायमाण घृत	७४३
बमनोपग रोगी	"	पैत्तिक गुल्मके अन्यउपचार	"
कफज गुल्ममें अन्य प्रयोग	७३६	कफगुल्म का चिकित्साक्रम	"
गुल्ममें क्षारविधि	"	कफगुल्म में स्वेदन विधि	७४४
गुल्म में अरिष्ट	"	दशमूली घृत	"
त्र्यूपणादि घृत	७३७	भल्लातकादि घृत	"
त्र्यूपणादि घृत की अन्य विधि	"	पंचकोल घृत	"
अन्य प्रयोग	"	मिश्रक स्नेह	७४५
हिङ्गवादि घृत	"	कफगुल्म में वैरेचनिक औषध	"
हवुयादि घृत	"	हरितक्यादि प्रयोग	"
विण्पल्यादि घृत	७३८		

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
कफगुल्म में वस्ति के प्रयोग	७४६	अन्यआसव	७५५
कफगुल्म में चूर्णादिप्रयोग	७४६	प्रमेहपर अन्यचिकित्सा	"
पथ्यादि वर्णन	७४६	प्रमेह में निदान परिवर्जन	७५६
कफगुल्मपर अन्यउपचार	७४६	मधुप्रमेह का लक्षण	"
असाध्यगुल्मके लक्षण	७४९	प्रमेह को साध्यासाध्यत्व	"
रक्तगुल्म की चिकित्सा का क्रम	७४७	पिडकाओं की चिकित्सा	७५७
रक्तगुल्म के अन्यउपचार	७४७	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
अदृश्यमान रुधिर में वस्ति	७४७	कुष्ठचिकित्सितं नाम सप्तमोऽध्यायः	
प्रवर्तमान रुधिर में उपचार	७४८	कुष्ठोत्पत्ति काहेतु	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	७४८	कुष्ठके पूर्वरूप	७५८
प्रमेहाचिकित्सतं नाम पष्ठोऽध्यायः		कुष्ठों के नाम	"
प्रमेह का निदान	७४९	कपाल कुष्ठ के लक्षण	"
कफादि प्रमेह की सम्प्राप्ति	७४९	औदुम्बर कुष्ठ के लक्षण	७५९
प्रमेहों की संख्या	७४९	मंडलकुष्ठ के लक्षण	"
दोषरूपों की संख्या	७५०	ऋष्यजिह्व कुष्ठके लक्षण	"
बीसप्रकार के प्रमेहों की पहचान	७५०	पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण	"
दोषानुसार प्रमेहके वर्णादि	७५१	सिध्म कुष्ठके लक्षण	"
वातज प्रमेह को असाध्यत्व	७५१	काकणक कुष्ठके लक्षण	"
प्रमेहके पूर्वरूप	७५१	एककुष्ठ और चर्मकुष्ठके लक्षण	"
स्थूलकृश प्रमेह की चिकित्सा	७५१	किटिम कुष्ठके लक्षण	७६०
प्रमेही के अन्यउपचार	७५१	वैपादिक कुष्ठके लक्षण	"
प्रमेही को पथ्य	७५१	अलसक के लक्षण	"
कफप्रमेह में अन्यविधि	७५२	दद्रुमण्डल के लक्षण	"
प्रमेहों पर सामान्य प्रयोग	७५२	चर्मदल के लक्षण	"
कफ प्रमेह कर कपाय	७५३	पामा के लक्षण	"
पित्तप्रमेह पर कपाय	७५३	विस्फोटक के लक्षण	"
कफपित्तप्रमेह पर प्रयोग	७५४	शतारूके लक्षण	७६१
अन्यप्रयोग	७५४	विचारिका के लक्षण	"
सब प्रकार के प्रमेहपर वनाथ	७५४	कुष्ठोंकोदोषपरत्व	"
मध्यासव	७५४		

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
कुष्ठों में चिकित्साक्रम	७६१	अन्यतैल	७७०
कुष्ठकी पहचान	"	विपादिका की चिकित्सा	"
घातजादि कुष्ठों के लक्षण	"	मण्डल कुष्ठपरलेप	७७१
कुष्ठको असाध्यत्व	७६२	छःप्रकार के लेप	"
दोषानुसार चिकित्साक्रम	"	अन्यप्रयोग	"
कुष्ठनाशक प्रयोग	"	अभ्यङ्गप्रयोग	"
कुष्ठ में स्थापनप्रयोग	७६३	घृतप्रयोग	७७२
कुष्ठ में अनुवासनप्रयोग	"	अन्यप्रयोग	"
कुष्ठ में नस्य प्रयोग	"	पदपलघृत	७७३
अन्यक्रम	"	महातिक्तघृत	"
रक्तमोक्षण विधि	"	महाखदिर घृत	७७४
पित्तकुष्ठ की चिकित्सा	७६४	क्रिमिनाशकप्रयोग	"
कुष्ठनाशक प्रयोग	७६५	अन्यप्रयोग	"
कुष्ठनाशक दूसरा प्रयोग	"	श्वित्रकुष्ठपर प्रयोग	७७५
कुष्ठनाशक अन्यप्रयोग	"	कुष्ठपर अन्यलेप	"
सुप्त कुष्ठनाशक प्रयोग	"	श्वित्रकुष्ठ के भेद	७७६
मध्वासव का प्रयोग	"	श्वित्र को असाध्यत्व	"
कनकविन्दु अरिष्ट	७६६	श्वित्रकुष्ठकी उत्पत्ति का हेतु	"
श्वित्रकुष्ठनाशकप्रयोग	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
कुष्ठपरपध्यापध्व	७६७	राजयक्ष्माचिकित्सितं नाम अष्टमोऽध्यायः	
कुष्ठपरलेप	"	राजयक्ष्मा के विषयमें प्राचीनइतिहास	७७७
दूसरा लेप	"	चन्द्रमाकी क्षमा प्रार्थना	"
कुष्ठपर अन्यलेप	"	यक्ष्मा के पर्यायवाची शब्द	"
कुष्ठपर अन्यप्रयोग	७६८	यक्ष्माके मनुष्यलोकमें आनेका कारण	७७८
सातप्रकारके कपायादियोग	७६९	यक्ष्मा के चारहेतु	"
कुष्ठपर अन्यप्रयोग	"	अथवा आरम्भका लक्षण	"
"	"	वेगसंधारणजन्य यक्ष्मा	"
कनेरका तैल	"	क्षयजन्य यक्ष्माका हेतु	७७९
अन्यप्रयोग	"	विषमासनसे उत्पन्न यक्ष्मा	७७९
अन्यतैल	"	राजयक्ष्मा के पूर्वरूप	७८०
कनकक्षीर तैल	७७०	राजयक्ष्मा में पुरीपरक्षा	७८०
सिंघमलेप	"		

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
रुद्ध स्रोतों से राजयक्ष्मा की उत्पत्ति	७८१	अवगाहनविधि	७९३
उक्त ग्यारह वा छः व्याधियोंके नाम	"	उद्धर्तनविधि	"
यक्ष्माका साध्यासाध्य विचार	"	पथ्यतम भोजन	७९४
प्रतिश्याय के लक्षण	"	यक्ष्मामे अन्यपथ्य	"
राजयक्ष्मा के विशेष लक्षण	७८२	यक्ष्मा में अन्य उपचार	"
राजयक्ष्मा में स्वरभंग	"	अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"
यक्ष्मा में अन्य उपद्रव	"	अर्शसां चिकित्सितं नामनवमोऽध्यायः	
अरुचि की परीक्षा	७८३	अर्शके भेद	७९५
प्रतिश्यायादि छः रोगों की चिकित्सा	"	अर्शका स्थान	"
अन्यप्रयोग	७८४	सहजअर्श की आकृति	७९६
अन्य संशयमनक्रिया	"	सहजअर्शरोगी के लक्षण	"
दोषाधिक्य में संशोधन विधि	७८५	उक्तउपद्रवों का कारण	७९७
स्नेहवर्णन	७८६	उत्तरकालजअर्श के लक्षण	"
लेह के चारप्रयोग	"	दोषपरत्व से अर्शका आकार	७९८
अन्यप्रयोग	"	वातप्रबल अर्श के लक्षण	"
दुरालभाद्यधृत	७८७	पित्तज अर्श के लक्षण	७९९
जीवन्त्यादि धृत	"	कफजअर्श के लक्षण	८००
घलाय धृत	"	द्वन्द्वजादि अर्श के लक्षण	"
यक्ष्मा में अन्यप्रयोग	"	अर्श के पूर्वरूप	"
अन्यप्रयोग	७८८	अर्श के नाम विशेषका कारण	८०१
मन्दारिग्न में कर्तव्य	"	अर्शको कष्टसाध्यत्व	"
अतिसारनाशक योग	"	असाध्य अर्श के लक्षण	८०२
अन्यप्रयोग	७८९	साध्यके लक्षण	"
चैरस्यनाशक प्रयोग	"	साध्य अर्श में कर्तव्य कर्म	"
कफ विधावनपांचप्रयोग	"	कर्मभ्रंश के उपद्रव	"
यवानोपादव	७९०	शुष्क अर्शकी चिकित्सा	"
ताडीसपत्रादिवाटिका	"	अर्श में अन्य प्रयोग	८०३
यक्ष्मारोग में मांसव्यवस्था	७९१	अर्शपर लेप	"
दोषपरत्व से यक्ष्मा में मांसविधान	"	अर्श में पेय औषध	८०४
यक्ष्मा में मद्य के गुण	७९२	अन्य प्रयोग	८०५
अन्यप्रयोग	"	अन्य प्रयोग	"
	"	तकारिष्ट	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
अर्शमें तक्रप्रयोग	८०६	अवगाहन प्रयोग	८१८
तक्र सेवनका क्रम	"	अर्शपर घृत	८१९
अर्शपर पेयविधि	८०७	पिच्छावस्ति, सिद्धावस्ति	"
अर्शपर यथागू	"	अनुवासनवस्तिप्रयोग	८२०
अर्शपर पथ्याविधि	"	होवरादि घृत	८२०
अर्शपर घृत के प्रयोग	८०८	अत्राकगुष्पादि घृत	"
चव्यादि घृत	८०८	सेव्यासेव्यका संक्षिप्त वर्णन	८२१
नागरादि घृत	८०९	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
पिप्पल्यादि घृत	"	अतीसार चिकित्सितं नाम दशमो	
हरीतकी प्रयोग	"	अध्यायः	
अर्शपर पथ्य	८१०	अतीसार की प्रागुत्पत्ति	८२२
अर्शपर मद्यविधि	"	वातातिसार के हेतु	८२३
अनुवासनके योग्य मनुष्य	"	पित्तातिसार के रूपादि	८२३
अनुवासानिक तैल	"	कफातिसार के हेतुरूपादि	८२४
निरूहण प्रयोग	८११	त्रिदोषज अतिसार के हेत्वादि	८२५
हरीतक्यारिष्ट	"	कृच्छ्रसाध्य के लक्षण	"
दन्त्यारिष्ट	८१२	असाध्य के लक्षण	८२६
फलारिष्ट	"	साध्यातिसारका चिकित्साक्रम	"
दुरालभारिष्ट	"	आगन्तु अतिसारके लक्षण	८२७
कानकारिष्ट	८१३	आगन्तु अतिसारमें चिकित्साक्रम	"
रक्तार्श की चिकित्सा	८१४	प्रमथ्या के प्रयोग	"
घातकफानुबन्धी रक्तार्शके लक्षण	"	अतीसारमें अन्नपानादि प्रयोग	८२८
रक्तार्श में चिकित्साक्रम	"	प्रवाहिका की चिकित्सा	८२९
रक्तसंप्राही औषध	८१५	चांगेरी घृत	"
कुटजादि क्वाथ	"	चव्यादि घृत	८३०
अन्यप्रयोग	८१६	पित्तातिसार की चिकित्सा	"
अर्शपर घृत प्रयोग	"	पित्तातिसार पर छःप्रयोग	८३१
रक्तार्शपर पेय	८१७	पिच्छावस्तिविधान	८३२
अन्य प्रयोग	"	रक्तातिसार पर अन्यप्रयोग	"
परिपेकादि प्रयोग	८१८	रक्तातिसार का वर्णन	८३३
		अन्य प्रयोग	"
		मुदपाद की चिकित्सा	८३४
		रक्ताभिश्चित मलमें चिकित्सा	८३५

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
मद के अन्य अवगुण	८५९	द्विव्रणीयचिकित्सितं नाम त्रयोदशोऽ-	
युक्तिवर्जित मद्यपान के दोष	८६०	ध्यायः ।	
युक्तिपूर्वक मद्यकेगुण	"	निजागन्तु व्रणों के लक्षण	८७४
प्रथम मदके गुण	"	आगन्तु व्रण के हेतु	
मद्यपानमें कर्त्तव्य	८६१	निजव्रणों का कारण	८७५
राजसादि प्रकृतिमद्यकेवर्णन	"	वातजव्रण के लक्षण	"
मद्यकेयोग्य साथी	८६२	वातजव्रणका चिकित्साक्रम	"
वातप्राय मदात्ययकी उत्पत्तिकाकारण	८६३	पित्तजव्रणके लक्षण और चिकित्सा	"
वातिक मदात्यय के लक्षण	"	कफजव्रण के लक्षणादि	"
पित्तज मदात्ययका वर्णन	"	दोनों व्रणों के भिन्न २ भेद	"
कफप्राय मदात्ययका वर्णन	"	व्रणके बीस भेद	८७६
मदात्यय के रूप	८६४	तीनप्रकारकी परीक्षा	"
मदात्यय में चिकित्साक्रम	"	बारहप्रकार के दूषित व्रण	"
मद्य के चार अनुरस	८६५	व्रणके अ ठस्थान	"
वातशमन में मद्यका प्रयोग	८६६	व्रणकी आठगन्ध	८७७
वातोत्थण मदात्यय में चिकित्सा	"	चौदहप्रकार के स्त्राव	"
पित्त मदात्ययमें चिकित्सा	८६७	व्रण के सोलह उपद्रव	"
कफपित्त मदात्यय में चिकित्सा	८६८	व्रणशान्त न होने के कारण	"
पित्त मदात्यय में सेवनीय कर्म	"	व्रणोंका साध्यासाध्यात्व	"
मदात्ययजन्यदाह में कर्त्तव्यकर्म	८६९	व्रण में प्रथम कर्त्तव्य	८७८
कफ मद्य की तृषा के उपाय	८७०	छत्तीस प्रकारकी चिकित्सा	"
कफ मदात्ययमें अन्यप्रयोग	८७१	व्रणके पूर्वरूप में कर्त्तव्य	"
अन्य प्रयोग	"	शोफनाशकटेष	"
अन्य प्रयोग	"	शोफपर पुलाटिस	८७९
अन्य उपचार	"	विदग्ध शोथके लक्षण	"
मदात्यय में दूधके प्रयोग	८७२	पकाशोथ के लक्षण	"
ध्वंसक के लक्षण	८७३	पक्व शोथ के भेदनकर्त्ताद्रव्य	"
विट्क्षार के लक्षण	"	उःप्रकारके शस्त्रकर्म	"
उक्त रोगों की चिकित्सा	"	पाठन के योग्य शोथ	"
सध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"	व्यथन योग्यव्रण	८८०

विषय	पृष्ठांक:	विषय	पृष्ठांक
छेदनीयव्रण	८८०	सान्निपातिक उन्मादके हेत्वादि	"
लेखन के योग्यरोग	"	आगन्तुउन्माद के हेत्वादि	"
प्रच्छन्नकेयोग्य रोग	"	भूतेन्माद के लक्षण	"
सीधन के योग्यव्रण	"	देवादि के शरीरमें प्रविष्टहोनेमेंदृष्टान्त	"
पीडन के योग्यव्रण	"	देवोन्मत्त के लक्षण	८८९
पीडनद्रव्य	"	अभिचारोन्माद के लक्षण	"
अन्यप्रयोग	"	पितृगणकृतउन्माद	"
अस्थिभग्न में प्रयोग	८८१	गन्धर्वोन्माद के लक्षण	"
वातप्रधान व्रणों में कर्म	"	यक्षोन्मादके लक्षण	"
व्रणों पर प्रयोग	८८२	राक्षसोन्माद के लक्षण	"
एषणीय व्रण	"	ब्रह्मराक्षसोन्मत्त के लक्षण	८९०
एषणा के भेद	"	पिशाचोन्मत्त के लक्षण	"
शोधनीयव्रण	"	देवादिकृतउन्मादकी विधि	"
शोधनद्रव्य	"	असाध्यउन्मादके लक्षण	८९१
रोपणीय व्रणों की चिकित्सा	८८३	मंत्रादिद्वारा चिकित्स्यरोगी	"
व्रणपर पथ्यविधि	८८४	वातजउन्माद में चिकित्साक्रम	८९२
अग्निर्कर्म के योग्यव्रण	"	कफपित्तोन्माद में चिकित्साक्रम	"
अग्निर्कर्म के अयोग्य व्याक्ति	"	वमन.दि का फल	"
अन्यप्रयोग	८८५	आचारविभ्रम में उपाय	"
व्रणपर बालजमने की विधि	"	स्मृतिवर्द्धक उपाय	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	८८६	आगन्तुकउन्माद में उपाय	"
उन्मादचिकित्सितं नामचतुर्थोऽध्यायः		उन्मादनाशकप्रयोग	८९३
उन्मादके हेतु	"	कल्याणकघृत	"
उन्मादके सामान्यलक्षण	"	महाकल्याणकघृत	"
उन्माद के सामान्यभेद	८८७	महापैशाचिकघृत	"
वातजउन्माद का हेतु	"	लशुनायघृत	८९४
वातजउन्माद के लक्षण	"	अम्यलशुनादिघृत	"
पित्तजउन्माद के हेतु	"	अन्यघृत	८९५
पित्तजउन्माद के लक्षण	"	पुरानेकी के गुण	"
कफजउन्माद के हेतु	"	नस्याजन प्रयोग	"
कफजउन्माद के लक्षण	८८८		"

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
अन्य प्रयोग	८९६	महागद में चिकित्सा क्रम	९०५
"	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	९०६
"	"	क्षतक्षीण चिकित्सितं नाम षोडशो-	
"	"	ऽध्यायः	
"	८९७	क्षतरोगका हेतु	"
उन्माद में फस्त	"	क्षीणरोग का हेतु	"
अन्य प्रयोग	"	क्षतक्षीणके लक्षण	९०७
अन्य प्रयोग	"	साध्यासाध्य लक्षण	"
उन्मादके अयोग्य व्यक्ति	८९९	क्षत में चिकित्सा	"
उन्माद मुक्तके लक्षण	"	एलादिवटिका	९०८
अध्यायका उपसंहार	"	अमृतप्राश घृत	९०९
अपस्मार चिकित्सितं नाम पञ्चदशो-		स्वदंष्ट्रादि घृत	९१०
ऽध्यायः		धात्र्यादि घृत	९११
अपस्मार की निशक्ति	"	सर्पिर्गुड	"
अपस्मारके कारण	"	दूसरा सर्पिर्गुड	९१२
अपस्मारके वेगका रूप	"	तीसरा सर्पिर्गुड	"
अपस्मारके भेद	९००	चतुर्थ सर्पिर्गुड	"
घातज अपस्मार के लक्षण	"	ह्रीप्रसक्त की चिकित्सा	९१३
पैक्षिक अपस्मारके लक्षण	"	सैन्धवादि चूर्ण	९१४
श्लेष्मिक अपस्मारके लक्षण	"	पाडव चूर्ण	"
साग्निपातिक अपस्मार के लक्षण	"	वर्द्धमान नागवलाका प्रयोग	"
असाध्य अपस्मार	"	क्षतक्षीण में विशेषपट्टव्य	९१५
अपस्मारके वेगोंका काल	९०१	अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"
अपस्मार के चिकित्सा क्रम	"	इयथुचिकित्सितं नाम सप्तदशोऽध्यायः	
पंचगव्य घृत	"	निजशोधके कारण	९१६
महापंचगव्य घृत	"	आगन्तुक के लक्षण	"
अन्य प्रकारके घृत	९०२	शोफके भेद	"
अन्यप्रयोग	"	वातिक शोध का हेतु	"
अन्यप्रयोग	९०३	नामपरत्व से शोधों के भेद	"
महागद की उपत्ति	९०५	शोक के सामान्य लक्षण	९१७

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
वाताधिक्यशोफ के लक्षण	९१७	चिप्प शोफ के लक्षण	९२८
पित्ताधिक्य शोफके लक्षण	"	विदारिका के लक्षण	"
कफाधिक्य शोफ के लक्षण	"	विस्फोटक शोफ के लक्षण	"
असाध्य शोफके लक्षण	"	कक्षाके लक्षण	"
साध्यशोफ के लक्षण	"	मसूरकादि के लक्षण	"
चिकित्साक्रम	९१८	अंत्रवृद्धि आदि के लक्षण	९२९
सूजन में त्याग के योग्यपदार्थ	"	भगन्दर का वर्णन	"
कफजशोफपर प्रयोग	"	स्त्रीपद का वर्णन	"
वातजशोफ में प्रयोग	९१९	जालगर्दभ शोफका वर्णन	"
कण्डूराचरिष्ट	९२०	आगन्तु शोफ का वर्णन	९३०
अष्टशत अरिष्ट	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
पुनर्नवाचरिष्ट	"	उदरचिकित्सितं नाम अष्टादशोऽध्यायः	
त्रिलफारिष्ट	९२१	अग्निवेशका प्रण	"
पिप्पल्यादि चूर्ण	"	उदर त्रिपयमें आत्रेयकावाक्य	९३१
क्षारादि वटिका	"	उदर रोग के हेतु	"
अन्य प्रयोग	९२२	उदर रोग के पूर्वरूप	"
हरीतक्यादि प्रयोग	"	उदररोग की साधारण उत्पत्ति	९३२
पटोलादि घृत	९२३	उदररोग के साधारण लक्षण	"
चित्रकादि घृत	"	उदररोगों की संख्या	"
चित्रकोत्थित घृत	९२४	वातके कारण उदर रोग	"
शोथपर यत्रागू	"	वायुजन्य उदररोग के लक्षण	"
शैलेय तैल	९२५	पित्तोदर का कारण	९३३
पित्तज शोफ पर तैलादि	"	पित्तोदर के लक्षण	"
कफज शोफ पर तैलादि	"	कफोदर के हेतु	"
अन्य शोफों के नाम	९२६	कफोदर के लक्षण	९३४
गलगंड शोफ	"	साम्निपातिक उदररोग के हेतु	"
शोफों में चिकित्सा क्रम	९२७	साम्निपातिक उदर रोग के लक्षण	"
अन्य ग्रन्थियों का वर्णन	"	प्लीहोदर के कारण	"
वर्जनीय ग्रन्थि	"	प्लीहोदर की वृद्धि	"
अलर्जी के लक्षण	९२८	प्लीहोदर के लक्षण	९३५

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
यक्ष्मोदर के हेतु	९३५	उदरपरलेपनादि प्रयोग	९४३
यक्ष्मगुदोदर के लक्षण	"	पिप्पल्यादिघृत	"
छिद्रोदर के हेतु	९३६	नागरादिघृत	९४४
छिद्रोदर के लक्षण	"	चित्रकघृत	"
जलोदर के हेतु	"	यवादिघृत	"
जलोदर के लक्षण	"	पटोलादि चूर्ण	"
चिकित्सा के योग्य उदर रोग	९३६	गवाक्ष्यादिचूर्ण	९४५
जलोत्पत्तिक्रम	९३७	नाराच चूर्ण	"
जलोदरमें उपद्रव	"	हड्डपादि चूर्ण	"
उदररोगों की कृच्छ्रता	"	नीलन्यादि चूर्ण	"
उदर रोगोंसे नष्ट होने का काल	"	सेण्डु के दूध का घी	"
त्याग्यात्याग्य उदररोग	"	स्तुहीक्षीर का अनुपान	"
अजातोदक उदर के लक्षण	९३८	अन्यप्रयोग	९४७
वातोदर में चिकित्साक्रम	"	आजकरीप का प्रयोग	९४८
विरेचन के अयोग्य व्यक्ति	९३९	उदररोग में भोजन	"
पित्तोदर में चिकित्साक्रम	"	त्रिदोषज उदर में कर्तव्य	९४९
कफोदर में चिकित्साक्रम	९४०	उदररोग में सर्पविप्रयोग	९५०
सन्निपातोदर में चिकित्साक्रम	"	उदररोग में शस्त्रकर्म	"
प्लीहोदर में चिकित्सा क्रम	"	जातोदकउदर में शस्त्रकर्म	९५१
उदररोग में कर्तव्यकर्म	"	अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	"
उदररोग में प्रयोग	"	ग्रहणीरोग चिकित्सितं नाम एकोन	
रोहीतकघृत	९४१	विंशोऽध्यायः	
अन्यप्रयोग	"	आग्नि की मूलत्व	९५२
यक्ष्मोदर में चिकित्सा	"	आग्नि की प्रधानता का कारण	"
छिद्रोदर में कर्तव्य कर्म	"	अन्न से रसादि की विधि	"
जलोदर में चिकित्सा	९४२	भोजन से दोष की उत्पत्ति	९५३
उदररोगों में साधारण विधि	"	इष्ट अन्न के गुण	"
उदर में वार्जित कर्म	"	पंचभूतात्मक आहारके गुण	"
उदरमेंतक्रप्रयोग	"	रससे रक्तादि की उत्पत्ति	"
उदर में दुग्धप्रयोग	९४३	अग्निवेशका प्रदन	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
रससे रक्तवनेन का कारण	९५४	अन्यप्रयोग	९६२
मांस और मेद की रीति	"	मरिचादि चूर्ण	९६३
अस्थि की विधि	"	यवागू विधि	"
मज्जा की उत्पत्ति	"	भोजनादि विधि	"
शुक्रकी उत्पत्ति	९५५	तक्रके गुण	९६४
वीर्य के निकलने की रीति	"	तक्रारिष्ट	"
पृथक् २ मलोंका वर्णन	"	चन्दनादि घृत	"
जठराग्नि की उत्कृष्टता	९५६	नागराद्य चूर्ण	९६५
ग्रहणी दोषों का कारण	"	भूनिम्बाद्य चूर्ण	"
अग्नि के दूषितहोने का कारण	"	दचाद्य चूर्ण	"
अजीर्ण अन्न के लक्षण	"	किराततिक्ताद्य चूर्ण	९६६
भिन्नदोषों से संसृष्ट विषान्न	"	अन्य चूर्ण	"
भिन्नजठराग्नि के कर्म	९५७	अनुपानादि वर्णन	"
ग्रहणी रोग के लक्षण	"	मध्वासव	"
ग्रहणी रोग के लक्षण	"	दूसरा मध्वासव	९६७
ग्रहणीरोग के पूर्वरूप	"	दुरालभासव	९६७
ग्रहणी का विशेषवर्णन	"	मूलासव	"
ग्रहणी रोग के भेद	९५८	पिण्डासव	९६८
वातिक ग्रहणी के हेतु	"	मध्वारिष्ट	"
वातिक ग्रहणी के लक्षण	"	पीपलामूलादि प्रयोग	९६९
पैत्तिक ग्रहणी का हेतु	"	क्षारघृत	"
पैत्तिकग्रहणी के लक्षण	९५९	पिप्पलीमूलादि क्षार	"
श्लेष्मिक ग्रहणी का हेतु	"	मल्लोतकादि क्षार	"
श्लेष्मिक ग्रहणीरोग के लक्षण	"	दुरालभादि क्षार	९७०
ग्रहणी की चिकित्सा	"	भूनिम्बादि क्षार	"
द्विपंचमूल्यादिघृत	९६०	हरिद्रादि क्षार	"
त्र्यूपणादिघृत	९६१	क्षार वटिका	"
पंचमूलादि घृत और चूर्ण	"	वत्सकादि क्षार	"
मल परीक्षा	"	त्रिफलादि क्षार	९७१
चित्रकादि चूर्ण	९६२	ग्रहणी दोष में अन्य नियम	"

विषय	प्रष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
ग्रहणी दोष में आवस्थिकी क्रिया	९७२	द्राक्षा घृत	९८२
अत्यामिके उपद्रवादि	९७३	हरिद्रादि घृत	"
अत्यामि की शान्ति का उपाय	९७४	पाण्डुरोग में प्रयोग	"
अत्यामि में भोजनादि क्रम	"	कामला रोग में अन्यप्रयोग	९८३
समशन के लक्षण	९७५	"	"
विषम भोजन के लक्षण	"	"	"
अध्यशनके लक्षण	"	"	९८४
दिनके भोजन का वर्णन	"	नवायसचूर्ण	"
रात्रिके भोजन का वर्णन	९७६	मंझूर वटिका	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"	ताप्यादि चूर्ण	९८५
पाण्डुरोगचिकित्सितं नामाविंशोऽध्यायः		योगराज वटिका	"
पाण्डुरोग के भेद	९७७	शिलाजतुवटिका	"
पाण्डुरोग की उत्पत्ति	"	पुर्ननवादि प्रयोग	९८६
पाण्डुरोग के हेतु	"	अवलेह प्रयोग	"
पाण्डुरोग का पूर्वरूप	९७८	धात्र्यावलेह	९८७
पाण्डुरोग के साधारण लक्षण	"	मंझूर गुटिका	"
वातजपाण्डुरोग के लक्षण	"	गुडारिष्ट	"
पित्तज पाण्डुरोग के लक्षण	"	अन्य अरिष्ट	"
कफज पाण्डुरोग के लक्षण	९७९	धात्र्यरिष्ट	९८८
सान्निपातिक पाण्डुरोग के लक्षण	"	मृत्तिका भक्षणमें उपाय	"
मृद्वलक्षणजन्य पाण्डुरोग	"	मृत्तिका दोषपरघृत	"
असाध्य पाण्डुरोग के लक्षण	९८०	अन्य उपाय	९८९
कामलारोग के लक्षण	"	शाखाश्रित कामलाके लक्षण	"
कुम्भकामला के लक्षण	"	पाण्डुरोग में अन्य उपचार	"
पाण्डुरोग में चिकित्सा विधान	९८१	हलीमक के लक्षण	९९०
स्नेहन घृत	"	हलीमक में चिकित्सा	"
दाडिमाघ घृत	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
कटुकाय घृत	"	हिदकाश्वासचिकित्सितं नाम एक	
पथ्या घृत	"	विंशोऽध्यायः	
दन्त्याघ घृत	९८२	अग्निवेश का प्रश्न	९९१
		आत्रेय का उत्तर	९९१

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
हिक्काश्वास का स्थानादि विवर्ण	९९१	कफकी अधिकता में अन्यप्रयोग	१००२
हिक्काश्वासके भेद	"	तमकश्वास में अन्यप्रयोग	१००३
हिक्काश्वास की उत्पत्तिके साधारणहेतु	९९२	मुक्तादि चूर्ण	"
हिक्का के पूर्वरूप	"	अन्यप्रयोग	"
श्वास के पूर्वरूप	"	अन्यप्रयोग	१००४
महाहिक्का के लक्षण	९९३	उत्तरोर्गों में घृतविधान	"
गम्भीरा हिक्का के लक्षण	"	दशमूलादि घृत	"
न्यपेता हिक्का	"	तेजोवत्यादि घृत	"
क्षुद्रा हिक्का	९९४	अन्यप्रयोग	१००५
अन्नजा हिक्का का लक्षण	"	उत्तरोर्गों में संशमन द्रव्योंका विधान	"
हिक्का का साध्यासाध्य वर्णन	"	अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"
श्वासकी उत्पत्ति	९९५	कासचिकित्सितं नामद्वाविंशोऽध्यायः	
महाश्वास का लक्षण	"	कास के भेद	१००६
उर्ध्वश्वास का लक्षण	"	खांसी के पूर्वरूप	"
छिन्नश्वास के लक्षण	"	कासका लक्षण	"
तमकश्वास के लक्षण	९९६	कास में विषमशब्द का हेतु	"
प्रसृतमकश्वास के लक्षण	९९७	वातजकास निदान	"
सन्तमकश्वास के लक्षण	"	वातजखांसी के लक्षण	"
क्षुद्रश्वास के लक्षण	"	पित्तजकासका निदान	१००७
हिक्का और श्वास में चिकित्सा	९९८	पित्तजकासके लक्षण	"
स्वेदनोत्तर भोजनादिक्रम	"	कफजकासके हेतु	"
अन्यधूमपान	"	कफज कास के लक्षण	"
अस्वेद्य रोगी	९९९	क्षतजकासका हेतु	"
भिन्न२ अवस्थाओं में चिकित्सा	"	क्षतजकासके लक्षण	१००८
वमनका निषेध	१०००	क्षतजकासका हेतु	"
हिक्का और श्वास में यूप	"	क्षतजकासके लक्षण	"
उत्तरोर्गोंपर यवागू	१००१	कासका साध्यासाध्य वर्णन	"
उत्तरोर्गोंपर अन्यप्रयोग	"	वातजकास में चिकित्साक्रम	१००९
"	१००२	कंठकारी घृत	"
अन्यप्रयोग	"	पिप्पल्यादि घृत	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
त्र्यूपणाद्यधृत	१००९	क्षतजकासमें विरेचन	१०११
रास्नाद्यधृत	१०१०	दशमूलादि धृत	"
विडंगादि चूर्ण	"	गुडूच्यादि धृत	१०२२
क्षारादिचूर्ण	"	कासमर्दादि धृत	"
द्वुरालभादिप्रयोग	१०११	धात्रीफलादि धृत	"
चित्रकादि धृत	"	हरीतक्यावलेह	"
अगस्त्योत्तरसायन	"	अन्य अवलेह	१०२३
अन्यप्रयोग	१०१२	पक्वकाद्यवलेह	"
धूमपान विधि	"	जीवन्त्याद्यवलेह	"
धूमपान का प्रयोग और गुण	"	अन्य प्रयोग	१०२४
धूमपान के अन्य प्रयोग	१०१३	अन्य यूपादि प्रयोग	"
यूपादि प्रयोग	"	अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन	१०२५
पित्तजकासमें चिकित्साक्रम	१०१४	छर्दिचिकित्सतं नामत्रयोविंशोऽध्यायः	
पांचअवलेह	"	छर्दि के भेद	"
पित्तकास में अन्य प्रयोग	१०१५	वमन के पूर्वरूप	"
अन्य प्रयोग	"	वातजवमन का निदान	१०२६
अन्य यूपादि प्रयोग	"	वातजवमन के लक्षण	"
स्थिरादि दूधवाधृत	१०१६	पित्तजवमनका निदान	"
कफजकास में चिकित्साक्रम	"	पित्तजवमन के लक्षण	"
कफजकास में पेयद्रव्य	१०१७	कफजवमनका निदान	"
अन्यप्रयोग	"	कफजवमन का लक्षण	"
कफजकासनाशक चारप्रयोग	"	सान्निपातजवमन का निदान	१०२७
दशमूलादि धृत	१०१८	सान्निपातजवमन का लक्षण	"
कण्टकारी धृत	"	प्राणनाशक वमन के लक्षण	"
कुलथ्यादिधृत	"	द्विष्टार्थ सयोगज वमन के लक्षण	"
कफजकासमें अन्य विधि	१११९	असाध्यवमन के लक्षण	"
क्षतजकासमें चिकित्साक्रम	"	वमनचिकित्सा का क्रम	"
पिप्पल्यादि अवलेह	"	कफपित्तनाशक वमनविरेचन	१०२८
धूमपानके द्रव्य	१०२०	वातजवमन की चिकित्सा	"
क्षतजकास में चिकित्साक्रम	१०२१	पित्तजवमन में चिकित्सा	"
		कफकोवमन में चिकित्सा	१०२९
		सान्निपातिकवमन में चिकित्सा	१०३०

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
दृष्टसंयोगज यमन में उपाय	१०३०	विषकी त्रिदोषानुगामित्व	१०४२
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१०३१	विषसेमरनेके हेतु	"
तृष्णाचिकित्सितं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः		विषद्वारा मृत्यु लक्षण	"
तृषारोगका हेतु	१०३२	विषमें चिकित्साभेद	"
तृषाका प्राप्ति	"	विषमबन्धनादिविधि	१०४३
तृषाके लक्षण	"	विषद्रूपित रक्तकापरिणाम	"
वातजतृषाका हेतु	१०३३	घर्षण प्रयोग	"
वातजतृषाका लक्षण	"	विषके फैलनेमें रक्तकी प्रधानता	"
पित्तजतृषाका हेतु	"	विषवेग लक्षण	१०४४
पित्तजतृषाके लक्षण	"	प्रथमद्वितीय वेगोंमें चिकित्सा	"
कफजतृषा	"	तृतीयादि वेगोंमें चिकित्सा	"
अग्नि और पवनको तृषाका कारणत्व	१०३४	मृतसंजीवनी घटिका	१०४५
तृषा के अन्य कारण	"	अगद गन्धहस्ती	१०४७
तृषारोग में चिकित्सा	"	महागन्ध हस्ती	"
शीतोष्णजलकी विधि	१०३८	विषरोगनाशक अन्यप्रयोग	१०४९
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१०३९	क्षारागद	१०५०
विषचिकित्सितं नाम पंचविंशोऽध्यायः		विषदाता प्रेक्ष्य की परीक्षा	१०५१
विषकी उत्पत्ति	"	अग्निद्वारा अन्नकी परीक्षा	"
विषकीयोन्यादि संख्या	"	पात्रस्थ भोजन की परीक्षा	"
जंगमविषकीयोनि	१०४०	विषयुक्त पेयकी परीक्षा	"
स्थावरविषका वर्णन	"	विषयुक्त अन्नपान सेवन का फल	"
गराविषका वर्णन	"	सर्पों के भेदादि वर्णन	१०५३
जंगमविषकाकार्य	"	सर्पों की परीक्षा	"
स्थावरविषके कर्म	"	उक्त सर्पों के विषके गुण	"
दोनोंभिषों का परस्पर विरोध	"	दर्शक के दंशका लक्षण	"
सातों वेगोंके कर्म	"	मंडली के दंशका लक्षण	"
चौपाँचोंके वेगका वर्णन	१०४१	राजिमान के दंशका लक्षण	"
पक्षियोंके विषवेग	"	सर्पों के छिद्र भेद	"
विषके दशगुण	"	गर्भिन्यादि सर्पिणी के लक्षण	१०५४
ऊपरकहे द्रव्ये गुणोंके कर्म	"		

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
गोहृदयका लक्षण	१०५४	वातिक विष में चिकित्सा	१०५८
भयंकर दंशके लक्षण	"	पैत्तिक विष में चिकित्सा	"
अवस्थानुसार दंशके लक्षण	"	श्लैष्मिक विष में चिकित्सा	"
सर्पके दाँतों का वर्णन	१०५५	शीतक्रियोपयोगी विष	१०५९
दाँतों में विष का प्रमाण	"	बीछूके विष में चिकित्सा	"
दंशका वर्णन	"	उच्चिर्दिग विष में चिकित्सा	"
कीटों का वर्णन	"	त्रिदोषज विषके लक्षण	"
दूषी विषके लक्षण	"	अन्य सर्पोंके लक्षण	"
प्राणहर दंष्ट्र के लक्षण	"	सविष शरीरके लक्षण	"
दूषीविषके दंशके लक्षण	"	विषरोग में चिकित्सा	"
मकड़ी के दंशलक्षण	"	सर्व शोथनाशक योग	१०६०
छतादष्ट मनुष्य के लक्षण	१०५६	अन्य प्रयोग	१०६१
चूहेके दंश और विषके लक्षण	"	छताविष की चिकित्सा	"
किरकैंटाके दंशके लक्षण	"	मकड़ी विष की अन्य चिकित्सा	१०६२
बीछूके दंशके लक्षण	"	किरकिट विषकी चिकित्सा	"
कणभके लक्षण	"	वृश्चिक विषकी चिकित्सा	"
उच्चिर्दिगके दंशके लक्षण	"	मंडूक विषकी चिकित्सा	"
मंडूकदंशके लक्षण	"	मत्स्य विषकी चिकित्सा	"
मन्थदंशके लक्षण	१०५७	जोक विष की चिकित्सा	१०६३
जोकदंशके लक्षण	"	विश्वम्भरादि विषकी चिकित्सा	"
गडगोडिकाके दंशके लक्षण	"	कांतर विषकी चिकित्सा	"
शतपदीके लक्षण	"	छपकली विषकी चिकित्सा	"
मशकदंशके लक्षण	"	दन्त और नख में चिकित्सा	"
मक्षिका दंशके लक्षण	"	शंकाविष में उपाय	१०५४
मन्दविष सर्पके लक्षण	"	विषरोग में पथ्यविधान	"
विषको सर्व देहाश्रितत्व	१०५८	विष में वज्रितकर्म	"
अन्यविषाक्त कीड़ों की प्रकृति	"	चतुष्पददष्ट के लक्षण	"
वातिक विषके लक्षण	"	चतुष्पददष्ट में उपाय	१०६५
पैत्तिक विषके लक्षण	"	गरविष के लक्षण	"
श्लैष्मिक विषके लक्षण	"	गरविषके अन्य लक्षण	"

विषय	पृष्ठांकः
गरविष में वैद्यका कर्त्तव्य	१०६५
अन्यप्रयोग	१०६६
अमृतघृत	”
अध्यायका उपसंहार	”
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१०६७
त्रिमर्मीयचिकित्सितं नाम षड्विंशो- ऽध्यायः ।	
मर्मसंख्या	”
कुपितवात के कर्म	”
उदावर्त्तजन्यरोग	१०६८
वातजरोगों में चिकित्सा	”
उदावर्त्त में वार्त्तविधि	”
अन्यप्रयोग	१०६९
निरूहणवर्त्ति विधान	”
अन्यकर्त्तव्य कर्म	”
अण्डी के तेलकी मात्राका प्रमाण १०७०	”
विरचन के पश्चात्कर्म	”
उदावर्त्त में चिकित्साकेप्रयोग	”
मूत्रकृच्छ्रका निदान	१०७१
कृच्छ्रतासे प्रभावकाकारण....	”
वातजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण	”
पित्तजमूत्र कृच्छ्रकेलक्षण	१०७२
कफजमूत्रकृच्छ्रकेलक्षण	”
सन्निपातजमूत्रकृच्छ्रकेलक्षण	”
अश्मरीनिदान	”
अश्मरी की आकृति	”
अश्मरी के कर्म	”
शर्करालक्षण	”
अन्यअश्मरीकाकारण	१०७३
वातजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा	”

विषय	पृष्ठांकः
पित्तजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा	१०७४
कफजमूत्रकृच्छ्र में ”	१०७५
सन्निपातिक मूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा....	”
अश्मरी में चिकित्सा	”
अन्यप्रयोग	१०७६
रेतोविघातकृच्छ्र में चिकित्सा	१०७७
रक्तोद्भवमूत्रकृच्छ्र में उपाय	”
मूत्रकृच्छ्र में वर्जित कर्म	१०७८
हृद्रोग की उत्पत्तिका कारण	”
हृद्रोग के उपद्रव	”
वातजहृद्रोग के विशेष लक्षण	”
पित्तजहृद्रोग के लक्षण	”
कफजहृद्रोग के लक्षण	”
सन्निपातिकहृद्रोग के लक्षण	”
वातजहृद्रोग में चिकित्सा	”
त्र्यूपणादिवृत	१०७९
पित्तजहृद्रोग में चिकित्सा	१०८०
कफजहृद्रोग की चिकित्सा	”
सन्निपातिकहृद्रोग में चिकित्सा	१०८१
कुम्भिजन्यहृद्रोग ”	”
पीनसरोग का निदान	१०८२
वातजपीनस के लक्षण	”
पित्तजपीनस के लक्षण	”
कफजपीनसके लक्षण	”
सन्निपातिकपीनस के लक्षण	”
प्रतिश्याय के दूषितहोनेकाकारण	”
दूषित प्रतिश्यायके लक्षण	”
छींकका कारण	१०८३
शोष का कारण	”
प्रतीनाहके लक्षण	”

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
स्त्रावका लक्षण	१०८१	पित्तजपीनस में चिकित्सा	१०८८
अपीनस का लक्षण	"	कफजपीनस में चिकित्सा	"
पूतिनासाके लक्षण	"	नस्यादिप्रयोग	"
घ्राणपाक के लक्षण	"	शिरोरोग में चिकित्सा	१०८९
नासाशोथ का हेतु	"	वातापित्तज शिरोरोग में उपाय	"
अर्बुदका कारण	"	मायूर घृत	१०९०
पूयरक्तका कारण	१०८४	महामायूर घृत	"
अरुः का कारण	"	पित्तजशिरोरोगमें चिकित्सा	१०९१
शिरोरोग का निदान	"	कफजशिरो रोग की चिकित्सा	"
वातजमुखरोग का लक्षण	"	उक्त रोगों की चिकित्सा	१०९१
पित्तजमुखरोग का लक्षण	"	मुखरोग चिकित्सा	१०९२
कफजमुखरोग का लक्षण	"	मुखरोग में कवलप्रह	"
सान्निपातिकमुखरोग के लक्षण	"	दन्तमंजन	"
मुखरोग के अन्य भेद	"	कण्ठरोगकी चिकित्सा	"
अरुचिके भेद	१०८५	पीतक चूर्ण	१०९३
वातजअरुचिके लक्षण	"	मृद्वीकादि चूर्ण	"
पित्तजअरुचिके लक्षण	"	खदिरादि वटिका	१०९४
कफजअरुचि के लक्षण	"	अरोचक चिकित्सा	"
शोकादिजन्यअरुचि के लक्षण	"	कवलप्रह के चार प्रयोग	१०९५
वातजकर्णरोग के लक्षण	"	वातजस्वर भेद की चिकित्सा	"
पित्तजकर्णरोग के लक्षण	"	पित्तजस्वरभेद की चिकित्सा	"
कफजकर्णरोग के लक्षण	"	कफजस्वर भेद की चिकित्सा	"
सान्निपातिक कर्णरोग के लक्षण	१०८६	रक्तजस्वरभेद की चिकित्सा	१०९६
वातजनेत्ररोग का लक्षण	"	सान्निपातजस्वरभेद की चिकित्सा	"
पित्तज नेत्ररोग का लक्षण	"	कर्णरोग में चिकित्सा विधि	"
कफजनेत्ररोग के लक्षण	"	कर्णपूरण प्रयोग	"
सान्निपातिक नेत्ररोगके लक्षण	"	क्षार तैल	"
खाड्यनिदान	"	नेत्र रोग में चिकित्साक्रम	१०९७
वातजपीनस में चिकित्सा	"	दोषानुसार नेत्रचिकित्सा	"
तैलप्रयोग	१०८७	नेत्ररोग में वार्तिक्रिया	१०९८

विषय	पृष्ठांकः
सर्वदोषनाशिनी वर्ती	१०९८
दूसरा प्रयोग	"
अन्य प्रयोग	१०९९
दृष्टिप्रदा वर्ती	११००
अन्य अंजन	"
खालित्य चिकित्सा	११०१
महानीलाह्वय घृत	"
अप्याय का उपसंहार	११०२

ऊरुस्तम्भचिकित्सितनामसप्तविंशोऽ-

ध्यायः ।

ऊरुस्तम्भ का हेतु	११०४
ऊरुस्तम्भ की उत्पत्ति	"
ऊरुस्तम्भके लक्षण	"
ऊरुस्तम्भ का पूर्वरूप	११०५
साध्यासाध्यऊरुस्तम्भ का लक्षण	"
ऊरुस्तम्भ में अकर्तव्य कर्म	"
अकर्तव्य कर्मोंका हेतु	"
ऊरुस्तम्भ में चिकित्सा विधि	११०६
ऊरुस्तम्भ में अन्य औपध	"
ऊरुस्तम्भ में चिकित्सा	"
ऊरुस्तम्भ पर पांचप्रयोग	"
ऊरुस्तम्भके उपद्वों की चिकित्सा	११०७
ऊरुस्तम्भपर लेप	११०८
अन्यलेप	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	११०९
वातव्याधिचिकित्सितनामअष्टाविंशो-	

ध्यायः ।

वायु की उत्कृष्टता	"
वायुके भेद	"
प्राणवायु के स्थान और कर्म	१११०
उदानवायु के स्थान और कर्म	"

विषय	पृष्ठांकः
समानवायु के स्थान और कर्म	१११०
व्यानवायु के स्थान और कर्म	"
अपानवायु के स्थान और कर्म	"
विमार्गस्थ पंच वायु के कर्म	"
सर्वाङ्गादि व्याधियों का हेतु	११११
वायु के रूपादि	"
व्यक्तवायु के लक्षण	"
कोष्ठाश्रित वायु के कर्म	१११२
सर्वाङ्गगत वायु के कर्म	"
गुदस्थ वायु के कर्म	"
आमाशयस्थ वायु के कर्म	"
पक्वाशयस्थ वायु के कर्म	"
त्वक्स्थवायु के कर्म	"
रक्तगत वायु के कर्म	"
मांसमेदोगत वायु के कर्म	"
गज्जास्थिगत वायु के कर्म	१११३
शुक्रस्थ वायु के कर्म	"
स्नायुगत वायु के कर्म	"
शिरागत वायु के कर्म	"
सन्धिगत वायु के कर्म	"
वर्द्धाङ्गगत वायु के कर्म	"
मन्याश्रित वायु के लक्षण	१११४
अन्तरायाय के लक्षण	"
पृष्ठमन्याश्रित वायु के लक्षण	"
बाहिरायाम के लक्षण	"
हनुमहके लक्षण	"
आक्षेपकके लक्षण	१११५
दंडापतानक के लक्षण	"
अर्दितरोग के लक्षण	"

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
पक्षाघात के लक्षण	१११५	वृषमूलादि तैल	११२७
गृध्रसी के लक्षण	"	रास्ना तैल	"
खल्ली का लक्षण	"	तैलकी उत्कृष्टता	११२८
पित्तावृतवायुमार्ग के लक्षण	१११६	पित्तावृत वायुमार्ग में चिकित्सा	"
कफावृतवायुमार्ग के लक्षण	"	कफावृत वायुमार्ग में चिकित्सा	११२९
रक्तावृतवायु के लक्षण	"	कफापित्तावृत वायुमार्ग में चिकित्सा	"
मांसावृतवायुके लक्षण	"	शिरोगत वात में चिकित्सा	"
मेदसावृतवायु के लक्षण	"	उरःस्थवात में चिकित्सा	"
हृद्दी से आवृतवायु के लक्षण	१११७	रक्तावृतवात में चिकित्सा	"
मज्जावृत वायु के लक्षण	"	आल्यवात में चिकित्सा	"
शुक्रावृतवायु के लक्षण	"	मांसावृतवात में चिकित्सा	"
अनावृत वायु के लक्षण	"	अन्नावृतवात में चिकित्सा	११३०
मूत्रावृतवायु के लक्षण	"	मूत्रस्थवात में चिकित्सा	"
बर्धितवायु के लक्षण	"	पुरीषस्थवात में चिकित्सा	"
साध्यासाध्य वातरोगों के नाम	"	स्वस्थानस्थदोष की चिकित्सा	"
वातरोग में चिकित्सा क्रम	१११८	पंचवायु का परस्पर आवरण	"
अर्दितरोग में चिकित्सा	११२०	प्राणावृत व्यानवायु के लक्षण	"
पक्षाघात में चिकित्सा	"	व्यानावृत प्राणवायुके लक्षण	"
प्रधूसी में चिकित्सा	"	प्राणावृत समानवायुके लक्षण	११३१
हनुरोग में चिकित्सा	"	समानावृत प्राणवायुके लक्षण	"
वातरोग में चिकित्सा	"	प्राणावृत उदानवायुके लक्षण	"
वातरोग में वृंहण द्रव्य	११२१	उदानावृत प्राणवायु के लक्षण	"
उपनाह प्रयोग	"	प्राणावृत अपानवायुके लक्षण	"
चित्रकादि घृत	११२२	अपानावृत प्राणवायु के लक्षण	"
निर्गुडीतैल	११२३	व्यानावृत अपानवायुके लक्षण	"
बला तैल	११२५	आपाना वृत व्यानके लक्षण	"
उक्त तैलके गुण	"	समानावृत व्यानवायुके लक्षण	११३२
अमृतादि तैल	११२६	उदानावृत व्यानवायुके लक्षण	"
रास्नातैल	"	उदानादिवायु में चिकित्सा क्रम	"
मूलादि तैल	"		

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
प्राणवायु में कर्तव्य	११३३	पित्ताधिक वातरक्तके लक्षण	११३९
पित्तावृत प्राणवायुके लक्षण	"	कफाधिक वातरक्तके लक्षण	"
कफावृत प्राणवायुके लक्षण	"	संसृष्टवातरक्तके लक्षण	"
पित्तावृत उदानके लक्षण	"	वातरक्तको साध्यामाध्यत्व	"
कफावृत उदानके लक्षण	"	सोपद्रव वातरक्तके लक्षण	"
पित्तावृत समानवायुके लक्षण	"	सुचिकित्स्य वातरक्तके लक्षण	"
कफावृत समानवायुके लक्षण	"	वायुमकोपमें चिकित्साक्रम	११४०
पित्तावृत व्यानके लक्षण	"	वातरक्तमें चिकित्साक्रम	"
कफावृत व्यानके लक्षण	"	वाह्य वातरक्तमें कर्म	"
पित्तावृत अपानके लक्षण	११३४	गम्भीर वातरक्त में कर्त्तव्यकर्म	"
कफावृत अपानके लक्षण	"	वातोत्तर वातरक्तकी चिकित्सा	११४१
कफापित्तावृत के लक्षण	"	कफोत्तरवातरक्तमें चिकित्सा	"
प्राणोदानवायु को गुरुता	"	कफवातोत्तर वातरक्तमें चिकित्सा	"
उपेक्षितवायुके उपद्रव	"	रक्तपित्तोत्तर वातरक्तमें चिकित्सा	"
वैद्यको उपदेश	"	वातरक्तमें वर्जितकर्म	"
आवृतवायु में चिकित्सा	११३५	वातरक्तमें सेवनीयद्रव्य	"
अपानावृत प्राणवायु में चिकित्सा	"	श्रावण्यादि घृत	११४२
पित्त और कफावृत वायु की चिकित्सा	"	बलादि घृत	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"	तामलक्यादि घृत	"
वातशोणित चिकित्सितनाम एकोन-		पारूपक घृत	"
त्रिंशोऽध्यायः		क्षिपंचमूलादि घृत	"
वातरक्तके हेतु	११३६	द्राक्षादि घृत	११४३
वातरक्तके स्थान	११३७	गुडूच्यादि घृत	"
वातरक्तके पूर्वरूप	"	जीर्वाकादि घृत	"
वातरक्तके भेद	"	अन्यप्रयोग	११४४
उत्तानवातरक्तके लक्षण	११३८	यण्ट्यादि तैल	११४५
गम्भीरवात रक्त के लक्षण	"	सुकुमारक तैल	११४६
उभयाश्रितवात रक्त के लक्षण	"	अमृताख्य तैल	"
वाताधिक वातरक्त के लक्षण	"	महापत्रतैल	११४७
रक्ताधिकवातरक्त के लक्षण	"		

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
खुड्वाकपत्रतैल	११४७	सूचीमुखीके लक्षण	११५६
बलादि तैल	११४८	शुष्कायोनि के लक्षण	"
सहस्रपाक तैल	"	वामिनी के लक्षण	"
भारनादि तैल	"	षण्डी के लक्षण	११५७
पिंडतैल	"	महायोनि के लक्षण	"
शतपाकमधुपर्णी तैल	"	योनिरोगों में दोषपरत्व	"
गुडूच्यादि तैल	"	वातजरोगोंमें चिकित्सा	"
कफप्रधानवातरक्तमें चिकित्सा	११५१	पित्तजरोगों में क्रिया	११५८
वातरक्तमें पथ्यविधि	"	कफजयोनिरोगों में क्रिया	"
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	११५२	सान्निपातिक योनिरोगों में चिकित्सा	"
योनिव्यापच्चिकित्सतन्नामत्रिशोऽ-		वायुजन्दयोनिरोग में चिकित्सा	"
ध्यायः		अन्य प्रयोग	"
योनिरोगों कीसंख्या	११५३	काश्मर्यादि वृत	११५९
वातलयोनिरोगोंके लक्षण	"	अन्य प्रयोग	"
पित्तलयोनिरोगोंके लक्षण	११५४	अन्य पित्तु	"
श्लैष्मिक योनिरोगोंके लक्षण	"	अन्य प्रयोग	११६०
सान्निपातिक योनिरोगोंके लक्षण	"	कफपित्तजरोगों में क्रिया	"
रक्तपित्तजन्मयोनिरोग	"	शतावरी वृत	"
अरजस्कायोनि लक्षण	"	अन्य उपाय	"
अचरणायोनिके लक्षण	११५५	कफजयोनिरोगों में चिकित्सा	"
अतिचरणायोनिके लक्षण	"	योनिशोधक तैल	११६१
प्राक्चरणायोनिके लक्षण	"	अन्य प्रयोग	"
अपण्डुतायोनिके लक्षण	"	धातक्यादि तैल	"
परिण्डुतायोनि के लक्षण	"	अन्य प्रयोग	११६२
उदावृतायोनिके लक्षण	"	योनिरोगोंमें अश्लेह	"
उदावर्तिनीयोनिके लक्षण	११५६	योनिरोगमें वस्तिकर्म	"
कणिनीयोनिके लक्षण	"	रक्तप्रदरमें चिकित्सा	"
पुत्राणी के लक्षण	"	वातजरक्तप्रदरमें चिकित्सा	"
अन्तर्मुखीयोनिके लक्षण	"	पैक्षिकरक्तप्रदरमें चिकित्सा	११६३

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
पुण्यानुचूर्ण	११६३	क्षयजह्विता	११७२
प्रदर में अन्यचिकित्सा	११६३	असाध्य ह्विता	"
रक्तयोन्यादि की चिकित्सा	११६४	अन्य ह्विताओंको असाध्यत्व	"
वाभिनीऔर आप्ठतायोनिमें चिकित्सा	"	कैव्यकी संक्षिप्त चिकित्सा	११७३
कार्णिनीयोनि में चिकित्सा	११६५	वीजोपघातकी चिकित्सा	"
उदावृतायोनि की चिकित्सा	"	ध्वजभंग की चिकित्सा	"
बहिर्निष्क्रान्त योनिचिकित्सा	"	जरासंभव कैव्यकी चिकित्सा	"
पांडुप्रदरमें चिकित्सा	"	प्रदर वर्णन	११७४
योनिस्त्रावमें चिकित्सा	११६६	प्रदर के भेद	"
पिच्छलायोनिकी चिकित्सा	"	वातप्रदर के हेतु	"
योनिके अन्यदोषोंकी चिकित्सा	"	वातजप्रदर के लक्षण	"
योनिचिकित्साका उपसंहार	"	पित्तजप्रदर के हेतु	११७५
शुक्रदोषका प्रवर्ण	११६७	पित्तजप्रदर के लक्षण	"
बीजकेविगडनेमें दृष्टान्त	"	कफजप्रदर के हेतु	"
वीर्य के दूषितहोनेका कारण	"	कफजप्रदर के लक्षण	"
दूषितशुक्रके भेद	११६८	सान्निपातिकप्रदर का हेतु	"
वातदूषितशुक्रके लक्षण	"	सान्निपातिकप्रदर के लक्षण	"
पित्तदूषित शुक्रके लक्षण	"	दुधिक्रिस्त्वती	"
कफदूषित शुक्रके लक्षण	"	विशुद्ध ऋतु के लक्षण	११७६
अन्यहेतुओंसेदूषितशुक्रके लक्षण	"	विशुद्ध आर्तव के लक्षण	"
अवसादी शुक्रके लक्षण	"	स्तन्यदोष के लक्षण	११७७
शुद्धशुक्रके लक्षण	"	वातदूषित दुग्धके अवगुण	"
शुक्रदोष में साधारण प्रयोग	११६९	पित्तदूषित दुग्ध के अवगुण	११७८
ह्विताके अन्यकारण	"	कफदूषित दुग्ध के अवगुण	"
ह्विताके साधारण लक्षण	"	स्तन्यशोधन में वमन	"
वीजोपघातक ह्विताके लक्षण	११७०	विरचन विधि	११७९
ध्वजभंग के हेतु	"	स्तन्यदोष में पथ्य	"
ध्वजभंग के लक्षण	"	स्तन्यशोधक प्रयोग	"
जरासंभवह्विता के लक्षण	११७१	स्तन्यदोष में चिकित्सा	११८०
		स्तन्यशोधक उप	"

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
फेनिल स्तन्य का उपाय	११८०	जांगल देशके लक्षण	११९०
रूक्षतानाशक प्रयोग	"	आन्पदेश के लक्षण	११९१
विवर्णता नाशक प्रयोग	"	साधारण देशके लक्षण	"
दुर्गन्धि नाशक प्रयोग	११८१	उत्कृष्ट देशजात औषध	११९२
दूधकी सिग्धता का उपाय	"	औषध संग्रह विधि	"
दूधकी पिच्छिलता का उपाय	"	औषधियों की रक्षाविधि	"
दूधकी गुरुता का उपाय	"	दोषानुसार प्रयोग विधि	११९३
बालकों की मात्रा का विचार	११८२	मैनफलका वर्णन	"
शिशुपक्ष में गृहीत कर्म	"	वमन कराने की विधि	११९४
पथ्यापथ्य का लक्षण	११८३	वमन कराने के मंत्र	"
प्रलेपादि जन्यरोग	"	मैनफल का घृत	११९६
चिकित्सा विचार	"	फलाद्यवलेह	"
दिन विचार	"	मैनफलके नामान्तर	११९७
रोगीविचार	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
औषधविचार	"	जीमूतकल्पनाम द्वितीयोऽध्यायः	"
पंचत्रायु में औषधसेवन	"	जीमूतके पर्याय शब्द	११९८
व्याधिविचार	११८४	जीमूतके गुण	"
जीर्णलक्षण	"	जीमूतके प्रयोग	"
शतुविचार	"	अन्य प्रयोग	"
कारुविचार	११८५	अन्य प्रयोग	११९९
औषधकी मात्रा का प्रमाण	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
देशानुसार साध्यद्रव्य	"	इक्ष्वाकु कल्पनाम तृतीयोऽध्यायः	"
शास्त्र विरुद्ध क्रियाका निर्देश	११८६	इक्ष्वाकुके पर्यायशब्द	१२००
निवृत्तरोग में औषध सेवन	११८७	इक्ष्वाकुके गुण	"
पथ्यन्तर्ग विधि	"	इक्ष्वाकुके कल्प	"
अरुचि में पथ्य विधि	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२०१
अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"	धामार्ग कल्पनाम चतुर्थोऽध्यायः	"
अध्याय का उपसंहार	११८८	धामार्ग के पर्यायशब्दों शब्द	१२०२
इतिविहितसंस्थानम्		धामार्गके गुण	"
अथ कल्पस्थानम्		धामार्गकी कल्पना	"
मदनकल्पनामप्रथमोऽध्यायः		अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२०३
वमनादि की निरुक्ति	११८९	यस्तक कल्पनाम पञ्चमोऽध्यायः	
देहने	११९०	यस्तकके नाम	१२०४

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
वस्तुके भेद	१२०४	लोधके कल्प	१२१६
वस्तुके गुण	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२१७
वस्तुके कल्प	"	महावृक्षकल्पनामदशमोऽध्यायः	
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१२०५	सैण्डसाध्यरोम	१२१८
कृतवेधन कल्पनाम पष्ठोऽध्यायः		सैण्ड के भेद	"
कृतवेधन के पर्यायवाचीनाम	"	सैण्ड के नाम	"
कृतवेधन के गुण	"	सैण्ड के लाने की विधि	"
कृतवेधन के कल्प	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२२०
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१२०६	सप्तलाशंखनीकल्पनामएकादशोऽध्यायः	
श्यामात्रिवृत्कल्पनाम सप्तमोऽध्याय		सप्तलाशंखनी के नामान्तर	"
त्रिवृत्के नाम	१२०७	उत्तरोर्मों में दोनों की कल्पना	"
निसोथ के गुण	"	अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१२२१
निसोथ के भेद	"	दन्तीद्रवन्तीकल्पनामद्वादशोऽध्यायः	
श्यामात्रिवृत् के गुण	"	दन्तीद्रवन्ती के नामान्तर	१२२२
निसोथ की मात्रा	१२०८	उक्तद्रव्यों के कल्प	"
पेक्षिक प्रकृति वालोंका विरेचन	१२०९	विरेचनक चूर्ण	१२२४
कफप्रकृति के लिये विरेचन	"	दन्ती द्रवन्तीकल्पका संक्षिप्तवर्णन	१२२६
कफाधिक्यमें राजाओं के योग्यविरेचन	"	स्वरसमे भावितकरनेका कारण	१२२७
कल्याणक गुटिका	१२१०	तीक्ष्णविरेचन के लक्षण	"
व्योषादि विरेचन	१२११	औषधिकीतीक्ष्णताका कारण	"
दशमेदकों का प्रयोग	"	मध्यऔषधके लक्षण	"
भिन्न २ ऋतु के विरेचन	१२१२	हीनऔषधका लक्षण	१२२८
उपसंहार	१२१४	सुखासुखसाध्यरोगी	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"	मृदुऔषध का विधान	१२२९
चतुर्गुलकल्पनामअष्टमोऽध्यायः		वस्तिकर्म के योग्य रोगी	१२३०
चतुर्गुल के अन्यनाम	"	स्नेहन के योग्य रोगी	"
अमलतास के गुण	१२१५	उपसंहार	१२३१
अमलतास के रखने की विधि	"	मानपरिभाषा	"
अमलतास के कल्प	"	स्नेहपाक के भेद	१२३२
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२१६	स्नेहशकों की प्रयोग विधि	१२३३
तिलवृक्षकल्पनामनवमोऽध्यायः		मान के भेद	"
लोध के नाम	"	कालिंगमान	"
		कल्पस्थानका संक्षिप्त वर्णन	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
अयसिद्धिस्थानम्		शिरोविरेचनकी विधि	१२४२
कल्पनासिद्धिर्नामप्रथमोऽध्यायः		सम्यक् प्रयुक्त शिरोविरेचन के लक्षण	"
अग्निवेशका प्रश्न	१२३४	असम्यक् शिरोविरेचन के लक्षण	"
स्वेदनकाल का निर्णय	"	शिरोविरेचनका अतियोग	"
स्नेहनस्वेदन का फल	१२३५	वस्ति प्रयोगके अन्य नियम	"
पेषादिसे अन्तराग्निकी वृद्धिका दृष्टान्त	"	पंचकर्म के पीछे वर्जितकर्म	"
वमन विरेचनके देग	१२३६	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२४३
वमन विरेचनकी अवधि	"	पञ्चकर्मायसिद्धिर्नामद्वितीयोऽध्यायः	
वमन विरेचन में प्रथमवेगोंका निषेध	"	पंचकर्मके अयोग्यव्यक्ति	१२४४
सम्यग्वाचित के लक्षण	"	वमनके अयोग्य व्यक्ति	"
असम्यग्वाचितके लक्षण	"	उत्तरोरगियोंके अवम्य होनेका कारण	"
अतिवमनके लक्षण	"	वमनका अप्रतिषेध	१२४६
सम्यग्विरिक्तके लक्षण	"	वमनीयव्यक्ति	"
असम्यग्विरिक्तके लक्षण	१२३७	अविरेच्यरोगी	"
अतिविरिक्त के लक्षण	"	उक्तव्यक्तियोंके अविरेच्य होनेका	१२४८
वस्तिकेगुण	१२३८	कारण	"
निरूहणवस्तिके गुण	"	विरेचनके योग्यव्यक्ति	"
अनुवासनके गुण	"	अनास्थाप्परोग	"
पृंहणवस्तिके अयोग्यव्यक्ति	१२३९	अनास्थापनका कारण	१२४९
संशोधनवस्तिकानिषेध	"	आस्थाप्परोग	१२५०
वायुजन्यरोगों में वस्तिको प्रधानता	"	अनुवासनके अयोग्यरोगी	"
सम्यक् प्रयुक्तवस्तिके लक्षण	१२४०	उत्तरोरगोंमें अनुवासनके न देने]	"
सम्यक् प्रयुक्त निरूहके लक्षण	"	का कारण]	"
असम्यक् निरूहित के लक्षण	"	अनुवासनके योग्यव्यक्ति	१२५१
अतिनिरूहितके लक्षण	"	शिरोविरेचन के अयोग्यरोगी	"
सम्यक् अनुवासितके लक्षण	"	शिरोविरेचन न देनेका कारण	१२५१
असम्यक् अनुवासितके लक्षण	१२४१	शिरोविरेचनके योग्यरोगी	१२५२
अत्यनुवासितके लक्षण	"	नस्यकर्मविधि	"
वस्तियों की संख्या	"		

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
अध्यायका उपसंहार	११५३	कफावृत वस्ति में उपाय	१२६७
वस्तिस्त्रयीयसिद्धिर्नाम तृतीयोऽध्यायः		अतिभोजनावृत वस्तिके लक्षण	"
वस्ति का प्रमाण	११५४	उत्तरोग में उपाय	"
वस्तिकी परिधिका प्रमाण	११५५	पुरीषावृतवस्तिके लक्षणोपाय	"
भिन्न २ वस्तिवर्णके गुण भेद	११५६	ऊर्ध्वगति वस्ति के लक्षण	१२६८
वामपार्श्वसे वस्तिप्रणिधानका कारण	११५७	ऊर्ध्वगतवस्ति में उपाय	"
निरूहण द्रव्यका प्रमाण	११५८	उपेक्ष्यवस्ति	"
शयनका नियम	"	मुक्तस्नेह का परचात् कर्म	"
भोजनादि नियम	११५९	उष्णोदक के गुण	"
वातनाशक निरूहण प्रयोग	"	अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	१२७०
अरण्य तैल की वस्तिके गुण	"	नेत्रवस्ति व्यापादिका सिद्धिर्नाम पञ्च-	
पित्तरोगनाशक निरूहवस्ति	११६०	मोऽध्यायः	
पित्तरोगनाशक अन्य विधि	"	वर्जितवस्तिनल	"
कफनाशक वस्ति	११६१	ह्रस्वादि वस्ति नल के उपद्रव	"
वायुनाशक वस्ति	११६२	वर्जित वस्ति	१२७१
अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	११६३	विषमादिवस्तिवर्णों के उपद्रव	"
स्नेहव्यापादिका सिद्धिर्नाम चतुर्थोऽ-		प्रणता की अज्ञताके उपद्रव	"
ध्यायः		हुतादि प्रणीतवस्ति के कर्म	"
वातनाशक अनुवासन विधि	१२६४	तिर्यक् बन्धन के लक्षण	१२७२
वसाप्रयोग	"	पीडन के उपद्रव	"
अन्यतैल	"	कम्पनमें उपद्रव	"
अनुवासनीयघृत	"	अतिप्रणीत वस्ति के उपद्रव	"
स्नेहवस्तिके गुण	१२६६	मन्दप्रणीत वस्ति के लक्षण	"
स्नेहवस्ति में छः आपत्ति	"	अतिपीडित वस्ति के लक्षण	"
वस्ति में विघ्न के कारण	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
वातावृत स्नेहवस्तिके लक्षण	"	वमनविरेचन व्यापत् सिद्धिर्नाम षष्ठो	
वातावृत स्नेहवस्ति में उपाय	१२६७	ऽध्यायः	
पित्तावृत वस्ति के लक्षण	"	संशोधन का समय	१२७३
कफावृत वस्ति के लक्षण	"	अविरेचनरोगी	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
स्नेहस्वेदसे संशोधन का दृष्टान्त	१२१४	अतियोग व्यापच्चिकित्सा	१२८५
अजीर्ण भोजन में संशोधन निषेध	"	कलमव्यापल्लक्षण	"
मात्रावत् औषध के लक्षण	"	कलमव्यापच्चिकित्सा	१२८६
सम्पयोग करनेवाली औषध	"	आध्मान व्यापल्लक्षण	"
वमन विरेचन का पूर्व कर्म	१२७५	आध्मान व्यापच्चिकित्सा	१२८७
शुद्धि के लक्षण	"	हिककाव्यापच्चिकित्सा	"
पेया के योग्यरोगी	"	हृदयचिकित्सा	"
तर्पणादिक्रम के योग्य रोगी	"	ऊर्ध्वव्यापच्चिकित्सा	"
जीर्ण औषध के लक्षण	१२७६	प्रवाहिका व्यापच्चिकित्सा	१२८८
जीर्णावशिष्ट औषध के लक्षण	"	शिरशूलके लक्षण	१२८९
असंयुक्त औषध के दशउपद्रव	"	शिरशूल चिकित्सा	"
अजीर्ण में विरेचनपान के अवगुण	"	अंगशूल लक्षण	"
वमनकर्ता औषध से विरेचन	"	अंगशूल चिकित्सा	"
वमन विरेचन योग में उपाय	१२७८	परिकर्तिकाकी चिकित्सा	१२९०
अतियोगनाशक प्रयोग	"	पितरक्त में चिकित्सा	"
वमनातियोग प्रयोग	"	अध्यायका उपसंहार	" १२९१
निःसृत जिह्वा में उपाय	"	मामृतयोगिकसिद्धिर्नाम अष्टमोऽध्यायः	
बाग्रह में चिकित्सा	"	वर्यवर्द्धन निरूह	१२९२
ऐंठा होने का कारण	१२८०	पंचतित्त निरूहवस्ति	"
ऐंठकी चिकित्सा	"	क्रामिनाशक वस्ति	"
पीत औषधोंके वमननिग्रहमें उपद्रव	१२८१	वृष्यवस्ति	"
शोणित की परीक्षा	१२८२	नौउपद्रव	१२९२
दूसरी परीक्षा	"	अध्यायका उपसंहार	१२९६
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२८४	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
वस्तिव्यापदिकासिद्धिर्नामसप्तमोऽध्यायः		त्रिमर्मीय सिद्धिर्नाम नवमोऽध्यायः	
वस्ति के रोग	"	मर्मस्थानोंमें गुरुता	१२९७
अयोग व्यापल्लक्षण	"	हृदयाभिघातके उपद्रव	१२९८
अयोग व्यापच्चिकित्सा	१२८५	शिरमें चोट के उपद्रव	"
अतियोग व्यापल्लक्षण	"	वस्तिमें चोटके उपद्रव	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
वातोपसृष्ट हृच्चिकित्सा	१२९९	वक्त्रा का आकारादि वर्णन	१३०६
वातोपसृष्ट शिरकी चिकित्सा	"	उत्तर वस्ति में पथ्यादि वर्णन	"
वातोपसृष्टवस्तिमें चिकित्सा	१३००	स्त्री को उत्तर वस्ति	१३०७
मर्म प्रकर्णका उपसंहार	"	स्त्रियों की वस्तिका प्रमाण	"
अपतंत्रकके लक्षण	"	शंखकके सहेतु लक्षण	"
अपतानकके लक्षण	१३०१	अर्द्धावभेदक के सहेतु लक्षण	१३०८
तन्द्रारोगका हेतु	"	अर्द्धावभेदक की चिकित्सा	"
तन्द्राके लक्षण	"	सूर्यावर्त में उपाय	१३०९
तन्द्रामें चिकित्सा क्रम	१३०२	सूर्यावर्त के सहेतु लक्षण	"
वस्तिरोगों के भेद	"	अनन्तवात के लक्षण	"
मूत्रैकसाद के लक्षण	"	शिरःकम्प के लक्षण	"
मूत्रजटरकी सहेतु चिकित्सा	"	शिरोरोग में नस्य को प्रधानता	"
मूत्रकृच्छ्र के लक्षण	१३०३	नस्यकर्म के भेद	"
मूत्रोत्सर्गके लक्षण	"	नावनादि के लक्षण	"
मूत्रसंक्षयके लक्षण	"	नस्य के कर्म	१३१०
मूत्रातीतके लक्षण	"	रेचन साध्यरोग	"
वाताग्नीलाके लक्षण	"	तर्पणसाध्यरोग	"
वातवस्तिके लक्षण	"	शमनसाध्यरोग	"
उष्णवस्तिके लक्षण	"	विरेचनद्रव्य	"
वातकुंडलिका के लक्षण	१३०४	तर्पण द्रव्य	"
मूत्रप्रणिके लक्षण	"	तर्पण की रीति	"
विडविघातके लक्षण	"	आध्मापन की विधि	१३११
वस्तिकुंडल के लक्षण	"	शिरोविरेचन के पश्चात्कर्म	"
कुंडली भूतवस्तिके लक्षण	१३०५	नस्य कर्मके अनुचितकाल	१३१२
उत्तरवस्तिका वर्णन	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
उत्तरवस्तिकी मात्राका प्रमाण	"	वस्ति सिद्धिर्नाग दशमोऽध्यायः	
उत्तरवस्तिके देनेकी रीति	"	आस्थापनयोग्यव्यक्ति	१३१३
वस्तिकी गतिका वर्णन	१३०६	वस्तियों के गुण	१३१४
प्रत्यागमनका उपाय	"	दृहण वस्ति के अयोग्यरोगी	"

विषय	प्रष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
संशोधन वास्तिके अयोग्य व्यक्ति	१३१४	भेड बकरी के लिये प्रयोग	११२२
वातनाशक प्रयोग	१३१५	श्रोत्रियादि के रोगी रहनेका कारण	"
पित्तनाशक प्रयोग	"	अन्य सदारोगियोंका वर्णन	"
कफनाशक प्रयोग	"	निरुहण का पश्चात् कर्म	१३२३
पक्वाशय शोधन प्रयोग	१३१६	बालक और वृद्ध कोनिरुहण	"
शुक्रवर्द्धन प्रयोग	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
सांप्राहिक प्रयोग	"	उत्तरासाद्धिर्नामद्वादशोऽध्यायः	
परिस्त्राव में प्रयोग	"	संशोधन के पीछे पेयादि विधि	१३२४
दाहनाशक प्रयोग	"	अग्नि संदीपनक्रम	"
परिकर्तिका में वास्ति	१३१७	प्रकृतिगत के लक्षण	"
प्रवाहिका नाशक प्रयोग	"	अप्रकृतिगतको वर्जितकर्म	१३२५
अतियोगनाशक प्रयोग	"	वर्जोपचार सेवन के अवगुण	"
जीवशोणित में वास्ति	"	उच्चभाषण के उपद्रव	"
रक्तापित्त में प्रयोग	१३१८	रधक्षोभ के उपद्रव	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"	अतिचक्रमणके उपद्रव	१३२६
अध्यायका उपसंहार	"	अत्यासनके उपद्रव	"
फलमात्रासिद्धिर्नाम एकादशोऽध्यायः		अजीर्ण भोजन के उपद्रव	"
फलविषय में भिन्न २ मत	१३१९	अहित भोजन के उपद्रव	"
विषय विशेषसे फलोंको उत्कृष्टत्व	"	दिवास्वप्न के उपद्रव	"
मदनफल की उत्कृष्टता	१३२०	मैथुन के उपद्रव	"
सुवस्ति का प्रमाण	१३२१	उच्चभाषणजन्यरोगोंमें उपाय	१३२७
सुवस्ति की मात्राका प्रमाण	"	रधक्षोभजन्यरोगोंमें उपाय	"
निरुहका साधारण प्रयोग	"	अजीर्णाध्यशनजन्यरोगोंमें उपाय	"
हार्थकों निरुहण प्रयोग	"	विषमभोजनादिजन्यरोगोंमें उपाय	"
ऊंटको निरुहण प्रयोग	"	दिवास्वप्नजन्यरोगोंमें उपाय	"
गौके लिये प्रयोग	"	मैथुनजन्यरोगोंमें उपाय	१३२८
घोड़े के लिये प्रयोग	"	यापनवास्तिकी विधि	"
खरोष्ट्र प्रयोग	"	दूसरीयापनवास्ति	१३२९

तीसरी विधि	१३२९	चौथीसवीं विधि	१३३३
चौथी विधि	"	पच्चीसवीं विधि	१३३४
पांचवीं विधि	१३३०	छत्तीसवीं विधि	"
छटी विधि	"	सत्ताईसवीं विधि	"
सातवीं विधि	"	अट्ठाईसवीं विधि	"
आठवीं विधि	"	स्नेह प्रकर्ण	"
नवीं विधि	१३३१	उक्तवास्ति की विधि	१३३५
दसमी विधि	"	उक्तवास्ति के गुण	"
ग्यारहवीं विधि	"	बलादिस्नेह	"
बारहवीं विधि	"	सहचरादि स्नेह	१३३६
तेरहवीं विधि	"	वास्तिसेवनमेंवर्जित कर्म	१३३७
चौदहवीं विधि	१३३२	वास्तियोंकी संख्या	१३३७
पन्द्रहवीं विधि	"	उक्तवास्ति में आस्थापन विधि	१३३८
सोलहवीं विधि	"	अतिसेवितयापनके उपद्रव	"
सत्रहवीं विधि	"	उक्तउपद्रवोंमें चिकित्सा	"
अठारहवीं विधि	"	अतिसेवनका निषेध	"
उन्नीसवीं विधि	१३३३	सिद्धिस्थानके लक्षण	"
वीसवीं विधि	"	इसग्रन्थका फल	"
इक्कीसवीं विधि	"	तंत्रयुक्तियोंका वर्णन	१३३९
बाईसवीं विधि	"	ग्रन्थकोशस्त्रसेसमानता	१३४०
तेईसवीं विधि	"	ग्रन्थकागौरव	१३४०

इतिअनुक्रमणिका समाप्ता

तित्वअकवर ।

यद्यपि बहुत से छोटे २ यूनानी ग्रंथ अवतक छप चुके हैं परन्तु ऐसा बड़ा और प्रतिष्ठित ग्रन्थ अब तक नहीं छपा था इस के लिये बहुत से सज्जन मनुष्यों की इच्छा थी ॥ इस में रोगों के निदान अत्यन्त अनोखे ढंग पर विस्तारपूर्वक दिये गये हैं और उसके पास ही उस रोग की चिकित्सा भी दी गई है हमारे आयुर्वेद में जैसे चरक; सुश्रुत, वाग्भटादि ग्रन्थ बहुमान्य और प्रतिष्ठित हैं उसी तरह यूनानी यह ग्रन्थ भी उच्चश्रेणी में विराजमान है—यह बात कितनी ही बार देखी गई है कि जब आयुर्वेदीय वैद्य और बड़े २ डाक्टर किसी रोगमें आशाहीन होजाते हैं तब यूनानी हकीमों के छोटे २ सुस्वे तीर से अधिक काम देजाते हैं । भारतवर्ष में सहस्रों मनुष्यों की प्रकृति ऐसी बदल गई है कि यूनानी इलाज ही उनकी प्रकृति के अनुकूल पड़ता है । इन सब बातों को विचारकर हमने सोचा कि हमारी हिन्दी ऐसे अनुपम ग्रन्थसे सुशोभित क्यों न हो और उर्दू फारसी न पढ़े हुए हमारे भाई इस से क्यों वाञ्छित रहें, और सब अमीर गरीब इस ग्रन्थ से समान भाग ला सकें । इसी हेतु से हमने इस ग्रन्थ का उर्दू से भाषानुवाद करके छपा है यह ग्रंथ मुम्बई के स्वास्थ्य अक्षरों में चिकने बढिया कागज से छपा है । आशा है कि सब हकीम वैद्य छोटे बड़े अमीर गरीब शौकीन रोग इसकी एक २ प्रति अपने पास र-

खेंगे और तन्दुरुस्ती रखने के लिये अमि-
ति लाभ उठावेंगे यह प्रायः १२५० पृष्ठ
में समाप्त हुआ है की० ७) रु० ढाका॥)

बूटीप्रचार ।

यह वैद्यकका छोटासा ग्रन्थ अपने ढंगका एकही है इसको स्वर्गवासी महात्मा महंत सुखरामदासजी ने जीवनभर अपने अनुभव किये हुए चुटुकुलों से भरा है बड़े से बड़े और छोटे से छोटे रोगों के बहुत ही सुगम उपाय लिखे हैं यह पुस्तक प्रत्येक ग्रहस्ती को सदैव अपने अपने घर में रखना उचित है इसके पास होने से साधारण रोगों में वैद्य और हकीमों के पास दौड़ने की आवश्यकता नहीं रहेगी, इस पुस्तक को विदेशमें भी साथ रखने से मनुष्य अपना और अपने साथियों का रोग दूर कर सकता है इन सब बातों के सिवाय धातुओं के जारण मारण की विधि जंगल की जड़ी बूटी द्वारा बहुतही सहज लिखी है तथा औषधि प्रस्तुत करने की प्रणाली भी विधिपूर्वक लिखी है । जिन जिन जड़ी बूटियों का नाम इस पुस्तक में आया है उन सबके ऐसे सुन्दर चित्र दिये हैं मानों अक्सही खींच दिया है. ये चित्र प्रायः २०२ से अधिक हैं पुस्तक के अंतमें नागेश्वर यंत्र वालुका यंत्र मृगांगयंत्र आदिके कितने ही अद्भुत और उपयोगी चित्र दिये हैं । इस तरह सब मिलाकर यह पुस्तक प्रायः २०० पृष्ठ में सम्पूर्ण हुई है मूल्य विलायती कपडे की जिल्द का १) रु० ढाका १० =)

स्मरणशक्ति, मेधा, आधेय्यता, तन्मात्रावस्था, प्रभा, वर्णन, स्वरकी स्पष्टता, देह और इन्द्रिय गण में उत्तम बल, वाक्सिद्धि, प्रणति और कांति प्राप्त करता है ।

रसायन की निकृति ।

लाभोपायोद्दिग्दानारसादीनारसायनम्
अर्थ—रसादि उत्तम धातुओं के प्राप्त करने का यह एकमात्र उपाय है इससे इसे रसायन कहते हैं ।

वाजीकरणके लक्षण ।

अपत्यसन्तानकरं यत्सद्यःसमर्हर्षणम् ।
वाजीवातिबलोयेनयात्यप्रतिहतःस्तुपः
भवत्यतिमियःस्त्रीणांयेनयेनोपचीयते ।
जीर्यतोऽप्यस्यंशुकफलवद्येनदृश्यते ॥
प्रभूतशाखःशाखीवयेनचत्वीयधामहान्
भवत्यर्च्योबहुमतःप्रजानांसुबहुप्रजः ॥
सन्तानमूलंयेनैहमेत्यचानन्त्यमश्नुते ।

यशःश्रियंवलंपुष्टिवाजीकरणमेवतत् ॥

अर्थ—जिस के सेवन करने से बहुतसी सन्तान की उत्पत्ति होती है, जो तत्काळही आल्लाद उत्पन्न करती है, जिसके सेवन से अश्वके समान बल प्राप्त कर मनुष्य स्त्री सगम में कभी प्रतिहत नहीं होता है, जिस के सेवन से पुरुष स्त्रियों का अत्यन्त प्यार होजाता है और बहुत पुष्ट भी होता है । जिस के सेवन से वृद्धावस्था में भी वीर्य वक्ष्यहोकर फलवान् होता है । जैसे वृद्ध बड़े बहुतसी शाखा प्रशाखाओं से युक्त हो कर शोभित होता है उसी तरह मनुष्य भी बहुतसी सन्तानों से युक्त होकर शोभित

होताता है । जो सन्तान की मूळ कारण है उसके सेवन करने से मनुष्य अनन्त यश, श्री, बल, पुष्टि प्राप्त करता है उमेही वाजीकरण कहते हैं ॥

स्वस्थस्योजस्करन्त्वेतद्द्विविधं मोक्तव्यं-
पथम् । यद्व्याधिनिर्घातकरं वक्ष्यते ताक्षि-
कित्सिते ॥ चित्किसितार्थयतावान्वि-
काराणां यदापथम् । रसायनविधिश्चाग्रे
वाजीकरणमेव च ॥

अर्थ—जो दो प्रकार की औषध कहाँ है एक स्वस्थके लिये ओजस्कर दूसरा रोगनाशक । जो रोगनाशक है वे इस चिकित्सा स्थान में कहाँ जायगी, आगे रसायनविधि और वाजीकरण औषधका वर्णन किया जायगा ॥

अभेपज का लक्षण

अभेपजमितिज्ञेयंविपरीतं यदापथात् ।
तदसेव्यंनिषेव्यन्तुप्रवक्ष्यामियदापथम् ॥

अर्थ—जो इन औषधों से विपरीतहोती है उसे अभेपज कहते हैं, वह असेव्य अर्थात् सेवन के योग्य नहीं होती, अथ इस जगह सेव्य औषध का वर्णन किया जायगा ।

रसायन के भेद

रसायनानां द्विविधं प्रयोगमृपयोविदुः ।

कुटीमावेशिकं चैव वातातापिकमेव च ॥

अर्थ—ऋषियोंने रसायनके दो प्रकार के प्रयोग वर्णन किये हैं उन में से एक को कुटीमावेशिक और दूसरे को वातातापिक कहते हैं ॥

कुटीमावेशिक की विधि ॥

कुटीमावेशिकस्यादौ विधिः समुपदेक्ष्यते ।

नृपवैद्यद्विजातीनांसाधूनांपुण्यकर्मणाम्
निवासेनिर्भयेशस्तेप्राप्योपकरणेपुरे ॥ द्वि
शिपूर्वोत्तरस्यान्तुसुभूमौकारयेत्कुटीम् ॥
विस्तारोत्सेधसम्पन्नांत्रिगर्भासूक्ष्मलोच-
नाम् । घनभित्तिमृतुसुखांसुस्पष्टामनसः
प्रियाम् ॥ शब्दादीनामशस्तानामगम्यां
स्त्रीविवर्जिताम् । इष्टोपकरणोपेतांसज्ज
वर्थापधद्विजाम् ॥

अर्थ—प्रथम कुटीप्रवेशिक की विधि
वर्णन की जाती है । साधु तथा पुण्यकर्मा
राजवैद्य और द्विजातियों के निवासस्थान
में जहां किसी प्रकार का भय न हो और
जो उत्तम भी हो और जहां सब प्रकार की
सामग्रियों भी उपस्थित हो सकती हों, एक
स्थान छेवै, इस स्थान के उत्तर वा पूर्वकी
ओर एक अच्छी सी भूमि में एक कुटी
घनवावै । कुटी खूब लम्बी चौड़ी और ऊं-
ची होनी चाहिये, इस कुटी के बाहर तीन
परकोटा होने चाहिये और इन परकोटाओं
में बापुके आने जाने के लिये छोटे छोटे छि-
द्र भी रखे । कुटी की भीत मोटी होवे और
इस में प्रत्येक ऋतुका मुख होवे अर्थात्
वह कुटी ग्रीष्मऋतु में शीतल और शीत
ऋतु में गरम रहे यह स्वच्छ मनोहर,
कुत्सित शब्दों से रहित, स्त्री वर्जित, अभीष्ट
सामग्रियों से युक्त हो और उस में वैद्य
औषध और द्विजों का सदा संग रहे ॥

अथोद्गमनेशुकैतिथिनसत्रपूजिते । मुहूर्त
करणोपेतेप्रशस्तेकृतवापनः ॥ धृतिस्मृति
पलंकृत्वावस्थानः समाहितः ॥ विधूय

मानसानन्दोपानमैत्रीभूतेषुचिन्तयन् ॥ दे
वताः पूजयित्वाग्रेद्विजातींश्चमदक्षिणम् ।
देवगोब्राह्मणानकृत्वाततस्तांविशेत्कु-
टीम् ॥ तस्यांसंशोधनैः शुद्धः सुखीजात
बलः पुनः । रसायनं प्रयुज्जीततत्प्रवक्ष्या-
मिशोधनम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त विधि से स्थान तयार करा
के सूर्य के उत्तरायण काल में शुक्लपक्षके
शुभ तिथि, नक्षत्र मुहूर्त, करण में हजामत
बनवाकर, धृति, स्मृति और बल धारण
करके श्रद्धायुक्त और एकाम्रचित्त होकर
मानसिक दोषों को दूर करे और सम्पूर्ण
प्राणियों में मैत्रीभाव स्थापनकरे, तदनन्तर
प्रथम देवताओं का पूजन और फिर गोद्वि-
जादि का पूजन करके इनकी प्रदक्षिणा कर
के उस स्थान में प्रवेश करे । प्रवेश करने
के पीछे संशोधन योगों से देहको शुद्धकरे
फिर सुखीहोनेपर बललाभ करने के निमित्त
रसायन द्रव्यों का सेवन करे ।

अब प्रथम संशोधन विधिका वर्णन किया
जाता है ॥

संशोधन विधि
हरीतकीनांचूर्णानिसैन्धवामलकेगुडम् ।
वचाविडंगरजनीपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥
पिवेदुष्णाम्बुनाजन्तुः स्नेहस्वेदोपपादितः
तेनशुद्धशरीरायकृतसंमार्जनायच ॥
त्रिरात्रयावकंदद्यात्पश्चादंवापिसपिपा ।
सप्ताहंवापुराणस्ययावच्छुद्धेस्तुवर्चसः ॥

अर्थ—हरड, सैधानमक, आंवला, गुड,
वच, वायविडंग, हलदी, पौण्ड, मोठ, इन

सबका चूर्ण गरमजल के साथ पांके परन्तु इससे पहिले स्नेहन और स्वेदन कर्म कर लेवै । जब संशोधन से देह शुद्ध होजाय तब स्नानादि करके मलकी शुद्धि के लिये तीनरात्रि तक यवागू पान करे अथवा पांच दिन तक घृतपान करे अथवा सात दिनतक पुराने चावलों को माढ़ लेवे ॥

शुद्धकोष्ठान्तुतज्ञात्वारसायनमुपाचरेत् ।

वयम्भक्तिसात्म्यज्ञोयोगिकस्यस्यद्भवेत्

अर्थ—जब कौठा शुद्ध जान पड़े तब रसायन का प्रयोग करे । रोगी को आयु, प्रकृति और सात्म्यका विचार करके जिसके लिये जैसी रसायन हितकारी हो उस को वैसीही देवे ।

हरीतकी वर्णन ।

हरीतकीपञ्चरसामुष्णामलवर्णाशिवाम्
दोषानुलोमिनीलध्वीविद्यादीपनपाचनीम्
आयुष्यापीष्टीकथिन्यांवयसःस्थापनीप-
राम् । सर्वरोगप्रशमनीबुद्धीन्द्रियबलप्र-
दाम् ॥ रुष्टगुल्ममुदावर्तशोषपाण्ड्वामयं
मदम् । अर्शसिग्रहणीदोषपुराणंविषम
ज्वरम् ॥ हृद्रोगंसिरोरोगमतीसारमरो-
चकम् । कासप्रमेहमानाहंष्टीहानमुदरं-
नयम् ॥ कफगसेकैवस्यैववर्णकामलान्
कुमीन् । श्वस्युन्तमकंछदिलैज्यमगाध
सादनम् ॥ सोतोविबन्धानविविधानप्र-
लेपहृदयोरसोः । स्मृतिबुद्धिप्रमोहश्चजये
च्छीघ्रंहरितकी ॥

अर्थ—हरीतकी में लवणरस को छोड़कर पांचारस है इस से इसे पंचरसामी कहते हैं

यह उष्ण लवणरस रहित कल्याण करने वाली, दोषानुलोमिनी, हल्की और दीपन पाचनभी होती है । यह हरड़ आयु को हितकारी, पुष्टिकर्ता, धन्य, उत्तम, वयः स्थापन करने वाली, सर्व रोगनाशिनी, बुद्धि इन्द्रियगणऔर बलको बढ़ानेवाली होती है तथाकोढ़, गुल्म, उदावर्त, शोष, पाण्डुरोग, मदरोग, अर्श, ग्रहणीदोष, पुरानाज्वर, विषमज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतीसार अरुचि, खांसी प्रमेह, आनाह, प्रीहा, नवीन उदररोग, कफप्रसेक, वैक्वर्ष, विवर्णता, कामलारोग क्षमीरोग, शोथ, तमकस्वास, वमन, ह्रौवता, अङ्गोंकी शिथिलता, अनेक प्रकारके स्नातविबन्ध, हृदयप्रलेप, स्मरणशक्ति का नाश, बुद्धिभ्रम, इन सब को हरड़ शीघ्रही जीतलेतीहै ।

हरीतकी के अयोग्य व्यक्ति ।

अजीर्णिनोरुसभुजःस्त्रीमद्यविषकर्षिताः
सेवरन्नाभयामेतेक्षुत्तृष्णोष्णादिताक्षये ॥

अर्थ—अजीर्णरोगी, रुक्षभोजी, खांसिवी, मद्यप, विषमक्षी, क्षुधा, तृष्णा, और उष्णतासे पीडित मनुष्यों को हरड़का सेवन करना उचित नहीं है ॥

आंवले के गुण ।

तानुगुणांस्तानिकर्माणिविद्यादामलकी-
प्वपि । यान्युक्तानिहरितक्यावीर्यस्यतु
विपर्ययः

अर्थ—जो जो गुण और कर्म हरड़ के वर्णन किये गये हैं वेही गुण और कर्म आंवले में भी होतेहैं केवल वीर्यमें अन्तर होता है अर्थात् हरड़का वीर्य उष्ण है और आंवले का शीतल ।

अतःश्वामृतकल्पानिविद्यात्कर्मभिरीदृशैः
हरीतकीनांशस्यानिभिपगामलकानिच।
अर्थ—ऊपर कहेहुये गुण और कर्मों के
कारण वैद्य हरड़ और आंवलेको अमृत कल्प
कहते हैं।

औषधीनांपराभूमिर्हमवान्शैलसत्तमः
तस्मात्फलानितज्जानिग्राहेयत्कालजानि
तु ॥ आपूर्णरसवीर्याणिकालेकालेयथा-
विधि । आदित्यपवनच्छायासलिलप्री-
णितानिच ॥ यान्यजग्धान्यपूतीनिनि-
व्रणान्यगदानितु । तेषाम्प्रयोगंवक्ष्यामि-
फलानांकर्मचोत्तमम् ॥

अर्थ—औषधियों के उत्पन्न होने का
सर्वोत्तम स्थान हिमालयपर्वत है, इसलिये
जिससमय जिस औषधके लानेकी इच्छा हो
उसे वही से लावै । समय समय पर विधि
पूर्वक ऐसी औषधों को लावे जो रस और
वीर्य से परिपूर्ण हों, सूर्य की धूप वायु छाया
और जल के संसर्ग से अच्छी तरह फूली
हों, जो अजग्ध हों अर्थात् जिनको कोई
पशु न चरगया हो (अजग्धकी जगह अदग्ध
पाठ भी है = बिना जलीहुई), बिनागली
खोललों तथा रोगों से रहित हों । अब हम
उन औषधों के उत्तम २ प्रयोग फल और
कर्मोंका वर्णन करेंगे ।

ब्राह्म रसायन ।

पञ्चानांपञ्चमूलानांभागान्दशफलोन्मि-
तान्। हरीतकीसहस्रश्चत्रिगुणामलकंनवम्
विदारिगन्धाष्टहतींशृथिपणींनिदिग्गिकाम्
विद्याद्विदारिगन्धाष्टद्वदंशपञ्चमङ्गणम्।

विल्वामिमन्थश्वोनाककाश्मर्यमथपाट-
लाम् । पुनर्नवासर्पपण्यौबलांमैरण्डमेवच
जीवकर्पभकौमेदांजीवन्तींसशतावरीम् ।
शरेक्षुदर्भकासानांशालीनांमूलमेवच ॥
इत्येषांपञ्चमूलानांपञ्चानामुपकल्पयेत्
भागान्यथोक्तांस्तत्सर्वसाध्यंदशगुणेऽ-
म्भसि ॥ दशभागवशेषन्तुपूतन्तद्ग्राहये-
द्रसम् । हरीतकीश्चताःसर्वाःसर्वाण्याम-
लकानिच॥ तानिसर्वाण्यनस्थीनिफला-
न्यापोध्यकूर्चनैः॥विनीयतस्मिन्निर्घृहेचू-
र्णानीमानिदापयेत् ॥ मण्डूकपर्ण्याः पि-
प्यल्याःशैलपुष्पाःप्लवस्यच । मुस्तानां
सविडङ्गानांचन्दनागुरुणोस्तथा ॥ मधुक-
स्यहरिद्रायावचायाःकनकस्यच । भागां
श्रुत्पुलान्कुत्वासूक्ष्मैलायास्त्वचस्तथा ।
सितोपलासहस्रन्तुचूर्णितन्तुलयाधिकम्
तैलस्यद्वाढकंतत्रदयात्रीणिचसर्पिषः ॥
साध्यमोदुम्बरेपात्रेतत्सर्वमृदुनाग्निना ।
ज्ञात्वालेह्यमदग्धश्चशीतक्षौद्रेणसंसृजेत्
क्षौद्रप्रमाणेस्नेहार्द्धेतत्सर्ववृत्तभाजने ॥
तिष्ठेतसंमूर्च्छितंतस्यमात्रांकालेप्रयोजयेत्
मानोपरुन्ध्याद्वाहारमेवंमात्राजरांम्राति ॥
पट्टिकःपयसाचात्रजीर्णभोजनमिष्येत ।
वैखानसात्रालखिल्यास्तथाचान्येतपोध-
नाः ॥ रसायनमिदंभ्राश्यवभूवुरमिता
युगः । मुक्त्वाजीर्णवयश्चाग्न्यमवापुस्त
रुणंवयः ॥ वीततन्द्रालमाश्वासानिरात-
काः समाहिताः । मेधास्मृतिपलोपेता
धिररात्रंतपोधनाः ॥ ब्राह्मंतपोधनचर्यं
चेरुश्चात्यन्तनिश्चयाः । रसायनमिदंब्राह्म

रम्भः परमायुरवाप्नुयादिति ॥

अर्थ—हरड़, आंवला, बहेड़ा, पांचोंपच मूलका काय, पीपल, शहत, मुलहठी, काकोली, क्षीरकाफोली केंच, जीवक, ऋषभक, और क्षीरविदारी इन सबका कल्क और दूध, दूध से आठगुना विदारी कंदका रस मिलाकर इन सब को सर्पिष्कुम्भ अर्थात् बत्तीस सेर घृत में पकावै। इस घृतकी मात्रा का प्रयोग अग्नि बलके समान करै। औषध के पचने पर दूध और घी के साथ साठी चावलों को खाय ऊपर से उष्णोदक पान करै। इस घृत के सेवन करने से बुढापा रोग, पाप, अभिचार और भय दूर होकर अतुल शारीरिक और इन्द्रिय बलकी प्राप्ति होगी सम्पूर्ण प्रकार के कामोंमें हतोत्साह न होगा और आयु भी दीर्घ होगी।

हरीतक्यादिरसायनका दूसराप्रयोग हरीतक्यामलकविभीतकहरिद्रास्थिरावचाविडङ्गामृतवल्लीविश्वभेषजमधुकपिप्पलीसोमबल्कसिद्धेनक्षीरसर्पिषामधुशर्कराभ्यामपिचसन्नीयामलकस्वरसशतपल पीतमामलकचूर्णमयःचूर्णचतुर्भागसम्पयुक्तं पाणितलमात्रम्मातःमातःप्राश्ययद्योक्तेनविधिनासायंयूपेणपयसावासरिपिष्कं शालिपष्टिकमश्नीयात्। त्रिवर्षप्रयोगादस्य वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठति श्रुतमवतिष्ठते सर्वमयाः प्रशाम्यन्ति विषमविषं भवति गात्रे गात्रमश्मयत्स्थिरीभवति अदृश्योभूतानां भवतीति ॥

अर्थ—हरड़, आंवला, बहेड़ा, हल्दी,

शालपर्णी, वच, वायविडंग, गिलेय, सौंठ, मुलहठी, पीपल, सफेद खैर इनके साथ दूध और घीको सिद्ध करै। जब यह ठंडा होजाय तब इसमें घी और खोड मिलादे। तदनन्तर इसमें स्वरसपीत (आंवलेके रसमें भावना दिये हुये) आंवले का सौपल चूर्ण पच्चीस पल लोहचूर्ण मिलावै। पूर्वोक्त विधिके अनुसार हथेली भर अर्थात् दो तोले प्रतिदिन प्रातः काल सेवन करै। सायंकालके समय मांस-यूप और दूध के साथ घृत मिलाहुआ सांठेचावलों का भात खाय। इस रसायनका तीनवर्ष पर्यन्त सेवन करने से आयु सौ वर्षकी होजाती है और बुढापा पास नहीं आता है। सुनीहुवातबहुत दिवसतक विस्मृत नहीं होती है। सम्पूर्ण रोग शान्त होजातेहैं विषमष्ट होजाताहै। देहमें पथरके समान दृढता होजातीहै, प्राणियोंमें अदृश्य होजाताहै अर्थात् ऐसा दृष्ट पृष्ट होजाता है कि आदमियों की उसपर निगाह नहीं ठहरतीहै।

प्रथम पाद का उपसंहार

यथामराणाममृतं यथाभोगवतां सुधा ॥
तथा भवन्महर्षिणां रसायनविधिः पुरा ॥
न जरा न च दौर्बल्यं न नातुर्यान्निधनं न च
जंघुर्वर्षसहस्राणिरसायनपराः पुरा ॥
न केवलं दीर्घमिहायुरश्नते, रसायनं यो वि
धिवन्निपेयते। गतिं स देवापि निपेयितांश्च
भामपद्यते शर्मतयोतिचाक्षयमिति ॥

अर्थ—जैसे देवताओं को अमृत, सपों को सुधा ये वैसेही प्राचीन समयमें ऋषियों

के लिये रसायन विधि थी । पूर्वकाल में रसायन सेवन करने वालों के पास सहस्र वर्ष पर्यन्त बुढ़ापा, दुर्बलता, रोग और मृत्यु नहीं आते थे ।

जो मनुष्य विधिपूर्वक रसायन सेवन करता है उसको केवल दीर्घायुही नहीं मिलती है, किन्तु उसे देव और ऋषि गण सेवित शुभगति और अक्षयकल्याण अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

अभयामलकीयेऽस्मिन्पञ्चयोगाः परिकीर्तिताः । रसायनानां सिद्धानामायुर्धनुर्वर्तते ॥

अर्थ—अभयामलकीयाध्याय के इस प्रथम पाद में छः रसायन प्रयोगों का वर्णन किया गया है, इन सिद्ध रसायनों के सेवन से दीर्घायु मिलती है ।

चिकित्सितेऽभयामलकीयोरसायनपादः प्रथमः

द्वितीयः पादः ।

अथातः प्राणकामीयं रसायनपादं व्याख्यास्यामः । इति ह स्पष्ट भगवान् आत्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम प्राणकामीयनामक रसायन पाद की व्याख्या करेंगे ।

रसायन की प्रशंसा ।

प्राणकामाः शुभ्रपुष्पमिदमुच्यमानममृतमिवापरमदिति सुतहितकरमचिन्त्या उत्तमभावमायुष्यमारोग्यकरं वयसः स्थापनं निद्रातन्द्राश्रमकलमालस्यदीर्घव्यापहमनिलकफपित्तसाम्यकरं, स्थाय्यकरमव-

द्धमांसहरं, अन्तराग्निसन्धुक्षणं, प्रभावणोत्तमस्वरोत्तमकरं, रसायनविधानमनेन च्यवनादयो महर्षयः पुनर्युवत्वमापुः । नारीणां चैष्टतमावभूवुः । स्थिरसमसुविभक्तमांसाः सुसंहतस्थिरशरीराः सुप्रसन्नबलवर्णेन्द्रियाः सर्वत्राप्रतिहतपराक्रमाः कैशसहाश्वाः ।

अर्थ—हे प्राणों को चाहनेवाले इस अमृतरूप रसायन कथा का श्रवण करो ।

यह अदितिमुत देवताओं को भी हितकारी होती है, इसका प्रभाव अचिन्त्य और अद्भुत है, यह आयु को बढ़ानेवाली, आरोग्यता करनेवाली, वयःस्थापनकर्त्री, निद्रा, तन्द्रा, श्रम, क्रम, आलस्य और दुर्बलता को दूर करनेवाली होती है, वात पित्त कफ इन तीनों दोषों की समानता करती है, शरीर को दृढ़ करती है, मांस के ढीलापन को दूर करती है, जठराग्निको बढ़ाती है प्रभा, वर्ण और स्वरको उत्कृष्ट करती है, रसादि धातुओंकी उत्कर्षता करती है ।

इस रसायन के सेवन से प्यवन से आदि लेकर बहुत से ऋषि बुढ़ेसे जवान होगये हैं । नारियों में अधिक हर्षयुक्त हुए हैं ।

उनके शरीर का मांस दृढ़, समान और सुडौल होगया है । उन के शरीर सुसंहत और दृढ़ होगये हैं, उन के बल, वर्ण और इन्द्रियगण प्रकुण्डित होगये हैं । किसीजगह उन के पराक्रम का परामव नहीं हुआ है और वे परिश्रम के कामों को सहनेवाले भी होगये हैं ।

मात्रांपौर्वाहिकः प्रयोगः । सात्त्विकपेक्षः
चाहारविधिनापराहिकस्तस्यप्रयोगाद्-
र्षशतमजरं वयस्तिष्ठतीतिसमानं पूर्वेण ॥

अर्थ—एक सहस्र आंवले और इतनीही पीपल लेकर ढाक के क्षारजलमें ऐसे भिजो-
द्वे कि वे सब डूब जाय, जब वे खार के
सब जलको पीलें तब उन्हें छाया में सुखा
लेंवे, फिर गुठलियां निकालकर पीस ले, इस
चूर्ण में चौगुना घी और शहत मिलावे और
चौथाई खांड डालदे इन सब को सानकर
घी की चिकनी हांडी में भरकर छः महीने
तक पृथ्वी में गाढ़देवे । तदुपरान्त इसे
निकालकर अम्रितल के अनुसार प्रतिदिन
प्रातःकाल इसका सेवन करे । अपरान्ह
में सात्त्व्य भोजन करे । इस रसायन के
सेवन करने से वृद्धावस्था से रहित सौवर्ष
की आयु होजाती है तथा इसके अन्मगुण
पूर्वोक्त वृत के समान हैं

आंवले का चूर्ण ।

आमलकचूर्णादकमेकविंशतिरात्रमामल
कसहस्रंस्वरसपरिपीतंमधुपृतादकाभ्यां
द्वाभ्यामिक्कीकृतमष्टभागपिप्पलीकंशर्करा
चूर्णचतुर्भागसम्पयुक्तंघृतभाजनस्थंमात्र-
पिभस्मराशानिदध्याच्छर्पान्तेसात्त्व्यापे
क्षिप्रयोजयेदस्यप्रयोगाद्दर्पशतमजरमायु
स्तिष्ठतीतिसमानं पूर्वेण ।

अर्थ—आंवले के एक आढ़क चूर्ण को
सहस्र आंवले के रस में इक्कीस दिन तक
भिजो रखे । फिर इस में एक २ आढ़क
शहत और घृत मिलाकर सानले फिर इस

में आठवां भाग पीपल और चौथाई खांड
डालकर सबको मिलावे और घी की हांडी
में भरकर वर्षाऋतु में राख के ढेर में दाब
देवे वर्षा व्यतीत होने पर इसका मात्रा के
अनुसार सेवन करे, सात्त्व्य भोजन करे ।
इस चूर्ण के सेवन करने से वृद्धावस्था रहित
सौ वर्षकी आयु होजाती है, इस के गुण भी
पूर्वोक्त रसायन के समान होते हैं ।

विडग्नावलेह ।

विडंगतण्डुलचूर्णानामाढकम्पिप्पलीत-
डुलानामध्यर्द्धादिकंसितोपलायाः सर्पि-
स्तैलमभ्यर्द्धादिकै पट्टभिरेकीकृतघृतभाज
नस्थंमात्रापिभस्मराशानिदध्याच्छर्पान्तेसात्त्व्यापे
क्षिप्रयोजयेदस्यप्रयोगाद्दर्पशतमजरमायु
स्तिष्ठतीतिसमानं पूर्वेण

यावदशीः ॥

अर्थ—वायविडंग की मिंगी का चूर्ण
एक आढ़क, पीपलकी मिंगी का चूर्ण एक
आढ़क, मिश्री आधाआढ़क, घृत आधा
आढ़क, तेल आधा आढ़क, और शहत
आधा आधाआढ़क, इन छःओंको मिलाकर
घी की हांडी में भरकर प्रावृद्धातु में राख
के ढेर में गाढ़देवे । इसके गुण भी पूर्वोक्त
रसायन के समान हैं ।

आंवलोंका दूसरा अवलेह ।

यथोक्तगुणानामामलकानांसहस्रमाद्रपला
शद्रोण्यांसपिधानायांवाप्पमनुद्वमन्त्यामा-
रण्यगोमयाग्निभिरुपस्येदयेत् । तानिमु-
स्विन्नशीतानिउद्धृतकुलकान्यापोध्याद-
केनपिप्पलीचूर्णानामाढकेनचविडंगतण्डु-
लचूर्णानामध्यर्धेनचाढकेनशर्कराचूर्णानि
द्वाभ्यांद्वाभ्यांआढकाभ्यांतैलस्यमधुनःस

पिपश्वसंयोज्यशुचौदद्वृतभावितेकुम्भेस्था
पयेदेकविंशतिरात्रमतऊर्द्धप्रयोगः तस्यप्र
योगाद्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीति समानं
पूर्वेण ॥

अर्थ—सुभूमिजातानामित्यादि पूर्वोक्त गुण
सम्पन्न एक सहस्र आंवले लेकर पीले पलास
की द्रोणी (हांडी सदूक) में बन्द कर के
ऐसी तरह से ढकदेवै कि उस मेंसे भाफ न
निकल सके, फिर उस द्रोणी के चारों ओर
आरने ऊंपलों की आग ऐसी रीति से
जलावे कि द्रोणी को भवका तौ लगे पर
जलै नहीं । इस आगकी तेजी से आंवले
सँज जायंगे । उनको निकालकर ठंडा कर
के गुठली निकाल डाले और उन्हें पीस लेवै
फिर इस में एक आड़क पीपलका चूर्ण, एक
आड़क वायविडंग का चूर्ण, डेढ़ आड़क
शर्करा, तथा दो दो आड़क तेल, शहत और
घी इन सबको मिलाकर एक स्वच्छ दृढ वृत्त
की हांडी में भरकर इक्कीस दिन तक धरा
रहने दे फिर प्रयोग करे । इस औषध के
प्रयोग करने से सौ वर्ष की आयु होती है
शेष गुण पूर्वोक्त रसायन के समान हैं ।

नागवला रसायन ।

पंचनिकुशास्तीर्णेस्निग्धकृष्णमधुरमृत्ति-
फेसुवर्णवर्णमृत्तिकेवाव्यपगतविषम्भाप-
दपवनसलिलाग्निदोषैर्कृष्णवर्णीकश्मशा-
नचैत्योपररसवर्जितेद्रेक्ष्यथर्तुमुखपवनस
लिलादित्यसंवितेजातामनिज्ञेऽनुपहता
पंचध्याख्यामवालाभजीर्णा अधिगतवी-
रामजीर्णपुराणपर्णामराज्ञातान्यपर्णान्त

पासितपस्येवामासेश्वाचिःप्रयतःकृतदेवार्च-
नःस्वास्तिवाचायित्वादिजातान्सुमुहूर्तेना
गवलामूलतउद्धरेत् । तेषामुप्रक्षालिताना
न्त्वक्पिण्डमात्रमात्रंअक्षमात्रंवारदशणा-
पिष्टमालोड्यपयसामातः प्रयोजयेत्चूर्णा
कृतानिवापिचेत्पर्यसामधुसर्पिर्भ्यावासं
योज्यभक्षयेत् । जीर्णचक्षीरसर्पिर्भ्याशा-
लिपाष्टिकमश्नीयात् । संवत्सरप्रयोगाद-
स्यवर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वे
णेतानागवलारसायनम् ॥

अर्थ—माघ वा फाल्गुन के महीने में
स्नानादि से पवित्र होकर देवताओं का
पूजन करके ब्राह्मणों से स्वास्ति वाचन करा
के शुभ मुहूर्त में ऐसी नागवला को जड़से
उखाड़ लावै जो धन्वन देश के ऐसे स्थान
में उत्पन्न हुई हो जहां बहुतसी बुझा उत्पन्न
हो, जहां की मिट्टी चिकनी काली, मधुर वा
पीली हो जहां सेह जानवर न रहता हो,
जहां विषदोष वातदोष जल दोष वा अग्नि
उपद्रव न हो जहां खेती, सांपकी बांवी,
श्मशान, चैत्य (वालिभूमि) और ऊपर भूमि
न हो, जहां प्रत्येक ऋतु में सुखदायक हवा
जल और धूप आती जातीहो जो निम्न स्था-
नमें उत्पन्न हुई हो जो अनुपहत हो अर्थात्
फिती कोंडे ने न खाई हो, जो अनप्यरूढाहो
अर्थात् जिस पर और कोई पौदा आदि न
उगा हो, जो न नवीन और न पुरानाहो
हो, जो पूर्ववर्ष हो जिसके पत्ते पुराने वा

गुलेहुए न हों, जिसमें अन्यपत्ते न आये हों इस नागबलाकी जड़को खुद धोकर पाँसड़ा-ले इसमें दो या चार तोले दूध मिलाकर प्रातःकाल पान कर अथवा फंकी लेकर ऊपरसे घी और शहत मिलाहुआ दूध पानकरे। इस औषधके पत्रने पर दूध और घी के साथ शालीचांवळ या साठी चांवळ का भातखाय एक बरसतक इसका सेवन करने से सौ वर्षकी आयु होजाती है, इसके शेषगुण पूर्वोक्त रसायन के सदृश हैं। यह नागबलारसायन है।

बलातिबलाचन्दनायुरुधयतिनिशखदिर
शिशुपासनस्वरसाः पुनर्नवान्ताश्चापधयो
दशयेवयःस्थापनव्याख्यातास्तेपांस्वर-
सानागबलावत्स्वरसानामलाभेत्वयंस्व-
रसत्रिभिः चूर्णानामाढकमाढकमुदकस्या
होरावस्थितं गृहितपूर्तस्वरसवत्प्रयोज्यम्

अर्थ—बला अतिबला, चन्दन, अगर, धी, तिनिश, खदिर शीशम, असन, तथा पुनर्नवान्ता ये दस औषधें वयः स्थापन गणमें वर्णन की गई हैं, इन सबका रस नागबलाके सदृश पान करनेसे नागबला के समान गुण कारक होता है। जो स्वरस न निकलसके तो एक आढक चूर्णलेकर चतुर्गुण जलमें एक रात दिन भिजोदेवे पीछे उन को हाथमें मलकर छान इनका स्वरस के सदृश प्रयोग करे

भट्टातकी क्षीररसायन

भट्टातकान्यनुपहतान्यनामयान्यापूर्णर-
सप्रमाणवीर्याणिपक्वजाम्बवप्रकाशानि
शुचैशुक्लैरामासेसंगृह्यवपलेवमापपले

वानिधापयेत् । तानिचतुर्मासस्थितानि
सहसिसहस्येवामासेप्रयोक्तमारभेत ॥
शीतस्निग्धमधुरोपस्कृतशरीरः पूर्वैन्दुश्रम-
ह्लातकान्यापोध्याष्टगुणेनाम्भसासाध-
येत् । तेषांरसमष्टभागावशिष्टपूतसपय-
स्कम्पिवेत्सर्पिपान्तर्मुखमभ्यज्यतान्ये
कैकभट्टातकोत्कर्षापकर्षेणदशभट्टा-
तकान्यात्रिशतःप्रयोज्यानि ॥ नातः
परमुत्कर्षःप्रयोगविधाननसहस्रपरोभ-
ल्लातकप्रयोगः । जीर्णेचसर्पिपाप-
यसाशालिपट्टिकाशनमुपचारःप्रयोगान्ते
चद्विस्तावत्पयसैवोपचारःतत्प्रयोगाद्
पेशतमजरंवयस्तिष्ठतीतिसमानपूर्वेणैति
भट्टातकीक्षीरम् ॥

अर्थ—अनुपहत, रोग रहित, पूर्णप्रमाण पूर्णवीर्य, पकीहुई जामनके सदृश कृष्ण-वर्ण भिलाये आपाढ मासके शुक्लपक्षमें छा कर जाँके ढेर वा उडद के ढेर में गाढदेवे और चार महीने पीछे निकालकर अगहन वा पौष के महीनेमें इनका प्रयोग करना प्रारम्भ करे। भिलाये सेवन करनेसे पहिले शीतल, स्निग्ध और मधुर, द्रव्यों से शरीर का संशोधन करे। प्रथमही दस भिलायों को पीसकर अठगुने जल में भिद करे जब जल जलते २ आठवें भाग रह जाय तब उसे छानकर दूधके साथ पान करे। भिलायों के सेवन करने से पहिले मुख के भीतर घी चुपड़ लेवे। इन दस भिलायों को एक २ के बढ़ानेसे तीस तक सेवन करे। और

फिर एक २ घटाकर दसतक आजाय । यह एक सहस्र भिलयेका सर्वोत्कृष्ट प्रयोग इस तरह है कि प्रथम एक भिलायेसे एक २ को शब्दद्वारा दस पर्यन्त सेवन करें फिर एक एक घटाकर एक तक सेवन करें इस तरह सब मिलकर १०० भिलाये हुए, जब ये पच जाय और किसी प्रकारका उपद्रव न करें तब एकसे लेकर तीस तक बढ़ाता जाय, ये सब चारसौ पैसेठ हुए और फिर एक एक घटाने लगे अर्थात् २९ से ले कर एक तक ले आवै ये सब चार सौ पैंतीस हुए इस तरह ९९+४९+४६९×४३९ सब मिलकर पूरे एक सहस्र हुए । जब भिलाया पचजाया करें तब दूध और भातका सेवन करें, इसी तरह सहस्र भिलावेके प्रयोगके पीछे सायंकाल और प्रातःकाल दूध भातही का सेवन करता रहै । इस प्रयोगसे सौ वर्ष पर्यन्त बुढ़ापा पास नहीं आता है, इस के दोष गुण पूर्वोक्त रसायनों के समान हैं, यह भल्लातकी क्षीर का प्रयोग है ।

भल्लातकमधु ।

भल्लातकानाञ्जर्जरकृतानापिष्टस्वेदनं
पूरयित्वाभूमावाकण्डन्निखातस्यस्नेहभा
वितस्यदृढस्योपरिकुम्भस्यारोप्योदुपेना
पिधायकृष्णमृत्तिकावलितंगोमयाम्निभि
रुपस्वेदयेत्तेपायःस्वरसःकुम्भप्रपद्येततम
ष्टभागमधुसम्प्रयुक्तं द्विगुणवृतमद्यात् । त
त्प्रयोगाद्वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठतीतिसमा
नंपर्वेण ॥

अर्थ—भिलायोंको शुद्ध करकेकूट डालें

फिर एक चिकनी हांडीमें भरै जिसके तले मे तिन चार छोटे छोटे छिद्र हों और उस के ऊपर एक सरवा दक देवै इस हांडी का मुख काली चिकनी मिट्टीसे बन्द कर दे, इस हांडी के नाँचे एक और चिकनी हांडी लगाकर नीचेकी हांडीके मुख और ऊपरकी हांडी के पेंदे को भी चिकनी मिट्टीसे बन्द करदे इन हांडियों को कंठ पर्यन्त पृथ्वीमें गाढ़कर उपलों की आग चारों ओर लगा दे जब ऊपर की हांडीमेंसे रस टपक टपक कर नीचे की हांडीमें आजाय तब उसे निकाल ले । इस रसका आठवां भाग शहत और दुगुना घृत डालकर सेवन करें । इस भल्लातकमधु के सेवन करनेसे पूर्ववत् सौ वर्ष पर्यन्त बुढ़ापा पास नहीं आता है ॥

भल्लातक तैल ॥

भल्लातकतैलपात्रंसपयस्कंमधुकेनकल्के
नाक्षमात्रेणशतपाकंकुर्यात्समानंपूर्वेण ॥

अर्थ—भिलाये का तेल एक आदक लेकर दूध और मुलहठी के साथ साँवार पाक करके अक्षमात्र प्रतिदिन सेवन करें तो पूर्वोक्त रसायनों के समान गुणप्रद होवे

भिलाये के अन्य प्रयोग ।

भल्लातकक्षीरं, भल्लातकस्रांद्रं, भल्लातकतैलमेवंगुडभल्लातकं, भल्लातकयूपोभ
ल्लातकसर्पिर्भल्लातकपल्लं, भल्लातक
सक्तवोभल्लातकलवणम्भल्लातकनर्पण
मिति भल्लातकविधानमुक्तंभवतीति ॥

अर्थ—भल्लातकक्षीर, भल्लातकमधु, भल्लातकतैल और इसीतरह गुडभल्लातक, भल्लातकयूप, भल्लातकसर्पि, भल्लातकपल्ल, भल्लातक

तकसक्तु, भक्ष्यतकलवण, और भक्ष्यतक
तर्पण येदस प्रकार की रसायन होती हैं ॥

द्वितीय पादका उपसंहार ।

भवतिचात्र । भल्लातकानितीक्ष्णानि
पाकीन्यग्रिसमानिच । भवन्त्यमृतकल्पा
निप्रयुक्तानियथाविधि ॥ एतेदशविधा
स्त्वेषांप्रयोगाःपरिकीर्तिताः । रोगप्रकृति
सात्म्यज्ञस्तान्प्रयोगान्प्रयोजयेत् ॥ क-
फजोनसरोगोऽस्तिनविवन्धोस्तिकश्चन।
यन्नभल्लातकंहन्यात्शीघ्रमेधाशिवर्धनम्
प्राणकामाःपुराजीर्णाश्च्यवनाद्यामहर्षयः
रसायनैः शिवरेतैर्वभूवुरमितायुषः ॥
ज्ञानन्तपोब्रह्मचर्यमध्यात्मध्यानमेवचादी-
र्घायुषोयथाकामंसंभृत्यत्रिदिवंगताःतस्मा-
दायुःप्रकर्षार्थमप्राणकामैःसुखार्थिभिः । र-
सायनत्रिभिःसंव्योविधिवत्सुसमाहितैः ॥

अर्थ—भिलाये अग्नि के समान तीक्ष्ण
और पाचक होते हैं यदि यथारीति से
इनका प्रयोग किया जाय तो ये अमृत के
समान गुणदायक हैं ॥ भिलाये के ये दस
प्रयोग वर्णन किये गये हैं । रोग प्रकृति
और सात्म्य के अनुसार इनका प्रयोग
करे । कोई ऐसा कफज और विवन्ध रोग
नहीं है जो भिलाये से दूर न होता हो,
प्राचीनकाल में जीने की इच्छा करने वाले
वृद्ध प्यवनादिक महर्षियों ने इन कल्याण-
कारक रसायनों का सेवन किया था और
दायिष्ठ्य हीगये थे । इन महर्षियों ने अमित
ज्ञान, तप, ब्रह्मचर्य, अध्यात्मज्ञान, ध्यान और
दीर्घायु प्राप्त करके अन्तमें स्वर्गलाभ किया

था- अतएव जो कोई प्राणकामी और सुखार्थी
अपनी आयुको बढ़ाना चाहे उसे उचितहै कि
भ्यानपूर्वक विधिवत् रसायनों का सेवन करे ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन

रसायनानांसंयोगाःसिद्धाभूतहितपिणा
निर्दिष्टाः प्राणकामीयेसप्तदशमहर्षिणोति

अर्थ—प्राणियों में हित रखनेवाले भग-
वान् पुनर्वसु ने रसायनों के ये सत्रह प्रयोग
इस प्राणकामीयाध्याय में वर्णन किये हैं ।
प्राणकामीयोनाम द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

—=):* X *(=—

तृतीयः पादः

अथातःकरप्रचितीयरसायनपादंव्या-
ख्यास्यामइतिहरमाहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम करप्रचितयि नामक तृतीय
पादकी व्याख्या करते हैं ॥

आमलकायसरसायन ॥

करप्रचितानांयथोक्तगुणानामामलकानां
मुदृतास्थनांशुष्कचूर्णितानांपुनःमाघेफा-
ल्युनेवामासोत्रिःसप्तकृत्वःस्वरसपरिपी-
तानांपुनःशुष्कचूर्णांकृतानामाढकमेकंग्रा-
हयेत् ॥ अथजीवनीयानांबृंहणीयानांस्त-
न्यजननानांशुक्लवर्दनानांवयःस्थायनानांप-
रिवैरचनशताश्रितोयोक्तानामौषधानां
चन्दनाशुर्धवतिनिशखदिरशिशपासन
साराणाञ्जाशुशोश्छन्तानांक्षिप्तानां
पाविभोतकपिप्लीवचाचव्यचित्रकवि-

५॥

म्भसासाधयेत् । तस्मिन्नाढकावशेषेरसे
सुषूतेतान्यामलकचूर्णानिदत्वागोमयाग्नि-
भिर्वैशविदलशरतेजनाग्निभिर्वासाधयेत्
यावदुपनयाद्रसस्यतमनुपदग्धमुपहृत्याय-
सीधुपात्रेष्वस्तीर्यशोषयेत् । सुशुष्कं कृ-
ष्णाजिनस्योपरिदृषदिदलक्ष्णपिष्टमयः
स्थाल्यान्निधापयेत्सम्पक् । तच्चूर्णमयी
श्चूर्णाष्टभागसम्प्रयुक्तं मधुसर्पिर्भ्यामाग्नि-
वल्गमभिसमीक्ष्यप्रयोजयेदिति ॥

अर्थ—पूर्वोक्तगुण सम्पन्न आंवलों को
माघ या फागुनके महीने में हाथसे तोड़कर
लावै और उनकी गुठली निकालकर छोटे २
टुकड़े करले फिर आंवलों के रस की इक्की-
स भावना देकर सुखाकर फिर चूर्ण करके
एक आढ़क तयार कर लेवै । पीछेपइवि-
रेचनशताश्रिततीय अध्याय में कहे हुए
जीवनीय, वृंहणीय, स्तन्यजनन, शुक्रवर्द्धन
और वयःस्थापनगणोक्त औषधों को ले-
कर छोटे २ टुकड़े करके एक पात्रमें
रख ले और उसी में चन्दन, अगर, धौ,
खैर, शीशम और असन इनका सार लेवै
तथा हरड़, वहेड़ा, पीपल, बच, चव्य, चीता
वायविडंग इन सब औषधियों को तोल में
एक आढ़क लेवै और दसगुने जलमें चढ़ा
कर सिद्ध करलेवै जब एक आढ़क रस
शेष रहजाय तबउसे छानकर पूर्वोक्त आं-
वलेका चूर्ण डालकर ऊपले, बांसकी लकड़ी
या सरकंडे की आग से धीरे धीरे पकावै,
जब रस न रहै और जलने भी न पावै इसे
अग्नि पर से उतार कर एक लोह के पात्र में

फैलाकर सुखा लेवै । फिर काले गृह के
चर्म पर एक शिला बिछाकर इसे चारीक
पीसकर एक लोहेके पात्रमें भरकर रख
देवै । इस चूर्णमें अष्टमांश लोह चूर्णमिला-
कर घी और शहत के साथ अग्निबल
के अनुसार प्रतिदिन सेवन करै ।

अमलकायसरसायनकेगुण ।

एतद्रसायनं पूर्ववसिष्टः कश्यपोऽद्विराः ।
जमदग्निर्भरद्वाजोभृगुरन्ये चतद्विधाः । प्रयु-
ज्यप्रयतामुक्ताः श्रमव्याधिजराभयात्तथा
वदिच्छन्तपस्तेषु तत्प्रभावान्महाबलाः ॥
तपसाब्रह्मचर्येण ध्यानेन प्रशमेन च । रसा-
यनविधानेन कालयुक्तेन चायुषा ॥ स्थि-
तामर्हयः पूर्वनिदिकिञ्चिद्रसायनम् । ग्राम्या
णामन्यकार्याणां सिद्धिश्च प्रयतात्मनाम् ॥
इदं रसायनञ्च ब्रह्माचार्यसिद्धसिद्धम् ॥

जराव्याधिप्रशमनं बुद्धीन्द्रियबलप्रदम् ॥

अर्थ—बहुत पुराने समय में इसरसायन
को बशिष्ठ, काश्यप, अंगिरा, जमदग्नि,
भरद्वाज, भृगु तथा अन्यान्य वैसेही बहुत
से ऋषियों ने नियमित रीति से सेवन
किया था, इस के सेवन करने से वे, श्रम
व्याधि, जरा और अन्य रोगों से मुक्त
होकर महाबली होगये थे और इसके प्रभाव
से स्वेच्छापूर्वक तप करते रहे । तप, ब्रह्म-
चर्य, ध्यान, शान्ति और रसायन प्रयोगों के
द्वारा जो आयु की वृद्धि होती है उसपर कुछ
प्रभुत्व नहीं होता है पहिले महर्षियों ने कोई
रसायन सेवन नहीं कीथी । ग्राम्य, धर्म,
अन्यकार्य तथा अत्रितेन्द्रियतामें भी अतुल्य

होने से उनकी सिद्धि नहीं होसकती है। यह सहस्रवार्षिकी रसायन ब्रह्माने बनाई है इस के सेवन करने से बुढ़ापा और रोग शान्त होजातेहैं तथा बुद्धिबल और इन्द्रियबल बढ़ताहै।

केवल आमलकरसायन ।

संवत्सरंपयोऽष्टतिर्गवांमध्येवसेत्सदा । सा
वितीमनसाध्यायनृवृद्धाचारीजितेन्द्रियः॥

संवत्सरान्तेपौर्णमासीवापाफाल्गुणीतथा॥

अहोपवासीशुद्धश्चमविश्यामलकीवनम् ॥

वृहत्फलाढ्यमारुह्यद्रुमंशाखागतंफलम् ॥

गृहीत्वापाणिनातिष्ठेज्जपनृवृद्धामृतंक्षणम् ॥

तदाहवश्यममृतंयसत्यामलकंक्षणम् ।

शर्करामधुकल्पानिस्नेहवन्तिमृदूनिच ॥

भवन्त्यमृतसंयोगात्तानिन्यावन्तिभक्षयेत् ॥

जीवेद्दुर्पसहस्राणितावन्त्यागतयौवनः ॥

सौहित्यमपांगत्वातुभवत्यमरसन्निभः ॥

स्वयंचास्योपतिष्ठन्तिश्रीर्वेदावाक्यरूपिणी॥

अर्थ—एक वर्ष पर्यन्त केवल दूध पीकर गौओंके बीच में रहै, मनमें सावित्रीका ध्यान करता हुआ ब्रह्मचर्य तथा जितेन्द्रिय व्रत धारण करे। जब इस तरह एक वर्ष व्यतीत होजाय तब एक दिन निराहार रहकर स्नानादि से पवित्र होकर पौष, माघ या फाल्गुनको पूर्णमासी के दिन आंवले के वन में घुसजाय और एक बड़े आंवले के वृक्षपर जो फलों से लदा हो चढ़जाय और डालों से एक फल को हाथ से तोड़ कर ब्रह्मामृत मंत्र का जाप करे, इस जाप के करने से नाक्षत्र आंवले के फल में अमृत का संचार होगा और उस आंवले में शर्करायुक्त मधुर

स्वाद होजायगा तथा वह सिग्ध और मृदु भी होगा, उसी समय आंवले को खाळे। इस के सेवन करने से युवावस्थाही में सहस्रवर्ष पर्यन्त जीवैगा उस समय इन फलों को पेट भरकर खालेने से देवताओं के सदृश कांति होती है और लक्ष्मी तथा सरस्वती स्वयं उस के पास आकर वास करेंगी।

लोह रसायन ।

त्रिफलायारसेमृत्वेगवांक्षारचलावणे । क्र-

मेणचेहुदीक्षारोकिंशुकक्षारएवच ॥ ती-

क्ष्णायसस्यपत्राणिवन्दिवर्णानिसाधयेत् ।

चतुरङ्गुलदीर्घाणिसमोत्सेधतनूनिच ॥

ज्ञात्वातान्यज्जनानिभानिमृक्षमूर्च्छानिकारये

त् । तानिचूर्णानिमधुनारसेनामलकस्यच ॥

युक्तानिलेहवत्कुम्भेस्थितानिघृतभाविता ।

संवत्सरानिधेयानियवपल्लेतदेवच ॥

दद्यादालोडनमासेसर्वत्रालोडयन्बुधः ॥

संवत्सरात्ययेतस्यप्रयोगोमधुसर्पिपा ॥

प्रातःप्रातर्वलापेक्षीसात्मायज्जीर्णेचभोजन-

म् । एषएवचलोहानांप्रयोगःसम्प्रकीर्तितः

अनेनेवविधानेनहेम्नश्चरजतस्यच ॥

आयुःप्रकर्षकृत्सिद्धःप्रयोगःसर्वरोगनुत् ।

नाभिघातर्नचातर्कैर्जरयानचमृत्युना ॥

अधृष्यःस्याद्गजप्राणःसदाचातिवलेन्द्रियः

धीमान्वयशस्वीवाविसद्विधुतधारिमहाबलः

भवेत्समाप्प्रयुज्जानोनरोलौहरसायनम् ।

अर्थ—कांतिसार लोह के चारअंगुल लम्बे चौड़े बहुत पतले पत्र बनवाकर अग्नि में सुरखासुरख गरमकर करके क्रम से त्रिफला के काथ, गोमूत्र, नमकक्षार, गोदीक्षार, पला-

शङ्खार में भिजोवै, जब अंजनके समान रंग होजाय तब महीन पिसवा डाले । इस चूर्ण को शहत और आंवले के रस में सानकर लोहवत् करके घी के चिकने घड़े में भरकर जोके ढेरमें बरस दिनतक दवा रखें, प्रतिमास इस घड़े को निकाल कर कुम्भस्थ द्रव्यों को हिलाता रहै, बरस दिनके व्यतीत होने पर शहत और घी के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल बल के अनुसार इसकी मात्राका सेवन करे ! औषधके पचने पर सात्व्य भोजनकरे।

यह लौहरसायन का प्रयोग वर्णन किया गया है, इसीतरह सुवर्ण रसायन और रूप रसायन की भी विधि है । यह प्रयोग आयुवर्द्धक, सिद्ध और रोगनाशक है । इस प्रयोग के सेवन से चोट, रोग, बुढ़ापा और मृत्यु, कुछ असरनहीं करसक्ते हैं ! उस के प्राण हार्थीके समान दृढ़ हो जातेहैं । उस की इन्द्रियाँ अत्यन्त बलवान् होजाती हैं वह पुरुष धामान्, यशस्वी, वाक्सिद्ध, श्रुतधारी और महाबली होजाता है । इस लौहरसायन का प्रयोग एक वर्ष पर्यन्त करने से फलप्रद होता है ॥

ऐन्द्रिरसायन ।

ऐन्द्रिमत्स्याक्षिकोब्राह्मविचाब्राह्मसुवर्चला
पिप्पल्येलवर्णहेमशंखपुष्पीविषहृष्टतम् ।
एवान्निषवकान्भागान्हेमसर्पिर्विपैर्विना ॥
द्वौयवौतत्रेहैभ्रस्तुतिलन्द्याद्विषस्य च ।
सर्पिषधपलन्द्यात्तदैकध्वंमयोजयेत् ॥
घृतप्रभूतंसर्पाद्रज्जर्णिचान्नंमशस्यते ॥
जराव्याधिमशमनंस्मृतिमेधाकरम्परम् ।

आयुष्यपौष्टिकंवल्यंस्वरवर्णप्रसादनम् ॥
परमोजस्करं चैतत्तासिद्धमेतत्तरसायनम् ।
नैनंमसहतेकृत्यानालक्ष्मीर्नविषवरूक् ॥
शिवत्रंसकुप्टंजठराणिगुल्माः घ्नीहापुराणो
विषमज्वरश्च ॥ मेधास्मृतिज्ञानहराश्च
रोगाः शाम्यन्त्येननातिबलाश्चवाताः ॥

अर्थ... इन्द्रायणकीजड, मछैछी, ब्राह्मी, वच, ब्राह्मसांचोली, पाँपल, नमकये सबदो२ जो भर लेवे, सुवर्ण दो जो, विष, तिलभर, घृत एक पल, इन सबको एकत्र करके सेवन करे ! इस औषध के पचने पर घृतप्लुत मधुमिश्रित भोजन करे ! यह रसायन जरा-नाशक, व्याधिशमनकर्ता, अत्यन्त स्मृतिवर्द्धक, मेधावर्द्धक, आयुवर्द्धक, पुष्टिकर्ता, बलकर, स्वरवर्द्धक, वर्णप्रसादक अत्यन्त ओजस्करहै इस सिद्ध रसायन को सेवन करनेवाले के पास न अलक्ष्मी, न विष और रोग जातेहैं ! इस रसायन के सेवन से शिवत्रकुप्ट, जठररोग गुल्मरोग, घ्नीहा, विषमज्वर, पुरातनज्वर, मेधा-स्मृति-ज्ञाननाशकरोग, तथा बलवान् वातरोग नष्ट होजातेहैं ।

मेध्यरसायन ।

मण्डूकपर्ण्याःस्वरसःप्रयोज्यःक्षीरेणयष्टी
मधुकस्यचूर्णम् ॥ रसोगुह्य्यास्तुसमूल
पुष्प्याःकल्कःप्रयोज्यःखलुशंखपुष्प्याः ।
आयुः प्रदान्यामयनाशनानिबलाग्निव
र्णस्वरवर्द्धनानि ॥ मेध्यानिचैतानिरसा
यनानि मेध्याविशेषेणचशंखपुष्पी ।

अर्थ—दूधके साथ मण्डूकपर्णी का रस वा मुलहटीका चूर्ण, वा गिलोयका रस

वा शूलपुष्पी की जड़ और पुष्पका कल्क सेवन करने से आयु बढ़ती है, रोग नष्ट होजाते हैं, बल अग्नि, वर्ण और स्वर बढ़ते हैं । ये चारों रसायन मेधावर्द्धक हैं । इनमें से शूलपुष्पी अधिक मेधावर्द्धक है ।

पीपलरसायन ।

पञ्चपदसप्तदश वापिप्पलीर्मधुसर्पिपा ॥
रसायनगुणान्वेषीसमामेकांप्रयोजयेत् ।
तिस्रस्तिस्रस्तुपूर्वाह्णभुक्त्वाग्नेभोजनस्यच
पिप्पल्यः किंशुकक्षारभावितामृतभर्जिताः ।
प्रयोज्यामधुसर्पिभ्यांरसायनगुणैपिणा
जेतुज्ञासंक्षयंशोषंश्वासांहिकाङ्गलामयान् ।
अर्शासिग्रहणीदोषंपांडुतांविषमज्वरम् ।
वैस्वर्यपीनसंशोफं गुल्मवातवलासकम् ॥

अर्थ—जो रसायन के सदृश गुण चाहते हैं उन्हें उचित है कि प्रतिदिन पांच, छः सात, वा दश पीपल घृत और शहतके साथ एक वर्ष पर्यन्त सेवन करें । अथवा पीपलोंको ढाकके खारकी भावना देकर घृत में भूनेलें और भोजन करने से पहिले प्रतिदिन दुपहरसे पूर्व शहत में मिलाकर तीन पीपल खाय तो खांसी, क्षय, शोष, श्वास, हिचकी, गलेकेरोग, अर्श, ग्रहणरोग, पाण्डुरोग, विषमज्वर, विस्वरता, पित्त, शोक, गुल्म, वातरोग, कसरोग येसब नष्ट होजातेहैं वर्द्धमान्पीपल ।

कमवृद्ध्यादशाहानिदशपिप्पलिकंदिनम्
वर्द्धयेत्तपयसासार्द्धतथाचापनयेत्पुनः । जी
रोजोर्णचभुज्जीतपट्टिकक्षीरसर्पिपा ॥ पि
प्पलीनांसहस्रस्ययोगोऽपरंरसायनम् ।

पिष्टास्तायलिभिः सेव्याः शृतामध्यबलेनैरः ।
शीतीकृताहस्वबलयोज्यादोषामयान्प्रति
दशपिप्पलिकः श्रेष्ठोमध्यमः पद्मकीर्तितः ।
वृंहणंस्वर्यमायुष्यं प्लीहोदरविनाशनम् ॥
प्रयोगोयस्त्रिपर्यन्तः सकनीयान्सचाबलैः
वयसः स्थापनंमध्यं पिप्पलीनारसायनम् ॥

अर्थ—प्रतिदिन दश दश पीपल बढाता हुआ दुग्धके साथ सेवन करें इसी तरह फिर घटाता हुआ लेजाय यह दश दिनका प्रयोग है औषध के पचनेपर दूध भात का भोजन करें । यह सहस्र पीपलों का प्रयोग रसायन है । बलवान् पुरुष इन सब को पीसकर सेवन करें, मध्यबलवाला पीपलों का काथ पान करें, ह्रस्वबलवाला पीपलों का शीत कपाय सेवन करें, इस तरह दोष और रोग के अनुसार इसका सेवन करें, यह छः की मध्यम और तीनकी निम्न है यह दुर्बल पुरुषों के लिये अच्छी है । वर्द्धमान् पीपल का सेवन वृंहणकर्षो स्वरवर्द्धक, शीहानाशक, उदररोगनाशक वयःस्थापनकर्ता और मेध्य है ।

त्रिफला रसायन

जरणान्तेऽभयामेकांप्राग्भुक्तेदेविभीतके
भुक्त्वातुमधुसर्पिभ्यांश्चत्वार्यामलकानि
चाप्रयोजयेत्समामेकां त्रिफलायारसायनम्
जीवेद्वर्षशतं पूर्णमजरोग्याधिरेवच ॥

अर्थ—प्रथम दिनका आहार पचने पर ही प्रातः काल एक हरड खाड़े, तदुपरान्त भोजन करने से पहले दो बहेड़े खाळे,

भोजन करनेके पश्चात् शहत और घीके साथ चार आंवले खाले, इसतरह एकवर्ष पर्यन्त इस त्रिफला रसायनका सेवन करतारहे तौ अजर और व्याधिरहित होकर सौवर्षपर्यन्त जीता रहै ।

दूसरी त्रिफला रसायन ।

त्रैफलेनायसीपत्रीकल्केनालेपयेन्नवाम् ॥
तमहोरात्रिकलेपं पिवेत्क्षौद्रोदकाप्लुतम्
प्रभूतस्नेहमशनं जीर्णं तत्र प्रशस्यते ॥ अज
रोऽरुक्षमाभ्यासाज्जीवेत्तस्य समाश्रितम् ॥

अर्थ—त्रिफला को घोटकर लुगदी बनाकर एक नवीन लोहेके पात्रपर लेप कर दिया करै और एकरातादिन तक उसी पर रहने दे दूसरे दिन उतारकर शहत और जड़के साथ सेवन करै । औषधके पचने पर घृतप्लुत आहार करै इसतरह वरसदिन तक इस रसायन के सेवन करनेसे सौ वर्ष पर्यन्त अजर और अरोग रहकर जीतारहेगा ।

तीसरी त्रिफला रसायन ।

मधुकेन तु गाक्षीर्यापिप्ल्याक्षौद्रसर्पिणा ॥
त्रिफलासितयाचापियुक्तासिद्धं रसायनम् ॥

अर्थ—मुलहठी वा वंशलोचन वा पीपलवा शहत और घृतके साथ भी त्रिफलाका सेवन करना रसायन है अथवा मिश्री के साथ त्रिफला की फकी लैवै ॥

चौथी त्रिफला रसायन

सर्वलोहे सुवर्णेन वचयामधुसर्पिणा ॥ वि
ह्वलिपिप्लयीभ्यां च त्रिफलालवणेन च ।
संवत्सरमयोगेण मेधास्मृतिवल्प्रदा ॥ भ-
वत्यापुष्यदाधन्याजरारोगानेवर्हणी ।

अर्थ—सब प्रकारके लोहोंके साथ वच के साथ, शहत घीके साथ, वायविडग पीपल के साथ अथवा लवण के साथ एक वर्ष तक त्रिफला का सेवन करना मेधावर्द्धक, स्मृति-कारक, बलप्रद, आयुवर्द्धक धन्य और जरा-रोगनाशक होता है ।

शिलाजतु प्रयोग ।

अनम्लश्च कपायश्च कटुपाकः शिलाजतु ।
नात्युष्णशीतधातुभ्यः चतुर्भ्यस्तस्य सम्भवः ॥
हेमन्श्च रजतात्तन्नाद्वरकृष्णायसादपि ॥
रसायनं तद्विधिभिस्तद्वृष्यन्तश्च रोगनुत् ॥
वातपित्तकफघ्नश्च निर्युद्हेस्तत्प्रभावितम् ॥
वीर्योत्कर्षपरं याति सर्वैरेकैकशोऽपि वा ।
प्रक्षिप्तोद्धृतमप्येन पुनस्तत्प्रक्षिपेद्रसे ॥
कोष्णे सप्ताहमेतेन विधिना तस्य भावना ॥
पूर्वोक्तेन विधानेन लोहेऽश्चूर्णीकृतैः सह ॥
तत्पीतं पयसा दद्याद्दीर्घमायुः सुखान्वितम् ।
जराव्याधिप्रशमनं देहदाढ्यकरं परम् ॥
मेधास्मृतिकरं बल्यं क्षीराशीतप्रयोजयेत् ।
प्रयोगः सप्तसप्ताहास्तथैकथसप्तकः ॥

अर्थ—शिलाजीत अनम्ल, कपाय, कटुपाकी और शीतलतारहित होता है ॥ यह सौचा रूपा, तांबा और लोहा इन चार धातुओं से उत्पन्न होता है । इसमें से लोहज शिलाजतु उत्तम होता है : इसका विधिपूर्वक सेवन करनेसे यह रसायन, वृष्य और रोगनाशक है । वात पित्तकफनाशक द्रव्यों की इसे भावना देनेसे यह उत्तम वीर्यत्पादक होजाता है । इन तीनों प्रकार के कांथोंको मिलकर वा

अलग अलग कुछ २ उष्णकायकी शिला-
जीतको सात दिवस तक भावना दें। यह
इसको भावना देनेकी विधि है। फिर इसको
पीसकर सब प्रकारके छोह चूर्णोंके साथ मि-
लाकर दूधके साथ पान करे तो दीर्घायु और
मुख मिळे ! यह शिलाजीत जराब्याधिनाशक
देहको अत्यन्त दृढकारक मेधावर्द्धक स्मृति-
कारक और धन्य है। इस पर दूधका अनु-
पान करे। इसके प्रयोगकी अवाधि सात सप्ताह
तीन सप्ताह, और एक सप्ताह भी है।

शिलाजतुकी मात्रा ।

निर्दिष्टसिद्धिस्तस्यपरोमध्योवरस्तथा ।
पलमर्द्धपलंकर्पोमात्रातस्यत्रिधामता ॥

अर्थ—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट ये तीन
प्रकार की मात्रा शिलाजीत की हैं यथाएक
पलकी उत्तम आधेपलकी मध्यम और एक
कर्पकी निकृष्ट ।

शिलाजतुके जातिभेद ।

जातेर्विशेषं सन्निधितस्यवक्ष्याम्यतः परम्
हेमाद्याः सूर्यसन्तप्ताः स्रवन्तिगिरिधातवः ।

जत्वाभमृदुमृत्स्ताभयन्मलंतच्छिलाजतु

अर्थ—अब हम शिलाजतुकी भिन्न २ जा-
तियों का विधिपूर्वक वर्णन करते हैं। सूर्य
के तात्रतापसे सुवर्णादिक धातु जो पहाड़ों
से चुचा निकलती हैं उनमें लाखके सदृश
कोमल मृत्तिकाकी आभा के समान जो मैल
होताहै उसे शिलाजतु कहते हैं।

सुवर्णजशिलाजतुके लक्षण ।

मधुरश्चसत्तित्तश्चजपापुष्पानिभक्ष्यः ।

विपाकेकटुशीतश्चसुवर्णस्यनिस्रवः ॥

अर्थ—स्वादमें मधुर कुछ तीखापन लिये
जपापुष्पके समान कान्तियुक्त, कटुपाकी और
शीत लक्षणोंसे युक्त सुवर्णजन्यशिलाजतुहोताहै।

रूप्यजशिलाजतु के लक्षण ।

रूप्यस्यकटुःश्वेतः शीतःस्वादुविपच्यते ।

अर्थ—कटु, श्वेतवर्ण, शीतल और पाक
में मधुर शिलाजतु रूप्यज होता है।

ताम्रजशिलाजतु के लक्षण ।

ताम्रस्यर्वाहकण्ठाभस्तित्तोष्णःकटुपच्यते

अर्थ—मयूरके कंठके समान, तित्त, उष्ण
और कटुपाकी शिलाजतु ताम्रज होताहै।

लौहज शिलाजतुके गुण ।

यस्तुग्गुल्काभासास्तित्तकोलवणान्वितः ।

कटुर्विपाकेशीतश्चसर्वश्रेष्ठःसचायसः ॥

गोमूत्रगन्धयःसर्वसर्वकर्मसुयोगिकाः ।

रसायनप्रयोगेषुपश्चिमस्तुविशिष्यते ॥

अर्थ—गुग्गुलके समान कान्तिवाला, तित्त
लवणरसयुक्त, कटुपाकी शीतल और गोमूत्र
की सी गन्धवाला शिलाजतु लौहज होताहै।

यह सबमें अच्छा होता है। सब प्रकार के
शिलाजीत सब कामोंमें प्रयोग किये जाते हैं
परन्तु रसायन प्रयोगमें लौहज सर्वोत्कृष्टहोताहै।

शिलाजीत का गुण ।

यथाक्रमंवातपित्तेश्लेष्मपित्तकफेत्त्रिषु ।

विशेषतःप्रशस्यन्तेमलाहेमादिधातुजाः ।

अर्थ—सुवर्णज शिलाजीत वातपित्त को दूर
करता है, इसी तरह रूप्यजकफपित्तको ताम्र
ज कुष्ठको और लौहज सन्निपात को दूर करताहै।

शिलाजीत पर पथ्यापथ्य ।

शिलाजतुप्रयोगेषुविदाहीनिगुरुणिच

वर्जयेत्सर्वकालं नु कुलं तथान्परिवर्जयेत् ॥
 तेह्यत्यन्तविरुद्धत्वादश्मनीभेदनाः परम् ।
 लोके दृष्टास्ततस्तेषां प्रयोगं प्रनिविध्यते ॥
 पर्यासि शृङ्गानिरसाः स्यूपाः तोयं समूत्रम्
 विविधाः कषायाः आलोडनार्थं त्रिरिजस्य
 शस्तास्ते ते प्रयोज्याः प्रसमीक्ष्य कार्यम् ॥
 न सोऽस्ति रोगो भुवि साध्यरूपः शिलाह-
 यं यन्न जयेत्प्रसह्य ॥ तत्कालयोगैर्विधिभिः
 प्रयुक्तं स्वस्थस्य चोर्जा विपुला ददाति ॥

अर्थ—शिलाजीत सेवन करने वाला विदाही
 और गुरु पदार्थोंको त्याग कर देवे कुलथी
 का सर्वथा त्याग कर देवे ये शिलाजीत के
 अत्यन्त विरुद्ध हैं और विशेष करके पथरका
 भेदन करनेवाली है यह बात लौकिक प्रसिद्ध
 है इसलिये कुलथी का प्रयोग निषेध किया
 है । दूध शुक्त, मांसरस, मांसयूप, जल, गोमूत्र
 तथा अन्य कषायोंमेंसे किसी के साथ रोगके
 अनुसार शिलाजीत का प्रयोग किया जाता
 है । पृथ्वीमें कोई ऐसा साध्य रोग नहीं है जो
 शिलाजीतसे अच्छा न हो सक्ताहो । काला-
 नुसार विधिवत् प्रयोग किये जाने से स्वस्थ
 पुरुष को भी अत्यन्त बलकारक है ।

तृतीयपादका संक्षिप्तवर्णन

करप्रचितिकेपादे दशपदचमहर्षिणा ।

रसायनानां सिद्धानां संयोगाः समुदाहृताः

अर्थ—इस करप्रचितिक नाम पाद में
 महर्षि पुनर्वसुने सिद्ध रसायनोंके सोलह प्रयो-
 ग वर्णन किये हैं ।

इति करप्रचितिको नाम रसायनपादस्तृतीयः

चतुर्थः पादः ।

अथात आयुर्वेदसमुत्थानोपरसायनपाद-

व्याख्यास्योपमं इति हेस्मोहभंगवानत्रेयः ॥

अर्थ—तदनेन्तर मर्गवान् आत्रेय बोले
 कि अब हम आयुर्वेदीय समुत्थानक नाम च-
 तुर्थ पादकी व्याख्या करते हैं ।

प्राचीन इतिहास ।

ऋषयः खलुकदाचिच्छालीनायायावरा
 श्रगम्यापध्याहारः सन्तः साम्पग्निका
 मन्दचेष्टाश्च नातिकल्याणाश्च प्रायेण बभूवुः
 ते सर्वासां मितिकर्तव्यता नाम समर्थाः सन्तो
 ग्राम्यवासकृतमात्पदोपमत्वा पूर्वा निवास-
 मपगतग्राम्यदोपमत्वा शिवं पुण्यमुदारं मेध्य
 मगम्य मसुकृतिभिर्गङ्गाप्रभवममरगन्धर्वय-
 क्षकिन्नरानुचरितभनेकरत्ननिचयमचि-
 न्त्वा द्रुतमभावं ब्रह्मपिसिद्धचारणानुचरि
 तं दिव्यतीर्थैः पथि प्रभावमतिशरण्या हिमव-
 न्तममराधिपतिगुप्तजग्मुः भृग्वह्निरोऽत्रि-
 वशिष्टकश्यपागस्त्यपुलस्त्यवामदेवासित
 गौतमप्रभृतयो महर्षयः । तानिन्द्रः सहस्र
 दृगमरगुरुवरोऽब्रवीत् । स्वागतं ब्रह्मविदां
 ज्ञानतपोधनानां ब्रह्मर्षीणामस्ति । ननु
 चोग्लानिरप्रभावत्वं वैश्वर्यं वैवर्ण्यञ्च ग्राम्य
 वासकृतमसुखमसुखानुबन्धञ्च ग्राम्योहि
 वासोमूलमशस्तान्तत्कृतं पुण्यकृद्भिर-
 नुग्रहः प्रजानां स्वशरीरमरक्षिभिः कालश्चा
 यमायुर्वेदोपदेशस्य ब्रह्मर्षीणामात्मनः प्रजा
 नाञ्चानुग्रहार्थमायुर्वेदमश्विनो महर्षे

प्रयच्छतां ॥

अर्थ—किसी समय ऐसा हुआ कि विनीत
 स्वभाव और यज्ञशील ऋषिगण ग्राम्य औ-
 पध और आहारके सेवन से प्रायः मन्दचेष्टि-
 त और उपायरहित होगये तथा अपने क-

सर्व्य कामोक्ते करनेमें भी असमर्थ होगये । तब वे विचार करने लगे कि यह हमारे गाँवोंमें बसने के दोषका कारण है और यह निश्चय कर लिया कि पूर्व निवासही ग्राम्य दोषोंसे रहित है इस हेतु से वे कल्याणमय पुण्य, उदार, पवित्र, पापियों से अग्रम्य, गंगाका उत्पत्तिस्थान देवता, गन्धर्व, यक्ष और किन्नरों से सेवित, नानाप्रकारके रत्नों से युक्त, अचिन्त्य अद्भुत प्रभावशाली, ब्रह्मर्षि सिद्ध चारणोंसे सेवित, दिव्यतार्थ और औषधोंका प्रभवस्थान, अतिशरण्य (शरण लैने के योग्य) और इन्द्रसे रक्षित हिमालयपर गये । इन ऋषियोंमें भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, और असित गीतम आदि बहुतसे ऋषिये । सहस्राक्ष अमरेश्वर उन ऋषियों से कहने लगे कि हे ब्रह्मवित् ! हे ज्ञानधन ! हे तपो धन ! हे ब्रह्मर्षियो ! आपका आगमनशुभ है हे ऋषियों ! गाँवके रहनेसे आपलोगों के मुखपर ग्लानि, प्रभावहीनता, मन्दभाग्यता, विवर्णता, सुखहीनता तथा दुःखजनित चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते हैं । ग्राम्य वासही सब दुर्जों का मूल है । आपलोगों ने अपने पुण्य स्वभावसे प्रजाके हितके लिये अपने शरीर का कुछ विचार न करके ग्रामोंमें बसना स्वीकार किया । यही आयुर्वेदके उपदेशका समय है, इस आयुर्वेदको ऋषिगण और अपनी प्रजाके अनुग्रहके लिये अश्विनाकुमारोंने मुझे सिखाया था ।

आयुर्वेदोत्पात्तिक्रम ।

प्रजापतिरश्विभ्यां, प्रजापतयेब्रह्मा, प्रजा-

नामल्पमायुर्जराव्याधिवहुलममुखममुखांनुबन्धं, अल्पत्वादल्पतपोदमनियमदानाध्ययनसञ्चयंमत्वापुण्यतममायुःप्रकर्षकरंजराव्याधिप्रशमनमूर्जस्करममृतंशिवंशरण्यमुदात्तंभवन्तोमत्तःश्रोतुमर्हत्युपधारयितुंमकाशयितुंअमजानुग्रहार्थंमार्गप्रह्वचमैत्रीक्षारुण्यमात्मनश्चानुत्तमपुण्यमुदारं ब्राह्ममक्षयंकर्मैति । तच्छ्रुत्वाविबुधपतिवचनमृषयःसर्वेएवामरवरमृगिभस्तुष्टुबुःप्रहृष्टास्तद्वचनमभिननन्दुश्चेति । अथेन्द्रः तदायुर्वेदामृतमृषिभ्यःसंक्रम्योवाचेतत्सर्वमनुप्रेयमयञ्चशिवकालोरसायनानांदिव्याश्चौषधयोहिमवतप्रभवाःप्राप्तव्याः ॥

अर्थ—इसी आयुर्वेदका उपदेश प्रजापतिने अश्विनाकुमारोंको किया था । इसी आयुर्वेदका उपदेश ब्राह्मने प्रजाओंको जराव्याधिप्रस्त, अल्पायु, असुख, अमुखानुबन्धी, अशुभकर्मकर्त्ता देखकर तथा अल्पायु होनेसे अल्पतप, इन्द्रियदमन, नियम, दान, अध्ययनकी ओर निरुत्साहित देखकर प्रजापति दक्षको उपदेश दिया था कि जिससे ये उपाधियां शान्त होवें । यह आयुर्वेद पुण्यतम, आयुर्वर्द्धक जराव्याधिनाशक, बलकारक, अमृतोपम, कल्याणकारक, शरण्य और उदात्त है । इस आयुर्वेदको मुझे सुनिये धारण कीजिये और प्रजा के अनुग्रहके लिये इसका प्रकाश कीजिये क्योंकि ब्रह्मही ऋषियोंका आश्रितस्थान है, वही मैत्री है, मैत्रीही कारण है । आत्मा का कारण्यही उत्कृष्ट और उदार पुण्य है वही पुण्य ब्राह्म और अक्षय कर्म है इन्द्रके

वचनको मुनकर सम्पूर्ण ऋषि ऋग्वेदोक्त मंत्रोत्त इन्द्रकी प्रशंसाकरने लगे और प्रसन्न होकर उसकी बातको सराहने लगे । तदनन्तर इन्द्रने आयुर्वेदाष्टतकी व्याख्या ऋषियोंसे की और कहा कि ये सब कर्म अनुष्ठानके योग्य हैं, रसायन बनानेका यही उत्तम काल है क्योंकि हिमालय पर उत्पन्न होनेवाली दिव्य औषधियां भी मौजूद हैं जो इस समय पूर्णवीर्य हैं ।

इन्द्रोक्त रसायन

तद्यथा ऐन्द्रीब्राह्मीपयस्याक्षीरपुष्पीश्रावणीमहाश्रावणीशितावरीविदारीजीवन्तीपुनर्नवानागबलास्थिरावचाच्छत्रातिच्छत्रामेदामहामेद्राजीवनीयाश्चान्याः पयसाप्रयुक्ताः । पण्मासात्परमायुर्वयश्चतरुणमनामयत्वं स्वरवर्णसम्पदमुपचर्यमेधां स्मृतिमुत्तमबलमिष्टाश्चापरान्भावानावहन्तिसिद्धाः । इन्द्रोक्तं रसायनम् ॥

अर्थ—इन्द्रायण, ब्राह्मी, काकोली, दुद्धी श्रावणी, महाश्रावणी, शितावर, विदाकरीन्द, जीवन्ती, सांठ, नागबला, शालिपर्णी, वच, छत्रा, अतिछत्रा, मेदा, महामेदा, तथा अन्यान्य जीवनीय औषधोंको छः महीने तक दुग्धके साथ सेवन करे तो दीर्घायु, तरुणावस्था, निरोगता, स्वर और वर्णकी स्वच्छता पुर्या, मेधा, स्मृति, उत्तम बल, तथा और और भी इच्छित फलोंकी प्राप्ति होती है । यह इन्द्रोक्त रसायन है ॥

ब्रह्मसुवर्चलादि औषधियोंके लक्षण

ब्रह्मसुवर्चलानामौषधिर्याक्षीरापुष्क

रसदृशपत्रा आदित्यपर्णीनामौषधिर्याक्षीर्य कान्तेतिविशायते सुवर्णक्षीरासूर्यमण्डलाकारपुष्पीच । नारीनामौषधिरश्वलेति विशायते या पुनरजसदृशपत्रा । काष्ठमोधानामौषधिर्गोधाकारा सर्पानामौषधिः सर्पाकारा । सोमनामौषधिराजपञ्चदशपर्णसोमइव हीयते वर्धते च । पद्मानामौषधिपद्माकारजरापद्मरक्तापद्मगन्धा । अजानामौषधिः शृङ्गीतिविशायते । नीलानामौषधिस्तु नीलक्षीरानीलपुष्पालताप्रतानबहुला ।

अर्थ—एक ब्रह्मसुवर्चला औषध होती है जिसे हिन्दी में ब्रह्मसाचौली कहते हैं, इसका दूसरा नाम हिरण्यक्षीरा है, इसके पत्ते कमलके सदृश होते हैं । एक आदित्यपर्णी होती है उसे सूर्यकान्ता कहते हैं । इसका दूध सुवर्णके समान पीला और फूल सूर्यमण्डल के आकार के सदृश होता है । एक नारी नामकी औषध होती है इसको अश्वबला कहते हैं, इसके पत्ते बकरे के समान होते हैं । एक काष्ठमोधा औषध होती है इसका आकार गोधाके सदृश होता है, सर्पा नामकी औषधी होती है इसका आकार सर्पका सा होता है । एक सोम औषध होती है इसे सोमलता भी कहते हैं यह औषधियोंकी राजा है, इसमें पन्द्रह पत्ते होते हैं, यह चन्द्रमा की तरह घटती बढ़ती है अर्थात् शुक्लपक्ष में चन्द्रमाकी कलाके साथ एक एक पत्ता बढ़ता जाता है और कृष्णपक्ष में चन्द्रमाके घटने के साथही एक एक पत्ता घटता चला जाता है (इसका विशेष वर्णन सुश्रुत, सीहता

में लिखा है, एक पद्म नाम की औषधि है इसका आकार पद्म के समान होता है यह पद्म के सदृश लाल तथा पद्म के समानही गंधयुक्त होती है । एक अजा नामकी औषधी होती है इसे अजशृंगी कहते हैं । एत नीला औषधी होती है इसका दूध और फूल नीले होते हैं इसमें लताप्रतान बहुत होते हैं ।

पूर्वोक्त औषधियोंकी सेवनविधि ।

इत्यासामष्टानामौषधीनां यांयामेवौषधिलभेत तस्यास्तस्याः स्वरसस्य सौहित्यत्वात् स्नेहभावितायामार्द्रपलाशद्रोण्यां सापिधानायां दिग्वासाः शयीता तन्न प्रलीयते पण्मासे न पुनः पुनः सम्भवति तस्याजम्पयः प्रत्यवस्थापनं पण्मासेन देवतानुकारी भवति । वयोवर्णस्वराकृतिवत् प्रभाभिः । स्वयंचास्य सर्ववाचोगतानि शादुर्भवन्ति । दिव्यं चास्य चक्षुः श्रोत्रं भवति । गतिर्योजनसहस्रं दशवर्षसहस्राण्यायुरनुपद्रवं चेति ॥

अर्थ—इन आठ औषधियोंमें से जो मिलसके उसका पेट भरकर पान करले और तेल से चुपड़ाहुई ठकनेवालों एक ढाकका द्रोणों में नम्र होकर सो जाय इसतरह छः मास में उसका पुनर्जन्म होजाता है । इसको बकरी के दूधका अनुपान करावे । छः महीनेमें वह मनुष्य वय वर्ण, स्वर आकृति, बल और प्रभा इन कर के देवताओं के सदृश होजाता है । भूत बातोंके विषय में स्फूर्ति होता है, इसके आंख और कान दिव्य होजाते हैं इसको सहस्र योजनकी गति और उपद्रवराहित दस सहस्र वर्षको आयु होजाता है ।

भवति चात्र ।

दिव्यानामौषधीनां यः प्रभावः स भवति द्विधः शक्यः सोऽदुमशक्यः तनुसोऽदुमकृतात्मभिः । औषधीनां प्रभावेण तिष्ठतांस्वे च वर्त्मनि । भवतान्निखिलं श्रेयः सर्वमेवोपपत्स्यते ॥ वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च प्रयतैर्नियतात्मभिः । शक्या औषधयो ह्येताः सेवितुं विषयाभिजाः तास्तु ह्येव गुणस्तेषां मध्यमेन च कर्मणा । मृदुवीर्यतरास्तासां वीर्यश्रेयः स एव तु ॥ पर्येष्टुन्ता प्रयोक्तुं वा येऽसमर्थाः सुखार्थिनः रसायनविधिस्तेषां मयः यः प्रशस्यते ॥

अर्थ—इन दिव्य औषधियोंका जो प्रभाव हो उसको आपसरीकेही सहसक्त हैं और कोई आजितेन्द्रिय उनको नहीं सहसक्त है इन औषधियोंके प्रभावसे अपने अपने मार्गोंमें स्थित होकर आप सम्पूर्ण कस्याणोंको प्राप्त कर सकेंगे । प्रयत्नवान् और जितेन्द्रिय वानप्रस्थाश्रमी और गृहस्थी इन रसायन औषधोंको सहन कर सकेंगे यदि वे उनके देशकी उत्पन्न होंगी क्योंकि ये सब औषधियां क्षेत्रगुण से मृदुवीर्य होती हैं, इनकी क्रिया मध्यम होती है, परन्तु सेवनकी विधि एकही है ।

जो सुखामिलायी इन औषधोंके सेवन करने वा द्रुढनेमें असमर्थ हैं वे नाँचे लिखी हुई विधि से सेवन करें ।

इन्द्रोक्तब्राह्मरसायन ।

वल्यानाञ्जीवनीयानां वृंहणीयाश्च यादश वयसः स्थापनानाञ्च खदरस्यासनस्य च । खर्जूरानां मधूकानां मुस्तानां मुत्पलस्य च । मृद्रीकानां विडङ्गानां विचायाः चित्रकस्य च ॥

शतावर्षाः पयस्यायाः पिप्पल्याजोद्वकस्य-
च । ऋद्धथानागवलापादचहरद्रिपाध्व
स्पच । त्रिफलाकण्टकायोंश्चविदायाश्च
न्दनस्यतु । इक्षूणांशरमूलानांश्रीपण्या
स्तिनिशस्यच ॥ रसाः गृथकृप्यकृशाद्याः
पलाशक्षारएवच । एषांपलोन्वितान्भागान्
न्ययोगव्यचर्तुगुणम् ॥ द्वेपात्रेतिलतैलस्यद्वे
चगव्यस्यसर्पिः । तत्साध्यंसर्वमेकत्रमु
सिद्धंस्नेहमुद्धरेत् ॥ तत्रामलकचूर्णाना
माढकंशतभावितम् । स्वरसेनैवदातव्यं
क्षौद्रस्पाभिनवस्यच । शर्कराचूर्णपात्र
अमस्यमेकंमदापयेत् । तुगाक्षीर्याः सापि
पल्याः स्थाप्यसंमूर्च्छितंचतत् । शुचौक्षे
मार्तिकेकुम्भेपासायैवृतभाविते ॥ मात्राम-
ग्निसमांतस्यततऊर्ध्वम्प्रयोजयेत् ॥ हेम
ताम्रमवालानामयसः स्फटिकस्यच । सु-
क्तावैद्यैश्शखानांचूर्णानांरजतस्यच ॥ प्र-
क्षिप्यपोडशीमात्रांविहायायासमैथुनम्
जीर्णेजीर्णेचमुद्धीतपट्टिकक्षीरसर्पिपा ॥
सर्वरोगप्रशमनं वृष्यमायुष्यमुत्तमम् । स-
त्वस्मृतिशरीराग्निबुद्धीन्द्रियबलप्रदम् ।
परमर्जस्करंचैववर्णस्वरकरंतथा । विषा
लक्ष्मीप्रशमनंसर्ववाचेगतप्रदम् ॥ सिद्धार्थ
ताञ्चाभिनवंवयश्चप्रजाप्रियत्वञ्चयश्च
लोके ॥ प्रयोज्यमिच्छद्भिरिंदियथावद्र
सायनं ब्राह्ममुदारवीर्यम् ॥

अर्थ—यल्य, जीवनीय, वृहणीय, वयः-
ध्यापन, इन गणोंकी दश दश औषधें त-
था खैर, असन, खजूर, महुआ, मोथा, उ-
पल, दाल, बायावेडंग, वच, चीता, सिता-

वर, काकोली, धीपल, जोंगक, ऋद्धि, ना-
गवला, हलदी, धौ, त्रिफला, कटेरी, विदा-
रीकंद, चन्दन, इक्षुरस, शरमूलरस, श्रीपणी-
रस, तिनिश और पलाशक्षार ये सब एक
एक पल लेवै इन सब औषधियों से चौगुना
गौका दूध दोपात्र (आड़क) तिलका तैल,
दोपात्र गौका धी इन सबको मिलाकर पका-
वै जब अच्छी तरह सिद्ध होजाय तब चि-
कनाई के भागको अलग निकाल लेवै, इस
में आंवलेके रससे सौ बार भावना दियाहुआ
आंवलेका चूर्ण एक आढक डाल देवै, न-
याशहत एक आढक, शर्करा एक आढक,
वंशलोचन और पीपल एक प्रस्थ डालकर
सबको मिलालेवै, फिर पन्द्रह दिनतक इसे
एक चिकनी घी की हांडीमें भरकर धरेदे
तनुपरान्त अप्रियलके अनुसार इसकी मात्रा
का प्रयोग करै । औषधकी मात्रासे सौलहवां
हिस्मा सुवर्ण, तांबा, मृगा, लोहा, स्फटिक
मोती, वैदूर्य, शंख और रूपे का चूर्ण मि-
लावै । औषधके सेनवकालमें परिश्रम और
मैथुनका परित्याग करदेवै । औषधके पचने
पर दूध घी मिलाकर चावलों का भात
खाय । यह रसायन सम्पूर्ण रोगोंकी नाश
करनेवाली, वृष्य और उत्तम आयुवर्द्धक है
सत्व स्मृति, शरीर, अग्नि, बुद्धि, और इन्द्रि-
यों में बलवर्द्धक है, यह अत्यन्त ऊर्जाकर,
वर्णप्रसादक, स्वरवर्द्धक, विष अलक्ष्मीनाशक
तथा वचन को सिद्ध करने वाला है इसरसा-
यनके सेवन करनेसे मनोवांछित कार्योंकी
सिद्धि, नवीन वय, संततिप्रियत्व और लोक

में यश होता है । जो इन सब बातोंकी इच्छा करनेवाला है उसे उचित है कि वह इस उदाख्यैय ब्राह्मरसायन को सेवन करे ॥

समर्थानामरोगाणान्धीमत्तान्नियंतात्मनां कुटीप्रवेशः क्षमिणां परिच्छदयतां हितः । अतोऽन्यथा तु ये तेषां सौर्यमारुतकोविधिः ॥

ताभ्यां श्रेष्ठतरः पूर्वो विधिः स तु सुदुष्करः । रसायनविधिभ्रंशाज्जायेरन्यथाधयो यदि यथास्वमौपधन्तेपां कार्यमुक्त्वा रसायनम्

अर्थ—सामर्थ्यवान्, निरोगी, बुद्धिमान् जितेन्द्रिय, क्षमावान् और परिच्छदवान् (जिन के पास ओढ़ने पहरनेका सामान है) पुरुषोंके लिये कुटीप्रवेशिक रसायन बहुत अच्छी होती है । और जो ऊपरकहे हुये लक्षणोंसे विपरीत लक्षणवाले हैं उनको सौर्यमारुतिक विधि अच्छी है, परन्तु इनमें पहिली उत्तम और साध्य है । रसायन विधि में गड़बड़ होजानेसे यदि रोग उत्पन्न होजाय तो रसायन सेवनको बन्दकरके प्रथम उनरोगोंकी विधिपूर्वक चिकित्सा करे ।

विनारसायनरसायनवत्फल ॥

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तमयमैशुनात् ॥

अहिंसकमनायासम्प्रशान्तं प्रियवादिनम्

याज्यशौचपरंधीरं दानानित्यंतपस्विनम् ।

देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धानेतरतम् ।

आनृशंस्यपरन्तित्यंतित्यंकरुणवेदिनम् ॥

समजागरणं स्वप्नित्यं क्षीरघृताशिनम् ॥

देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिशमनहृत्कृतम् ॥ श-

स्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ।

उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्म

नां धर्मशास्त्रपरं विद्यान्तरं नित्यरसायनम् ॥

अर्थ—सत्यवादी, अक्रोधी, मद्य और मैथुनका सेवन न करनेवाला, अहिंसक, अपरिश्रमी, शान्त, प्रियवादी, यजनकर्त्ता, पवित्रतापरायण, धीर, दानकर्त्ता, तपस्वी, गां, देवता, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु, वृद्ध, इनकी सेवामें परायण, निष्ठुरतरहित, दयापरायण, उचित फलमें जगने और सोनेवाला, नित्यप्रति दूध, घी, खानेवाला, देश और कालके प्रमाणका जाननेवाला युक्तिज्ञ, अनहंकारी, सदाचार परायण, एक धर्मावलम्बी, अच्छात्मज्ञानवेत्ता, वृद्धोंका सेवक, आस्तिक, और जितेन्द्रियों का उपासक, धर्मशास्त्रपरायण पुरुष यद्यपि रसायन सेवन न करे नौमी नित्यरसायन सेवन का फल प्राप्त करता है गुणैरतैः समुदितैः प्रयुङ्क्तेयोरसायनम् ।

रसायनगुणान्सर्वान्यथोक्तान्सममश्नुते

अर्थ—जो पूर्वोक्त सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न रसायनका सेवन करता है, वह यथोक्त रसायन गुणों को प्राप्त करता है ।

रसायन के योग्यायोग्य पुरुष ।

यथास्थूलमनिर्वाहदोषान् शरीरमानसा

रसायनगुणैर्जन्तुर्युज्यते न कदाचन ॥ यं

गाह्यायुः प्रकर्षार्थं जरारोगनिर्वहणाः । मन

शरीरशुद्धानां सिध्यन्ति प्रयतात्मनाम् ।

तदेतन्न भवेद्वाच्यं सर्वमेव हतात्मसु । अर

जैभ्यो द्विजातिभ्यः शूद्राण्येव पुनास्ति च

अर्थ—शारीर और मानसिक दोषों

विना दूरकिये जो पुरुष रसायन सेवन

करे उसको रसायनका कुछ फल नहीं मिल

है । आयुवर्द्धक और जरा व्याधिनाशक

योग वर्णन किये गये हैं वे मानसिक,

पूर्वक अश्विनीकुमारोंका पूजन करतेहैं ।

तौ क्यामृत्यु, व्याधि और जराप्रस्त तथा सदाही दुखी मनुष्योंको अपने सुखके लिये वैद्योंका पूजन अनुचितहै ॥

वैद्यका गुरुवत् पूजन ।

शीलवान्मतिमान्युक्तोद्विजातिःशास्त्रपारगः ॥ प्राणिभिर्गुरुवत्पूज्य प्राणाचार्यः साहिस्मृतः ।

अर्थ—मनुष्यों को शीलवान्, मतिमान् द्विजाति, शास्त्रपारग और प्राणाचार्य वैद्यकी गुरुवत्, पूजा करनी चाहिये ।

विद्यासमाप्तौभियजस्वृतीयाजातिरुच्यते अञ्जुतेवैद्यशब्दं दिनवैद्यःपूर्वजन्मना ।

विद्यासमाप्तौब्राह्मणवासत्त्वमार्पणथापिवां ॥

ध्रुवमावशतिज्ञानात्तस्माद्वैद्योत्रिजःस्मृतः ॥

नाभिध्यायेन्नचाक्रोशंदहितैर्नसमाचरेत् ॥

प्राणाचार्यबुधःकश्चिद्विद्वन्नायुरनित्वरम् ॥

अर्थ—भियज् द्विजाति होताहै परन्तु वैद्यक विद्याको समाप्तकर लेनेपर त्रिजाति होजाता है, तबही वह वैद्य कहलाताहै । पूर्वजन्म

द्वारा यह वैद्य नहीं कहलाताहै मनुष्य विद्या

की समाप्तिमें ब्राह्मण वा आर्षसत्त्वमें निश्चय

प्रवेश करताहै और फिर वैद्यकका ज्ञान प्राप्त

करने पर त्रिजकहलाताहै ।

जो मनुष्य दीर्घजीवनकी इच्छा करता है

उसे उचितहै कि वैद्यको न गाली दे न फोसे

न उसके साथ कोई अहित कार्य करे ।

रोगी और वैद्यका धर्म

चिकित्सितस्तुसंश्रुत्ययोवासंश्रुत्यमानवः

नोपाकरोतिर्वैद्यायनास्तितस्येहानिष्कृतिः

भिपगप्यातुरान्सर्वान्स्वमुतानिवयत्नवान्

आवाधेभ्योहिसंरक्षेदिच्छन्मर्ममनुत्तमम् ॥

अर्थ यह प्रतिज्ञा करने पर कि मैं अमुक

उपकार करूंगा और आराम होने पर वैद्यके

लिये यदि वह उपकार न किया जाय तौ

उसका कल्याण नहींहै और वैद्यकोभी उचित

है कि सम्पूर्ण रोगियोंको अपने पुत्रके समान

देने और उत्तमोत्तम धर्मप्राप्तिकी इच्छा करता

हुआ रोगों से उसकी रक्षा करे ।

धर्मार्थचार्धकामार्धमायुर्वेदोमहर्षिभिः ॥

प्रकाशितोधर्मपरैरिच्छद्भिःस्थानमक्षरम्

नात्तमार्थनापिकामार्थमथभूतदयांप्रति ॥

वर्ततेयःचिकित्सायांससर्वमातिवर्तते ।

अर्थ—महर्षियोंने धर्म अर्थ और कामकी

प्राप्तिके लिये आयुर्वेदका प्रकाश किया क्योंवि

वे धर्मपरायणथे और उनकी इच्छा मोक्ष धाम

प्राप्त करनेकी थी । जो बिना अपनी किसी

अर्थकामकी स्वार्थ सिद्धिके केवल प्राणियों पर

दयाकर के चिकित्सा में प्रवृत्त होने हैं वे

सर्वोत्कृष्ट होते हैं ।

जीविकार्थ चिकित्सा निषेध ।

कुर्वतेयेतुष्ट्यर्थंचिकित्सापण्याविक्रयम् ॥

तेहिवाकाश्चनराशिपांसुराशिमुपासते ।

अर्थ—जो जीविकाके लिये चिकित्सा को

वेचते है वे सुवर्णके ढेरको छोड़कर धूलके

ढेरको समेटते हैं ।

वैद्यको यशप्राप्तिका उपाय ।

दारुणैः कृत्वा तानागदवैषसः ॥

चिकित्सेवस्यताप्यासाजं चिकित्सेवस्यताप्यासाजं

धर्मार्थसदृशस्तस्यदातानेहोपलभ्यते ॥

नहिजीवितदानादिदानमन्यद्विशिष्यते।
परोभूतदयार्थमिति मत्वाचिकित्सया ॥

वर्ततेयःससिद्धार्थःसुखमत्यन्तमश्नुते ।

अर्थ—मनुष्य दारुण रोगोंसे पीडित हो-
कर यमालयकी ओर आकर्षित होतेहैं । जो
यमपाशोंका छेदन करके जीवदान देताहै उ-
सके समान धर्मार्थपरायण और दाता इस
संसारमें दूसरा नहींहै । जीवदानके अतिरिक्त
और कोई विशेष दान नहींहै । प्राणियोंमें
दया करनेसे अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं
है इस बात को जानकर जो चिकित्सामें
प्रवृत्त होतेहैं उन्हींका मनोरथ सिद्ध होताहै
और वेही सुख भोगते हैं ।

इस पादका संक्षिप्त वर्णन ।

आयुर्वेदसमुत्थानंदिव्यौपधिविधिःशुभः।

अमृताल्पान्तरगुणंसिद्धंरन्तरसायनम् ॥

सिद्धेभ्योब्रह्मचारिभ्योयदुवाचामरेश्वरः

आयुर्वेदसमुत्थानेतत्सर्वसम्पकाशितम् ।

अर्थ—इस आयुर्वेदकी उत्पत्ति, दिव्य
सायनोंके प्रयोग तथा जो कुछ इन्द्रने ऋ-
षि महारभओंसे कहाहै वह सब इस पाद में
वर्णन किया गया है ।

आयुर्वेदसमुत्थानयोरसायनपादःचतुर्थः।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचिता
यां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सि-
तस्थाने रसायने विकल्पनो नाम प्रथमोऽध्यायः ।

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथातःसंयोगशरमूलीयंवाजीकरणपादं
व्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले

रमूलीय वाजीकरणपादकी व्याख्याकरेंगे ।

वाजीकरणके गुण ।

वाजीकरणमन्विच्छेत्पुरुषो नित्यमात्मवा-
न् । तदायत्तौहिधर्मार्थमीतिश्चयत्तपवच

पुत्रस्यायतनंहेतद्गुणाश्चैतमुताश्रयाः ।

वाजीकरणमग्न्यूश्चक्षेत्रस्त्रीयामहर्षिणी ॥

अर्थ—जितेन्द्रिय पुरुषको नित्यही वाजी-
करण करना चाहिये, क्योंकि धर्म, अर्थ,
प्रीति और यशसे वाजीकरणकेही आश्रित
हैं । पुत्र भी वाजीकरण केही आश्रित है
और पूर्वोक्त धर्मार्थदि चारों गुण पुत्रके आ-
श्रितहैं और रोम रोममें हर्ष उत्पन्न करनेवा-
ली स्त्री वाजीकरणका सर्वोत्तम क्षेत्र है अ-
र्थात् वाजीकरण सेवनका फल स्त्रीमें प्रकट होताहै

इष्टाद्येकेकशोऽप्यर्थाःपरंमीतिकराःस्मृताः

किंपुनःस्त्रीशरीरेयेसंघातेनव्यवस्थिताः।

संघातोहीन्द्रियार्थानांस्त्रीपुनान्यत्रावस्थिते।

स्याश्रयोहीन्द्रियार्थोयःसप्रीतिजननोऽ

धिकः ॥ स्त्रीपुत्रीतिविशेषेणस्त्रीपवपत्यं

तिष्ठितम् । धर्माथोस्त्रीपुलक्ष्मीश्चस्त्रीपु

लोकाःप्रीतिष्ठिताः ॥

अर्थ—रूपरसादि इन्द्रियोंके पांचों विषय
अत्यन्त प्रीतिकारक वर्णन कियेगयेहैं, और
जब ये पांचों विषय एक स्त्रीमें एकत्र हैं तो
स्त्री अत्यन्तप्रीतिकी खानहै।स्त्रियोंके अतिरिक्त
ये विषय और किसी जगह एकत्रित नहींहैं।
जो इन्द्रियार्थ स्त्रीमें आश्रितहै वह अत्यन्त प्राप्ति-
वर्द्धकहै । विशेषकरके स्त्रियों मेंही प्रीति प्राप्ति
ष्ठित और स्त्रियोंमेंही सन्तान प्राप्तिष्ठितहै, धर्म
और अर्थ स्त्रियोंमेंही प्राप्तिष्ठितहै, इसी तरह लक्ष्मी

प्रयोजयेत् ॥ एषदृष्यः परोयोगो वृहणो व-
लवर्द्धनः ॥ अनेनाश्वइवोदीर्णो लिङ्गम-
र्षयते स्त्रियाम् ॥

अर्थ—शरमूल, इक्षुमूल, काण्डेक्षु, इक्षु-
वालिका, सितावर, क्षीरकाकोली, विदारी-
गंध, कटेरी, जीवन्ती, जीवक, मेदा, वीर
(वाराहीकन्द) ऋषभक, खरैटी, ऋद्धि,
गोखरू, रास्ना, केंच, सांठ, इन सबको
तीन तीन पल लेवै । एक आढक मापकलाय
इन सबको मिलाकर एक द्रोण जलमें चढा-
दे और चौथाई शेष रहने पर उतार लेवै
फिर इसमें मुलहटी, दाख, अंजीर, पीपल,
केंच, महुआ, खिजूर, सितावर ये सब पीस
कर मिलादेवै फिर विदारीकंदका रस, आंव-
लेका रस, ईखका रस और घी ये चारों
एक २ आढक और एक द्रोण दूध चढा
कर पकावै पकते पकते जब घी वचरहै त-
ब उसे छानले फिर उसमें शर्करा और वं-
शलोचन एक एक प्रस्थ, पीपल चारपल,
काली मिरच एक पल, दालचीनी आधे
पल, इलायची आधेपल, केसर आधेपल
और शहत दो कुडव डालकर सबको मिला
लेवै । इसमें से एक एक पलकी गोली
बनाकर-अग्निबलके अनुसार प्रयोग करै ।
यह योग अत्यन्त वृष्य, वृहणकर्त्ता और
बलवर्द्धक होताहै । इस प्रयोगके सेवन क-
रनेसे अश्ववत् खीगमन में प्रवृत्त होवै ।

वाजीकरण घृत ।

मापाणामात्मगुप्ताया वीजानामाढकं नवम्
जीवकर्षभकौ वीरां मेदामृदिं शतावरीम् ।
गंधुकं चाश्वगन्धाश्च सापयेत्कुडवोन्मि-

ताम् ॥ रसेतस्मिन् घृतप्रस्थं गव्यं दशगुणं
पयः । विदारीणां रसप्रस्थं प्रस्थमिधुरं स-
स्यच । दत्त्वा मृद्वग्निना साध्यं सिद्धं सपि-
निधापयेत् । शर्करायास्तु गाक्षीर्याः क्षौद्र-
स्य च पृथक् पृथक् ॥ भागांश्चतुष्पलांस्तत्र
पिप्पल्याश्चावपेत्पलम् ।
पलं पूर्वमतोलीद्वा ततोऽन्नमुपयोजयेत् ॥

यद्दृच्छेदक्षयं शुक्रं शोफं सथोत्तमं वलम् ॥

अर्थ—नये उरद एक आढक, नये केंच
के बीज एक आढक, जीवक, ऋषभक, वारा-
हीकंद, मेदा, सितावर, मुलहटी और असगंध
इन सबको एक एक कुडव लेवै चौगुने जल
में चढाकर चौथाई शेष रहने पर उतारकर
छानले फिर उस में एक प्रस्थ गौका घी,
दसगुना दूध, विदारीकंदका रस एक प्रस्थ,
ईखका रस एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर
मन्दी मन्दी आग पर पकावै, जब घृत शेष
रहजाय तब उसे निकालकर शर्करा, वंशलो-
चन, शहत प्रत्येक चार चार पल, पीपल
एक पल लेकर ऊपर कहेहुए गुटकाकी तरह
एक २ पलका सेवन करै, औषध सेवन के
पश्चात् भोजन करै । इसके सेवन करनेसे
शुक्र अक्षय और पुंजननेन्द्रिय अत्यन्त बलिष्ठ
होजाती है ॥

वाजीकरण पिण्डरस ।

शर्करामापविदलास्तु गाक्षीरीपयो घृतम्
गोधूमचूर्णपष्ठानि सार्पिष्युत्कारिकां पचेत्
तानातिपक्वां मृदितां कौबकुटे मधुरेरसे ॥
सुगन्धे प्रक्षिपेदुष्ण्यथा सान्द्रो भवेद्रसः ।
एषापिण्डरसो दृष्यः पौष्टिको बलवर्द्धनः
अनेनाश्वइवोदीर्णो वलीलिङ्गं समर्पयेत्

शिशितित्तिरिहंसानामेवंपिण्डरसोमतः॥

अर्थ—शर्करा, उरदकी दाढ़ का चून, वंशलोचन, दूध, घी, और गेहूँका चून इन सबको मिलाकर लपसी बनावे। पकाते समय जब कुछ पकजाय तबही इसमें कुनकुटमांसरस डालदेवै और गरममें ही सुगंधित द्रव्य इलायची आदि डालकर धीरेधीरे चलाता रहै यहांतक कि वह गाढापड़जाय। यह पिण्डरस अत्यन्त वृष्य पुष्टिकर्ता और बलवर्द्धक होता है, इसके सेवन से घोड़ेके समान रतिकरने में इच्छा होती है। मोर, तीतर और हंसों का पिण्डरस भी इसीतरह बनता है।

बलकारकरस।

घृतमापान्सवस्ताण्डानसाधयेन्माहिपे-
रसे। भर्जयेत्तरसंपूतंफलाम्लंनवसर्पिणि॥
ईपत्सलवणंयुक्तंधान्यजीरकनागरैः।

एषवृष्यश्चवर्ष्यश्चवृंहणश्चरसोत्तमः॥

अर्थ—घी, उरद, वकरके अंडकोप इनको भेंसके मांसरसमें पकाकर रसको निकाल लेवै इस रसमें ताजी घी, फलोंकी खटाई, थोडा सा नमक धनियां, जीरा, सोंठ मिलाकर सेवन करै। यह रस वृष्य, बलकर्ता, वृंहणकर्ता और बहुत उत्तम होता है।

दूसरा वृष्यरस।

चटकंस्तित्तरिरसेतित्तिरीनकौकुटेरसे। कुक्कु-
टान्वाहिणरसेहंसेवाहिणमेवच॥ नवसर्पि-
पिसन्तप्तान्फलाम्लान्कारयेद्देसान्। मधुरा-
न्वायथासात्स्यगन्धाव्यान्बलवर्द्धनान्॥

अर्थ—चटकमांसको तीतरके मांसरस में, तीतरके मांसको मुर्गेके मांसरसमें, मुर्गमांसको मोरके मांसरसमें, मोरमांस को हंसके मांसरस

में सिद्ध करके गरम गरम को ताजी घी में छोंककर अनारदाने की खटाई और इलायची आदि मसाले डालकर मिश्रीसे मीठा कर के सेवन करै तौ बलकी वृद्धि होय।

वृष्यमांस।

तृप्तिश्चटकमांसांनान्गत्वायोऽनुपिवेत्यप्य-
नतस्यबलशैथिल्यंस्यान्नशुक्रक्षयोनिशि।

अर्थ—जोपेट भरकर चटकमांस खाकर ऊपरसे दूधपीले रात्रि में उसका बल तथा शुक्र कभी क्षीण न होगा।

वृष्य प्रयोग।

मापयूपेणयोभुक्त्वाघृताढ्यं पाष्टिकौदनम्।
पयःपिवतिरात्रिसंकृत्स्नान्जागर्त्सिवेगवान्
ननास्वपितिरात्रीपुनिस्तब्धेनचशेषशः॥
तप्तःकुक्कुटमांसांनान्गृष्टानान्करेतसि॥ नि-
स्त्राव्यमत्स्याण्डरसंघृष्टं सर्पिर्भिक्षयेत्॥
हंसवाहिणदक्षणांमेवमण्डानिभक्षयेत्॥

अर्थ—मांयूप के साथ घृतप्लुत मांस खाकर उपरसे दूध पीवे वह ऐसा वेगवान् होजाय कि रात्रिभर न सोवै। अथवा मगर के वीर्यमें मुर्गेके मांसको भूनकर तृप्ति पर्यंत सेवन करै तौ शेषको निस्तब्धतासे रात्रिमें नींद न आवै। अथवा मछली के अंडोंके रसको निकालकर घृतमें भूनकर खाय अथवा हंस, मोर या मुर्गेके अंडोंके रसको इसी तरह सेवन करै तौ वाजीकरण होता है।

वाजीकरण सेवनीविधि।

स्रोतःसुशुद्धेज्वमलेशरीरेवृष्यंयदाद्यं हित-
मत्तिकालेवृष्यायेतेनपरमनुष्यः। तद्-
वृंहणश्चैवबलमदश्च। तस्मात्पुराशोध-
नमेवंकार्यंवलानुरूपेनहि वृष्ययोगः॥

सिध्यन्ति देहे मलिने प्रयुक्ताः स्मिष्टमथावास
सिरागयोगाः ॥

अर्थ—शरीरके शुद्ध होनेपर तथा स्रोतः-
समूह के शुद्ध होनेपर यदि वृष्यपदार्थोंका
सेवन किया जाय तो उसके सेवन से मनुष्य
बैलके समान वृष्य हो जाता है और उसही समय
वह वृष्य पदार्थ बृंहणकर्ता और बलवर्द्धक होता
है। इसलिये पदार्थोंके सेवनसे पहिले वमन वि-
चनादिसे शरीरको शुद्ध कर लेना चाहिये बिना
देह की शुद्धिके वृष्य योग निष्फल होते हैं जैसे
मैले वस्त्रको रंगनेसे उसपर रंग नहीं चढ़ता है।

प्रथम पादका संक्षिप्त वर्णन ।

वाजीकरणसामर्थ्यक्षेत्रस्त्रीयस्य चैव या ॥

ये दोषानिरपत्यानां गुणाः पुत्रवताश्च ये ।

उक्तास्ते शरमूलीये पादेषुष्टिवलपदाः ॥

अपञ्चचसंयोगावीर्य्यापत्याविवर्द्धनाः ॥

अर्थ—इस शरमूलीय नामक प्रथम पाद में
वाजीकरणके योग्य स्त्रीको क्षेत्रत्व, जिसको
जो स्त्री वाजीकरण योग्य, निःसन्तान पुरुष
के दोष, सन्तानवाले पुरुषके गुण तथा पुष्टि
और बल बढ़ाने वाले, वीर्योत्पादक तथा सन्ता-
नोत्पादक पन्द्रह प्रयोगोंका वर्णन किया गया है।
चिकित्सितेशरमूलीयो वाजीकरण पादः प्रथमः ॥

द्वितीयपादः ।

अथात आसिक्तक्षीरीयं वाजीकरणपादं

व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवान्नात्रेयः

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि—अब हम आसिक्तक्षीरीय नाम द्वितीय
पादकी व्याख्या करेंगे ।

सन्तानोत्पादक गुटिका ।

आसिक्तक्षीरमापूर्णमधुशुक्लं शुद्धपट्टिकम् ।

यथाहं यत्तु यथाहं यत्तु यथाहं यत्तु

क्षुण्णं विमर्दिते क्षीरे पीडयेत् सुसमाहितः ।

गृहीत्वा तं रसं पूतं गन्धेन पयसा सह । बीजा

नामात्मगुप्ताया धान्यमापरसेन च ॥ बला

याः सर्पपण्योश्च जीवन्त्या जीवकस्य च । ऋ

द्धचर्पभककाकोलीश्वदंष्ट्रामधुकंस्य च ॥ शता

वर्ग्या विदार्याश्च द्राक्षा खजूरयोरपि । संयु-

क्तमात्रया वैद्यः साधयेत्तत्र चावपेत् ॥ तुगा-

क्षीर्या समापाणां शालीनां पट्टिकस्य च ।

गोधूमानाञ्च चूर्णानियैः ससान्द्रीभवेद्रसः

सान्द्रीभूतञ्च तं कुर्यात्प्रभूतमधुशर्करम् ।

गुडिकावदरैस्तुल्यास्ताश्च सर्पिपि साधये

त् ॥ ता यथग्रिमयुज्जानः क्षीरमांसरसाशनः ।

पश्यत्यपत्यं विपुलं वृद्धोऽप्यात्मजमक्षयम् ॥

अर्थ—पूर्णरस, हरे और शुद्ध साठी

चांचलोको दूधमें भिजोवै जब बहुत भी-

ज जाय तब उन्हें खरल करले और दूधमें

घोलकर वस्त्र में छान लेवै । इस रस में

गौका दूध मिलावै । फिर इसमें केंचके

बीज, धनिया, मापरस, खरैटी, मुद्रपर्णी

मापरपर्णी, जीवन्ती, जीवक, ऋद्धि, ऋषभक

काकोली, गोखरू, मुलहठी, सितावर, विदा-

रीकन्द, दाख, खिजूर, इन सबका काथ उ-

समें मिलाकर पका लेवै जब ये पकने पर

आजाय तब वंशलोचन, उरदका चून,

शाठी चांचलका चून, पट्टिक चून, गेहूँका

चून इन को घी में भूनकर उसमें डालदे

और कलड़ीसे चलाता रहै जब तक वह गा-

ढा होजाय, गाढा होनेपर शहत और संकेद

बूरा बहुतसा डालदे, फिर इसकी घेरकी

बराबर गोली बनाकर घी में तल लेवै ।

अपनी अग्निके बलसे, अनुसार इसका से-

वनकर और ऊपर खूब दूध पीवै, खूबमां-
सरस पीवै । इस बाजीकरणके सेवन करने
से बुढ़ापेमें भी दीर्घजीवी सन्तान होती है ।

द्वितीय प्रयोग ।

चटकानांसईसा नांदक्षाणांशिखिनांतथा।
शिशुमारस्यनकस्याभिपक्षुक्राणिसंहेरत्।
गव्यसर्पिर्वराहस्यकुलिङ्गस्यवस।मपि ।
पष्टिकानाञ्चचूर्णानिचूर्णगोधूममेवच ॥
एभिःपूषलिकाःकार्ग्याःशङ्कुलोवाचिका
स्तथा ॥ पूषाधानाश्चविविधाभक्ष्याश्च ।
न्येषृथग्विधाः । एषांप्रयोगाद्भक्ष्याणां
स्त्वधेनापूर्णरेतसा ॥ शेषसावाजिवद्या
तियावदिच्छंस्त्रियोनरः ।

अर्थ—चटक, हंस, मुर्गी, मोर, शिशुमार
और मगरका बोर्य लवे तथा गीका घी
शूकरकी चर्बी, चटककी चर्बी तथा चांनलों
का चून और गेंहूँका चून इनसबको मिला-
कर पूरी, शङ्कुली बाघाटी अथवा और तरह
तरहके भक्ष्य पदार्थ बनालेवै । इनका सेवन
करनेसे शेषेन्द्रिय स्तब्ध और शुकसे भरी
हुई रहती है अथच पुरुष इच्छानुसार स्त्री
गमन करसकता है ।

तीसरा प्रयोग ।

आत्मगुप्ताफलंमापःखर्जूरानिशतावरीम्
शृङ्गाटकानिमृद्गीकांसाधयेत्प्रसृतोन्मितां
क्षीरप्रस्थंजलप्रस्थंप्रतत्प्रस्थावशेषतम् ।
शुद्धेनवाससापूतंयोजयेत्प्रसृतैस्त्रिभिः ।
शर्करायास्तुगादीर्याःसर्पिषोऽभिनवस्य
च॥ तत्पाययेत्सञ्जाद्रपष्टिकान्नश्चभोजये
त्। जरापरीतोऽप्यबलोयोगेनानेनविन्द
ति॥ नरोऽपत्यंमुविपुलंयुवेवचसहृष्याति।

अर्थ—केंचकेवांज, उरद, खिजूर, सितावर-
सिंघाडे और दाख इनसब को एक एक प्र-
सृत (८ तोले) लेवै इनमें एक प्रस्थ दूध
और एक प्रस्थ [६४ तोले] जल डालकर
सिद्ध करै । एक प्रस्थ जल शेष रहने पर
उतारकर छान डाले और इस रसमें शर्क-
रा, वंशलोचन और ताजी घी प्रत्येक तनि तीन
प्रसृत मिलादेवै इस औषध को शहतमें मिलाकर
सेवनकरै चांबलोंका भात खाय, जराप्रस्त आ-
र निर्धूल मनुष्य भी इसके सेवनसे युवाकी त-
रह आल्हादित होकर बहुत सन्तानप्राप्तकरेगा
चौथा प्रयोग

खर्जूरिमस्तकंमापान्पयंर्यांसशतावरीम्
खर्जूरानिमृद्गीकानिमृद्गीकामजडाफलम्
पलोन्मितानिमतिमान्साधयेत्सलिलाढ
के। तेनपादावशेषेणक्षीरप्रस्थंविपाचयेत्।
क्षीरशेषेणतेनाद्यात्पृथग्व्यापष्टिकांदिनम्॥
सशर्करेणसंयोगएववृष्यःपरंस्पृतः ।

अर्थ—खिजूर, उरद, क्षीरकाकोली, सिता-
वर, खिजूर, महुआ, दाख, केंचके वीज
इन सबको एक एक पल लेकर एक आढक
जलमें चढ़ादेवै जब चौथाई रहजाय तब
छानकर इस रसमें एक प्रस्थ दूध पकावै
जब जल जलजाय और दूध शेष रहजाय
तब उसका सेवनकरै । ऊपरसे घृतप्लुत
भातका भोजनकरै भातमें सफेद बूराभी मि-
लालेवै । यह अत्यन्त वृष्य योग है ।

पाँचवां प्रयोग ।

जीवकर्मभक्त्येदांजीवन्तींश्रावणीद्वयम् ॥
खर्जूरंमधुकंद्राक्षांपिप्पलीविश्वभेषजम् ।
शृङ्गाटकींविदारञ्चनवसांपःपयोजलम्

शहत और खांड मिलाकर पानकरै तौ नि-
श्चय सन्तान होय ।

अन्यप्रयोग ।।

त्रिंशत्सुपिष्टाः पिप्पल्यः प्रकुञ्चेतैलसर्पिपोः
भृष्टाः सशर्कराक्षौद्राः क्षीरधारावदोहिताः ।
पीत्वा ययावलञ्चोद्धपष्टिकं क्षीरसर्पिपा ।
भुक्त्वानरात्रिमस्तब्धलिङ्गं पश्यति नाक्षरत्

अर्थ—तीस पीपलें को पीसकर चार तो-
ले घी तेल में भून लेवै, फिर इसमें खांड
और घी मिलाकर एक पात्रमें धरले और
उसी पात्रमें गौ का दूध दोहकर बलके
अनुमार पान करै और ऊपर से दूध, घी
और भातका भोजन करै तो रात्रि भर शोफेन्द्रिय
शिथिल न होगी और स्तम्भता भी होगी ।।

अन्यप्रयोग ।।

श्वदंष्ट्राया विदार्याश्चरसे क्षीरचतुर्गुणे ।
घृताज्यः साधितो वृष्यामोषपाष्टिकपायसः ।।

अर्थ—गोखरूकारस, विदारीकन्दकारस इ-
न दोनोंसे चौगुना दूध लेकर उरद और
सठ्ठीचावलकी खीर बनाकर घी डालकर
भोजनकरै तो यह भी वृष्य है ।।

अन्यप्रयोग ।।

फलानां जीवनीयानां स्निग्धानां रुचिका-
रिणाम् । कुडवश्चूणितानां स्यात्स्वयंगुप्ता
फलस्य च ॥ कुडवश्चैव मापाणां द्वाद्वाच
तिलमुद्गयोः । गोधूमशालिचूर्णानां कुडव कु
डवो भवेत् ॥ सर्पिषः कुडवश्च कस्तुर्ष्वे
क्षीरसंयुतम् । पक्त्वा पूषलिकाः खादेद्द
हः स्युर्यदियाः पितः ॥

अर्थ—स्निग्ध और रुचिकारक जीवनीय
गणोंके द्रव्योंके फलोंका एक कुडवचूर्ण, के

चके बीजोंका चूर्ण एक कुडव, उरद का
चूर्ण दोकुडव, तिलकाचून दोकुडव, मूंगका
चून दोकुडव, मेहकाचून एककुडव, शाली-
चावलों का चून एक कुडव घी, दो कुडव
इन सबको दूधमें मांडकर घीमें उतार लेवै
परन्तु जिसके बहुत स्त्रियां हो वही इसका
प्रयोग करै ।।

अन्यप्रयोग ।।

घृतं शतावरीगर्भं क्षीरे दशगुणे पचेत् । शर्करा-
पिप्पलीक्षौद्रयुक्तं तद्वृष्यमुत्तमम् ॥

अर्थ—घी और सितावरकी गुली को दस
गुने दूध में पकावे फिर इस में खांड, पी-
पल और शहत मिलाकर भोजन करै तौ
वह उत्तम वृष्य प्रयोग होवै ।।

अन्यप्रयोग ।।

कर्पमधूकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमांशिकम् ।
प्रयुक्तैः पयश्चानुनित्यवेगः सना भवेत् ॥

अर्थ—मुलहटाका चूर्ण एककर्प और इसमें
बराबरका घी शहत मिलाकर चाटले ऊपर
से दूध पीले तौ अत्यन्त वेगकी प्राप्तिहोवै ।।

अन्यप्रयोग ।।

घृतक्षीराशनो निर्भीनिर्व्याधिनित्यगोयुवा
सङ्कल्पप्रवणो नित्यनरः स्त्रीपुत्रपायते ॥

अर्थ—यदि दूध और घीका सेवन ऐसा
पुरुष करै जो निर्भय, व्याधिरहित आन्हिक
कर्मका करनेवाला और संकल्प करनेवाला हो
तौ विजारकी तरह स्त्रियोंसे रमण करै ।

अन्यप्रयोग ।।

कृतककृत्याः सिद्धार्थे चान्योऽन्यानुयति-
नः । कलामुवाह्यायेतुल्याः सत्वेन वयसा च
ये ॥ कुलमाहात्म्यदाक्षिण्यशालिशौचस-

मन्विताः । येकामनित्यायेहृष्टायेविशोका
गतव्यथाः ॥ येतुल्यशीलायेमक्तायेमि-
यायेमियम्बदाः । तेनैरः सहविस्रब्धः सुवय
स्यैष्टपायते ।

अर्थ—एकही कर्मके करनेवाले, सिद्ध संकल्प,
अन्योन्यानुवर्त्ती, बाह्यकला तथा सत्व और
वयमें परस्पर तुल्य, सत्कुलोद्भव, प्रशंसनीय,
चतुर, शील सम्पन्न, पवित्रता परायण भोगि-
या, हृष्ट, शोकरहित, गतव्यथ, समान शीलस-
म्पन्न, अन्योन्य प्रेमी, प्रियवक्ता ऐसे समान वय
वाले पुरुषोंके साथ रहनेसेभी मनुष्य वृष्य होताहै।
अन्यप्रयोग ।

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानगन्धमाल्याविभूषणैः
गृहशय्यासनसुखैर्वासोभिरहतैः प्रियैः ।
विहङ्गानांरुतैरिष्टैः स्त्रीणाञ्चाभरणस्वनैः ।
संवाहनैर्वस्त्रीणामिष्टानाञ्चबृपायते ॥

अर्थ—तैलमर्दन, उबटना, स्नान, अतर-
लगाना, फूलमाला धारणकरना, आभूषण
पहरना, सुखदायक घर, सेज, आसनोपर
सौना बैठना, सुन्दर साव्रत हलके मनोनु
कूल वस्त्र धारणकरना, चित्ताकर्षक पक्षियों
के कलरव श्रवणकरना, स्त्रियोंके भूषणोंकी
छनाछन श्रवणकरना, सुन्दर मनोनुकूल
स्त्रियोंसे पगचप्पी करना इन कार्यों से भी
मनुष्य वृष्य होताहै ॥

अन्यप्रयोग ।

मचाद्विरेकाचरिताः सपत्न्याः सलिलाशयाः ।
जात्युत्पलमुगन्धीनिशीतगर्भगृहाणिच ॥
नद्यः फेनोत्तरीयाश्च गिरयो नीलसानवः ।
उन्नतिर्नीलमेघानां रम्यचन्द्रोदयानिशाः ।
वायवः सुखसंस्पर्शाः कुमुदाकारगान्धिनः ।

रतिभोगक्षमाराग्यः सङ्कोचागुरुबलभाः ॥
सुखाः सहायाः परपुष्टयुष्टाः फुल्लवनान्ता
विशदान्नपानाः गान्धर्वशब्दश्च सुगन्धमा
ल्याः सत्त्वं विशालं निरुपद्रवश्च । सिद्धा
र्थताचाभिनवश्च कामः स्त्रीचायुधं सर्वमि-
हात्मजस्या वयो न वंजातमदश्च कालो ह-
र्षस्य योनिः परमानराणाम् ॥

अर्थ—ऐसे जलाशयोपर विहारकरना
जहां खिलेहुए कमलोंपर मृतवाले भैंरे गुं-
जार कर रहे हों, जहां चमेली और कमलकी
सुगन्ध की महक भाररही हो, शीतल घर हों,
जहां झगदार नादियां बहर रही हों, ऐसे पर्वतों
पर विहारकरना जिनके नलिवर्ण के शिखर
अत्यन्त शोभायुक्त हों, काली २ घटा सिरके
ऊपर धिर आई हो, रात्रिमें जब चन्द्रमार्का
शीतलचांदनी छिटक रही हो, जहां कुमोदनियें
के गन्धसे सुगन्धित पवन शरीरको स्पर्श
करता हो, रमणके योग्य जाड़ेकी रात्रियों में,
जहां बड़े वृद्धोंका सकोच न हों, जहां सुखों
त्पादक सम्पूर्ण सामान उपस्थित हो, खिलेहुए
उपवनों में जहां कोकिला कुहुक मार रहे हो,
विशद अन्नपान का सेवन हो, गाने बजाने
की मन्द २ तान कान में प्रवेश कर रही हो
सुगन्धित फूलमाला धारण कर रखे हों,
विशाल और उपद्रव रहित सत्व सेवन, सिद्ध
संकल्पता, नित्य नई अभिलाषाका पूर्ण होना
कामदेवकी शस्त्र रूप स्त्रियोंकी उपस्थिति, नवी
नवय, वसन्त ऋतुये सबवर्तते मनुष्योंको हार्पित
करने वाली हैं ॥

तृतीयपादका संक्षिप्त वर्णन

प्रहर्षयोनयोयोगान्याख्यातादशपञ्च च ।

लीचांबलकाचून, साठीचांबलकाचून, इनमें खांड विदारीकन्द और तालमखाना डालकर दूधमें मांढ कर घीमें टिकडी उतार लेवै, इनको खाकर ऊपरसे दुग्ध पानकरै तौ बहुत ही शीघ्र अत्यन्त वृषताकी प्राप्तिहोती है ॥

अन्य प्रयोग

शर्करायास्तुलैकास्यादेकागव्यस्यसर्पिपः ।
प्रस्थोविदार्य्याः चूर्णस्यपिप्पल्याः प्रस्थएव
च । अर्द्धाढकन्तुगाक्षीर्याः क्षौद्रस्पाभि-
नवस्यच ॥ तत्सर्वमूर्च्छितंतिष्ठेन्मात्तिके
घृतभाजने । मात्रामग्निसमांतस्यप्रातःप्रातः
प्रयोजयेत् ॥ एषवृष्यः परंयोगः बल्यो बृंह
णएवच ।

अर्थ—खांड एकतुला, गौकाधी एक तुला, विदारीकन्द एकप्रस्थ, पीपल एक प्रस्थ, वंशलोचन आधा आढक, नयामधु आधा आढक, इन सबको मिलाकर घी की चिकनी हांडीमें भरदे, अग्निवल् के अनुसार प्रतिदिन प्रातःकाल इसकी मात्रा सेवन करे । यह योग अत्यन्त वृषताकारक, बलकारक और बृंहणकर्त्ता है ॥

अन्य प्रयोग ।

शतावर्याविदार्याश्चतथामापातमगुप्तयोः
श्वदंष्ट्रायाश्चनिष्काथानजल्लेपुपृथक्पृथक्
साधयित्वा घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुणेषुनः ॥
शर्करामधुसंयुक्तमपत्यार्थीप्रयोजयेत् ।

अर्थ—सितावर, विदारीकन्द, उरद, कै-
चके बीज, गोखरू इन सबका पृथक् २
एक २ अंजलिक्वाथ लेवै इनमें एक प्रस्थ
घी और आठगुना जल डालकर पकावै, फि-
र खांड और शहत मिलाकर वह मनुष्य इस

को सेवन करे जिस सन्तान की इच्छा हो।
अन्यप्रयोग ।

घृतपात्रं शतगुणे विदारीं स्वरसेपचेत् ॥ सि-
द्धेषुनः शतगुणे गव्ये पयसि साधयेत् । शर्क-
रायास्तु गाक्षीर्याः क्षौद्रस्येक्षुरसस्यचापि-
प्पल्याः सजडायाश्च भागैः पादां शर्कैर्युत-
म् ॥ गुड़िकाः कारयेद्द्वयोयथास्थूलमुदुम्ब-
रम् ॥ तासां प्रयोगात्पुरुषः कुलिङ्गश्च
हृष्यति ।

अर्थ—एकपात्र घीको सौगुने विदारीकन्द के रसमें पकावै, फिर घृतके शेष रहने पर उसे सौगुने गाँके दूधमें पकावै, फिर जब घी शेषरहजाय तब उसकी चौथाई खांड, वंश-
लोचन, शहत, तालमखाने पीपल और कै-
चके बीज डालकर गूलर के बराबर गोली बनालेवै । इनके सेवन करनेसे मनुष्य चि-
रंटेकी तरह वृष्य हो जाता है ।

अन्य प्रयोग ।

सितोपलापलशतंतदर्द्धनवसर्पिपः क्षौद्रपा-
देन संयुक्तं साधयेज्जलपादिकम् ॥ सान्द्र-
द्रोधूमचूर्णानां पादं स्तीर्णं शिलातले । शु-
चौ श्लक्ष्णे समुत्कीर्य मर्दनं नोपपादयेत् ॥ शु-
द्धा उत्कारिकाः कार्याश्चन्द्रमण्डलसन्निभ
तासां प्रयोगाद्भजवान्नारीः सन्तर्पयेन्नरः ।

अर्थ—खांड सौपल, ताजीघी पचासपल
शहत पच्चीसपल, और जल पच्चीसपल
इनको अग्निपर चढ़ाकर चलातारहै जब गा-
ढापडनेलगै तब २५ पल गेंडूका, चूनमि-
लाकर धीरे २ पकाकर उतारले, फिर एक
स्वच्छ सिलपर डालकर सबको माद ढाँटै,
यह चन्द्रमण्डल के समान उत्कारिका न-

नतीहै इसके सेवनसे मनुष्य हाथी की तरह स्त्रीको प्रसन्न करनेमें समर्थ होता है ।

अन्यप्रयोग ॥

यत्किञ्चिन्मधुरस्निग्धंजीवनं वृंहणं गुरुहर्षणं
मनसश्चैव सन्वतद्रूप्यमुच्यते ॥ द्रव्यैरेवं वि-
धैस्तस्माद्भावितः प्रमदां व्रजेत् । आत्मवे-
गेन चोदीर्णः श्रीगुणैश्च प्रहर्षितः ॥ गत्वा
स्नात्वा पयःपीत्वा रसं चानुशयीतना । त-
था साप्यायते भूयः शुक्रञ्च वलेन च ॥

अर्थ—जो २ पदार्थ मीठे, स्निग्ध, जी-
वनकर्ता, वृंहण, भारी, और मनको हर्ष उ-
त्पन्न करनेवाले हैं वे सब द्रव्य होते हैं इस-
लिये मधुर द्रव्योंका सेवन करके स्त्री गमन
में प्रवृत्त होवै । आत्मवेगसे उदीर्ण होकर वा-
स्त्रीके गुणोंसे प्रहर्षित होकर स्नान करके दुग्ध
वा मांसस पान करके शयन करे तो पूर्व-
वत् बल वीर्यकी वृद्धि होय ॥

शुक्रोपलब्धिकासमय ॥

यथामुकुलपुष्पस्य सुगन्धो नोपलभ्यते ।

लभ्यते तद्विकाशात्तु तथा शुक्रं हि देहिनाम् ॥

अर्थ—जैसे फूलकी कली में यद्यपि सुगन्ध
होती है परवहमाह्नमनही होती वह सुगन्धि फूल
के खिलनेपर ही मिलती है इसी तरह वीर्य यद्यपि
बालकपन में भी होता है परन्तु बिना युवा-
वस्थाके प्राप्त हुए उसकी उपलब्धि नहीं
होसकती है ॥

सम्भोगकाल ।

न त्वेवैषोऽपाद्र्पात्सप्तत्याः परतो न च ।

आयुष्कामो नरस्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥

अतिबालोऽसम्पूर्णसर्वधातुः स्त्रियां व्रजन्

उपतप्येत सप्तसातडागमिव काजलम् ॥

शुष्करूक्षं यथा काष्ठं जन्तुजग्धं विजर्जरम् ।

स्पृष्टमाशु विशीर्येत तथा वृद्धः स्त्रियो व्रजन् ॥

अर्थ—जो मनुष्य दीर्घजीवी होना चाहता
है उसे उचित है कि सोलह वर्षकी अवस्था
से पहिले और सत्तर वर्षकी अवस्थासे पीछे
स्त्री सहवासमें प्रवृत्त न हो । बालकपनमें
सम्पूर्ण धातु अपूर्ण होती है इससे उस अव-
स्थामें स्त्रीसहवास करनेसे उसका वीर्य ऐसे
शुष्क होजाता है जैसे गरमीके कारण थोड़े
जलका सरोवर सूखजाता है ॥ जैसे सूखा रूखा
कीड़ों से खाया हुआ और जर्जरीभूतकाष्ठ
हाथ लगतेही टूट जाता है इसी तरह वृद्ध
पुरुषभी स्त्रीसहवास करनेसे विशीर्ण होजाता है ॥

शुक्रक्षीण के कारण ।

जरया चिन्तया शुक्रं व्याधिभिः कर्म कर्षणात्
क्षयं गच्छत्यनशनात् स्त्रीणाञ्चातिनिपेयणात् ॥

अर्थ—बुढ़ापेसे, चिन्ताप्रसूत होनेसे रोगोंसे
परिश्रमजनक कार्योंके करने से, भोजन न
करनेसे वा स्त्रियोंके अत्यन्त सेवनसे शुक्रक्षी-
ण होजाता है ॥

क्षयाद्भयादविश्रम्भाच्छोकात् श्रीदोषदर्श-
नात् नारीणां भ्रसन्नत्वादभिचारादसेवना-
त् ॥ वृत्तस्यापि स्त्रियोगं नूनं शक्तिरुपजायते
देहसत्त्वबलापेक्षी हर्षः शक्तिश्च हर्षजा ॥

अर्थ—क्षय, भय, अविश्वास, शोक, स्त्री-
दोषदर्शन, स्त्रियोंकी असह्यता, अभिचार-
असेवन इन कर्मोंसे तथा जिस का मन स्त्री
संग से तृप्त होगया हो उसको स्त्रीगमन की
शक्ति उत्पन्न नहीं होती है । क्योंकि हर्ष तो
देह बल और सत्त्वबलके आधेन है और श-
क्ति हर्ष से उत्पन्न होती है ॥

शुक्र का स्थान ।

रसइक्षौयथादधिसर्पितैलान्तिलेयथा ।

सर्वत्रानुगतदेहेशुक्रसंस्पर्शनेतथा ॥ तत्

स्त्रीपुरुषसंयोगेचेष्टासंकल्पपीडनात् ।

शुक्रमच्यवतेस्थानाज्जलमाद्रात्पटादिवा ॥

अर्थ—जैसे ईश्वर रस, दही में घी और तिलों में तेल सर्वत्र रहता है उसीतरह वीर्यभी सर्व देहमें तथा त्वचामें रहता है । वह वीर्य स्त्री पुरुषके संयोग, चेष्टा, संकल्प, पीडनादिसे ऐसे बाहिर निकल आता है जैसे गोले वस्त्रसे जल टपकता है ।

मथ वीर्यं निकलने के हेतु ।

पातर्पात्सरत्वाच्चपैच्छिल्याद्गौरवादपि
अनुपुवत्वात्सौक्ष्म्याच्चद्रुतत्वान्मारुतस्य
च ॥ अष्टाभ्यण्भ्यहेतुभ्यःशुक्रं देहात्मसि
च्यते । चरतोविश्वरूपस्यरूपद्रव्यंयदुच्यते ॥

अर्थ—हर्ष, अभिलाषा, सरलता, पिच्छिलता, गुरुता, द्रवता सूक्ष्मता और वायुके वेग इन आठ कारणोंसे शुक्र देहसे बाहर निकलता है । यह शुक्र विश्वरूपमें चरणशील द्रव्यों की मूर्ति है ॥

फलोपयोगीशुक्र ॥

बहुलंमधुरंस्निग्धंअविस्नेगुरुपिच्छलम् ।

शुक्रं बहुचयच्छुक्रंफलवत्तदसंशयम्

अर्थ—जो वीर्य गाढा, मधुर, स्निग्ध, दुर्गन्धरहित, पिच्छिल, गुरु, शुक्लवर्ण और बहुल होता है वह निश्चयफलवान् होता है ।

बाजीकरण की निरुक्ति ॥

येननारीपुंसामर्ध्यबाजीवल्लभतेनरः ।

अज्ञेच्छाभ्यधिकंयेनबाजीकरणमेवतत् ।

अर्थ—जिससे मनुष्य को स्त्रियों के साथ

सम्भोग करनेकी घोड़े की तरह शक्ति होजाती है और सम्भोग करनेमें अधिक प्रवृत्ति होती है उसहीको बाजीकरण कहते हैं ।

चतुर्थपादकीमूची ।

हेतुर्योगोपदेशस्ययोगाद्वादशचोत्तमाः यत्
पूर्वमैथुनात्सेव्यसेव्यंतन्मैथुनादनु ॥ यदा
नसेव्याः प्रमदा कृत्स्नः शुक्रविधिश्रयः ।

निरुक्तश्चेहनिर्दिष्टपुमान्जातवलादिकम् ॥

अर्थ—दूसरे अध्यायके इस पुमान् जात वलादि नामक चतुर्थपाद में बाजीकरणोपयोगी प्रयोगों के हेतु, बाजीकरणके उत्तम बारह प्रयोग, जो यस्तु मैथुनसे पहिले तथा पीछे सेवन करने की हैं । स्त्री से सम्भोग करनेका काल, सम्पूर्ण शुक्रविधि और बाजीकरण शब्द की निरुक्तिवर्णन की गई है ॥

जातवलादिको नाम चतुर्थपादः

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशधिर

चितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांचिकित्सि

तस्थाने बाजीकरणप्रयोगकथने

नामद्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

—=○)I+I(○=—

अथतृतीयोऽध्यायः

अथातोऽज्वरचिकित्सितं व्याख्यास्याम

इतिहस्माहभगवानात्रेयः

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अतएव हम अज्वर चिकित्सित नाम अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

विज्वरंज्वरसन्देहपर्यच्छत्पुनर्षष्टम् ।

द्विविक्तेशान्तमासीनमग्निवेश कृताञ्जालः

देहेन्द्रियमनस्तापीसर्वरोगाग्रजोबली ॥

ज्वरः प्रधानं रोगाणामुक्तो भगवतापुरा ॥
तस्य प्राणिसपत्नस्य ध्रुवस्य मलयोदये ।
प्रकृतिश्च प्रवृत्तिश्च प्रभावं कारणानि च ॥
पूर्वरूपमधिष्ठानं बलकालात्मलक्षणम् ।
व्यासतो विधिभेदश्च पृथग्भिन्नस्य चाकृ-
तिम् ॥ लिङ्गनामस्य जीर्णस्य सन्निपेधं क्रि-
याक्रमम् । विमुञ्चतः प्रशान्तस्य चिन्हं
यच्च पृथक् पृथक् ॥ ज्वरावशिष्टोरस्यश्च
यावत्कालं यतो यतः । प्रशान्तः कारणैर्वै-
श्वपुनरावर्तते ज्वरः ॥ याद्यापि पुनरावृत्तिं
क्रियाः प्रशमयन्ति तम् । जगद्विद्यार्थतस्त-
र्धं भगवन् ! वक्तुमर्हसि ॥ तदश्वेशस्य
घचो निश्म्य गुरुरब्रवीत् । ज्वराधिकारे
यद्वाच्यन्ततः सौम्य ! निखिलं शृणु ॥

अर्थ—अग्निवेशने हाथ जोड़कर ए-
कान्तमें शान्तभावसे बैठे हुए निरोग पुन-
र्बसुसे ज्वरके विषयमें यह प्रश्न किया कि हे
भगवन् ! आपने पहिले यह कहा था कि “ज्वर
रोगोंमें प्रधान है यह देह इंद्रिय और मनको
सन्तप्त करनेवाला और बली है यह सम्पूर्ण
रोगोंसे प्रथम उत्पन्न हुआ है” इसलिये इस
प्राणोंके नाश करने वाले और जन्म समय और
मरण समयमें अवश्य होनेवाले ज्वरकी प्रकृति
प्रवृत्ति, प्रभाव, कारण, पूर्वरूप, अधिष्ठान, बल,
काल, लक्षण, विस्तारपूर्वक विधिभेद, जुदे २ ज्व-
रकी जुदी २ आकृति, आम और जीर्णज्वर
के लक्षण और चिकित्सा का क्रम, ज्वरके
छोड़नेके तथा शान्त होनेके पृथक् २ लक्षण
ज्वरलक्ष्य पुरुष की जितने दिन और जिस
कारण से रक्षा करनी चाहिये, शान्त हुआ
ज्वरभी जिन कारणोंसे फिर उत्पन्न होजाता

है, जिस चिकित्सा से फिर उत्पन्न हुआ
ज्वर शांत होजाता है, हे भगवन् ! ये सब
आप जगतके हितके लिये मुझसे कहिये ।
अग्निवेशके इस वचनको सुनकर
पुनर्बसु बोले कि हे सौम्य ! ज्वराधिकार में
जो कुछ वर्णनेके योग्य विषय है उसे सुन ॥

ज्वरके पर्यायवाचीनाम ॥
ज्वरो विकारो रोगश्च व्याधिरातङ्क एव च ।
एकार्थनामपर्यायैर्विविधैरभिधीयते ॥

अर्थ—ज्वर, विकार, रोग, व्याधि और
आंतक ये सब एकार्थवाची शब्द ज्वरके पर्याय हैं

ज्वरका कारण ॥

तस्य प्रकृतिरुद्दिष्टा दोषा शरीरमानसाः ।
देहि न न हि निदोषं ज्वरः समुपसंवते ॥ क्ष-
यस्तमो ज्वरः पाप्मा मृत्युश्चोक्तोऽयमात्मजः
पञ्चत्वमत्ययान् नृणां बद्धानां स्वेन कर्मणा ॥
इत्यस्य प्रकृतिः प्रोक्ता प्रवृत्तिस्तु परिग्रहः ।
निदानपूर्वमुद्दिष्टारुद्रकोपाच्च दारुणात् ॥

अर्थ—शारीरिक और मानसिक दोष ज्व-
रकी उत्पातिका कारण है दोषरहित प्राणी
को ज्वर कभी नहीं सताता है । अपने २
कर्मोंसे बद्ध मनुष्योंके मर जानेके निश्चय
से यह आत्मज ज्वर क्षय तम, पाप्मा और
मृत्यु कहलाता है । यह ज्वरकी प्रकृति वर्णन
की गई है, प्रवृत्ति कोही उत्पत्ति कहते हैं ।
यह प्रवृत्ति रुद्र के दारुण कोपसे हुई है यह
बात निदानस्थानमें वर्णन कर चुके हैं ॥

ज्वरोत्पत्तिमें विशेष वर्णन ।

द्वितीये हि युगे सर्वमक्रोधव्रतमास्थितम् ।
दिव्यं सहस्रं वर्षाणाममुराभिदुदुधुः ॥
तपोविघ्नं शमीकर्तुन्तपीविघ्नं महात्मनाम् ॥

पश्यन्समर्थश्चोपेक्षाश्चक्रैरुद्रः प्रजापतिः ॥
 पुनर्माहेश्वरं भागं ध्रुवं दक्षः प्रजापतिः । यज्ञे
 न कल्पयामास प्रोच्यमानः सुरैरपि । ऋ
 चः पशुपतेर्याश्वश्चैव्य आहुतयश्च याः ॥ यज्ञ
 सिद्धिप्रदास्ताभिर्हर्निर्ध्वंस इष्टवान् । अ
 थोत्तीर्णव्रततो देवो बुद्ध्वा दक्षव्यतिक्रमम् ॥
 रुद्रो रौद्रं पुरस्कृत्य भावमात्मविदात्मनः ।
 सृष्ट्वालालाटे च क्षुर्वेदं ग्ध्वातान् सुरान् प्रभुः
 वाणं क्रोधाग्निस्तन्मष्टमृजच्छत्रुनाशनम् ।
 ततो यज्ञः सविध्वस्तो व्यथिताश्च दिवौकसः
 दाहव्यथापरीताश्च भ्रान्ता भूतगणादिशः
 अथेश्वरं देवगणः सहसर्त्तपिभिर्विशुम् ॥ त
 मृग्भिस्तु वन्यावच्छिन्ने भावे शिवः स्थितः
 शिवं शिवाय भूतानां स्थितं ज्ञात्वा कृताञ्ज-
 लिः ॥ क्रोधाग्निरुक्तवान् देवमहं किङ्करवा-
 णिते । तमुवाचेश्वरः क्रोधं ज्वरो लोके भावि-
 प्यसि ॥ जन्मादौ निधने च त्वामपि चा-
 वन्तरेषु च ।

अर्थ—सुनते चले आते हैं कि त्रेतायुग
 में महादेवने दिव्य सहस्रवर्षका अक्रोध व्रत
 अवलम्बन किया था, इस बीचमें असुरोंने
 बड़ा उपद्रव मचाया और महात्माओंके तप
 में बड़ा विघ्न हुआ, अपने अक्रोधव्रत में
 विघ्न पड़नेके कारण समर्थ होकर भी महा-
 देवने उनके विघ्नोंको दूर करनेकी उपेक्षाकी।
 इसी समयमें दक्षप्रजापतिने यज्ञ किया था और
 यद्यपि देवताओंने उसको सचेतभी किया
 तथापि यज्ञमें महादेवका भाग न निकाला
 और यज्ञको सिद्ध करनेवाली जो पशुपति
 संबंधी ऋचा और शैव्य आहुति हैं उनके
 बिनाही यज्ञ किया । जब महादेवका अक्रो-

ध्रुवत समाप्त होगया तब आत्मवित् रुद्रने
 दक्षके व्यतिक्रमको जान कर अपना रौद्र
 भाव प्रकट करके अपने ललाटस्थ तृतीय
 नेत्रको खोलकर प्रथम उन असुरोंको जला-
 दिया और तदनन्तर शत्रुनाशकर्त्ता क्रोधा-
 ग्निसे संतप्तवाण छोड़े उनसे यज्ञ विध्वंस
 होगया सम्पूर्ण देवगण व्यथित हांगये । औ-
 र भूत गण दाह और व्यथासे पीड़ित होकर
 दिशा विदिशाओंमें भागने लगे । इस दशा
 को देखकर सप्तर्षि समेत सम्पूर्ण देवगण
 विभुरूप महादेवकी ऋग्व्याक्योंसे उस समय
 तक स्तुति करते रहे जबतक शिव शान्त भा-
 वमें स्थित न हुए । प्राणियों के कल्याणके
 निमित्त शिवको शान्तभावमें स्थित देखकर
 क्रोधाग्निने हाथ जोड़कर महादेवसे कहा कि
 हे देव ! अब मैं क्या करूँ ! यह सुनकर
 महादेवने क्रोधसे कहा कि तू ज्वररूप होकर
 संसार में विचर जन्मकालमें मरणसमय
 में और बीचमें भी तू उत्पन्न होता रहेगा ॥

ज्वरके प्रभाव ॥

सन्तापः सारुचिस्तृष्णा चाङ्गमर्दो हृदिव्यथा
 ज्वरप्रभावो जन्मादौ निधने च महत्तमः ॥

अर्थ—सन्ताप, अरुचि, तृष्णा, अंगमर्द हृदयमें
 वेदना, ये ज्वरके प्रभाव हैं, तथा जन्म और मरण
 के समयमें अत्यन्त तीव्ररूप से होते हैं ॥

प्रकृतिश्च प्रवृत्तिश्च प्रभावश्च प्रदर्शितः ॥ नि-
 दानकारणान्यष्टौ पूर्वोक्तानि विभागशः ।

अर्थ—ज्वरकी प्रकृति प्रवृत्ति और प्रभाव
 इस तरह वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ के
 निदानस्थानमें ज्वरके आठ कारण भी पृथः-
 क २ कर दिये गये हैं ॥

ज्वरके पूर्वरूप ।

आलस्यं नयने साक्षे जृम्भणं गौरवक्त्रम् ॥

ज्वलनात्तपवाय्वम्बुभक्तिद्वेषावनिश्चितौ ॥

अविपाकास्यवैरस्यं हानिश्च बलवर्णयोः ॥

शीलवैकृतमल्पञ्चज्वरलक्षणमग्रजम् ।

अर्थ—आलस्य, नेत्रोंमें आंसू भर आना, जम्हाई, भारापन, क्लान्ति, कभी अग्नि, घृष वायु और जलका अच्छा लगना और कभी बुरा लगाना, अविपाक, मुखमें बिरसता, बल और वर्णकी हानि तथा स्वभावका कुछ विकृत होजाना ये सब ज्वरके पूर्वरूप हैं ॥

ज्वरका अधिष्ठान ।

केवलं समनस्कश्च ज्वराधिष्ठानमुच्यते ॥

शरीरम्बलकालस्तु निदाने सम्प्रदर्शितः ।

अर्थ—ज्वर का अधिष्ठान मन और शरीर दोनों है । ज्वरप्रस्त होने पर शरीरकी दशा तथा ज्वर के बल और काल ये सब निदानस्थान में दिखाये गये हैं ।

ज्वर के लक्षण ।

ज्वरप्रत्यात्मिकं लिङ्गं सन्तापो देहमानसः ॥

ज्वरेणाविशता भूतं न हि किञ्चिन्न तप्यते ।

अर्थ—शारीरिक और मानसिक सन्ताप ज्वरका साधारण लक्षण है । कोई ऐसा देह-धारी नहीं है जिसका देह ज्वरप्रस्त होने पर न तपता हो ॥

ज्वर के भेद ।

द्विविधो विधिभेदेन ज्वरः शारीरमानसः ॥

पुनश्च द्विविधो हृष्टः सौम्यश्चाग्नेय एव च ।

अन्तर्वेगो वाह्यवेगो द्विविधः पुनरुच्यते ॥

प्राकृतो वैकृतश्चैव साध्यश्चासाध्य एव च ॥

पुनः पञ्चविधो हृष्टो दोषकालबलावलात् ॥

सन्ततः सततोऽन्येषु स्तृतीयकचतुर्थकौ ।

पुनराश्रयभेदेन धातूनां सप्तधामतः । भि

न्नः कारणभेदेन पुनरष्टविधो ज्वरः ॥

अर्थ—विधि भेदसे ज्वर दो प्रकारका होता

है शारीरिक और मानसिक । पुनः इसके दो

भेद हैं यथा सौम्य और आग्नेय ज्वरके दो

वेग हैं, एक अन्तर्वेग दूसरा बाह्यवेग । इसी

तरह प्राकृत, वैकृत, साध्य असाध्य, फिर दोष

और कालके बलावलेसे ज्वर पांच प्रकारका देख

ने में आता है यथाः सन्तत, सतत, अन्येषुष्क,

तृतीयक और चातुर्थिक, इसी तरह सात धातु

ओंके आश्रय भेदसे सात प्रकारका, और वात

कफादि कारण भेदसे आठ प्रकारका होता है ।

शारीर और मानस ज्वरोंके उत्पत्तिस्थान

शारीरोंजायते पूर्वन्देहमनासिमानसः ।

अर्थ—शारीरिक ज्वर प्रथम देह में उत्प-

न्न होता है और मानसिक ज्वर प्रथम मन

में उत्पन्न होता है ॥

मानसिक सन्ताप के लक्षण ॥

वैचित्यमरतिर्ग्लानिर्नमनस्तपलक्षणम् ॥

अर्थ—मनमें चंचलता, अरति और ग्लानि

मानसिकताप के लक्षण हैं ॥

शारीरिकतापलक्षण ॥

इन्द्रियाणाश्च वैकृत्यं देहसन्तापलक्षणम् ॥

अर्थ—इन्द्रियों की विकृतता शारीरिक

सन्तापके लक्षण है ॥

वातापित्तात्मकः शीतमुष्णवातकफात्मकः

इच्छत्युभयमेतत्तु ज्वरो व्यामिश्रलक्षणः ।

अर्थ—वात पित्तात्मक ज्वरमें शीतल व-

स्तुकी इच्छा होती है, वातकफात्मकमें उष्ण,

पदार्थकी और व्यामिश्रलक्षण अर्थात् कफपित्ता-

तमक ज्वरमें उष्ण शीत दोनोंकी इच्छा होतीहै

वायुको योगवाहिन्य ॥

योगवाहःपरवायुःसंयोगादुभयार्थकृत् ।

दाहकृतेजसायुक्तःशीतकृतसोमसंश्रयात् ॥

अर्थ—वायु अत्यन्त योगवाहीहै अर्थात् जिसके साथमें मिलतीहै उसके गुणोंको उत्कर्ष करतीहै । जय तेजसे मिलतीहै तब दाह करतीहै । और सोमसे मिलतीहै तब शीत करतीहै ॥

अन्तर्वेगज्वर के लक्षण ।

अन्तर्दाहोऽधिकतृष्णाप्रलापःश्वसनम्भ्रमः

सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदोदोषोवचोविनिग्रहः

अन्तर्वेगस्यलिङ्गानिज्वरस्यैतानिलक्षयेत् ।

अर्थ—अन्तर्दाहकी अधिकता, प्यास, वक-वाद, श्वास, चक्कर, सन्धिशूल, अस्थिशूल, अरवेद (पसीनों का रुकना), दोष विनिग्रह, ये अन्तर्वेगज्वर के लक्षण हैं ।

बहिर्वेगज्वरकेलक्षण ॥

सन्तापोभ्यधिकोवाहस्तृष्णादीनाञ्च

मार्दवंम् ॥ बहिर्वेगस्यलिङ्गानिमुखसा

ध्यत्वमेवच ॥

अर्थ—वाहसन्तापका अधिक होना, तृष्णा आदिका कम होना और मुख साध्यता ये बहिर्वेग के लक्षण हैं ।

प्राकृतादि ज्वरों के लक्षण ।

प्राकृतःमुखसाध्यस्तुवसन्तशरदुद्भवः ॥

कालप्रकृतिमुद्दिश्यप्रोच्यतेप्राकृतोज्वरः ॥

अर्थ—यसन्त और शरद ऋतुओंमें उत्पन्न हुआ ज्वर प्राकृत और मुखसाध्य होताहै । कालकी प्रकृति के अनुसार जो ज्वर होता है उसेही प्राकृत कहते हैं । माधवाचार्य लिखते हैं कि " वर्षा शरद वसन्तेषु वातायैः

प्राकृतःक्रमात् । वैकृतोऽन्यःसुदुःसाध्यः

प्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ अर्थात् वर्षा में वातज्वर, शरद में पित्तज्वर, और वसन्तमें कफज्वर प्राकृत होतेहै क्योंकि इन भिन्न भिन्न ऋतुओं में पृथक् २ दोषोंकी प्रबलता होतीहै । इससे भिन्न होने पर वैकृतज्वर होताहै यह ज्वर दुःसाध्य होताहै और वात से उत्पन्न हुआ प्राकृत ज्वरभी दुःसाध्य होताहै

दोषों के प्रकुपित होने का समय ।

उष्णामुष्णेनसंवृद्धं पित्तंशरदिक्प्यति । चितःशीतफलश्चैववसन्तसमुदीर्यते ॥

अर्थ—उष्ण प्रकृति वाला पित्त उष्ण द्रव्यों के संयोगसे वृद्धिपाकर शरद ऋतुमें कुपित होता है । और शीतकाल में संचित हुआ कफ वसन्त ऋतु में कुपित होता है ।

कालकृतज्वरोत्पतिक्रम ॥

वर्षास्वम्लविपाकाभिरौषधीभिःसवारिभिः

सश्चित्पित्तगुत्किंशरद्यादित्यतेजसा ॥

ज्वरसंज्ञनयत्याशुतस्यचातुबलःकफः ।

प्रकृतैवविसर्गाच्चतत्रनानशनाद्भयम् ।

अद्भिरोषधिभिश्चैवमधुराभिश्चितःकफः ॥

हेमन्तेसूर्यसन्तप्तः सवसन्तेप्रकुप्यति ॥

वसन्तेश्लेष्मणातस्माज्ज्वरःसमुपजायते ।

आदानमध्येतस्यापिवातापित्तम्भवेदनु ॥

आदावन्तेचमध्येचज्ञात्वा दोषबलावलम्

शरद्वसन्तयोर्वैद्वान्ज्वरस्यप्रतिकारयेत् ॥

अर्थ—वर्षाऋतुमें अम्लविपाकशाली औषधी

और जलोंके कारण संचित हुआ पित्त शर

दऋतु में सूर्यकी तेजसे उदीर्ण होजाताहै

और शीतग्रीह ज्वरको उत्पन्न करताहै और

कफ उसका अनुबन्धी रहता है । उस ज्वरमें कफ पित्तके स्वभावकरके और विसर्गकालके कारण लघन करनेमें कुछ भय नहीं होता है क्योंकि शरदऋतु विसर्गकालके अन्तर्गत है । इसीतरह हेमन्तऋतुमें जल और औषधियां मधुरपाकी होती हैं उस ऋतुमें संचित हुआ कफ सूर्यकी तेजीसे संतप्त होकर वसन्तऋतुमें प्रकुपित होजाता है । इसहेतुसे वसन्तकालमें ज्वर कफसे उत्पन्न होता है । आदानकालमें होने पर भी वात और पित्त इस ज्वरके अनुबन्धी रहते हैं अर्थात् कफ से उत्पन्न होता है और वात पित्त साथमें रहते हैं तो यह त्रिदोषजन्य होजाता है । इन हेतुओंसे विद्वान् चिकित्सक को उचित है कि शरद और वसन्तऋतुके आदि मध्य और अन्तमें दोषोंके बलावलका विचारकरके ज्वरकी चिकित्सा करें ॥

ज्वरोंका साध्यासाध्यत्व ॥

कालप्रकृतिमुद्दिश्यनिर्दिष्टः प्राकृतोज्वरः ।
मायेणानिलजोदुःखः कालेष्वन्येषु वैकृतः ॥
हेतवो विविधास्तस्य निदानेन सम्प्रदर्शिताः ।
बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ।
हेतुभिर्वहुर्भिर्जातो बलिभिर्वहुलक्षणः ॥
ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्वाग्निमिन्द्रियनाशनः ।
अर्थ—काल और प्रकृतिका लक्षणकरके प्राकृत ज्वरका वर्णन किया गया है । वात जन्यज्वर तथा अन्यकालमें उत्पन्न हुआ वैकृतज्वर दुःखसाध्य होता है ॥

ज्वरके भिन्न २ हेतु निदानस्थानमें लिखये गये हैं । बलवान् पुरुषका अल्पदोषों से युक्त ज्वर जो उपद्रव रहित होता है वह

सुखसाध्य होता है । जो ज्वर बहुत बलवान् हेतुओंसे उत्पन्न होकर बहुत से लक्षणों से युक्त होता है वह ज्वर प्राणोंका नाश करने वाला है और उसज्वरसे इन्द्रियज्ञान भी शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥

असाध्यज्वर के अन्य लक्षण ॥

सप्ताहाद्वा दशाहद्वाद्वा दशाहोत्तथैव च ।
संभ्रलापभ्रमश्वासः तीक्ष्णो हन्याज्ज्वरो न-
रम् ॥ ज्वरः क्षीणस्थश्च न स्य गम्भीरो दैर्घ्य-
रात्रिकः । असाध्यो बलवान् नृपश्च केश-
सीमन्तकृज्ज्वरः ।

अर्थ—वह तीक्ष्णज्वर जिसमें प्रलाप, भ्रम और श्वास होता है वह सात, दस वा द्वादश दिनमें मनुष्यको मार डालता है । जो मनुष्य क्षीण होगया है, जिसकी देह पर सूजन आ गई है, जिसका ज्वर गंभीर है और जो चढफर कई दिवस तक रहता है, जो बलवान् है और जिसमें मनुष्यके शिरपर बालोंकी गुलझट पड़जाती है ऐसे ज्वर असाध्य होते हैं ॥

सन्ततज्वरकी उत्पात्तिका कारण ॥

स्रोतो भिर्विमृतादोषा गुरवोरसंवाहिभिः ।
सर्वगान्ानुगाः स्तब्धा ज्वरं कुर्वन्ति सन्ततम् ।
अर्थ—संवाही स्रोतोंके द्वारा सम्पूर्ण गुरु दोष फैलकर सम्पूर्ण देहमें व्याप्त होकर स्तब्ध होजाते हैं तब सन्ततज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥

सन्ततज्वरका मोक्षकाल ॥

द्वादशाहं दशाहं वा सप्ताहं वा युद्धः सह । स
शीघ्रं शीघ्रकारित्वात्प्रशमयति हन्ति वा ॥

अर्थ—सन्ततज्वर द्वादश, दस वा सात

दिनतक अनवस्थिन्न रहताहै, यह बड़ा दुः सह होताहै और शीघ्रकारी होनेसे या तौ शीघ्रही शान्त होजाता है वा शीघ्रही देहको नाश करदेताहै । दस बारह और सात दिनकी अपेक्षा दोषोंके अनुसार दीर्घ है तथा वातिक सप्तरात्रेणदशरात्रेणैपि च क. । श्लेष्मिकोद्गादशाहेनज्वरःपाकानि नियच्छति अर्थात् वातज्वर सात दिनमें, पित्तज दस दिनमें, और कफज बारहदिनमें पाकको प्राप्त होताहै । इससमय में या तौ रोगी ज्वरनिर्मुक्त होजाताहै वा मरजाताहै ।

सन्ततज्वरको असाध्यत्व ॥

कालदूष्यप्रकृतिभिर्दोषास्तुल्योहि सन्तत मूनिप्यत्यनीकं कुरुते तस्मात्त्रेयः सुदु सहः

अर्थ—काल, दोष और प्रकृतिके तुल्य होनेसे दोष दुश्चिकित्स्य सन्तत ज्वरको उत्पन्न करते हैं अतएव यह ज्वर दुःसाध्य होता है ॥

सन्ततज्वरके अनुबन्धीपदार्थ ।

यथा धातुं तथा मूत्रं पुरीषञ्चानिलादयः ।

अनुबन्धन्ति युगपदवश्यं सन्तते ज्वरे ॥

अर्थ—सन्तत ज्वर में सातों धातु, मूत्र मल और तीनों दोष अवश्य साथ रहतेहैं ।

अनुबन्धीपदार्थोंका फल ॥

सशुद्धावाप्यशुद्ध्यावारसादीनामशेषतः ।

सप्ताहादिपुनः पुनश्चान्यातिहन्ति वा ॥

अर्थ—यह ज्वर सम्पूर्ण रसादि धातु और दोषोंकी शुद्धि होनेपर पुनः पुनः सप्ताहादि का लक्ष्म शान्त होजाताहै और शुद्धि न होने पर मनुष्यको मार डालताहै ॥

सन्तत ज्वरका रसादि का आश्रयत्व ॥
यदा तु नातिशुध्यन्ति न वा शुध्यन्ति सर्वशः
द्वादशैते समुद्दिष्टा सन्ततस्याश्रयास्तदा ॥

अर्थ—सातों धातु, मल, मूत्र और तीनों दोष जबवे बारहों पदार्थ सम्यक् शुद्ध नहीं होतेहैं तब सन्ततज्वर इनके आश्रय रहताहै ।

अन्यप्रकार सन्तत ज्वर ।

विसर्गद्वादशैकृत्वादिवसेऽप्यक्तलक्षण ॥

दुर्लभोपशम कालं दीर्घमप्यनुवर्तते ॥

अर्थ—कोई कोई सन्ततज्वर बारहवें दिन छोड़कर बहुत दिन तक ऐसे रहता है कि उसका कोई चिन्ह प्रकट नहीं होता है, यह कठिन साध्य होताहै ।

वैद्यको कर्त्तव्य कर्म ।

इति बुद्ध्या ज्वरं वैद्य उपक्रमेत्सन्ततम् ।

क्रियाक्रमविधौ युक्तः प्रायः प्रागपतर्पणैः ॥

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए लक्षणों को भिन्नारकर वैद्यको सन्ततज्वर की चिकित्सा करना उचितहै, इस ज्वरमें प्रायः लघन द्वारा चिकित्सा करना अभीष्टहै ।

सन्तत ज्वर के लक्षणादि ।

रक्तधात्वाश्रयः प्रायो दोषः सततकं ज्वरम् ।

सप्रत्यनीकं कुरुते कालवृद्धिक्षयात्मकः ॥

अहोरात्रे सततको द्वौ कालौ च नुवर्तते । काल

प्रकृतिदूष्याणां प्राप्यैवान्यतमाह्वलम् ॥

अर्थ—प्रायः दोष रक्त धातुका आश्रय लेकर सततक ज्वर उत्पन्न करते हैं । इस ज्वरकी चिकित्सा होमकतीहै यह काल में बढ़ताभीहै और घटताभीहै । यह सततक ज्वर काल, प्रकृति और दूष्यमें से किसीका बल प्राप्त करके दिनरात में दोनार आताहै ।

अन्येद्युष्कज्वर के लक्षणानि ।
दोषोमेदावहारद्वानाडीरन्येद्युष्कज्वरम्
सम्प्रत्यनीकः कुरुते एककालमहनिशम् ॥

अर्थ—मेदोवहानाडियोंको रोककर दोष
अन्येद्युष्कज्वरको उत्पन्न करते हैं यह भी
सुचिकित्स्य हैं और दिनरात में एकवार आता है
तृतीयक चातुर्थिक ज्वर का लक्षणानि ।
दोषोऽस्थिमज्जाः कुर्यात्तृतीयकचतुर्थकौ
गतिर्द्वयकान्तरान्येद्युर्दोषस्योक्तान्यथापरैः

अर्थ—जब दोष हड्डियों में पहुँचते हैं तब
तृतीयक ज्वर होता है और जब दोष मज्जा
में पहुँचते हैं तब चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न हो
ता है । अन्येद्युष्क ज्वरका वेग प्रतिदिन
होता है तृतीयकका एक दिन बीचमें देकर
और चातुर्थिकका दोदिन बीचमें देकर वेग होता है

अन्येद्युष्कादि ज्वर का कारण ।
रक्तमेवाभिसंसृज्य कुर्यादन्येद्युष्कज्वरम् ।
मांसस्रोतांस्यनुसृतोजनयेत्तु तृतीयकम् ।
ज्वरंदोषः संसृतो हि मेदो मार्गश्चतुर्थकम् ।
अर्थ—दोष जब रक्तसे मिलजाते हैं तब
अन्येद्युष्कज्वर उत्पन्न होता है । जब मांस
स्रोतोंसे मिलते हैं तब तृतीयक ज्वर होता है
और जब मेदाके मार्गमें संसृत होते हैं तब
चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न होता है ॥

अन्येद्युष्कादि ज्वरों का समय ।
अन्येद्युष्कः प्रतिदिनं दिनं क्षिप्त्वा तृतीयकः
दिनद्वयं पोषिश्राम्यप्रत्येतिसचतुर्थकः ॥
अर्थ—जो ज्वर नित्यप्रति आता है
उसे अन्येद्युष्क कहते हैं, जो एक दिन
बीचमें देकर आता है उसे तृतीयक कह-

ते हैं, लोकमें इसीको तिजारी एकांतरा भी
कहते हैं ॥ जो दोदिन बीचमें देकर आता
है उसे चातुर्थिक या चौथैया कहते हैं ॥

कालान्तर में दोषों के कुपित होने
का दृष्टान्त

अधिशेते यथा भूमिवाज्जाले चरोहति ॥
अधिशेते तथा धातुंदोषं काले च कुप्यति ॥

अर्थ—पृथ्वीमें घोषाहुआ बीज जैसे कालान्तरमें अंकुरित होता है इसी तरह धातुओं
से मिला दोष कालान्तरमें कुपित होता है ।

ज्वरों में विश्राम का कारण ।
तेष्टद्विम्वलकालञ्च प्राप्य दोषास्तृतीयकं
चतुर्थकञ्च कुर्वति प्रत्यनीकवलक्षयात् ।
कृत्वा वेगंगतबलाः स्वेस्वे स्थाने व्यवस्थिताः
पुनर्विबुद्धाः स्वेकाले ज्वरयन्ति नरं मलाः ।

अर्थ—येही दोष वृद्धि और बलकालको
प्राप्त करके तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरोंको
उत्पन्न करते हैं और बलके क्षीण होने
पर सुचिकित्स्य होजाते हैं । वेगके पश्चात्
जब उनका बल घटजाता है तब अपने स्थान
पर स्थित होजाते हैं और अपने कालमें फि-
र बढ़कर येही दोष ज्वरोंको उत्पन्न करते हैं

तृतीयक ज्वर के अन्यलक्षण ।
कफपित्तात्रिकग्राही पृष्ठादातकफात्मकः ॥
वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः

अर्थ—कफ पित्तसे उत्पन्न हुआ तृतीयक ज्वर
त्रिकस्थान (तीन हड्डियों का समागम एक
तो कंधों और ग्रीवा का जोड़ दूसरा कमर
और जांघ की हड्डियोंका जोड़) में वेदना
करता है । वात और कफ से उत्पन्न हुआ

पीठ में, इसीतरह वातापित्तसे उत्पन्न हुआ मस्तकमें पीड़ा करता है इसतरह तृतीयक ज्वर तीनप्रकार का होता है ।

चातुर्थिक ज्वर के प्रकार ।

चतुर्थकोदर्शयतिप्रभावंद्विविधज्वरः ॥

जघाभ्यां श्लेष्मिकः पूर्वशिरस्तोऽनिल-
सम्भवः ।

अर्थ—चातुर्थिक ज्वर दो प्रकार का प्रभाव दिखाता है यथा जब यह कफ से उत्पन्न होता है तब प्रथमही जघागोमें वेदना करता है फिर आप उत्पन्न होता है और जब वातसे उत्पन्न होता है तब शिरमें वेदना करता है ।

विषम ज्वर का लक्षण ।

विषमज्वरएवान्यथतुर्थकविपर्ययः ॥

त्रिविधोधातुरेकैकोद्विधातुस्थः करोत्ययम् ।

अर्थ—चातुर्थिकज्वरका उलटा एक और ज्वर होता है उसे विषमज्वर कहते हैं । माधव निदानमें लिखा है कि „समध्ये ज्वर यत्यन्ही आद्यन्तेच विभुचति । „ विषमज्वर उसे कहते हैं जो वाँचके दो दिन आता है और आदि अन्त के दो दिन नहीं आता । इससे जाना जाता है कि तिजारी और चौथैयाके संयोगका नाम विषम है कि इससे यह ज्वर वातज, पित्तज और कफज होता है तथा अस्थि और मज्जा दो धातुओं में आश्रित होता है क्योंकि पहिले कह चुके हैं कि अस्थिज्वर तृतीयक और मज्जागत चातुर्थिक होता है ।

मायशः सन्निपातेन दृष्टः पञ्चविधोज्वरः ॥

सन्निपाते तु याभूयो न स दोषः परिकीर्तितः ॥

अर्थ—प्रायः सन्निपात से पाँच प्रकार

का ज्वर देखा गया है, यथा संतत, सतत, अन्यद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक ! इन में जो दोष अधिक होता है उसीके नाम से वह ज्वर बोला जाता है ।

भिन्न २ ज्वरोत्पत्तिका कारण ॥

**ऋतुवहोरात्रदोषाणां मनसश्च बलावलात्
कालमर्थवशाच्चैव ज्वरस्तन्तमपद्यते ।**

अर्थ—ऋतु, दिन, रात, दोष और मनका बलावला, कालवश और अर्थवशसे भिन्न २ मनुष्यों को भिन्न २ प्रकार का ज्वर आता है ॥

रसस्थज्वर के लक्षण ॥

गुरुत्वं दैन्यमुद्वेगः सदनं छर्चरोचकौ ॥

रसस्थिते वा हि स्ताप साङ्गमर्दौ विजृम्भणम् ।

अर्थ—रसघ्रातु में ज्वर के स्थित होनेपर भारापन, दैन्यता, उद्वेग, अंगग्लानि वमन, अरुचि, बाह्याताप, अंगमर्द और जंभाई ये उपद्रव होते हैं ॥

रक्तस्थज्वर के लक्षण ॥

**रक्तोत्थाः पिडका स्तृष्णा सरक्तं ग्रीचनं मुहुः
दाहरागभ्रममदमलापारक्तसंस्थिते ॥**

अर्थ....रक्तस्थज्वरमें देहपर लालरंगकी गरम फुत्सियां होजाती हैं, कफके साथ चार २ रुधिर आता है, तथा दाह, राग, भ्रम, सद और प्रलाप ये भी होते हैं ॥

मांसस्थज्वर के लक्षण ॥

अन्तर्दाहः सतृष्णो ग्लानिः संसृष्टवि-

दकता ॥ दार्गन्ध्यं गात्रविशेषो ज्वरे मांस

स्थिते भवेत् ।

अर्थ—मांसस्थज्वरमें अन्तर्दाह, तृष्णा मोह, ग्लानि, पुरीषविक्षय दुर्गन्धि और गा-

त्रिविक्षेप (हाथ पांवोंका पटकना] होताहै।

मेदस्थज्वर के लक्षण ॥

स्वेदस्तीव्रापिपासाचप्रलापारत्यभीक्ष्ण-
शः । स्वगन्धस्यासहृत्त्वञ्चमेदस्थेग्लान्य-
रोचकौ ॥

अर्थ—मेदस्थज्वरमें पसना, तेज
प्यास, प्रलाप, निरन्तर अस्थिरता, अपनी
गंध अपनेको घुरीलगना, ग्लानि और अरु-
चि ये लक्षण होतेहैं ॥

अस्थिगतज्वर के लक्षण ॥

विरकवमनेचोभेसास्थिभेदप्रकूजनम् ॥
विक्षेपणश्चात्राणांश्वासश्चास्थिगेज्वरो।

अर्थ—अस्थिगतज्वरमें वमन और वि-
रेचन दोनों होतेहैं । हड्ढटन, अत्रकूजन
गात्रविक्षेप और श्वास ये लक्षण होतेहैं ।

मज्जागतज्वर के लक्षण ॥

हिकाश्वासःतथाकासःतपसश्चातिदर्शने ।
मर्मच्छेदोवाहिःशैत्यंदाहोऽन्तश्चैवमज्जगे।

अर्थ—मज्जागतज्वरमें हिचकी, श्वास,
खांसी,अधिक अन्धकारदीखना, मर्मच्छेद,वा-
हरठंड और भीतर दाह ये लक्षण होतेहैं ।

शुक्रगतज्वर के लक्षण ॥

शुक्रस्थानगतेशुक्रमोक्षं कृत्वाविनाश्य-
चा ॥ प्राणवाय्वग्निसौम्यैश्चसार्धमच्छत्य
सौविभुः ॥

अर्थ—ज्वरके शुक्रमेंपहुंचने पर वीर्य
अत्यन्त निकलताहै और आत्मा देह को
नष्ट करके प्राण, वात, पित्त और कफ को
साथ लेजाती है, अन्यग्रन्थोंमें लिखा है,
कि पुरुषेन्द्रिय जकड़जातीहै और वीर्य के
साथ रक्तभी आता है ॥

धात्वाश्रितज्वरको साध्यासाध्यत्व ।

रसरक्ताश्रितःसाध्योमेदोमांसगतश्चयः॥

अस्थिमज्जगतः कृच्छ्रः शुक्रस्थोनैवसि-
द्ध्यति ॥

अर्थ—रसाश्रित और रक्ताश्रित ज्वर
साध्य होता है । मेदोगत, मांसगत, अस्थि-
गत और मज्जागत कृच्छ्रसाध्य होता है औ-
र शुक्रस्थज्वर कभी अच्छा नहीं होता है ॥

हेतुभिरलक्षणैःसिद्धःपूर्वमष्टविधोज्वरः ॥
समासेनोपदिष्टस्यव्यासतः शृणुलक्षणम्

अर्थ—हेतु और लक्षणोंद्वारा हम प्रथम
ज्वरके आठ भेदोंका संक्षेप से वर्णन कर
चुकेहैं अब हम विस्तारपूर्वक वर्णन करते
हैं उसे सुनो ॥

वातपित्तज्वर के लक्षण ॥

शिरोरुक्पर्षणांभेदोदाहोरोम्णांप्रहर्षणम्
कण्ठास्यशोषोवमथुस्तृष्णामूर्च्छाभ्रमोऽ
रुचिः । स्वप्ननाशोऽतिवाग्जृम्भावातपित्त
ज्वराकृतिः॥

अर्थ—माथेमें दर्द, हाथपांवके जोड़ों में
दर्द, दाह, रोमाञ्च खडे होना, कण्ठ
शोष, मुखशोष, वमन, तृष्णा, मूर्च्छा,
अरुचि, स्वप्ननाश, वक्वाद, जम्हाई ये सब
वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥

वातकफज्वर के लक्षण ॥

शीतकोगौरवंतन्द्रास्तैमित्यपर्वणाञ्चरुह
शिरोग्रहःप्रतिश्यायकासःस्वेदाप्रवर्तनम्
सन्तापोमध्यवेगश्चवातश्लेष्मज्वरा-

कृतिः ॥

अर्थ—शीत, भारापन, तन्द्रा, स्तिमिता,
हड्ढटन, माथेका दर्द, प्रतिश्याय, खांसी,

पसीनोंका आना, सन्ताप और ज्वरका मध्यम
वेग ये सब वातश्लेष्मिकज्वर के लक्षण हैं ॥

श्लेष्मपित्तज्वरके लक्षण ॥

मुहुर्दाहो मुहुः शीतं स्वेदस्तम्भौ मुहुर्मुहुः ।
मोहः कासो रुचिस्तृष्णा श्लेष्मपित्तमवर्त्तनं
लिप्तित्कास्यता तन्द्रा श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ।

अर्थ—बार बार दाहहोना, बार बार शी-
तलगना, बार बार पसीने आना, बार बार
पसीनोंका रुकना, मोह, खांसी, अरुचि, तृ-
ष्णा, कफ और पित्तका निकलना, मुख में
कफकी लहिसावट मुखमें कड़वापन और त-
न्द्रा ये कफपित्तज्वरकी आकृति है ॥

सन्निपातज्वरका वर्णन ॥

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वत्रयोदशविधस्याहि ॥
मावसूत्रितस्य वक्ष्यामि लक्षणं वै पृथक् पृथक्

अर्थ—सन्निपातज्वरके जो तेरह भेद
प्रथम संक्षिप्त रीति से वर्णन किये गये हैं
अब उन्हें विस्तारपूर्वक पृथक् २ कहते हैं ।

वातपित्तोल्बणज्वर के लक्षण ॥

भ्रमः पिपासदाहश्च गौरवांशिरसोऽतिरुक् ॥

वातपित्तोल्बणो विद्याल्लिङ्गमन्दकफेज्वरे ।

अर्थ—भ्रम, तृषा, दाह, भारापन और
सिरमें अत्यन्त वेदना ये वातपित्तोल्बण
और मन्दकफज्वर में होते हैं ॥

वातश्लेष्मोल्बणहीनकफज्वर ॥

शैत्यं कासो रुचिस्तन्द्रापिपासा दाहरुग्य-
था ॥ वातश्लेष्मोल्बणो विद्याल्लिङ्गपित्त

वरो विदुः ।

अर्थ—शीत, खांसी अरुचि, तन्द्रा, तृषा
दाह, वेदना, व्यथा, ये वातश्लेष्मोल्बणमन्द
पित्त ज्वर में होते हैं ॥

पित्तकफोल्बणहीनवायु के लक्षण ॥

छर्दिः शैत्यं मुहुर्दाहस्तृष्णामोहोऽस्थिवेदना
मन्दवाते व्यवस्यन्ते लिङ्गं पित्तकफोल्बणे ।

अर्थ—वमन, शीत, बारम्बार दाह, तृष्णा,
मोह, अस्थिवेदना, ये पित्तकफोल्बण और
मन्द वात के लक्षण हैं ॥

वातोल्बणसन्निपातके लक्षण ॥

सन्ध्यस्थिशिरसः शूलं प्रलापो गौरवं भ्रमः ॥

वातोल्बणे स्याद्दुर्गो तृष्णा कण्ठास्यशोषता

अर्थ—हाथ पांव के जोड़, हड्डी और सिरमें
वेदना, प्रलाप, भारापन, भ्रम, तृषा, कण्ठशोष
और मुखशोष ये सब वातोल्बण और हीन
कफपित्त के लक्षण हैं ॥

पित्तोल्बणसन्निपात के लक्षण ॥

रक्तविण्मूत्रतादाहः स्वेदस्तृद्धवलसंक्षयः

मूर्च्छा चातित्रिदोपे स्याद्विङ्गं पित्ते गरीयसि

अर्थ—विष्टा और मूत्रका लालहोजाना
दाह, पसीना, तृषा, और बलकी क्षीणता
तथा मूर्च्छा ये पित्तोल्बण और वात कफ
सन्निपात के लक्षण हैं ।

कफोल्बणसन्निपातके लक्षण ।

आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरातिभ्रमैः ॥

कफोल्बणं सन्निपातं तन्द्राकासेन चादिशेत्

अर्थ—आलस्य, अरुचि, हृल्लास, दाह,
वमन, अरति, भ्रम, तन्द्रा और खांसी ये
कफोल्बण हीन वात पित्त के लक्षण हैं ।

हीनवाते पित्तमध्य के लक्षण ।

प्रतिश्याच्छर्दिरालस्यं तन्द्रारुच्यग्निमार्दवम् ॥

हीनवाते पित्तमध्ये चिह्नं श्लेष्माधिकमेतम् ।

अर्थ—नाक बहना, वमन, आलस्य, तन्द्रा

अरुचि, अग्निमांश, ये हीनवात पित्तमध्यऔर श्लेष्माधिकके लक्षण हैं ।

हीनवातमध्यकफकेलक्षण ।

हारिद्रमूत्रनेत्रत्वंदाहस्तृष्णाभ्रमोऽरुचिः ॥

हीनवातमध्यकफोलिङ्गपित्ताधिकेमतम् ।

अर्थ—हलदी के रंग के मूत्र और आंख होजाना, दाह, तृष्णा, भ्रम और अरुचि ये हीनवात मध्य कफ और पित्ताधिकके लक्षण हैं ।

हीनपित्तमध्यकफकेलक्षण ।

शिरोरुक्वेपथुःश्वासःप्रलापोऽर्धरोचकाः

हीनपित्तमध्यकफोलिङ्गवाताधिकेमतम् ।

अर्थ—शिर में वेदना, कम्पन, स्वास, प्रलाप, वमन, अरुचि ये हीनपित्त मध्यकफ और वाताधिक के लक्षण हैं ।

हीनपित्तमध्यवातकेलक्षण ।

शीतकंगौरवंतन्द्राप्रलापोऽस्थिशिरोऽति

रुक् ॥ हीनपित्तवातमध्येलिङ्गश्लेष्माधि-

केविदुः ।

अर्थ—शीत, भारापन, तन्द्रा, प्रलाप हड्डी और सिरमें अत्यन्त वेदना ये हीन पित्त मध्यवात और श्लेष्माधिक के लक्षण हैं ।

कफहीनपित्तमध्यकेलक्षण ।

श्वासकासप्रतिश्यायामुखशोषोऽतिपाथ्वे

रुक् ॥ कफहीनेपित्तमध्येलिङ्गवाताधिके

मतम् ।

अर्थ—श्वास, खांसी, प्रतिश्याय, मुख शोष पसलियोंमें अत्यन्त वेदना ये हीन कफ, मध्य पित्त और वाताधिक के लक्षण हैं ।

हीनकफवातमध्यकेलक्षण ।

पर्वभेदोऽग्निदौर्बल्यंतृष्णादाहोऽरुचिभ्रमः

कफहीनेवातमध्येलिङ्गपित्ताधिकेविदुः ।

अर्थ—हड्फूटन अग्निमान्य, तृष्णा, दाह, अरुचि और भ्रम ये कफहीन, वातमध्य और पित्ताधिक के लक्षण हैं ॥

तेरहवेंसन्निपातकेलक्षण ।

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वमतोवक्ष्यामिलक्षणम्

क्षणेदाहःक्षणेशीतमस्थिसन्धिशिरोरुजः

सास्त्रावेकलुपेरक्तेनिर्भुग्नेचापिदर्शने। स-

स्वनौसरुजौकण्ठशूकैरिवावृतः ॥

तन्द्रामोहःप्रलापश्वासःश्वासोऽरुचिर्भ्रमः

परिदग्धाखरस्पर्शाजिह्वासस्ताज्ञतापरम् ॥

प्रीवनंरक्तपित्तस्यकफेनोन्मिश्रितस्यच ।

शिरसोलोठनंतृष्णानिद्रानाशोहादिव्यथा ॥

स्वेदमूत्रपुरीषाणांचिराद्दर्शनमल्पशः

कृशत्वंनातिगात्राणांप्रततंकण्ठकूजनम् ॥

कोठानांश्यावरक्तानांमण्डलानांचदर्शनम्

मूकत्वंस्रोतसांपाकोशुखत्वमुदरस्यच ॥

चिरात्पाकश्चदोषाणांसन्निपातज्वराकृतिः।

अर्थ—अब हम सन्निपातिक ज्वरके लक्षण

कहते हैं, यथा क्षणभरमें दाह होना, क्षण

भर में शीत लगना, अस्थिशूल, सन्धिशूल,

शिरःशूल, आंखोंमें आंसू भरकर नेत्रों का

लाल तथा काला होजाना और फटे से हो-

जाना, कानोंमें शब्द और वेदना होना, कण्ठ

में कांटे पडजाना, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, खांसी

श्वास, अरुचि, भ्रम, जिह्वा का काला और

खरदरा होजाना, अंगका अत्यन्त शिथिल प-

डजाना, कफमिलेहुए रक्तपित्ताका थूकके साथ

निकलना, सिरका इधर उधर पटकना तृष्णा,

निद्रानाश, हृदयमें वेदना, पसीना, मूत्र

और मलका बहुत देरमें थोडासा होना, देह

से मिलजाने पर व्यामिश्र लक्षण पाये जाते हैं अर्थात् पूर्वोक्त लक्षण और वातादि दोषजनित लक्षण दोनों मिले हुए होते हैं । आगन्तुक ज्वर हेतु और औषधोंके गुणविशिष्ट भी होते हैं ॥

कामादि से मन के आक्रान्त होने पर प्रथमही ज्वर बल प्राप्त नहीं करता है परन्तु जब कामादि से मन दूषित होजाता है तब ज्वर बलवान् होता है ॥

ज्वर का उत्पत्ति क्रम ।

संसृष्टाः सन्निपतिताः पृथक्वाकुपितामलाः
रसाख्यधातुमन्वेत्यपत्तिस्थानान्निरस्यच
स्वेनतेनोष्मणाचैवकृत्वादेहोष्मणोवलम्ब
स्रोतांसिरुद्ध्वासम्प्राप्ताः केवलंदेहमुल्लवणाः
सन्तापमधिकंदेहेजनयन्तिनरास्तदा । भ-
वत्युष्णसर्वाङ्गोज्वरितस्तेनचोच्यते ।

अर्थ—दो दो दोष अथवा पृथक् पृथक् दोष कुपित होकर रसनामक धातुका अनुसरण करके जठराग्नि को स्थानभ्रष्ट करदेते हैं । उस जठराग्नि की गर्मीसे शरीर की गर्मीका बल बढ़जाता है और वह गर्मी स्रोतोंको रोककर केवल देहपर अत्यन्त अधिकार जमाती है तब देहमें अत्यन्त सन्ताप उत्पन्न होता है । तब सम्पूर्ण देह गरम होजाती है और उस मनुष्य को ज्वरग्रस्त कहते हैं ।

पसीने न निकलने का कारण ।

स्रोतसांसंनिरुद्धत्वात्स्वेदनानाधिगच्छति ॥ स्वस्थानात्प्रच्युतेचाग्नौप्रायशस्तरुणेज्वरे ॥

अर्थ—तरुणज्वर में ही प्रायः जठराग्नि अपने स्थानसे चालित होजाती है और इस हेतुसे स्रोतोंके रुकजाने के कारण पसीने नहीं निकलने पाते हैं ।

आमज्वर के लक्षण ।

अरुचिश्चाविपाकश्चगुरुत्वमुदरस्यच ।
हृदयस्याविशुद्धिश्चतन्द्राचालस्यमेवच ॥
ज्वरोऽविसर्गीवलवान्दोषाणामप्रवर्त्तनम्
लालापसेकोहृल्लासोक्षुभ्राशोऽविशदंमुखम् ॥
स्तब्धमुसगुरुत्वश्चगात्राणां बहुमूत्रता ।
नविद्गीर्णानिचलानिज्वरस्यामस्यलक्षणम् ।

अर्थ—अरुचि, अविपाक, पेटका भारापन हृदयकी अविशुद्धि [भारी डकार आना] तन्द्रा, आलस्य, अविसर्गी ज्वर [जो बीच में कम न हो] वलवान् ज्वर, दोषोंकी रुकावट, लालापसेक [लारगिरना] हृल्लास, क्षुधानाश, मुखमें गिलगिलापन, अंगावयवों कास्तब्ध, मुस और भारी होजाना, पेशाब बहुतआना, मलका कच्चापन और अग्लानि ये सब आमज्वरके लक्षण हैं ।

निरामज्वरलक्षण ॥

धुतक्षामतालघुत्वश्चगात्राणांज्वरमार्दवम्
दोषप्रवृत्तिरष्टाहोनिरामज्वरलक्षणम् ।

अर्थ—भूखसे दुर्बलता, [भूख लगना और देहका रुश होजाना] शरीरका हलकापन, ज्वरका कमहोना, दोषोंकी प्रवृत्ति आठ दिन व्यतीत होना अर्थात् आठ दिन में ज्वरका पचजाना ये लक्षण निरामज्वरके हैं ॥ ' दोषप्रवृत्तिरष्टाहो, की जगह ' दोषप्रवृत्तिरुत्साहो, ऐसा पाठभी है ।

नवज्वरमें वर्जितकर्म ॥

नवज्वरेदिवास्वप्नस्नान्नाभ्यङ्गाभ्रमैथुनम् ।
क्रोधप्रवातव्यायामकपायांश्चविवर्जयेत् ॥

अर्थ—नवीनज्वरमें दिनका सोना, स्नान करना, तैलमर्दन, भोजन करना, मैथुनकरना, क्रोधकरना, हवाखाना, काय-पान करना ये सब वर्जितहैं ॥

ज्वरमें लंघन विधान ॥

ज्वरेलंघनमेवादावुपादिष्टमृतज्वरात् ॥
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥

अर्थ—ज्वरकी आदिमें लंघन करना उचित है परंतु जो ज्वर क्षय, वात, क्रोध, काम, शोक और श्रम से उत्पन्न हुआ है उसमें लंघन न करै ॥

लंघनकारुण्य ॥

लंघनेनभयर्नातिदोषेसन्धुक्षितेऽनले ।
विज्वरत्वंलघुत्वंचक्षुच्चैवास्योपजायते ॥
प्राणाविरोधिनाचैनंलघनेनोपपादयेत् ।
बलाधिष्ठानमारोग्यंयदर्थोऽयंक्रियाक्रमः ॥

अर्थ—लंघनसे दोष क्षीण होजाते और जठराग्नि बढजाती है इस से ज्वर का नाश होता है, देह हलकी पडजाती है और क्षुधा चेतन्य होजातीहै । ऐसा लंघन देना चाहिये जिससे प्राणोंको बाधा न पहुँचे । बल आरोग्यताके आश्रितहै और आरोग्यता चिकित्सा के आश्रित होतीहै ॥

अविपक्वदोषों के पाचकद्रव्य ॥

लंघनंस्वेदनंकालोयवाग्वस्तिकफोरसः ।
पाचनान्यविपक्वानांदोषाणांतरुणेज्वरे ॥

अर्थ—तरुण ज्वर में अविपक्व दोषों के

पचाने वाले ये हैं यथाः—लंघन, स्वेदन, काल, यवागू और तित्तरस ॥

उष्णशीतल जलका विधान ।

तृप्यतेसालिलञ्चोष्णंदद्याद्वातकफज्वरे ।
मद्योत्थेपैत्तिकेवायशतिलंतित्तकैःशृतम् ॥
दीपनंपाचनञ्चैवज्वरग्रमुभयंहितम् ।
स्रोतसांशोधनंवल्यंरुचिस्वेदकरंशिवम् ॥

अर्थ—वातकफ ज्वरमें जो तृपा की प्रचलता होती रोगीको उष्ण जल पीनेको देवे मद्यसे उत्पन्न और पित्तज्वर में तित्क औषधियों को डालकर औटाया हुआ जल ठंडा करके देवे । ये दोनों प्रकारके जल दीपन, पाचन, ज्वरनाशक, स्रोत, समूहके शोधन-कर्ता, बलकारक, रुचिवर्द्धक, स्वेदोत्पादक और कल्याणकारक होते हैं ॥

पिपासानाशकजल ॥

मुस्तर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ।
शृतशीतजलंदद्यात्पिपासाज्वरशान्तये ॥

अर्थ—यदि उक्त ज्वरों में तृपा की अधिकता हो तौ मोथा, पित्तपापडा, उशीर, चन्दन, नेत्रकाला और सोंठ डालकर जल औटावे और ठंडा करके पान करावे तौ ज्वर और तृपा दोनों शान्तहों ।

दोषोंमें वमन का विधि निषेध

कफप्रधानानुत्थिष्ठान्दोषानामाशयस्थितान् ।
गुदध्वाज्वरकरान्कालेवम्यानावमनैर्हरेत् ॥
अनुपस्थितदोषाणां वमनंतरुणेज्वरे ॥
हृद्रोगश्वासमानाहंमोहश्चजनः ॥

येऽशुम् ।

अर्थ—यदि आमाशयस्थज्वरको उत्पन्न करने वाले दोष कफप्रधान और रोगी

वमन कराने के योग्य होता उचितकालमें वमन कराके दोषों को निकाले परन्तु यदि दोष उपस्थितहों तौ तरुणज्वर में वमन कराने से हृद्रोग, श्वास, आनाह और मोह की अत्यन्त उत्पत्ति होती है ।

आमदोष में संशोधन निषेध ।
सर्वदेहानुगासामाधातुः पृथग्धातुः स्वनिर्हराः ।
दोषाः फलेभ्यः आमैभ्यः स्वरसा इव सात्ययाः ।

अर्थ—सम्पूर्ण देह में व्याप्त धातुओं में स्थित आमदोषोंका निकालना ऐसा कष्ट साध्य है जैसे कच्चे फल से रसका निकासना फलका नाश करनेवाला होता है ।

वमनलंघन का पश्चात् कर्म
वमितलंघितकाले यवागूभिरुपाचरेत् ॥
यथास्त्रौषधासिद्धाभिषण्डपूर्वाभिरादितः ।
यावत्ज्वरमृदूभावात्पट्टहृत्वाविचक्षणः ॥
तत्प्राग्निर्दीप्यते ताभिः समिद्धिरिव पावकः ।

अर्थ—वमन और लंघन कराने के पश्चात् क्षुधा लगने पर यवागू पान करावै यवागू तीन प्रकार की होती है इनमें से दोषानुसार औषधों से सिद्धकी हुई मण्ड प्रथमपान करावै, जब तक ज्वर मृदु न हो अथवा छ. दिवस पर्यन्त यवागू पान करता रहै । इस यवागू के पान करनेसे रोगी की जठराग्नि ऐसे बढ़ती चली जायगी जैसे ईंधन डालने से अग्नि बढ़ती है ।

यवागू के गुण ।

ताश्च भेषजसंयोगाल्लघुत्वाच्चाग्निदीपनाः ।
धातमूत्रपुरीषाणां दोषाणाञ्चानुलोमनाः ।
स्वेदनाय द्रवौष्णत्वाद्द्रवत्या च तृप्तिशान्तये ।
आहारभावात्प्राणायसरत्वाल्लाघवाय च ।

ज्वरघ्न्यो ज्वरसात्म्यत्वाच्च स्मात्पेयाभिरादितः । ज्वरानुपाचरेद्दीमानृते मयसमुत्थितान् ॥

अर्थ—औषधियोंके संयोग और लघुता के कारण यवागू अग्निवर्द्धक होती है, अधोवायु, मूत्र, पुरीष और दोषोंको अनुलोमन करनेवाली है । पेया द्रव है और उष्ण होनेसे स्वेदनकर्ता है, द्रव होनेसे तृपानाशक है, आहार गुणविशिष्ट होनेसे प्राणधारक है, सर होनेसे शरीर को हलकी करती है ज्वर के सात्म्य होनेसे ज्वर को नाश करनेवाली है, अतएव बुद्धिमान् वैद्य को उचितहै कि प्रथमही पेयासे ज्वरोंका उपचार करे परन्तु मयज ज्वरोंमें पेयाका पान करना उचित नहीं है ॥

यवागू वर्जित ज्वर ॥

मदात्यये मच्चनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफाधिके ।
ऊर्ध्वगेरक्तपित्ते च यवागूरहिताज्वरे ॥

अर्थ ... मदात्ययजन्य ज्वर, नित्यमय सेवीका ज्वर, ग्रीष्मऋतुका ज्वर, पित्तकफजन्य ज्वर और ऊर्ध्वगेरक्त पित्त ज्वर में यवागू पान न करावै ।

तर्पण विधि ।

तत्र तर्पणमेवाग्नेमयोज्यं लाजशकुभिः ॥
ज्वरापहैः फलरसैर्युक्तं समधुशर्करम् ॥ द्राक्षादादिमखर्जूरपियालैः सपरुषकैः ।
तर्पणार्हं पुकर्त्तव्यं तर्पणं ज्वरशान्तये ॥ ततः सात्म्यवलापेक्षी भोजयेज्जीर्णतर्पणम् ॥
तनुनामुद्गयूपेण जाङ्गलानां रसेन वा ॥
अन्नकाले पुष्पाप्यस्मै विधेयं दन्तधावनम् ।
योऽस्य वक्त्ररसस्तस्माद्विपरितीमियश्च यत् ।

तदस्यमुखवैशद्यं प्रकांक्षाचान्नपानयोः ।
घत्तेरसविशेषाणामभिज्ञत्वं करोति यत् ॥
विशोधयद्रुमशराग्रैरास्पृश्याल्यचास
कृत् । मास्त्वहुरसमद्यार्चयथाहारमवा
प्नुयात् ॥

अर्थ—प्रथमही ज्वर नाशक फलों का रस
तथा शहत और खांड मिलाकर ठाज(खील)
के सत्तूका तर्पण देवें । दाख अनार, खिजूर,
पियाल, फालसा इनका रस मिलाकर तर्पण
के योग्य पुरुषों के लिये ज्वर को शान्त कर
नेके निमित्त तर्पण दिया जाता है । जब त-
र्पण पचजाय तब सात्म्य और बलकी अपे-
क्षा करके भृंगका पतलाभूप और जांगल
पशुओंका मांसरस भोजनके समय देवें । भो-
जन करनेसे पहिले दन्तधावन ऐसे द्रव्यों
से करे जो मुखके रसके विपरीत हों औ-
र जिन का ज्ञापका भी खराब न हो । इसप्र-
कार दन्तधावन करने से रोगी के मुख में
विशदता (सफाई) होनी है और उसकी
अन्न पान में रुचिवृद्धि है सब रसोंका स्वा-
द ओने लगता है और उनका ज्ञान होजाता
है वृक्षकी शाखाके अग्रभाग से मुखको
शुद्ध करके और अच्छी तरह धोकर भस्तु,
इक्षुरस, और मद्यादिका रोग के अनुसार
पान करावें ॥

ज्वर में पाचन द्रव्योंका समय
पाचनीयं शमनीयं कपायं पाययेत्तत् ॥
ज्वरितं पट्टहेऽतीतं लेघन्नं प्रतिभोजितम् ॥
स्तम्भ्यन्तेन विपच्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम्
दोषावद्धा कपायेण स्तम्भित्वात्तरुणज्वरे

अर्थ—छः दिन व्यतीत होने पर ज्वर
रोगी को पाचन कर्त्ता और शमनकर्त्ता औ-
षधों का साथ पान करावें और लघुअन्नका
भोजन करावें । तरुणज्वरमें बवायका सेव-
न करानेसे दोषवद्ध और स्तम्भित होजाते
हैं और पचनेमें नहीं आते हैं तब वे विषम
ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥

नतु कल्पनमुद्दिश्य कपायः प्रतिपिध्यते । यः
कपायः कपायः स्यात्सर्वार्थस्तरुणज्वरे ॥

अर्थ—ऊपर जो तरुण ज्वरमें कपाय का
निषेध किया गया है वह कपायमात्र का नहीं
है परन्तु जो कपाय रसयाल है उसीका निषेध है ॥

दसदिन पर्यन्त पथ्यविधि ॥

यूपैरम्लैरनम्लैर्वाजाङ्गलैर्वारसैर्हितैः ॥
दशाहं तावदश्रीयालध्वनं ज्वरशान्तये ॥

अर्थ—ज्वरकी शांति के लिये दस दिन
तक अम्ल वा अनम्लयूप और हितकारी जां
गल पशुओं के मांसरस के साथ लघु
अन्न का पथ्य करे ॥

दसदिन पीछे कर्म ॥

अत ऊर्द्धं कफे मन्दे वा तपितो चरे ज्वरे ।
परिपक्वे पुदोषे पुसर्पिष्पानं यथा मृतम् । नि-
र्दशाहमपि ज्ञात्वा फफोत्तरमलं धितम् ।
न सर्पिः पाययेत्तु वैद्यः कपायं स्तम्भुपाचरेत् ॥
यावल्लघुत्वा दशनं दधान्मांसरसेन च ।
परं हलं दोषहरं परन्तश्च बलमदम् ॥ दाह
तृष्णापरीतस्य वा तपितो चरे ज्वरम् ।
वद्धमच्युतदोषं वानिरारमपयसा जयेत् ॥
क्रियाभिराभिः प्रशमनं प्रयातियदा ज्वरः ।
अक्षीणबलमांसस्य शमयेत्तत्तं विरेचनैः ॥

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनन विरेचनम् । का
मन्तुपयसातस्य निरूहैर्वाहरेन्मलान् ॥

अर्थ—दस दिन पीछे यदि कफ मन्द
पडजाय और वात पित्त प्रबल रहें और दोष
सब परिपक्व होजाय तब घृतका पान कराना
अमृत के समान गुणकारक है ।

दस दिन पीछे भी यदि कफ बलवान्
रहै तो उसको छधन ठाक न हुए ऐसे समय
में घृतपान न करावे किन्तु कपायों द्वाराही
चिकित्सा करे ॥

जबतक देह हल्की न हो तबतक मास
रस खाने को दे क्योंकि मासरस अत्यन्त
दोषनाशक, परमोत्तम और बलप्रद है ।

ऐसा ज्वर जिसमें वात पित्तकी अधि
कताहो और तृषा बलवान् हों और उस में
दोष बढ हो वा प्रच्युत हों ऐसे निरामज्वर
में दुग्धका सेवन करे ॥

यदि ऊपर कही हुई क्रियाओं से ज्वर
शान्त न हो और रोगी का बल और मांस
क्षीण न हुआहो तो विरेचन द्वारा ज्वर की
शान्ति करे और जो रोगी उरसे क्षीण हो
गयाहो तो उसको वमन विरेचन बुछन देवे।
किन्तु तृप्ति पर्यंत दुग्ध पान कराके अथवा
निरूहण यस्ति द्वारा दोषों को निकाल देवे ।

ज्वर में निरूहणवस्ति ॥

निरूहो बलमग्निश्च विज्वरत्वं मुदं रुचिम् ।
परिपेपु दोषेषु प्रयुक्तः शीप्रमावहेत् ॥

अर्थ—परिपक्व दोषोंमें निरूहण वस्ति-
का प्रयोग करनेसे बल, अग्नि, उर रहित-
ता, प्रसन्नता और अन्न में रुचि शीघ्रही
उत्पन्न होती है ॥

ज्वर में निरूहणवस्ति ॥

पित्तवाकफपित्तवापित्ताशयगतं हरेत् । स-
सनं ग्रीन्मलान् वस्तिर्हरेत् पकाशयस्थितान्

अर्थ— यस्ति पित्ताशयगत पित्तको नि-
काल देती है, ससनकर्ता है और पकाशयस्थ
तीनों मलों को निकाल देती है ॥

अनुवामनवस्तिविधान ॥

ज्वरे पुराणे संक्षीणे कफपित्तद्वामये ।

रूक्षवद्धपुरीषाणां प्रदद्यादनुवासनम् ।-

अर्थ—ज्वर पुराना पडगया हो, कफ पित्त
क्षीण होगये हों, अग्नि मन्दहो, और पुरीषरूक्ष
वा बद्ध होगयाहो तब अनुवासन वस्ति देवे ।

शिरोविरेचन

गौरवेशिरसः शूले विबद्धे प्विन्द्रियेषु च ॥

जीर्णज्वरे रुचिं रुदूकुर्यान्मूर्ध्वविरेचनम्

अर्थ—देहमें भारापन, शिरोपेदना, इन्द्रिय
विबध इन लक्षणों से युक्त जीर्णज्वर में
विरेचन देवे इसके देने से रुचि बढती है ॥

जीर्णज्वरके अन्य उपचार ॥

अभ्यङ्गाश्चाप्रदेहांश्च स्नेहान्सावगाहनान्
विभज्य शीतोष्णतया कुर्याज्जीर्णज्वरे भिप-
क्व । तराशु हि शमयाति वहिर्मार्गगतो ज्वर-
लभन्ते सुखमंगानि वलवर्णश्च वर्धते ।

अर्थ—भिपक्वको उचितहै कि जीर्णज्वर
में विरेचना करके शीतोष्ण अभ्यङ्ग स्निग्ध
प्रदेह और अग्राहन द्वारा चिकित्सा करे ।
इन उपचारोंके करने से वहिर्मार्ग गामी
ज्वर शान्त होजाताहै, अंग के अग्रय
सुखी होजाते हैं तथा बल और वर्णकी
वृद्धि होती है ॥

धूपनाञ्जनयोगैथयान्तिजीर्णज्वराःशमम्
त्वङ्मात्रशेषायेवाञ्चमधन्त्यागन्तुरन्वयः
इति क्रियाक्रमःसिद्धो ज्वरघ्नःसम्प्रकाशितः
येष्वान्वयपक्रमस्तानिद्रव्याण्यूर्ध्वमतःशृणु

अर्थ—ऐसे जीर्णज्वर जिनमें त्वचामात्र
शेष रह गई हो और आगन्तुकज्वर धूपन और
अञ्जनके योग से शमन होते हैं यह ज्वर-
नाशक चिकित्साका क्रम वर्णन किया गया
है, अब हम उन द्रव्योंका वर्णन करते हैं जो
इस चिकित्सा क्रम में उपयोगी होते हैं ॥

ज्वरनाशकप्रयोग ।

रक्तशाल्यादयःशस्ताःपुराणाःपट्टिकैःसह

यवाग्योदनलाजार्थज्वरितानांज्वरापहाः

अम्लामिलापीतामेवदाडिभाम्लांसनाग

राम् ॥ सृष्टविट्पैक्तिकोवायशीतामधुयु

तापिवेत् । लाजपेयांसुखजरापिप्पली

नागरैःशृताम् ॥ पिवेज्वरीज्वरहरांसु-

द्धानल्पाग्निरादितः ! पेयांश्चास्क्तशाली-

नांपार्श्ववास्ताशिरोरुजः ॥ श्वदंष्ट्राकण्ट

कारिभ्यांसिद्धाज्वरहरापिवेत् । ज्वराति

सारीपेयांवापिवेत्साम्लांशृतांनरः ॥ पृश्नि

पर्णाविलाविल्वनागरोत्पलधान्यकैः ।

अर्थ—ज्वर ग्रस्त रोगीके ज्वर को शान्त

करने के निमित्त रक्तशाली चांबलकी यवागू

भात और खील बनवाकर देवै ।

जो रोगी को खटाई पर इच्छा हो तो उस

यवागू में अनारकी खटाई और सोंठ डालकर

पान करावै । जो विष्टा और पित्त निकल गये

होती उसको ठंडी करके शहत डालकर

पान करावै ॥

मन्दाग्निवाला पुरुष क्षुधालगने पर पीपल
और सोंठ डालकर लाजपेया का पान करे।
यह सुख पूर्वकपचजाती है और ज्वरको भी
दूर करदेती है ।

लाज शाली चांबलों की पेया गोखरू और
कोटेरी डालकर सिद्ध करे और इसको पान
करे तो पार्श्व वेदना, वस्तिवेदना, शिरोरोग
और ज्वर ये सब नष्ट होजाते हैं ।

ज्वरातिसार रोगवाला पृश्निपर्णी, खरैटी, वे-
लगिरी, सोंठ, निलोफर और धनियां डालकर
सिद्धकी हुई पेयामें खटाई डालकर पान करे ॥

ज्वरनाशक अन्यप्रयोग ॥

शृतांविदारीगन्धाद्वैदीपनीस्वेदनीनरः॥

कासीश्वासीचहिक्कीचयवागूंज्वरितःपिवे

त् । विषद्ववर्चाःसयवाःपिप्पल्यामलकैः

कृताम् ॥ सारिप्पतीम्पिवेत्पेयांज्वरीदो-

पानुलोमनीम् । कोष्ठेविषद्वेसरुजिपिवेत्

पेयांशृतांज्वरी ॥ मृद्वीकापिप्पलीमूलच

व्यामलकनागरैः । पिवेत्सविल्वापेयां

वाज्वरेसपरिकर्तिके ॥ बलाट्टक्षाम्लको

लाम्लकलशधावनीशृताम् । अस्वेदनि-

द्रस्तृष्णार्तःपिवेत्पेयांसर्कराम् ॥ नाग

रामलकैःसिद्धाद्घृतभृष्टांज्वरापहम् ।

अर्थ—विदारीगन्धडालकर सिद्धकी हुई

यवागूखांसी, श्वास, हिचकी और ज्वररोगोंमें

देवै, यह यवागूदीपनीय और स्वेदनकर्ताहै ॥

जो बिष्टारकगया हो तो ज्वर रोगी

पीपल और आंवला डालकर सिद्ध की हुई

जौकी पेयामें घृत डालकर पान करे, यह

पेया दोपोंको अनुलोमन करनेवाली है ॥

कोष्ठवद्ध और शूलहोनेपर ज्वररोगी को किसमिस, पीपलामूल, चव्य, आंवला और सोंठ डालकर सिद्धकी हुई पेया पान करावै परिकर्तिका (पेट में मरोडा) रोग में ज्वररोगी बेलगिरी, खैरीटी, वृक्षाम्ल, कोलाम्ल, कलशी (पृष्णपर्णी), और धावनी (शालपर्णी) डालकर सिद्धकी हुई पेया पान करावै

जिसको पसीने और नींद नआती हो और तृप्ता अधिक लगतीहो वह सोंठ और आंवला डालकर सिद्धकी हुई और घृत में मुनीहुई पेयोंमें चीनी डालकर पानकरै । इससे ज्वर भी जाता रहता है ।

ज्वरपरयूप ॥

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्समकुष्ठकान्

यूपार्थेयूपसात्स्यानांज्वरितान्प्रकल्पयेत्

अर्थ—वे ज्वररोगी जिनको यूप सात्म्य है वे मूंग, मसूर, चना, कुलथी और मोठका यूप पीवै

ज्वरपरशाक ॥

पटोलपत्रं सफलं कुलकं पापचेलिकाम् ॥

ककौटकं केठिलं च विघातं शाकं ज्वरे हितम् ॥

अर्थ—ज्वरमें परवलके पत्ते, फल और डंठलकासाग, पाठ, ककौटक और करले का साग हित है ॥

ज्वरपरमांस ॥

लावान्कापिञ्जलानेपांश्चकोरानुपचक्रान् ॥
कुरङ्गान्कालपुच्छांश्च हरिणान्पृषतान्
शशान् । प्रदद्यान्मांससात्स्यायज्वरिता
यज्वरापहान् ॥

अर्थ—लवा, तांतर, हरिण, चक्रो, चक्रवा, कुरंग, कालपुच्छ, पृषत और खगोश

इनकामांस मांससात्म्य रोगियों को दैवै, ये ज्वरनाशक होते हैं ॥

ज्वरमें मांसरसका वर्णन ॥

ईपदम्लाननम्लान्वारसान्काले विचक्षणः
कुक्कुटांश्च मयूरांश्च तिसिरिक्कांश्च वर्तकान् ।
गुरुष्णत्वान्नशंसन्ति ज्वरे केचिच्च कित्सकाः ।
लघनेनानिलवलज्वरे यथधिकं भवेत् ॥ भिषग्मात्रा विकल्पज्ञो दद्यात्तानपिकालावित् ॥

अर्थ—बुद्धिमान् वैद्यको उचितहै कि यो-डीसी खटाई डालकर या बिना खटाई के मांसरस उचितकालमें ज्वररोगीको दैवै । मुर्गी, मोर, तीतर, कुब्ज और घतककामांसरस हित होताहै । कोई २ वैद्य यह कहतेहैं कि मांसरस भारी और उष्ण होताहै इसलिये ज्वर में देना ठीक नहीं है ॥

यदि ज्वरमें लघन करानेसे बात का बल अधिक होजाय तो वैद्यको उचित है कि मात्रा, विकल्प और कालके अनुसार मांसरसोंका सेवन करावै ॥

ज्वरपर मद्यादि विधि ॥

यर्मांभुचानुपानार्थं तृपितायमदापयेत् ॥
मयं वामयसात्स्याय यथादोषं यथावलम्
गुरुष्णासिग्धमधुरकपायांश्च नवज्वरे ॥
आहारान्दोषपक्वत्यर्थं प्रायशः परिवर्जयेत्
अनुपानक्रमः मिष्टो ज्वरघ्नः सम्प्रकाशितः ।
अत ऊर्ध्वमवश्यन्ते कपाया ज्वरनाशनाः ॥

अर्थ—भोजनके पश्चात् तृप्ता लगनेपर ज्वररोगीको उष्णजलका पान करावै । जिसको मय अनुकूलहै उसे यथादोष और यथावल

मद्यका अनुपान करावै । नवीन ज्वरमें दो पोंके पचानेके लिये गुरु, उष्ण, मधुर, स्निग्ध और कषायरस वाले आहारोंका सेवन न करावै । यह अनुभूत ज्वरनाशक अनुपानक्रम वर्णन किया गया है ॥

अब हम ज्वरनाशक काथोंका वर्णन करतेहैं

ज्वरनाशककाथ ॥

पाययंशीतकपायंवायुस्तर्पटकंपिवेत् ॥
सनागरंपर्पटकंपिवेद्वासदुरालभम् ॥ कि
राततिक्तकंमुस्तंगुडूचींविश्वभेषजम् ॥
पाठामुशीरंसोदीच्यंपिवेद्वाज्वरशान्तये ।
ज्वरघ्नादीपनाश्चैतेकपायादोपपाचनाः ॥
तृष्णारुचिप्रशमनामुखवैरस्यनाशनाः ।

अर्थ—ज्वरके दूर करने के लिये नांचे लिखीहुई ओषधियोंके प्रयोगोंका कपाय वा शीतकपाय बनाकर देवै यथा मोथा और पित्तपापडा इनका शीतकपाय वा कपाय पानकरै । अथवा सोंठ, पित्तपापडा, और जवासा इनका काथ पीवै । अथवा चिरायता, नागरमोथा, गिलोय सोंठ, पाठा, खस, और नेत्रवाला इनका कपाय ज्वरकी शांति के लिये पानकरै । ये तीनों कपाय जो ऊपर कहेगये हैं ज्वरशान्तकर्त्ता, दीपन दोषपाचन, तृपानाशक, अरुचिनाशक और मुखकी विरसता को नाश करनेवाले हैं ॥

ज्वरनाशकअन्यकाथ ।

कलिङ्गकाःपटोलस्यपत्रंकडुकरोहिणी ॥
पटोलःशारिवायुस्तंपाठाकडुकरोहिणी ।
निम्बःपटोलस्त्रिफलायुष्टीकामुस्तवत्सकाः
किराततिक्तमृताचन्दनविश्वभेषजम् ।

गुडूच्यामलकंमुस्तमर्द्धश्लोकसमापनाः ॥
कपायाःशमयन्त्याशुपञ्चपञ्चविधंज्वरम् ।
सन्ततसततान्येष्टुरतृतीयकचतुर्थकम् ॥
अर्थ—(१) इन्द्रजौ, परवलके पत्ते, कुटकी । २-परवल, शारिवा, मोथा, पाठा, कुटकी । ३-नीम, परवल, त्रिफला, किसमिस, मोथा, इन्द्रजौ । ४-चिरायता, गिलोय रक्तचन्दन और सोंठ । ५-गिलोय आंवला और मोथा । ये आधे २ श्लोक में कहेहुए पांच प्रकार के काथ क्रमसे सन्तत, सतत, अन्येष्टुक्त, तृतीयक और चतुर्थक इन पांचों प्रकारके ज्वरको नाश करते हैं ॥

ज्वरनाशक अन्यववाय ॥

वत्सकारग्वधंपाठांपद्मग्रन्थांकडुरोहिणीम्
मूर्वासातिविपानिम्बंपटोलधन्वयासकम्
वचायुस्तमुशीराणिमधूकत्रिफलांवलाम् ॥
पाययंशीतकपायंवापिवेज्ज्वरहरंनरः ।

अर्थ—इन्द्रजौ, अमलतास, पाठा, वच, कुटकी, मूर्वा, अतीस, नीम, परवल, जवासा वच, मोथा, खस, मुल्हटी, त्रिफला, खैरटी इन सबके काथ वा शीतकपायका पान करै यह ज्वरनाशक काथ है ।

अन्यप्रयोग ।

मधूकमुस्तमृद्वीकाकाशमर्यागिणरूपकम् ॥
त्रायमाणमुशीराणित्रिफलांकडुरोहिणीम्
पीत्वानिशिस्थितजंतुज्वराच्छीघ्रांविमुच्यते

अर्थ—मुल्हटी, मोथा, किसमिस, खेभारी फालसा, त्रायमाणा, खस, त्रिफला और कुटकी इनके शीतकपायका पान करनेसे ज्वर शांति होजाताहै ॥

अन्यप्रयोग ।

बृहत्सौवत्सकं मुस्तं देवदारुमहौषधम् । को
लवल्लीचयोगोऽयं सन्निपातज्वरापहम् ॥

अर्थ—देनों कटेरी, इन्द्रजौ, मोथा, देव
दारु, सोंठ, और गजपिल इनका काथ
सन्निपात ज्वरका नाश करने वाला है ।

विविधदोषयुक्त ज्वर परक्वाथ ।

जात्यामलकमुस्तानितद्वद्धन्वययासकम् ।

विविधदोषोज्वरितः कपायंसगुहंपिबेत् ॥

अर्थ—जायफल, आंबला मोथा, जवासा
और गुड़ इनका कपायकरके पीनेसे विविध-
दोष युक्त ज्वर नष्ट होजाता है ।

तिफलांश्रयमाणाश्च मृद्वीकांकटुरोहिणीम्
पित्तश्लेष्महरस्त्वेषकपायोद्यानुलोमिकः ॥

तृप्तशर्करा युक्तः पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ—त्रिफला, श्रयमाण, किसमिस
कुटकी और इनका काथ कफापित्तजन्य ज्वर
को नाश करने वाला और अनुलोमन कर्त्ता
है । शर्करा मिश्रित निशोथ काय पान करने
से भी ऊपर कहाहुआ गुण होता है ।

सन्निपात पर प्रयोग ॥

शटीपुष्करमूलञ्चन्याम्रीशृङ्गीदुरालभा ॥

गुहृचीनागरपाठाकिरातंकटुरोहिणी ॥

पृषशठ्यादिकोवर्गः सन्निपातज्वरापहः ।

कासहृद्ग्रहपाश्वार्तिश्वासतन्द्रामुशस्यते ॥

अर्थ—शटी, पुहकमूल, कटेरी, काकडा
सींगी, जवासा, गिलोय, सोंठ पाठा; चिरा
यता, कुटकी, यह शठ्यादिकवर्ग ज्वर नाश
क है तथा खांसी, हृद्ग्रह, दर्दपसली, श्वास
और तन्द्रा इन सबमें बहुत गुण दायक होता है ।

अन्यप्रयोग ।

बृहत्सौपुष्करमर्गीशटीशृङ्गीदुरालभा ।

वत्सकस्यचवीजानिपटोलंकटुरोहिणी ॥

बृहत्यादिर्गणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः ॥

कासादिपुचसर्वपुदधात्सोपद्रवेपुच ॥

अर्थ—देनों कटेरी, पौहकमूल, भारंगी
शटी, काकडासींगी, इन्द्रजौ, परवल, कुटकी
यह बृहत्यादिगण सन्निपात ज्वर नाशक है;
यह कास, हृद्ग्रह आदि सम्पूर्ण उपद्रवों में
विशेष गुणदायक है ।

कपायाश्चयवाग्वध्वपिपासाज्वरनाशनाः ॥

निर्दिष्टाभेषजाध्यायेभिषक्तानपियोजयेत्

अर्थ—तृपा और ज्वरनाशक कपाय
यवागू जो सूत्रस्थान के भेषजाध्याय में
वर्णनाकिये गये हैं उनका प्रयोग भी
करना चाहिये ॥

ज्वरमें घृतविधि ।

ज्वराः कपायैर्वमनैः लघुनैर्लघुभोजनैः । रुक्ष

स्य येन शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषग्जितमूर्खः

क्षतेजो ज्वरकरं तेजसारुक्षितस्य च ॥ यः स्या

दनुचलो धातुः स्नेहसाध्यः स चानलः । क

पायाः सर्वेष्वेते सर्पिपासहयोजिताः ॥ प्र-

योग्याज्वरशान्त्यर्थमग्निमसन्धुचणाः शिवाः

अर्थ—रुक्ष मनुष्यका ज्वर कपाय, व-
मन, लघन और लघुभोजनसे शान्त न हो
तो घृत देना श्रेष्ठ है ॥ रुक्ष व्यक्तिका ज्वर
तेजोमय होनेसे रुक्ष है और वायु उसका
अनुचल है अतएव वायु स्नेहसाध्य है ।

नीचे लिखे हुए कपायोंमें घृत डालकर
मिद्ध करना चाहिये । ये कपायज्वर शान्त-
कर्त्ता, अग्निवर्द्धक और कल्याणकारक हैं ॥

घृत सिद्ध करने का कपाय ।

पिप्पल्यः चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी ॥
कालिद्रक्तमलकशिरावाति विपास्थि
रा । द्राक्षामलकविल्वानित्रायमाणानि
दिग्धिका ॥ सिद्धमेतैर्घृतं सद्योजीर्णज्वर
मपोहति । सयंकासशिरःशूलपार्श्वशूलं
हलीमकम् ॥ अंसाभितापमग्निञ्च विप
मंसनियच्छति ।

अर्थ—पीपल, चन्दन, मोथा, उशीर
कुटकी, इन्द्रजी, भू आंवला, सारिया, अतीस
शालिपर्णी, दाख, आंवला, बेलगिरी, त्राय-
माण, कटेरी इनके काथमें सिद्ध किया हुआ
घृत जीर्ण ज्वरको शीघ्र नष्ट करदेता है ।
क्षयी, खांसी, शिरो वेदना, पार्श्वशूल हली-
मक, अंसाभिताप और विपमग्नि ये भी
दूर होजाते हैं ॥

अन्यप्रयोग ।

वासांगुष्ठचीत्रिफलात्रायमाणायवासकम्
पक्त्वा तेन कपायेण पयसा द्विगुणेन च ।
पिप्पलीमुस्तमृद्वीकाचन्दनोत्पलनागरैः ॥
कल्कीकृतैश्च विपचेत् घृतं जीर्णज्वरापहम्
अर्थ—अहूसा, गिलोय, त्रिफला, त्राय-
माण, जवासा, इनके काथमें घृत और
घृत सेदूना दूध, तथा पीपल, मोथा, किस-
मिस चन्दन, नीलोत्तर, सोंठ, ये सब डा-
लकर घृत पकावै यह घृत जीर्णज्वरना-
शक होता है ॥

अन्य प्रयोग ।

बलांशुद्रं पृष्ठहृत्कीलसीं धावनीं स्थिराम् ॥
निम्बं पर्पटं कुस्तं त्रायमाणं दुरालभाम् ।
कृत्वा कपायं पयसैर्दद्यात्तामलकीं शटीम् ॥

द्राक्षां पुष्करमूलञ्च मेदामामलकानि च ।

घृतं पयश्च तत्सिद्धं सर्पिज्वरहरं परम् ॥ स
यकासाशिरःशूलपार्श्वशूलसतापनुत् ।

अर्थ—खैरटी, गोखरू, कटेरी, प्रश्नपर्णी
छोटी कटेरी, शालपर्णी, नीम, पितपापडा,
मोथा, त्रायमाण, जवासा, इनका काथ करे ।
तथा भूआंवला, शटी, दाख, पौहकरमूल, मेदा
और आंवला इनको पीस कर लुगदी बनावे
और इनमें घृत और दूध डालकर सिद्ध करे
तो यह घृत उत्तम ज्वर नाशक होता है ।
क्षयी, खांसी, शिरोवेदना, पार्श्वशूल और
अंस तापको दूर करता है

ज्वर में शोधन विधि ।

ज्वरिभ्यो बह्वदोषेभ्य ऊर्द्धश्चाधश्च बुद्धिमा-
न ॥ दद्यात्संशोधने काले कल्पेयदुपदेक्ष्यन्त ॥

अर्थ—ऐसे ज्वर रोगीको जो बहुत दोषों
से युक्त हो उसे बुद्धिमान् वैद्य कल्पस्थान में
कहे हुए वमन विरेचन उचित काल में देवै ।

ज्वर में वमन के प्रयोग ।

पर्दनं पिप्पलीभिर्वा कलिर्हर्मधुकेन वा ॥

युक्तमुष्णाम्बुना पर्यवमनं ज्वरशान्तये ।

र्क्षाद्राम्बुनारसेनेक्षोरथावालवणाम्बुना ॥

ज्वरे प्रच्छर्दनं शस्तं मद्यैर्वा तर्पणेन वा । मृद्वी

कामलकानां वारसं प्रच्छर्दनं पिबेत् ॥ रस

मामलकानां वा घृतमृष्टं ज्वरापहम् ।

अर्थ—पीपल, अथवा इन्द्रजी अथवा मु-
लहटी के साथ मेनफल का चूर्ण मिला कर

गरम जलके साथ पान करनेसे वमन होती

है, यह वमन ज्वरनाशक है शहत और जल

अथवा ईखका रस नमकका जल अथवा म-

अन्य स्नेहनप्रयोग ।

पटोलपिचुमर्दाभ्यांगुह्यचामधुकेनच ।
मदनैश्चमृतःस्नेहोज्वरघ्नमनुवासनम् ॥
चन्दनागुरुकाश्मर्यपटोलमधुकोत्पलैः ।
सिद्धःस्नेहोज्वरहरःस्नेहवस्तिःप्रयुज्यते ॥
यदुक्तंभेषजाध्यायेविमानेरोगभेषजे ।
शिरोविरेचनंकुर्याद्युक्तिस्तज्ज्वरापहम् ।
यच्चनावनिकर्तैलयाश्चप्राग्भूमवर्तयः ।
मात्राशितियेनिर्दिष्टाः प्रयोज्यास्ताज्वरे-
ष्वपि ॥ अभ्यङ्गाश्चप्रदेहांधपरिपेकांश्चका-
रयेत् । यथाभिलापंशीतोष्णंविभज्यद्वि-
विधंज्वरम् ॥ सहस्रधौतसर्पिर्वर्तैलवाच-
न्दनादिकम् । दाहज्वरमशमनदद्याद-
भ्यञ्जनंभिषक् ॥

अर्थ—परवल, नीमकीछाल, गिलोय, मु-
लहठी, मेंनफल इनके साथ घृतको सिद्ध
करके ज्वरनाशक अनुवासनवस्ति देवै । अ-
थवा चन्दन, अगर, खंभारी, परवल, मुल-
हठी, नीलोफर इनमें सिद्ध कियेहुए घृतकी
स्नेहनवस्ति ज्वरनाशक होती है ।

जो सूत्रस्थानमें और विमानस्थानमें शिरो-
विरेचन कहे गयेहैं वेभी युक्तिपूर्वक देने चा-
हिये । उनके प्रयोगसे भी ज्वरनाश होताहै ।

सूत्रस्थानके मात्राशितिय अर्थायंम जो
नक्ष्य तैल, धूमवर्त आदि प्रयोग वर्णन
कियेगये हैं वेभी ज्वरमें करने चाहिये ॥
शीत और उष्ण दोनों प्रकारके ज्वरों की
विभेचना करके ठंडा और गरम अभ्यंग,
प्रदेह और परिपेक करै ॥ हजारवार घेया
हुआ घी, वा चन्दनादि तैलका अभ्यंग क-
रनेसे दाहज्वर नष्ट होजाताहै ॥

चन्दनाद्य तैल ।

अथ चन्दनाद्यतैलमुपदेक्ष्यामः ।

चन्दनशैलेयभद्रश्रियकालानुसार्यकाली
यकपद्मापद्मकोशीरशारिवामधुकप्रपौण्ड-
रीकनागपुष्पोदीच्यचन्यपद्मोत्पलनलि
नकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रविसमृ-
णालशालूकशैवालकशेरुकानन्ताकुशका
शेक्षुदर्भशरनलशालिमूलजम्बुवेत्रवेतस
धानीरगुन्द्राककुभाशनाश्वकर्णस्यन्दन-
वातपोथसालतालधवतिनिशखदिरकद-
रकदम्बकाश्मर्यफलसर्जप्लक्षवटकपीत
नोदुम्बराश्वत्थन्यग्रोधलोध्रधातकीदूर्वा
त्कण्टकशृङ्गाटकमञ्जिष्ठाज्योतिष्मतीपुष्क-
रवीजमौञ्चादनवदरीकोविदारकदली-
संवर्तकारिष्टशतपर्वाशतिकुम्भिकाशताव-
रीश्रीपर्णीश्रावणीमहाश्रावणी रोहिणी
शीतपावयोदनपाकीकालावलापयस्या-
विदारीजीवकपर्पभकमेदामहामेदामधुर-
कृप्यमोक्तातृणशून्यमोचरसाटरूपकचकु-
लकुटजपटोलनिम्बशालमलीनालिकेरख-
र्जूर्मृदीकापियालप्रियंगुधन्वनात्मगुसा-
मधुकानामन्येपाञ्चशीतवीर्याणांयथाला-
भमोपधानांकपायंकारयेत् । तेनकपायण
द्विगुणितपयसातेपामेवचकल्केनकपाया
धमाग्रंमृद्वग्निनासाधयेत्तैलमुत्तैलंमभ्य-
ङ्गादेचसद्योनाहंज्वरमपनयत्येतैरेवचौषधैः
सुश्लक्ष्णपिष्टैःसुशीतैःप्रदेहझारयेदतैरेवच
शृतशीतंसलिलमवगाहपारिपेकार्थंप्रयुञ्जी-
तइतिचन्दनाद्यतैलं ।

अर्थ—रक्तचन्दन, शिलापुष्प, सफेद च-

न्दन, कालानुसार्य [शैलेय] पीतचन्दन, पद्मा, पद्माख, उत्तीर, शारिवा, मुलहटी पुण्डरीक, नागकेसर, नेत्रवाला, चव्य, पथ, नीलकमल, नलिन, कमोदनी, सीगन्धिक, पुण्डरीक, शतपत्र, विस (कमलनाल), मृणाल, शालक, शैवाल, केसरू अनन्तमूल कुशा, कांस, ईख, दाम, सरकंडे की जड़, नरसलकी जड़, शालिमूल, जामन, वेत, वेतस, वाणीरि, गुन्द्रा, अर्जुन, असन, साल स्यन्दन (तिनिशवृक्ष), वातपोथ (पलास) साल, ताल, धौ, तिनिश, खैर, दुर्गन्धखैर, कदम्ब, खंभारीफल, सर्ज, पाकड़, बट कपीतन, गूलर, पीपल, बड़, लोध, धाय, दूध, उत्कण्ठक, सिंघांडा, मजीठ, मालकांगनी, पुष्करधीज, क्रौञ्चादन, बेर, लालकनेर कैला, मोथा, नीम, शतपर्वा (एक प्रकार की दूब) शीतकुम्भिका, सितावर, खंभारी श्रावणी, महाश्रावणी, कुटकी, शीतपाकी [खैरटी] ओदनपाकी, काळा (नीलिनी) खैरटी, क्षीरकाकोली, बिदारीकन्द, जीवक, कपभक, मेदा, महोमेदा, मूर्ब्बा, अतिवला, मालिका, मोचरस, अडूसा, वकुल, कुडा, की छाल, परवळ, नीम, सेमर, नारियल, खिजूर, किसमिस, पिपाल, चिरोजी, धन्वन केच, महुआ, । इन सब औषधियोंको तथा अन्य शीतवीर्यवाली औषधोंको जो जो मिल सकें इकट्ठी करके क्वाथ करें फिर इस क्वाथका आधा तेल और दूना दूध तथा इन्हीं औषधोंका कल्क करके मन्दी मन्दी आग पर पकावें ॥ यह तैल दाहज्वर को

शीघ्रही दूर करदेताहै । इन्हीं औषधियोंको महीन पीसकर ठंडी ठंडीका लेप करें और इन्हीं औषधोंको डालकर जल ओटावें और ठंडा करके स्नान और परिपेक में दें ॥ यह चन्दनाद्य तैल है ।

अन्यप्रयोग ॥

मध्वारनालक्षीरदधिघृतसालिलसेकावगा हांश्चसद्योदाहज्वरपपनयन्तिशीतस्पर्शत्वादिति ॥

अर्थ—शहत, कांजी, दूध, दही, घी और जल इनका स्पर्श शीतल है इनका परिपेक और अवगाह में प्रयोग करने से तत्काल दाह दूर हो जाता है ।

दाहज्वर में अन्य उपचार ।

पौष्करपुमुशीतेमुपभोत्पलदलेपुच । कल्लाराणाश्चपत्रपुक्षौमेपुविमलेपुच । चन्दनोदकशीतेपुमुप्यादाहादिनःसुखम् ॥ हिमाम्बुसिक्तेसदनेशीतेधारागृहेऽपिवा । हेमशंखप्रवालानामणीनामौक्तिकस्यच ॥ चन्दनोदकशीतानांसंस्पर्शानुरसानपृशेत्सगभिर्नीलोत्पलैःपद्मैर्व्यजनैर्विविधैरापि ॥ शीतवातावहैर्व्यज्येच्चन्दनोदकवर्षिभिः । नद्यस्तडागाःपद्मिन्योद्गदाश्चविमलोदकाः । अवगाहेहितादाहतृष्णाग्लानिज्वरापहाः । प्रियाःमदक्षिणाचाराःप्रमदाश्चन्दनोक्षिताः । सान्त्वयेयुःपरैःकर्ममणिमौक्तिकभूषणाः । शीतानिचान्नपानानिशीतान्युपनानिचवायवःचन्द्रपादाश्चशीतदाहज्वरापहाः ॥

अर्थ—दाहज्वरसे पीडित मनुष्यको उचितहै कि ऐसे ठंडे घरमें जहां शीतल जलें

का छिडकावहोरहाहो अथवा जहां फव्वारे चलरहेहों शीतलकमल के पत्तों पर अथवा रक्तकमलमें नीलकमल वा कल्हारके पत्रोंपर वा नरमनरम रेशमीवस्त्रोंपर शयन करै जिनपर शीतल चन्दनोदकभी छिडकरहाहो । सुवर्ण, शंख, मृगा, मणि, मोती और शीतलचन्दनोदक को अपने देह पर लगाता रहै । नीलकमल और लाल कमल की माला धारण करै । ऐसे पंखों से हवा करावै जिनपर चन्दनका जल छिडक रहाहो और जिनसे ठंडी २ वायु आतीहो । निर्मलजल के नदी तालाव वा हृद्में जिनमें कमल खिल रहे हैं स्नान करनेसे दाह तृष्णा, ग्लानि और ज्वर शीघ्र शान्त होते हैं ! अत्यन्त प्यारी, चतुर, चन्दन लगी हुई, मणिभूषणादि अलंकारों को धारण करने वाली, नवीन स्त्रियोंसे आलिंगन करने से भी दाह ज्वर शान्त होजाताहै ! शीतल अन्नपान, शीतलउपवन, शीतलवायु, शीतल चन्द्रमाकी किरण इनका सेवन करने से भी दाहज्वर शांत होता है । अधोष्णाभिमायिणां ज्वरितानां अभ्यङ्गा

दीनुपक्रमानुपदक्ष्यामः ।

अर्थ—अब हम उन अभ्यङ्गादि का वर्णन करते हैं जो ऐसे शीतज्वर रोगियों को हितकारी हैं जिनको उष्ण पदार्थ के सेवन की आवश्यकता है ।

अगुचर्यादि तेल ॥

अगुरुकृष्णतगरपत्रनलदशैलेयकध्यामकहरेणुकास्थौण्यकक्षेमिकैलावरावराहदलपुरतमालपत्रभूर्ताकरोहिपसरलसल्ल

कीदेवदार्वशिमन्थविल्वस्योनाककाश्मर्थपाटलापुर्ननवानृश्चिरकण्टकारिकाट्टहतीशालिपर्णीपृश्निपर्णीमापपर्णमुद्रपर्णीगोक्षुरकरैण्डशोभाञ्जनकवरुणाकाचिरिविल्वतिल्वकशटीपुष्करमूलभाण्डारोरुबूकपचुराक्षीवाश्मान्तकशिशुमातुलङ्गमूलकमूलपर्णीपीलुपर्णीतिलपर्णीमेपमृद्धीहिस्वान्तशठैरावतकभट्टातकास्फातकण्डीरात्मजकैपीकाकरञ्जधान्यकाजमोदपृथ्वीकामुमुखसुरसकुठेरककण्डारकालमालकपर्णासत्तवकफाणिञ्जकभूस्तृणधृङ्गवरपिप्पलीसर्पपाश्वगन्धारास्नारुहारोहावचावलातिवलागुडूचीशतपुष्पाशीतवल्लीनाकुलीगन्धनाकुलीश्वेताज्योतिष्मतीचित्रकाध्यण्डाम्लचाङ्गेरीवदरकुलत्थामापानामेवंविधानामन्येषांचोष्णवीर्याणायथालाभमौषधानां कपायङ्कारयेत्तेन कपायेणतेपामेवचकल्केनसुरासौवीरकतुपोदकमेरेयमेदकदधिगण्डारनालकद्वरप्रतिविनीतेनतैलपात्रंविपाचयेत् ॥ तेनसुखोष्णेनतैलेनोष्णाभिप्रायेणज्वरितमभ्यञ्ज्यात् । तथाशीतज्वरःप्रशाम्यतितैरेवचौषधैश्श्लेष्मणपित्तैःसुखोष्णैःप्रदेहंकारयेत् ॥ एतेपामेवचसुखोष्णकाथमवगाहनपरिपेकार्थमगुञ्जीतज्वरप्रशमार्थमिति ॥ इति शीतज्वरेअगुचर्यादितैलम् ॥

अर्थ—अगर, कूठ, तगर, तेजपात, खस, शैलेय, ध्यामकतृण, हरेणु, धूनेर, हलदी, इलायची, त्रिफला, प्रियंगुक पत्ते, पुर (घूपागर) तमालपत्र, अजवायन,

रोहिषतृण, सरलकाष्ठ, शलुकी, देवदारु, अरुणी, बेलगिरीकीछाल, श्यौनाक, खम्भारी, पाटला, पुनर्नवा, वृश्चीर, (लालसांठ) छोटीकटेरी, बडीकटेरी, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, गोखरू, अरण्ड, सहजना, वरना, आक, चिरवित्त्व [एक प्रकार का कड़ा,] लोध, कचूर, पीहकर मूल, भाण्डीर, अरंड, पतूर, सहजना, अश्मंतक शिपु, विजौरा, मूलक, मूलपर्णी पीलुपर्णी, तिलपर्णी, मेंढासिंगी, हिला, दन्तशठा, ऐरावत, भिलाया, आस्फोतक, कण्डीर, आत्मजक, इर्पाका, कंजा, धनियां, अजमोद, कालाजीरा, सुमुख, सुरस, कुटेरक, कण्डीर, कालमाल, पर्णास, क्षवक, फणिज्झक [ये औंठों प्रकारकी तुलसी होती हैं], भूस्तृण, सोंठ, पीपल, सरसों, असगन्ध, रास्ना, दूबकीजड, वच, बला, अतिबला, गिलेय, सोंफ, शीतबल्ली, नाकुली, गन्धनाकुली, श्वेत अपराजिता, मालकांगनी, केंच, अम्लचांगेरी, बेर कुलधी, उरद । इन सबको तथा और भी ऐसेही उष्णवीर्य द्रव्योंको जो मिलसकें इकट्ठे करके इनका काथ करै ॥ यह कपाय और इन्हींका कल्क तथा मुरा, सौवीरक, तुपोदक, मेरेय, मेदक, दधिमण्ड, कंजा, और कद्वर, इन सबको इकट्ठे करे, और एकपात्र अर्थात् सोलह सेर तेल इकट्ठा करके सबको पकावै-। इन मुहूर्तें २ गरम तेल से शीतज्वर वाले रोगी का अम्यञ्जन करै ॥ इन्हीं औषधोंको महीन पीसकर गरम र का लेप करनेसे शीतज्वर शान्त

होजाता है । इन्हींका काथ करके परिषेक वा अवगाहन करने से ज्वर शान्त होजाता है । यह शीत ज्वरमें अगुर्वादि तेल है ॥

शीतज्वर में अन्य उपचार ।

भवन्तिचात्र ।

त्रयोदशविधःस्वेदःस्वेदाऽध्यायेनिदर्शितः
मात्राकलाविदायुक्तःसचशीतज्वरापहः॥
साकुटीतच्छयनंतच्छावच्छादनंज्वरम्
शीतंप्रशमयन्त्याशुधूपाश्चागुरुजाघनाः ।
पवित्रचारुगात्राश्चतरुणयोयौवनोष्मणा ।
आश्लेषाच्छमयन्त्याशुप्रमदाःशिशिरज्वरम् ॥
स्वेदनान्यन्नपानानिवातश्चेष्महराणिच ।
शीतज्वरंजयन्त्याशुसंसर्गवल
योजनात् ॥

अर्थः—स्वेदाध्यायमें जो तेरह प्रकार के स्वेदन वर्णन किये गये हैं उनकी मात्रा और कालका विचार करके प्रयोग करने से शीत ज्वर नष्ट होजाता है । कुटीप्रावेशिक विधि, शयन तथा आच्छादन भी जो वर्णन किये हैं तथा अगर और कपूर की धूपका प्रयोग करनेसे शीत ज्वर शान्त होजाता है ॥ सुन्दर मनोहर गात्रवाली तरुणई में भरपूर प्रमदाओं के गाढ़ आलिंगनकरने पर उनके यौवन की गरमई से शीतज्वर शान्त होजाता है ॥ वातकफनाशक स्वेदन अन्नपान के संसर्गवल के साथ [एकसाथ] प्रयोग करने पर शीतज्वर शान्त होजाता है ॥ वातजेश्रमजैचैवपुराणेष्वतज्वरे । लघु ननंहितंविद्याच्छमनैस्तानुपाचरेत् ॥
अर्थ—वातज, श्रमज, जर्ण और क्षतज

ज्वरों में लघन हितकारी नहीं होता है, इन की चिकित्सा संशमन औषधियों द्वाराकरे । विक्षिप्यामाशयोष्माणंयस्मद्वत्वारसंनृणाम् । ज्वरं कुर्वन्ति दोषास्तु हीयतेऽग्निबलंततः ॥ यथा प्रज्वलितो बन्धुः स्थाल्यामिन्धनवानपि । न पचत्योदनं सम्यगग्निप्रेरितो वह्निः ॥ पक्तिस्थानात्तदादोषैरूष्माक्षिप्तो बहिर्नृणाम् । न पचत्यभ्यवहृतं कृच्छात्पचति बालघु । अतोऽग्निबलरक्षार्थं लघनादिक्रमो हितः । सप्ताहेन हि पच्यन्ते सर्वधातुगतामलाः ॥ निरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽग्रेऽहानि ।

अर्थ—जिस कारण से दोष रसको प्राप्त होकर आमाशयस्थ ऊष्मा को स्थान से हटा कर ज्वरको उत्पन्न करते हैं इसी हेतु से अग्निबल क्षीण होजाता है । जैसे जलती हुई ई धनयुक्त अग्नि हवाके झोकसे बाहर निकलकर हांडाके भातको नहीं पका सकती है । तैसेही दोषों से प्रेरित होकर आमाशय से निकली हुई ऊष्मा भोजन को नहीं पचा सकती है अथवा लघु अन्नकोभी काठिनतासे पचाती है । इसलिये आग्निके बलकी रक्षा के निमित्त लघन करना हित है । सातदिवस तक लघन करनेसे सर्वधातुगत दोष पच जाते हैं । आठवें दिन ज्वर प्रायः निरामय होजाता है वातज ज्वर में चिकित्साक्रम ।

उदीर्णदोषस्त्वल्पाग्निरश्नगुरुविशेषतः ॥ मुच्यते स हसामागैश्चिरं हि दयाति वानरः । एतस्मात्कारणाद्विद्वान्वातिकेऽप्यादितो ज्वरे ॥ नातिगुर्यति वा भिग्वं भोजयेत् स

हसानरम् ॥ ज्वरे मास्तज्जत्वादावनपेक्ष्यापि हि क्रमम् ॥ कुर्यान्निरनुबन्धानामभ्यङ्गादीनुपक्रमान् । पाययित्वा कपायञ्च भोजयेद्रसभोजनम् ॥ जीर्णज्वरहरं कुर्यात् सर्वशश्चाप्युपक्रमम् ।

अर्थ—उदीर्ण दोष और अल्पाग्निवाला पुरुष यदि विशेष करके भारी भोजन करे तो शीघ्रही मर जाता है या बहुत दिन तक हेश पाता है । इसकारण से विद्वान् वैद्यको उचित है कि वातिक ज्वर में भी प्रथमही अत्यन्त भारी वा स्निग्ध भोजन न करावे ।

वातज ज्वर में जो कफ पित्तादि दोषोंका अनुबन्ध न हो तो प्रथमही लघनादि क्रमकी उपेक्षा करके अभ्यङ्गादि द्वारा चिकित्सा करे । काय का पान कराके मांसरस का भोजन करावे । और जो जीर्ण ज्वरके नाश करने वाली रीति कही गई है वह सब वातज ज्वरमेंकरे

कफज ज्वर में चिकित्साक्रम ।

श्लेष्मलानामवातानां ज्वरोऽनुष्णकफाधिकः ॥ परिपाकं न सप्ताहेनापियाति मृदुष्माणाम् । तंक्रमेण यथोक्तेन लघनाल्पाशनादिना ॥ आदशाहमुपक्रम्य कपायाद्यैरुपाचरेत् ।

अर्थ—कफ प्रकृति और हीन वात वाले पुरुषों का शरीर ठंडा रहता है और उसको कफाधिक ज्वर होता है उसकी जठराग्निमन्द होती है इससे ज्वर सात दिन में नहीं पचता है : इस ज्वर में पूर्वोक्त क्रम से दस दिन तक लघन या अल्प भोजन द्वारा चिकित्सा करके कायादि से चिकित्सा करे !

अन्य ज्वरोंमें चिकित्साक्रम ।

सामायेयेचकफजाःकफपित्तज्वराश्चये ।
लघनलघनीयोक्ततेपुकार्यप्रतिप्रति॥ वम
नैश्विरेकैश्ववस्तिभिश्चयथाक्रमम् ॥ ज्व-
रानुपचरेद्धीमान्कफपित्तानिलोद्भवान् ।
संलघ्नान्सन्निपातितान्बुद्धवातरतमैःसमैः
ज्वरान्दोषक्रमापेक्षीयथोक्तैरोपधैर्जयेत् ।

अर्थ—आमज्वर, कफज्वर तथा कफ
पित्त ज्वरोंमें सम्पूर्ण लघनीयोक्त लघनोंका
दोषके अनुसार प्रयोग करना उचित है ।
बुद्धिमान् वैद्यको उचितहै कि कफज्वरकी
वमनसे पित्तजकी विरेचन से और वातज
की वस्ति प्रयोगसे चिकित्सा करे । द्वन्द्वज
और सन्निपातजज्वर में दोषोंकी न्यूनता,
अधिकता और समानता का विचार करके
यथोक्त औषधियोंद्वारा चिकित्सा करे ।

सन्निपातज ज्वरमें चिकित्साक्रम ।

वर्द्धनैकदोषस्यक्षपणेनोच्छिस्तस्यवा ॥
कफस्थाननुपूर्व्यावासन्निपातज्वरंजयेत्

अर्थ—सन्निपातज ज्वरमें हीन दोष को
वढाने से और वृद्धदोषको क्षण करने
से चिकित्सा करे, जब दोष समान होजाय
तब प्रथम कफको फिर पित्तकी और फिर
वातकी चिकित्सा करे ।

कर्णमूलकाचिकित्साक्रम ॥

सन्निपातज्वरस्यान्तेकर्णमूलेमुदारुणः॥
शोथःसञ्जायतेतेनकाश्चिद्वममुच्यते । र-
क्तावसेचनेःशीघ्रं सर्पिण्यानश्नतजयेत् ॥

प्रदेहःकफपित्तज्वरनाशनेःकवलग्रहेः ॥

अर्थ—सन्निपातके अन्तमें कर्णमूल ना-

मक एक दारुण शोथ उत्पन्न होताहै इससे
कोई २ ही वचताहै, इस शोथको फस्त
खोलकर, घृतपान कराके, कफ पित्तनाशक
प्रदेह, नस्य वा कवलग्रह द्वारा शीघ्रही दूर
करने का उपाय करे ॥

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्ज्वरोयस्यनशाम्य
ति ॥ शाखानुसारिरक्तस्यसोऽवसेकात्
प्रशाम्यति । विसर्पेणाभिघातेनयथावि-
स्फोटकैर्ज्वरः ॥ तत्रादौसर्पिःपानं कफ-
पित्तोत्तरोनचेत् ।

अर्थ—शीतल, उष्ण, स्निग्ध और रू-
क्षादि उपचारों द्वारा जिसका ज्वर शान्त
नहो तौ यह ज्वर शाखानुसारी होताहै यह
रक्त मोक्षण से शान्त होताहै । जो ज्वर
विसर्प, अभिघात, और विस्फोटक द्वारा उ-
त्पन्न होताहै उसमें प्रथम घृतपान करावे
परन्तु इन ज्वरोंमें कफ पित्त की अधिकता
न हो तो ऐसाकरे ।

जीर्णज्वरमें चिकित्साक्रम ।

दौर्बल्यादेहधातूनांज्वरोजीर्णोऽनुवर्त्तते ।

वल्यैःसदृहणस्तस्मादाहारस्तमुपाचरेत् ।

अर्थ—देहकी सम्पूर्ण धातुओं की दुर्ब-
लता से जीर्णज्वर उत्पन्न होताहै, अतएव
वलयकारक और वृहणकर्त्ता आहारों के द्वारा
इसकी चिकित्सा करे ॥

विषमज्वरमें चिकित्साक्रम ।

कर्मसाधारणंद्वय्यानुवृत्तीयकचतुर्थके ॥

आगन्तुःशुक्लवर्णीहिमायशोविषमज्वरे ।

अर्थ—तिजारी और चौथेया ज्वरमें सा-
धारण विधि करे, क्योंकि विषमज्वरमें प्रायः
आगन्तु का अनुबन्ध होता है ॥

वातप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ।

वातप्रधानं सर्पिर्भिर्वस्तिभिः सानुवासनैः ।

स्निग्धोष्णैरनुपानैश्च शमयेद्विषमज्वरम् ।

अर्थ—वात प्रधान विषमज्वरको घृत तथा अनुवासनादि वस्तिकर्म द्वारा शमन करै और भोजन करके स्निग्ध और उष्ण अनुपानका सेवन करै ॥

पित्तप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ।

विरेचनं न पयसा सर्पिपासंस्कृतेन च ॥ वि

षमन्ति क्तशीतैश्च ज्वरं पित्तोत्तरं जयेत् ।

अर्थ—पित्तप्रधान विषमज्वरकी चिकित्सा

विरेचन और दूधसे संस्कार किये हुए घृत

और तिक्त शीतकषायों द्वारा करै ॥

कफप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ॥

वमनं पाचनं रूक्षमनुपानं विलंघनम् ॥

कषायोष्णञ्च विषमज्वरेशस्तं कफोत्तरे ।

अर्थ—कफ प्रधान विषमज्वर में वमन

पाचन, रूक्ष अनुपान, लंघन, कषाय और

उष्णक्रिया द्वारा चिकित्सा करै ॥

विषमज्वरनाशक अन्ययोग ॥

योगाः पराः प्रवक्ष्यन्ते विषमज्वरनाशनाः ॥

प्रयोक्तव्या मतिमतादोषादीन् प्राविभज्यये

चुरासमण्डपानार्थं भक्ष्यार्थं चरणायुधाः

तिक्ष्णैश्च मधुरैश्च प्रयोज्यो विषमज्वरं ।

पिवेद्वा पटूपलं सर्पिर्भयां वा प्रयोजयेत् ।

त्रिफलायाः कषायं वा गुडं च्यारसमेव वा ।

नीलिनी मज्जा गन्धाश्च त्रिवृतां कटुरोहिणीम् ॥

पिवेज्ज्वरागमे युक्त्या स्नेहस्येदोषपादितः ।

सर्पिषो महीमात्रापीत्वा वा छर्दयेत् पुनः ॥

उपयुज्यान्नपानं वा प्राभूतं पुनरुल्लिखेत् ।

मानं मधुं प्रभूतं वा पीत्वा स्वप्याज्ज्वरागमे ॥

आस्थापनं यापनं वा कारयेद्विषमज्वरं ।

पयसा वृषदंशस्य शकृद्वा तदहः पिवेत् ॥

वृषस्य दधिमण्डेन सुरया वा सासैन्धवम् ॥ पि

प्पल्याः त्रिफलायाश्च दध्नस्तक्रस्य सर्पिषः

पञ्चगव्यस्य पयसः प्रयोगो विषमज्वरं ।

अर्थ—अब हम विषमज्वरनाशक कुछ

उत्कृष्ट प्रयोगों का वर्णन करते हैं, बुद्धिमान्

को उचित है कि इन योगोंका प्रयोग दोषों

की विवेचना करके करै ॥

विषमज्वर में पीने के लिये सुरा और

सुरामण्ड, खाने के लिये मुर्गा, तीतर और

मोरका मांस देवे । अथवा पटूपल घृत, हरड

त्रिफलाका काथ और गिलोयका रस देवे ।

अथवा रोगीका स्नेहन और स्वेदनकर्म कर-

के ज्वरके आगममें नीलिनी, अजगन्धा, नि-

सोथ और कुटकी इनका पान करावे । अ-

थवा घी की बड़ी मात्रा को पिलाकर वमन

करादे । अथवा बहुतसा अन्नपान कराके

वमन करादे । अथवा ज्वरके आगममें अन्न

और बहुतसा मद्यपान कराके शयन करादे-

वै और जो नींद न आवै तो आस्थापनादि

वस्तिका प्रयोग करै अथवा जिस दिन ज्वर

आवै उस दिन दूध के साथ बिल्लीका विष्टा

पान करावे ।

अथवा बैलका गोबर सेंधेनमक में मिलाकर

दधिमण्ड वा मद्य के साथ पान करै ।

अथवा पांवल, त्रिफला दही, मठा, घी

पंचगव्य और दूधका प्रयोग करना चाहिये ।

विषमज्वर में अन्य प्रयोग ।

लघुनस्पसतैलस्य प्राग्भक्तमुपसेवनम् ॥

मेव्यानामुष्णवीर्याणामामिषाणाञ्च भ-
क्षणम् । हिंशुतुल्यानुवैषाघ्रीवसानस्यसै-
न्धवाः ॥ पुराणसर्पिःसिंहस्यवसातद्भृशसै-
न्धवाः ॥ सैन्धवं पिप्पलीनाश्चतण्डुलाः समन-
शिला नित्राञ्जनतैलपिष्टं स्यते विषमज्वरे
पलंकपानिम्बपल्लवचाकुण्ठहरीतकी । सर्प-
पाः सयवाः सर्पिर्धूपनज्वरनाशनम् ॥ ये
धूमाधूपनं पच्यन्वाचनश्चाञ्जनश्च यत्पानो-
विकारे व्याख्यातं कार्यं तद्विषमज्वरे ॥

अर्थ—विषमज्वर में भोजन करने से
पाहिले लहसुनका रस और तेल पीवै पीछे
मेथ्य और उष्णवीर्य मांसका भक्षण करें ।
अथवा हींग और व्याघ्रवसा इनको समान
भागलेकर थोडासा सेंधानमक मिलाकर
नस्य लेंवै । अथवा पुराना घ्री, सिंह की
चर्बी और सेंधानमक इनकी नस्य लेंवै ।
अथवा सेंधानमक, पीपलके बीज, मनसि-
ल इनको तेल में पीसकर अंजन लगावै
तो विषम ज्वर जाता रहता है । अथवा
गूगल, नीमके पत्ते, बच, कूठ, हड, सरसों,
जौ आर धी इनकी धूप देनेसे ज्वर नष्ट
हो जाता है । मनोविकार अर्थात् उन्माद रोग
में जो जो धूम, धूर, नस्य और अञ्जन
वर्णन किये हैं वे भी सब विषमज्वरमें करने चाहिये

विषमज्वर में देवव्यपाश्रय प्रयोग ।
मणीनामौषधिनाञ्चमङ्गल्यानां विषस्य च
धारणादगदानाश्च सेवनान्न भवेन्ज्वरः ।
सोमं सानुचरं देवं स मातृगणमीश्वरम् ।
पूजयन्मयतः शीघ्रमुच्यते विषमज्वरात् ॥
विष्णुसहस्रमूर्दनं चराचरपतिं विभुम् ॥

स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान्सर्वानपोहति ॥
ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रं हुतभक्षं हिमाचलम् ।
गङ्गामरुद्राणां श्रेष्ठा पूजयन् जयति ज्वरान्
भक्त्या मातापितृणां श्रुगुरुणां पूजेनैव च
ब्रह्मचर्येण तपसा सत्येन नियमेन च ॥
जपहोमप्रदानेन वेदानां श्रवणेन च ॥
ज्वराद्विमुच्यते शीघ्रं साधूनां दर्शनेन च ॥

अर्थ—माणि, औषध, मंगलद्रव्य, विष
और अगदके धारण करनेसे ज्वर नहीं
आता है । शान्तभावमें स्थित अनुचर और
मातृगणोंसे युक्त शिवका पूजन करनेसे वि-
षमज्वर शीघ्र दूर हो जाता है । सहस्र मूर्द्धा,
चराचरके स्वामी, सर्वव्यापक विष्णु के सह-
स्रनामका पाठ करनेसे मयप्रकार के ज्वर
दूर हो जाते हैं । ब्रह्मा, अश्विनीकुमार,
इन्द्र, अग्नि, हिमाचल, गंगा, भद्रगण
तथा अन्य इष्ट देवताओंका पूजन कर-
नेसे सब प्रकार के ज्वर दूर हो जाते हैं ॥
माता पितामें भाक्ति करने से, गुरुजनोंका
पूजन करनेसे, ब्रह्मचर्यव्रत धारणसे, तपस्या
से, सत्यसे, नियमसे, जप होम दानसे, वेदों
के श्रवणसे और साधु महात्माओं के दर्शनों
से ज्वर शीघ्रही जाता रहता है ।

भिन्न रूपातुस्थज्वरोंकी चिकित्सा ।
ज्वरे रसस्थे वमनं उपवासञ्च कारयेत् ॥
सेकप्रदेहौ रक्तस्थे तथा संशमनानि च ॥
चिरेचनं सोपवासं मांसपेदः स्थिते हितम् ।
अस्थिगज्जगते देयानिरुद्धाः सानुवासनाः ॥
अर्थ—जो ज्वर रस में स्थित हो तो
वमन और उपवास करावे । रक्तस्थ हो तो

परिपेक, प्रदेह और संशमन चिकित्सा करे, ज्वर के मांस और मेदा में स्थित होने पर विरेचन और उपवास हित है । ज्वर के अस्थि और मज्जा में स्थित होने पर निरुहण और अनुवासन वास्ति देवे ।

अभिचारादिजन्यज्वरमें चिकित्सा ।

शापाभिचाराद्भूतानामभिषङ्गाच्चयोज्वरः॥दैवव्यपाश्रयंतत्रसर्वमौषधमिष्यते॥अभिघातज्वरोनश्येत्पानाभ्यङ्गेनसर्पिणः॥

रक्तावसेकैर्मयैश्चात्म्यैर्मांसरसोदनेः ॥

सानाहोमयसात्म्यानांमदिरारसभोजनैः क्षतानांघृणितानाञ्क्षतव्रणाचिकित्सया॥

अर्थ—शाप, अभिचार और भूताभिप्रेत से जो ज्वर उत्पन्न होता है वह दैवयुक्त व्यपाश्रय औषधियोंसे दूर होजाता है । अभिघातज्वर घृतपान और घृताभ्यंग, रक्तावसेक [फस्त,] मय और सात्म्य मांसरस और चावलका भोजन इनसे शान्त होता है मयसात्म्य वालोंका आनाहयुक्त ज्वर मद्यपान और मांसरस के भोजनसे दूर होता है ॥ क्षतरोगी और घातारोगियोंकाज्वर उन औषधोंसे शान्तहोता है जो क्षत और व्रणकी चिकित्सा में वर्णन की गई है ।

कामादि ज्वर चिकित्सा ।

आश्वत्सेनेष्टलाभेनवायोःप्रशमनेनच ॥
हर्षणैश्चशर्मयान्तिकामशोकभयज्वराः ॥

अर्थ—कामज, शोकज और भयज्वर आश्वत्सन (संतोषदायक वचन), इष्टलाभ, वायुशमन और हर्षोत्पादक कर्मोंसे दूर होजाते हैं ।

क्रोधजज्वरकी चिकित्सा ॥

काम्बैर्यैर्मनोऽक्षैश्चापित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः ।

सद्वाक्यैःशाम्यतिह्याशुज्वरःक्रोधसमुत्थितः

अर्थ—क्रोधजन्यज्वर काम्य और मनो-ज्ञ विषयों तथा पित्तघ्न चिकित्सा और सद्वाक्यों से शान्त होता है ॥

क्रोधादि ज्वरमें अन्योन्यक्राम ॥

कामात्क्रोधज्वरोनाशंक्रोधात्कामसमुद्भवः
यातिताभ्यामुभाभ्याञ्चभयशोकसमुत्थितः

अर्थ—कामसे क्रोधज्वर और क्रोध से कामज्वर दूर होजाता है, एवं काम और क्रोध दोनों की उत्पत्तिसे भय और शोकसे उत्पन्न हुआ ज्वर जाता रहता है ।

स्मृतिज्वरकी चिकित्सा ॥

ज्वरकालञ्चवेगञ्चचिन्तयन्ज्वर्यतेतुयः
तस्येष्टेस्तुविचित्रैश्चविषयैर्नाशयेत्स्मृतिम्

अर्थ—जिसको ज्वरके आनेके समय ज्वर के वेगका ध्यान बंधा रहताहै उसको ज्वर आजाता है उसका उपाय यही है कि अनेक प्रकारके अद्भुत २ विषयोंमें उसका चित्त खींचकर ज्वरकी ओरसे हटादेवे ॥

कुसमयज्वरमुक्ति के लक्षण ।

ज्वरप्रमोक्षेपुरुषःकृजन्वमतिचेष्टे । भवसः
त्रिविवर्णःस्विजाज्ञौघेपतेलीयतेमुहुः ॥ प्र-
लपन्पुष्णसर्वाङ्गःशीतगन्धवभवत्यपि।वि-
संज्ञोज्वरवेगार्त्तःसक्रोधश्चवीक्ष्यते ॥ स-
दोपशब्दश्चशुद्धद्रवस्तपतिवेगवत्।लिङ्गा-
न्येतानिजानीयाज्वरमोक्षेविचक्षणः ॥

अर्थ—ज्वरके दूर होनेके समय पुरुषके कण्ठमें गूजने कासा शब्द होताहै वमनली

होती है तथा हाथ पांव चलने लगते हैं ।
श्वास वेगसे आता है, देहकारंग बदलजाता
है, पसीने आते हैं, देहमें कम्पन तथा मुस्ती
होती है, एक २ करने लगता है, सम्पूर्ण देह
गरम रहता है कभी कभी ठंडा भी होजाता है,
वेचेत रहता है, ज्वरके वेगसे क्रोधी की तरह
देखने लगता है । कभी अत्यन्त वेगसे दौप
और शब्दसे युक्त पतला दस्त निकलजाता
है, ये सब लक्षण ज्वरके हटनेके समय होते हैं
बहुदोषस्य बलवान्प्रायेणाभिनवोज्वरः ।
सत्क्रियादोषपक्ष्याचेद्दिमुञ्चति सुदारुण
म् ॥ कृत्वादोषवशाद्देहं क्रमाद्युपरमान्तये
तेषामदारुणो मोक्षो ज्वरिणां चिरकारिणाम् ।

अर्थ—बहुत दोषयुक्त मनुष्यका प्रायः
बलवान् और नवीन ज्वर शीघ्रकारी चिकित्सा
से कुसमय दोषोंके पचने के कारण से ऊपर
कहे हुए दारुण लक्षणोंके साथ हटता है ।
दोषों के कारण वेग को प्राप्त होकर भी जो
ज्वर धीरेधीरे हटते हैं उन चिरकारी ज्वरों
के हटनेके समय ऐसे दारुण लक्षण नहीं होते हैं
ज्वरमुक्तव्यक्ति के लक्षण

विगतकृमसन्तापमव्यथं विमलेन्द्रियम् ।
युक्तप्रकृतिसत्त्वेन विद्यात्पुरुषमज्वरम् ॥
अर्थ—जिसका ज्वर शान्त होजाता है
उसकी क्लान्ति, सन्ताप और व्यथा सब दूर
होजाती हैं इन्द्रियां निर्मल होजाती हैं और
उसका सत्वभी पूर्ववत् होजाता है ।

ज्वर में अकर्तव्यकर्म ॥
सज्वरो ज्वरमुक्तश्च विदाहीनिगुरुणिच ।
असात्मघान्पन्नपानानि विरुद्धानि विवर्ज

येत् ॥ व्यवयमतिचेष्टाश्च स्थानशय्यास-
नानि च । तथा ज्वरः शर्मयाति प्रशान्तो-
जायते न च ॥

अर्थ—चाहे ज्वर चला गया हो चाहे न
गया हो मनुष्य को उचित है कि विदाही भारी
असात्म्य और विरुद्ध अनुपानका, सेवन त्याग
देवै, मैथुन, अत्यन्त डोलना फिरना, अत्यन्त
बैठे रहना, खड़े रहना इत्यादि को भी त्याग
दे । ऐसा करने से ज्वर शान्त होजाता है
और शान्त होने पर फिर उत्पन्न नहीं होता है ।

ज्वर के हटने पर अकर्तव्यकर्म ॥
व्यायामश्च व्यवयश्च स्नानं च क्रमणानि च ।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान् भवेत् ॥
असञ्जातबलो यस्तु ज्वरमुक्तो निषेयते ।
वर्ज्यमेतन्न वस्तस्य पुनरावर्त्तते ज्वरः ॥
दुर्हतेषु च दोषेषु यस्य वा विनिवर्त्तते ।
स्वल्पेनाप्यपचारेण तस्य व्यावर्त्तते पुनः ॥

अर्थ—ज्वरके दूर होजाने पर जवतक
देह में बल न आवै जवतक व्यायाम, व्या-
य स्नान चक्रमण न करें ! ज्वरमुक्त पुरुष
बिना बल उत्पन्न हुए जो इन वर्जितकर्मों
को करता है, उसको ज्वर फिर आजाता है !
जो ज्वर दोषों के बुरी रीतिसे निकाले जाने
पर शान्त होजाता है वह थोड़े से व्यातिक्रम
सेही फिर आजाता है ।

पुनरागतज्वर के कर्म ॥
चिरकालपरिक्लिष्टं दुर्बलं दीनचेतसम् ।
अचिरेणैव कालेन सहन्ति पुनरागतः ॥
अथवा पिपरीपाकं धातुष्वेव क्रमान्मलाः ।
यान्ति ज्वरमकुर्वन्तः तेषां प्यपकुर्वते ॥

अर्थ—गाढा, कुछ २ पाण्डुता लिये चिकना और गिलगिलाकफ मिश्रित रक्त पित्त होता है ।

वातिक रक्त पित्तके लक्षण ।

श्यावारुणसफेनञ्चतनुरुक्षञ्चवातिकम् ।

अर्थ—कुछकाला, कुछलाल, श्यागदार, पतला और रूखा वातमिश्रित रक्तपित्तहोताहै

पैत्तिक रक्तपित्तके लक्षण ।

रक्तपित्तकपायाभंकृष्णगोमूत्रसन्निभम् ।

मेचकागारधूमाभमञ्जनाभञ्चपैत्तिकम् ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त काथके रंगके सदृश कृष्ण वर्ण, और गौके मूत्रके समान होता है अथवा मोरकी चान्द्रिका के समान नील वर्ण, घरके धूँएके से रंगका अथवा सुरमे के सदृश है उसे पैत्तिक रक्तपित्त समझो

संस्मृष्टरक्त पित्तके लक्षण ।

संस्मृष्टलिङ्गसंसर्गात्रिलिङ्गसान्निपातिकम्

अर्थ—दो दो दोषों से युक्त रक्तपित्त में दो दो दोषोंके मिश्रित लक्षण होतेहैं और जिसमें तीनों दोषोंके चिन्ह पाये जाते हैं उसे सान्निपातिक कहते हैं ।

दोषभेद से साध्यासाध्यलक्षण ॥

एकदोषानुगंसाध्यद्विदोषंयाप्यमुच्यते ॥

त्रिदोषजमसाध्यतन्मन्दाग्रेरतिवेगवत् ।

व्याधिभिः क्षीणदेहस्यष्टद्वस्यानशनतश्च यत् ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त एक दोषसे उत्पन्न होताहै वह साध्यहै, दो दोषसे होनेवाला याप्यहै, जो तीनों दोषसे उत्पन्न होता है

वह असाध्यहै । इसी तरह जिनकी अग्नि अत्यन्त मन्दी पड़गई हो जिनकी देह रोगों से क्षीण होगईहो, जो बुढ़ाहो और जिसका आहार थकगयाहो ऐसे मनुष्योंका रक्त पित्त भी असाध्य होता है ॥

ऊर्ध्वाधःमार्गद्वारा साध्यासाध्य विचार ॥

गतिरूर्ध्वयधश्चैवरक्तपित्तस्यदर्शिता ॥

ऊर्ध्वाःसप्तविधाद्वाराद्विद्वारात्वधरागतिः ॥

सप्तच्छिद्राणिशिरसिद्वेचाधःसाध्यमूर्ध्वं गम् । याप्यन्त्वधोगममार्गद्विद्वारावसाध्यमप्यते ॥

अर्थ—रक्त पित्तकी ऊर्ध्व और अधोगति ये दो पाहिले वर्णन करचुकेहैं ॥ रक्त पित्त के सातद्वारहैं, यथा दो आंख, दो नाक, दो कान और एक मुख । नाँचे के दो द्वार हैं । मलद्वार और मूत्रद्वार । ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त साध्यहै, अधोगामी याप्यहै और उभयमार्गगामी असाध्य होताहै ।

यदातुसर्वच्छिद्रेभ्योरोमकूपेभ्यएवच ।

वर्ततेतामसंख्येयांगतिं तस्याहुरान्तिकीम् ॥

अर्थ—जब रक्त सम्पूर्णछिद्रों और रोम कूपों द्वारा निकलताहै तब रक्त पित्तकी अन्तं ख्येयागति को अन्तिकी कहते हैं ॥

असाध्य रक्तपित्तके लक्षण ।

यच्चोभयाभ्यामार्गाभ्यामतिमात्रमवर्तते तुल्यंकुणपगन्धेनरक्तंकृष्णमतीवच ॥ संसृष्टकफवाताभ्यांकण्ठेसज्जातिचापियत् ।

यच्चाप्युपद्रवैःसर्वैर्यथोक्तैःसमभिद्रुतम् ॥

क्षीणस्यकासमानस्ययच्चयच्चनसिध्यति

अर्थ—जो रक्त ऊर्ध्व और अधः दोनों मार्गोंसे आतिशय करके निकलता है, जिसमें सड़ीहुई गन्ध आतीहो, अत्यन्त काला रुधिर निकलताहो, जो कफ वाग दोनों दोषोंसे युक्तहो, और जो कण्ठमें अत्यन्त रुकताहो, जो सम्पूर्ण ऊपर कहेहुए उपद्रवों से युक्तहो, जो हृलदीके सदृश पीला, नीला, हरित और ताम्रवर्ण से उपद्रुत हो वह असाध्य होताहै । कासयुक्त क्षीणरोगीका रक्त पित्तभी असाध्य होता है ॥

याप्यरक्तपित्तकेलक्षण ।

यद्विदोषानुगम्यद्वाशान्तंशान्तंभ्रुकुप्यति ॥
मार्गमार्गचरेद्यद्वायाप्यं पित्तं अमृकचतत् ॥

अर्थ—जो द्विदोषाश्रित रक्तपित्त रुकरुक् कर कुपित होता है अथवा एक मार्गको छोड़कर दूसरे मार्गसे निकलने लगता है उसे याप्य कहते हैं ।

साध्य होनेके कारण ।

एकमार्गवलवतोनातिवेगनवोत्थितम् ।
रक्तपित्तंमुखकालेसाध्यंस्यान्निरुपद्रवम् ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त बलवान् पुरुष के एक मार्गगामी होताहै, जो अत्यन्त वेगवान् नहीं होताहै और जो हालमें ही उत्पन्न हुआहै और जो हेमन्तादि मुखदायक समयमें उत्पन्न हुआहै वह साध्य होताहै ।

रक्तापित्त के कारण ॥

स्निग्धोष्णमुष्णरूक्षश्चरक्तपित्तस्यकारणम् ।
अधोगम्योत्तरप्रायः पूर्वस्पादूर्ध्वगम्यतु ॥
ऊर्ध्वगंरुक्संसृष्टमधोगं गारुतानुगम् ।
द्विमार्गकृत्वाताभ्यां उवाभ्यामनुबध्यते ॥

अर्थ—स्निग्धोष्ण और उष्णरूक्ष ये रक्त पित्तके कारण हैं, प्रायः अधोगामी रक्त पित्तका कारण उष्णरूक्ष है और ऊर्ध्वगामीका स्निग्धोष्ण है ॥ ऊर्ध्वगरक्त पित्त कफ संसृष्ट होताहै, अधोगामी वायुसंसृष्ट और उभयमार्गगामी कफवात संसृष्ट होताहै । यहां यह बात जाननी चाहिये कि जब ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त कफ संसृष्ट होता है तो पित्त उष्ण है कफ स्निग्ध है अतएव ऊर्ध्वगामी रक्तापित्त कफवात कारक अर्थात् स्निग्ध और उष्ण द्रव्यों के सेवन से अत्यन्त बढ़ता है इसीतरह वायुरूक्ष होताहै और पित्त उष्ण होताहै इसलिये अधोगामी रक्त पित्त वातापित्त गुणाविशिष्ट रूक्षोष्ण द्रव्यों के सेवन से कुपित होताहै ।

स्तम्भन के अयोग्यरक्तपित्त ॥

अक्षीणबलमांसस्यरक्तपित्तं पदशनतः ।
तदोपद्रुष्टमुत्किष्टं नादौ स्तम्भनमर्हति ॥

अर्थ—जिस पुरुषका बल और मांस क्षीण न हुआहो और आहार भी न धकाहो उसको दोष से दूषित और उदीर्ण रक्त पित्तको प्रथमही रोकना उचित नहींहै ॥

रक्त पित्तको स्तम्भितकरनेके

उपद्रव ॥

गलग्रहंपूतिनस्यंमूच्छार्थमरुचिंज्वरम् ।
शुलभं प्लीहानमानाहं किलासंकृच्छ्रमृत्रतां ॥
कुष्ठान्यर्गसिर्वातर्पवर्णनाशं भगन्दरम् ।
बुदीन्द्रियोपरोधश्च कुर्यात् स्तम्भितमा-
दितः ॥

अर्थ—रक्त पित्त को यदि प्रथमही से

रोका जायगा तो इतने उपद्रव उत्पन्न होंगे, यथा— गलग्रह, पूनिस्य, मूर्च्छा, अरुचि, ज्वर, गुल्म, प्लीहा, आनाह, किलास, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ, अर्श, विसर्प, वर्णनाश भग्नन्दर, बुद्धिनाश और इन्द्रियोपरोध ॥
तस्मादुपेक्ष्य बलिनंबलदोषविचारिणा ।

रक्तपित्तप्रथमतः प्रवृद्धसिद्धिमिच्छता ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए हेतुओं से उस बुद्धिमान् वैद्य को उचित है जोकि रक्तपित्त को अच्छा किया चाहता है कि बल और दोष का विचार करके बलवान् मनुष्य के बड़े हुए रक्तपित्तकी भी प्रथम उपेक्षा करे ॥

रक्तपित्त में प्रथम कर्त्तव्य कर्म ॥
प्रायेण हि सद्युत्कृष्टमामदोषाच्छरीरिणाम् ।
वृद्धिप्रयातिपित्तासृक्स्माल्लघनमादितः ॥
मार्गदोषानुबद्धश्च निदानं प्रसमीक्ष्य च ।
लघनं रक्तपित्तादौ तर्पणं वा प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—प्रायः मनुष्यों को उद्दार्ण रक्तपित्त आम दोष से बढ़ता है अतएव प्रथम लघन कराना आवश्यक है । रक्तपित्तका मार्ग, दोषानुबन्ध (कौनसा दोष उसके साथ है) और निदान को देखकर रक्तपित्त में प्रथम लघन वा तर्पण देवै ॥

रक्तपित्त में तृपानाशक औषध ॥
क्षीवेरचन्दनोशीरमुस्तर्पणैः शृतम् ।
केवलं शृतशीतं वा दद्यात्तोषां पिपासवे ॥

अर्थ—रक्तपित्त में जो तृपाकी आधिकता हो तो नेत्रवाला, चन्दन, ग्लस, मोथा,

पितपापडा, इनको डालकर जल आँटाले और फिर ठण्डा करके थोड़ा २ रोगी को पान कराता रहै ।

तर्पण और पेया की विधि
ऊर्ध्वगेतर्पणं पूर्वपेयां पूर्वमधोगतम् ।
कालसात्म्यानुबन्धज्ञो दद्यात्प्रकृतिकल्पयित् ॥

अर्थ—काल, सात्म्य, अनुबन्ध, प्रकृति और कल्पना का जाननेवाला वैद्य ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें प्रथम तर्पण देवै और अधोगामी रक्तपित्तमें प्रथम पेया पान करावै ।

तर्पण प्रयोग

जलं खर्जूरमृद्धीकामधूकैः सपरूपकैः ।
शृतशीतं प्रयोक्तव्यं तर्पणार्थं सशर्करम् ॥
तर्पणं सघृतसौद्रं लाजाचूर्णैः प्रयोजयेत् ।

अर्थ....खिजूर, दाख महुआ और फाल-से इनको जलके साथ आँटाकर छानले और ठण्डा होनेपर मिश्री डालकर पान करावै । अथवा धी और शहत मिलाकर खीलों के चूर्ण का तर्पण देवै ।

उक्त तर्पणोंके गुण ।

ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं तत्शीतं काले व्यपोहति ॥
मन्दाग्ने रम्लसात्म्याय यत्साम्लमपि कल्पयेत् ॥
दाहिभ्रामलकैर्विद्यादम्लाश्चा नुदापयेत् ॥

अर्थ....ऊपर कहे हुए दोनों प्रयोग उचितकालमें पान करानेसे ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त को दूर कर देते हैं मन्दाग्निवाले तथा जिसको खटाई की मासकत है उसे नीचे लिखी हुई खटाई मिलाकर देवै । अनारकी खटाई वा आमलेकी खटाई इसमें हितकारी होती है

अन्यप्रयोग ॥

शालिपट्टिकनीवारकोरदूपप्रशान्तिकाः ॥
श्यामाकश्चप्रियंगुश्चभोजनैरक्तीपित्ति-
नाम् ॥

अर्थ—शालीचांबल, माठीचांबल, नीवार
कोदों, प्रशान्तिका, सामखिया, और प्रियंगु
इन सबका भात रक्तपित्त रोगियों को
हितकारक है ॥

रक्तपित्त रोगियों को अन्यद्रव्य ॥

मुद्गामसूराश्चणकाः समकुष्ठादकीफलाः ॥
प्रशस्ताःसूपयूपार्थैकल्पितारक्तपित्तिनाम्
पटोलनिम्बवेत्राग्रप्लक्षवेतसपल्लवाः ॥
किराततिक्तकंशकेगण्डीरःसकठिल्लकः
कोविदारस्यपुष्पाणिकाश्मर्यस्याथशाल्म
लेः ॥ अन्नपानविधौशाकंयच्चान्यद्रक्त
पित्तनुत् । शाकार्यंशाकसात्म्यानांतच्छ
स्तरक्तपित्तिनाम् ॥ स्विन्नवासर्पिपाशु
ष्टूपवद्वाविपाचितम् ।

अर्थ—मूंग, मसूर, चना, मीठ और
अडहर इनकी दाळ और यूप रक्तपित्त
वालों के लिये अच्छे हैं । परवल, नीम
के पत्ते, वेतकी कोंपल, पाकड, वेतके पत्ते
चिरायता, गण्डीर और करेला इनका
साग तथा कचनारके फूल, खंभारीके फूल
सेमर के फूल, तथा अन्यशाक जो अन्न
पान विधि में रक्तपित्त के नाश करनेवाले
वर्णन किये गये हैं । ये सब शाक सिजा
कर घृत में भून ले अथवा यूप क्री तरह
मिद्ध कर ऐसे रक्तपित्तवाले रोगी को दें
जिसको शाक अनुकूल हों ।

रक्तपित्तपरं मांसरस ॥

पारावतान्कपोतांश्चलावान् रक्षाक्षवर्त-
कान् ॥ शशान्कपिञ्जलान्णान्हरि-
णान्कालपुच्छकान् । रक्तपित्तेहितान्
विद्याद्रसांस्तेषाम्योजयेत् ॥ ईपदम्ला-
ननम्लान्वाघृतभृष्टान्सशर्करान् ॥

अर्थ—पारावत, कपोत, लवा, चकोर
बटेर, शशा, तीतर, एण, हरिण, कालपुच्छ इन
का मांसरस रक्तपित्त रोगमें हितहै । इसमें
धोडीसी खटाई डालकर वा बिना डालैही घी
में भूनकर और चीनी मिलाकर सेवन करें ।
अन्यदोषाश्रितरक्तपित्तमेंचिकित्सा ।
कफानुगेयूपशाकंदद्याद्वातानुगेरसम् ॥
रक्तपित्तेयवागूनामतःकल्पःप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—कफयुक्त रक्तपित्तमें यूप और शाक
तथा वातयुक्त रक्तपित्त में रक्तपित्तनाशक
मांसरस का प्रयोग करना चाहिये । अब
यहांसे उन यवागुओंका वर्णन करते हैं जो
रक्तपित्त में हितकारी हैं ॥

रक्तपित्तनाशक यवागू ।

पद्मोत्पलानांकिञ्जल्कःपृश्निपर्णीप्रियंगु-
काः ॥ जलेसाध्यंरसेतस्मिन्पेयास्याद्र-
क्तपित्तिनाम् । चन्दनोशीररोध्राणांरसे
तद्वत्सनागरे ॥ किराततिक्तकोशीरमु-
स्तानांतद्वदेवच । धातकीधन्वयासाम्यु-
विल्वानांवारसेशृताः ॥ मसूरपृश्निपर्ण्यां
वास्थिरामुद्धरसेनवा । रसेहरेणुकानांवा
सघृतेसवलारसे । सिद्धाःपारावतादीनां
रसेवास्युःपृथक्पृथक् । इत्युक्तरक्तपित्त-
घ्न्यःशीताःसमधुशर्कराः ॥ यवाग्वःकल्प-
नाचैषांकार्यामांसरसेष्वपि ॥

अर्थ—लाल कमलकी केसर, नीलकमल की केसर प्राणिपर्णी, प्रियंगु इनको डाल कर जलको औटाले और उस जलमें पेया तयार करके रक्तपित्त वाले रोगी को देवै । अथवा चन्दन, उसीर, छोध और सोंठ के रसमें धूर्धवत् पेया सिद्ध करै । अथवा चिरायता, उसीर, मोथा इनके रसमें धूर्धवत् पेया सिद्ध करै । अथवा धायके फूल ज-बासा, नेत्रवाला और बेलगिरीके रसमें पेया सिद्ध करै । अथवा मसूर और पृष्णिपर्णी के रस में, अथवा शालिपर्णी और मूंग के रस अथवा हरेणुका के जल में अथवा धृतयुक्त खरैटीके रसमें पेया सिद्ध करै । अथवा पूर्वोक्त पारायतादिक के मांस रसमें पृथक् पृथक् पेया सिद्ध करै । सम्पूर्ण प्रकार की पेया शीतल होती है इससे इनमें शहत और शर्करा मिलाकर सेवन करै ॥ मांसरस वाली पेयामें भी शहत और शर्करा मिलालेवै ॥ इस तरह इन सब रक्तपित्तनाशिनी पेयाओंका वर्णन किया गयाहै ॥

सोपद्रव रक्तपित्तमें चिकित्सा ।

शशःसयास्तुकःशस्तोविवन्धोरक्तपित्तिनाम् ॥ घातोल्बणेतित्तिरिःस्यादुदुम्बररसेशृतः । मयूरःप्लक्षनिर्युहेन्यग्रोधस्यचक्षुःकुटः ॥ रसेविल्वोत्पलादीनां चतुर्ककरोहितौ ।

अर्थ—विचन्धयुक्तरक्तपित्तमें रससेके मांसरसमें सिद्ध किया हुआ वधुएका शाग हितकरहै घातोल्बणरक्तपित्तमें गूलरके रसमें सिद्ध कियाहुआ तीतरका मांस, पाकड़के

रसमें सिद्ध किया हुआ मोरका मांस, बड़के रसमें सिद्ध किया हुआ मुर्गेका मांस, विल्वके रसमें बटेर और उत्पलके रसमें क्रक-रका मांस हितकारी होत है ।

तृपायुक्तरक्तपित्तकी चिकित्सा ।
तृप्यतेतिक्तकैःसिद्धंतृणाग्रवाफलोद-
कम् ॥ सिद्धंविदारिगन्धाद्यैरयवाशृतशी-
तलम् । ज्ञात्वदोषावनुबलौबलमाहार-
मेवच । जलं पिपासवेदद्याद्विसर्गादल्प-
शोऽपिवा ।

अर्थ—तृपायुक्त रक्तपित्त में तिक्त औषधियों से सिद्ध कियाहुआ जल अथवा तृपानाशक अनार आदि फल डालकर सिद्ध किया हुआ जल अथवा विदारी गंधादि डालकर सिद्ध किया हुआ जल ठंडा करके पान करावे । तृपायुक्त रक्तपित्त रोगोंके दोषोंका अनुबल और आहारका बलदेखकर थोड़ा या अधिक जल देवै ।

रक्तपित्त में वर्जित द्रव्य ।
निदानंरक्तपित्तस्यथत्किञ्चित्संमकाशितम्
जीवितारोग्यकामैस्तन्नसेव्यंरक्तपित्तिभिः

अर्थ ...जो जीने की और आरोग्य लाभ करने की इच्छा हो तौ निदान स्थानमें रक्त पित्त के उत्पन्न होने के जो २ कारण कहे गयेहैं उनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये इत्यन्नपाननिर्दिष्टक्रमशोरक्तपित्तिपु-
वक्ष्यतेबहुदोषाणांकार्यबलवताश्चयत् ।

अर्थ—इस तरह क्रम से रक्त पित्त में उपगोगी अन्नपानका वर्णन किया गया है । अब बहुत दोषों से युक्त और बलवान् रक्त

पित्त रोगियोंके कर्तव्याकर्तव्यका वर्णन कि-
याजाता है ॥

अक्षीणबलमांसस्ययस्यसन्तर्पणोत्थितम्
बहुदोषम्वलवतोरक्तपित्तशरीरिणः ।

कालेसंशोधनह्रस्यतद्वरन्निरूपद्रवम् ॥

विरेचनेनोर्ध्वभागमधोगंवमनेनच ॥

अर्थ—जिस रक्तपित्त रोगीका बल और
मांस-क्षीण नहीं हुआ है, जिसके रक्तपित्त
सन्तर्पण से उत्पन्न हुआ है । और जिस
मनुष्य का शरीर बलवान् है अथवा वह सं-
शोधन के योग्य है ऐसे मनुष्य के बहुत
दोषयुक्त-निरूपद्रव पित्त को संशोधन के
द्वारा संशमन करें । ऊर्ध्व भागगामी रक्त
पित्त में विरेचन दें और अधोभाग गामी
रक्तपित्त में वमन दें ॥

रक्तपित्त में विरेचनिकप्रयोग ॥

तिष्ठतामभ्यां प्राज्ञः फलान्यासवधस्यवा ।
तायमाणागवाक्ष्योर्वा मूलमामलकानिवा
विरेचनं प्रयुज्जीत भूतमधुशर्करम् ॥

रसः प्रशस्यते तेषां रक्तपित्तविशेषतः ।

अर्थ....निसोध और हरडकाक्वाथ, अ-
थवा अमलतासका गूदा, अथवा त्रायमाण
और इन्द्रायणकी जड़ अथवा आवलेका काथ
इन प्रयोगों में बहुत सा शहत और शर्करा
डालकर विरेचन दें । इनका रस रक्तपित्त
में विशेष उपयोगी है ।

रक्तपित्त में वामनिक प्रयोग ॥

घनं मदनोन्मिश्रोमन्यः ससौद्रशर्करः ॥

सशर्करं वा सलिलमिश्रणं रस एव वा । व-
त्सकस्पर्शफलमुस्तं मदनमधुकं मधु ॥ अथो

वहेरक्तपित्तवमनपरमुच्यते ॥

अर्थ—शहत, शर्करा और मेनफल मि-
लाहुआ मन्थ, अथवा मेनफल, शर्करा और

जल अथवा मेनफल और ईखका रस अथवा
इन्द्रजौ, मोथा मेनफल मुलहटी और शहत
ये सब प्रयोग अधोगामी रक्तपित्तमें वमन
करानेके लिये अत्यन्त उत्तम है ॥

ऊर्ध्वगेशुद्धकोष्ठस्य तर्पणादिः क्रमोहितः ॥
अधोवहेयवाग्वादिर्न चेत्स्यान्मारुतोवली ।

अर्थ—ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें यदि रोगी
का कोष्ठ शुद्ध होगया हो तौ तर्पणादि
क्रियाका अवलम्बन करें ॥ इसीतरह अधो-
गामी रक्तपित्तमें यवागू दें ॥ ऐसा न करने
से वायु कुपित होजाती है ।

संशमनीय रक्तपित्तलक्षण ॥

बलमांसपरिक्षीणं शोकभाराध्वकार्पितम् ॥

ज्वलनादित्यसन्तप्तमन्यैर्वाक्षीणमामयैः ।

गर्भिणीं स्थविरे वलं रूक्षाल्पप्रमिताशनम् ॥

अवम्यमविरेच्यं वायं पश्येद्रक्तपित्तिनाम् ।

शोषणसानुबन्धवायस्य संशमनीक्रिया ॥

शस्यते रक्तपित्तस्य पुरोयातुप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—जिसका बल और मांस क्षीण हो
गयाहै, जो शोक, भारबहन और मार्ग चल
ने से कृश होगयाहै, जो अग्नि वा सूर्यसे
सन्तप्त होगयाहै, जो अन्य रोगों से
क्षीण होगयाहै, गर्भिणीस्त्री, वृद्ध,
बालक, रूक्षभोजी, अल्पभोजी, मि-
त भोजीहै, जो वमन विरेचनके योग्य नहीं
है, अथवा वह रोगी जिमको शोष का अ-
नुबन्ध है । इन लक्षणोंसे युक्त रक्तपित्त
रोगियों की संशमन क्रिया करें । अब उस
क्रियाका वर्णन करते हैं ॥

रक्तपित्तं में संशमनीयक्रिया ।

आटरूपकमृद्धीकापथ्याकाथःसर्शकरः ।

मधुमिश्रःश्वासकासरक्तपित्तनिर्वहणः ॥

अथ—अइसा, किसमिस, हरड, इनका का-
थ करके शहत और शर्करा मिलाकर पान
करै तो श्वास और खांसीसे युक्त ऊर्ध्व-
गामी रक्तपित्त शान्त होजाता है ॥

रक्तपित्त में अन्यप्रयोग ॥

आटरूपकानिर्यूहेप्रियंगुमुक्तिकाञ्जने ॥

विनीयलोध्रंसौद्रञ्चरक्तपित्तनुदं पिवेत् ।

अर्थ—अइसाका काथ, प्रियंगु, गेरू,
अंजन, लोध और शहत मिलाकर पान क-
रनेसे रक्तपित्त शांत होजाता है ॥

अन्यप्रयोग ।

पद्मकंपद्मकिंजल्कंदूर्वावास्तुकमेव च ।

नागपुष्पञ्चलोध्रश्चतनवविधिनापिवेत् ॥

अर्थ—पद्माख, लालकमल की केशर,
दूब, बथुआ, नागकेशर, लोध इन सबको
शहतमें मिलाकर सेवन करै तो रक्तपित्त
शान्त होवे ॥

अन्यप्रयोग ॥

प्रपुण्डरीकमधुकंमधुचाश्वशकृद्रसे ॥ यवा-

सभृङ्गरजसोर्मूलवागोशकृद्रसे ॥ विनीय

रक्तपित्तघ्नं पयस्यात्तण्डुलाम्बुना ॥ यु

क्तं वामधुसर्पिर्भ्योल्लिङ्गाद्वागोऽश्वशकृद्रस

म् ॥ खादिरस्यप्रियंगूनांकोविदारस्यशा

ल्मलेः ॥ पुष्पचूर्णानिमधुनालिङ्गान्नार-

वतपित्तिकः । शृङ्गाटकानांलाजानांमुस्त

रज्जुयोरपि ॥ लिङ्गाच्चूर्णानिमधुनापद्मा

नाकिंशरस्य च । धन्वजानाममृगिल्लहान्म

धुनामृगपक्षिणाम् ॥ सक्षौद्रग्रथितेरन्वेते

लिङ्गात्पारावतंशकृतम् ॥

अर्थ—पुण्डरीक, मुलहठी, शहत इनको
घोडे की लीद के रसमें अथवा जवासा
भांगरेकी जड, इनको गौके गोबरके रसमें
मिलाकर चांदल के साथ पान करै अथ-
वा घी और शहत मिलाकर गौ और घो-
डेकी लीदका रस पान करै । अथवा
खैर, प्रियंगु, कचनार और सेमर के फू-
लोंका चूर्ण शहतमें मिलाकर चाटे । अ-
थवा सिंघाडे, खील, मोथा खिजूर और क-
मलकेशर इनके चूर्णको शहतके संग चा-
टे । अथवा धन्वज पशुपक्षियोंका रुधिर
शहत मिलाकर पान करै । अथवा जो र-
क्तमें गांठ पडगईहो तो कबूतर की बीट
को शहतमें मिलाकर चाटे ॥

दाहादियुक्तरक्तपित्तपर प्रयोग ॥

उशीरकालीयकलोध्रपद्मकप्रियंगुकाक-
दफलशंखगोरिकाः । पृथक्पृथक्चन्दन-
तुल्यभागिकाः सशर्करास्तण्डुलपाय
नाप्लुताः । रक्तसपित्तन्तमर्कपिपासां

दाहश्चपीताःशमयन्तिसद्यः ।

अर्थ—खस, कालीयक [पीतचन्दन]

लोध, पद्माख, प्रियंगु, कायफल, शंख इन
सबमें पृथक् २ समान भाग रक्त चन्दन
मिलावे और इसको फांककर शर्करायुक्त
तण्डुल जलका पान करै तो रक्तपित्त,
तमकश्चाम पिपासा, दाह ये तत्काल शा-
न्त होजाते हैं ॥

अन्यप्रयोग ॥

किराततिक्तंक्रमुकंसमुस्तं प्रपुण्डरीकं

कमलोत्पलेच ॥ ह्रीवेरमूलानिपटोलपत्र
न्दुरालभापपट्टकामृणालम् । धनञ्जयो
दुम्बरवेतसत्त्वम् न्यग्रोधजम्बूहयमारक
त्वम् ॥ तुगालतावेतसतण्डुलीयं स-
शारिवम्भोचरसःसमङ्गा । पृथक्पृथक्
चन्दनयोजितानितैवकल्पेनहितानितत्र ।

अर्थ—चिरायता, सुपारी, मोथा, पुण्ड-
रिया, कमल, उत्पल, नेत्रवाला, पाँचों पं-
चमूल, परबलके पत्ते, जवासा, पितपापडा
कमलनाल, अर्जुन, गूलर, वेत, बड, जा-
मन, कनेर, [इन छःओं की छाल], बं-
शलोचन, लतावेत [कोई २ लता से शा-
रिया और वेतस से वेतका ग्रहण करते हैं]
चाँलाई, शारिया, मोचरस, मर्जाठ, इनसब
में पृथक् २ समानभाग चन्दन मिलाकर
शर्करा और तण्डुल जलके साथ लेवें ॥

उक्तप्रयोगोंकी विधि ॥

निशिस्थितावासरसीकृतावा कल्की
कृतावामृदिताशृतावा । एतेसमस्ताग्र-
शःपृथग्वा रक्तसपित्तंशमयन्तियोगाः ॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए दोनों गणोंमें जो
द्रव्य वर्णन कियेगयेहैं इन सबको वा पृ-
थक् २ लेकर रात्रिमें भिगोदेवें, वा इन
का रस निकालले, वा पसिकर लुगदी बना
लेवें, वा मीडकररस निकाल लेवें वा काथ
कर लेवें । ये सत्र योग रक्तपित्त को शमन
करते हैं ।

रक्तपित्त पर अन्य प्रयोग ॥

मुद्गाःसलाजाःसपकाःसकृष्णाःसोशीरमु-
स्ताःसहचन्दनेन । बलामलेपर्युषितः

कपायो रक्तसपित्तंशमयन्त्युदीर्णम् ॥

अर्थ—मूंग, खीर, जौ, पीपल, खस,
मोथा, रक्तचन्दन इनको खरौटकी काथ में
रात्रिमें भिगोदेवें और दूसरेदिन प्रातःकाल
इसका पान करें तो बढाहुआ रक्तपित्त शान्त
होजाता है ।

अन्यप्रयोग ॥

वैदूर्यमुक्तामणिगैरिकाणां मृच्छंखहे-
मामलकोदकानाम् । मधूदकस्फुरस-
स्यचैव पानाच्छमङ्गच्छतिरक्तापित्तम् ॥

अर्थ—वैदूर्य (एकप्रकार की मणि),
मोती, मणि, गेरू, शंख, सुवर्ण इनको आं-
वलेके काथके साथ वा मधुमिश्रितजल वा
ईखके साथ पानकरें तो रक्तपित्त शान्त होवै

अन्यप्रयोग ॥

उशीरपद्मोपलचन्दनानांपकस्यलोध्रस्य
चयःप्रसादः॥सशर्करःसौद्रयुतःसुशीतो-
त्तातियोगंशममायदेयः ॥

अर्थ—खस, पद्म, उत्पल, रक्तचन्दन,
और पक लोध्र इनके ठंडे काथको छान
कर शहत और मिश्री मिलाकर पान करें
तो रक्तातिषोगी पित्त शान्त होजाय ।

अन्यप्रयोग ॥

मिथंगुकाचन्दनलोध्रशारिवामधूकमुस्ता
भयधातकीजलम् । समूतप्रसादसहपट्टि-
काम्बुनासशर्करंरक्तानिवहणंपरम् ॥

अर्थ—मिथंगु, रक्तचन्दन, लोध्र, शारिया
मुलहटी, मोथा, खस और धाय इनके
काथको मिश्रीके ऊपर का पानी और सांठी
चावल के जलके साथ मिश्रीडालकर पान
करें तो रक्तोग जाता रहता है ।

वाय्वनुबन्धारक्तपित्तकोचिकित्सा ॥
 कपाययोगिविविधैर्यथाक्तेर्दीप्तेऽनलश्लेष्म
 णिनिर्जितेच । यद्रक्तपित्तप्रशमनयाति
 तत्रानिलः स्यादनुतत्रकार्यम् । छागम्प-
 यः स्यात्प्रथमप्रयोगेगन्धमृत्पञ्चगुणेज
 लेवा । सशर्करमासिकमम्पयुक्तंविदारि
 गन्धादिगणेःशृतंवा ॥ द्राक्षाशृतनागरकै
 शृतंवावलाशृतगोधुरकै शृतंवा । सजी
 रकंसर्पकंससपिं पयःप्रयाज्यांसितयाशृ
 तंवा ॥ शतावरीगोधुरकैःशृतंवा शृतम्प
 योवाप्यथपणिनीभिः । रवतंहिनस्त्याशु
 विशेषतस्तुयन्मूत्रमार्गात्सरुजम्प्रयाति

अर्थ—पूर्वोक्त विविध प्रकार के कपाय
 योगों से अग्नि प्रदीप्त होजाय और कफ
 दूर होजाय और तब भी रक्तपित्त शांत
 न हो तो वहाँ वायुका अनुबन्ध होता है,
 उसमें निम्न लिखित चिकित्सा करनी चाहि-
 ये यथा प्रथमही बकरी वा गौ के दूध
 को पचगुने जल में औटाकर मिश्री और
 शहत मिलाकर पान करावै । अथवा विदा
 रीगन्धादिगणोक्त द्रव्य डालकर औटायाहुआ
 अथवा दाख वा सोंठ, वा खट्टी, वा गो-
 खरू डालकर अथवा जीरा, जपभक, घी
 और मिश्री डालकर औटायाहुआ दूध देवै ।
 अथवा सितावर और गोखरू डालकर औ-
 टाहुआ दूध वा चारों प्रकारकी पर्णी, (मुद्र-
 पर्णी मापपर्णी, पृष्ठपर्णी, शालपर्णी) डालकर
 औटायाहुआ दूध देवै । इसरीति से सिद्ध
 कियाहुआ दूध रक्त को नष्ट करता है और
 विशेष करके उस रक्त पित्त के लिये हितहै
 जो मूत्रमार्गमें होकर वेदनायुक्त निकलताहै

रक्तपित्तपर अन्ययोग ॥

विशेषतोविट्प्रथमंमृत्तेपयोमतम्मोचर-
 सेनसिद्धम् । वटावरोहर्वटशुद्धकैर्वाहीवेर
 नीलेत्पलनागैर्वा ॥ कपाययोगात्प-
 यसापुरावा पीत्वानुदद्यात्पयसानुशा-
 लीन् । कपाययोगैरथवाविषकमेतेःपि-
 वेत्सार्पिरतिसवेच्च ॥

अर्थ—रक्तके मलमार्गमें होकर बाहर नि-
 कलने पर दूधके साथ मोचरस औटाकर पा-
 न करावै । अथवा बडकी डाढी, वा बडकी
 कोंपल, अथवा नेत्रबाला, नीलोफर और सोंठ
 डालकर दूध को औटाकर पान करावै ।
 अथवा उक्त कपायोंके साथ पान काने से
 पहिले जलके साथ औटाकर पान करावै
 और क्षुधा लगने पर शालीचांवलोंका भात
 खाने को देवै । और जो रक्त अत्यन्त ख-
 ताहो तो उक्त कपायों के साथ घृत सिद्ध
 करके पान करावै ॥

अन्यप्रयोग ॥

वासांसशाखांसपलाशमूलांकृत्वाकपायं
 कुसुमानिचास्य । प्रदायकलकंविषचेदृष्टु
 तंतत्ससौद्रमाश्वेनिहन्तिरक्तम् ।

अर्थ—अडूसा को शाखा, पत्ते, जड़ और
 फूल सबको एकत्र करके काथनें उक्त द्रव्यों
 का कल्क और घृत डालकर सिद्ध करे फिर
 शहत के साथ चादे तो रक्त बहुत शीघ्र
 वन्द होजाता है ॥

अन्यप्रयोगाणि ॥

पलाशहन्तस्यरसेनसिद्धंतस्यैवकल्केनम
 धुद्रेवण । लिङ्गादृन्वत्सककल्कसिद्धन्त

द्वत्समज्ञोत्पलरोधसिद्धम् । स्यात्त्राय
माणाविधिरेष एव सोऽदुम्बरे चैव पटोलपत्रे
अर्थ—ढाक के डंठलों का रस निकालें
और फिर उन्हीं का कल्क करके उसमें घृत
पकावे, इस घृत को शहत मिलाकर चाटे
तो रक्तपित्त नष्ट होय । इसी तरह इंद्रजौ
का प्रयोग भी होता है । इसी तरह लज्जालू,
नीलोत्तर और लोध से सिद्ध किया हुआ
घृत रक्तपित्त पर देवे । त्रयमाण अथवा गू-
छर और परवल के पत्तों को घृत के साथ
सिद्ध करके पूर्वोक्त विधि से सेवन करें ॥

अन्यप्रयोग ।

सर्पिपित्तज्वरनाशनानि सर्वाणि शस्ता
निचरक्तपित्ते ॥ अभ्यङ्गयोगः परिपेच
नानि सैकावगाहाः शयनानिवेशम् । शी
तोविधिर्विस्तिविधानमष्टं पित्तज्वरे यत्
प्रशमाय दृष्टम् ॥ तद्रक्तपित्ते निखिलेन का
र्यकालश्च मात्राञ्च पुरा समीक्ष्य ॥

अर्थ—पित्तज्वरके नाश करने वाले जो
जो घृत वर्णन किये गये हैं वे सब रक्तपित्त
में हितकर हैं । तथा पित्तज्वरमें जो जो
अभ्यङ्ग, परिपेचन प्रसेक, अवगाहन शयन,
घर, शीतविधि तथा विस्तिविधान वर्णन
किये गये हैं उन सबका काल और मात्राका
विचार कर रक्तपित्त में प्रयोग करें ॥

अन्यप्रयोग ।

सर्पिर्गुडोदये च हिताः क्षतेभ्यः ते रक्तपित्तं
शमयन्ति मधुः ॥

अर्थ—घृत और गुड जो जो क्षतरोग
में हित हैं वे सब रक्तपित्त को भी तत्काल
नष्ट कर देते हैं ॥

कफानुबन्धी रक्तपित्तकी चिकित्सा ।
कफानुबन्धे रक्षितं रक्तपित्तं कण्ठागमे स्याद्ग्र
थिते प्रयोगः । युक्तस्य युक्त्या मधुसर्पिपो
श्चक्षारस्य चैवोत्पलनालजस्य ॥ मृणाल
पद्मोत्पलकेशराणां तथा पलाशस्य तथा मि
यङ्गोः । तथा मधूकस्य तथा सनस्य चक्षारः
प्रयोज्याविधिर्नैव तेन ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त कफानुबन्धी होता
है वह कण्ठमें आकर गांठदार होजाता
है । इसमें शहत और घृत मिलाकर चाटे
अथवा नीलकमलकी डंडीका खार शहत
घृतके साथ चाटे । अथवा कमलनाल, पद्म-
केशर, उत्पल, केसरकी भस्म अथवा ढाक
का क्षार, अथवा प्रियुगका क्षार अथवा महु
आ का क्षार अथवा असनका क्षार पूर्वोक्त
विधि से शहत और घृत के साथ चाटे ।

शतावरीदि घृत ॥

शतावरीदाडिमनिन्तिडीकं काकोलिमे-
दोमधुकं विदारीम् । पिष्ट्वा च मूलम्फलं
पूरकस्य घृतं पचेत्क्षीरचतुर्गुणेन ॥
कासज्वरानाहविष्वग्धूलः तद्रक्तपित्त-
श्च घृतं निहन्त्यात् । यत्पश्चमूलैरथ पश्च
भिर्वा सिद्धं घृतं तच्च तदर्थकारि ॥

अर्थ—सितावर, अनार, इमली, काकोली,
मेदा, मुलहठी, विदारीकन्द और विजैरे की-
जड़ इन को पीसकर इनके साथ घृत पकावे
उसी में घृत से चौगुना दूध डाले । इसके
सेवन करने से खांसी, ज्वर, आनाह, विष्वग्ध,
शूल और रक्तपित्त शान्त होजाते हैं ॥

पाँचों पंचमूल से सिद्ध किया हुआ घृत
भी ऊपर कहे हुए रोगों में हितकारी होता है ।

नकसीर की चिकित्सा ॥

कपाययोगाश्चइहोपादिष्टास्तेचावपीडेभिप-
जाप्रयोज्याः । घ्राणात्प्रवृत्तंरुधिरंसपि-
त्तं । यदाभवेन्निःसृतदुष्टदोषम् ॥

अर्थ—रक्तपित्त के नाश करनेवाले जो
जो कपाय इस जगह वर्णन कियेगये हैं उ-
नका रस निकालकर सूंघनेसे वह रक्तपित्त
वन्द होजाताहै जो नासिकाके द्वारा निकलताहै॥

दुष्टरक्तके वन्द होनेके उपद्रव ।

रक्तेमदुष्टेक्षवपीड्वन्धे दुष्टप्रतिश्यायाशि-
रोविकाराः । रक्तसंपूर्णकुण्ठपथगन्धः

स्याद्घ्राणनाशःकुम्भश्चदुष्टाः ॥

अर्थ—जो दूषित रक्तवन्द करदिया
जायग तो दुष्ट प्रतिश्याय, शिरोविकार,
पीवदार सड़ाहुआ रक्तस्त्राव घ्राणशक्ति
का नाश ये उपद्रव होंगे तथा नासिकामें
दुष्ट किमिरोग उत्पन्न होजायगा ।

रक्तपित्त मेंअन्यनस्य ॥

नीलोत्पलंगैरिकशंखयुक्तं । सचन्दनं
स्यात्तुसिताजलेन ॥ नस्यन्तथाम्रा-
स्थिरसः समझासधातकीमोचरसःस-
लोधः ॥ द्राक्षारसस्येश्वरसस्यनस्यं ।
क्षीरस्यदूर्वास्वरसस्यचैव ॥ यवासमूला
निपलाण्डुमूलं नस्यन्तथादाडिमपुष्पतोयम्

अर्थ—नीलकमल, गेरू, शंख, रक्तच-
न्दन और मिश्री इनको भिजोकर रसनिका-
लकर सूंघनेसे रुधिरवन्द होजायगा । अथ-
वा आमकी गुठलीका रस अथवा लज्जा-
द्व, धायके फूल, मोचरस, लोध इनका र-
स निकाल कर सूंघनेसे भी नकसीर वन्द

होजाताहै। अथवा दाखका रस, वा दूध, दूध
का रस, वा जवासे की जड़का रस, वा,
प्याजकी जड़का रस, वा अनारके फूलका
रस सूंघनेसे भी नकसीर वन्द होजाताहै ।

नस्यपर अन्य प्रयोग ।

पियालतैलंमधुकम्पयश्चसिद्धंतमाहि-
यमाजकंवा ॥आम्रास्थिपूर्वःपयसाचन-
स्यं । सशार्करवःस्यात्कमलोत्पलैश्च ॥

अर्थ—पियाल का तेल, मुलहटी और
दूध इन सबको पकाकर सूंघै, अथवा भैंस
या बकरी का घी, [आम्रास्थिपूर्व अ-
र्थात् पहिले श्लोकों में कहीहुई] लज्जाद्व
धाय के फूल, मोचरस, लोध, शारिवा,
कमल और नीलोत्तर इनको सिद्ध करके
नस्य लेंवै तो रुधिर वन्द होय ।

रक्तपित्तपर परिपेकादि प्रयोग ॥

भद्राश्रियंलोहितचन्दनञ्चमपुण्डरीकंकमलो-
त्पलश्च । उशीरवान्नीरजलंमृणालं ।
सहस्रवीर्यंवृणशूल्यमृद्धिः ॥ मूलानिपु-
ष्पाणिचवारिजानांम्रलेपनंपुष्कारिणामृ-
दञ्च । उदुम्बराश्वत्थमधूकरोध्राकपाय
वृक्षाःशिशिराथसर्वेभेदेहकलैपरिपेचने-
चतथावगाहेष्टतैलसिद्धौ । रक्तस्यापित्त
स्यचशान्तिमिच्छन् । भद्राश्रियादीनि
भिषक्प्रयुज्यात् ॥

अर्थ—सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, पुण्ड-
रीक, लालकमल, नीलकमल, उशीर, वानी-
र, नेत्रवाला, मृणाल, सहस्रवीर्य [दूध]
मल्लिका, ऋद्धि, कमलकी जड़ और फूल
तलावकी मिश्री, गूलर, पीपल, महुआ,

छोष तथा अन्य कषाय वृक्ष जो शीतवीये हैं इन सबको लेप, परिपेचन तथा अवगा-
हनमें प्रयुक्त करें ॥ और सफेद चन्दनसे
आदि लेकर द्रव्यों में घृत वा तेलको सिद्ध
करके रक्तपित्तकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करें
रक्तपित्तपरअन्यावीधि ॥

धारागृहेभूमिगृहश्चशीतवनञ्चरम्यञ्जल
वातशीतम् । वैदूर्यमुक्तामणिभाजनानां
स्पर्शश्चदाहेशिशिराम्बुशीताः ॥ पत्रा
णिशीतानिचवारिजानां । सौमश्चशी
तंकदलीदलाश्च । प्रच्छादनार्थंशयना-
सनानां । पद्मोत्पलानाञ्चदलाःप्रश-
स्ताःप्रियंगुकाचन्दनरूपितानांस्पर्शामि-
याणाञ्चवराङ्गनानाम् ॥ दाहेप्रशस्ताः
सजलाःसुशीताः । पद्मोत्पलानाञ्चक
लापवाताःमरिद्रदानांहिमवेदरीणा
ञ्चन्द्रोदयानांकमलाकराणाम् । मनोऽ-
नुकूलाःशिशिराश्चसर्वाःकथाःसरक्तंशम
यन्तिपित्तम् ॥

अर्थ—जलेके किनारेके या फव्वारेदार
तथा ठंडे तलघरे, रमणीकवन, ठंडे हवा
और जल, तथा वैदूर्य और मुक्तामणियों
के पात्रों का देहसे लगाना रक्तपित्त के
दाहमें हितकरहै । शीतल जल, शीतल क-
मलके पत्ते, शीतल रेशमी वस्त्र शीतल-
केलेके पत्ते भी हितकर हैं तथा पलंग
वा आसन पर विछाने के लिये लाल कमल
और नीलकमल के पत्ते हितकारी होते हैं ।
प्रियंगु तथा चन्दन लिप्तांगी प्रियतमा वगै-
रानोभाका स्पर्श, जलाद्रि शीतल कमलों और

मोरछल की हवा, नदी सरोवर, हिमालयकी
कन्दरा, चन्द्रमाकी चांदनी, कमलों का शुद्ध
तथा मनोनुकूल संतोष दाहिनी बातोंका श्रवण
रक्तपित्त को शमन करता है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुंबुद्धिसंख्यांस्थानंलिङ्गंपृथक्प्रदुष्टस्या।
मार्गौसाध्यमसाध्यंयाप्यंकार्यक्रमञ्चैव॥
पानान्नपानमेवचवर्ज्यंसंशोधनञ्चशमन
ञ्च । गुरुस्तवान्यथावत्चिकित्सिते
रक्तपित्तस्य ॥

अर्थ—भगवान् पुनर्वसुने इस अध्याय में
रक्तपित्त के हेतु, बुद्धि, संख्या, समुत्थान
लक्षण तथा दूषित रक्तपित्त के मार्ग, रक्त-
पित्त के साध्य असाध्य और याप्यके लक्षण
चिकित्साक्रम, पथ्य, अनुपान, वर्जित अन्न
संशोधन तथा संशमन ये सब बातें यथा-
वत् वर्णन की हैं ।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेदाविरचि-
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-
त्सितस्थाने रक्तपित्तचिकित्सितं नाम

चतुर्थोऽध्यायः । ४ ॥

पंचमोऽध्यायः

अथातोऽगुल्मचिकित्सितं व्याख्यास्याम
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम गुल्मचिकित्सित नामक अध्याय
की व्याख्या करेंगे ।

सर्वप्रजानांपितृवच्छरण्यःपुनर्यमृधृतभ-
विष्यदीशः । चिकित्सितं गुल्मानिवर्हणा-
र्थं प्रोवाचसिद्धं वदतांवरिष्ठः ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रजा को पिता की समान शरण देनेवाले, भूत-भविष्यत्के जानने वाले वक्ताओंमें श्रेष्ठ पुनर्वसुजी गुल्मरोग के निवारणार्थ सिद्ध चिकित्साका वर्णन करने लगे ॥

गुल्मोत्पत्ति का हेतु ।

चिद्रुग्मपिप्तादिपरिप्लवाद्वा तैरेवदृष्टेः
परिपीडितोवा ॥ वैरुदीर्णैर्विहितैरभोवा
वाह्याभिघातैरतिपूरणैर्वा । रुक्षान्नपानै-
रतिसेवनैर्वाशोकेनामिध्यामातिकर्मणावा
विवेष्टितैर्वाविषमातिमात्रैः । कोष्ठेप्रकोपं
समुपैतिवायुः ॥ कफःपित्तञ्चसदूपयित्वा
प्रोक्ष्यमाणान्निविनियतताभ्याम् । ह-
स्तीहृषाश्चोदरवस्तिशूलं करोत्यधोया-
तिनवद्वयार्गः ॥ पक्षाशयेपित्तकफाशयेवा
स्थितःस्वतन्त्रःपरसंश्रयोवा ॥ स्पर्शोपल-
ब्धःपरिपिण्डितत्वात् गुल्मोयथादो-
पमुपैतिनाम ॥

अर्थ—विष्ट, कफ और पितादि की अ-
त्यन्त क्षीणता वा इनहीं की वृद्धि से वायुकी
अत्यन्त पीडा से, उपास्थित अधोवेगों के
रोकनेसे, वाह्य अभिघात से, अत्यन्त सन्त-
र्पण से, रुक्ष अन्नपान के अत्यन्त सेवन से,
शोक से, वा चिकित्सा के मिथ्यायोग, अयो-
ग वा अतियोगसे, शरीर की विषम वा अ-
तिमात्र वेष्टाओंसे वायु कोष्ठ में अत्यन्त
कुपित होजाती है और फिर कफ और
पित्तको दूषित करके उनसे मार्गोंको रुक्-
णोत्तीहै और तब उत्तेजित होकर हृदय,
खोहा, पार्श्व, उदर और वस्तिमें शूल

उत्पन्न करती है और मार्गके बन्द होजाने
के कारण नाँचे होकर भी नहीं निकलने
पाती है । तब वह पक्षाशय वा पित्तकफाशय
में अकेली वा कफपित्त के संसर्ग में स्थित
होजाती है और उस स्थान में दृढ लगाने
से गोलासा दिखाई देने लगता है तब यथा-
दोष इस का नाम गुल्म होजाता है, यथा
वातिक पौत्तिक, और श्लेष्मिक । इस कहने
से यह न समझ लेना चाहिये कि केवल पौ-
तिक वा श्लेष्मिक होता है । इसमें वायु तो
प्रधान होती है इसी से वायुगोला कहते हैं ।

गुल्मके स्थानभेद ।

वस्तौहिनाभ्यांहृदिपार्श्वयोर्वा । स्थाना
निगुल्मस्यभवन्तिपञ्च । पञ्चात्मकस्य
प्रभवन्तुतस्य । वक्ष्यामिलिङ्गानिचिकि-
त्सितञ्च ॥

अर्थ—वस्ति, नाभि, हृदय, और दोनों
पार्श्वभाग ये गुल्म के पाँच स्थान हैं । इस
की उत्पत्तिभी पाँचही प्रकारसे हैं, अब हम
इसकी चिकित्सा और लक्षणों का वर्णन
करते हैं ।

वातिक गुल्मका हेतु ।

रुक्षान्नपानविषमातिमात्रं । विवेष्टितंवे-
गविनिग्रहश्च । शोकोऽभिघातोऽतिबल-
क्षयश्च निरुद्धताचानिलगुल्महेतुः ॥

अर्थ—रुक्ष अन्नपानके सेवन, शरीर की
विषम और अतिमात्र वेष्टा, मलमूत्रादि वेगों
का अवरोध, शोक, अभिघात, बलकी अत्य-
न्त क्षीणता, भोजन न करना ये सब वाति-
क गुल्मकी उत्पत्ति के हेतु हैं ।

वातिक गुल्म के लक्षण ।

यःस्थानसंस्थानरुजां विकल्पं । विद्वात
सङ्गमलवक्त्रशोषम् । श्यावारुणत्वंशि-
शिरज्वरश्च । हृत्कुक्षिपार्श्वसशिरोरुजश्च
करोतिर्जीर्णैऽभ्यर्षिकंप्रकोपं । भुक्तेमृदु
त्वंसमुपैतियश्च । वातात्सगुल्मो न च तत्र-
रूक्षः कपायतिक्तकटुचोपशेते ॥

अर्थ—जिस गुल्म के स्थान, स्वरूप और
वेदना में थोड़ी थोड़ी देर में अन्तर पड़जाय,
जिस में मलत्याग और अधोवायु का अव-
रोध हो, जिस के होने से गले और मुख
में खुशकी हो, जिसका रंग कुछ काळा
कुछ लालहो जिसमें शतिज्वर का वेग
हो, जिसके होनेसे हृदय, कुक्षि, पार्श्व और
सिरमें वेदनाहो, अन्नके पचनेपर जो अत्यन्त
कुपित हो, जो भोजन करने पर नरम प-
डजाय उसे वातजगुल्म कहते हैं इसमें रू-
क्ष, कटु, तिक्त और कपाय द्रव्योंके सेवन
का निषेध है ।

पैत्तिक गुल्मका हेतु ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदारूक्षक्रोधातिम
धार्कहुताशसेवा ॥ आमामिध्यातोरुधिर
ऽचदुष्टपैतस्यगुल्मस्यनिमित्तमुक्तम् ॥

अर्थ—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदा
ही और रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे, क्रोध, अति,
मय, धूप और अग्निमें तापनेसे, अविदग्ध
अन्नसे और रुधिरके दूषित होनेसे पैत्तिक
गुल्म उत्पन्न होता है ।

पैत्तिक गुल्मके लक्षण ।

ज्वरःपिपासावेदनाऽऽरागःशूलमहज्जीर्ण-

तिभोजनेच । स्वेदोविदाहोव्रणवच्चगुल्म
स्पर्शासहःपैत्तिकगुल्मरूपम् ॥

अर्थ—ज्वर, तृषा, मुख तथा देहमें ल-
छाई, अन्नके पचने के समय अत्यन्त शूल
का होना, पसीना, विदाह, तथा घाव की
तरह गुल्ममें हाथका लगाना बुरा मादम्
होना, ये सब पैत्तिकगुल्म के लक्षण हैं ।

श्लैष्मिकगुल्म के हेतु ।

शीतगुरुस्निग्धमचेष्टनञ्चसम्पूर्णप्रस्यप-
नंदिवाच । गुल्मस्पहेतुः कफसम्भवस्य ।
सर्वस्तुदृष्टो निचयात्मकस्य ।

अर्थ—शीतल, भारी और स्निग्ध पदा-
र्थों के सेवनसे किसी प्रकार की चेष्टा कर
नेसे, संतर्पणसे, दिनमें नींद लेनेसे कफज
गुल्म होता है; तथा सान्निपातिक गुल्ममें ती-
नों दोषोंके मिले हुए कारण होते हैं ॥

श्लैष्मिक गुल्मके लक्षण ।

शैत्यगुल्मशीतज्वरगात्रसाद हृष्टासका-
सारुचिगौरवाणि । शैत्यंरगल्पाकठिनो
न्नतत्वं गुल्मस्यरूपाणिकफात्मकस्य ॥

अर्थ—शैत्यगुल्म, शीतज्वर, अंगगलानि,
हृष्टास, खांसी, अरुचि, भारापन, शैत्य,
वेदनाकी सूक्ष्मता, कड़ापन, ऊँचापन, ये
सब कफजगुल्म के रूप हैं ॥

द्रवजगुल्म के लक्षण ॥

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्यगुल्मे द्विदोषजदो-
षबलावलञ्च । व्याभिधदोषानपरांस्तु
गुल्मांस्त्रीनादिशेदौपधकल्पनार्थम् ॥

अर्थ—उत्पात्तिक हेतु, लक्षण, दोषोंका
बलावल, तथा दोर दोषोंके मिले हुए लक्षण

णोंसे तीन प्रकारके त्रिदोषजगुल्म भी होते हैं ॥ औषधों के प्रयोग के निमित्त इनके तीन भेद दिखाये गये हैं ।

त्रिदोषजगुल्म के लक्षण ॥

महारुजंदाहपरीतमश्मवद् घनोन्नत्तशीघ्र विदाहिदारुणम् । मनःशरीराग्निबलाप हारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥

अर्थ—त्रिदोषजगुल्ममें अत्यन्त घोर वेदना, दाह, पथरके समान कडापन और ऊँचाई होताहै यह शीघ्रही दाह उत्पन्न करनेवाला भयंकर रोग होताहै। यह मन शरीर और अग्निके बलको दूर कर देताहै यह गुल्म असाध्य होता है ॥

रक्तगुल्मका कारण

ऋतावनाहारतयाभयेन विरुद्धैर्वेगविनिग्रहैश्च ॥ संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रियैरक्तभवोऽभ्युपैति ॥ यः स्पन्दतेपिण्डतएवनाङ्गैः चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गैः । सरौधिरः स्त्रीभवएव गुल्मो मासेव्यतीतेदशमेचिकित्स्यः ॥

अर्थ ...ऋतुधर्म होनेमें सर्वथा भोजन न करना, भय, रुक्ष पदार्थोंका सेवन, वातादिरोगविनिग्रह, स्तम्भनक्रिया, वमन और योनिदोषसे स्त्रियोंके रक्तगुल्म होताहै। जब रक्तगुल्म पेटमें उछलता है तब इसमें अत्यन्त वेदना होती है और लक्षण इसमें गर्भ के समान होते हैं इसकी उत्पत्ति रक्तसे है और यह केवल स्त्रियोंहीके होताहै। दस महीने व्यतीत होनेपर इसकी चिकित्सा करना उचितहै ।

क्रियाक्रममतः सिद्धगुल्मिनां गुल्मनाशनम् प्रवक्ष्याम्यत ऊर्ध्वञ्च योगानां गुल्मनिवर्हणान् ॥

अर्थ—अब हम यहांसे गुल्मरोगीको गुल्मको दूर करने के लिये चिकित्साक्रम और अनुभूत प्रयोगोंका वर्णन करते हैं ॥

वातजगुल्ममें चिकित्साक्रम ॥

रुक्ताव्यायामजं गुल्मं वातिकं तीव्रवेदनम् । वद्धविट्मारुतं स्नेहैरादितः समुपाचरेत् ॥ भोजनाभ्यञ्जनैः पानैर्निरुहैः सानुवासनैः स्निग्धस्य भिषजास्वेदकर्त्तव्यो गुल्मशान्तये ॥ स्रोतसामार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्ममपोहति ॥ स्नेहपानमतं गुल्मे विशेषेणोर्ध्वनाभिजे । पक्वाशयगते वस्तिरुभयं जठराश्रये ॥

अर्थ—जो वातिकगुल्म रुक्ता भोजन तथा परिश्रमसे उत्पन्न हुआ है, जिसमें तीव्र वेदना होतीहै और जिसमें अधोवायु और विष्टा रुकगयाहो उसमें प्रथम स्नेहन किया करें ॥ भोजन अभ्यञ्जन, पान, निरुहण और अनुवासन वस्ति द्वारा रोगीको स्निग्ध करके स्वेदनकर्म करें तौ गुल्मरोग की शान्ति होतीहै

रोगीको स्निग्ध करने के पश्चात् स्वेदन से शरीरके स्रोत मृदु होजातेहैं, वायु की प्रचलता घटजातीहै, विवन्धता दूर होजाती है और तब गुल्म भी शान्त होजाता है । विशेष करके नाभिसे ऊपर हेनबोल गुल्ममें स्नेहपान श्रेष्ठ है ॥ पक्वाशयगत गुल्ममें वस्तिकर्म तथा जठराश्रय गुल्ममें स्नेहपान और वस्तिकर्म दोनों हित हैं ॥

अन्यविधि ॥

दीप्ताग्नौवातकेगुल्मेविवन्धेऽनिलवर्च
सां॥ बृंहणान्यन्तपानानिस्निग्धोष्णानि
प्रयोजयेत् ॥ पुनःपुनःस्नेहपानंनिरूढाः
सानुवासनाः । प्रयोज्यावातगुल्मेपुक्कफ
पित्तानुरक्षिणा ॥ कफेवातेजितमार्यपि
चंशोणितमेववा । यदिकुप्यतिवातस्य
क्रियमाणेश्चिकित्सितैः ॥ यथोल्बणस्य
दोषस्यतत्रकार्यमभिपग्जितम् । आदाव
न्तेचमध्येचमारुतपारिरक्षता ॥ वातगुल्मे
कफोद्वेगोद्वेगस्वाग्निमरुचिर्वादि । हल्ला
संगौरवतन्द्राजनयेदुल्लिखेत्तुतम् ॥

अर्थ—यदि वातिक गुल्ममें अग्नि तीव्र
हो, तथा अशोवायु और विष्टाका विबन्ध
हो तो बृंहणकर्त्ता, स्निग्ध और उष्ण अन्न
पानका प्रयोग करे । तथा कफपित्तानुबन्धी
वातजगुल्मरोगमें बारबार स्नेहपान तथा
निरूहण, अनुवासनवस्ति देवै । कफ और
वातके प्रायः दूर होने के समय अथवा
वातगुल्मकी चिकित्सा करने के समय यदि
पित्त और रक्त कुपित होजाय तब उस
समय जिस दोषकी अधिकताहो उसी की
चिकित्साका उपाय करे । परन्तु चिकित्सा
के आदि मध्य वा अन्तस्नानमें वायुकी रक्षा
करता रहे । वात गुल्ममें यदि कफ उत्ते-
जित होकर जठराग्नि को मन्द करके अ-
रुचि, हल्लास, गौरव तन्द्रा उत्पन्न करे तब
उस रोगी को वमन करावै ॥

अन्यविधि ॥

शूलानाहविवन्धेपुगुल्मेवातकफोल्बणे ।
वतैर्योगुलिकाःचूर्णकफवातहरम्मतम् ॥

पित्तवायदिसंष्टृद्धसन्तापवातगुल्मिनः ।
कुर्याद्विरेच्यःसभवेत्स्नेहनेरानुलोमिकैः ।
गुल्मयद्यनिलादीनांकृतेसम्पग्भिपग्जिते
नप्रशाम्यतिरक्तेनसंस्तुतेनोपशाम्यति ॥

अर्थ—वातकफाधिक्य गुल्ममें यदि शूल
आनाह और विबन्ध हो तो कफवातनाशक
वर्तिका, गोली, चूर्णका प्रयोग करे । वात
गुल्मरोगीके यदि पित्त बढ़कर सन्ताप
उत्पन्न करे तो वायुके अनुलोमन करने
वाले स्नेहनद्रव्यों से विरेचन देवै । यदि
वातादिक को शमन करनेवाली औषधोंके
प्रयोग से जो गुल्म शांत नहों वे फस्त खो-
लने से शान्त होजाते हैं ।

पैत्तिकगुल्ममें चिकित्साक्रम ॥

स्निग्धोष्णेनोदितेगुल्मेपैत्तिकेसंसंनमत्तम्
रूक्षोष्णेनतुसम्भूतेसर्पिःप्रशमनंरम् ॥
पित्तवापित्तगुल्मंवाज्ञात्वापकाशयस्थित
म् ॥ कालावन्निर्हरेत्सद्यःसतिक्तक्षीरच
स्तिभिः॥ पयसावामुखोष्णेनसतिकेन
विरेचयेत् । भिपग्गिन्वलोपक्षीसर्पिपा
तैलकेनवा ॥

अर्थ—जो पैत्तिकगुल्म स्निग्ध और उष्ण
पदार्थों के सेवन से उत्पन्न हुआ है उस-
में दस्तावर औषध हितहै । और जो रूक्षो-
ष्णपदार्थों के सेवनसे हुआहै उसमें घृतपान
बहुत उत्तमहै । पित्त वा पित्तज गुल्म जो
पकाशयमें स्थितहो उसे उचितकाल में
तिक्त औषधियों से संस्कार की हुई क्षीर-
वास्तिद्वारा तत्काल निकाल देवै, अथवा
तिक्त औषधियोंसे संस्कार किमिदृष्ट सुखोष्ण
दुग्धको पान कराके विरेचन देवै अथवा

रोगीके अग्निबल का विचार करके तेल मिला हुआ घी देकर विरेचन देवै ॥

गुल्ममें रक्तमोक्षणविधि ॥

तृष्णाज्वरपरीदाहशूलस्वेदाग्निमार्दवे ।
गुल्मिनामरुचौचापिरक्तमेवावसेचयेत् ॥

छिन्न मूलाविदहन्तेनगुल्मायान्तेचक्षयम्
रक्तहिष्यम्लतांपातितक्षनास्तिनचास्ति
रक्त । हृतदोषम्परिम्लानंजाह्नलैस्तापि-
तंरसैः ॥ समाश्वस्तंचशेषातिसर्पिपापुन-
राचरेत् । रक्तपिप्पातिष्टब्दत्वात्क्रियाम-
नुपलभ्यथा ॥ यदिगुल्मोविदहतेतश्चत-
त्रभिषग्जितम् ।

अर्थ—यदि पित्तज्वरमें तृष्णा, ज्वरदाह
शूल, पसीना, मंदाग्नि और अरुचि हो तो
फस्त खुलवायें । इसतरह गुल्मकी जड़ काट
लेनेसे वे पकने नहीं पातेहैं किन्तु नष्ट हो
जातेहैं, रक्तकी अम्लता जाती रहती है
और रक्तके न रहने से वेदनाभी नहीं रहती
फस्त खोलनेसे दोषों के दूर होजाने
पर रोगी अत्यन्त थकित होजाताहै तब
उसे जांगल पशुओंके मांसरस से तर्पित
करै जब यह साधधान होजाय तब बचे-
हुए रोगको घृतपान कराके दूर करै ।

रक्तपित्तके अत्यन्त बढ़जाने से या चि-
कित्साकी सम्पक् अनुपलब्धि से जो गुल्म
पकजाय तो उसमें शूल द्वारा रक्त मोक्ष-
णही चिकित्सा है ॥

अपक्व गुल्म के लक्षण ।

गुरुकटिनसंस्थानोगूढमांसोत्तराश्रयः ॥
अविवर्णःस्थिरश्चैवहृष्यकोगुल्मउच्यते ।

अर्थ—भारी, कठोराकृति, घने मांस में
स्थित, जिसका रंग न बिगड़ा हो जो अच-
ल हो यह गुल्मअपक्व होताहै ॥

विदह्यमानगुल्म के लक्षण ॥

दाहशूलाग्निसंक्षोभस्वप्ननाशारतिज्वरः
विदह्यमानजानीयाद्गुल्मंतमुपनाहयेत् ।

अर्थ—जिस गुल्ममें दाह, शूल, अग्नि-
संक्षोभ, निद्रानाश, प्रलाप और ज्वर हो
उस गुल्मको विदह्यमान अर्थात् पकनेवाला
कहतेहैं । इसपर लेपकरना चाहिये ॥

संपक्व गुल्मके लक्षण ।

विदाहलक्षणाल्पत्वंवाहिस्तुङ्गसमुन्नते ॥
श्यावेसरक्तपर्यन्तेसंस्पर्शेतिस्तिसन्निभे ।
निर्पीडितोन्नतेस्तन्धमुन्नतत्पार्श्वपीडनात्
ततैवपिण्डितेशूलेसंपक्वगुल्ममादिशेत् । त-
त्रधान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रियाविधौ
वैद्यानांकृतयोग्यानाव्ययशोधनरोपणेः ।
अन्तर्भागस्यचाप्येतत्पच्यमानस्यलक्ष-
णम् ॥

अर्थ—विदाह लक्षणोंके अल्प होनेपर
जब गुल्म बाहरकी ओर अत्यन्त तुंग और
ऊंचा होताहै, रंग काला पड़जाता है और
इसके चारों ओरके किनारे कुछ कुछ लाल
होजाते हैं, छूने में परवालसा माड़महो हाथ
से दवाने पर फिर ऊंचा होजाय, ओरपास
में दावनेपर स्तब्ध और मुस्त माड़महो,
एकही स्थानपर गोलासा रहा आवै और
वेदना होती हो तब इसे संपक्व समझना
चाहिये ॥

ऐसे गुल्म रोग को व्ययधन, शोधन, और

रोपण द्वारा चिकित्सा करनेका अधिकार सम्पूर्ण अन्न शस्त्रोंसे सम्पन्न धान्वन्तरीय चिकित्सकों की है अर्थात् उनको है जिन्होंने धन्वन्तरिके मतके अनुसार मूत्रों का चीरना फाड़ना आदि सीखा है ।

भीतर की ओरको पकनेवाले गुल्म के भी यही लक्षण होतेहैं ॥ यह अन्तर्विद्रधि के समानहीहैं क्योंकि अन्तर्विद्रधि पकती है और गुल्म नहीं पकताहै ॥

इत्क्रोडश्चूनतान्तःस्थेवहिःस्थेपार्श्वनिर्गतिः पक्वःस्रोतांसिसंक्रियव्रजत्पूध्वमथोऽपिवा स्वयमवृत्तन्तंदोषमुपेक्षेतहिताशनैः । दशा हंद्वादशाहंवारक्षन्भिपगुपद्रवान् ॥ अत ऊर्ध्वभक्षपानंसर्पिपःसविशोधनम् । शुद्धं सतिक्तसक्षौद्रंपयोगेसर्पिरिप्यते ॥

अर्थ—अन्तःस्थगुल्म अर्थात् अन्तर्विद्रधिमें हृदय और क्रोडमें सूजन होती है और वहिस्थगुल्ममें अर्थात् बाह्यविद्रधि में पसवाडोंसे निर्गमन होताहै । गुल्म पक्व होकर स्रोतोंको गीला करके ऊपर की ओर या नाँचेकी ओर जाताहै । जो दोष अपने आप निकलने लगे तो हितकारी पथ्य बताकर वैद्य को उचित है कि उपद्रवों की रक्षाकरता हुआ इसकी दस बारह दिवस तक उपेक्षा करे ॥ तदुपरान्त संशोधनवृत्त का व्यवहार करे । इसतरह जब रोगी शुद्ध हो जाय तब तित्त औषधियोंके साथ संस्कार किया हुआ घृत शहत मिलाकर देवै ।

कफजगुल्मका चिकित्सादि वर्णन ।

शीतलैगुहाभेःस्निग्धैर्गुल्मजातेकफात्मके॥

अवम्यस्याल्पकायाग्नेःकुर्याल्लघनमादितः

अर्थ—शीतल, भारी और स्निग्ध पदार्थों के अत्यन्त सेवन से जो कफात्मक गुल्म उत्पन्न होता है उस में रोगी वमन के अयोग्य और मन्दाग्नियुक्त होजाता है इसलिये इस में प्रथम लघन कराना उचित है ।

वमनोपगरोगी ।

मन्दोऽग्निर्वेदनामन्दोगुरुस्तिमितकोष्ठता सोत्केशाश्चारुचिर्यस्यसगुल्मीवमनोपगः ॥

अर्थ—जिस गुल्मरोगी की अग्नि मन्दहो वेदना भी मन्द हो जिसके कोष्ठमें भारापन और गीलापन होवै, जिसको उत्केश और अरुचि होवै वह रोगी वमन के योग्य होताहै उत्प्रेरेवोपचार्यस्यकृतेवमनलंघने । यो ज्याचाहारससर्गोभेषजैः कटुतिक्तकैः ॥

सानाहसविवन्धंचगुल्मंकठिनमुन्नतम् । दृष्ट्वादौस्वेदयद्युक्त्यास्विन्नञ्चयिनयेद्विपक्व ॥ लंघनोल्लेखनेस्वेदेकृतेऽग्नौसंप्रधुक्षिते । कफगुल्मोपिवेत्कालेसधारकटुकं घृतम् ॥ स्थानादपसृतंज्ञात्वाकफगुल्मं विरेचनेः । सस्नेहैर्वस्तिभिर्वाधशोधये

इशमूलकैः ॥

अर्थ—वमन और लघन करानेके पश्चात् उष्ण, कटु और तिक्त औषधियों को आहारमें मिलकर देवै ॥ आनाह और विवन्ध युक्त गुल्म जो कठोर और उंचाहो उसमें युक्तिपूर्वक स्वेदनदेवै, स्वेदन कर्मकेपीछे यह नीचा होजाताहै । लंघन, वमन और स्वेदनके पश्चात् जब अग्नि प्रदीप्त होजाय तब कफजगुल्म में क्षार और कटु

द्रव्यों से संस्कार किया हुआ घृतपान करावे
ऊपर कहे हुए लघनादि उपचारों से जो कफ
गुल्म अपने स्थान से चालित होजाय तो दश-
मूल के काथ में सिद्ध किया स्निग्ध विरेचन
अथवा स्नहनवस्ति देकर उसका संशोधन करे

कफजगुल्म में अन्यप्रयोग ॥

मन्दाग्रावनिले मूढे ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम्
शुलिकाः चूर्णनिर्धूहाः प्रयोज्याः कफगुल्मि-
नाम् ॥ कृतमूलं महावास्तुकठिनं स्तिमितं
गुरुम् । जयेत्कफकृतं गुल्मं क्षारारिष्टाग्नि-
कर्मभिः ॥

अर्थ....कफ गुल्मरोगी की जो अग्नि
मन्द पड़ गई हो, अधोवायु रुक गई हो
और आमाशय स्निग्ध हो तो उसे गोली,
चूर्ण और काथादिक देवे ॥ ऐसा कफगुल्म
जो बहुत बीचमें फैल गया हो, कड़ा हो, गोला
हो, भारा हो उसको क्षार, अरिष्ट और अ-
ग्निकर्म द्वारा शान्त करे ।

गुल्ममें क्षारविधि ॥

दोषप्रकृतिगुल्मन्तु योगं बुध्वा कफोत्वणे ।
बलदोषप्रमाणज्ञः क्षारं गुल्मे प्रयोजयेत् ॥
एकान्तरं द्वयन्तरं वा त्र्यहं विधम्य वा पुनः ।
शरीरबलदोषाणां दृष्टिद्विषणकोविदः ॥
इलेष्माणं धुरां स्निग्धं तां सखीरघृताशिनः
भित्वा भित्वा शयानं क्षारः क्षरन्वात्क्षारय-
त्यथः ॥

अर्थ....कफाधिक्य गुल्ममें दोष, प्र-
कृति, गुल्म और योग को देखकर क्षार
का प्रयोग करे फिर एकदिन दोदिन अथवा
तीनदिन ठहरकर देखे कि शरीर के

बल और दोषों में क्या अन्तर हुआ तब
उसी के अनुसार फिर प्रयोग करे । क्षार
अपनी क्षरणशक्ति से मांस, दूध, औ-
र घी खाने वाले मनुष्यके आशय को भे-
दकर मधुर स्निग्ध कफको अधोमार्ग द्वा-
रा निकाल देता है ।

गुल्म में अरिष्ट ॥

मन्दाग्रावरुची सात्प्यमेघे सस्नेहमशनता-
म् । प्रयोज्या मार्गं शुद्धयर्थं मरिष्टाः कफगु-
ल्मिनाम् ॥

अर्थ—स्निग्ध भोजन करनेवाले कफ
गुल्मरोगीकी यदि आग्निमन्द पड़ गई हो
अरुचि हो वा मदिरापान सात्प्य हो तो मा-
र्गकी शुद्धिके निमित्त अरिष्टका प्रयोग करे ।
लङ्घनोद्वेखनः स्वेदैः सर्पिष्पानैर्विरेच-
नैः ॥ वस्तिभिर्गुलिकाचूर्णक्षारारिष्टगणै-
रपि ॥ श्लैष्मिकः कृतमूलत्वाद्यस्य गुल्मो
न शाम्यति ॥ तस्य दाहो हृते रक्ते शरलोहा-
दिभिर्मतः । औष्ण्याच्चैक्षण्याच्च शमयेदग्नि-
गुल्मे कफानिलौतयोः शमाच्च संघातो गु-
ल्मस्य विनिवर्तते ॥

अर्थ—लघन, वमन, स्वेदन, घृतपान,
विरेचन, वस्तिकर्म, गोली, चूर्ण, क्षार और
अरिष्ट इनमें किसीका प्रयोग करने से
भी वह श्लैष्मिक गुल्म शान्त न हो जो
जड़ पकड़ गया है तो प्रथम फस्त खोल-
कर फिर शर वा लोह से दग्ध करना उ-
चित है । अग्नि अपनी उष्णता और ती-
क्ष्णता से गुल्मरोग में कफ और वादी को
शान्त कर देती है और इन दोनों के शमन
होने से गुल्म का गोला नष्ट होजाता है ।

दाहधान्वन्तरीयाणामत्रापिभपजांवल
म्-। क्षारप्रयोगेभिपजांक्षारतन्तविदांवल
लम् ॥ व्यामिश्रदोषैर्व्यामिश्रपपएवक्रि-
यात्तम् । सिद्धान्तःप्रवक्ष्यामियोगान्
गुल्मानिवर्हणान् ॥

अर्थ—धन्वन्तरि के मत के अनुसार जो
अग्नि कर्मादि जानते हैं वेही दाह कर सकते
हैं और क्षारकर्मको जाननेवाले क्षारका
प्रयोग कर सकतेहैं । जो गुल्म दो दो दोषों
से उत्पन्न हैं उनमें मिलीहुई क्रिया कर-
ना चाहिये ।

अब हम गुल्मनाशक अनुभूत प्रयोगों का
वर्णन करते हैं ।

त्र्यूपणादि घृत ।

त्र्यूपर्णत्रिफलाधान्यंविद्वद्वाचव्यचित्रकैः
कल्कीकृतैःघृतंसिद्धंसक्षीरंवातगुल्मनुत् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, धनियां, वाय-
विडंग, चव्य, चीता इन सब को पीसकर
छगदी बनावे उसको दूध में मिलाकर घृत
ढालकर पकावे यह घृत वातगुल्म को दूर
करता है ।

त्र्यूपणादि घृत की अन्यविधि ।

एतएवचकल्काःस्युःकपायःपञ्चमूलिकः।
द्विपञ्चमूलिकोवायतदघृतंगुल्मनुत्परम् ॥

अर्थ—ऊपर कही औषधियोंका कल्क
और पंचमूल वा दशमूलके कायमें घृत
को सिद्ध करके देवै यह घृत भी गुल्म-
नाशक है ।

अन्यप्रयोग ॥

पट्टपलंवापितत्सार्पिर्यदुक्तंराजयक्ष्माणि ।

प्रसन्नयावाक्षीरार्थःसुरयादाडिमेनवा ।
दध्नःशरेणवाकार्यैघृतंमारुतगुल्मिनाम् ॥

अर्थ—राजयक्ष्मामें जो पट्टपल घृत कहा
है उसे दूध के बदले में प्रसन्ना, मुरा, दा-
डिमरस वा दही की मलाई के साथ देवै तो
वातगुल्म शान्त होता है ॥

हिंवादि घृत ।

हिंसुसौवर्चलाजाजीविद्दाडिमदीप्यकौ।
पुष्करव्योपधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः
शठीवचाजगन्धैलामुरसैश्चाविपाचितम् ।
शूलानाहहरेसापिदध्नाचानिलगुल्मिनाम्

अर्थ—हींग, सहचलनमक, जीरा, विट्-
वण, अनार, अजवायन, कूठ, त्रिकुटा, ध-
नियां, अमलवेत, जवाखार, चीता, कचूर, व-
च, अजगन्ध, इलायची, सुरसातुलसी इन
को पीसकर घी ढालकर दहीके साथ पकावे
यह घृत वातरोगियों के शूल और आनाह
को दूर करता है ॥

ह्रुपादि घृत ।

ह्रुपाव्योपपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः।
साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैर्विपचेद्घृत-
म् ॥ मातुलङ्गदधिर्क्षीरकोलमूलकदाडिमैः
रसैस्तद्वातगुल्मघ्नैःशूलानाहविमोक्षणम् ॥
योन्यशोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरा
न् । वातहृत्पाश्वैःशूलञ्चघृतमेतद्वचपोहति ।

अर्थ—हाज्वेर, त्रिकुटा, छोटा जीरा, च-
व्य, चीता, सैधानमक, कालाजीरा, पीपला-
मूल, अजवायन इन सब को पीस लेवै और
विजैरे का रस, दही, दूध, बेरकारस, मूली
का रस, अनारका रस इन सब को मिलाकर

घृत पकावे यह घृत वातगुल्म, शूल, आनाह, धोन्मर्श, ग्रहणी दौष, श्वास, खांसी, अरुचि, ज्वर, वातरोग और पार्श्वशूल सबको नष्ट कर देता है ।

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पल्याःपिचुरध्यधोदादिमाद्विपलंप-
लम् । धान्यात्पञ्चघृताच्छुण्ड्याकर्पञ्जी-
रंचतुर्गुणम् ॥ सिद्धमेतैर्वृतंसद्योवातगु-
ल्मंचिकित्सति ॥ योनिशूलशिरःशूलम-
र्शासिविषमज्वरम् ॥

अर्थ—पीपल तीन तोला, अनार आठ तोला, धनियां चार तोला, घृत बीस तोला सौंठ दो तोला और दूध अस्सी तोला इन सब को सिद्ध करने से जो घृत तयार होता है वह वातगुल्म को तत्काल नष्ट कर देता है । इसी घृत के सेवनसे योनिशूल, शिरः-शूल, अर्श, विषमज्वर दूर होजाते हैं ।

घृतानामौषधगुणाय एतेपरिकीर्तिताः ।
तेचूर्णयोगावर्त्यस्ताःकपायास्तेचगुल्मि-
नाम् ॥

अर्थ—घृत सिद्ध करने के निमित्त जो औषधों के गुण ऊपर वर्णन किये गये हैं, ये ही औषधें चूर्ण, वार्ति और काथ द्वारा गुल्म रोगियों को दीजाती हैं ।

वर्तिप्रयोग ।

कोलदादिमधर्मांश्चसुरामण्डाम्लकाञ्जि-
कैःशूलानाहनुदःपेयाबीजपूररसेनवा ॥
चूर्णानिपातुल्यस्यभावितस्यरसेनवा ।
कुर्याद्वर्त्तिःसगुदिकागुल्मानाहार्तिशान्तये ॥

अर्थ—वेरका रस, अनारका रस, इन

को गरमजल, सुरामण्ड, अम्लकांजी बावि-
जौरेके रसके साथ पान करने से आनाह दूर होता है । अथवा विजौरेके चूर्ण में वि-
जौरे के रसकी भावना देकर वर्ती या गोली बनाकर सेवन करें तो गुल्म, आनाह और अर्श ये रोग शान्त होजातेहैं ॥

हिङ्गुवादि चूर्ण विधि ।

हिङ्गुत्रिकटुकां पाठां ह्युपामंभयांशटीम् ।
अजमोदाजगन्धेचतिन्तिदीकाम्लवेतसौ
दादिमं पुष्करंधान्यमजार्जीचितकंबंचाम्
द्वीक्षारोलवणेद्वेचचव्यंचैकत्रयोजयेत् ॥
चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमनुपानेप्यनत्ययम् ।
मागभक्तमथवापेयंमधेनोष्णोदकेनवा ॥
पार्श्वहृद्वास्तिशूलेपुगुल्मेवातकफात्मके ॥
आनाहेमूत्रकृच्छ्रेयाशूलेचगुदयोनिजे ॥
ग्रहण्यशौविकारेपुष्टीन्दिपाण्ड्वामयेऽरु-
चौ । उरोविग्रन्धेकासेचहिकाश्वासेगल-
ग्रहे ॥ भावितं मातुलुङ्गस्पचूर्णमेतद्रसेनवा ।
बहुशोगुलिकाः कार्याः कार्ष्णिकाः स्युस्ततोऽ-
धिकम् ॥

अर्थ—हींग, त्रिकुटा, पाठा, हाऊवेर, हरड, शटी, अजमोद, अजगन्ध, इमली, अमलवेत, अनार, कूठ, धनिया, कालाजीरा चीता, वच, दोनों क्षार, दोनों नमक, और चव्य इन सबका चूर्ण कूट लेवे । इस चूर्ण को अनुपानके साथ सेवन करें अथवा भोजन करनेसे पहिले मद्य वा उष्णजलके साथ लेवे इस चूर्णके सेवन करनेसे पार्श्वशूल, हृत्-शूल, धरितशूल, वातकफात्मक गुल्म, आनाह, मूत्रकृच्छ्र गुदशूल, योनिशूल, ग्रह-

णी विकार, अर्शविकार, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि उरोविवन्ध, खांसी, हिचकी, श्वास, गलग्रह दूर होजातेहैं । इसी चूर्णको विजौरे के रसमें घोटकर गोलियां बनालेवै ये गोलियां चूर्णकी अपेक्षा भी अधिक गुणकारीहैं ।

वातगुल्म में अन्य प्रयोग ।

मातुलङ्गरसोहिगुदाडिमंविडसैन्धवे ।

सुरामण्डेनपातव्यवातगुल्मरुजापहम् ॥

अर्थ—विजौरेका रस, हींग, अनार, विडनमक, सेंधानमक इनको सुरामण्डके साथ पान करनेसे वातगुल्म नष्ट होजाताहै ॥

शक्यादिचूर्ण ॥

शटीपुष्करहिंम्वल्लवेतसक्षारचित्रकान् ॥

धान्यकञ्चयमानीञ्चविडङ्गसैन्धववंचा

म् ॥ सचव्यपिप्लीमूलमजगन्धःसदा-

डिमम् ॥ अजार्जीचाजमोदाञ्चचूर्णकृ-

त्वाप्रयोजयेत् ॥ रसेनमातुलङ्गस्यमधुयु-

क्तेनवापुनः ॥ भावितं गुडिकांकृत्वा मु-

पिष्टां कौलसम्मिताम् । गुल्मप्लीहानमा

नाहंश्वासकासमरोचकम् । हिकां हृद्रोग

मर्शासिबिबिधान् शिरसोरुजान् ॥ पांङ्

षामयकफोत्क्लेशसर्वजाश्च प्रवाहिकाम्

पार्श्वहृद्रोस्तशूलश्च गुडिकैः पाव्यपोहति ॥

अर्थ—शटी, पुष्कर, हींग, अमलवेत

जवाखार, चीता, धनियां, अजवायन, वाय-

विडग, सेंधानमक, वच, चव्य, पीपलामूल,

अजगंध, अनार, कालाजीरा अजमोद,

इनका चूर्ण बनाकर सेवनकरै । अथवा

विजौरे के रसकी भावना देकर शहत मि-

लावै और छोटे बेर की बराबर गोली बनावै

यह गोली गुल्म, प्लीहा, आनाह, श्वास,

खांसी, अरुचि, हिचकी, हृद्रोग, अर्शरोग, शिरोवेदना, पाण्डुरोग, कफोत्क्लेश, सब प्रकार के प्रवाहिका, पार्श्वशूल, हृद्शूल, वस्तिशूल रोगों को दूर करती है ।

अन्यप्रयोग ।

नागार्द्रपलंपिष्टोद्वेपलेलुश्चित्तस्य च ।

तिलस्यैकगुडपलं क्षीरेणोष्णेन वापिवेत् ॥

वातगुल्ममुदावर्तयोनिशूलञ्चनाशयेत् ।

अर्थ—सोंठ दो तोले, बिना छिलके के तिल आठतोले, गुड चार तोले इनको गरम दूधके साथ पानकरै तो वातगुल्म, उदावर्त्त और योनिशूल दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

पिवेदैरण्डकैतैलवारुणीमण्डमिश्रितम् ॥

तदेवैतैलपयसावातगुल्मी पिवेन्नरः ।

श्लेष्मण्यनुवले पूर्वमतं पित्तानुगोपरम् ॥

अर्थ—श्लेष्मानुबन्धी वातगुल्म में वारुणी मण्डमिश्रित अण्डका तेल पान करै और जो पित्तानुबन्ध होवै तो दूधके साथ एण्ड का तेल पान करै ।

लहसनका दूध ।

साधयेत्सिद्धशुष्कस्यलथुनस्यचतुष्पलम्

क्षीरेजलाष्टगुणितेक्षीरशेषञ्चनापिवेत् ॥

वातगुल्ममुदावर्तयुद्ध्रसीविषमञ्जरम् ।

हृद्रोगां विद्रुषीशोपंसाधयत्याशुतत्पयः ॥

अर्थ—सिद्ध करके सुखाये हुए लहसन चार पललेकर दूध और उससे अठगुना जल मिलाकर पकावै जब पानी जलजाय और दूध शेष रहजाय तब इसको छानकर पीवै तो वातगुल्म, उदावर्त्त, गृध्रसी, विषम

ज्वर, हृद्रोग, विदग्धी, शोष, ये सब रोग दूर होजाते हैं ।

तैलंप्रसन्नागोमूत्रमारनालंयवाग्रजः ।
गुल्मजठरमानाहपीतमेकत्रसाधयेत् ॥

अर्थ—तेल, वारुणीमण्ड, गोमूत्र, कांजी जवाखार इनको सिद्ध करके पीये तो गुल्म रोग, जठररोग और आनाह दूर होजाते हैं,

शिलाजीन का प्रयोग ॥

पञ्चमूलकपायेणसक्षीरेणशिलाजतु ।
पिवेत्तस्यप्रयोगेणवातगुल्मात्प्रमुच्यते ॥

अर्थ—पञ्चमूल के काथ और दूध के साथ शिलाजीत का सेवन करे तो इस प्रयोग से वातगुल्म नष्ट होजाते हैं ।

अन्यप्रयोग

वाय्व्यूषेणपिप्पल्यामूलकानारसेनवा ।

शुक्त्वास्तिग्धमुदावर्तौद्वातगुल्मादिमुच्यते

अर्थ—पीपल के काथ वा मूली के रसके साथ खरैटी का सेवन करे तो उदावर्त और वात गुल्मादि रोग दूर होजाते हैं ॥

गुल्ममें वस्तिविधान ॥

शूलानाहविचन्धातैस्वेदेद्वातगुल्मिनम् ॥

स्वेदैःस्वेदविधायुक्तैर्नाडीप्रस्तरशङ्करैः ॥

वस्तिकर्मपरंविद्यात्गुल्मघ्नंताद्विमारुतम् ।

स्वेस्थानेमथमजित्वासद्योगुल्ममपोहति ।

तस्मादभीक्ष्णशोगुल्मानिरुहैःसानुवास-

नैः । मयुज्यमानैःशाम्यन्तिवातपित्तक-

फात्मकाः ॥ गुल्मघ्नायिविधान्दृष्टाःसिद्धाः

सिद्धिपुवस्तयः ॥

अर्थ—वातगुल्मरोगी यदि शूल, आनाह

और विचन्ध से पीडित होता उसे स्वेदा-

ध्याय में कहीहुई नाडी, प्रस्तर और शंकर, स्वेद द्वारा स्वेदन करे । वस्तिकर्म इस वातजगुल्म में बहुत श्रेष्ठ है, यह वायु को उसके निजस्थानमें जीतकर गुल्म को दूर कर देताहै । इसलिये बारबार निरुहण और अनुवासन वस्तिर्योंका प्रयोग करने से वातज, पित्तज और कफजगुल्म शान्त होजातेहैं सिद्धिस्थानमें अनेक प्रकार की गुल्मनाशक अनुभूत वस्तिर्यां वर्णनकी गईहैं

गुल्मपर तैलाविधान ॥

गुल्मघ्नानिचतैलानिवक्ष्यन्तेवातरोगिके ॥
तानिमारुतगुल्मेपुपानाभ्यङ्गानुवासनैः ।

मयुक्तान्याशुसिद्धन्तितैलैर्निलजित्व-
रम् ॥

अर्थ—वातरोगाध्याय में सब प्रकार के गुल्मनाशकतैल वर्णन किये गये हैं । वात-गुल्म में पान, अभ्यंग और अनुवासन द्वारा इन तैलों का प्रयोग करने में वात-गुल्म बहुत शीघ्र नष्ट होजाता है । ये तेल विशेष करके वातनाशक होते हैं ॥

गुल्मपर घृतविधान ॥

नीलिनीचूर्णसंयुक्तंपूर्वोक्तंघृतमेववा ।

समलायप्रदेयस्याच्छाधिन्नवातगुल्मिने

नीलिनीत्रिष्टुतादन्तोपश्याकांम्पिल्यकैः

सहशोधनार्थंघृतं देयं सविडभारनागरम्

अर्थ....उस वातगुल्मरोगी को जो मल-

युक्त होताहै नीलिनीका चूर्ण मिलाहुआ घृ-

त अथवा पूर्वोक्तघृत शोधन के निमित्त दे-

ना चाहिये ॥

नीलिनी, निसोध, दन्ता, हरद, कर्वाला,

बिडनमक, जवाबदार और सोंठ इनकेसाथ
सिद्ध कियाहुआ घृत संशोधनके निमित्तदेवै॥

नीलिन्यादि घृत ॥

नीलिनीत्रिवृतांरास्नांवालाकटुकरोहिणी
म् पचेद्विद्वङ्ग्याघ्रीञ्चपलिकानिजला-
दके ॥ तेनपादावशेषेणवृतप्रस्थंविपाच-
येत् । दध्नःप्रस्थेनसंयोज्यमुधाक्षीरपलेन
च ॥ ततोघृतपलंदद्याद्यवागूमण्डमिश्रि-
तम् । जीर्णसम्यग्विरिक्तञ्चभोजयेद्र-
संभोजनम् ॥ गुल्मकुष्ठोदरव्यङ्गशोफपा-
ण्ड्वामयज्वरान् । श्वित्रंप्लीहानमुन्मादं
घृतमेतद्रूपपोहति ॥

अर्थ—नीलिनी, निसोथ, रास्ना, खरैटी,
कटकी, वायविडंग, कटेरी, इन सबको ए-
कएक पललेवे और एक आढक जल में
इन्हे पकावै जब चौथाई जल रहजाय तब इ-
समें एकप्रस्थ दही और चार तोले सेडुंड
का दूध मिलाकर एकप्रस्थ घी पकावै ॥
इस घृतमें से एकपल घृत यवागूमण्डमें मि-
लाकर रोगीको देवै । जब औषध पचजाय
और रोगीको अच्छीतरह विरेचन होजाय तब
मांसरसका भोजन करावै । यह घृत गुल्म,
कोढ, उदररोग, व्यंग, शोफ, पाण्डुरोग, ज्वर,
श्वित्रकुष्ठ, प्लीहा, और उन्माद रोगोंको शा-
न्त करता है ।

वातगुल्ममें पथ्यादि विधि ॥

कुक्कुटशमयूराश्चत्तिरिक्ताञ्चवर्त्तकाः ।
शालयोमदिरासर्पिर्वातगुल्मभिपग्जितम्
हितमुष्णद्रवस्निग्धभोजनंवातगुल्मनाम्
समण्डवारुणीपानंपर्कवाधान्यर्कजैलम् ॥

मन्देऽनौवर्द्धतेगुल्मोदीप्तेचाग्नौप्रशाम्य-
ति । तस्मादन्नातिसौहित्यंकुर्यान्नातिवे-
लीघतम् ॥ सर्वत्रगुल्मेप्रथमेस्नेहस्वेदोप-
पादिते । याक्रियाक्रियतेसिद्धिसंयाति
नाविरुद्धते ॥

अर्थ—मुर्गा, मोर, तीतर, कौंच, बटेर,
शालीचांवल, शराव, और घृत ये सब वात-
गुल्ममें हितहै । इसरोगमें उष्ण, पतला
और स्निग्ध भोजन हितहै । मण्डयुक्त मं-
दिरा वा धनियां डालकर औटाया हुआ
जलभी हितहै । अग्निके मन्द होनेपर गुल्म
वढताहै और प्रदीप्त होनेपर शान्त होताहै,
इसलिये न पेटभरकर खानाही चाहिये न
लघनही करना चाहिये । गुल्मरोगोंमें प्रथम
ही स्नेहन-स्वेदन कर्म करके जो क्रियाकी
जाती है उससे रोग जाताहै और जो क्रिया
रुक्त व्यक्तिकी कीजाताहै वह निष्फलहोती है

पित्तगुल्मकी चिकित्सा ॥

भिपगात्ययिकम्बुद्ध्वापित्तगुल्ममुपाचरे-
त् । विरेचानिकसिद्धेनपयसासर्पिपापिवा

अर्थ—पित्त गुल्मको आत्ययिक समझकर
चिकित्सा करना चाहिये इस रोगमें विरेचन
कर्त्ता द्रव्यों के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत
वा दूध बहुत हितकारी है ॥

रोहिण्यादि घृत ।

रोहिणीकटुकानिम्बंमधुकंत्रिफल्यात्वचः ।
कार्पिकात्रायमाणाचपटोलात्रितृतापले ॥
द्विपलश्चमसूराणांसाध्यमष्टगुणेऽम्भसि
घृताच्छेषघृतसमंसर्पिषश्चतुष्पलम् ॥
पिवेत्संमूर्च्छितंतेनगुल्मःशाम्यतिपैत्तिक
ज्वरस्तृष्णाचशूलचभ्रममूर्च्छाक्षिप्तया

अर्थ—कुठकी, नीमकी छाल, महुआ, त्रिफलाका छिलका, और त्रायमाणाय ये सब एक एक पललेवै, परवल और निशोध दो दो पल ले दो पल मसूर इन सबको अठगुने जल में औटावै, जब घृत के समान शेष रहजाय तब छानकर इसमें चारपल घृतको पकावै इस घृतको सेवन करने से पित्तिक गुल्म, ज्वर तृष्णा, शूल, भ्रम, मूर्च्छा और अरुचि ये सब शान्त होजाते हैं ।

त्रायमाणायघृत ।

जलेदशगुणेसाध्यन्त्रायामागाचतुष्पलम् । पञ्चभागस्थितं पूतं कल्कैः संयोज्य कार्पिकैः ॥ रोहिणीकदुकामुस्तेत्रायमाणादुरालभा । कल्कैस्तामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः ॥ रसस्यामलकानाञ्जक्षीरस्यचघृतस्यच । पलानिपृथगष्टाष्टाद्व्यासम्यग्विपाचयेत् ॥ पित्तरक्तभवं गुल्मं वीसर्पपित्तिकज्वरम् । हृद्रोगं कालां कुष्ठं हन्यादेतद्घृतोत्तमम् ॥

अर्थ—चारपल त्रायमाणको दसगुने जलमें औटावै, जब पाँचवां भाग जलका रहजाय तब उसे उतारकर छानले फिर इसमें कुठकी, मोथा, त्रायमाणा, जवासा, भूय-आंवला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, चन्दन, उत्पल, इनको पीसकर उसमें डालदे और आंवले का रस आठ पल, मिलाकर अच्छी तरहसे पकावै । इस घृतके सेवन करने से पित्तिक गुल्म, रक्तजगुल्म विसर्प, पित्तिक ज्वर हृद्रोग काला, फोड ये सब रोग दूर होजाते हैं ।

आंवलकादि घृत ।

रसेनामलकेभूणां घृतपादं विपाचयेत् । पथ्यापादम्पिवेत्सर्पिस्तत्सिद्धं पित्तगुल्मनुत् ॥

अर्थ—ईख और आंवलेके रससे चौथाई घी और घी से चौथाई हरडका चूरण इनको मिलाकर औटावै । इस घृतका सेवन करनेसे पित्तिकगुल्म जाता रहता है ।

द्राक्षादि घृत

द्राक्षां मधुकं खर्जूरविदारीसशतावरीम् । परुषकाणि त्रिफलांसाधयेत्पलसंमिताम् ॥ जलाद्वकेपादशेषेरसामलकस्यच । घृतमिक्षुरसंक्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥ साधयेत्तु घृतं सिद्धं शंकराक्षोद्रपादिकम् ॥ प्रयोगात्पित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत् ॥

अर्थ—दाख, महुआ, खिजूर, विदारीकन्द, सितावर, फालसे और त्रिफला ये सब एक एक पल लेवै और एक आठक जलमें भरकर अग्निपर रखदे जब चौथाई शेष रह जाय तब उतार कर छानले । फिर इस में आंवले का रस, घी, ईखकारस, दूध और घृत से चौथाई हरडका कल्क डालकर सबका पाक करले । जब घी तयार होजाय तब उस में चौथाई चीनी और शहत डालकर सेवन करै तौ पित्तगुल्म तथा पित्तसे उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण विकार नष्ट होजाते हैं ।

वासाघृत ।

वृषसंभूलमापोध्यपचेदष्टगुणेजले । शेषेऽष्टभागतस्यैव पुष्पकल्कं प्रदापयेत् ॥ तेन सिद्धं घृतं शीतं संचौद्रं पित्तगुल्मनुत् । रक्तपित्तज्वरश्वासकासहृद्रोगनाशनम् ॥

अर्थ—अइसाको जड समेत कूटकर अ-
ठंगुने जलमें काथ करै जब आठवां भाग जल
का रहजाय तब उसमें उसीके फूलों का कल्क
डाँढ और इसमें घी डालकर पकावै । फिर
ठंडा होने पर शहत मिलाकर इसका सेवन
करै तो पित्तगुल्म, रक्तपित्त, ज्वर, श्वास,
खांसी और हृदयरोग सब शान्त होजातेहैं ।

दूसरा त्रायमाण घृत ।

द्विपलन्त्रायमाणायाजलद्विप्रस्थसाधितम्
अष्टभागस्थितं पूतं कोष्णं क्षीरसमं पिवेत् ॥
पिवेदुपरितस्योष्णं क्षीरमेव यथावलम् ।
तेन निर्वृत दोषस्य गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः ॥

अर्थ—दो पल त्रायमाण को दो प्रस्थ
जलमें औटावै, जब अष्टमभाग शेष रह
जाय तब छानकर बराबरका दूध मिला
कर कुछ गरम गरम का पान करै । फिर
यथाशक्ति ऊपरसे गरम दूध पीवै, ऐसा
करने से दोष दूर होकर पित्तज गुल्म शा-
न्त होजाता है ।

पैत्तिक गुल्ममें अन्य उपचार ।

द्राक्षाभयारसं गुल्मे पैत्तिके सुडं पिवेत् । लि-
क्षात्कम्पित्यकं वापि विरेकार्थं मधुद्रवम् ॥ शु-
लप्रशमनोऽभ्यङ्गः सर्पिपापित्तगुल्मनाश-
चन्दनाद्येन तैलेन तैलेन मधुकस्य वा । ये
च पित्तज्वरार्तानां सतिक्ताः क्षीरवस्तयः ।
हितास्ते पित्तगुल्मभ्यो वक्ष्यन्ते ये च सि-
द्धिषु ॥ शालयोजाङ्गलेमांसद्वानपि य-
सी घृतम् । खर्जूरामलकं द्राक्षादादिभ्य-
परुषकम् ॥ आहारार्थं मयोक्तव्यं शना-
र्थं सलिलं शृतम् ॥ बलादिद्वारिण्यार्थः ।

पित्तगुल्माचिकित्सितम् ॥ आमाम्बये
पित्तगुल्मे सामेवाकफनातिके । यवा-
गूभिः खडैर्यूषैः सन्धुक्ष्योऽग्निविलहिते ।
शममकोपौ दोषाणां सर्वेषां मग्निसां श्रितौ ।
तस्मादग्निं सदारक्ष्येन्निदानानि च वर्जयेत् ॥

अर्थ—पैत्तिकगुल्ममें विरेचनके लिये
किसमिस, हरड और गुडका काथ पीवै,
अथवा कर्वालमें शहत डालकर चाटे । पि-
त्तगुल्म रोगियोंके शूलनाश करनेको घृतका
अभ्यंग, तथा चन्दनाय तैल वा मु-
लहटीके तैलका अभ्यंग करै । पित्तज्वरार्त
रोगियोंके लिये जो तिक्त द्रव्योंकी क्षीर
वस्ति, तथा वे वस्तिपांजो सिद्धस्थान में
वर्णन की जायगी ये सब पित्तगुल्ममें हित-
कारी होती हैं । शालीचांबल, जांगल पनु-
ओंका मांस, गोंवकरी का दूध, घी, मिर्च,
आंवला, दाख, अनार, फालसा, इनका
पघ्य देवें और पीनेके लिये आटायादृशा
जलदेवें । खरैटी और विदारिगन्धादि म-
णोक्त औषधियों द्वारा पित्त गुल्मकी वि-
कृति का जाना है । आमाम्बिन पित्तगुल्म
में और आमाम्बिन फलकाय गुल्ममें धवन
करके यवागू और मधुयूषों का मदन कर
के अग्निही प्रदीप्त करै । सम्पूर्ण दोषों का
हानि वा प्रकोप अग्नि के आश्रयमें इम-
लिय अग्निही समानताके लिये सदा प्रयत्न
करना चाहिये और निम्न कारणों से रोग
उत्पन्न हुआ है उनका मदा त्याग देना चाहिये ।
कृत्तगुल्मका चिकित्साक्रम ॥
वपनाशयवमनमध्यान्कफगुल्मनाशिनः

अथस्विन्नशरीरायगुल्मेशैथिल्यमागते। प-
रिचेष्ट्यप्रदीप्तास्तुवल्बजानथवाकुशान्।
भिषक्कुम्भेसमावाप्यगुल्मंघटमुखेक्षिपेत् ॥
सङ्गृहीतांत्यदागुल्मस्तदाघटमथोद्धरेत्।
वस्त्रान्तरतःकृत्वाभिन्ध्याद्गुल्ममभाष-
वित् ॥ विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभमपी-
दयेत्। मृद्वीयाद्गुल्ममेवैकंनत्वन्रहृदयं
स्पृशेत् ॥

अर्थ—वमनोपयोगी कफगुल्मरोगी को
वमन दें ॥ स्नेहन और स्वेदन देने से
जब गुल्म शिथिल पड़जाय तब गुल्म स्था-
नपर यत्र छपेट दें, फिर एक घड़े में व-
ल्बजतृण वा कुशाकी आग जलाकर गुल्म
स्थान में उस घड़ेका मुख लगादेवै, जब
गुल्म इकट्ठा होजाय तब घड़े को उठा ले
और वस्त्र को हटाकर गुल्मका फैलाव वा
विस्तार देखकर उसका भेदन करें, तथा
विमार्ग, अजपद और आदर्श इनमें से कि-
सी एक शस्त्र से केवल गुल्मही का प्रपीडन
करें, परन्तु आंतों वा हृदय पर किसी प्र-
कार का आघात न होने पावै।

कफगुल्म में स्वेदन विधि।

तिलैरण्डातसीबीजसर्पपैःपरिलिप्यच।
श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैःसुखोष्णैःस्वेदयेज्जि-
पक् ॥

अर्थ—तिल, अरण्ड, अलसी और सरसों
का लेप करके ऊपर से सुहाताहुआ गरम
लौहे का पात्र फेर कर स्वेदन करें ॥

दशमूली घृत।

सन्धोषक्षारलवणदशमूलीभृतंघृतम्।

कफगुल्मञ्जयत्याशुसहिगुविददादिमम् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, जवाखार, सेंधानमक, औ-
र दशमूल इनके काथमें घृतको पकावै इस
घृतको हींग, विडनमक और अनारके रस
के साथ सेवन करें तब कफगुल्म शांघही
जाता रहताहै।

भल्लातकादि घृत।

भल्लातकानांदिपलंपञ्चमूलंपलोन्मिमतम्।
साध्यांविदारीगन्धाद्यमाषोध्यसलिलाढ-
कैः ॥ पादशेषैरसेतस्मिन्पिप्पलीनागरं
वचाम्। विडङ्गसन्धवंहिंगुयावशूकांविडं
शटीम् ॥ चित्रकंमधुकरास्नाम्पिष्ट्वाकर्प-
समंभिषक्। प्रस्थञ्चपयसःकृत्वाघृतम-
स्थंविपाचयेत् ॥ एतत्भल्लातकघृतंकफ-
गुल्महरंपरम्। ग्रीहपाण्ड्वामयश्वासग्रह-
णीरोगकासनुत् ॥

अर्थ—शुद्ध कियेहुए भिलाये दो पल,
पञ्चमूलका प्रत्येक द्रव्य एक एक पल,
और विदारीगन्धादिद्रव्य इनको कूटकर
एक आढक जलमें ओटावै, जब चौथाई
शेपरहजाय तब उसमें पीपल, सोंठ, वच,
वायविडंग, सेंधानमक, हींग, जवाखार,
विडनमक, शटी, चीता, मुलहटी, रास्ना,
प्रत्येक एक एक कर्प, एक प्रस्थ दूध, एक
प्रस्थ घी इन सबको मिलाकर पकावै।
यह भल्लातकघृत कफगुल्मके दूर करने में
अत्यन्त उत्तमहै तथा प्लीहा, पाण्डु रोग
श्वास और ग्रहणी रोगोंको भी दूर करताहै
पञ्चकोल घृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।

पालिकैःसयवक्षारैःघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥
क्षीरप्रस्थञ्चतत्सर्पिर्हन्तिगुल्मं कफात्मकम् ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंघ्नीहकासज्वरापहम् ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार एक एक पल लेवै और इसमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घी डालकर पकावै, यह घृत कफगुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, घ्नीहा, खांसी और ज्वर इनको दूर करता है ।

मिश्रकस्नेह ।

त्रिवृतांत्रिफलादन्तीदशमूलं पलोन्मितम्
जलेचतुर्गुणेष्वपत्वाचतुर्भागस्थितंरसम् ॥
सर्पिरेरण्डजंतैलक्षीरञ्चैकत्रसाधयेत् ।
ससिद्धोमिश्रकस्नेहःसक्षौद्रःकफगुल्मनुत्
कफवातविवन्धेषुकुष्ठघ्नीहोदरेपुच । प्रयो
ज्योमिश्रकःस्नेहोयोनिशूलेपुचाधिकम् ॥

अर्थ—निसोय, त्रिफला, दन्ती और दशमूल इनको एक एक पल लेकर चौगुने जलमें पकावै जब चौथाई रहजाय तब इसको छानकर इसमें घी, अंडीका तेल और दूध मिलाकर पकावै । इस तरह यह मिश्रक स्नेह तयार होताहै, इसको शहत मिलाकर सेवन करनेसे कफगुल्म, कफ, वात, विवन्ध, कुष्ठ, प्लीहा और उदररोग जाते रहते हैं ॥

कफगुल्ममें वैरेचनिक औषध ।

यदुक्तंवातगुल्मघ्नंस्नन्नीलिनीघृतम् ।
द्विगुणंतद्विरेकार्थंमयोज्यं कफगुल्मिनाम्
सुधाक्षीरद्रवेचूर्णत्रिवृतायाःसुभाषितम् ।
कार्पिकंमधुसर्पिर्भ्यालीद्वासाधुविरि-
च्यते ॥

अर्थ—वातगुल्ममें जो वैरेचनिक नीलिनी घृत वर्णन किया गयाहै उसकी दूनीमात्रा कफगुल्ममें विरेचनके लिये देवै । अथवा त्रिवृताके चूर्णमें सेण्डके दूधकी भावना दे कर घी और शहत मिलाकर एक कर्ष चाटे सौ उससे अच्छीतरह विरेचन होजाताहै ॥

हरीतक्यादि प्रयोग ।

जलद्रोणेविपक्तव्यावंशतिःपञ्चाभयाः
दन्त्याःपलानितावन्तिचित्रकस्यतथैवच ॥
अष्टभागास्थितंश्चरसंपूतमधिक्षिपेत् ॥
दन्तीसमंगुडंपूतंक्षिपेत्त्राभयाश्चताः ॥
तैलार्धकुडवञ्चैवत्रिवृतायाश्चतुष्पलम् ।
चूर्णितंपलमेकञ्चापिपल्लीविश्वभेषजम् ।
तत्साध्यंलेहवच्छीतेतस्मिंस्तैलसमंमधु ।
क्षिपेच्चूर्णपलञ्चैकन्तवगेलापत्रकेशरान् ॥
ततोलेहपलंलीद्वाजग्ध्वाचैकाहरीतकी-
म् । सुखंविरिच्यतोस्निग्धोदोषप्रस्थ
मनामयः।गुल्मंश्वयधुमर्शासिपाण्डुरोगम-
रोचकम् ॥ हृद्रोगग्रहणीदोषंकोमलांवि-
पमज्वरम् ।कुष्ठंप्लीहानमानाहमेतान्धन-
न्युपसेवितः । निरत्ययःक्रमश्चास्याद्र-
चोमांसरसोदनः ॥

अर्थ....,पच्चीसहरड, दन्ती पच्चीसपल, चीता पचास पल इनको एक द्रोण जलमें पकावै, आठवां भाग शेष रहनेपर उसे छान लेवै, तदनन्तर गुड पच्चीसपल और बेसब हरड कूटकर उसमें डालदे और आधा कुडव तेल उसमें गेर देवै तथा निसोय चार पल, पीपल और सोंठ एक एक पल डालकर धीरे धीरे पकावै जब पककर ल्हईसी

गन्धस्विन्नशरीरायगुल्मशैथिल्यमागतो प-
रिवेष्ट्यप्रदीप्तास्तुवल्बजानथवाकुशान्।
मिषक्कुम्भेसभावाप्यगुल्मंघटमुखेक्षिपेत् ॥
सङ्गृहीतायदागुल्मस्तदाघटपथोदरेत्।
वस्त्रान्तरंततःकृत्वाभिन्ध्याद्गुल्मप्रमाण
चित् ॥ विमार्गाजपदादशैर्यथालाभं प्रपी-
येत्। मृद्रीयाद्गुल्ममेवैकैकं त्वन्त्रहृदयं
स्पृशेत् ॥

अर्थ—वमनोपयोगी कफगुल्मरोगी को
वमन दें ॥ स्नेहन और स्वेदन देने से
जब गुल्म शिथिल पड़जाय तब गुल्म स्था-
नपर यत्न लपेट दें, फिर एक घड़े में व-
ल्बजतृण वा कुशाकी आग जलाकर गुल्म
स्थान में उस घड़ेका मुख लगादेवै, जब
गुल्म इकट्ठा होजाय तब घड़े को उठाले
और वस्त्र को हटाकर गुल्मका फैलाव वा
विस्तार देखकर उसका भेदन करें, तथा
विमार्ग, अजपद और आदर्श इनमें से कि-
सी एक शस्त्र से केवल गुल्मही का प्रपीडन
करें, परन्तु आंतों वा हृदय पर किसी प्र-
कार का आघात न होने पावै।

कफगुल्म में स्वेदन विधि।

तिलैरण्डातसीवीजसर्पपैःपरिलिप्यच ।
श्रेष्ठगुल्ममयःपात्रैःमुखोष्णैःस्वेदयेद्भि-
पक् ॥

अर्थ—तिल, अरण्ड, अलसी और सरसों
का लेप करके ऊपर से सुहाताहुआ गरम
लोहे का पात्र फेर कर स्वेदन करें ॥

दशमूली घृत।

सन्धोपक्षारलवणंदशमूलीभृतंघृतम् ।

कफगुल्मञ्जयत्याशुसर्हिगुविट्टदाडिमम् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, जवाखार, सेंधानमक, औ-
र दशमूल इनके काथमें घृतको पकावै इस
घृतको हिंग, विडनमक और अनारके रस
के साथ सेवन करें तौ कफगुल्म शीघ्रही
जाता रहताहै।

भल्लातकादि घृत।

भल्लातकानां द्विपलंपञ्चमूलंपलोन्मितम् ।
साध्यंविदारीगन्धाद्यमापोध्यसलिलाढ-
कैः ॥ पादशेपेरसेतस्मिन्पिप्पलीनागरं
वचाम् । विडङ्गसन्धवंर्हिगुयावशूकंविडं
शटीम् ॥ चित्रकंमधुकंरास्नाम्पिष्ट्वाकर्प-
समंभिपक् । प्रस्थञ्चपयसःकृत्वाघृतप्र-
स्थंविपाचयेत् ॥ एतत्भल्लातकघृतंकफ-
गुल्महरंपरम् । ग्रीहपाण्ड्वामयश्वासग्रह-
णीरोगकासनुत् ॥

अर्थ—शुद्ध कियेहुए भिलाये दो पल,
पञ्चमूलका प्रत्येक द्रव्य एक एक पल,
और विदारीगन्धादिद्रव्य इनको कूटकर
एक आढक जलमें ओटावै, जब चौथाई
शेपरहजाय तब उसमें पीपल, सोंठ, वच,
यायविडंग, सेंधानमक, हिंग, जवाखार,
बिडनमक, शटी, चींता, मुलहठी, रास्ना,
प्रत्येक एक एक कर्प, एक प्रस्थ दूध, एक
प्रस्थ घी इन सबको मिलाकर पकावै।
यह भल्लातकघृत कफगुल्मके दूर करने में
अत्यन्त उत्तमहै तथा प्लीहा, पाण्डु रोग
श्वास और ग्रहणी रोगोंको भी दूर करताहै
पञ्चकोल घृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।

पालकैःसयवक्षारैःघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥
क्षीरप्रस्थञ्चतत्सर्पिर्हन्तिगुल्मकफात्मकम् ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंघृष्टिकासज्वरापहम् ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार एक एक पल लेवै और इसमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घी डालकर पकावै, यह घृत कफगुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, खांसी और ज्वर इनको दूर करता है ।

मिश्रकस्नेह ।

त्रिवृतांत्रिफलादन्तीदशमूलंपलोन्मितम्
जलेचतुर्गुणपक्त्वाचतुर्भागस्थितंरसम् ॥
सर्पिरेण्डजंतैलक्षीरञ्चैकत्रसाधयेत् ।
ससिद्धोमिश्रकस्नेहःसक्षौद्रःकफगुल्मनुत्
कफवातविबन्धेषुकुष्ठप्लीहादोरेषुच । प्रयो
ज्योमिश्रकःस्नेहोयोनिशूलेषुचाधिकम् ॥

अर्थ—निसोथ, त्रिफला, दन्ती और दशमूल इनको एक एक पल लेकर चौगुने जलमें पकावै जब चौथाई रहजाय तब इसको छानकर इसमें घी, अंडीका तेल और दूध मिलाकर पकावै । इस तरह यह मिश्रक स्नेह तयार होताहै, इसको शहत मिखाकर सेवन करनेसे कफगुल्म, कफ, वात, बिबन्ध, कुष्ठ, प्लीहा और उदररोग जाते रहते हैं ॥

कफगुल्ममें वैरेचनिक औषध ।

पटुक्तवातगुल्मघ्नंघ्रांसननीलिनीघृतम् ।
द्विगुणंतद्विरेकार्थंमयोज्यंकफगुल्मिनाम्
सुधाक्षीरद्रवैचूर्णत्रिवृतायाःसुभाषितम् ।
कार्षिकंमधुसर्पिर्भ्यालीद्वासाधुविरि-
च्यते ॥

अर्थ—यातगुल्ममें जो रेचनिक नीलिनी घृत वर्णन किया गयाहै उसकी दूनीमात्रा कफगुल्ममें विरेचनके लिये देवै । अथवा त्रिवृताके चूर्णमें सेण्डुडके दूधकी भावना दे कर घी और शहत मिलाकर एक कर्प चाटे सों उससे अच्छीतरह विरेचन होजाताहै ॥

हरीतक्यादि प्रयोग ।

जलद्रोणेविपक्तव्याविंशतिपञ्चचाभयाः
दन्त्याःपलानितावन्तिचित्रकस्यतथैवच ॥
अष्टभागस्थितंतश्चरसंपूतमधिक्षिपेत् ॥
दन्तीसमंगुडंपूतंक्षिपेत्त्राभयाश्चताः ॥
तैलार्धकुडवञ्चैवत्रिवृतायाश्चतुष्पलम् ।
चूर्णितंपलमेकञ्चापिप्लीविद्वभेषजम् ।
तत्साध्यंलेहवच्छीतेतस्मिंस्तैलसमंमधु ।
क्षिपेच्चूर्णपलञ्चैकन्त्वगेलापत्रकेशरान् ॥
ततोलेहपलंलीद्वाजग्ध्वाचैकांहरितकी-
म् । सुखंविरिच्यतोस्निग्धोदोषप्रस्थ
मनामयःगुल्मंश्वयथुमशीसिपाण्डुरोगम-
रोचकम् ॥ हृद्रोगग्रहणीदोषंकोमलांवि-
पमज्वरम् । कुष्ठंप्लीहानमानाहमेतान्घ्न-
न्त्युपसेवितः । निरत्ययःक्रमश्चास्याद्र-
वोर्मांसरसोदनः ॥

अर्थ....पच्चीसहरड, दन्ती पच्चीसपल, चीता पच्चीस पल इनको एक द्रोण जलमें पकावै, आठवां भाग शेष रहनेपर उसे छान लेवै, तदनन्तर गुड पच्चीसपल और बेसब हरड कूटकर उसमें डालदे और आधा कुडव तेल उसमें गेर देवै तथा निसोथ चार पल, पीपल और सोंठ एक एक पल डालकर धीरे धीरे पकावै जब पककर ल्हईसी

होजाय तब ठंडी होनेपर आधाकुडब शहत,
 दालचीनी एक पल, इलायची एक पल,
 तेजपात एक पल और केसर एक पल इनको
 मिला दें ॥ प्रतिदिन एक पल इस चटनी
 को चाटकर ऊपरसे एक हरड़ खाले
 तौ सुखपूर्वक एक प्रस्थ मल निकल जावे-
 गा तथा गुल्म, शोथ, अर्श, पाण्डुरोग, अरुचि,
 हृदय, ग्रहणी दोष, कामला, विषम ज्वर, कुष्ठ
 प्रीहा, आनाह ये सब रोग इसके सेवन से
 दूर होजातेहैं । इसके सेवनमें मांसरस और
 भातका भोजन करें ।

कफगुल्म में वस्तिप्रयोग ।

सिद्धाः सिद्धिपुवक्ष्यन्ते निरुद्धा कफगुल्मि-
 नाम् ।

अर्थ—कफगुल्म रोगियोंके लिये सिद्ध
 स्थानमें अनुभव की हुई निरुद्ध वस्तियां
 लिखी गईहैं ।

कफगुल्ममें चूर्णादि प्रयोग ।

अरिष्टयोगाः सिद्धाश्च ग्रहण्यर्शचिकित्सि-
 तोपचूर्णगुटिकायाश्च विहिता वातगुल्मि-
 नाम् । द्विगुणक्षारहिंमल्लवेतसांस्ताः
 कफे मताः ॥ य एव ग्रहणीदोषक्षारास्ते कफ-
 गुल्मिनाम् । सिद्धानिरत्ययाः शस्तादाह-
 स्त्वन्ते प्रशस्यते ॥

अर्थ—ग्रहणी चिकित्सित अध्यायमें जो
 अनुभव किये हुए अरिष्ट तथा वात गुल्मना-
 शक जो चूर्ण और गोल्या वर्णनकी गई
 हैं वे सब कफगुल्ममें हितहैं परन्तु उन चू-
 र्णादिमें जितना क्षार, हींग और अमलवेत
 डाला जाताहै उससे दूना कफगुल्ममें डालना

उचितहै । जो क्षार ग्रहणी दोषमें वर्णन कि-
 ये गये हैं वे कफगुल्ममें भी हितहैं । अन्तमें
 कफगुल्म को दंग करना भी हितहै ।

पथ्यादि वर्णन ।

मपुराणानि धान्यानि जातुलामृगपक्षिणः
 कौलत्थो मुद्गयूपश्चापि पल्यानागरस्य च ॥
 शुष्कमूलकपूपश्चापि वल्वस्य वरुणस्य च ।
 चिरिविल्वाङ्कुराणाञ्च यवान्याः चित्रक-
 स्य च ॥ चीजपूरकहिंमल्लवेतसक्षार-
 दादिभिः । तन्नेण तैलसर्पिर्भ्यां व्यञ्जना-
 न्युपकल्पयेत् ॥

अर्थ—बहुत पुराना धान्य, जांगल पशु-
 पक्षियों का मांस, कुलधाका यूप, मृगका
 यूप, पीपल, सोंठ और सूखीमूलीका यूप, बेल,
 वरना, कंजा, अजवायन, चीता, इनको
 डाल कर तयार किया हुआ यूप, अथवा
 त्रिजोरा, हींग, अमलवेत, जवाखार, अनार
 मठा, तेल, घी इनके साथ अनेक प्रकार
 के पदार्थ बना कर सेवन करे ॥

कफगुल्मपर अन्य उपचार ।

पञ्चमूलीश्रितं तोयपुराणं वारुणीरसम् ।
 कफगुल्मीपि वेत्काले जीर्णमाध्वीकमेव वा
 यवानीचूर्णितं तन्क्रां विडेन लवणीकृतम् ।
 पिबेत्सन्दीपनं वातकफमूत्रानुलोमनम् ॥

अर्थ—पञ्चमूलका काथ, पुराना वारुणी
 मद वा माध्वीकमदका कफगुल्ममें पान करना
 चाहिये । अजवायन और नमकको पीस कर
 मटमें मिलाकर पीनेसे अग्निसन्दीपन होतीहै,
 वात, कफ और मूत्रका अनुलोमन होताहै ॥

असाध्य गुल्मके लक्षण ।

सञ्चितः क्रमशोगुल्मो महावास्तु परिग्रहः ॥

कृतनूलःशिरानद्ध्योदाकूर्मश्चोन्नतः ।
 दौर्बल्यारुचिहृष्टासकासवम्परतिज्वरैः ।
 तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यतेनससिद्धयति
 गृहीत्वासज्वरश्वासं च मयतीसारपीडितम् ।
 हृन्नाभिदस्तपादेपुशोफः कर्पातिगुल्मिनम् ॥

अर्थ—जो गुल्म धीरे धीरे बढ़कर बहुत
 धीचमें फैल जाताहै जो जड पकडकर नसों
 में स्थित होकर कछुएकी पीठ की तरह
 ऊंचा होजाताहै तथा जिसमें दुर्बलता,
 अरुचि, हृष्टास, खांसी, उबकाई अरति,
 ज्वर, तृष्णा, तन्द्रा और प्रतिश्याय ये साथ
 होतेहैं वह अच्छा नहीं होताहै ॥

जिस गुल्म रोगमें ज्वर, श्वास, वमन और
 अतीसारके होनेसे हृदय, नाभि, हाथ और
 पांभमें शोफ होताहै वह रोगी मरजाताहै ।

रक्तगुल्मकी चिकित्साका क्रम ।
 रौधिरस्यतुगुल्मस्यगर्भकालव्यतिक्रमः ।
 स्निग्धस्विन्नशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम्
 पलाशक्षारपात्रेद्वेद्वेपात्रेतैलसर्पिपो । गुल्म
 शैथिल्यजननीपक्त्वामात्रांप्रयोजयेत् ।
 प्रभिद्येतनयधेवंदद्याद्योनिविरेचनम् ॥
 क्षारेणयुक्तंपललंसुधाक्षीरेणवापुनः । ता-
 भ्यांवाभावितान्दद्याद्यौनाकटुकमत्स्य-
 कान् । वराहमत्स्यपित्ताभ्यांनक्रकान्वा
 सुभावितान् ॥ अधोहरैथोर्ध्वहरैर्भावि-
 तान्वासमाप्तिकान् । किण्वंवासगुडक्षारं
 दद्याद्योनिविशोधनम् ॥

अर्थ—रक्तगुल्ममें जब गर्भका समय
 अर्थात् दसवां महीना व्यतीत होजाय तब
 स्नेहन स्वेदनकर्म करने के पश्चात् स्नेह
 विरेचन देवै ।

ढाकके खारके दोपात्र, और एक एक
 पात्र घी और तेल इन सबको मिलाकर
 पाककरै फिर ऐसी मात्रा रोगीको देवै कि
 जिससे गुल्म शिथिलपडजाय । यदि
 ऐसा करनेपरभी गुल्म भेदको प्राप्त न हो
 तो योनिविरेचनकर्त्ता द्रव्य योनिमें मार्गसे
 देवै । क्षार और तिलकल्क, अथवा
 सेहूंडके दूधकी भावना दियाहुआ तिलक-
 ल्क, योनिमें रक्खे । अथवा क्षार
 और सेहूंडके दूधकी भावना दीहुई कटुरस-
 युक्त मछली योनिमें प्रवेश करै अथवा
 सूअरके और मछली के पित्तकी भावना
 नक्रमांसको देकर अथवा विरेचनकारक औ-
 र वमनकारक द्रव्योंकी भावना दियाहुआ
 नक्रमांस शहत मिलाकर अथवा किण्व, गुड
 और क्षार मिलाकर योनिमें भीतर रक्खे,
 इन के रखनेसे स्राव होता है ॥

रक्तगुल्मके अन्यउपचार ॥

रक्तापित्तहरंक्षारलेहेयन्मधुसर्पिपा । लशु-
 नंमादिरांतीक्ष्णमत्स्यांश्चास्यैमदापयेत् ॥

अर्थ—रक्तापित्त के नाश करने वाले
 क्षारको शहत और घीके साथ चाटे । अ-
 थवा लहसन, तीक्ष्णमदिरा और मछली खा-
 ने को देवै ॥

अदृश्यमान रुधिरमें वस्ति ॥

वस्तिंक्षारगोमूत्रंसक्षारन्दाशमूलिकम् ।
 अदृश्यमानेरुधिरं दद्याद्गुल्मप्रभेदनम् ॥

अर्थ—जो रुधिर न निकलता होतो
 उसके भेदनके लिये क्षार और गोमूत्र की
 अथवा क्षार और दशमूलके ववाथकी वस्ति देवै ।

प्रवर्त्तमान रुधिरं उपचार ।
 प्रवर्त्तमानेरुधिरं दद्यान्मांससरसौदनम् ।
 घृततैलेन चाभ्यर्क्ष्यान्नार्थतरुणीसुराम् ॥
 रुधिरं ऽतिप्रवृत्तेतु रक्तपित्तहराः क्रियाः ।
 कार्यावातरुगातयाः सर्वावातहराः पुनः ।
 घृततैलावसेकांश्च तित्तिरिश्च रणाशुधान् ।
 सुरासमण्डापूर्वञ्च पानमम्लस्य सर्पिषः ॥
 प्रयोजयेदुत्तरवाजीवनीये स सर्पिषा ।

अर्थ—जो रुधिर जारी होतो मांसरस और भात खानेको देवे, घी तेलकी मालिश करावे और नवीन मद्यर्पनेको देवे । रक्तके भ्रत्यन्त प्रवृत्त होनेपर रक्तपित्तनाशक चिकित्साकरै और जो वातिक वेदना उत्पन्न हो तो वायुनाशिनी क्रिया करै । इन रोगों में घृत, तेल, रक्तावसेचन, तातर और मुरोंकामांस, मण्डयुक्तसुरा, अम्लयुक्त घृतपान हितकारी होतेहैं । इसमें जीवनीय गणोक्त द्रव्योंके साथ सिद्धकियेहुये घृत की उत्तर वस्ति भी दीजाती है ।

स्नेहः स्वेदः सर्पिर्वस्तिश्चूर्णानि वृंहणं
 गुडिकाः । वमनविरेचकौमोक्षः कफजस्य-
 चवातगुल्मवताम् ॥

अर्थ—कफज और वातज गुल्म रोगोंमें स्नेहन, स्वेदन, घृत, वस्ति, चूर्ण, वृंहण, गोली, वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण आदि प्रयोग करै ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

भवन्तिचात्र ॥

सर्पिःसरित्सिद्धंक्षीरं प्रसंसननिरूहंश्च
 रक्तस्य चावसेचनमाश्वासनसंशमनयोगाः

उपनाहनं सशस्त्रपक्वस्याभ्यन्तरप्रभिन्नस्य
 संशोधनसंशमनेपित्तप्रभवस्य गुल्मस्य ।
 स्नेहः स्वेदोभेदोलंघनमुल्लेखनविरेकाश्च
 सर्पिर्वस्तिगुडिकाः चूर्णमरिष्टाश्च सप्ताराः
 गुल्मस्यान्तेदाहः कफजस्याग्रेपनीतरक्त-
 स्य ॥ गुल्मस्य रौधिरस्य क्रियाक्रमः स्त्री
 भवस्योक्तः । पथ्यान्नपानसेवाहेतूनां व-
 र्जनयथास्वञ्च ॥ नित्यश्चाग्निसमाधिः
 स्निग्धस्य च सर्वकर्षाणि । हेतुलिङ्गसिद्धिः
 क्रियाक्रमः साध्यतानुयोगाश्च ॥ गुल्म-
 चिकित्सितसंग्रहएतावानग्निवेशस्य ॥

अर्थ—अग्निवेशके संग्रहित इस गुल्मचिकित्साध्यायमें गुल्मनाशकघृत, तित्त औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए दूध, विरेचन, निरूहण रक्तावसेचन, आश्वासन, संशमनयोग, तथा पित्तगुल्मके उपनाहन, पक्वगुल्मका शस्त्रसे भेदन, अन्तःभिन्न की चिकित्सा संशोधन और संशमन कफगुल्मके स्नेहन, स्वेदन, लंघन, वमन, विरेचन, घृत, वस्ति, गोली चूर्ण, अरिष्ट, चार तथा रक्त निकालकर दाह ये वर्णन किये गयेहैं । तदनन्तर छि- योंके होनेवाले रक्तगुल्मकी चिकित्साका क्रम, पथ्य, अन्नपानविधि, निदानवर्जन (जिनकारणोंसे रोग होताहै उनका त्याग) जठराग्निकी रक्षा, स्नेहनकर्म, सब प्रकारकी चिकित्सा, हेतु, लक्षण, सिद्धि, चिकित्सा, क्रम साध्यता और अनुयोग ये सब बातें भी वर्णन की गई हैं ॥

इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-

स्तितस्थाने गुल्मचिकित्सितनाम

पञ्चमोऽध्यायः ॥

—०(०)०—

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातः प्रमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवानात्रेय बोले कि अब हम प्रमेहरोगकी चिकित्साका वर्णन करेंगे ॥

निर्मोहमानानुशयोनिराशः पुनर्वसुर्ज्ञानतपोविशालः । कालेऽग्निवेशाय सहेतुलिङ्गा मुवाच मेहानुशमनञ्च तेषाम् ॥

अर्थ—मोह, मान, रागद्वेष और आशा से रहित, ज्ञाननिष्ठ और महातपस्वी पुनर्वसुने उचितकालमें प्रमेहका निदान, लक्षण और उसकी शान्तिके उपाय अग्निवेशसे कहे ॥

प्रमेहका निदान ॥

आस्यामुखं स्वप्नसुखन्दधीनि ग्राम्प्योदका नूपरसाः पयांसि । नवान्नपानं गुडवैकृतञ्च प्रमेहहेतुः कफकृचसर्वम् ॥

अर्थ....आस्यामुख (जो बहुत वैठ रहता है), स्वप्नसुख (जिसको बहुत सोनेमें सुख होता है), जो दही, तथा ग्राम्य, आनूप और औदक पशुपक्षियोंका मांस बहुत खाता है, जो दूध बहुत पीता है जो नये अन्न पानका सेवन करता है, जो गुडके बने हुए पदार्थोंको खाता है तथा जो और सब प्रकार के कफकारी पदार्थोंको सेवन करता रहता है उसके प्रमेहरोग होता है ।

कफादि प्रमेहकी सम्प्राप्ति ॥

मेदश्चांसाञ्च शरीरजञ्च क्लेदं कफो वस्तिगतं प्रदप्याकरोति मेहमसमुदीर्णमुष्णं स्तान्येव पित्तं परिदप्यभूयः ॥ क्षीणे पुदोपे च वृष्यवस्तां धातून् प्रमेहाननिलः करोति ॥ दोषो हि वस्तौ समुपेत्य मूत्रं सन्दप्य मेहान् जनयेद्यथास्वम् ॥

अर्थ—वस्ति अर्थात् मूत्रस्थानमें प्राप्त हुए मेद, मांस और शरीरके क्लेदको कफ दूषित करके प्रमेहको उत्पन्न करता है । तात्पर्य यह है कि जब कफ उक्त तीनोंको दूषित करता हुआ वस्तिस्थानमें पहुंचता है तब कफज प्रमेह होते हैं, इसी तरह उष्णपदार्थोंके सेवनसे कुपित हुआ पित्त मेद मांसादि को दूषित करके जब वस्ति स्थानमें ले जाता है तब पित्तज प्रमेह होते हैं । और लघनादि द्वारा कफ पित्त मलमूत्रादि दोषोंके क्षीण होनेपर वायु प्रकुपित होकर धातुओंको वस्ति स्थानमें खींच लेजाती है इससे वातज प्रमेह उत्पन्न होते हैं ॥ दोषही वस्तिमें पहुंचकर मूत्रको दूषित करके प्रमेहको उत्पन्न करता है ।

प्रमेहों की संख्या ।

साध्याः कफोत्थादश पित्तजाः षड्याप्या न साध्याः पवनाश्चतुष्काः । समक्रियत्वा द्विपमक्रियत्वान् महात्पयत्वाच्च यथाक्रमन्ते ।

अर्थ—समक्रियत्व होनेसे दस प्रकार के कफज प्रमेह साध्य होते हैं द्विपम क्रियत्व होने से छः प्रकार के पित्तज प्रमेह साध्य हैं इसी तरह महात्पयत्व होने से

चार-प्रकारके वातज प्रमेह असाध्य होते हैं । समक्रियत्वका यह प्रयोजन है कि कफ दोष और मेदा प्रभृति दूष्य ये समान हैं इस लिये कफनाशक औषधोंको सेवन करने हीसे प्रमेह शान्त होजाते हैं । विषमक्रियत्वमें यह बात है कि पित्तदोष मेददूष्य ये विषम हैं क्योंकि पित्तनाशक मधुर शीतादि द्रव्य मेदवर्द्धक हैं और मेदाके नाशक करने वाले उष्णकटुकादि द्रव्य पित्तवर्द्धक हैं तो यहां क्रियाकी विषमता है इससे पित्तज प्रमेह याप्य है । वातज प्रमेह इसलिये असाध्य है कि यह सम्पूर्ण धातुओंको दूषित करके खींच लेता है और विषम क्रियावाला भी है ।

दोषदूष्यों की संख्या ।

कफः सपित्तः पवनश्च दोषामेदोऽस्रशुक्लाम्बुवसालसीकाः । मज्जारसोऽजः पित्तितञ्च दूष्यप्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥

अर्थ—कफ पित्त वात ये तीन दोष हैं, तथा मेदा, रुधिर, शुक्र, जल, चर्बी, लसीका, मज्जा रस ओज और मांस ये दूष्य हैं, इन सब के संयोग से बीसप्रकार के प्रमेह उत्पन्न होते हैं ।

बीस प्रकारके प्रमेहकी पहिचान ।

जलोपमं वैश्वरसोपमं वायनं धनं चोपरिविमसन्नम् । शुक्रं सशुक्रं शिशिरं शनैर्वा लालं पत्रावालुकया पुतं वा ॥ विषयात् प्रमेहान् कफः पान्दुरैतान् क्षारोपमं ह्यालमयानि नीलम् । दार्द्र्याद्गमाञ्जिष्ठमयापिरक्तमेतान् प्रमेहान् प्लुपान्तिपित्तात् ॥ मज्जां जसा वायुं सयान्वितं वालसीकया वा सततं विषदम् ॥ चतुर्विं

धं मूत्रयतीव वाताच्छेषेषु धातुष्वपकर्षितेषु ॥

अर्थ—कफज प्रमेह दस प्रकारका होता है यथा-जलके समान वर्णवाला उदक-मेह है । ईखके रसके समान वर्णवाला इक्षुम-मेह है, गाढे मूत्रको सान्द्रमेह कहते हैं । जो नीचे गाढा और ऊपर मयके समान हो उसे सुरामेह कहते हैं । जो मूत्रबीज मिला होता है उसे शुक्रमेह कहते हैं । जिसमें मूत्रके किंदु धीरे धीरे टपकते हैं उसे शनैःमेह कहते हैं । जिसमें मुखको लारके समान तार निकलता है उसे लालामेह कहते हैं ॥ जिसमें बालके कणसे झोते हैं वह सिकतामेह है, जिसमें सफेदरंग होता है वह शुक्लमेह है । जिसमें ठंडा मूत्र बहुत उतरता है वह शीतमेह है इस तरह कफसे होनेवाले ये दस प्रकार के प्रमेह हैं ।

पित्तज प्रमेह छः प्रकारके हैं । यथा-क्षार के समान को क्षारमेह, काले रंगके मूत्र को कालमेह, नीले रंगके मूत्रको नीलमेह हल्दीके समान रंगवालेको हारिद्रमेह, मजीठके समान वर्ण और दुर्गन्धवाले को माञ्जिष्ठमेह और रुधिरके समान लाल वर्ण वाले को रक्तमेह कहते हैं ॥ ये छः पित्तप्रमेह हैं ॥

वातज प्रमेह चार प्रकार के हैं, यथा-मज्जा के समान वर्ण वाला मज्जामेह, वसा के से समान रंग वाला मूत्र वसामेह, ओज-मिश्रित मूत्र को ओज प्रमेह और लसीका युक्त को लसीकामेह कहते हैं । यह रुका भी रहता है । जब और सब धातु-

क्षीण होजाती है तब वात कोप के कारण
इन चार प्रकार का मूत्र निकलता है ।

दोषानुसार प्रमेह के वर्णादि ।
वर्णरसस्पर्शमथापिगन्धपथास्वदापम्भ
जतेप्रमेहः ।

अर्थ—प्रमेह का वर्ण, रस स्पर्श और
गंध उसी दोष के अनुसार होजाता है जिस
से वह उत्पन्न होता है

वातज प्रमेह को असाध्यत्व
श्यावारुणोवातकृतः सशूलोमज्जादिपा-
दगुण्यमुपैत्यसाध्यः ॥

अर्थ—वातज असाध्य प्रमेह का वर्ण
कुछ फाला और छाछ होता है इसमेंवेदना
होती है तथा इसमें छःओं घातुओं के गुण
होजाते हैं ॥

प्रमेह के पूर्व रूप
स्वेदोऽहगन्धः शिथिलाद्गताचशय्यासन
स्वप्नमुखरतिश्च । हृत्त्रेज्जिह्वाश्रवणो
पदेहो घनाद्गताकेशनखातिवृद्धिः ॥ शी
तमियत्वद्गलतालुशोषो माधुर्यमास्येकर
पाददाहः भविष्यतोमेहगदस्वरूपं मूत्रेऽ
भिभावन्तिपिपीलिकाश्च ॥

अर्थ—पसीनों का आना, देहमें से दुर्ग-
न्ध निकलना, देहका शिथिल पड़जाना,
पलंग पर पड़े रहने, आसन पर बैठे रहने
वा निद्रा लेने में इच्छा बनी रहनी, हृदयने-
त्र, जिह्वा और कर्ण मलकी लिहावट, दे-
ह का कड़ा होना, केश और नाखों का अ-
त्यन्त बढ़ना, ठंडीवस्तु का प्रिय लगना,
और मूत्रपर चींटियों का आना ये प्रमेह के
पूर्वरूप हैं ।

स्थूल कृशप्रमेही की चिकित्सा ॥

स्थूलः प्रमेही बलवानिहैकः कृशस्तथैकः प-
रिदुर्वलश्च । संवृंहणतत्र कृशस्य कार्यसं
शोधनं दांपवलाधिकस्य ॥

अर्थ—कोई प्रमेह रोगी स्थूल और बल-
वान होता है, तथा कोई कृश और दुर्वल
होता है, इनमें से कृशकी वृंहण चिकित्सा
करना चाहिये और बलवान् को संशोधन
देकर उसके दोषों को दूर करे ॥

प्रमेही के अन्यउपचार ॥

स्निग्धस्य योगा विविधा प्रयोज्यः कल्पो
पदिष्टामलशोधनाय । ऊर्ध्वतथाधश्चम-
लेऽप्यनीते मेहे पुस्तर्पणमेव कार्यम् ॥ गु-
ल्मः क्षयो मेहनवास्ति शूलं मूत्रग्रहं चाप्य
पतर्पणेन । प्रमेहिणः स्युः पारितर्पणानि
कार्याणि तस्मात्प्रसवीक्ष्य बन्धिम् ॥ सं
शोधनं नार्हति यः प्रमेही तस्य क्रियारंशम-
नी प्रयोज्या ।

अर्थ....रोगीको स्नेहन देकर कल्प-
स्थान में वर्णन किये हुए प्रयोगों को दोनों
के शोधन के निमित्त देंगे । जब वमन
विरचन करानेसे दोष निकलजाय तब स-
न्तर्पणविधि करना चाहिये ।

जो प्रमेह रोगी संशोधनके योग्य न हो-
उसकी संशमन चिकित्सा करे ॥

प्रमेही को पथ्य ॥

मन्था कपायाः यवचूर्णलेहाः प्रमेहशान्त्यै
लघवश्च भक्ष्याः ॥ ये विक्किरा ये मृदा
विहंगास्तेषां रसैर्जाङ्गलजगैर्नोजैः । यवौ
दनं रूक्षमथापि वाद्यान्मद्यान्सञ्जकृन्ति

चाप्यूपान् ॥ मुद्गादियूपैरथत्तिक्ता
कैः पुराणशाल्योदनमाददीत । दन्ती
शुदीतैलयुतंप्रमेहीतथातसीसर्पपतैलयुक्त
म् ॥ सपट्टिकस्याचृणधान्यमन्नंयवप्रधान
नस्तुभेवत्प्रमेही ॥

अर्थ—प्रमेही शान्तिके निमित्त मन्थ
कपाय, जौ के चून्का लेह तथा हलका
भोजन खानेको देवै । त्रिफिर और प्रतुद
प्रकारके जांगल पक्षियोंके मांसरसके साथ
रुक्ष यवोदन वा सत्तूके साथ मद्य वा
अपूप भक्षण करै । मूग आदिके यूपके
साथ अथवा चरपरे सागोंके संग पुराने
शालीचाब्रलोंका भात खाय ॥

दन्ती और गोंदीका तेल मिलाकर अथवा
अलसी और सरसों का तेल मिलाकर साठी
चाबल तृणधान्यके अन्नका सेवन करै ॥
विशेषकरके प्रमेह रोगी जौके पदार्थोंका
सेवन करता रहै ।

कफप्रमेहमें अन्यविधि ॥

यवस्यभक्ष्यान्विविधांस्तथाद्यात्कफप्र-
मेहीमधुसम्प्रयुक्तान् ॥ निशिस्थितानां
त्रिफलांकपायैः स्युस्तर्पणाक्षौद्रयुतायवा
नाम् । तान्शीथुयुक्तान्पिपेत्प्रमेही प्रा
योगिकान्मेहवधार्षमेव ॥

अर्थ—कफ प्रमेही जौ के अनेक प्रकार
के पदार्थ शहत के संग सेवन करता रहै ।
रात्रिमें जौओंको त्रिफलाके काथ में भिगो
देवै, दूसरेदिन इनका शहतके साथ सेवन
करै तो तर्पण होवै । इन्हीं जौओं को शीथु
के साथ-पान करै तो प्रमेह नष्ट होजाताहै ॥

ये श्लेष्ममेहेविहिताः कपायास्तर्भाविताना
ञ्चपृथग्यवानाम् । श्वतूनूपानसगुडान्
सधानान् भक्ष्यांस्तथान्यान्विविधांश्च
खादेत् ॥ खराश्वगोधेनुकसम्भृतानां त-
थायवानांविविधाश्चभक्ष्याः ॥ देयास्त
थावेषुयवायवानां कल्पेनगोधूममयाश्च
भक्ष्याः ॥ संशोधनोल्लेखनलंघनानि
कालेप्रयुक्तानिकफप्रमेहान् । जयन्तिपि
क्षमभवान्निरेकाः सन्तर्पणःसंशमनो-
विधिश्च ॥

अर्थ—कफ प्रमेहमें जौ कपाय वर्णन
कियेगयेहैं उनकी जौओंको पृथक् पृथक्
भावना देकर उनके सत्तू अपूप, गुडमिश्रित
धानी तथा और अनेक प्रकार के पदार्थ
वनवाकर सेवन करता रहै ॥

गधा, घोडा, बैले वा गौ की गुदामें हो
कर जो बिना टूटे जौ निकल आतेहैं उ-
नके तथा वेषुयव और गेहूँके अनेक प्र-
कारके पदार्थ बनाकर सेवन करै । इसी त-
रह ठीक समय पर दियेहुये संशोधन, व-
मन, लंघन करानेसे भी कफ प्रमेह दूर
होजाते हैं ॥

तथा ठीक समयपर वमन, विरेचन, लं-
घन, संतर्पण और संशमन देने से पित्तज
प्रमेह भी शान्त होजाते हैं ।

प्रमेहोंपर सामान्यप्रयोग ॥

दार्षीसुराह्वंत्रिफलांसमुस्तां कपायसुत्
काध्यपिपेत्प्रमेही । सौंद्रेणयुक्तामधवाह-
रिद्रां पिपेद्रसेनामलकीफलानाम् ॥

अर्थ—दारुहल्दी, देवदारु, त्रिफला और

मोथा इनके काथको शहत मिलाकर पीवै
अथवा आंवलेके रसके साथ हल्दीका पानकरै
कफप्रमेहपर कपाय ॥

हरीतकीकटफलमुस्तरोध्रपाठाविडङ्गा
जुनधन्वनथ । उभेहरिद्रेतगरंविडङ्गं कद
म्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ दार्वाविडङ्गं
खदिरोधवश्च सुराहकुष्ठागुरुचन्दनानि ।
चव्याग्रिमन्थीतिफलासपाठा पाठाश्वदं
ष्टेसहमूर्वयाच ॥ यवान्युशीराण्यभया
गुडची जंघाभयाचित्रकसप्तपर्णाः । पादैः
कपायाःकफमेहिनान्ते दशोपदिष्टामधुस-
म्प्रयुक्ताः ।

अर्थ—(१) हरड, कायफल, मोथा,
लोध, (२) पाठ, वायविडंग, अर्जुन,
धन्वन [३] दोनों हल्दी, तगर और
वायविडंग, [४] कदम्ब, शाल, अर्जुन
और अजवायन, [५] दारुहल्दी, वा-
यविडंग, खैर और धव [६] देवदारु
कूठ, अगर और चन्दन [७] चव्य, अ-
रुनी, त्रिफला और पाठा [८] पाठा,
गोखरू और मूर्वा [९] अजवायन, उ-
शीर, हरड और गिलोय [१०] काक-
जंघा, हरीतकी, चीता और सप्तपर्ण प्रत्येक
श्लोकके एक एक पादमें कहेहुए ये दस
काथ शहत डालकर पीनेसे कफ प्रमेह
को दूर करते हैं ॥

पित्तप्रमेहपर कपाय ॥

उशीरलोध्राञ्जनचन्दनानामुशीरमुस्ता
मलकाभयानाम् । पटोलनिम्बामलका
मृतानामुस्ताभयापन्नकबृत्तकाणाम् ॥

(९९)

रोध्राम्बुकालीयकधातकीनानिम्बार्जुना
नान्तिनिशोत्पलानाम् ॥ शिरीषसर्जार्जु-
नकेसराणां म्रियंगुपत्रोत्पलकिंठुकानाम् ॥
अश्वत्थपाठासनवेतसानां कटङ्कटप्युत्प-
लमुस्तकानाम् । पित्तपुमेहेपुदशैवदृष्टाः
पादैःकपायामधुसम्प्रयुक्ताः ॥

अर्थ—[१] उशीर, लोध, रसौत,
और चन्दन [२] उशीर, आंवला, मो-
था और हरड [३] परवल, नीम, आं-
वला और गिलोय [४] मोथा, हरड,
पन्नाख और इन्द्रजौ (५) लोध, नेत्र-
वाला, पीतचन्दन और धायके फूल [६]
नीमकी छाल, अर्जुन, तिनिश और उत्पल
[७] सिरस, राल, अर्जुन और नागके-
शर, [८] म्रियंगु, लालकमल, नीलक-
मल और ढाक के फूल [९] पपिल-
पाठ, असन और वेत [१०] दारुह-
ल्दी, उत्पल और मोथा । प्रत्येक श्लोक
के एक २ पादमें कहेहुए ये दस काथ
शहत डालकर पीनेसे प्रमेहको दूर करतेहैं ॥
सर्वेषुमेहेपुमतौतुपूर्वां कपाययोगाविहि-
तास्तुसर्वे ॥ मन्थस्यपानेयवभावनायां
स्युर्भोजनेपानविधौपृथक्च । सिद्धानि
तैलानिघृतानिचैव देयानिमेहेष्वनिला
त्मकेषु ॥ मेदःकफश्चैवकपाययोगैः स्नेहै-

श्वायुःशममेतितेपाम् ।

अर्थ—सबसे पहिले जो दो कपायके
प्रयोग वर्णन किये गयेहैं वे सब प्रकार
के प्रमेहोंमें उपयोगीहैं ॥ इन कपायों का
प्रयोग मन्थपान, जौओं को भावना देने

अथवा सब प्रकारके भोजन पानमें पृथक्
२ देना चाहिये ॥ वातज प्रमेहोंमें औषधों
से सिद्ध किया हुआ घृत और तेल देवै ।
कफाणोंसे भेद और कफ तथा स्नेहन योगों
से वायु शान्तहोतीहै ।

कफपित्तप्रमेहपरप्रयोग ॥

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरौ
हीतककौटजानि ॥ कपित्थपुष्पाणिचचू
र्णितानि क्षौद्रेणलिह्यात्कफपित्तमेही ।
पिवेद्रसेनामलकस्यवापि कल्कीकृतान्य
क्षसमानिकाले ॥ जीर्णेचभुञ्जीतपुराण
मन्नं मेहीरसैर्जाङ्गलजैर्मनोभिः । दृष्ट्वानु
बन्धंपवनंकफस्यपित्तस्यवास्नेहविधिर्वि
कल्प्यः ॥ तैलंकफेस्यात्सकपायसिद्धं

पित्तेघृतंपित्तहरैः कपायैः ।

अर्थ—कवाला, सप्तपर्ण, सर्जरस, बहेडा
रोहीतक [रोहेडा], इन्द्रजौ, कैयकेफ़ल
इन सबका चूर्ण पीसकर शहतमें मिलाकर
चाटनेसे कफापित्त प्रमेह दूर होजाता है ।
अथवा इसी प्रकारके चूर्ण का दो तोले कल्क
आंवलेके रसके साथ पान करै और औ-
षध के पचने पर पुराने चावलों का भा-
त जांगलजीवोंके मांसरसके साथ सेवनकरै
इस रोगमें वायुके कफानुबन्धी वा पि-
त्तानुबन्धी होनेपर स्नेहविधिकी विकल्पना
करनी चाहिये । यदि कफका अनुबन्ध हो
तो कफनाशक द्रव्योंके साथमें सिद्ध किये
हुए तेलका प्रयोग करै और जो पित्त का
अनुबन्धहो तो पित्तनाशक कपायोंमें सिद्ध
कियाहुआ घृत देवै ॥

अन्यप्रयोग ।

त्रिकण्टकाश्मन्तकसोमवलकैर्भल्लातकैः
सातिविपैःसरोध्रैः ॥ वचापटोलार्जुनानि
म्बुस्तैर्हरिद्रयापन्नकदीपकैश्च । मञ्जि-
ष्ठयावागुरुचन्दनेश्च सर्वैःसमस्तैःकफवा
तजेषु ॥ महेषुतैलंविपचेद्धृतंतुपैत्तेषुमिश्रं
त्रिपुलक्षणेपु ।

अर्थ—गोखरू, कचनार, खैर, भिलाया,
अतीस, लोध, वच, परवल, अर्जुन, नीमकी
छाल, मोथा, हलदी, पन्नाख, अजवायन,
मजीठ, अगर, चन्दन, इनसबके काथमें सिद्ध
किया हुआ तेल सेवन करनेसे कफघात ज-
न्य प्रमेह दूर होताहै । उन्हींमें सिद्ध किया
हुआ घृत वातपित्तजन्य प्रमेहको तथा घृत
और तेल दोनों त्रिदोषजन्य प्रमेह को दूर
करते हैं ।

सर्वप्रकार के प्रमेह पर काथ ।

फलत्रिकंदारुनिशाविशालामुस्ताचानि-
काथ्यनिशासकल्का । पिवेत्कपायंमधु-
सम्प्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषुसमुद्धतेषु ॥

अर्थ—त्रिफला, देवदारु, हलदी, इन्द्रा-
यण और मोथा इनका काथकरके उसमें
हल्दी पीसकर डालदेवे और इस कपायमें
शहत मिलाकर पीनेसे सर्वप्रकारके उद्धत
प्रमेह दूर होजातेहैं ।

मध्वासव ।

लोभ्रंशटीपुष्करमूलपेलां मूर्वाविडङ्गत्रि-
फलांयवानीम् ॥ चव्यंभियंगुत्रमुकांविशा-
लां किराततित्तकंदुरोहिणीश्च । भार्गी
नतंचित्तकपिप्पलीनां मूलसकुष्ठाति-

विपंसपाठम् ॥ कलिङ्गकान्केशरमिन्द्र
साहं नखंसपत्रंगरिचंष्टवञ्च । द्रोणी-
ऽमसः कर्पसमानिपक्त्वापूतेचतुर्भागज
लावशेषे ॥ रसेऽर्धभागेमधुनःप्रदाय प-
क्षान्निधेयोघृतभाजनस्थः । मध्वासवोऽ
यंकफपित्तमेहान् क्षिप्तविह्व्याद्विपलम-
योगात् ॥ पाण्ड्वामयाश्रास्यरुचिग्रहण्या-
दोपकिलासंविबिधश्चकुष्ठम् ।

अर्थ—लोघ्र, शठी, पौहकर मूल, इला-
यची, मूरी, वायविडंग, त्रिफला, अजवायन
चन्य, प्रियंगु, सुपारी, इन्द्रायण की जड़
चिरायता, कुटकी, भाङगी, तगर, चीता,
पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, ना-
गकेशर, इन्द्रायणकी जड़, । नखी, तेजपात
कालीमिरच, केवटी, मोथा । इन सबको ए-
क एक कर्प लेकर एक द्रोण जलमें पकावै
जब चौथाई शेष रहजाय तब इसे छानले,
फिर इस रसका आधा शहत मिलाकर घी-
के चिकने पात्रमें भरकर पन्द्रह दिवस तक
धरा रहने देवे । यह मध्वासव है, इसमें
से प्रतिदिन दोपलका सेवनकरनेसे कफपित्तज-
नित प्रमेह, पाण्डुरोग, अश्वरोग, अरुचि,
ग्रहणीदोष, किलास और सब प्रकारके कु-
ष्ठ दूर होजातेहैं ।

अन्य आसव ।

काथः स एवाष्टपलेचदन्त्याभल्लातकाना
ञ्चचतुष्पलं स्यात् ॥ सितोपलात्स्वष्टपला
विशेषः सौद्रश्चतावत्पृथगांसवौतौ ।

अर्थ—उसी पूर्वोक्त लोघ्रादि काथसे दो
आसव और बनाये जातेहैं यथा (१) पू-

र्वोक्त क्वाथमें दंती आठपल, शहत और मि-
श्री आठ आठ पल डालें और (२) पू-
र्वोक्त उसी क्वाथमें मिलाया चार पल, मि-
श्री आठ पल और शहत आठ पल डालें इ-
न दोनोंके गुणभी मध्वासवके समानहैं ।

प्रमेह पर अन्य चिकित्सा ।

सारोदकश्चाथकुशोदकं वा मधूदकं वा त्रि-
फलारसं वा ॥ शीधुं पिवेद्दानिगदं प्रमेही
माध्वीकमग्नश्चिरसंस्थितं वा । मांसा
निशूल्यानिमृगद्विजानां खादेद्यवानां चि
विधांश्च भक्ष्यान् ॥ संशोधनारिष्टकपा
यलेहैः सन्तर्पणज्ञः शमयेत् प्रमेहान् । भृ
ष्टान्यवान् भक्षयतः प्रयोगात् शुष्कांश्च
शक्नुन्न भवन्ति मेहा ॥ श्वित्रश्च कुष्ठश्च
कफश्च कृच्छ्रं तथैव मुद्गामलकप्रयोगात् ।

अर्थ—सारोदक वा कुशोदक, वा मधूद-
क वा त्रिफला काथ, वा शीधु वा पुराना
माध्वीक सेवन करनेसे प्रमेह दूर होजाता है
पशुपक्षियोंका शूलपर भुना हुआ मांस, तथा
जौके अनेक पदार्थोंका भक्षण करे । संशो-
धन, अरिष्ट, कपाय, लेह और संतर्पण
द्वारा प्रमेहको शमन करे । भुने हुए जौ,
इनका सत्तू तथा मूंग और आंवला इन के
प्रयोगसे श्वित्रकुष्ठ, कुष्ठ, कफ और मूत्र-
कृच्छ्र दूर होजाते हैं ।

सन्तर्पणोत्थे पुगदे पुयोगा मेदस्विनायेच
मयोपदिष्टाः ॥ विरूक्षणा र्थकफपित्तजे
पुसिद्धाः प्रमेहेष्वपिते प्रयोज्याः । व्याया-
मयोगैर्विविधैः प्रगाढैर्दृक्चनेः स्नानजला-
वसेकैः ॥ सेव्यत्वंगलागुरुचन्दनाद्यै

विलेपनैश्चाशुनसन्तिमेहाः । क्लेशधमेद-
धकफश्चबृद्धः नाशं प्रयाति प्रसमीक्ष्य तस्मा
त्तुर्वेद्येन पूर्वैकफपित्तजेषु मेहेषु कार्योप्य-
पतर्पणानि ॥

अर्थ—सन्तर्पणजन्य रोगोंमें तथा जिनका
मेदा बढ गया है उनके लिये जो रूक्षणकर्त्ता
प्रयोग वर्णन किये गये हैं इन का कफपि-
त्तोत्थ प्रमेहमें प्रयोग किया जाय तौ
तत्काल फलप्रद है ।

आयन्त परिश्रम [दंडकसरत आदि]
अनेक प्रकारके उबटने, स्नान, जलावेसक
तथा खस, दालचीनी, अगर और चन्दन
का लेप करने से प्रमेह शीघ्र नष्ट होजाता है

अपतर्पणसे क्लेश, मेद और कफ ये नष्ट
होजाते हैं इसलिये कफपित्त प्रमेहोंमें प्रथम
अपतर्पण देना चाहिये ॥

यावातमेहान्प्रतिपूर्वमुक्ता वातोल्बणानां
विहिताक्रियासा । वायुहिमेहेष्वतिकर्षि-
तानां कुप्यत्यसाध्यान्प्रतिनास्तिचिन्ता

अर्थ—जहां तीनों दोषोंमें से वातकी
अधिकता हो वहां प्रथम वातज मेहकी
चिकित्साके अनुसार उपाय करें क्योंकि
वातप्रमेह मनुष्यको बहुत शीघ्र कृशकारके
रोगको असाध्य करदेता है, तब फिर कोई
चिकित्सा काम नहीं देती है ॥

प्रमेहमें निदानपरिचयेन ॥
यैहेतुभिर्मेहप्रभवन्तिमेहास्तेषु प्रमेहेषु न ते नि-
षेव्याः ॥ हेतोरसेवाविहितायर्थवजात
स्परोगस्य भवेच्चिकित्सा ।

अर्थ—जिन २ हेतुओंसे जो २ प्रमेह

उत्पन्न होते हैं उनमें उन हेतुओंका कदापि
सेवन न करना चाहिये क्योंकि हेतुका
परित्याग करदेना भी रोगकी एक प्रकार
की चिकित्सा है ॥

हारिद्रिवर्णरुधिरश्चमूत्रं विना प्रमेहस्याहि-
पूर्वरूपः ॥ यो मूत्रयेत्तन्न वेदत् प्रमेहरक्त-
स्यापित्तस्य हि स प्रकोपः ।

अर्थ—जो मूत्रका रंग हलदीसा लाल
हो और उसमें प्रमेहका कोई पूर्वरूप न हो
तो उस रोगांके प्रमेह नहीं होती है वह
उसके रक्तपित्तके प्रकोप का कारण है ॥

मधुप्रमेहकालक्षण ॥
दृष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सापिच्छं मधुपमं स्याद्वि-
धोपचारः ॥

अर्थ—जो प्रमेह मधुर हो वा शहत के
समान गिलगिली हो उसमें अनेक प्रकार
की चिकित्सा करनी चाहिये ।

प्रमेहको साध्यासाध्यत्व ॥
क्षीणे पुदोपेष्वा निलात्मकः स्यात् सन्तर्प-
णाद्वा कफसम्भवः स्यात् । सपूर्वरूपाः क-
फपित्तमेहाः क्रमेण ये वातकृताश्च मेहाः ॥
साध्यान्ते पित्तकृतास्तु याप्याः साध्यास्तु
मेदोयदिनमदुष्टम् । जातप्रमेहो मधुमेहि-
नां वा न साध्यरोगः स हि वीजदोषात् ॥
ये चापिकेचित्कुलजाविकारा भवन्ति तां-

श्च भवदन्त्यसाध्यान् ॥
अर्थ—दोषोंके क्षीण होनेपर वातात्मक
प्रमेह होता है और सन्तर्पणसे कफज प्रमेह
उत्पन्न होता है ये कफज तथा पित्तज प्रमेह
जो पूर्वरूपसे युक्त होते हैं अथवा जो वात-

कृतेह वे असाध्य होतेहैं पित्तजप्रमेह याप्य है और कफजप्रमेह जिनमें मेदा दूषित नहीं होताहै वे साध्य होतेहैं । मधुमेही की सन्तान बीजदोष के कारण असाध्य होती है । तथा जो रोग कुलपरम्परासे चलेआते हैं वे भी असाध्य होते हैं ॥

पिडकाओंकी चिकित्सा ॥

प्रमेहिणांया पिडकामयोक्ता रोगाधिका-
रेपृथगेवसप्त । ताःशल्यहृद्भिःकुशलैश्चि-
कित्स्याः शस्त्रेणसंशोधनरोपणैश्चेति ॥

अर्थ—रोगाधिकारमें जो प्रमेह रोगकी सात पिडका पृथक् वर्णन कीगई हैं उनकी चिकित्सा शल्यशास्त्र में कुशल वैद्य शस्त्रसे संशोधन और रोपण द्वारा करें ।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

भवन्तिचात्र ॥

हेतुर्दोषादूष्यमेहानांसाध्यतानुरूपञ्च ।
मेहीत्रिविधस्त्रिविधंभिपगजतलक्षणंतस्य
आद्यायवान्नविकृतिर्मन्थामेहापहाःकषा-
याश्च । तैलघृतलेहयोगाभक्ष्याःप्रवरा-
सवासिद्धाः ॥ व्यायामविधिर्विविधः
स्नानान्युद्धर्तनानिगन्धाश्च । मेहानां
प्रशमार्थंचिकित्सितेदृष्टमेतावदिति ॥

अर्थ—इस प्रमेह चिकित्सितनामक अध्यायमें प्रमेहोंके हेतु, दोष, दूष्य, साध्यता अनुरूप, तीनप्रकारके रोग, उनकी तीन प्रकारकी चिकित्सा, लक्षण, भक्षणीय औके पदार्थ, मन्थ, प्रमेहनाशक कषाय, तैल, घृत, लेह, भक्ष्ययोग, अनुभूत आसन्न, व्यायामविधि, अनेक प्रकारके स्नान, उद्धर्तन,

सुगंधित द्रव्यादि प्रमेह नाशक विधि वर्णन की गई हैं ।

इतिश्रीभाषाटीकांश्वितायां अग्निवेशविरचिता-
यां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकि-
त्सितस्थाने प्रमेहचिकित्सितनाम

षष्ठोऽध्यायः ॥

—१×*×—

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातःकुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम कुष्ठचिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

कुष्ठोत्पत्तिका हेतु ॥

हेतुंलिङ्गंविचिंक्रुष्टानामाश्रयंशमनञ्च ।
शृण्वग्निवेश ! सम्यग्विशेषतःस्पर्शनघ्ना-
नाम् ॥ विरोधीन्यन्नपानानिद्रवस्निग्ध-
गुरुणिच । भजतामागतांछर्दिवेगांश्चान्या-
नप्रतिघ्नताम् ॥ व्यायाममतिस्तन्ताप-
मतिभुक्त्वानिपेविणाम् । शीतोष्णलं-
घनाहारनक्रममुक्त्वानिपेविणाम् ॥ घ-
र्षश्रमभर्षार्तानांद्रुतंशीताम्बुसेविनाम् ।
अजीर्णाध्यशिनञ्चैवपञ्चकर्मापचारि-
णाम् ॥ नवान्नदधिमत्स्यातिलवणाम्ल-
निपेविणाम् । माषमूलकपिष्टान्नगुहक्षी-
रतिलाशिनाम् ॥ व्यवयंचाप्यजीर्ण-
ञ्जोनिद्रांवाभजतांदिवा । विप्रान्गुरुन्-
र्धपयतांपापंवाकर्मकुर्वताम् ॥ वातादय-
स्त्रयोदुष्टास्त्वग्रक्तंमांसमम्बुच । दूषय-
न्तिसकुष्ठानांसप्तकोद्रव्यसंग्रहः ॥ अतः

कुष्ठानि जायन्ते सप्तचैकादशैव च । न चैक
दोषजं किञ्चित् कुष्ठं समुपलभ्यते ।

अर्थ—हे अभिवेश ! अवमें तुम्हारे सा-
म्हने कोढ़के अनेक प्रकारके हेतु, लक्षण आ-
शयस्थान और उनके शान्तिके उपायोंको
वर्णन करता हूँ तुम सावधान हो कर सुनो ।
वे ये हैं यथाः—

विरुद्ध अन्नपान; पतले, चिकने और
भारी पदार्थोंका अत्यन्त सेवन; उपस्थित व-
मनके वेग तथा अत्यन्त मलमूत्रादि वेगोंका
रोकना; अत्यन्त भोजन करके अत्यन्त शा-
रीरिक परिश्रम और अत्यन्त सन्ताप का
सेवन, क्रमको छान्दकर शीत, उष्ण, लघन
और आहारका सेवन, पसीनोंमें, पारिश्रम
करके वा भयजन्य कर्ममें शीतल जञ्का
सेवन; अजीर्णमें अध्यशन, वमनविवेचनादि
पाँच कर्मोंका अपचार; नया अन्न, दही, म-
छली, नमक और खटाईका अत्यन्त सेवन
उदर, मूली, पिष्टान्न, गुड़, दूध और ति-
लका अत्यन्त सेवन, अन्नके बिना पचे मै-
थुन करना; दिनमें नींद भरना, विप्र और
गुरुजनोंका तिरस्कार; पापकर्मका करना; इ-
न सब बातोंसे कुपित हुए वातादिक तीनों
दोष तथा इनमें दूषित किये हुए त्वचा, रक्त
मांस और लसीका, ये सातों सब प्रकारकी
कुष्ठोंके कारण हैं । इस तरह सब मिलाकर
अठारह प्रकारके कुष्ठ उत्पन्न होते हैं । एक
दोषके कुपित होनेसे कोई कुष्ठ नहीं होता है
कुष्ठके पूर्वरूप ।

स्पर्शान्यभास्वस्वेदोतिनवावैवर्ण्यगुन्निः

कोटानां लोमहर्षथकण्डूस्तोदःश्रमः क्रमः
व्रणानामधिकं शूलशीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः

दाहः सुप्ताङ्गताचेतिकुष्ठलक्षणमग्रजः ।

अर्थ—त्वचाका अन्यथा होना, पसीनों
का अत्यन्त आना वा सर्वथा न आना, वि-
वर्णता, पित्तीका उछलना, रोमाञ्च खड़े
होना, खुजली तोड़, श्रम, क्लान्ति, शरीर
में घाव होकर उनमें अत्यन्त वेदना होना
घावोंका शीघ्र होना और बहुत दिवस तक
रहना, दाह और सुप्ताङ्गता, ये सब कोढ़
के पूर्वरूप हैं ।

कुष्ठोक्तेनाम ।

अत ऊर्ध्वमष्टादशानां कुष्ठानां कपालोदुम्ब-
रमण्डलर्प्यजिह्वा पुण्डरीकसिध्मका कण-
कैककुष्ठचर्मकिटिमाविपादिकालसकदद्गुच-
र्मदलपामाविस्फोटकशतारुर्विचर्चिकानां
लक्षणान्युपदेक्ष्यामः ।

अर्थ—अब हम यहां से कपाल, उदुम्बर
मण्डल, ऋष्यजिह्वा, पुण्डरीक, सिध्म,
काकणक, एककुष्ठ, चर्म, किटिम, विपादि-
का, अलसक, दद्गु, चर्मदल, पामा, विस्फो-
टक, शतारु और विचर्चिका, इन अठारह
प्रकारकी कोढ़ों के लक्षण वर्णन करेंगे ।
इनमें से पहिली सातको महाकुष्ठ और पिछ-
ली ग्यारहको क्षुद्रकुष्ठ कहते हैं ।

कपाल कुष्ठके लक्षण ।

कुष्णारुणकपालाभयद्रुक्षंपरुपन्तनु । का-
पालन्तोदवहुलंतंकुष्ठं विपमं स्मृतम् ॥

अर्थ—जो कुष्ठ कालापन लिए कुछ लाल
होता है, जो खीपड़े के सदृश रक्त खरखरा

तथा पतला हो और जिसमें सुईके छिदने की सी अत्यन्त वेदना होती हो उसे कपाल कुष्ठ कहते हैं यह दुरिवाकित्य होता है ।

औदुम्बर कुष्ठके लक्षण ।

कण्डूविदाहरागपरतिंलोमापिञ्जरम् ।

उदुम्बरफलाभासंकुष्ठमौदुम्बरविदुः ॥

अर्थ—जिस में खुजली, जलन, वेदना और ललाई होती है, रोमोंमें पीलापन होता है और जिसका आकार गूलरके सदृश होता है उसे औदुम्बरकुष्ठ कहते हैं ।

मंडलकुष्ठके लक्षण ।

श्वेतरक्तस्थिरस्त्यानंस्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् । कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तकुष्ठमण्डलमुच्यते ॥

अर्थ—जिसका वर्ण सफेद और लाल हो, जो कठोर गीला, चिकना, उंचा उठा हुआ, मंडलाकार हो, जिसमें चकत्ते एक दूसरेसे मिले हुए हों, यह मंडलकुष्ठ कृच्छ्र साध्य होता है ॥

ऋष्यजिह्वा कुष्ठके लक्षण ॥

कर्कशरक्तपर्यन्तमन्तःश्यावःसवेदनं ।

यदृष्यजिह्वासंस्थानं ऋष्यजिह्वतदुच्यते ॥

अर्थ—जो कुष्ठ खरस्पर्श होता है जिस के किनारे ललाई लिये होते हैं, जो बीच में कृष्णवर्ण तथा वेदनायुक्त होता है । जिसका आकार रीछकी जिह्वाके सदृश होता है उसे ऋष्यजिह्वा कहते हैं ॥

पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण ॥

सश्वेतरक्तपर्यन्तपुण्डरीकदलोपमम् ॥

सोत्सेधश्चसदाहञ्चपुण्डरीकतदुच्यते ॥

अर्थ—जिसका श्वेत वर्ण और लाल किनारे हों, जो कमलके पत्तों के सदृश होता है, जो उंचा तथा दाहयुक्त होता है उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं ।

सिध्मकुष्ठके लक्षण ।

श्वेततान्त्रतनुचयद्रजोघृष्टंविमुञ्चति ।

अलाघुपुष्पवर्णतत्सिध्मप्रायेणचोरसि ॥

अर्थ—जिसका वर्ण सफेद और तांबे के समान होता है, जो पतला होता है, जिसको खुजाने से भुसीसी [धूल के सदृश] उड़ती है जिसका आकार घोंपाके पुष्पके समान होता है उसे सिध्मकुष्ठ कहते हैं, यह हृदयमें होता है ।

काकणक कुष्ठके लक्षण ।

यत्काकणन्तिकवर्णसपाकंतीव्रवेदनम् ।

त्रिदोषलिङ्गतंकुष्ठंकाकणनैवासिद्धयति ॥

अर्थ—जिसका आकार चिरामेठीके सदृश होता है अर्थात् बीचमें काला और किनारों पर लाल अथवा बीचमें लाल और किनारों पर काला, जो किञ्चित् पाकयुक्त और तीव्र वेदनायुक्त होता है उसे काकणक कुष्ठ कहते हैं, यह त्रिदोषाश्रित होने से आसाध्य होता है । यह सात प्रकारके महाकुष्ठ वर्णन किये गये हैं ॥

अब क्षुद्रकुष्ठों का वर्णन करते हैं ॥

एक कुष्ठ और चर्म कुष्ठके लक्षण ।

अस्वेदनं महावास्तुयन्मत्स्यशकलोपमम् ।

तदेककुष्ठं चर्मोत्थं बहलं हस्तिचर्मवत् ॥

अर्थ—जिसमें पसीने न आवें, जो बहुत जगह में व्याप्त हो जो मछलीके ठुकरों के

समानहो उसे एककुष्ठ कहते हैं इसके वि-
षयमें सुश्रुत लिखता है कि “ कृष्णारणं
येन भवेच्छरीरं तदेक कुष्ठं प्रवदन्यसाध्यम्
अर्थात् जिससे देह काला वा लाल पड़जाता
है उसे एककुष्ठ कहते हैं और यह असाध्य
होता है ।

जिसमें देहकी त्वचा हाथीके चमड़ेके स-
मान मोटी होती है उसे चर्मकुष्ठ कहते हैं ।

किटिम कुण्ड के लक्षण ।

श्यावंकिणं खरस्पर्पणं पाकिटिमं स्मृतम्

अर्थ जो काला, किण के सदृश खरस्पर्श
और खरदरी होती है उसे किटिम कहते हैं
सुश्रुत कहता है कि जिसमें कड़े गोल
चकत्ते से होते हैं और जो अत्यन्त खुजली
चलने के पीछे शरने लगता है उसे किटिम
कहते हैं ।

वैपादिका के लक्षण ।

वैपादिकं करे पादे स्फोटनं तीव्रवेदनम् ॥

अर्थ—हाथ पांवके फटनेसे जो तीव्र वे-
दना युक्त होता है उसे विपादिका कहते
हैं, यहां सुश्रुत लिखता है कि “ कण्डूमती
दाहश्चोपपन्ना विपादिका पादगतेऽप्येव, ।
अर्थात् खुजली दाहादियुक्त का नाम वि-
पादिका है और यह पांवही में होती है, ,
'इत्येव, ये दोनों शब्द 'पादगता' के पास
ऐसे ढंगसे डाले गये हैं कि इससे जाना
जाता है कि यह पांवही में होती है इससे
भाषा में इसका विवाई कहा जाना संभव हो
सकता है और विपादिका, इस शब्द के
अर्थ से भी 'पांवका फटनाही, प्रतीत होता

है, परन्तु यहां इन दोनों आचार्यों का मत
भिन्न है, यदि यह ' विवाई, न भी होती
भी विवाई कोढ़ से कम नहीं होती क्योंकि
इसकी वेदनाको वेही जानते हैं जिनके
यह होती है ।

अलसक के लक्षण ।

सकण्डूकैः सरावैश्च गण्डैरलसकं स्मृतम् ।

अर्थ—जिसमें खुजली चलती हो, जो ला-
लरंगकी हो तथा जिसमें बड़े २ फोड़े हो
गये हों उसे अलसक कहते हैं ॥

दद्रुमण्डल के लक्षण ॥

सकण्डूरागपिडकं दद्रुमण्डलमुद्रुतम् ॥

अर्थ—जो खुजली युक्त और लालवर्ण
की फुत्तियों से युक्त हो जिसमें ऊंचे २
चकत्ते होजाय उसे दद्रुमण्डल कहते हैं ॥

चर्मदल के लक्षण ॥

रक्तंसकण्डूसस्फोटंसखण्डलतिचापियत् ।

तच्चर्मदलमाख्यातं संस्पर्शा सह मुच्यते ॥

अर्थ—जिसका वर्ण लाल हो जिसमें खु-
जली चलती हो, जो फोड़े और वेदनाओं
से युक्त हो, जो फटगयी हो, जिसमें हाथ
का लगाना सहा न जाय उसे चर्मदल
कहते हैं ॥

पामा के लक्षण ।

**पामाः श्वेतारुणाः श्यावाः पिडकाः कण्डूला
भृशम् ॥**

अर्थ—जिसमें सफेद, लाल, काली बहुत
खुजलीयुक्त फुत्तियां हों उसे पामा कहते हैं ।

विस्फोटक के लक्षण ।

**श्वेताः श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तं
नृत्वचः ।**

अर्थ....जिनमें सफेद, काले और लाल रंगकी शलक मारतीहो और जिनकी त्वचा पतलीहो ऐसे कोडोंको विस्फोटक कहते हैं

शतांशके लक्षण ।

रक्तंश्यावंसदाहार्तिगताः स्यादुग्रणम्

अर्थ....जिसमें लाल काले दाहयुक्त बहुत से प्रणहोज्ञाय उसे शतारु कहते हैं ॥

विचर्चिकाके लक्षण ॥

सकण्टूःपिडकाः श्यावावहुसावाविचर्चिकाः ।

अर्थ....खुजलीयुक्त काले रंगकी ऐसी फुत्तियां जिनमें बहुत साव होताहो उन्हें विचर्चिका कहते हैं ॥

कुष्ठोंको दोषपरत्व ।

वातेऽधिकतरेकुष्ठकापालमण्डलंफे ॥

पित्तैर्वाऽदुम्बरांविधात्काकणन्तुत्रिदोष

जम् । वातपित्तश्लेष्मभिन्नेवातश्लेष्म

णिचाधिके ॥ ऋष्यजिह्वपुण्डरीकंसि

ध्मकुष्ठं चजायते । चर्मरूपमेककुष्ठश्चकि

टिमंसत्रिपादिकम् ॥ कुष्ठश्चालसकंक्षेयं

प्रायोवातकफाधिकम् । दद्रुश्चर्मदलपामा

विस्फोटश्चशतारूपः ॥ पित्तश्लेष्माधि-

काःप्रायकफमायाविचर्चिका ।

अर्थ....कापालकुष्ठमें वात अधिक होती

है । मण्डलकुष्ठमें कफकी अधिकताहै । औ-

दुम्बरकुष्ठमें पित्तकी अधिकता है । और

काकणक कुष्ठमें तीनों दोषोंकी अधिकता

है । ऋष्यजिह्व में वातपित्तकी अधिकता

है । पुण्डरीकमें कफपित्तकी और सिध्म कुष्ठ

में वातकफकी अधिकता होती है ।

चर्मकुष्ठ, एककुष्ठ, किटिम, त्रिपादिका

और अलसक इन कुष्ठों में प्रायः वातकफ

की अधिकता होती है - दद्रु, चर्मदल,

पामा, विस्फोटक और शतारु इनमें प्रायः

कफपित्तकी अधिकता होती है, इसीतरह

विचर्चिका में कफकी अधिकताहोती है ॥

कुष्ठों में चिकित्साक्रम ।

सर्वत्रिदोषजकुष्ठं दोषाणाञ्च बलावलम् ॥

यथास्वैलक्षणैर्धुदध्वाऽपुष्टानां क्रियते क्रिया

दोषस्य यस्य पश्येत्कुष्ठेषु विशेषलिङ्गमुद्दि-

क्तम् । तस्यैव शर्मं कुर्यात्ततः परञ्चानुव

न्धस्य ॥

अर्थ—सम्पूर्ण कुष्ठ त्रिदोषसे उत्पन्न होते

हैं, इनमें लक्षणों द्वारा दोषों का बलावल

देखकर तदनुसार चिकित्सा करना उचित

है । जिसकुष्ठमें जिस दोषके बड़ेहुए लक्षण

दिखाई दें प्रथम उसीकी चिकित्सा करे ।

तत्पश्चात् अनुबन्धी दोषोंकी चिकित्सा

करना चाहिये ।

कुष्ठकी पहचान ।

कुष्ठविशेषैर्दोषादोषविशेषैः पुनः कुष्ठानि ।

ज्ञायन्ते तैर्हेतुहेतुस्तांश्चमकाशयति ॥

अर्थ—कुष्ठ के भिन्न २ भेदों से दोष

और भिन्न दोषों के लक्षणों से कुष्ठ पह-

चानी जाती है, इसीतरह कुष्ठसे हेतु और

हेतुओं से कुष्ठ जाननेमें आती है, जैसे

कपालकुष्ठ के लक्षणों से वाताधिक्य और

वातकी अधिकता से कपालकुष्ठ की संभा-

वना होती है ।

वातजादि कुष्ठों के लक्षण ।

रीक्ष्यं शोषं स्तोदःशूलं सङ्कोचं न तथायासः

पारुष्यस्तरभावोर्हर्षः श्यावारुणत्वं च ॥
कुष्ठेषु वातलिङ्गं दाहो रागः परिस्तावः पाकः
विस्रो गन्धः क्लेदः यथांगपतनश्चापि तत्कृत
म् ॥ श्वैत्यं शैत्यं कण्डूः स्थैर्यं सोत्सेधगौर
वं स्नेहाः । कुष्ठेषु तु कफलिङ्गं जन्तुभिरभि
भक्षणं क्लेदः ॥ सर्वैरेतैर्लिङ्गैर्युक्तमति प्रा
ग्निविजयेदबलम् ॥

अर्थ—जित कुष्ठ में रूक्षता, शोष, तोद
शूल, संकोच, आयास, कर्कशता, खरखराप
न, रोमोद्गम, कालापन, और लड़ाई, हों उसे
दातजन्य कुष्ठ समझो ।

दाद, रक्तवर्ण, स्त्राव, पाक, विस्रगंध,
क्लेद और किसी अवयव का गिर पडना ये
पित्तकृत कुष्ठ के लक्षण हैं । सफेदाई,
शीतलता, खुशली, स्थिरता, ऊंचापन, भारापन,
चिकनाई ये कफकृत कुष्ठ के लक्षण हैं । जिस
कुष्ठ में काँडे पडगये हों, क्लेद हो, तथा
पूर्वोक्त तनों दोषों के लक्षण हों और रोगी
दुर्बल हो तो वह कुष्ठ दुश्चिकित्स्य होता है ।

कुष्ठ को असाध्यत्व ।

तृष्णा दाह परीतिं शान्ताभिर्जन्तुभिर्जग्धम्
वातकफप्रवलयध्वदेकदोषोत्पन्नतत्क
च्छम् । कफपित्तवातपित्तप्रयलानिनतु
कृच्छ्रकुष्ठानि ॥

अर्थ—जिस कुष्ठ में तृष्णा, दाह, मन्दाग्नि
या काँडे पडगये हों वह असाध्य है । वात
कफाधिक या एक दोषाधिक कुष्ठ कृच्छ्र
माप्य नहीं होता है और जिन कुष्ठों में क
फपित्त प्रयल होते हैं वे अत्यन्त कृच्छ्रसाध्य हैं
दोषानुसार चिकित्साक्रम ।

वातांतरे पुंसर्पिर्वैमनं ग्लेष्मोत्तरे पुं कुष्ठेषु ॥

पित्तोत्तरे पुमोक्षोरक्तस्य विरेचनं चाग्ने ॥ वम
नविरेचनयोगाः कल्पोक्ताः शुद्धिर्नामयो
क्तव्याः ॥ मच्छनमल्पे कुष्ठे मतं शिरावेधनं
महति च शस्तं ॥ बहुदोषः संशोध्य कुष्ठो
बहुशोनुरक्षता प्राणान् । दोषे ह्यतिमात्रह
ते वायुर्हिन्यादवलमाशु ॥ स्नेहस्य पानमि
ष्टं शुद्धे कोष्ठे प्रवाहिते रुधिरि । वायुर्हि शुद्धको
ष्ठं कुष्ठिनमवलं विंशतिशीघ्रम् ॥

अर्थ—वातप्रधान कुष्ठ में प्रथम ही घृतपा
न, कफप्रधान में वमन और पित्तप्रधान में
रक्तमोक्षण और विरेचन देना चाहिये ॥

कुष्ठरोगियों के लिये जो वमन विरेचन
के प्रयोग हैं वे कल्पस्थान में वर्णन किये
गये हैं अल्पकुष्ठ में पछना लगाना और महा
कुष्ठ में सिरावेधन हित है ।

बहुत दोषों से युक्त कोष्ठ में बहुतवार सं
शोधन करना चाहिये परन्तु प्राणों की रक्षा
करता रहे ऐसा न हो कि संशोधन देते
देते रोगी मरजाय । क्योंकि दोषों के अत्य
न्त निकल जाने से दुर्बल हुए रोगी को वायु
शीघ्र ही मार डालती है ।

संशोधन द्वारा कोष्ठ के शुद्ध होने पर
और फस्त खोलने के पश्चात् रोगी को घृत
पान कराना हित है क्योंकि कोष्ठ के शुद्ध
होने से जब रोगी निर्बल होजाता है तब वायु
उसमें बहुतही शीघ्र प्रवेश करती है ।

कुष्ठनाशक प्रयोग ॥

दोषोत्तिलप्टे दृढये वम्यः कुष्ठेषु चोर्द्धभागे पु
कुट्टनफलमदनमधुकेः सपटोर्लान्मम्वरस
युक्तैः ॥ शीतरसः पक्व रसो मधूनि मधु-

कश्चयमनानि । कुष्ठेपुत्रितृतादन्तीत्रिफ
लाचविरेचनेशस्ताः ॥ सौवीरकंतुपोद
कमालोदनमांसवांस्तुशीध्वादीन् । शंस
न्त्यथोहराणायथाविरेकःक्रमश्चेष्टः ॥

अर्थ—हृदयके दोषोंसे उल्लिष्ट होने पर
और कुष्ठरोगके शरीरके ऊपरले भाग में
होनेपर इन्द्रजौ, मेनकल, मुलहठी, परवल
और नीमके रसको पान कराके वमन करावे
कुष्ठरोगमें वमन कराने के लिये मेनफल

के शीतकपाय वा कपायमें शहत और
मुलहठी का चूर्ण डाले । तथा निसोथ द-
न्ती और त्रिफला ये विरेचन में हितकारी हैं

विरेचनकर्त्ता द्रव्यों में सौवीरक, तुपोदक
आम्रव वा शीधु लेना चाहिये तत्पश्चात्
विरेचन में जो जो क्रम वर्णन किया गयाहै
वह भी करना चाहिये ।

कुष्ठमें स्थापन प्रयोग ।

दार्वावृहतीभैरव्यैःपटोलपिचुमर्दमदनकृत
मालैः । सस्नेहैरास्थाप्यःकुष्ठ्रीसकलिङ्गय-
चमुस्तैः ॥

अर्थ—दारुहलदी, बड़ी कीटरी, खस, पर-
वल, नीम, मेनकल, कंजा, इन्द्रजौ और मो-
था इनके काथ में सिद्ध किये हुये स्नेहसे
फोडी को आस्थापनवास्ति देवे ॥

कुष्ठ में अनुवासन प्रयोग ।

घातोल्वणविरिक्तनिरुद्धमनुवासनार्हमा-
लक्ष्य । फलमधूकनिम्बकुटजैःसपटोलैः॥
साधयेत्स्नेहम् ॥

अर्थ—विरेचन और निरुद्धन देने के पश्चात्
यदि रोग वाताधिक्य हो तो रोगी को

मेनफल, मुलहठी, नीम, कुडाकी छाल और
परवल इनके साथ सिद्ध किये हुए स्नेहकी
अनुवासन वास्ति देवे यदि यह अनुवासन
के योग्य हो ।

कुष्ठमें नस्य प्रयोग ।

दन्तीमधूकसेन्धवफणिज्झकाःपिप्पली-
करञ्जफलम् । नस्यस्थात्सचिदङ्गक्रिमि
कुष्ठकफप्रदोषघ्नम् ॥

अर्थ—दन्ती, मुलहठी, सेंधानमक, फणि-
ज्झक, पीपल, कंजा और वायविडंग इनकी
नस्य देने से क्रिमिरोग कुष्ठ और कफदोष
नष्ट होजाते हैं ।

अन्य क्रम ।

वैरेचनिकैर्धूमैःश्लोकस्थानेरितैश्चशान्य-
न्ति । क्रिमयःकुष्ठकिलासप्रयोजितैरुत्त-
माङ्गस्थाः ॥ स्थिरकाठिनमण्डलानांखि-
न्नानांप्रस्तरमणालीभिः । कूर्चैर्विघटिता
नारक्तोत्केशोपनेतव्यः ॥

अर्थ—सूत्रस्थान में जो विरेचनकर्त्ता
धूम वर्णन किये गये हैं उन के लेनेसे शि-
रःस्थ क्रिमिरोग, कुष्ठ और किलास शीघ्र
नष्ट होजाते हैं ।

स्थिर और कठोर चकत्तों को जो प्रस्तर
स्वेदनकी रीति से स्वेदित किये गये हैं
अथवा कूर्च से विघटित किये गयेहैं उनके
उत्कलेशित रक्तको निकाल देना चाहिये ।

रक्तमोक्षणविधि ।

आनूपवारिजानांमांसानांपोटलैःसुखी-
ष्णैश्च ॥ स्विन्नोत्स्विन्नविलिखेत्कुष्ठंती
क्ष्णेनशस्त्रेण ॥ हांधरागमार्थमथवाभृङ्गा

लावूभिराहरेद्रक्तम् । मच्छित्तमल्पकुष्ठं
विरचेयद्वाजलोकाभिः ॥ येलेषाःकुष्ठा
नांयुज्यन्तेनिर्हृतास्त्रदोषाणाम् । संशो-
पिताशयानांसद्यःसिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥

अर्थ—आनूप और औदक पशु पक्षियों
के मांसकी सुखोष्ण पोटलियोंसे। स्निग्ध औ-
र उत्स्विन्न कुष्ठका तीक्ष्ण शस्त्रसे रुधिर नि-
कालनेके लिये लेखन कौ अथवा सींगीऔ-
र अलावूसे रक्तको निकाले तथा क्षुद्र कुष्ठ
में पछनालगाकर जोकोसे रुधिरको निकाले
कोष्ठके शुद्ध होने पर और रुधिर त-
था दोषोंके निकालनेपर जो लेप किये जा-
ते हैं वे तत्काल फलप्रद होतेहैं ।

येषुनशस्त्रंक्रमतेस्पर्शेन्द्रियनाशनानियानि
स्युः । तेषुनिपात्यक्षारंरक्तंचदोषचनिः
स्त्राव्य ॥ पापाणकठिनपरुपेष्टेकुष्ठे
स्थिरेपुराणेच ॥ पीतागदस्यकार्योविषैः
मदेहोऽगदैश्चानु ॥ स्तब्धानिमृत्सुप्ता
न्यस्वेदनकण्डूलानिकुष्ठानि । कूर्चैर्दन्ती
त्रिफलाकरवीरकरञ्जनिम्बकुटजानाम् ॥
जात्यर्कनिम्बकुटजैर्वापत्रैःशस्तैःसमुद्रफे-
नैर्वा । घृतानिगोमयैर्वाततःप्रलेपैःप्रदे-
ह्यानि ॥

अर्थ—जिन कुष्ठोंमें शस्त्र काम नहीं दे-
ता है और जिनमें केवल त्वचा का नाश
होताहै उनमें क्षार लगाकर रक्त और दोषों
को निकाल डाले ।

जो कुष्ठ पथरके समान कठोर, परुष
सुत; स्थिर और पुराना होता है उसमें रो-
गीको विपनाशक औषधों का पान करावे ।
तत्पश्चात् विष औषधियोंका लेपन करे ।

जो स्तब्ध, अत्यन्त शून्यता से फैली
हुई पसीनासहित और खुजलीयुक्त होती है
उनको दन्ती; त्रिफला; कनेर; कंजा; नीम
कीछाल; बुडाकी छाल इनकी कूर्चोंसे अथ-
वा चमेली; आक; नीम और कुडाके पत्तों
से; अथवा शस्त्रोंसे; अथवा समुद्रफेनसे अ-
थवा गोवरसे रिगड़कर प्रलेप करे ॥

पित्तकुष्ठकी चिकित्सा ।

मारुतकफकुष्ठघ्नंरक्तमोक्तं पित्तकुष्ठानांकार्यं
म् । कफपित्तरक्तहरणंतिक्तकपायैःप्रश-
मनञ्चसर्पीपि ॥ तिक्तकानिचयश्चान्य
द्रक्तपित्तनुत्कर्ष । बाह्याभ्यन्तरमग्न्युत्तका
र्यपित्तकुष्ठघ्नम् ॥

अर्थ—वातकुष्ठ और कफकुष्ठकी चिकि-
त्सा कही गई है और पित्तकुष्ठमें कफपित्त
तथा रक्तनाशककर्म करना चाहिये । ति-
क्तकपाय; तिक्तघृत तथा अन्य रक्तपित्तना-
शक कर्म एवं पित्तकुष्ठ के नाशकरने वाले
उत्तम २ बाह्य और आभ्यन्तरकर्म करने
चाहिये ।

दोषाधिक्यविभागादित्येतत्कर्मकुष्ठनु-
त्थोक्तम् । वक्ष्यामिशमनंमायस्त्वग्दो-
षसाधन्यात् ॥

अर्थ—वातपित्तादि दोषोंकी अधिकताके
अनुसार कुष्ठनाशक कर्मोंका वर्णन किया ग-
या है अब त्वग्दोषकी समानता से कुष्ठना-
शक कर्मोंका वर्णन करेंगे । सब प्रकार के
कोष्ठ त्वचाको बिगाडतेहैं इस लिये सबप्रका-
र की कोष्ठोंमें त्वग्दोष साधारण धर्म है ॥

कुष्ठनाशक प्रयोग ।

दावीरसाञ्जनवागोमूत्रेणप्रवाधतेकुष्ठम् ।
अभयाप्रयोजितावामांसव्योपगुडतैलाः ॥

अर्थदारुहल्ली वा रसातै वा हरडका
गोमूत्र के साथ प्रयोग करने से कुष्ठ नष्ट
हो जाता है; इसमें मांस, सोंठ, मिरच, पपिल,
गुड तैलका त्याग करदे ।

कुष्ठनाशक दूसरा प्रयोग ।

मूलंपटोलस्यतथागवाक्ष्याःपृथक्पलाशं
त्रिफलात्वचश्च । स्यात्त्रायमाणकदुरो
हिणीच भागाद्विकानागरपादयुक्ता ॥
पलंत्वयैकसहचूर्णितानांजलेमृतदोपहरं
पिवेन्ना । जीर्णैरसेधन्वमृगग्रजानांपुरा
णशाल्योदनमाददीत ॥ कुष्ठानिशोफग्रह
णप्रदोषं अर्शासिकृच्छ्राणिहलीमकञ्च
पद्मात्रयोगेननिहन्तिचैव हृदस्तिशूलंवि
पमज्वरञ्च ॥

अर्थ—पुरवलकी जड़; इन्द्रायणकीजड़;
त्रिफला की त्वचा [गुठली निकालकर]
त्रायमाणा; कुटकी ये आधे २ पल
लेवै और सोंठ तोले भर लेकर सबका चू-
र्णकर लेवै; इस चूर्ण मेंसे प्रतिदिन एकपल
लेकर जल के साथ औटाकर पान करें ।
औषध के पचनेपर धन्वदेशस्थ पशुओंके
मांसरमके साथ पुराने शालीचांयलोंका भात
छः दिवस तक सेवन करनेसे शोक, कोढ़
ग्रहणीदोष, कृच्छ्राध्यर्श; हलीमक; हृदशूल;
वस्तिशूल, और विपमज्वर ये नष्टहोजाते हैं

कुष्ठनाशक अन्यप्रयोग ।

मुस्तंन्योगंत्रिफलामक्षिष्ठादारुपञ्चमू
लेदे । सप्तच्छदनिम्बत्वक्सविशालश्च ।

त्रकोमूर्वा ॥ चूर्णतर्पणभार्गनवभिःसंयो-
जितंसमध्वाज्यम् । श्रेष्ठकुष्ठानिवर्हणमेत
त्प्रायोगिकंभक्ष्यम् ॥ श्वयधुंसपाण्डुरोगं
श्वितंग्रहणीप्रदोषमर्शासि । ब्रध्मभगन्द

रपिडकाकण्डूकोठांश्चविनिहन्ति ॥

अर्थ— मोथा, त्रिकुटा, त्रिफला मजीठ
दारुहल्ली, लघुपंचमूल, बृहत्पंचमूल सप्तपर्ण
नीमकी छाल, इन्द्रायण की जड़, चीता, मरो-
डफली, ये सब समान भागलेकर नौगुनाजौ
का सत्तू मिलाकर शहत और घृतके साथ
सेवन करें । यह प्रयोग कुष्ठ के नाश करने
में अत्यन्त उत्तम है । यह शोध, पाण्डुरोग,
श्वित्रकुष्ठ, ग्रहणीदोष, अर्श, ब्रध्म, भगन्दर,
पिडका कण्डू, और कोढ़ इन सब रोगोंको
दूर करता है ।

सुप्तकुष्ठनाशक प्रयोग ।

त्रिफलातिविपाकटुकानिम्बकालिंगकाव
चापटोलानाम् । मागाधिकारजनीद्वयपत्र
कमूर्वाविशालानाम् ॥ भूनिम्बपलाशा
नामदद्याद्विपलंततस्त्रिवृद्धे त्रिगुणा ।
तस्याश्चपुनर्ब्राह्मीतच्चूर्णमुत्तिनुत्परमम् ॥

अर्थ—त्रिफला अतीस, कुटकी नीमकी
छाल, इन्द्रजौ, वच, परवल, हल्ली, दारुह-
ल्ली, पद्माक्ष, मरोडफली, इन्द्रायणकीजड़,
चिरायता, टाककीछाल इनमें से प्रत्येक दो
दो पल लेवै, निम्बोय चारपल और बारहपल,
ब्राह्मी इन सबका चूर्ण बनाकर सेवन करने
से सुप्तकुष्ठ नष्टहोता है ।

मध्वासवका प्रयोग ।

खदिरसुरदारुसारंश्रपयिन्वातद्वेनेनतो ।

यार्थः॥ क्षौद्रप्रस्थकार्यः कार्येतेचाष्टपल
केच ॥ ततश्चायश्चूर्णानामष्टपलमाक्षि
पेतथामूनि । त्रिफलात्वचमरिचम्पत्रङ्ग-
नकञ्चकपर्शम् ॥ मत्स्याण्डिकामधुमगो-
तन्मासमायसेभाण्डे । मध्वासवमाचरतः
कुष्ठकिलासेशमयाताः ॥

अर्थ—खैरकी लकड़ी और देवदारु का
गूदा इनको इनही के रस में पकावै जब
पकजाय तब उस में दोप्रस्थ क्षौद्र, आठ २
पल उक्त दोनों चूर्ण, आठ पल लोहचूर्ण
और एक २ कर्ष त्रिफला की त्वचा, फा-
लीमिरच, तेजपात और धतूरा, शहतके व-
रावर मिश्री इन सबको मिलाकर एक म-
हीने पर्यंत छोढ़े के पात्रमें भरकर रखदे,
इस तरह मध्वासव तयार होता है, इसके
सेवन करनेसे कुष्ठ और किलासरोग नष्ट
होजाते हैं ।

कनकविन्दु अरिष्ट ।

स्वदिरकपायद्रोणकुम्भेपृतभावितेसमा-
घाप्य । द्रव्याणिचूर्णितानिदेयानित्वष्ट
पलकानि । त्रिफलाव्योषविडङ्गरजनी
मुस्ताद्वरूपकेन्द्रयवा । सौवर्णत्वक्छिन्ना
मासंनिदधीतथान्यराशौच । प्रातःप्रातः
पित्रतःपुत्रायामासेनकुष्ठहृद्भवति । पक्षे
णार्शःश्वासभगन्दरंकासकिलासदुग्धम् ।
पाण्डुसवातरकंहन्यात्सप्रमेहशोषाश्च ।
नाभवतिकनकवर्णः पीत्वारिष्टं कनक
विन्दुम् ॥

अर्थ—खैरकी एक द्रोण क्वाथ घीसे
चिकने कियेहुए बर्तनमें भरकर उसमें नीचे

लिखेहुए द्रव्य प्रत्येक आठ, आठ पल डाल
देवै, जैसे- त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल,
बायविडंग, हलदी, नागरमोथा, अहूसा,
इन्द्रजौ, गिलोय और धतूरे की जड़की छाल
इन्है डालकर उस घड़े को धानके ढेरमें एक
महिने तक गढा रहने दे फिर इसका प्रति
दिन प्रातःकाल सेवन करनेसे एक महिनेमें
कुष्ठ जाता रहना है और पन्द्रह दिन सेवन
करने से वक्वासीर, श्वास, भगंदर, खांसी,
किलास, पांडुरोग, वातरक्त प्रमेह और शोष
दूर होजाते हैं. इस कनकविन्दुनामक अरिष्ट
के सेवनसे मनुष्य सुवर्ण के रंग के सदृश
होजाताहै.

कुष्ठेप्वनिलकफकृतेप्येवंपेयस्तथैवपित्ते-
पु । कृतमालकायश्चाप्येपविशेषात्कफ
कृतेषु ॥

अर्थ—पातकफसे उत्पन्न हुए कुष्ठमें तथा
पित्तज कोष्ठमें अमलतास का काथ पीना
चाहिये और कफज कोष्ठमें तो यह क्वाथ
विशेष उपयोगी होता है ।

श्वित्रकुष्ठनाशक प्रयोग ।

त्रिफलासवश्चगौडःसचित्रकः श्वित्ररोग
कुष्ठघ्नः । क्रमुकदशमूलदन्तीवराङ्गमधु
योगसंयुक्तः ॥

अर्थ—त्रिफला का आसव और गौड
(गुडकी शराव) इनको चींतेके साथ
पान करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होजाता है
अथवा सुपारी, दशमूल, दन्ती, दालचीनी
इन के काथ में शहत मिलाकर गुडके मय
के साथ पीने से श्वित्रकुष्ठ नष्ट होताहै ॥

कुष्ठपर पथ्यापथ्या ।

लघूनिचान्नानिहितानिविद्यात् कुष्ठेषु शा-
कानिचित्तकानि । भक्ष्यातकैश्विफलैः
सनिम्बैर्युक्तानिचान्नानिघृतानिचैव ॥
पुराणधान्यान्यथजङ्गलानिमांसानिमुद्रा-

श्चपटोलयुक्ताः । शस्तानगुर्वम्लपयोद-
धीनिनानूपमत्स्थानगुडास्तिलांश्च ॥

अर्थ—हलकाअन्न, तित्तकाक, भिलाया
त्रिफला और नांमके साथ सिद्ध किया हु-
आ अन्न और घृत, पुराने चाबल, जांग-
लपशुओं का मांस, मूंग, परवल ये सब कु-
ष्ठरोग पर हितकारी हैं । भारी, खटा अन्न,
दूध, दही, आनूपजोंकी का मांस, मछली, गुड
और तिल ये सब अहित हैं ।

कुष्ठपर लेप ।

एलाकुष्ठन्दावींशतपुष्पाचित्रकंविडङ्गञ्च ।
कुष्ठलेपनमिष्टरसाञ्जनश्चाभयाचैव ॥

अर्थ—इलायची, कूठ, दारुहलदी, सोंफ
चीता, कायर्विडंग, रसौत और हरड इनका
लेप कुष्ठ रोग पर करना चाहिये ।

दूसरा लेप

चित्रकपेलाविम्वीष्टपकात्रिष्टदर्कनागरक-
म् । चूर्णीकृतमष्टाहंभावयितव्यम्पलाश-
स्य ॥ क्षारणगवाम्ब्रूवधृतनेतनास्यमण्ड-
लान्याशु । भिद्यन्तेचविशन्तिचिलिप्ता-
न्यर्काभितप्तानि ॥

अर्थ....चीता, इलायची, कंदूरी, अडूसा,
निसोथ, आक और सोंठ इनका चूर्ण कर
ले फिर गौंके मूत्रमें ढाकका क्षार मिला कर
उसे छानले इस छनेहुए मूत्रकी पूर्वोक्त

चूर्णको आठ दिन तक भावना देवे, फिर
इस लेपको लगाकर सूर्यकी धूप से उस-
स्थानको तपावे, इस लेपसे मण्डल कुष्ठ व-
हुत शीघ्र भिन्न होकर विलीन हो जाता है ।

कुष्ठपर अन्य लेप ।

मांसीमरिचंलवणंरजनीतगरंमुद्गागृहोद्भू-
मः।मूत्रापित्तक्षारःपालाशःकुष्ठनुल्लेपः ॥
त्रपुसीसमयश्चूर्णमण्डलनुत्फल्गुचित्रकं
वृहती । गोधारसःसलवणंदारुचमूगश्च
मण्डलनुत् ॥ कदर्लीपलाशपाटलिनिचु-
लक्षाराम्भसाप्रसवेन । मांसेपुतोयकार्ये
कार्यमिष्टेचक्रिष्वेच ॥ तैर्मादिकःसुजातःकि-
ष्वैर्जनितमलेनशस्तम् । मण्डलकुष्ठवि-
नाशनमातृपसंस्थेक्रिमिघ्नञ्च ॥

अर्थ....जटामासी, कार्लीमिरिच, सेंधा न-
नम, हलदी, तगर, गृहधूम, मूत्र पित्त और
ढाकका खार इनका लेप करने से कुष्ठरोग
जाता रहता है । अथवा रांग, सीसा, लोहचू-
र्ण, चीता और बड़ी कटेरी इनका लेप कर-
ने से मण्डल कुष्ठरोग जाता रहता है अथ-
वा गोधारस (छताविशेष) सेंधानमक, दा-
रुहलदी और गोमूत्र इनका लेप करने से
मण्डलकुष्ठ दूर होजाता है अथवा केलो, ढा-
क, पाटला, हिज्जल इन के क्षारके शुद्ध
जल में मांसका पाक करे फिर उसी जलमें
चाबलों को पीसकर उसमें मुराकिष्व मिला
दे । यह सब मिलकर मोदक के समान गो-
लासा ब्रन जायगा फिर, इसमें से मुराकिष्व
निकालकर लेप करनेसे मण्डल कुष्ठ जाता-
रहता है और लेपित भागको धूप में तपा-
नेसे क्रिमिरोग नष्ट होजाता है ।

कुष्ठपर अन्य प्रयोग ।

मुस्तमदनं त्रिफलाकरञ्ज आरग्वधं कलि-
ङ्गयवाः । दावी सप्तपर्णा स्नानं सिद्धार्थं
कनम ॥ एकपायो वमनं विरेचनं वर्ण-
कस्तथोद्धर्पः । त्वग्दोषकुष्ठशोफप्रवाहनः
पाण्डुरोगञ्जः ॥ कुष्ठकरञ्जबीजान्येद्वगजः
कुष्ठसूदनोलेपः । प्रपुष्पाडवीजसैन्धवर-
साञ्जनकपित्थरोध्राश्च ॥ करवीरमूल
कल्कः कुटजकरञ्जयोः फलन्त्वचन्दार्व्याः
सुमनः प्रवाल युक्तोलेपः कुष्ठानहः सिद्धः ॥
रोधस्य धातकीनां वत्सकबीजस्य नक्तमा-
लस्या कल्कश्च मालतीनां कुष्ठे पृथुर्त्तनालेपः
शैरीपी त्वक्पुष्पकार्पास्या राजवृक्षपत्रा-
णि । पिष्ट्वा च काकमाची चतुर्विधः कुष्ठ-
नुलेपः ॥

अर्थ—मोथा, मेनफल, त्रिफला, कंजा
अमलतास, इन्द्रजौ, दारुहलदी, सप्तपर्ण
और सफेद सरसों इनको डालकर गरम
किये हुए जलसे स्नान करें । तथा इसी
कपायके धान करानेसे वमन और विरेचन
होकर कुष्ठ नष्ट होजाता है तथा इन्ही
द्रव्योंके कल्कसे उबटना करने पर त्वचा
के दोष, कुष्ठ, सूजन, प्रवाहन और पाण्डु-
रोग जाते रहते हैं अथवा कूठ, कंजाके धी-
ज, चकवड, इन का लेप करनेसे कुष्ठरोग
शान्त होता है । अथवा चकवडके बीज,
सैन्धानमक, और, रमौत, कैथ, लोध, कनेर
की जड़, कुडाकी छाल, कंजा, दारुहलदीकी
छाल और फल, चेमली की काँपल इनका
लेप करनेसे कुष्ठ दूर होता है ।

लोध, धायके फूल, इन्द्रजौ, कंजा और
मालती इनको पीसकर देह पर मूँठ और
लेप करें तो कुष्ठ दूर होता है । सिरसकी
छाल, कपासके फूल, अमलतासके पत्ते और
मकोय इन चार प्रकारका लेप करने से
कुष्ठ रोग दूर होजाता है ॥

सातप्रकार के कपायादि योग ॥

दाव्या रसाञ्जनस्य च निम्बपटोलस्य खदि-
रसारस्य । आरग्वधवृक्षकयोस्त्रिफलायाः
सप्तपर्णस्य । इति पदकाययोगानिर्दिष्टाः
सप्तमश्च तिनिशस्य । स्नाने पाने च मता-
स्तथाष्टमश्चास्य सारस्य ॥ आलेपनं प्रघ-
र्षणमवचूर्णनमेत एव च कपायाः । तैलघृ-
तपाकयोगे चैष्यन्ते कुष्ठशान्त्यर्थम् ॥

अर्थ—दारुहलदी और रसौतका काय
नीमकी छाल और परबलका काय, खैर
सारका काय, अमलतास और इन्द्रजौ का
काय, त्रिफलाका काय, सप्तपर्णका काय
और सातवां तिनिशका काय इन काथों
का स्नान और पानमें प्रयोग करने से कु-
ष्ठ जाता रहता है तथा तिनिशके सारका
लेप, प्रघर्षण और अवचूर्णन [बुकी] भी
हित है, इसीतरह उक्त कपायों में सिद्ध कि-
या हुआ तेल और घीभी कष्टनाशक होता है

कुष्ठपर अन्य प्रयोग ।

त्रिफलानिम्बपटोलमक्षिष्ठारोहिणीवत्त-
रनजी । एकपायोऽभ्यस्तोहिनीस्तक-
फपित्तजङ्गुष्ठम् ॥ एतैरेव च सर्पिः सिद्धं वा-
तोत्त्वणं जपति कुष्ठम् ॥ एकचकल्पो दृष्टः स्व-
दिशसनदासनम्बानाम् ॥

अर्थ—त्रिकला, नीम, परवल, मजीठ, कुटकी, वच, हलदी इनके कषायके पीने का अभ्यास करनेसे कफपित्त से उत्पन्न हुआ कुष्ठ जाना रहता है । इसी कषाय में सिद्ध किया हुआ घृत वाताधिक कुष्ठ को विजय करता है । और यही विधि खैर, असन, दाहहलदी और नीम के कषाय की है ।

अन्यप्रयोग ॥

कुष्ठार्कतुल्यकटफलमूलकवीजानिरोहिणी कटुका । कुटजफलोत्पलमुस्तंबृहतीकर वीरकाशीशम् ॥ एङ्गजनिम्बपाठादुराल भाचित्रकोविडंगश्च । तित्तेक्ष्वाकुवीजं कम्पिल्यकसर्पपत्राद्विं ॥ एतैस्तैलांसि क्षुण्णधन्यांगएषवालेपः । तन्मर्दनप्रघर्षणमवचूर्णनमेपएवेष्टः ॥

अर्थ—कूठ, आक, नीलाधोधा, कायफल, मूलीकेवीज, कुटकी, इन्द्रजौ, नीलोफर, मोथा, बडीकोटरी, कनेर, कसीस, चकवड, नीमकीछाल, पाठा, जवासा, चीता, वायविडंग, कडवीतूत्री के बीज, कवीला, सरसों, वच, दाहहलदी, इनके कषायमें सिद्ध किया हुआ तेल कुष्ठनाशक है, तथा इन्हीं द्रव्योंके कल्कका लेप, मालिश, प्रघर्षण और अवचूर्णनभी हितकारक है ॥

कनेर का तैल ॥

श्वेतकरवीरसोगोमूत्रांचित्रकोविडंगश्च कुष्ठपुतैलयोगाः सिद्धोयसम्मतोभिपजाम्

अर्थ—सफेद कनेरकारस, गोमूत्र, चीता, और वायविडंग इनमें सिद्ध किया हुआ तेल कुष्ठनाशक है इसपर सब वैद्यकी सम्मति है

अन्यप्रयोग ॥

श्वेतकरवीरपल्लवमूलत्वग्बत्सक्विडंगश्च कुष्ठार्कपुलसर्पपत्रिमुत्तरोहिणीकटुका ॥ एतैस्तैलांसि साध्यकल्कैः पादांशैर्गोमूत्रम् दत्वा तैलचतुर्गुणमभ्यङ्गः कुष्ठकंदूषः ॥

अर्थ—सफेद कनेरके पत्रे, जड़, छाल, इन्द्रजौ, वायविडंग, कूठ, आककीजड़, सरसों, सहजनेकीछाल, कूठकी छाल, कुटकी इनके कल्कमें चौगुना तेल और तेल से चौगुना गोमूत्र डालकर पकावे फिर इसकी मालिश करे तो कोढ़ और खुजली दूर होती है ॥

अन्यतैल ॥

तित्तेक्ष्वाकुवीजैस्तुथैराचनहरिद्रेद्वे । बृहतीफलमेरुण्डः सविशालः चित्रको (पूर्वा) ॥ काशीशर्दिगुशिष्ट्यूपणसुरदारुतुम्बुरुविडङ्गम् । लांगलकंकुटजत्वकटुकाख्यारोहिणीचैव ॥ सर्पपत्रकल्कैरेतैर्मूत्रैश्चतुर्गुणसाध्यम् । कण्डूकुष्ठविनाशनमभ्यङ्गान्मारुतकफघ्नम् ॥

अर्थ—कडवीतूत्रीके बीज, दो प्रकार का धोधा, गांछेचन, दोनों हलदी, कटेरीकाफल, अण्डीकीजड़, इन्द्रायणकीजड़, चीता, मरोडफली, कसीस, हींग, सहजना, त्रिकुटा, देवदारु, धनियां, वायविडंग, लांगली, कुडाकीछाल, कुटकी, और सरसों इनके कल्कमें तेल और तेल से चौगुना गोमूत्र डालकर तेलको पकाले इस तैलका मर्दन करनेसे खुजली, कोढ़, वात और कफ नष्ट होजाते हैं ॥

कनकक्षीरतैल ॥

कनकक्षीरीशैलाभागीदन्तीफलानिमूल
श्च । जातीफलानिप्रवालसर्पपलभुनवि
डङ्गकरञ्जत्वक् ॥ समच्छदार्कपल्लवमू
लत्वद्निम्बाचित्रकास्फीताः । गुञ्जैरण्ड
बृहतीमूलकसुरसार्जकफलानि ॥ कुण्डपा
ठामुस्तंतुम्बुरुमूर्वाचिसपटग्रन्था ॥ एड
गजकदुजशिशुभ्युपणभल्लातकसवकाः ॥
हरितालमवावपुष्पीतुत्यकम्पिलकोमृता
संगः ॥ सौराष्ट्रीकासीसंदर्बीत्वक्स
जिकालवणम् ॥ कलकैरैतैस्तैलकरवीर
कमूलपल्लवकपाये । सार्धपमथवातैलं
गोमूत्रेचतुर्गुणेषाध्यम् ॥ स्थाप्यंकडुका
लावुनिसिद्धंतेनास्यमण्डलान्वाशु । भि
न्वाद्रिपगभ्यंगास्त्रिमीश्चकण्टूचिनिह
न्यात्कुष्ठम् ॥

अर्थ—स्वर्णक्षीरी, मनासिल, भाङ्गी, द-
न्तीफल, दन्तमूल, जायफल, चमेली के
पत्ते, सफेदसरसों, लहसन, वायविडंग, कंजा
कीछाल, सप्तपर्णी, आकके पत्ते, जड और
छाल, नीमकीछाल, चीता, कोयल, चिरमठी,
आण्ड, बडीकटेरी, मूलक, सुरसालुसी,
अर्जकतुलसी, मैनफल, कूठ, पाठा, मोथा,
धनियाँ, मूरी पटग्रन्था, वच, चकवड,
कुडा, सहजना, त्रिकुटा, भिलाया, क्षवक,
(तुलसीभेद), हरताल, सोंफ, नांलाधोथा,
कबीला, अमृतासंग (मुर्दासिंग), सौराष्ट्र-
देशकी मिट्टी, सीसा, दारुहलदीकीछाल, स-
जीखार, संधानमक, इनकेकल्क तथा कने-
रकाजड और पत्तों के कपायमें सरसोंकातैल

और उसमें चौगुना गोमूत्र डालकर तैल
सिद्धकरे, इस तैलको तूथीमें भरकर रखदेवे
इस तैलके लगानेसे मण्डलकुष्ठ, किमिरोग
कण्डू तथा सब प्रकारके कुष्ठ दूर होजातेहैं ।

सिध्मलेप ॥

कुण्टतमालपत्रंमरिचंसमनःशिलंसकाशी-
शम् । तैलेनयुक्तमुचितंसप्ताहंभाजनेताप्रे ॥
तेनालिप्तंसिध्मसप्ताहाद्वेयातितिष्ठतोद्यमौ
मासान्नरं किलासस्नानंमुक्त्वा विशुद्ध
तनोः ॥

अर्थ—बूठ, तमाखूकापत्ता, कालीमिरच,
मनसिल, कमीस इन सबका चूर्णबनाकर ते-
लमें सानकर सात दिवसतक तांबेके पात्रमें
रखदेवे, फिर इसको लगाकर घूमें बैठजा-
या करे, ऐसा करनेसे सिध्मकुष्ठ जातारहताहै ।
तथा शुद्धदेहवाला मनुष्य इसको एक मही-
नेतक लगावे तो किलास बुण्ड जातारहता-
हैं परन्तु इसमें स्नानका निषेधहै ॥

अन्य तैल ।

सर्पपकरञ्जकोशातकीनातैलान्यथेगुदी
नाश्च ॥ कुष्ठेषुहितान्याहुस्तैलयच्चापिख-
दिरस्यतैलानि ।

अर्थ—सरसों, कंजा, तारुके बीज, गो-
दी और खैर इन सबके जुदे जुदे तैल कु-
ष्ठनाशक होतेहैं ।

विपादिकी की चिकित्सा ।

जीवन्तीमञ्जिष्ठादार्वाकाम्पिलकस्तथातु-
त्यम् ॥ एषवृततैलपाकःसिद्धःसिद्धेचस
र्जरसःक्षेप्यः । समधूच्छिष्टोविपादिकाते
नशाम्यतीत्युक्तम् । चर्मैककुष्ठ किटिमंकु-
ष्ठशान्यतैलसकञ्च ।

अर्थ—जीवन्ती, मजीठ, दारुहलदी, क-
बीला, नीलाधोधा, इनमें घृत और तेलको
एक साथ पकावै फिर पकतेसमय राख औ-
र मोम डालदे इसको विद्यामे भरदेनेसे वि-
वाई जाती रहतीहै, तथा चर्मकुष्ठ एक कु-
ष्ठ किटिप, कुष्ठ, और अलसक ये नष्ट
होजातेहैं ।

मण्डल कुष्ठपरलेप ।

किष्कंधराहृदिरिपृथ्वीकासैध्वञ्चलेपः
स्पात् ॥ लेपोयोज्यःकुस्तुम्बुरुणिकुष्ठ
श्चमण्डलनुत् । पूर्तीकादारुजटिलापक्व
सुराक्षौद्रमुद्रपर्णीच ॥ लेपःसकाकणा
सोमण्डलकुष्ठापहःसिद्धः ॥

अर्थ—सुराजीज, सूअरका रुधिर, काला
जीरा, संधानमक इनका लेप तथा इसमें ध-
निपां और कूठ मिलाकर लेप करनेसे म-
ण्डल कुष्ठ दूर होजाताहै । अथवा कंजा दे-
वदारु, जटामांसी पकमय, शहत, मुद्रपर्णी
और काकनासा इनका लेप करने से भी
मण्डल कुष्ठ नष्ट होताहै ।

छःप्रकार के लेप

चित्रकशोभाञ्जनकौमुद्वृच्यपामार्गदेवदा
रुणि ॥ खदिरोधवश्चलेपःश्यामादन्तीद्र-
वन्तीच । लाक्षारसाञ्जनैलापुनर्नवाचे-
तिकुष्ठिनोलेपाः ॥ दधिमण्डयुताःसर्वेदे-
याःपण्मास्तकफन्नाः ।

अर्थ—चीता और सहजना । गिलोय,
ओगा, देवदार । खैर और धवखैर । श्यामा-
दन्ती और द्रवन्ती । लाय, रसोत और
श्यायची । तथा पुनर्नवा । इन छः ओंको

पृथक् पृथक् दधिमण्डमें मिश्रकर लेप क-
रनेसे कुष्ठ तथा वातकफ दूर होतेहैं ।

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरकसर्पपैक्रिमिध्नैश्च
क्रिमिकुष्ठमण्डलाख्यंदद्रुकुष्ठश्चशममुपैति ।
एडगजःसर्जरमोमूलकवीजश्चसिध्मकुष्ठा
नाम् ॥ काञ्जिकयुक्तन्तुपृथक्पतमिदमुद्रर्त्त

नंक्रमशोलेपाः ॥

अर्थ....चकवड, कूठ, संधानमक, सौवी-
रक, सरसों और वायविडंग इनका लेप क-
रनेसे क्रिमि, कुष्ठ, मण्डलकुष्ठ और दाद
जाते रहतेहैं । अथवा चकवड, राख, मूली
के बीज इनको पृथक् पृथक् कांजीमें पीस
कर उबटना और लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ
जाता रहताहै ।

अन्यप्रयोग ।

वासात्रिफलापानेस्नानेचोद्वर्त्तनेमलेपेच
वृहतीसेव्यपटोलाःसशारिवारोहिणीचैव
खदिरावघातककुभारोहीतककुटजधव
निम्बाः ॥ सप्तच्छदकरवीराशस्यन्ते
स्नानेपानेषु ॥

अर्थ....अडूसा और त्रिफला इनको पीने
स्नान करने, उबटने और लेपमें प्रयुक्त क-
रना चाहिये अथवा बड़ी फटेरी, खस,
परवल, सारिका, फुटकी, खैरसार, अर्जुन, रो
हेडा, कुडा, धी, नीम, सप्तपर्ण, फनेर इनका
स्नान वा पीनेमें प्रयोग करना चाहिये ।

अभ्यंग प्रयोग ।

जलवाप्यलोहकेशरपत्रप्लवचन्दनमृणा-
लानि ॥ भांगोत्तराणिसिद्धमलेपनपि
चकफकुष्ठे । यष्ट्याद्वरोधपक्वकपटोल

पिचुमर्दचन्दनरसाश्च ॥ स्नानेपानेच
हिताःशुशीतलाःपित्तकुष्ठेभ्यः । आले
पनप्रियंगुहरेणुकावत्सकस्यचफलानि ॥
सातिविपाचसेव्यासचन्दनारोहिणीक-
डुका । तित्तघृतैर्धौतघृतैरभ्यङ्गोदण्णान
कुष्ठेषु ॥ तैलैश्चन्दनमधुकप्रपुण्डरीकोत्प-
लयुतैश्चाभ्यङ्गः ।

अर्थ—नेत्रवाला, कुडा, लोहचूर्ण, केसर-
तेजपात, केवटी मोथा, रक्तचन्दन, कमल
नाल, इनका उत्तरोत्तर एक एक भाग
आधिक लेकर पित्तकफ कुष्ठमें लेप करना
चाहिये (नेत्रवाला एक भाग, कुडा दोभाग,
लोहचूर्ण तीन भाग, इसी तरह और भी) ।
अथवा मुलहटी, लोध, पन्नाख, परबल, नीम
और रक्तचन्दन इनका ठंडा काथ स्नान
और पीनेमें देनेसे पित्तकुष्ठियोंको हित है ।
अथवा प्रियंगु, हरेणु, इन्द्रजौ, अतास, खस,
रक्तचन्दन, कुटकी इन द्रव्योंका लेप अथवा
तित्त औषधियों से सिद्ध कियाहुआ घी
अथवा शतधौत वा सहस्रधौत घृत का लेप
करनेसे दाहयुक्त कुष्ठ शान्त होताहै । इसी
तरह रक्तचन्दन, मुलहटी पुण्डरिया और
नीलोफर इनसे सिद्ध किये हुए तैलका म-
र्दनभी दाहयुक्त कुष्ठ में हितहै ॥

घृतप्रयोग ॥

क्षेदेप्रयततिचांगेदाहे विस्फोटकेसर्च-
दले ॥ शीताःप्रदेहसेकाव्यधनविरेचकौ
घृतंतित्तम् । खदिरघृतंनिम्बघृतंदावीं
घृतमुत्तमपटोलघृतम् ॥ कुष्ठेपुरक्तपित्त
प्रबलेषुभिपग्निजतांसिद्धम् ।

अर्थ—कुष्ठमें केलद हानेसे, अथवा किसी
अङ्गे गिरपड़नेसे, विस्फोटक वा चर्मदल
में शीतल लेप, सेक तथा शिराध्यधन, वि-
रेचन, तित्तघृत, खदिरघृत, निम्बघृत, दा-
वींघृत और पटोलघृत उत्तम होते हैं । ये-
ही प्रयोग उस कुष्ठमें हितकर हैं जिनमें
रक्तपित्त प्रबल होते हैं ॥

अन्यप्रयोग ।

त्रिफलात्वचोर्द्धपलिकाः पटोलपत्रञ्च
कार्पिकाःशेषाः ॥ कटुरोहिणीसनिम्बा
यष्ट्याद्वात्रायमाणाच । एकपायःसा
ध्योदत्त्वादिपलमसूराणाम् ॥ सलिलाद-
केऽष्टभागेशेषेपूतोरसोग्राह्यःतिचकपाया
ष्टपलंचतुष्पलसर्पिषथपक्तव्यम् ॥ याव-
त्स्यादष्टपलशेषेपेयंततःकोष्णम् । तद्वात
पित्तकुष्ठंवीसर्पवातशोणितंप्रबलम् ॥ ज्व-
रदाहगुल्मत्रिद्राधिविभ्रमाविस्फोटकान्
हन्ति ॥

अर्थ—त्रिफला की त्वचा आधेपल, पटो-
लपत्र आधेपल और शेष कुटकी, नीम मु-
लहटी, त्रायमाणा ये एक २ कर्प लेवै तथा
दो पल मसूर मिलाकर एक आढक जल
में इनका काथ करै जब आठवांभाग शेष
रहजाय तब छानलेवै । इस काथमेंसे आठ
पल लेकर चारपल घृत के साथ पकावै
जब आठपल शेष रहजाय तब गुनगुना गं-
रम पीले इसके पान करनेसे वातपित्तजन्य
कुष्ठ, विसर्प, प्रबल वातरक्त, ज्वर, दाह,
गुल्म, विद्रधि, विभ्रम और विस्फोटक स-
ब दूर होजाते हैं ॥

पटपलघृत ॥

निम्बपटोलेदार्वीन्दुरालभातित्करोहिणी
त्रिफलम् ॥ कुर्यादर्द्धपलांशं पर्पटकत्राय
माणाश्च । सलिलाढकासिद्धानां रसेऽष्ट-
भागस्थितेक्षिपेत्पूते ॥ चन्दनकिरा-
ततित्कमागधिकात्रायमाणाश्च ।
मुस्तं वत्सकवीजं कल्कीकृत्वा र्द्धकार्षिकान्
भागान् ॥ नयसर्पिषश्च पटपलमेतत्सि-
द्धं घृतं पेयम् । कुष्ठज्वरगुल्माशौग्रहणीपा-
ण्ड्वामयभयधुहारि ॥ वीसर्पपिण्डक
पामाकण्डूमदगण्डनुत्तितम् ।

अर्थ—नीम, परवल, दारुहल्दी, जवा-
सा, कुटकी, त्रिफला, पित्तपापडा और त्राय-
माणा इनको आधे २ पल लेकर एक आ-
ढक जलमें चढादे जब आठवां भाग शेष
रहजाय तब उतारकर छान लेंगे । फिर इस
में रक्तचन्दन, चिरायता, पीपल, त्रायमाणा,
मोथा, इन्द्रजौ इनको आधे २ कर्ष लेकर
घोटडाँले और ताजी घी छः पल मिलाकर
सिद्धकरके इस घृतको पानकरें तौ कुष्ठ,
ज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, पाण्डुरोग, सूजन,
विसर्प, पिडका, पामा, कण्डू, मद तथा ग-
लगण्ड दूरहोजाते हैं ॥

महातिक्तघृत ॥

सप्तच्छदं प्रतिविपंशम्पाकं तित्करोहिणीपा-
ठम् ॥ मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमदं
पर्पटकम् । धन्वयवाशं चन्दनमुपकुल्यां प-
त्रकरं जन्धौच ॥ पद्मग्रन्थांसविशालां श-
तावरीं शारिवेचोभे । वत्सकवीजं वासां
मूर्वा ममृतं किराततित्कञ्च ॥ कल्कान्

कुर्यान्मतिमान् यष्ट्या हवां त्रायमाणा
श्च । कल्कस्य चतुर्भागे जलमष्टगुणं रसोऽ-
मृतफलानाम् ॥ द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्त-
त्सर्पिपाययेत्सिद्धम् । कुष्ठानिरक्तपित्त
प्रबलान्यशौसिरक्तवाहीनि ॥ वीसर्प रक्त
पित्तं वातामृक्पाण्डुरोगञ्च । विस्फोट
कान्सपामानुन्मादं कामलां ज्वरं कण्डूम् ॥
हृद्रोगं गुल्मपिडका असृग्दरगण्डमालाञ्च
हन्यादेतत्सर्पिः पीतं कालेयथावलंसद्यः ॥
योगशतेरप्यजितान्महाविकारान्महाति-
क्तम् ।

अर्थ—सप्तपर्ण, अतीस, अमलतास, कु-
टकी, पाठा, मोथा, खस, त्रिफला, परवल,
नीम, पित्तपापडा, जवासा, रक्तचन्दन, पी-
पल, पन्नाख, दौनौहल्दी, बच, इन्द्रायण
की जड़, सितावर, दोनों प्रकारके सारिवा,
इन्द्रजौ, अडूसा, मरोडफली, मिलाय, चि-
रायता, मुलहठी और त्रायमाणा इनका
कल्क करें, इसका चौथाई घृत, घृत से अष्ट-
गुना जड़, घृत से दूना आंवलेका रस इन
में सिद्ध किया हुआ घृतपान करावे । इस
घृतके पान करने से रक्तपित्ताधिक्य कुष्ठ,
खूर्नाववासीर, विसर्प, रक्तपित्त, वातरक्त, पा-
ण्डुरोग, विस्फोटक, पामा, उन्माद, का-
मला, ज्वर, कण्डू, हृद्रोग, गुल्म, पिडका,
रक्तप्रदर और गण्डमालारोग शांति हो
जाते हैं, यदि यह व्रतके अनुसार उचि-
तकालमें पान किया जाय तौ जो रोग स-
कड़ों योगों से भी अच्छे नहीं हुए हैं वे इस
महातिक्तघृत से शांति जाते रहते हैं ॥

दोषेहतेपनीतिरक्तेवाह्यन्तरेकृतेक्षमने। स्ने-
हेचकालयुक्तेनकुष्ठमनुवर्त्ततेसाध्यम् ॥

अर्थ—दोषोंके दूर होनेपर, फस्त से वि-
गडेहुएरक्तके निकलने पर, बाह्य और आ-
न्तरिक क्षमन होने से, तथा उचितकालमें
स्नेह प्रयोगसे जो साध्यकुष्ठ शान्त होजाता
है वह फिर उत्पन्न नहीं होताहै ।

महाखदिरघृत ।

खदिरस्यतुलाः पञ्चशिक्षाशणयोस्तुले।
तुलार्द्धासर्वैष्वेतेकरञ्जारिष्ट्वेतसाः । प-
र्षटःकुटजश्चैववृषःकुम्भिहरस्तथा । हारि-
द्रोकृतमालश्चगुडूचीत्रिफलात्रिष्टु । सप्त-
पर्णश्चसल्लुण्णादशद्रोणेपुवारिणः । धा-
त्रीरसंचतुल्यांशसार्पिषश्चाढकंपचेत् ॥
अष्टभागावशेषस्तुक्पायमवतारयेत् ।
महातिक्तककैस्तुयथाकैःपलसीम्भतैः॥
निहान्तिसर्वकुष्ठानिपानाभ्यङ्गानिसेवना-
त्।महाखदिरमित्येतत्परंकुष्ठविकारमुत्॥

अर्थ—खैरनीलकडी पांच तुला, शीशम और
असन एक एक तुला: कंजा, नीम की छाल, वेत,
पितपापडा, कुडा, अडूसा, वाय विडंग, द्रोनों हलदी
अलतास, गिलोय, त्रिफला, निसोथ, सप्तपर्णी। ये
सब कुटीहुई आधे तुला दशद्रोण जलमें चढ़ा
देवै, जब अष्टमांश शेष रहजाय तब उतारकर
छान लेवै फिर इसमें इसकेबराबर आंवले का
रस और एक आढक घृत तथा महातिक्त
घृतमें कहे हुए एक-एक पल सब द्रव्य ले-
कर उसमें ढालकर पाक करै । इस घृतका
पान और अभ्यंगमें सेवन करनेसे सब
प्रकारके कुष्ठ दूर होजातेहैं, यह महा खदिर
घृत अत्यन्त कुष्ठनाशक होताहै ।

क्रिमिनाशकप्रयोग ।

प्रपत्तसुलसीकामस्युतेपुगात्रेपुजन्तुदग्धेषु॥
मूर्धनिम्वविडङ्गेस्नानं पानं प्रदेहथ । वृष-
कुटजसप्तपर्णाः करवीरकरञ्जानि म्वाथ ॥
स्नाने पाने लेपे क्रिमिकुष्ठनुदः मगो मूत्रा ॥
पानाहारविधाने प्रसेचने धूपने प्रदेहे च ॥
क्रिमिनाशनं विडंगं विशिष्यते कुष्ठहृत्खदिरः

अर्थ—जो कोई अंगादयव गलकर गिर
पडा हो, शरीरमें से लसीका निकलती
हो वा फोड़े पड़ गयेहों तो गोमूत्र, वाय-
त्रि ग और नीम इनको पृथक् २ वा मिश्र
कर काथ करके पीने वा स्नान करने में
प्रयुक्त करै अथवा लेपकरै । अथवा अडूसा
कुडा, सप्तपर्णी, कनेर, कंजा, नीम, इन को
गोमूत्र में सिद्ध करके स्नान, पान और
लेपमें प्रयुक्त करनेसे क्रिमिकुष्ठ जाना रहताहै
खाने, पीने प्रसेक, धूपन और प्रदेह में
प्रयोग किये जानेसे वायविडंग और खैर
विशेष करके कुष्ठनाशक होते हैं

अन्य प्रयोग ।

एडगजः सविडंगो मूलान्यारग्वधस्य कुष्ठा-
नाम् । उद्दालनं श्वदन्तागो श्वदराहो प्लु-
न्तादच ॥ एडगजः सविडंगोरजनी द्वयसा-
जवृक्षमूलञ्च । कुष्ठोद्दालनमयसपिप्पली
पाकलं योज्यम् ॥

अर्थ—चकवड, वायविडंग, अमन्तासकी
जड़ तथा कुत्ता, गो, घोडा, सूअर और ऊं-
ट इन के दांतों को घिसकर कुष्ठपर उबटना
करै । अथवा चकवडके बीज, वायविडंग,
हलदी, दाहहलदी, अमन्तास की जड़,
पीपठ और पाटला इनका भी उबटना करै।

शिवत्रकुष्ठपर प्रयोग ।

शिवत्राणां प्रशमार्थं प्रयोक्तव्यं सर्वतो विभु
द्धानाम् । शिवत्रे संसनमग्न्यमलपूरसङ्घ्य
तेसगुडः ॥ तं पीत्वा सुस्निग्धो यथा वल्लभः स
र्यपादसन्तापम् । सेवेत विरिक्तश्च यद्दं
पिपासुः पिबेत् पेयम् ॥ शिवत्रेऽङ्गे ये स्फोटा
जायन्ते कण्टकेन ताभिन्द्यात् । स्फोटेषु वि
स्रुतेषु प्रातः प्रातः पिबेत् पक्वम् ॥ मलपूषणं
त्रिंशुशतपुष्पां चाम्भसा समुत्कवाथ्य ।
पालाशं वा क्षारं यथा वल्लभाणि तोषेत् ॥
यच्चान्यत्कुष्ठं शिवत्राणां सर्वमेव तच्छ-
स्तम् । खांदरोदकसंयुक्तं खदिरोदकपान
मग्न्यं वा ॥ समनः शिलं विडंगकासीसरो
चनां कनकपुष्पोम् । शिवत्राणां प्रशमार्थं स
सैन्धवं लेपनं दद्यात् ॥

अर्थ—शिवत्रकुष्ठियों के लिये संशोधनादिसे
शुद्ध करके औषधदेवै ॥ शिवत्रकुष्ठमें कटूम-
रका रस और गुड मिलाकर विरेचन देना
अत्यन्त हितकारी है । इस रसको पीकर
देहपर कुष्ठनाशक तैलका मर्दन करावे
और फिर जितना सहसकै उतनी देर धूप
में बैठे । विरेचन के पीछे प्यास लगने पर
तीन दिन तक केवल पेयाका पान करे ।

शिवत्रकुष्ठ में जो फुत्सियां हो जाती हैं
उन्हें कांटों से वेध डालै, जब उनमें से सब
पीव निकल जाय तब प्रतिदिन प्रातःकाल
कटूमर, अशन, प्रियंगु और सौंफका क्वाथ
पीवे ॥ अथवा ठाकके क्षारको बलके अनु
क्षार गुडकी राख के साथ पान करावे ॥

अथवा जो और २ कुष्ठनाशक प्रयोग वर्ण-

न किये गये हैं वे भी सब शिवत्रकुष्ठ में
उपयोगी होते हैं विशेष करके खैर के जल
के साथ लेप वा खैर के क्वाथादिक का पान
करना इस रोग में अत्यन्त हितकारक है ।
इस रोग में मनसिल, वायाविडंग, कसीस,
गोरोचन, अमलतास और संधानमक इनका
लेप करने से शिवत्रकुष्ठ जाता रहता है ॥

कुष्ठपर अन्यलेप ॥

कदलीक्षारयुतं वा खदिरास्थिदग्धं गवां रुधि-
रयुक्तम् । हस्तिमदाध्यापितं वामालत्याः
क्षारकक्षारम् ॥ नीलोत्पलं सकुष्ठं ससेन्ध-
वं हस्तिमूत्रपिष्टं वा । मूलकबीजो वल्गुज
लेपः पिष्टो गवां मूत्रे ॥ काके दुग्धविरिका वा
स वल्गुजचित्रकौ गवां मूत्रे । पिष्टा मनः
शिलावासंयुक्ता वा हि पिप्तेन ॥ किलासह-
न्तामूलान्या वल्गुजानिलाक्षा च । गोपि-
त्तमञ्जने द्वे पिप्पल्यः काललोहरजः ॥

अर्थ—केलाका खार वा खैरकी लकड़ी
का खार गौ के रुधिरमें मिलाकर लगावे अ-
थवा मालता के खारको हाथों के मदे के जल
में मिलाकर लगावे, अथवा नीलोफर, कूठ,
संधानमक इनको हाथों के मूत्रमें पीसकर अ-
थवा मूत्रों के बीज और वल्गुजा के बीजका
गोमूत्रमें पीसकर लेप करने से शिवत्रकुष्ठ
दूर होता है । अथवा कटूमर, अहूसा, व-
ल्गुजा, चीता इनको गौ के मूत्रमें पीसकर
लेप करे अथवा मनसिलको मोर के पित्ते
में पीसकर लेप करे ॥

वल्गुजा कांजड, लाख, गौका पित्ता, अ-
ञ्जन रसौन, पंपल और कांजिलोदका दू-

र्ण इनका लेप किलासको दूर करता है ।

शुद्धयाशोणितमोक्षैः विरुक्षणैर्भक्षणैश्च शक्नु-
नाम् ॥ श्वित्रकुष्ठस्य चिदेवमशाम्यति क्षी-
पापापस्य ॥

अर्थ— किसी किसी मनुष्य का जिसके
पाप क्षीण होगये हैं श्वित्रकुष्ठ, संशोधन, रक्त-
मोक्षण, विरुक्षण, तथा सत्तूके सेवन से ही
जाना रहता है ।

श्वित्रकुष्ठके भेद ।

दारुणं वारुणं श्वित्रं किलासं नाम भिस्त्रिभिः
विज्ञेयं त्रिविधं तच्च त्रिदोषं प्रायशश्च तत् ॥
दोषैरक्ताश्रितैरक्तां ताम्रमांससमाश्रितैः
श्वेतमेदःश्रितैश्चित्रगुरुतच्चोत्तरोत्तरम् ॥

अर्थ— श्वित्रकुष्ठ प्रायः दारुण, अरुण, और
किलास इन तीन प्रकार का होजाता है तथा
यह कुष्ठ त्रिदोषाश्रित होता है दोष जब रक्ता-
श्रित होते हैं तब श्वित्रका वर्ण लाल होता है, मां-
साश्रित होने पर उसका वर्ण सफेद होता है,
तीनों प्रकारके श्वित्रोंमें लालसे ताम्रवर्ण और
ताम्रवर्णसे श्वेतवर्ण कठिन साध्य होता है ।

श्वित्रको असाध्यत्व ।

यत्परस्परतोभिर्ग्रहयुतकलोमवत् । य-
च्च वर्षगणोत्पन्नं तच्चिच्छ्वन्नैव सिद्ध्यति ॥

अर्थ— जो दूसरीसे मिली हुई नहीं होती,
है, जिसका रंग अधिक लाल होता है जिस
में बहुत रोम होते हैं और जो बहुत पुरानी
होजाती है वह श्वित्रकुष्ठ असाध्य होता है ।

श्वित्रकुष्ठकी उत्पत्तिका हेतु ।

वचांस्यतथ्यानिकृतं ज्ञमात्रो निंदासुरा-
णां गुरुर्षणश्च । पापक्रियापूर्वकृतञ्च कर्म
हेतुः किलासस्य विरोधि चान्नम् ॥

अर्थ— मिथ्याभाषण, कृतघ्नता, देवताओं
की निन्दा, गुरुजनोंका अपमान, इस जन्म
के पाप, पूर्व जन्मके कर्म, तथा विरुद्ध भो-
जनका सेवन, इन सब कारणोंसे किलास
कुष्ठ उत्पन्न होता है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

भवन्ति चात्र ।

हेतुर्द्रव्योलिङ्गं समासतो दोषनिर्देशात् ।
साध्यासाध्यं कृच्छ्रं कुष्ठप्रापहाथ्ये योगाः ॥
सिद्धाः किलासहेतुर्लिङ्गं गुरुलाघवं शांतिः ।
इति संग्रहः प्रणीतो महर्षिणा कुष्ठनाशनेऽ-
ध्याये ॥ स्मृतिबुद्धिर्वर्द्धनार्थं शिष्याय ह-
ताश्वेशाय ।

अर्थ— इस कुष्ठ चिकित्सित नामक अ-
ध्यायमें महर्षि पुनर्वसुने कुष्ठ रोगोंके हेतु,
द्रव्य लक्षण, दोषोंका साक्षित वर्णन, साध्य
असाध्य और कृच्छ्रसाध्यके लक्षण, कुष्ठना-
शक अनुभव किये हुए प्रयोग, किलासके
हेतु, लक्षण, भारापन, हलकापन शमनो-
पाय, अपने शिष्य अग्निवेशका स्मरणशक्ति
और बुद्धि वढ़ानेके निमित्त वर्णन किये हैं ।
इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश-
विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहि-
तायां चिकित्सितस्थाने कुष्ठचिकि-
त्सितं नाम सप्तमोऽध्यायः । ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोरायजक्ष्मचिकित्सितं व्याख्यास्या

मइतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम 'रायजक्ष्मचिकित्सितनामक', अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

रायजक्ष्मा के विषयमें प्राचीन इतिहास दिवौकसांकथयतामृषिभिर्वैश्वताकथा ।

कामव्यसनसंयुक्तापौराणीशशिनंप्रति ॥

रोहिण्यामतिसक्तस्यशरीरंनानुरक्षतः ।

आजगामाल्पतामिन्दोर्देहःस्नेहपरिस्स्यात् ॥ दुहितृणामसम्भोगाच्छेषाणाञ्च-

प्रजापतेः । क्रोधोनिःश्वासरूपेणमूर्तिगा-

न्निःसृतोमुखात् ॥ प्रजापतेर्हिदुहितुरष्टा-

विंशतिरंशुमान् । भार्यार्थप्रतिजग्राहन-

चसर्वास्ववर्तत ॥ गुरुणातमवध्यातंभायां

स्वसमवर्तिनम् । रजोऽन्धमवलं दीनंयक्ष्मा

शशिनमाविशत् ॥

अर्थ—चन्द्रमा के विषयमें कामव्यसनसे

मरीडुई एक पौराणिककथा ऋषियोंने देव-

ताओंसे सुनी कि चन्द्रमा रोहिणी पर अ-

त्यन्त आसक्तथा अतएव उसने अपने श-

रीरके स्वास्थ्यपर कुछ ध्यान नहीं दिया इससे

स्निग्धताके अत्यन्त क्षीणहोनेपर उसका दे-

ह अत्यन्त कृश होगयाथा, चन्द्रमाका रोहि-

णी पर अत्यन्त प्यारथा इससे दक्षप्रजापति

की शेष कन्या चन्द्रमाके सम्भोगसुख से

थाव्यथी, यह व्यवस्था सुनकर दक्षके मु-

खसे श्वासद्वारा क्रोध मूर्तिमान प्रकटहुआ

दक्षकी अट्टाईस कन्या चन्द्रमाको व्याही-

गईथी परन्तु उसका वर्त्ताव सबके साथ ए-
कसा नथा और रोहिणीने अतिरिक्त किसी
अन्य के पास नहीं जाताथा ॥

चन्द्रमा रजोगुणसे अन्धा होकर अपनी
भार्याओं में असम व्यवहार रखता था
इससे दक्षके शापके कारण यक्ष्माने उसमें
प्रवेश किया और इस रोगसे वह अत्यन्त
दीन हीन होगयाथा ।

चन्द्रमाकी क्षमाप्रार्थना ।

सोऽभिभूतोऽतिगुरुणागुरुक्रोधेननिष्प्रभः

देवदेवर्षिसहितोजगामशरणंगुरुम् ॥ अथ

चन्द्रमसःशुद्धामर्तिबुध्वाप्रजापतिः । प्रसा-

दंक्रुतवान्सोमस्ततोऽश्विभ्यांचिकित्सितः

सविमुक्तग्रहश्चन्द्रोविररान्विशंपतः ॥

तेजसावर्द्धितोऽश्विभ्यांशुद्धंसत्त्वमवापचा

अर्थ....वह अपने श्वशुरके भारी क्रोधसे

आभिहत होकर कान्तिहीन होगयाथा तब

देवता और देवर्षियोंको साथ लेकर अपने

श्वशुरकी शरण गया, तदनन्तर जब प्रजा-

पतिने देखा कि चन्द्रमाकी बुद्धि शुद्ध होग-

ई है तब वह प्रसन्न हुआ और अपने शि-

ष्य अश्विनीकुमारको आज्ञादी तब उन्होंने

चन्द्रमा की चिकित्साकी । चन्द्रमा प्रहसुक्त

होकर पहिलेसे भी अत्यन्त कान्तियुक्त होग-

या और अश्विनीकुमारके द्वारा तेजके वद-

जानेसे अत्यन्त शुद्ध सत्वको प्राप्तहुआ ।

यक्ष्माके पर्यायवाचीशब्द ।

क्रोधोयक्ष्माज्वरारोगोऽर्थोदुःखसंश्लि-

तः । यस्मात्सराज्ञःप्रागासीद्राजयक्ष्मा

ततोमतः ॥

भेद । त्रिदोषजन्य, यक्ष्मामे क्रमसे ये उपद्रव होते हैं ॥

इसतरह व्याधियों के समूहोंसे युक्त रोगों के राजा राजयक्ष्माके उत्पन्न होनेके चार हेतु और प्रत्येक हेतुके ग्यारह ग्यारह उपद्रव वर्णन किये गये हैं ॥

राजयक्ष्मा के पूर्वरूप ।

पूर्वरूपमतिशयायोर्दोर्वल्यदोषदर्शनम् ।
अदोषेष्वपि भावेपुकायेवीभत्सदर्शनम् ॥
घृणित्वमश्नतश्चापि बलमांसपरिक्षयः ।
स्त्रीमथमांसमियतामियताचावगुण्ठने ॥
भक्षिकाघुणकेशानांतृणानांपतनानिच ।
प्रायोन्नपानेकेशानान्खानाञ्चाभिवर्द्धनम् ।
पतत्रिभिः पतंगैश्चश्वापदैश्चाभिवर्षणम् ॥
स्वप्नेकेशास्थिराशीनां भस्मनश्चाधिरोहणम् ।
जलाशयानां शैलानां वनानां ज्योतिषामपि ॥
शुष्यतां क्षीयमाणानां पततां यद्दर्शनम् ।
प्राग्रूपं बहुरूपस्य तज्ज्ञेयं राजयक्ष्मणः ॥ रूपं त्वस्य यथोद्देशं परं शृणु संभेदजम् ।

अर्थ—इस रोगमें सबसे पहिले प्रतिश्याय होता है, तत्पश्चात् क्रम से दुर्बलता, अदोष भावों में दोषदर्शन, शरीर में भयानक पन, घृणोत्पत्ति, भोजन करते करते भी बल और मांसकी क्षीणता, स्त्रीप्रियता, (स्त्रियोंका अच्छा लगना) मद्यमांसमें स्पृहा, एकान्तवासकी इच्छा, प्रायः अन्नपान में मत्सी, घुन केश और तृणों का गिरना; केश और नखोंका बहुत बढना; स्वप्नमें पक्षी पतंग और गोहादिते

अभिधर्षण, स्वप्नमें केश, हड्डी और भस्म के ढेरपर चढना; सूखेहुए जलाशय, क्षीण होते हुए पर्वत और वन, तथा गिरते हुए तारागणोंका देखना; ये सब बहुरूपिया राजयक्ष्मामें पूर्वरूप हैं ।

अब राजयक्ष्माके लक्षणानुसार औषधों के वर्णनको सुनो ॥

राजयक्ष्मा में पुरीपरक्षा ।

यथास्वेनोष्मणापाकं शरीरायान्तिधातवः ॥ स्रोतसाचयथास्वेनधातुः पुष्पति धातुना । स्रोतसां सन्निरोधाच्च रक्तादीनाञ्च संज्ञयात् ॥ धातुष्मणां चापचयाद्राजयक्ष्मा भवति । तस्मिन्काले पचत्यग्निर्घृदन्नकोष्ठमाश्रितम् ॥ मलीभवति तत्प्रायः कल्पते किञ्चिदोजसे । तस्मात्पुरीपं संरक्ष्यं दिशेपाद्राजयक्ष्मणः ॥ सर्वधातुक्षयार्तिस्त्वलंतस्याहि विह्वलम् ॥

अर्थ—जैसे अपनी २ ऊष्मासे शरीरकी सम्पूर्ण धातु पाकको प्राप्त होती है, इसी तरह अपने अपने स्रोतोंके योग से धातु धातुद्वारा पुष्ट होते हैं । इसलिये स्रोतोंके रकने से, रक्तादिक धातुओंकी क्षीण होनेसे तथा धातुओंकी ऊष्माके नष्ट होनेसे राजयक्ष्माकी उत्पत्ति होती है उससमय अग्नि कोष्ठस्थ जिस अन्नको पचाती है वह प्रायः मल बन जाता है और उसका बहुत थोड़ा भाग ओजमें परिवर्तित होता है इसी हेतुसे राजयक्ष्मा रोगोंके मलकी विशेष करके रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि सम्पूर्ण

धातुओंके क्षीणहोजानेसे रोगी बहुत निर्वल होजाताहै और केवल विष्टाके बलसेही वह बल प्राप्त करताहै, इससे जहां तक बने ऐसा उपाय करता रहै कि विष्टामें परिवर्तित हुआ सब आहार बाहर न निकलजाय ।

रुद्ध स्रोतोंसे राजयक्ष्माकी उत्पत्ति । रसःस्रोतःसुरुद्धेषुस्वस्थानस्थोविदह्यते ॥ सऊर्द्धकासवेगेनवहुरूपःप्रवर्तते । जायन्ते व्याधयश्चातपडेकादशधापुनः ।

येपांसंघातयोगेनराजयक्ष्मेतिकल्प्यते ॥

अर्थ....स्रोतोंके रुकजानेसे आहारका रस सम्पूर्ण देहमें तौ फैलने नहीं पाताहै और अपने स्थान आमाशयहीमें स्थितरहकर विदग्ध होता रहताहै, वही रस खांसीके वेग के साथ ऊपरको जाकर अनेक रूप धारण करके निकलने लगताहै, तब छः वा ग्यारह प्रकारकी व्याधियां उत्पन्न होतीहैं इन सब व्याधियोंके ममुदायका नाम राजयक्ष्माहै ।

उक्त ग्यारह वा छः व्याधियोंके नामा कासोऽसतापोवैस्वर्यज्वरःपार्श्वशिरोरुजौ ॥ शोणितश्चेष्मणोर्छर्दिःश्वासःकोष्ठामयोऽरुचिः ॥ रूपाण्येकादशैतानियक्षिणः पट्टिमानिवा ॥ कासोज्वरःपार्श्वशूलस्वरवर्चोगदोऽरुचिः ॥

अर्थ....खांसी, स्कंधताप, स्वरभंग, ज्वर, पार्श्व शूल, शिरःभूल, रुधिरकी वमन, कफकी वमन, श्वास, कोष्ठामय, अरुचि ये यक्ष्माके ग्यारह रूप हैं । खांसी, ज्वर, पार्श्वशूल, स्वरभेद, मलभेद, अरुचि, ये यक्ष्मा के छः उपद्रव हैं ।

यक्ष्माका साध्यमाध्य विचार । सर्वैरद्वैस्त्रिभिर्वापिलिंगैर्मांसवलक्षये ॥ युक्तोवर्ज्याश्चिकित्स्यस्तुसर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए ग्यारह वा छः लक्षणों से युक्त अथवा आगे आनेवाले तीन-लक्षणों से युक्त राजयक्ष्मामें यदि रोगीका मांस आर बल क्षीण होजाय तौ वह असाध्य होता है ऊपर कहेहुए सर्व लक्षणों से युक्त होनेपर भी यदि मांस और बल क्षीण न हुआ हो तौ वह साध्य होती है ।

प्रतिश्यायके लक्षण ।

प्राणमूलेस्थितःश्लेष्माशुधिरपित्तमेववा ॥ मारुतध्मातशिरसोमरुतदयायतेप्राति । प्रतिश्यायस्ततोघोरोजायतेदेहकर्षणः ॥ तस्यरूपांशिरःशूलगौरवंप्राणविपुवः । ज्वरकामःकफोत्क्लेशःस्वरभेदोऽरुचिः ॥ क्लमः ॥ इन्द्रियाणामसामर्थ्ययक्ष्माचतः प्रवर्तते । पिच्छिलं बहुलं विसंहरति श्वेतपीतकम् ॥ कासमानोरसंयक्ष्मानिष्टी वातिककानुगम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्य का शिर वायुसे आघातित होताहै उसकी नासिका के मूल में स्थित कफ वा पित्त वायुके साम्हने अर्थात् भिरकी ओर दौंटाहै तब देहको कर्षण करने वाया भंङ्कारूप प्रतिश्याय होताहै इसको जुकाम वा सर्दी कहतेहैं, इस के होनेपर शिरमें दर्द, भारापन, नासिकासे साव होना, ज्वर, खांसी कफ निकलना, स्वरभंग, अरुचि, क्लान्ति, इन्द्रियोंमें अस्त-

मर्थता ये उपद्रव होतेहैं इनसे पीछे राजय-
क्ष्माकी उत्पत्ति होती है ॥ यक्ष्मरोगीके खां-
सते २ गिलगिला गाढा, दुर्गन्धयुक्त हरे या
सफेद या पीले रंगका रस कफके साथ
निकलताहै ॥

राजयक्ष्माके विशेष लक्षण ।

अंसपाश्वाभितापथतापःपादकरस्यच ॥

ह्वरःसर्वांगगश्चेतिलक्षणंराजयक्ष्मणः ।

अर्थ—कंधे और पसलियोंमें संताप, हा-
थ और पांवमें संताप, सर्वांगगामज्वर येरा-
जयक्ष्माके प्रधानलक्षणहैं ।

राजयक्ष्मा में स्वरभंग ।

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्कासवेगात्सपीन-
सात्॥स्वरभेदोभवेद्वाताद्रक्तःक्षामश्चल-
स्वरः । तालुकण्ठपरिप्लोपःपित्ताद्रक्तमसू-
यंते ॥ कफान्मन्दोविवद्धश्चस्वरःखुरुखु-
रायते । सन्नायरक्तविवन्धत्वात्स्वरःकृच्छ्रा-
त्प्रवर्तते । कासातिवेगात्करुणपीनसा-
त्कफवातिकः॥

अर्थ—वात से, पित्त से, कफ से, रक्त
से, खांसी के वेगसे, पीनस से इसरोग में
स्वरभंग होता है । जो स्वर वात से भंग
होता है उसमें स्वर रुद्ध, क्षीण और
चलायमान होता है । पित्त से कण्ठ और
तालुमें दाह और रक्तकी असूयता होती
है । कफसे स्वरमें मन्दापन और विवद्धता
होतीहै तथा खुर खुर शब्द होता है ॥ र-
क्तकी विवन्धता से स्वर अवसन्न होजाताहै
तथा बाहर कठिनतासे निकलता है । खांसी
के वेगसे ध्वनि खरखराट होताहै तथा पी-
नससे कफ वातके लक्षण होते हैं ॥

यक्ष्मा के अन्य उपद्रव ॥

पाश्वेशूलत्वनियतंसंकोचायामलक्षणम्।
शिरःशूलससन्तापंयक्ष्मिणः स्यात्सर्गो-
रवम् ॥ अतिस्विन्नेशरीरेतुयक्ष्मिणोविष-
माशनात्॥ कण्ठात्प्रवर्ततेरक्तश्लेष्मचोक्ते
पृसाञ्चितः ॥ रक्तंविबद्धमार्गत्वान्मांसा-
दीन्नानुपद्यते ॥ आमाशयस्यमुत्किष्ट
बहुत्वात्कण्ठमेतिवा । वातश्लेष्माविवन्ध-
त्वादुरसःश्वासमृच्छति ॥ दोषैरुपहृतेचा-
ग्नौसपिच्छमभिसार्यते । पृथग्दोषैःसमं
स्तेर्वाजिह्वाहृदयसंश्रिते ॥ जायतेऽरु-
चिराहारैर्दुष्टैर्येष्वचमानसैः ।

अर्थ—यक्ष्मामें जो पाश्वेशूल होता है
वह अनियत होता है और उसमें संकोच
या आयामके लक्षण होतेहैं ॥ शिरोवेदना
में सन्ताप और भारापन होता है ॥ अत्य-
न्त खिन्न देहवाले यक्ष्मारोगी के विषम
भोजन के करनेसे कण्ठकी नलीमें होकर
रक्त तथा उत्किष्ट और संचित कफ निकल-
ता है ॥

रक्तमार्गों के रुकजानेसे रुधिर मांसादि
धातुओं से मिलकर उनका पोषण नहीं क-
रसकता है यह अधिक बढ़कर आमाशयमें
स्थित होजाताहै या कण्ठमें आजाता है इस
तरह वात और कफके रुकजानेसे हृदयस्थ
श्वासमें पड़चताहै और दोषोंके द्वारा अग्निके
नाश होनेपर पिच्छिलता युक्त मल निकलताहै।

पृथक् २ दोष या सब मिळकर जब जि-
ह्वा और हृदयका आश्रय करलेते हैं तब
अरुचि उत्पन्न होतीहै । दुष्ट आहार तथा
मानसिक अर्थोंसे भी अरुचि होती है ।

अरुचिकी परीक्षा ।

कपायतिक्रमधुरैर्विद्यात्मुखरसैः क्रमात् ॥
वातादिररुचिजातामानसीदोपदर्शनात् ।
अरोचकान्कासवेगादोपोत्केशाद्वयादपि
छर्दिर्यासाविकाराणां अन्येषामप्युपद्रवः ।
सर्वस्त्रिदोषजोयक्ष्मादोषाणान्तुबलाव-
लम् ॥ परीक्ष्यावस्थितवैद्यः शोषिणंसमु-
पाचरेत् । प्रतिश्यायेशिरःशूलेकासेश्वासे
स्वरक्षये ॥ पार्श्वशूलचावीवध क्रियाः
साधारणीः शृणु ॥

अर्थ—यदि मुखका रस कपायहो तो
वातज अरुचि, तिकहों तो पित्तज और मि-
ष्ट हो तो कफज अरुचि होती है इसी तरह
मानसी अरुचि दोषोंके देखने से जानी जा
ती है । अरुचि, आमवेग, दोषोत्केश और
भय इनसही अन्यधिकारोंमें भी वमन होती है

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई यक्ष्मामें दोषों
का वशबल देखकर वद्यको शोष रोगी की
चिकित्सा करना उचित है । प्रतिश्याय
शिरःशूल, खांसी, श्वास, स्वरक्षय और पा-
र्श्वशूल रोगोंकी अनेक प्रकारकी साधारण
चिकित्साओंको श्रवण करा ।

प्रतिश्यायादिछ रोगोंकीचिकित्सा ।
पीनमेस्वेदमभ्यङ्गधूममालेपनानिच ।
परिपेकावगाहान्थपायकंवात्यमेवच । ल-
वणाम्लकटूष्णांश्चरसान्स्नेहेपसंहितान्
लावतित्तिरिदसाणां वृत्तकानाञ्चकल्प-
येत् । सपिप्पलीकंसयवंसकुलत्थंसनाग-
रम् ॥ दाढिमामलकोपेतंस्निग्धमाजंसं
पिबेत् । तेनपद्मिनिवर्तन्तेविकाराः पीन

सादयः ॥ मूलकानांकुलत्थानांयूपैर्वासु-
पकल्पितैः ॥ यवगोधूमशाल्यन्नेर्यथासा-
त्म्यमुपाचरेत् ॥

अर्थ—पीनस वा प्रतिश्याय में अम्यंग,
धूमपान, आलेपन, परिपेक, अवगाहन
करावे तथा जौ की रोटियां, नमक, अम्ल,
कटु और उष्णरसों तथा घृत में संस्कृत
लवा, तीतर, मुर्गा और बतक के मांसरस
का पानकरे ॥ अथवा पीपल, जौ, कुलधी,
सोंठ, अनार, और आवला में डालकर घां
से संस्कार किया हुआ बकरे का मांसरस
पानकरे । इस के सेवन करने से प्रतिश्याय
से पार्श्वशूल पर्यन्त छः ओं उपद्रव नष्ट
होजाते हैं । अथवा मूलक और कुलधी के
यूप में सिद्ध कर के जौ गेहूँ और शाली
चावलों को सात्म्यके अनुसार सेवन करे ।

पिबेत्प्रसादंवारुण्याजलंवापाञ्चमूलिक-
म् । धान्यनागरसिद्धंवातागलवयाथवा
शृतम् ॥ पर्णिनीभिश्चतसृभिस्तेनचान्ना-
निकल्पयेत् ॥ कृशरोत्कारिकामापकुल-
त्थयवपायसैः ॥ सङ्गरस्वेदविधिनाकण्ठं
पार्श्वमुरःशिरः ॥ स्वेदयेत्पत्रभङ्गेनशिर-
श्चपरिपेचयेत् ॥ वलागुहूचीमधुकृतंवा
वारिभिःसुखैः । वस्तमत्स्यशिरोभिर्वा-
नाडीस्वेदैःप्रयोजयेत् ॥ कण्ठेशिरसिपा-
ञ्चपयोभिर्वासवातिकैः ॥

अर्थ—मुगमण्ड, अथवा, पंचमूलसे सिद्ध-
कियाहुआ जल, अथवा धनियां और सोंठ
डालकर सिद्ध कियाहुआ जल, भूय आवला
डालकर सिद्धकियाहुआ जल अथवा शाली-

पर्णी आदि चारोंपणी डालकर सिद्धकियाहुआ जल पान करावे अथवा इन्हीं जलोंमें सिद्ध कियाहुआ अन्न देवे ।

वृशार, उत्कारिका, माप, कुलथी, जौ, पायस इन से संकरस्वेदकी रास कण्ठ पसली, हृदय और सिरमें स्वेददेवे अथवा वातनाशक पत्तोंसे स्वेदन करे, अथवा खैरटी, गिलोष, मुल्हठी इनसे सिद्ध किये मुखोष्ण जलसे परिपेचन करे ।

अथवा बकरेका शिर, मछलीका शिर इनमें सिद्ध करके जल द्वारा या वातघ्न औषधियोंके काथसे नाटोस्वेद द्वारा कण्ठ, सिर और पसलियोंमें स्वेदनदेवे ।

औदकानूपमांसानिसलिलं पात्रमूलिकम् ॥
सस्नेहसारनालं वानाढीस्वेदं प्रयोजयेत् ।

अर्थ—औदक और आनूप पशुओंका मांस पंचमूत्रसे सिद्धकिया हुआ जल अथवा स्नेह युक्त कांजासे नाटोस्वेद द्वारा स्वेदनकरे ॥

जीवन्त्याः शतपुष्पायावलायामधुकस्य च ।
घचायवशवारस्यविदार्यामलकस्य च ।

औदकानूपमांसानामुपनाहाथसंस्कृताः ॥
शस्यन्ते च चतुःस्नेहाः शिरःपार्श्वसशूलिनाम् ।

अर्थ—जीवन्ती, सोंफ, घला, मुल्हठी, घच, वेशवार, विदारीकन्द, आंवला, औदक और आनूप पशुओंका मांस चारों प्रकारके स्नेह डालकर सिद्ध कियाहुआ लेपसिर पसली तथा कंधेके दर्दमें हितकारक होता है ॥

शतपुष्पासमधुकुण्ठं तगरचन्दनम् ॥ आ
लेपने स्यात् सघृतं शिरःपार्श्वसशूलनुत् ।

अर्थ—सोंफ, मुल्हठी, कूठ, तगर और

चन्दन इनको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे, शिर, पसली और कंधे का शूल नष्ट होता है ।

अन्य प्रयोग ।

वलारास्नातिलाः सर्पिर्मधुकं नीलमुत्पलम्
पलंकपादेवदारुचन्दनं केशरं घृतम् । वी-
रावलाविदारीचकृष्णगन्धा पुनर्नवा ॥

शतावरीपयस्याचकृत्तृणमधुकं घृतम् । च-
त्वारपते श्लोकार्थैः प्रदेहाः परिकीर्तिताः ॥

शस्ताः संबृद्धदोषाणां शिरःपार्श्वसशूलि-
नाम् ॥

अर्थ—(१) खरैटी, रास्ना, तिल, घी, मुल्हठी, नीलकमल । (२) गूगल, देवदारु, चन्दन, केशर, घी, । (३) क्षीरकाकोली, खरैटी, विदारीकन्द, सहजना और पुनर्नवा । (४) शितावर, क्षीरकाकोली, कृत्तृण, मुल्हठी और घी । ये चारों लेप जो आधे २ श्लोक में वर्णन किये गये हैं बड़ेदुष्ट दोषवाले शिरःशूल पार्श्वशूल और असशूलमें हितकारी हैं ।

अन्यसंशमनक्रिया ।

नावनं धूमपानानि स्नेहाश्चोत्तः भाक्तिकाः
तैलान्यभ्यङ्गयोगानि वस्ति कर्म तथा परमा-
जलीकालावुशृङ्गैर्धामदुष्टं व्यधनेन वा ॥

शिरःपार्श्वसशूलेषु रुधिरं तस्य निर्हरेत् ।
प्रदेहः सघृतश्रेष्ठपत्रकोशिरचन्दनैः ॥

दूर्वामधुकमजिष्टाकेशरैर्वा घृताप्लुतैः प्रपु-
ण्डरीफनिर्गुण्डीपत्रकेशरमुत्पलम् ॥ क-

शेखपापयस्याचसर्पिष्कं मलेपनम् ।
चन्दनाद्येन तैलेन शतधा तेन सार्पिषा ॥ अ-

भ्यङ्गः पयसा सेकः शस्तश्च मधुकांभुना ।

मोहेन्द्रेणमुशीतेनचन्दनादिशृतेक्रिया ।
परिपेकःप्रयोक्तव्यइतिसंशमनीक्रिया ॥

अर्थ—नस्य, घूमपान, उत्तरभक्तिकाघृत, अभ्यंगोपयोगी तैल और वस्तिर्गम ये सब उत्कृष्ट हैं । जोक, अलाबू सींगी और फस्त द्वारा दुष्टरुधिरको निकालनेसे शिरःशूल, पार्श्वशूल और अंसशूल अच्छे होजाते हैं । पक्वाव, चन्दन और खस को पीस कर घृतमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा दूध, मुलहठी, मजीठ और केसर को घाँमें सानकर लेप करने अथवा पुण्डरिया काष्ठ निर्गुण्डी, कमल, केसर, नीलोत्तर, कसेरू और क्षारिकाकोली को घृतमें सानकर लेप करने से शिरःशूलदि दूर होजातेहैं ।

चन्दनादि तैल, वा शतघृत घृत का अभ्यंग, घृत तथा मुलहठी के जलका परिपेक, अथवा माहेन्द्रशीतल जल, वा चन्दनादिके कायका जल इनसे परिपेककरे । इस तरह यह संशमनी क्रिया वर्णन कीगई है ।

दोषाधिक्यमें संशोधन विधि ॥

दोषाधिकानां वमनं शस्यते स विरेचनम् ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नानां स्नेहं यत्र कर्षणम् ॥

अर्थ—दोषोंकी अधिकतामें स्नेहन और स्वेदन देकर स्निग्ध वमन विरेचन देंवै जिससे रोगी कृश न होने पावे ।

शोषीभुक्षिताग्निगालाणि पुरीषसंसनादापि ॥

अवलापेक्षिर्णामात्रां किंपुनर्यो विरिच्यते ।

योगानसंशुद्धकोष्ठानां कासेश्वासेस्वरस्ये ॥

शिरःपार्श्वशूलेषु सिद्धानेतान्प्रयोजयेत् ॥

बलाविदारिगन्धार्थविदार्यामधुकेन वा ॥

(९९)

सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्यं स्यात्स्वर्यमुत्तमम् ॥
प्रपुण्डरीकं मधुकं पिप्पल्योदहतीवला ॥

क्षीरं सर्पिश्च तत्सिद्धं स्वर्यं स्यान्नावनं परम् ॥

शिरःपार्श्वशूलधनं कासश्वासानि वर्हणम् ॥

प्रयुज्यमानं बहुशो घृतं चोत्तरभक्तिकम् ।

दशमूलेन पयसा सिद्धं मांसरसेन च ॥

बलागर्भघृतं सद्यो रोगानेतान्प्रवाधते ।

भक्तस्योपरि मध्येवा यथाग्निप्रविचारितम् ॥

रास्नाघृतं वा सक्षीरं सक्षीरं वा वलाघृतम् ।

अर्थ—मलके निकलजाने से शोषरोगी

मनुष्यका देह पतन होजाता है, इससे रोगी

के बलके अनुसारही विरेचन मात्राका प्रयो-

ग करना चाहिये ॥

जब रोगीका कोष्ठ शुद्ध होजाय तथा

खांसी, श्वास, स्वरभंग, शिरःशूल, पार्श्व-

शूल, अंसशूल ये शेष रहजाय तब नीचे

लिखेहुए प्रयोगोंको देंवै ।

खरैटी, विदारीगंधादिगण, विदारीकन्द

और मुलहठी, सब से सिद्ध कियेहुए नमक

सहित घृतकी नस्य देनेसे स्वरभंग दूर हो

जाताहै । प्रपुण्डरीक, मुलहठी, पीपल, व-

हीकटेरी, खरैटी और दूध इनके साथ सि-

द्धकियेहुए घृतकी नस्य देनेसे स्वरभंग दूर

होताहै । अथवा भोजन के पश्चात् अनेक

रातिसे घृतपान करनेसे सिर, पसली और

कन्धोंका दर्द तथा खांसी और श्वास जाते

रहतेहैं । अथवा दशमूल, दूध, मांसरस और

खरैटी का गूदा इनसे सिद्ध किया हुआ घृ-

त तत्काल ऊपर कहे हुए रोगों को दूर क-

र देताहै । भोजन करने के पीछे वा बीच

में जठराग्नि के अनुसार दूध और रास्नाका घी अथवा दूध और बलाकाघी सेवन करने से पूर्वोक्त उपद्रव शान्त होजातेहैं ॥

स्नेहवर्णन ॥

लेहान्कासापहान्स्वर्यान्श्वासहिकानि-
वर्णान् ॥ शिरःपार्श्वीसशूलघ्नान्स्नेह-
श्चातःपरंशृणु । घृतंस्वर्जूरमृद्रीकाशर्करा-
क्षौद्रसंयुतम् ॥ सपिप्पलीकंस्वर्जूरकास-
श्वासनिवर्हणम् । दशमूलशृतातृक्षीरा-
त्सर्पियदुदियान्नवम् ॥ सपिप्पलीकंसक्षौ-
द्रन्तत्परंस्वरबोधनम् । शिरःपार्श्वीसशू-
लग्नकासश्वासज्वरापहम् ॥ पञ्चभिःप-
ञ्चमूलैर्वाशृताद्यदुदियादृतम् । पञ्चानां
पञ्चमूलानांरसेक्षीरचतुर्गुणे ॥ सिद्धं स-
र्पिर्जयत्येतद्यक्ष्मणःसप्तकंवलयम् ।

अर्थ—अब हम यहां से कासनाशक, स्वरवर्द्धक, श्वास और हिचकी के दूर करनेवाले, शिरःपार्श्वीसशूलनाशक लेह और स्नेहों का वर्णन करेंगे । यथा-

घी, खिजूर, दाख शर्करा और शहत तथा पीपल इनको चाटने से स्वर-भंग, खांसी और श्वास नष्ट हो जाते हैं अथवा दशमूल डालकर औंटाये हुये दूधसे जो ताजी घी निकालाजाताहै उसमें पीपल और शहत डालकर सेवन करें तो स्वरभंग दूर होजाताहै, इसीसे शिरःशूल, पार्श्वशूल और अंशशूल तथा खांसी, और श्वास और स्वर ये भी दूर होजातेहैं ॥

पांचों पंचमूलके साथ औंटायेहुये दूध का घी भी पूर्वोक्त व्याधिनाशकहै अथवा

पांचों पंचमूलके काथ तथा चांगुने दूध में सिद्ध कियाहुआ घी यक्ष्मरोगी के पूर्वोक्त सातों विकारोंको दूर करताहै ।

लेह के चार प्रयोग ।

स्वर्जूरपिप्पलीद्राक्षापथ्याश्वत्थीदुर्गलभा ॥
त्रिफलापिप्पलीमुस्तंशृंगाटीगुडशर्करा ।
वीराशठीपुष्कराख्यंमुरसःशर्करागुडः
नागरंचित्रकोलाजाः पिप्पल्यामलकंगुडः
श्लोकार्द्धविहितानेतांनलिहानामधुसर्पि-
पा ॥ कासश्वासपहान्स्वर्यान्पार्श्वशू-
लापहंस्तथा

अर्थ—१-खिजूर, पीपल, दाख, हरड, काकडासींगी और जवासा २-त्रिफला, पीपल, मोथा, सिंघाडा और गुड शर्करा ३-क्षीरकाकोली, शटी, पुष्कराख्य (कूठ), तुलसी, शर्करा, गुड । ४-सोठ, चीता, खील, पीपल, आंवला, गुड । आधे २श्लोक में कहेहुये इन चार प्रयोगोंको घी और शहतके साथ चाटें तो खांसी, श्वास, स्वरभेद और पार्श्वशूल दूर होजातेहैं ॥

अन्य प्रयोग

सितोपलातुगाक्षीरीपिप्पलीवहुलात्वच-
म् ॥ अन्त्यादूर्ध्वद्विगुणितलेहयेन्मधुस-
र्पिपा।चूर्णितंम्राशयेद्वातश्वासकासकफा-
तुरम् ॥ सुप्तजिह्वारोचकिनमलंपाग्निपा-
र्श्वशूलिनम् । हस्तपादांगदोहेपुञ्चरेर-
क्तैतथोर्ध्वगे ॥ वासासर्पिःशतावरी सि-
द्धेवापरमंहितम् ।

अर्थ—मिश्री, वंशलोचन, पीपल, इलायची और दालचीनी । इनको पीछे से ऊपर-

को दूनार ले अर्थात् दालचीनीसे दूनी इ
लायची, इलायची से दूनी पीपल आदि घी
और शहत में सानकर चाटै । अथवा इसी
चूर्णको श्वास, खांसी, कफ, जिह्वासुप्त, अ-
रुचि, मन्दाग्नि और पार्श्वशूल में देवै ।

हाथ, पांव और शरीरके दाहमें, ज्वरमें
ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें वासाघृत वा शतावरी
घृतका सेवन अत्यन्त हितकारी है ।

दुरालभाघृत ।

दुरालभाश्वदंष्ट्राश्चतस्रःपर्णिनीर्वलाम् ।
भागान्यलोमितानकृत्वापलंपर्पटकस्य-
च । पचेद्दशगुणेतोयेदशभागवशेषिते ॥
रसेसुपूतेद्रव्याणामेपांकल्कान्समावपेत् ।
शठ्याःपुष्करमूलस्यपिप्पलीत्रायमाणयोः
तामलक्याःकिरातानांतित्तस्यकुटजस्य
च । फलानांशारिवायाश्चसुपिष्टान्कर्प-
सम्मितान् ॥ ततस्तेनघृतमस्यक्षीरद्विगु-
णितंपचेत् । ज्वरंदाहंभ्रमंकासमंसपार्श्वशि-
रोरुजम् ॥ तृष्णाञ्छार्दरतिसारमेतान्स-
र्पिरपोहति ॥

अर्थ—जवासा, गोखरू, चारोंपर्णी, ख-
रैटी और पितपापडा ये आठों एक एक
पल लेकर दसगुने जलमें पकावै जब दसवां
भाग शेष रहजाय तब उसे छानकर नीचे
लिखेहुए द्रव्य एक २ कर्ष नाल देवै । शठी,
पौहकरमूल, पीपल, त्रायमाण, भूम्यामलक,
चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ और शारिवा
इनको बारीक पीसकर डांड देवै । फिर
इसमें एक प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दूध डा-
हकर पकावै । इस घृतके सेवन करनेसे

ज्वर, दाह, भ्रम, खांसी, असंशूल, पार्श्वशूल
शिरःशूल, तृष्णा, वमन और अतिसार दूर
होजाते हैं ।

जीवन्त्यादि घृत ॥

जीवन्तीमधुकंद्राक्षंफलानिकुटजस्यच ॥
शटीपुष्करमूलचव्याघ्रीगोक्षुरकम्बलाम्
नीलोत्पलंतामलकीत्रायमाणान्दुरालभाम्
पिप्पलीञ्चसर्मापद्वाघृतं वैद्योविपाचयेत् ।
एतद्रव्याधेसमूहस्यसमुत्थराजयक्ष्मणः
रूपमेकादशविधसर्पिरंकव्यपोहति ॥

अर्थ—जीवन्ती, मुलहटी, किसमिस, इन्द्र-
जौ, शटी, पौहकरमूल, कटेरी, गोखरू, ख-
रैटी, नीलकमल, भू आंवला, त्रायमाण, ज-
वासा, और पीपल इनको समानभाग लेकर
पीस ढाळे और इसमें घृतको पकावेवै । इसी
एक घृतके सेवन करनेसे राजयक्ष्माके ग्यारह
प्रकारके उपद्रव शान्त होजाते हैं ।

बलाघृत ।

बलांस्थिरांपृश्निपर्णीवृहतीसनिदिग्धि-
काम् । साधयित्वारसेतस्मिन्पयोगव्यं
सनगरम् ॥ द्राक्षाखर्जूरसर्पिर्भिःपिप्प-
ल्याचगृतंसह । सक्षौद्रंज्वरकासघ्नंस्व-
र्यञ्चेतत्प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—खरैटी, शालिपर्णी, प्रश्निपर्णी, बड़ी
कटेरी, छोटी कटेरी इनका क्याध करले, इस
में गौ का दूध, सोंठ, दाख, खिजूर, घृत
और पीपल ढालकर घृत पाककरै । इस
घृतको शहत के साथ सेवन करे । तो ज्वर
खांसी और स्वरभंग दूर होजाताहै ।

यक्ष्मामें अन्य प्रयोग ।

आजस्पपयसश्चैवप्रयोगोजांगलारसाः

यूपार्थेचणकामुद्गामकुष्ठाश्चोपकल्पिता
ज्वराणांशमनेयोगः पूर्वमुक्तः क्रियाविधिः
यक्ष्मिणांज्वरदाहेपुससर्पिष्कः प्रशस्यते ॥
कफप्रसेकेवलवान् श्लेष्मिकः छर्दयेन्नरः ।
पयसाफल्युक्तेनमधुरेणरसेनवा ॥ स-
र्पिष्मत्यायवान्वावावमनीयोपसिद्धया ।
वमितीद्याश्चलध्वन्नमन्नकालेसदीपनम् ॥
यवगोधूममाध्वीकशीध्वरिष्टसुरासवान् ।
जांगलानिचशूलानिसेवमानः कफञ्ज-
येत् ॥

अर्थ—इस रोगमें बकरीका दूध और जांगल
जोंबोंका मांसरस प्रशस्त है । यूपके निमित्त
चना, मूंग और मोठका प्रयोग करें । ज्वर-
नाशक प्रयोग तथा चिकित्साविधि जो पहिले
वर्णनकी गई हैं, वही विधि यक्ष्मारोगियोंके
ज्वर और दाहमें घृत सहित देवें ।

कफ दोषयुक्त और बलवान् रोगीको कफ
के गिरनेमें मैनफलके साथ दूध वा मैनफल
से युक्त मधुररस वा वमनीय द्रव्यों से सं-
स्कार की हुई घृतयुक्त यवागू पान कराके
वमन करावें ।

वमन होनेके पश्चात् क्षुधा लगनेपर लघु
अन्न खानेको देवें ॥ जो गेहूँ माध्वीक, शीधु,
अरिष्ट, सुरा, आसव, और शूलपर भुनाहुआ
जांगल पशुओंका मांस सेवन करनेसे कफ
दूर होजाताहै ।

अन्य प्रयोग ।

श्लेष्मणोऽतिप्रसेकेतुवायुः श्लेष्माणमस्यति
कफप्रसेकान्तंविद्वान्स्निग्धोष्णो नैवनि-
र्जयेत् ॥ क्रियाकफप्रसेकेपावम्यांसैवप्रश-

स्यते । हृद्यानिचान्नपानानिवातध्नानि-
लघूनिच ॥

अर्थ—जब कफ अत्यन्त पड़ताहो तब
वायुही कफको उर्दीर्ण करतीहै, उस समय
स्निग्धोष्ण क्रिया द्वारा उस कफके पड़नेको
दूर करें । कफप्रसेक में जो चिकित्साकी
जाती है वही वमनके रोकने में हितकारी
होतीहै, इसमें हृद्य, वातनाशक और लघु
अन्नपान हितहै ।

मन्दाग्निमें कर्त्तव्य ।

प्रायेणोपहताग्नित्वात्सपिच्छमपतिसार्यते ।
प्राप्नोत्यास्यस्ययैरस्यनचान्नमभिनन्दाति ॥
तस्याग्निदीपनाद्योगानतीसारनिवर्हणान्
वक्त्रशुद्धिकरान्कुर्यादरुचिप्रतिवाधकान् ॥

अर्थ—प्रायः मन्दाग्निसेही पिच्छिल अर्त्ता-
सार होताहै, इसीसे मुखका जायका बिगड़
जाताहै और अन्नमें अरुचि होजातीहै उस
मनुष्यको अग्निसदीपनकर्त्ता अतिसारना-
शक, मुखशुद्धकारक और अरुचिनाशक
योगोंका सेवन करावें ।

अतिसार नाशक योग ।

सनागरामिन्द्रियवान्पिवेद्वातण्डुलाम्बुजा-
सिद्धांयवागूज्झर्णिचचांगेरीतक्रदाडिमैः ॥
पाठाम्बिल्वंयवानीचपातव्यंतक्रसंयुतम्
दुरालभांगृगवेरपाठाश्चसुरयासह । जा-
म्बाम्रविल्वमध्यञ्चसकपित्थंसनागरम् ॥
पेयामण्डनेनपातव्यगतीसारनिवृत्तये ।

एतानेवचयोगांस्त्रीमाठादीन्कारयेत्खडान्
ससूपधान्यान्सस्नेहाम्लान्संग्रहणान्परान्

अर्थ—यक्ष्मारोगी अतिसारमें सोंठ और

इन्द्रजीको चावलोंके जलके साथ पान करै, तथा औषधके पचजानेपर चांगेरी, मठा और अनारके रसके साथ सिद्ध कीहुई यवागू पान करै । अथवा पाठा, वेलगिरी, अजवाहन इनके क्वाथको मठाके साथ पीवै, अथवा जवासा, सोंठ, पाठा, इनके क्वाथको मद्यके साथ पीवै । अथवा जामन और आमकी गुठली, वेलगिरी, कैथ, सोंठ इनके क्वाथ को पेयामण्डके साथ पानकरै । इन्हीं अतीसारनाशक तीन योगोंका दालके साथ खड्यूप बनाकर घी और खटाई डालकर सेवनकरै यह अत्यन्त संग्राहक होताहै ।

अन्यप्रयोग ।

वेतसार्जुनजम्बूनामृणालीकृष्णगन्धयोः ॥
थ्रीपण्यामदयन्त्याश्चयूथिकायाश्चपल्वान् ।
मातुलंगस्यधातक्यादाडिमस्यच कारयेत् ॥
स्नेहाम्ललवणोपेतान्ससर्पिष्कान्सदाडिमान् ॥

अर्थ—वेत, अर्जुन, जामन, कमल, सहजना, खभारी, मल्लिका, विजौरा, आंवला, अनार इनके पत्तोंमें खटाई, नमक, घी और अनार डालकर यूप बनावै [किसी २ में में ऐसा पाठभी है (“ चांगेर्याश्चुक्रकायाश्च दुग्धिकायाश्चकारयेत् । खडान्दधिसरोपेतान् सर्सापिष्कान् सदाडिमान् ,) मांसानां लघुपाकानां रसाः सांग्राहिकैर्कथिताः व्यजनार्थं प्रशस्यन्ते भोज्यार्थं रक्तशालयः । स्थिरादिपंचमूलेन पाने शस्तं शृतञ्जलम् ॥ नंक्रं पुरांसचुक्रिकादाडिमस्याथवारसः दीपनं ग्राहिनिर्दिष्टं भेषजाभिन्नवर्चसे ॥

अर्थ—व्यजनके लिये सांग्राहिक द्रव्यों के साथ सिद्ध कियाहुआ लघुपाकी मांसों का रस और भोजनके लिये लालशालि-चावलदेवै । शालिपर्ण्यादि पंचमूलसे सिद्ध कियाहुआ जल पीनेको देवै । मठा, म-दिरा, चूका और अनारका रस अतीसार में अग्निसंदापन और संग्राही होता है ।

वैरस्यनाशक प्रयोग ।

परंमुखस्ववैरस्यनाशनं रोचनं शृणु । द्वौ-
कालौ दन्तपवनं भक्षयेन्मुखधावनैः ॥
तद्वत्प्रक्षालयेदास्यंधारयेत्कवलग्रहान् ।
पिवेद्धूमन्ततो भृष्टमद्यादीपनपाचनम् ॥
भेषजं पानमन्नञ्चाहितमिष्टोपकल्पितम् ।

अर्थ—अब हम मुखकी विरसता को दूर करनेवाले प्रयोगोंका वर्णन करते हैं प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय दा-तुनकरना, मुखमें जलभर २ कर कुल्ले कर-ना और कवलग्रह करना चाहिये, तदनन्तर धूमपान, फिर दीपनकर्त्ता और रुचिवर्द्धक द्रव्योंका सेवन करै । इन्हाके अनुसार बनाहुआ अन्नपानभी मुखकी विरसता दूर करने में हित हैं ।

मुखधावनपांचप्रयोग ।

त्वद्भुस्तमेलाधान्यानि मुस्ते सामलकन्त्व-
चम् ॥ त्वचोदार्वीयवानीचपिप्लयस्ते-
जवत्यपि । यवानीति न्तिङीकञ्चपञ्चे
ते मुखधावनाः ॥ प्लोकपादेषु विदिताः शो-
धनामुखरोचनाः । गुलिकाधारयेदास्ये
चूर्णैर्वाशोधयेन्मुखम् । एषामालोडिता-
नां याधारयेत्कवलग्रहान् ॥

अर्थ—दालचीनी, मोथा, इलायची और धनियां अथवा, दोनों मोथा, आवला, दालचीनी, दारुहल्ली और अजवायन, पीपल और तेजवती, अथवा अजवायन और इमली, इनमें चौथाई २ श्लोकमें वर्णन किये हुये चूर्णोंकी दांतुन करना मुखको शुद्धकर्त्ता और रुचिवर्द्धक होता है । अथवा इनकी गोली बनाकर मुखमें रखै अथवा इनका चूर्ण बनाकर मुखका शोधन करे अथवा जलमें मिलाकर कुल्ले करे ।

सुरामाध्वीकशीधूनांतैलस्यमधुसर्पिपोः
कवलान्धारयेदिष्टानक्षीरस्येक्षुरसस्यच
अर्थ—सुरा, माध्वीक, शीधु, तैल, मधु, घृत, दूध और ईखके रसके कवलधारणकरै यवानीपादव ।

यवानीतिन्तिडीकश्चनागरंसाम्लवेतसम् ।
दाडिमम्बदरंचाम्लंकार्पिकानुपकल्पयेत्
धान्यसौर्वचलाजाजीवराङ्गचार्दकार्पिकम् ।
पिप्पलीनांशतच्चैकंद्वेशतेमरिचस्यच ॥
शर्करायाश्चत्वारिपलान्देकत्र चूर्णयेत् ।
जिह्वाविशोधनंहृद्यंतच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥
हृत्प्लीहपार्श्वशूलघ्नंविबन्धानाहनाशनम् ।
कासश्वासहरंग्राहि ग्रहण्यंशोविकारनुत् ।

अर्थ—अजवायन, इमली, सोंठ, अम्लवेत, अनार, घेर इनको एक २ कर्ष लेवे ॥ धनियां, संचरनमक, जीरा, दालचीनी ये चारों आधे २ कर्ष लेवे, एकसौ पीपल, दो सौ कालीमिरच और शर्करा चार पल इन सबका चूर्ण बनालेवे । यह चूर्ण जिह्वा

को शुद्ध करनेवाला, हृदयप्रिय, भोजन में रुचि बढ़ानेवाला, हृद्रोग, प्लीहा और पादशूलको नष्टकरनेवाला तथा विषन्ध और आनाह नाशक है । खांसी, श्वास, ग्रहणी, और अर्शविकारों को दूरकरता है, संग्राही है

तालीशपत्रादि वटिका ।

तालीशपत्रंमरिचंनगरंपिप्पलीशुभा ।
यथोत्तरंभागवृद्ध्यात्यगेलेचार्धभागिके ॥
पिप्पल्यष्टगुणाचात्रप्रदेयासितशर्करा ।
कासश्वासरुचिहरंतच्चूर्णंदीपनंपरम् ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीदोषशोप्लीहज्वरापहम् ।
वन्ध्यतीसारशूलघ्नमूर्द्धवातानुलोमनम् ।
कल्पयेद्गुडिकाश्चैव चूर्णपक्त्वासितोपलेः ।
गुडिकाहमिसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतराःस्मृताः ॥

अर्थ—तालीशपत्र, कालीमिरच, सोंठ, पीपल और वंशलोचन, इन सबको उत्तरोत्तर एक २ भाग अधिक लेवे । दालचीनी और इलायची आधे २ भाग लेवे । और पीपल से अठगुनी सफेदचीनी डालकर चूर्ण बनावे । यह चूर्ण खांसी, श्वास और अरुचि को दूर करता है, अत्यन्त अग्निसंदीपन है हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, शोष, प्लीहा, और ज्वरको दूर करनेवाला है । बमन, अतिसार और शूलको दूर करता है ऊर्ध्ववातानुलोमी है ।

मिश्रीकी चासनी में पूर्वोक्त चूर्ण को डालकर गोली बनालेवे, आग्निके संस्कार से ये गोळियां चूर्णकी अपेक्षा हलकी होती हैं ।

यक्ष्मारोगमें मांसव्यवस्था ।

शुष्यतेक्षीणमांसायकल्पितानिविधानवि-
त् । दद्यान्मांसादमांसानिवृंहणानिविशे-
षतः ॥ शोषिणेवार्हिणंदद्याद्वाहिशब्देन
चापरान् । गृधानुलकाश्चांसाश्चविधि-
वत्सूपकल्पितान् ॥ काकांस्तित्तिरिश-
ब्देनमत्स्यशब्देनचारेगान् । भृष्टान्म-
त्स्योन्मत्स्यशब्देनदद्याद्गण्डपदानपि ॥ लो-
मशान्स्थूलनकुलान्विडालांश्चोपकल्पि-
तान् । शृगालशावाश्चभिषक्शशशब्देन
दापयेत् ॥ सिंहावृक्षांस्तरक्षश्चव्याघ्रा-
नेवंविधांस्तथा । मांसादानमृगशब्देन
दद्यान्मांसाभिवृद्धये ॥ गजखड्गितुरङ्गा-
णांविंशवारकृतान्भिषक् । दद्यान्महि-
पशब्देनमांसमांसाभिवृद्धये ।

अर्थ—जिस यक्ष्मारोगीका मांस छीण
होगयाहै उसे मांसाहारी जीवों का मांस
देना चाहिये क्योंकि यह अत्यंत वृंहण होता
है । इसरोगीको मोरकामांस खवाये अथवा
मोरके शब्द से अन्य गिद्ध घुग्घू और चिल
कामांस अनेक तरहसे सागभाजी की तरह
बनाकर सेवन कराये । तितरके नामसे
कौण्टकामांस, मछली के नामसे सर्पकामांस,
मछली के अंत्रके नामसे गिडोये, खर्गोश के
मांसके नामसे रोमयुक्त मोटे नकुलकामांस,
बिल्डी वा शृगाल के बच्चेका मांस साग
भाजीकी रीति से प्रस्तुत करके देवे । हि-
रेनमांसके नामसे सिंह, रीछ, रोह बघरे
तथा ऐसेही अन्य मांसाहारी पशुओंका मांस
मांसकी शक्ति के लिये देवे । भैंसाके मांसके

नामसे हाथी घोड़े वा गैंडे के मांसका वेश
वार बनाकर देवे । इन मांसों से मांसकी
वृद्धि होती है ।

मांसिनोपचिताङ्गानामांसमांसकरंपरम् ।
तीक्ष्णोष्णलाववाच्छस्तं विशेषान्मृगप-
क्षिणाम् ॥ मांसानियान्यनभ्यासादनि-
ष्टानिप्रयोजयेत् । तेषूपधामुखंभोवंतुत-
थाशक्यानिनानिहि ॥ जानन्जुगुपसनै-
वाद्याज्जग्धंवापुनरुल्लिखेत् । तस्माच्छ-
त्रोपसिद्धानिमांसान्येतानिदापयेत् ॥

अर्थ—मांसाहारी जीवोंका मांस अत्यन्त
मांसवर्द्धक होताहै इनमें से मृग और पाक्षि-
यों का मांस तीक्ष्ण, उष्ण और लघु होने
से अत्यन्त हितकारी होताहै । अनभ्यास
के कारण जो अनिष्ट मांसोंका प्रयोग किया
जाता है उनमें भी रुचिको उत्पन्न करके
मुखपूर्वक भोजन करे । जो रोगी जानकर
भी घृणा प्रकट करता हुआ खातेता है वह
वमन करदेताहै, इससे इन मांसों को छल
से सिद्ध करके देवे ।

दोषपरत्वसे यक्ष्मामें मांसाविधान ।
वार्हितित्तिरिदक्षणाणांहंसानांशूकरोष्ट्रयोः ।
खरगोमहिषाणाश्चमांसमांसकरंपरम् ॥
योनिरष्टविधाचोक्तामांसानामन्नपानि-
के । तान्परीक्ष्यभिषग्विद्वान्दद्यान्मांसा-
निशोषिणे ॥ प्रसहाभूशयानूपवारिजा-
वारिचारिणः । आहारार्थमदातव्यामा-
त्रयावातशोषिणे । प्रतुदाविष्किराश्च
धन्विजाश्चमृगदिजाः । कफपित्तपरीता-
नांप्रयोग्याःशोपरोगिणाम् ॥ विधिव-

त्सूपसिद्धानिमनोद्धानिमृदूनिच । रसव
न्तिसुगन्धीनिमांसान्येतानिभक्षयेत् ॥

अर्थ—मोर तीतर, मुर्गा, हंस, सूअर, ऊँट, गधा, गौ, भैंसा इनका मांस अत्यन्त मांसवर्द्धक होता है । अन्नपानाध्यायमें जो आठ प्रकारके मांस वर्णन कियेगये हैं उन्हीं मांसों में से यक्ष्माके अनुसार रोगी को मांसका सेवन कराना चाहिये, यथा वात-शोथी रोगीको प्रसह, भूशय, आनूप देशज जलज और जलचर पशुपक्षियों का मांस खाने के लिये देवे । कफ पित्त शोष रोगियोंको प्रतुद, बिक्किर और धन्वज पशु-पक्षियोंका मांस देवे ॥

इन सम्पूर्ण मांसों को साग भाजी की तरह सिद्ध कराके मनोह्र मृदु रसाले और सुगन्धित द्रव्य डालकर देवे ॥

मांसमेवाश्रितः शोपेमाध्वीकपिचतोऽपिच
नियतस्याल्पचित्तस्याचिरकायेनतिष्ठति
वारुणीमण्डभक्तस्यवहिर्माजर्जनसेविनः ।
अविधारितवेगस्ययक्ष्मानलभतेऽन्तरम् ॥
प्रसन्नावारुणींशीधुमारिष्टानासवान्मधु ।
यथेष्टमनुपानार्थपियेन्मांसानिभक्षयेत् ॥

अर्थ—उस नियमसे चलनेवाले और शान्तात्मा मनुष्यके शरीरमें यह रोग बहुत दिवस तक नहीं रहने पाता है जो मांस खाता है और माध्वीक पीता है । जो सुरा मण्डलको पीता है और स्नानादि वहिर्माजर्जन करता है तथा मलमूत्रादिके उपस्थित वेगों का नहीं रोकता है उसके यक्ष्मा भीतर प्रवेश नहीं करसकता । यक्ष्मारोग में प्रसन्ना

वारुणी, शीधु अरिष्ट, आसव और मधु इन का यथेष्ट पानकरै और यथेष्ट मांसभक्षणकरै यक्ष्मा में मद्यके गुण ।

मद्यंतीक्ष्णोष्णैश्चयसूक्ष्मत्वात्स्रोतसांमुख
म् । प्रमथ्यविवृणोत्याश्रुतन्मोक्षात्सप्त
धातवः । पुष्यन्तिधातुयोगाच्चशीघ्रंशोष
प्रशाम्यान्ति ॥

अर्थ—मद्य तीक्ष्ण, उष्ण, विशद और सूक्ष्महोने के कारण स्रोतों के मुखका प्रमथन करके उन्हें खोलदेता है और उनके खुलनेसे सातों धातु पुष्ट होने लगती है और धातुओं के पुष्ट होने से शोथ शीघ्र शान्त होजाता है ।

अन्य प्रयोग ।

मांसादमांसस्वरसेसिद्धं सर्पिः भयोजयेत् ।
सक्षौद्रं पयसा सिद्धं सर्पिर्दशगुणेन वा ॥
सिद्धं मधुरकैर्द्रव्यैर्दशमूलकपायिकैः । क्षी
मांसरसोपेतं घृतं शोषहरं परम् ॥ पिप्प-
लीपिप्पलीमूलचव्याचित्रकनागरैः । स-
यावश्चैः सक्षीरैः स्रोतसांशोषनं घृतम् ॥
रास्नावलागोक्षुरकं स्थिरावर्षाभूसाधित-
म् । जीवन्तीपिप्पलीभार्गीसर्पारंशोप-
नुदघृतम् ॥ यवाग्वावापिबेन्मात्रांलिङ्गा-
द्रामधुना सह । सिद्धानां सर्पिपामेपामद्या
दश्चेनवासह ॥ शृण्यतामेपनिर्दिष्टोचिधि
राभ्यवहारिकः । बाहः स्पर्शनमाश्रित्य-
वश्यतेऽयः परं विधिः ॥

अर्थ.... यक्ष्मामें मांसाहारी जीवोंके मांस रसमें सिद्ध कियाहुआ घृत देवे । अथवा दशगुने दूध में घृत पकाकर शहत के साथ

सेवन करै । अथवा मधुरगणोक्त द्रव्य, और दशमूलके काथमें दूध और मांसरस मिलाकर उसमें घृत को पकाकर देवै यह अत्यन्त शोषनाशक प्रयोगहै । अथवा पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ जवाखार और दूध इन में सिद्ध किये हुए घृतका सेवन कराने से स्रोतोंका मुख खुलताहै । अथवा रास्ना, खरैटी, गोखरू शालिपर्णी और सांठ इनके काथमें जीवन्ती, पीपल, भाडंगी और दूध डालकर घृत पकावे यह घृत शोषको दूर करताहै । ऊपर कहेहुये घृतोंको यवागूर में मिलाकर पीवे अथवा शहतमें मिलाकर च्वाटे । अथवा आहारके साथ सेवन करै ।

शोषरोगीके लिये यह आहारविधि वर्णन की गई है अब यहांसे बहिःस्पर्शनविधिका वर्णन करेंगे ।

अवगाहनविधि ।

स्नेहक्षीराऽभ्युकोष्ठे तं स्वभ्यक्तमवगाहयेत् ।
स्रोतोविबन्धमोक्षार्थं बलपुष्ट्यर्थमेव वा ॥
उत्तीर्णमिश्रकैः स्नेहैः पुनरुक्तैः सुखाकरैः ।
मृद्रीयात्सुखमासीनं सुखं चाच्छादयेन्नरम् ॥

अर्थ—रोगीके देहपर तैलमर्दन करके घी दूध या जलकी कोठीमें बिठलाकर स्नान करावे, ऐसा करनेसे स्रोतोंके मुख खुलजातेहैं तथा बल और पुष्टाई बढ़तीहै स्नानके पीछे रोगी को आराम से बिठाकर पूर्वोक्त मिश्रकस्नेहका रोगीकी देहपर धीरे २ मालिश करके उसको अच्छी तरहसे बखर उठादेवै ॥

उद्वर्त्तनविधि ।

जीवन्तीशतवीर्याश्च विकसांस पुनर्नवाम् ।

(१००)

अश्वगन्धामपामार्गतकार्कर्मिधुकंचलाम् ॥
विदारीसर्पपंकुष्टं तण्डुलानतसोफलम् ।
मापांस्तिलांश्च कण्वञ्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥
त्रिगुण्यवचूर्णेन दध्रायुक्तं समाक्षिकम् ।
एतदुत्सादनं कार्य्यं पुष्टिवर्णवलप्रदम् ।

अर्थ....जीवन्ती, शतवीर्या (दूब भेद)

मजीठ, सोंठ, असगंध, आंगा, अरनी, मुलहठी, खरैटी, विदारीकन्द, सरसों, कूठ, तण्डुल, अलसी, उरद, तिल और सुराबी-ज इन सबको पीसलेवै इसमें तिगुना जौ का चून, तथा दही और शहत मिलाकर के उबटना करै । इससे पुष्टाई, बल और वर्ण बढ़ताहै ।

गौरसर्पपक्वकेन गन्धैश्चापि सुगन्धिभिः ।
स्नायादृतुसुखं स्तोयैर्ज्विनीयौषधैः शृतैः ॥
गन्धैः समालयैर्वासोभिर्भूषणैश्च विभूषितः ॥
स्पृश्यान्तं स्पृश्यं संपूज्य देवताः सभिपग-
द्विजान् ॥ इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धवत्पानभो-
जनम् ॥ इष्टमिष्टैरुपहितं सुखमद्यात्सुख-
प्रदम् ॥

अर्थ—सफेद सरसोंका कल्क, और सुगन्धित द्रव्योंको जीवनायगणोक्त औषधियों में काथ करके ऋतुके अनुसार सुखदायक जलोंसे स्नान करै जैसे गरमीमें शीतलजल से सरदीमें गरम जलेसे स्नान करै फिर अतर फुलेल लगाकर फूलमाला और स्वच्छ वस्त्र धारण करै, आभूषण पहरे । मंगल द्रव्यों का स्पर्श कर देवता, वैद्य और ब्राह्मणोंका पूजन करै फिर अपने इष्टमित्रोंके साथ इच्छानुसार रस, वर्ण स्पर्श और गंध से युक्त सुखपूर्वक अन्नपानका सेवन करै ।

पथ्यतम भोजन ।

समातीतानिधान्यानिक्लपनीयानिभृष्य-
ताम् । लघूनिहीनवीर्याणितानिपथ्यत
मानिहि ॥

अर्थ—शोषरोगियोंके लिये एक घरसके
रखे हुए पुराने चावलोंका सेवन करावै ये
लघु और हीनवीर्य होनेके कारण अत्यन्त
पथ्यतम होते हैं ।

यक्ष्मामें अन्यपथ्य ॥

यद्योपदेक्ष्यतेपथ्यंसतत्तानाचिकित्सिते ।

यक्ष्मिणस्तत्प्रयोज्यं वलमांसाभिवृद्धये ॥

अर्थ....क्षतक्षीण चिकित्सामें जो जो प्र-
योग वर्णन कियेगयेहैं वे सब बल और मांस
बढ़ानेके लिये यक्ष्मामें देने चाहिये ।

यक्ष्मामें अन्यउपचार ।

अभ्यङ्गोत्सादनैः स्नानैरवगाहैर्विमार्जनैः ।

वस्तिभिः क्षीरसर्पिर्भिर्मांसैर्मांसरोदनैः ॥

इष्टैर्मर्द्यमनोज्ञानांगन्धानामुपसेवनैः यथ-

स्तुविहितैः स्नानैर्वसोभिरहतैः प्रियैः ॥ सु-

हृद्गन्धमणीयानां प्रमदानां च दर्शनैः । गी-

तवादित्रशब्दैश्चाप्रियश्रुतिभिरेव च ॥ हर्ष-

णाश्वासनैर्नित्यंगुरूणां समुपासनैः । ब्र-

ह्मचर्येण दानेन तपसा देवतार्चनैः ॥ सत्ये

नाचारयोगेन मङ्गलैर्विहितया । वैद्यवि-

प्रार्चनाच्चैवरोगराजो निवर्त्तते ॥

अर्थ....तेलकी मालिश करने से, उबटना

करनेसे, स्नान, अवगाहन और मार्जन करने

से, वस्तिकर्म से, घृत, दुग्ध, मांसके सेवन

से, मांसरस के साथ भात खाने से, इष्ट

मद्यपान से, मनोहारी गंधों के सूंघने से,

श्रुत २ के अनुसार जलों से स्नान करनेसे,
अखण्ड और प्यारे वस्त्रोंको धारण करनेसे
इष्टमित्रोंके दर्शनसे, और कमनीय स्त्रियोंके
देखनेसे गीत वाजोंके शब्दोंसे, प्यारी बातों
के सुनने से, हर्ष और आश्वासनसे, गुरुज-
नोंकी नित्यप्रति सेवा करनेसे, ब्रह्मचर्य,
दान तप और देवतार्चन नियमोंके पालन से
सत्यव्रतपालन, मंगलाचरण और अहिंसा
से, वैद्य और विप्रोंके पूजनसे यह रोगराज
राजयक्ष्मा दूर होजातीहै ॥

यथाप्रयुक्त्या चेष्ट्याराजयक्ष्मा पुराजितः ।

तावेदविहितामिष्टमारोग्यार्थी प्रयोजेयत्

अर्थ—जिस प्रयोग और कामसे प्राचीन
कालमें यह रोग दूर किया गयाथा उस
वेदोक्तकार्य को आरोग्य प्राप्त करनेके लिये करें

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ॥

प्रागुत्पत्तिनिमित्तानि प्राप्पं रूपसंग्रहः ॥

समासव्यासतश्चोक्तं भेषजराजयक्ष्मणः ॥

नामहेतुरसाध्यत्वसाध्यत्वकृच्छ्रसाध्यता

इत्यर्थसंग्रहः प्रोक्तो राजयक्ष्मचिकित्सिते ॥

अर्थ....इस राजयक्ष्माके चिकित्साध्यायमें
राजयक्ष्माकी प्रागुत्पत्ति, निदान, पूर्वरूप-
रूप और चिकित्सा विस्तारपूर्वक तथा
संक्षेप से वर्णन किये गये हैं । इस रोगके
अन्यनाम, हेतु, असाध्यता, साध्यता, और
कृच्छ्रसाध्यताका वर्णन किया गया है ॥

इति श्रीभाषाटीकावित्तायां अग्निवशाविरचि-
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चि-
कित्सितस्थाने राजयक्ष्मचिकित्सितं

नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

अथातोऽर्शांचिकित्सितव्याख्यास्यामः ॥
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि
श्रव हम 'अर्शांचिकित्सित' नामक अध्याय
की व्याख्या करेंगे ।

आसीनमुनिमव्यग्रंकृतजप्यंकृतक्षणम् ।

पृष्ठवानर्शसांयुक्तिमग्नवेशः पुनर्वसुम् ॥

प्रकोपहेतुः संस्थानस्थानंलिङ्गाचिकित्सि-

तम् । साध्यासाध्यविभागश्चतस्मैतन्मु-

निरवब्रीदिति ॥

अर्थ—जब महात्मा पुनर्वसु जपादि नि-
त्यकर्मसे निश्चिन्त होकर स्वस्थचित्तसे बैठे
हुए इस अवकाशको देखकर अग्निवेशने
उनसे अर्शरोग की युक्ति, प्रकोप हेतु, आ-
कृति, उत्पत्तिस्थान, लक्षण चिकित्सा, सा-
ध्यासाध्य लक्षण पूछे और मुनीश्वरने इन
सब प्रणोंका यथावत् उत्तर दिया ।

अर्श के भेद ।

इहखल्वग्निवेश ! द्विविधान्यर्शांसिसह
जानिकानिचित् ॥ कानिचिज्जातस्यो-
त्तरकालजानि । तत्रबीजं गुदवलिबीजो-
पतप्तमायतनमर्शसांसहजानां ॥ तत्राद्वि-
विधौबीजोत्पत्तौ, हेतुः मातापित्रोर-
पचारः पूर्वकृतञ्चकर्मतथान्यपामपिस-
हजानां विकाराणाम् ॥ तत्रसहजातानी-
तिशरीरेणार्शांसीत्यधिमांसविकाराः ।

अर्थ—हे अग्निवेश ! अर्श [बवासीर]
दो प्रकारके होते हैं एक सहज [जन्म
सेही होनेवाला] दूसरा उत्तरकालज

(जन्म लेनेसे पीछे होनेवाला) इनमें
सहज अर्शोंका आयतन गुदवलि बीजोप-
त्त है, इनमें से माता पिताके अपचार से
बीजके उपत्त होनेके कारण तथा पूर्वजन्म
के किये हुए कर्मसे सहज अर्श होता है, त-
था अन्य सहज विकारों के भी ये ही दो-
नों हेतु हैं ॥ जो अर्श शरीरके साथही होते
हैं वे एक प्रकार के अधिमांस विकार हैं ।

अर्श का स्थान ।

सर्वेषाञ्चार्शान्क्षेत्रं गुदस्यार्द्रपञ्चमांगुले

ऽवकाशे त्रिभागान्तरास्ति स्रोतुगुदवलयः

क्षेत्रमित्यदेशः । केचित्तु भूयांसमेव देशमु-

पदिशन्त्यर्शसांशिश्रमपत्यपयंगलमुखना-

सिकाकर्णाक्षिबर्तमानित्ववचात्तदस्यधि-

कमांसदेश एषः गुदवलिजानां त्वर्शांसीति

संज्ञातत्र अस्मिन् सर्वेषाञ्चार्शान् अधिष्ठानं

मेदोमांसत्वकृच्च ॥

अर्थ—गुदाके द्वारसे भीतरको साडे पांच
अंगुलके बीचमें प्रवाहिणी, विसर्जनी और
संवरणी, ये तीन आंटी होती हैं इनमें ही
सब प्रकारके अर्शरोग उत्पन्न होते हैं और
अर्शरोगकी उत्पत्तिका यही स्थान अर्थात्
क्षेत्र है ॥ कोई २ यह कहते हैं कि केवल
गुदाही अर्श का स्थान नहीं है किन्तु और
भी हैं, यथा मेढू, योनिमार्ग, गला, मुख,
नासिका, कान, आंख के कोण और त्वचा
परन्तु इन स्थानों में जो मांस बढ़ता है
वह अर्श नहीं कहलाता है वह तो अधिमांस है
और गुदाकी आंटीयोंमें जो मांसकी वृद्धि
होती है उसेही 'अर्श' कहते हैं । यहाँ सम्पूर्ण

में पसली, कूख, वस्ति, हृदयं, पीठ, गर्दन के जोते इनमें वेदना, और ताप, चिन्ताप्र-
स्तता अत्यन्त आलस्य के विकार रहा करतेहैं

उक्तउपद्रवोंका कारण ।

जन्मभृतिअस्यगुदजैराहतोमार्गोपरोधा-
द्यायुरपानःप्रत्यारोहन्समानव्यानप्राणो
दानान्पित्तश्लेष्माणौचमकोपयति । ते-
प्रकुपिताःपञ्चवाताःपित्तश्लेष्माणौ चा-
शीसामभिद्रवन्तेएतान्विकारानुपजनय-

न्तित्युक्तानिसहजन्यशोषांसि ॥

अर्थ—जन्मसेही गुदमें उत्पन्नहुई अर्श से
रुककर ऊपरको बढ़तीहुई अपानवायु समान
व्यान, प्राण, और उदान इन चारों वायुको
तथा पित्त और कफ को प्रकुपित करदेती
है । इसतरह प्रकुपित हुए पांचों वायु तथा
पित्त और कफ अर्श को उपद्रुत करके पूर्वोक्त
विकारोंको उत्पन्न करतेहैं ।

यह सहज अर्शोंका वर्णन कियागयाहै ।

उत्तरकालजअर्शके लक्षण ।

अतऊर्ध्वजातस्योत्तरकालजानिव्याख्या
स्यामः । शुष्मधुरशीताभिष्यन्दविदाहि
विरुद्धार्जीर्णप्र मिताशनासात्म्यभोजना
द्रव्यमत्स्यवाराहमाहिषाजाविकपिशित
भक्षणात्कुशशुष्कपूतिमांसपैष्टिकपरमा-
न्नक्षीरमोदकदधितिलगुडविकृतिसेवना
न्मापयूपेक्षुरसपिण्याक पिण्डालकशुष्क-
शाकशुक्लशुनकिलाटपिण्डकविषमृणाल
शालूककौश्चादनकशेरुकाभृङ्गाटकतरुणवि-
रुढनवधान्याममूलकोपयोगाद्गुरुफलेशा-
करागहरितवसा शिरस्पदपर्युषितपूतिशी-
तसङ्कीर्णाभ्याम्यवहरणान्मन्दकातिक्रान्त

मद्यपानाद्व्यापन्नगुरुसलिलपानादातिस्ने-
हपानादसंशोधनाद्वस्तिकर्मविभ्रमादव्यं-
वायाद्विबास्वभात्सुखशयनासनोपसेव-
नाच्चोपहताग्नेर्मलोपचयोभवत्यतिमात्रम्
अथोत्कटुकविषमकठिनासनसेवनादुद्धा-
न्तयानोपप्रयाणादतिव्यवायाद्विस्तने-
त्रासम्यक्प्रणिधानात्सुदक्षणादभीक्ष्णं
शीताम्बुसंस्पर्शाच्चेतलोपृतृणादिघर्ष-
णात्प्रततातिनिवर्हणाद्वातमूत्रपुरीषवेगो-
दीरणात्समुदीर्णवेगविनिग्रहात् स्त्रीणा-
ञ्चामगर्भभ्रेशाद्रभोत्पीडनाद्गुह्यविषमप्र-
सूतिभिश्चप्रकुपितोवायुरपानोमलमुपचि-
तमधोगममासाद्यगुदवल्लिप्वाधत्तेतस्ता-
स्वशोषिसमादुर्भवन्ति ।

अर्थ—अब जन्मके पीछे होनेवाले अर्श-
रोगका वर्णन करेंगे—यथा भारी, मिष्ट, शी-
तल अभिष्यन्दी, विदाही, विरुद्ध, अजीर्ण-
कर्त्ता भोजन, प्रमितभोजन और असात्म्य
भोजन से, गौ, मछली, सूअर, भैंसा, बकरी,
भेड़ इनका मांस खानेसे, कृश शुष्क और
सडेहुये मांसके सेवन करनेसे, पिष्टक, पर-
मान्न, दूध, मोदक, दही, तिल, गुड इनके
बनेहुये पदार्थोंके सेवनसे, उरद का यूष
ईखका रस, पिण्याक, पिण्डाक, सू-
खासाग, सिरका, लहसन, कीला, पिण्ड-
क, कमलनाल, मृणाल, शालूक, कौश्चा-
दन, कसेरू, सिंघाडोंके सेवनसे, तरुण, उ-
मेहुये, नवीन धान्योंके खानेसे, कच्ची मूली
के सेवनसे, भारीफल, शाक, रागखाडव,
हरितक, चर्वी, पक्षियोंके सिर, पांव तथा,
वासी, सडाहुआ, ठंडा, संकीर्ण भोजन करने

से, मन्दक दधि और अत्यन्त मद्यपान करनेसे, दूषित और भारीजलके पीनेसे, अत्यन्त स्नेह पानकरनेसे, असंशोधनसे वस्ति-कर्ममें उलट पुलट होनेसे, अव्यवायसे, दिन में सोनेसे, सुखासन, शय्या वा आसन पर अत्यन्त बैठे रहनेसे आग्निमन्द पड़जातीहै और अग्निके मन्द पड़जानेसे मलकी अत्यन्त बृद्धि होतीहै । इसीतरह उकड़ बैठनेसे, विषम वा कठोर आसनपर बैठे रहनेसे, ऐसी सवारीपर चढ़नेसे जिसमें झटके बहुत लगते हों, ऊँटपर चढ़नेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे वस्तिनेत्रके ठीक २ न लगनेसे, गुदामें घाय होजानेसे, अथवा बार २ बहुत ठंडे वा गरम जलसे धोनेके कारण अथवा कपडा, लोहा, मिट्टीका ढेला वा गिनुकेसे अत्यन्त घर्षण करनेसे, अत्यन्त किंचनेसे अधोवायु मूत्र और पुरीषके अनुपस्थितवेग को निकालनेसे तथा उपस्थित वेगका निग्रह करनेसे, स्त्रियों के आमगर्भके गिरपड़नेसे, गर्भके उत्पीडन से, बहुत संतान होने से वा विषम रीतिसे होनेपर अपानवायु प्रकुपित होकर पूर्व संचित मलसे उस समय मिलजातीहै जब वह नीचे को जाने लगताहै, वह अपानवायु गुदाकी आंठमें स्थित होजाताहै और वहां विकार उत्पन्न करके अर्श रोगको उत्पन्न करता है ॥

दोषपरत्वेसे अर्शका आकार ।

सर्पपममूरमापमुद्रमकुपुकयवकलायटि
ण्टिकेरखजूरकन्दकाकणान्तिकाविम्बी
बदरकरीरोदुम्बरजाम्बवगोस्तनांगुष्ठक-

शेरुकामृद्गाटकमृद्गीदक्षशिखिशुकतुण्ड
जिहामुकुलकर्णिकासंस्थानानिसामान्या
द्वातपित्तकफप्रचलानितेपामयंविशेषः ।

अर्थ—सरसों, मसूर, उडद, मृग, मौठ, जो, कलाय, टिण्टिकेर (टेंटी) खिजूर, बेर, चिरमिठी, कंदूरी, बेर, करीब, गूडर, जामन, किसमिस, अंगूठा, कसेरु, सिघाडा, काकडासोंगी, मुर्गा, मोर, तोता, इनकी चोंच और जिह्वा तथा फूलकी कर्णिकाके समान आकार उन अर्शोंका होताहै जो वात, पित्त तथा कफकी प्रचलतासे हुई हैं । इनके विशेष लक्षण नीचे लिखे जाते हैं ।

वातप्रचल अर्शके लक्षण ।

शुष्कम्लानकठिनपरुषरूक्षश्यावानिती
क्षणाग्राणिवज्राणिस्फुटितमुखानिविषम
विस्तृतानिशूलाक्षेपतोदस्फुरणचिमिचि
मासंहर्षणपरीतानिस्निग्धोष्णोपशयानि
प्रवाहिकाध्मानशिभ्रष्टपणवस्तिवृक्षणह-
दग्रहाद्र्मर्दहृदयद्रवमवलानिमततविकट
वातमूत्रवर्चोसिफीठनवर्चोस्यूरकटीपृष्ठ
त्रिकपाश्वर्कुक्षिवस्तिशूलशिरोऽभितापिक्ष
बधूद्गारप्रतिश्यायकासायासशोषशोथ
मूर्च्छारोचकमुखवैरस्यतैमिर्यकण्डूनासा
कर्णशंखशूलस्वरोपघातकराणिश्यावारु
णपरुषनखनयनवदनत्वक्मूत्रपुरीषस्य
वातोत्त्वणान्यर्शोसीतिविद्यात् ।

अर्थ—वे अर्श जो शुष्क, कुम्हलाईहुई कठोर, खरखरी, रूक्ष, श्यामवर्ण, तीक्ष्ण अप्रभागवाली, टेढ़ी, फटेहूए मुखकी विषम रीतिसे फैली हुई होतीहै तथा जिनमें

शूल, आक्षेप, तोद (सुई चुभने कीसी वेदना), स्फुरण (फुरफुरी) चिमचिम और रोमोद्गम होता है, जिनमें स्निग्ध और उष्णद्रव्योंके व्यवहारसे शान्ति होती है जिनमें प्रवाहिका अध्मान होता है तथा भेद, अण्डकोप, व्रस्ति, वंक्षण और हृदयमें वेदना होती है जिसमें अंगमर्द और हृदय द्रवकी प्रवृत्तता होती है, जिसमें अधोवायु, मल और मूत्र रुकजाता है, मल कड़ा पड़जाता है, ऊरु, कमर, पीठ, त्रिक, पसली, कूख और वस्तिमें शूल होता है, शिरोवेदना, छींक, डकार, जुकाम, खांसी, आयास, शोष, सूजन, मूर्च्छा, अरुचि और मुखमें विरसता, तिमिर, खुजली, नाककान कनपटीमें वेदना, स्वरभंग, तथा जिसमें नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टा काले, लाल और परुष होजाते हैं, उसे वातज अर्थ कहते हैं ।

भवतिचात्र ।

कपायकटुतिक्तानिरूक्षशीतलघूनिच ।
प्रमिताल्पाशनन्तीक्ष्णमद्यमैथुनसेवनम् ॥
लघनदेशकालौचशीतौ व्यायामकर्मच ॥
तीक्ष्णोवातातपस्यशोहेतुर्वाताशसामिति ॥

अर्थ—कपाय, कटु, तिक्त, रूक्ष, शीतल और लघु पदार्थोंका अत्यन्त सेवन, मित-भोजन, अल्पभोजन, तीक्ष्णमद्यपान, अत्यन्त मैथुन, लघन, शीतदेश, शतिकाकाल, व्यायाम प्रचंड पवन, तेज धूप, ये सब वातज अर्थ के प्रधान हेतु हैं ।

पित्तज अर्थ के लक्षण ।

मृदुशिथिलसुकुमारान्यस्पर्शसहानिरक्त-

पीतनीलकृष्णानि स्वेदोपहेद्वहुला-
निविभ्रगन्धीनितनुपीतरक्तस्रावीणिरुधि-
रवाहीनिदाहकण्डूशूलनिस्तोदपाकवन्ति-
शिशिरोपशयानिसंभिन्नपीतहरितवर्चा-
सिपीतविस्रगन्धप्रचुरविष्णुमूत्राणिपिपासा-
ज्वरतमकसंमोहभोजनेद्वेपकराणिपीतन-
खनयनवदनत्वद्मूत्रपुरीषस्यापित्तोल्ब-
णान्यर्शासीतिविद्यात् ।

अर्थ....पित्तज अर्थ उसे कहते हैं जो मृदु, शिथिल और सुकुमार हो, जिसमें हाथ लगानेसे तकलीफ होता है, जिस का वर्ण लाल, पीला, नीला वा काला हो जिस में पसीने और छेदकी अधिकता हो, जिसमें दुर्गन्ध आती हो, पतला और पीला रक्त सरता हो, रुधिर बहता हो, जो दाह, खुजली शूल, तोद और पाकयुक्त हो, जो शीतल पदार्थों के सेवनसे शान्त होजावे, जिसमें फटाफटा पीला वा हरामल निकलै, जिसमें पीला दुर्गन्धयुक्त और अधिक मल मूत्र निकलै, जिसमें तृषा, ज्वर तमक, मोह, भोजनमें अरुचि ये उपद्रव हों, जिस में नख, नेत्र, मुख-त्वचा, मूत्र और विष्टा पीले पड़गये हों ।

भवतिचात्र ॥

कटुमल्लवणक्षारव्यायामान्यातपप्रभाः
देशकालावशिशिरौक्रोधोपद्यमसूयनम् ॥
विदाहितीक्ष्णमुष्णञ्चसर्वपानान्नभेषजम्
पित्तोल्बणानांविशेषःप्रकोपहेतुर्शसामिति

अर्थ—पित्तोल्बण अर्थको कोपके प्रधान कारण ये हैं, यथा-कटु, अम्ल, तमकान और खारे पदार्थों का अत्यन्त सेवन, व्यायाम

म, अग्नि तथा धूपका अत्यन्त सेवन, उष्ण, देश कालका सेवन, मोध, मदिरापान, निन्दा तथा विदाही, तीक्ष्ण, उष्ण अनपान और औषधी का सेवन ।

कफजअर्श के लक्षण ॥

तत्त्वयानिप्रमाणवन्पुपाचितानिःश्लक्ष्णानिःस्पर्शसहानिश्चेतपाण्डुपिच्छलानिःस्तब्धानिगुरूणीस्तिमितानिसुप्तसुप्तानि स्थिरश्वयधूनिपततिपञ्जरश्चेतरक्तीपच्छ सावीणिकण्डूबहुलानिगुरुपिच्छिलश्चेतमूत्रपुरीषाणिरूक्षोष्णोपशयानिप्रवाहि कातिमात्रोत्थानिवंक्षणानाहपरिकर्तिका हृल्लासनिष्ठीविकाकासारोचकमतिशया यगौरवच्छर्दिमूत्रकृच्छ्रशोषशोथपाण्डुरो गशतिज्वराश्मरीशर्कराहृदयेन्द्रियास्यो पलेपास्यमाधुर्यप्रभेदकराणिदीर्घकालानु पशयान्यतिमात्रमग्निमार्दवकैवल्यकराण्या मविकारप्रवलानिगुरुणिचशुक्लनखनयन वदनत्वद्मूत्रपुरीषस्यश्लेष्मोल्बणान्यर्शा सीतिविद्यात् ॥

अर्थ—कफजअर्श उन्हें कहते हैं जो घडे, मोटे, चिकने, स्पर्शके अयोग्य, सफेद, पॉले पिच्छिल, स्तब्ध, भारी, स्तिमित, फैलेहुये, स्थिर सूजनयुक्त हों, जिसमेंसे पॉला, सफेद, लाल और पिच्छिल स्राव होता है, जिसमें अत्यन्त खुजली चलती है, भारी, पिच्छिल और स्वेत वर्णका मलमूत्र निकलता है, जो रूक्ष और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे शान्त होजाता है, जिसमें अत्यन्त प्रवाहिका, वंक्षणानाह, परिकर्तिका, हृल्लास, निष्ठीवका, खांसी, अरुचि, प्रतिश्याय, भारापन, मूत्रकृच्छ्र, वमन,

शोष, शोथ, पाण्डु रोग, शीतज्वर, अश्मरी, शर्करा, हृदयोपलेप, इन्द्रियोपलेप, आस्योपलेप, मुखमें मांठापन और प्रमेहरोग ये उपद्रव होते हैं यह अर्श बहुत दिवस तक रहता है और अग्निको अत्यन्त मन्द तथा क्षीवता करता है, इसमें आमाविकार उत्पन्न होजाता है, यह रोग बढाभारी है इसके होने से नख, नेत्र, मुख, त्वचा मूत्र पुरीष सफेद पड़जाते हैं ।

भवतिचात्र ।

मधुरस्निग्धशतानिलवणानिगुरुणिच।
अव्यायातदिवास्वप्नशय्यासनमुखेरतिः।
माग्वातसेवाशतिचैदेशकालावाचितनम्।
श्लेष्मिकाणांसमुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम्॥

अर्थ—कफजअर्शके प्रधानहेतु ये हैं यथा मीठे, चिकने, शीतल, नमकीन और भारी पदार्थोंका सेवन, कसरत खुदती न करना, दिनमें सोना, पलंग वा आसनपर सुखपूर्वक बैठेरहना, पुस्त्रैवाहवाका खाना, शीतल देश-कालमें रहना और बेफिकरी ।

द्वन्द्वजादिअर्श के लक्षण ।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्वन्द्वोल्बणानिच।
सर्वहेतुस्त्रिदोषाणांसहजैर्लक्षणैःसह ।

अर्थ....जिनमें दो दो दोषोंके हेतु और लक्षण मिलेहों उन्हें द्वन्द्वजअर्श कहते हैं । जिनमें तीनों दोषों के मिलेहुए लक्षणहों तथा जो सहजअर्श के लक्षणों-से युक्त हो उसे त्रिदोषजअर्श कहते हैं ।

अशंकेपूर्वरूप ।

विष्टम्भोऽन्नस्यदौर्बल्यं कुक्षराटोप एव च ।

कार्श्यमुद्गारबाहुल्यसक्थिसादोऽल्पवि-
दूकता ॥ ग्रहणीदोषपाण्ड्वार्तिरशङ्काचो
दरस्यच । पूर्वरूपाणिनिर्दिष्टान्यशंसाम
तिष्ठद्ध्ये ॥

अर्थ....पेटमें गुड़गुड़ होना, दुर्बलता,
कूबका फूलना, कृशता, डकारोंका अधिक
आना, सक्थिसाद, दस्तका कमहोना, ग्रहणी
दोष, पाण्डुरोग आर्त्ति, उदररोगकी आशंका
ये सब अशरोगोंके पूर्वरूप हैं ।

अशंकेनाम विशेषका कारण ।
अर्शासिखलजायन्तेनासन्निपतितैः त्रि-
भिः । दोषैर्दोषविशेषात्तुविशेषः कल्प्य-
तेऽशंसाम् ॥

अर्थ—विना तीनों दोषोंके मिलनेके अ-
शरोग नहीं होताहै परन्तु जिस दोषकी प्र-
चलता होताहै उसी के नामसे वह पुकारा-
जाताहै ॥

अशंको कष्टसाध्यत्व ।

पञ्चात्मामारुतःपित्तकफोगुदबलित्रयम् ।
सर्वाण्येतानिकुप्यन्तिगुदजानांसमुद्भवो
तस्मादर्शासिदुःखानिवहुव्याधिकराणि
च । सर्वदेहोपतापीनिपायः कृच्छ्रतमा-
निच ॥

अर्थ—प्राणादिक पांच प्रकारकी वायु पित्त,
कफ और गुदाकी तीनों अंटी अशंके उत्पन्न
होनेसे एक साथ कुपित होजातीहैं, इस हेतुसे
अशं अत्यन्त दुःखदायक, बहुत व्याधियों की
करनेवाली सम्पूर्ण देहको उत्तम करनेवाली
प्रायः कष्टसाध्य होतीहै ।

असाध्य अशंके लक्षण ।

हस्तेपादेगुदेनाभ्यांमुखेवृणयणोस्तथाशो

थोहृत्पाश्वशूलीचयोऽशः सनसिद्धयति ।
हृदस्तिशूलसंमोहच्छर्दिरश्वस्यरुग्ज्वरः ।
तृष्णागुदास्यपाकश्चनिह्न्युगुदजातुरम् ॥
सहजानित्रिदोषाणियानिचाम्यन्तराव-
लिम् । जायन्तेऽर्शासिसंश्रित्यतान्यसा
ध्यानिनिर्दिशेत् ॥ शेषत्वादायुपस्तानि
चतुष्पादसमन्विते । याप्यन्तेदीप्तकाया
मेः प्रत्याख्येयोऽन्यतोऽन्यथा ॥ द्वन्द्वजा
निद्वितीयायांवलौयान्याश्रितानिच । कृ-
च्छ्रसाध्यानितान्याहुः परिसम्बत्सरा
णिच ॥

अर्थ—जिस अशरोगीके हाथ, पांव गुदा,
नाभि, मुख, अण्डकोप, इनमें शोथ होताहै
तथा हृदय और पसलीमें शूल होताहै वह
अशरोग असाध्य होताहै ॥ जिस रोगीके
हृदय और वस्तिमें शूलहो तथावमन, संगोह
अंगवेदना, ज्वर, तृषा गुदाके अग्र-
भागका पाक इन रोगोंके होनेसे अशं रोगी
मरजाताहै । जो सहज अशं त्रिदोषसे कु-
पित होकर गुदाकी भीतरली आंटीका आ-
श्रय करलेतीहैं वे असाध्य होतीहैं; यदि आयु
शेष हो, चिकित्साके चारों पाद युक्तहों और
जठराग्नि प्रदीप्तहो तौ यह रोग याप्य होजा-
ताहै, नहीं तौ असाध्य होताहै । जो सहज
अशं गुदाकी दूसरी आंटीमें आश्रित रहतेहैं
वा जो एक बरसके पुराने होगयेहैं वे कृच्छ्र
साध्य होते हैं ।

साध्यके लक्षण ।

वाह्यायान्तुबलौजातान्येकदोषोत्वणा-
निच । अर्शासिमुखसाध्यानिनचिरोत्प-

तितानिच ॥ तेषां प्रशमने यत्नमाशु कुर्याद्विचक्षणः । तान्याशु हि गुदं वद्धां कुर्याद्वद्गुदोदरम् ॥

अर्थ—जो अर्श गुदा की बाह्य वाली आंटी में एक दोपसे उत्पन्न होता है तथा जो बहुत पुराना नहीं होता है वह सुखसाध्य होता है । उसके शान्त करने के लिये बुद्धिमान् वैद्य को शीघ्र ही यत्न करना चाहिये, क्योंकि चिकित्सा में विलंब होने से अर्श गुदा के मार्ग को रोककर वद्ध गुदोदर रोग को उत्पन्न करती है ।

साध्य अर्श में कर्त्तव्य कर्म ।

तत्राहुरेकेश्चैक कर्त्तव्यं न हितमर्शसाम् ॥ दाहं क्षारेण चाप्येके दाहमेके तथाग्निना । अस्त्येतद्भूरितन्त्रेण धीमता हृष्टकर्मणा । क्रियते तिलविधं कर्म भ्रंशस्तस्य सुदारुणः ।

अर्थ—कोई २ यह कहते हैं कि मस्तोंका शस्त्र से काट डालना हित है कोई यह कहते हैं कि क्षार वा आग्नि से दग्ध कर देना चाहिये ये तीन उपाय शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् और क्रिया कुशल वैद्य के करने के हैं इन कर्मों में विघ्न पडने से भयंकर उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

कर्मभ्रंश के उपद्रव ।

पुंस्त्वोपघातः श्वयं गुदे वेगपरिग्रहः ॥ आध्मानं दारुणं शूलं व्यथारक्तातिवर्त्तनम् । पुनर्विरोहो रुंढानां क्रिदो भ्रंशो गुदस्य च । मरणं वा भवेच्छीघ्रं शस्त्रक्षाराग्निविभ्रमात् ।

अर्थ—शस्त्रकर्म, क्षारकर्म वा अग्निकर्म में किसी प्रकार से विभ्रम पडने से क्लीबता, गुदा में सूजन, मल मूत्रादि वेगका विनिग्रह, अफाग, दारुणशूल, व्यथा, रधिरक्ता बहना,

मस्तोंका फिर उत्पन्न होना, क्लेद, गुदा की भ्रंशता अथवा मृत्यु ये उपद्रव शीघ्र ही होते हैं यत्तु कर्म सुखोपायमल्पभ्रंशमदारुणम् ॥ तदर्शसां प्रवक्ष्यामि समूलानां निवृत्तये ॥

अर्थ—अब हम अर्श संबंधी उन उपायों का वर्णन करते हैं जो बहुत सुखसाध्य हैं, जिन में भ्रंश होनेका बहुत कम डर है और जो बहुत कठिन नहीं हैं । ऐसे ऐसे उपायों को जड समेत अर्श को खो देने के निमित्त वर्णन करते हैं ।

वातश्लेष्मोल्वणान्याहुः शुष्काण्यर्शां सितद्विदः ॥ मस्रावीण तथा द्रांणिरक्तपित्तो ल्वणानिच । तत्र शुष्कार्शसां पूर्वमवक्ष्यामि चिकित्सितम् ॥

अर्श के पहचानने वाले वात कफोद्भव अर्श को सूखी ववासीर कहते हैं । और जो रक्तपित्त जन्म है, उसे स्यावी वा गीली कहते हैं । अब हम प्रथम शुष्क अर्श की चिकित्सा का वर्णन करते हैं ।

शुष्क अर्श की चिकित्सा ।

स्तब्धानि स्वेदयेत्तानि शोफशूलान्वितानि च । चित्रकक्षारविल्वानां तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् ॥ यवमाषपुलाकानां कुलत्थानां च पोटलैः । गोखराभशकृत्पिष्टैस्तिलकलैस्तु पुरापि ॥ वचाशताहापिण्डैर्वा सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः । सक्तूनां पिण्डकाभिर्वा स्निग्धानां तैलसर्पिषा ॥ शुष्कमूलकापिण्डैर्वा पिण्डैर्वा कपर्णगन्धिकैः रास्नापिण्डैः सुखोष्णैर्वा सस्नेहैर्हृषु पुरापि ॥ इष्टकस्थखराभ्यां शार्कैर्गृह्णनकस्य च । अभ्य

ज्यकुष्ठतेलनस्वेदेयेत्पोटलीकृतैः ॥

अर्थ—जो अर्श स्तब्ध, शोकयुक्त और शूलयुक्त है उनमें चीता, जवाखार और बेल फलके तेलकी मालिश करके स्वेदन कर्म में नांचे लिखेद्वेय प्रयोगों को युक्त करें, यथा जौ, उरद, पुलाक और कुलथी इनको उबाकर पोटली में बांधें और इस पोटली से धीरे २ सेकने पर स्वेदन होता है। अथवा गौ, गधा, और घोड़े की लीदकी पोटली बनाकर सेकें। अथवा तिलका कल्क और तुप, प्रयुक्त करें। अथवा वच और सोंठको पीसकर घी डालकर पकावें और गरम २ से सेकें। अथवा घी तेल डालकर सत्तूका गोला बनाकर सेकें। अथवा सूखी मूलीका गोला वा सड़नेका गोला बनाकर सेकें। रास्ना के गरम २ लुगद वा स्नेहयुक्त हाऊबेके लुगदसे सेकें अथवा कूठका तेल लगाकर ईंट, गंधकी लीद, और गाजर के सागकी पोटली बनाकर सेकें।

वृषार्कैरण्डविल्वानांपत्रोत्काथैश्चेत्तत् ।
मूलकत्रिफलार्काणांवेणुनांवारणस्यच ॥
अग्निमन्थस्यशिग्रोश्चपत्राण्यश्मन्तकस्यच
जलेनेत्काथ्यशूलार्त्तस्वभ्यक्तमवगाहयेत् ॥
कीलोत्काथेऽथवाकोष्णेसौवीरकतु
पोदके । किण्वोत्काथेऽथवातक्रेदधिमण्डा
म्लकाजिके ॥ गोमूत्रेवासुखोष्णौत

शूलार्त्तमुपवेशयेत्

अर्थ—अड़सा, आक, अंडी और बेल इनके पत्तोंका काथ कर के सेवन करें। शूलयुक्त अर्शरोगीको अच्छीतरह अभ्यक्त

करके मूली, त्रिफला, आक, वांस, वरना, अरनी, सहजना और अश्मन्तक इनके पत्तों काकाथ करके स्नान करावें। अथवा बेरके काथम सौवीर वा तुपोदक में, अथवा किण्वके काथ में अथवा तक्र, दधिमण्ड वा अम्लकांजीमें अथवा गरम २ गोमूत्रमें शूलयुक्त अर्शरोगी को बिठादेवें।

अर्श में अन्यप्रयोग ।

कृष्णसर्पवराहोष्ट्रजतूकावृषदंशजम् ॥ व-
सामभ्यजनंकुर्व्याघ्रपनचाशिसंहितम् । वृ-
केशाःसर्पनिर्मोकोवृषदंशस्यचर्मच ॥ अ-
र्कमूलशमीपत्रअर्शोभ्योधूपनंहितम् । तु-
म्बुखणविटंगानिदेवदाक्षताघृतम् । वृ-
हतीचाश्वगन्धाक्षपिप्पल्यःसुरसोघृतम् ।
वराहवृषवद्वचधूपनंशक्तवोघृतम् ॥

अर्थ—कालसांप, सूरर, ऊंट, जतूका [चमगड्ड] वा बिछी की चर्बीका अर्श पर मर्दनकरें ॥ मनुष्यके केश, सर्पकी की कांचली, बिछीका चर्म, आककी जड़, शमीपत्र इन सबकी धूप मस्तों को देवें। अथवा धनियां, बायाबिडंग, देवदारु, अक्षत और घृत। अथवा कटेरी, असगंध, पीपल, सुरसा तुलसी और घी ॥ अथवा सूरर और बेलकी विष्टा, सत्तू और घी इन प्रयोगोंको धूप देनेके लिये काममें लावें ॥

अर्शपरलेप ।

कुञ्जरस्यपुरीपन्तुघृतंसर्जरसोरसःहरि
द्राचूर्णसंयुक्तंमुधाक्षीरंमलेपनम् ॥ गोपि
क्षपिष्टाःपिप्पल्यःसहरिद्राःप्रलेपनम् । शि
रीषबीजंकुष्ठपिप्पल्यःसैन्धवगुहः । अ-

कक्षीरमुधाक्षीरत्रिफलाचमलेपनम् ॥ पि-
प्पल्याः चित्रकाः श्यामाः किण्वमदनतण्डु-
लाः ॥ मलेपः कुक्कुटशकृत्हरिद्रागुडसंयुतः
निकुम्भः सामृतासंगः पारावतशकृद्गुडः ।
मलेपः स्याद्रजास्थीनिनिम्बोभल्लातकानि
च ॥ मलेपः स्यादलर्केणवसन्तजवसायु-
तः । शूलश्वयथुहृद्रोगे चुलकीवसयाथवा ॥
आर्कपयः मुधाकाण्डकदुकालावुपलवाः ।
करञ्जोवस्तमूत्रचलेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ॥ अ-
भ्यंगाद्याः प्रदेहान्ताय एते परिकीर्त्तिताः ॥
स्तम्भश्वयथुकण्डवर्त्तिशमनास्तेऽर्शसामताः

अर्थ—हार्थीकी लीद, घी, राल, पारा,
हल्दी और सेंहुडदूध इनको सानकर अर्श
पर लेप करें । अथवा पीपल और हल्दी
को गौंके पित्तेमें पीसकर लेप करें अथवा
सिरसके बाज, कूठ, पीपल, सेंधानमक
गुड, आकका दूध, सेंहुडका दूध, त्रिफला
इनका लेप करें ॥ अथवा पीपल, चीता,
श्यामा, सुरावीज, मेनफल, चावल, मुर्गेकी
बाँठ, हल्दी और गुड इन सबका मिलाकर
लेप करें ॥ अथवा दन्ती, मुर्दासंग,
कवृत्तरकी बीट, गुड, हार्थीदांत, नीम
और भिलाया इनका लेप करें । अ-
थवा शूल, सूजन और हृद्रोग से युक्त
अर्श में ऊंटकी चर्बी वा चुलकी की चर्बी
के साथ सफेद आकका लेप करें । अथवा
आकका दूध, सेंहुडके डठल, कडवी तूवी
के पत्ते, कंजा, बकरेका मूत्र इनका लेप भी
अर्शमें हितकारक है ।

अभ्यंगसे लेकर प्रदेहतक जो प्रयोग व-

र्णन कियेगये हैं वेस्तम्भता, सूजन, खुजली
और आर्तियुक्त अर्शमें हितकारक हैं ।
प्रदेहान्तरूपक्रान्तान्यर्शासिप्रस्रवन्ति हि
संश्रितदुष्टरुधिरं ततः सम्पद्यते सुखम् ।
शीतोष्णस्निग्धरुक्षैर्हि न न्याधिरुपशाम्यति
रक्तदुष्टेभिषक्तस्माद्रक्तमेवावसेचयेत् ।
जलौकाभिस्तथा शस्त्रैः सूचीभिर्वा पुनः पुनः
अवर्त्तमानं रुधिरं रक्ताशोभ्यः प्रवाहयेत् ॥

अर्थ—प्रदेह पर्यन्त उपचारोंके करने
से विगड़ा हुआ संचित रुधिर निकलजाता
है इसके निकलजानेसे सुख होता है । दुष्ट
रुधिरके विद्यमान होनेपर शीतल, उष्ण,
स्निग्ध और रुक्ष उपचारोंके करने से व्या-
धि शान्त नहीं होती है इसमें रुधिरका निका-
ल देना आवश्यककीय बात है खूनवायासरि
में जो रुधिरका निकलना बन्द होगया हो
तो जोक, शस्त्र वा सूची द्वारा रुधिर को
निकालता रहे ॥

अर्श में पेय औषध ॥
शुदश्वयथुशूलार्चमन्दाग्निपाययेच्चतम् ।
त्र्युपणं पिप्पलीमूलपाठां हि गुंसचित्रकम् ॥
सौवर्चलं पुष्कराख्यमजार्जो विल्वपेपि
काम् ॥ विडंयवान्नीहपुपां विडङ्गसैन्धवं
वचां ॥ तिन्तिडीकश्चमण्डेन मधेनो
ष्णोदकेन च । तथा शोणहणीदोपशूलानां
हादिमुच्यते ॥

अर्थ—गुदाके सूजन, शूल और मन्दाग्नि
युक्त अर्शमें निम्नलिखित द्रव्योंका पान
करावै, यथा त्रिकुटा, पीपलामूल, पाठा, ही-
ग, चीता, संचलनमक, कुडा, कालाजीरा,

वेलगिरी, विडनमक, अजवायन, हाऊवर, वायव्रिडंग, संधानमक, वच इमली, इनको सुरामण्ड, और उष्णजल के साथ पानकरै तौ अर्शरोग, ग्रहणादोष शूल और आनाह दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

कुर्याद्वापाचनंतस्ययदुक्तं ह्यातिसारिके ।
सगुडामभयांवाथप्राशयेत्पूर्वभक्तिकीम्
पाययेत्त्रिवृच्चूर्णं त्रिफलायारसेनवा ।

हृतेगुदाश्रयेदोषेगच्छन्त्यशीसिसंक्षयम्

अर्थ—अतिसारकी चिकित्सामें जो पाचन द्रव्य वर्णन कियेगयेहैं उनका प्रयोग भी इसे जगह हितहै । यथा भोजन करने से पहिले हरड और गुड मिलाकर सेवन करै । अथवा त्रिफलाके रसके साथ निसेधका चूर्ण पान करै । इन प्रयोगोंके द्वारा गुदाश्रित दोषोंके दूर होनेपर अर्श नष्ट होजाताहै ।

अन्यप्रयोग ।

गोमूत्राभ्युपितांद्यात्सगुडांवाहरीतकीम्
हरीतकीतक्रयुतां त्रिफलांवाप्रयोजयेत् ॥
सनागरंचित्रकंवाशीधुयुक्तं प्रयोजयेत् ॥
चव्यंवाशीधुसंयुक्तमजाजीदीप्यकंपिबेत्
सुरांवाहपुपां पाठांयुक्तांसौवर्चलायुताम् ॥
दधित्यविल्वयुक्तांवातथावाचव्यचित्रकौ
भल्लातकयुतांवायमदद्यात्तत्रतर्पणम् ॥
विल्वनागरयुक्तंवायवान्या चित्रकेणवा
चित्रकंहपुपांहिगुंदद्याद्वातक्रसंयुतम् ॥
पञ्चकोलयुतंवापितक्रमस्मैप्रदापयेत् ।

अर्थ—गोमूत्रमें हरडको भिजोकर गुड के साथ देवै । अथवा मठेके साथ हरड वा

त्रिफलाका प्रयोग करै अथवा सोंठ और चींते को शीधुमें मिलाकर देवै अथवा शीधुके साथ चव्य वा कालाजीरा और अजवायन पीवै अथवा हाऊवर, पाठां, संचलनमक इनको सुराके साथ पान करै । अथवा कैथ और वेलगिरी, अथवा चव्य और चींता अथवा मिलायेके साथ तर्पणका प्रयोग करै अथवा वेलगिरी और सोंठ, अथवा अजवायन और चींता अथवा चींता, हाऊवर और हॉग इनको मठेके साथमें देवै । अथवा मठाके साथ पंचकोलका चूर्ण देवै ।

तक्रारिष्ट ।

हपुपांकुञ्चिकांधान्यमज्जार्जीकारवींशतीम्
पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पली
मूयवानींचाजमोदांचचूर्णितंतक्रसंयुतम्
मन्दांम्लकटुकंविद्वान्स्थापयेदघृतभाजने
व्यक्तांम्लकटुकंजातंतक्रारिष्टंमुखप्रियम्
प्रापिवन्मात्रयाकालेप्वन्नस्यतृपितस्त्रिपु ।
दीपनरोचनंवर्यकफवातानुलोमनम् ॥
गुदश्चयधुकण्डूवर्तिनाशनंघलवर्द्धनम् ॥

अर्थ.... हाऊवर, छोटाजीरा, धनियां, काला जीरा, कारवी, कचूर पीपल पांपलामूल, चींता गजपीपल, अजवायन, अजमोद इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावै और मठेमें मिलावै इसमें कुछ खट्टा और कटु रस होगा, तदनंतर इसे घृत के पात्रमें भरकर रखदे जब इसमें अम्ल और कटुरस तेज होजाय तब जानना चाहियेकि तक्रारिष्ट तयारहुआ, यह मुखको अत्यन्त प्रिय लगताहै । भोजन के तीनों कालोंमें तृषा लगने पर इसीका मात्रा

के अनुसार पान करें । यह तक्रादिष्ट अग्नि
सदीपन, रोचन, वर्णकारक, कफवातानुलो-
मनकर्त्ता, गुदाकी सूजन, कण्डू और अर्श
का नाश करने वाला तथा बलवर्द्धक होता है
अर्श में तक्र प्रयोग ।

त्वचंचित्रकमूलस्यपिष्वाकुम्भं प्रलेपयेत् ॥
तक्रं वादधिवातत्रजातमर्शोहरं पिबेत् । वा
तश्लेष्माश्लेसांतक्रात्परं नास्तीह भेषजम् ॥
तत्प्रयोज्यं यथा दोषसंश्लेहं रूक्षमेव वा । स
साहं वादशाहं वा पक्ष्मासमध्यापि वा । चल
कालविशेषज्ञो भिषक्तक्रं प्रयोजयेत् ।

अर्थ—चीतेकी जड़की छालको पीसकर
घंघेके भीतर लेप कर दिया जाय तदनन्तर
उसमें तयार किया हुआ मठा या दही अर्श-
रोगमें अत्यन्त हितकारक है । वात और क-
फसे उत्पन्न अर्शमें तक्रसे उत्तम और को-
ई औषध नहीं है, दोषके अनुसार सिग्ध वा
रूक्ष तक्रका प्रयोग करें । बल और काल
को जाननेवाला वैद्य सात दिन दसदिन,
पन्द्रह दिन वा महीने भरतक तक्रका प्रयोग
कर सकता है ।

अत्यर्थं मृदुपाकाग्नेस्तक्रभेदावचारयेत् ।
सायं बालाजशक्वतूनादधातक्रावलेहिका
या जीर्णेतक्रेप्रदद्याद्वातक्रेपेयांसं सन्ध्याम्
तक्रानुपानं सस्नेहं तक्रौदनमथोत्तरम् । यू-
ष्मासं सरसैर्वापि भोजयेत् तक्रसाधितम् ॥

अर्थ—जठराग्निके अत्यन्त मन्द होजाने
पर तक्रांशुके द्वारा चिकित्सा करें, अथवा
सायंकालके समय खीलोंके सत्तूका तक्रके
साथ अवलेह बनाकर दें । तक्रके पचने

पर तक्रके साथ संधानमक की पेया दें ।
तक्रका अनुपान करावे । तक्रके साथ घृत
युक्त चांवलोंका भात दें । अथवा तक्रके
साथ सिद्ध किया हुआ यूप वा मांसरस दें ।

तक्रसेवनका क्रम ।

कालक्रमतः सहसानं च तक्रं निवारयेत् ।
तक्रप्रयोगान्मासान्ते क्रमेणोपशमोमतः ॥
अपकर्षो यथोक्तो न त्वत्रादपकृष्यते ।
प्रत्यागमनरक्षार्थं दाढ्यो र्धमनलस्य च ॥
बलोपचयवर्णार्थं क्रमोपवर्णयेत् ।

अर्थ....कालके क्रमको जाननेवाला वैद्य
तक्रके सेवनका सहसा परित्याग न करादे-
वे । जो तक्र एक महीने तक सेवन किया
गया है उसका त्याग एक महीनेमें क्रम २से
करावे । अन्नके सेवनसे तक्र सेवनमें कमी
नहीं होती है इस क्रमके अवलंबन करने से
अर्शरोग फिर उत्पन्न नहीं होसکتा है अग्निदृढ
होजाती है, बल, पुष्टि और वर्ण बढ़ता है ।
रूक्षमर्दोद्धृतस्नेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम् ।
तक्रदोषाग्निबलवित्त्रिविधं तत्प्रयोजयेत् ।
हृत्तानि निविरोहन्ति तत्रेण गुदजानितु ॥
भूमावपि निपिक्तं तद्देहं तत्र तृणोलुपम् ।
किंपुनर्दीप्तकायाग्नेः शुष्काप्यर्शांसि देहि-
नः ॥ स्रोतः सुतक्रशुद्धे पुरसः सम्यगुपैति
यः । तेन पुष्टिर्बलं वर्णः प्रहर्षश्चोपजायते ॥
वातश्लेष्मविकाराणां शतं चापि निवर्त्तते ।

अर्थ—दोष, अग्नि और बलका जानने
वाला वैद्य रूक्षतक्र, अर्दोद्धृत स्नेह और
अनुद्धृत घृत इन तीन प्रकारसे तक्रका प्र-
योग करें । इनमेंसे पहिली विधि कफाधिक्य

दद्यान्मत्स्यण्डिकां पूर्वभक्षयित्वासनाग
राम् । गुडसनागपाठाफलाम्लपायये-
चतम् । गुडघृतयवक्षारयुक्तं वापि मयोज
येत् । यमानीनागरपाठादाडिमस्वरसं-
गुडम् ॥ सतक्रंलयणं दद्याद्वातवर्चोऽनु-
लोमनम् ।

अर्थ—पहिले सोंठके चूर्ण और मिश्रीको
फाँककर घृतयुक्त सच्चा और नमक मिलीहुई
प्रसन्ना अर्थात् मुरामण्डका पान करे । अथ-
वा गुड, सोंठ और पाठा वा अनारका रस
पान करावे । अथवा गुड घृत और जवाखार
का प्रयोग करे । अथवा अजवायन, सोड,
अनारकारस गुड तक्र और सेंधानमक ये सब
मिलाकर देवे । इस प्रयोगका सेवन करनेसे
अधोवायु तथा विष्टाका अनुलोमन होता है ।
दुःस्पर्शकेन विल्वेन यवान्यानागरेण वा ॥
एकैकेनापि संयुक्ता पाठादन्त्यर्शसां रुज्जमाः ।
प्रागुक्तयमके भृष्टान् श्वेतुभिश्चावचूर्णिताम्
करञ्जपल्वान् दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनात् ।
मदिरां वा सलवणां शीघ्रं सौवीरकं तथा ।
गुडनागरसंयुक्तां पिवेद्वापि वैभक्तिकम् ॥

अर्थ....जवासा, वेलगिरी, अजवायन,
और सोंठ इन चारोंमें से एक २ के साथ
पाठाका काथ करके पानसे अर्शरोग दूर
हो जाता है । पूर्वोक्त घृत और तेल में कंजों
के पत्तोंको भूनकर सत्त के साथ सेवन करे
तो अधोवायु और मलका अनुलोमन होय
है । अथवा भोजन करनेसे पहिले सेंधानम
क मिलाकर मदिरा, अथवा गुड और सोंठ
मिलाकर सोधु और सोवीरकका पान करे ॥

अर्शपरघृतके प्रयोग ॥

पिप्पलीनागरक्षारकारवीधान्यजीरकैः ।
फाणितेन च संयोज्य फलाम्लदापयेद्धृतम् ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्प-
ली । शृंगवेरयवक्षारतैः सिद्धं वापि च दृतम् ।
चव्यचित्रकसिद्धं वा गुडक्षारसमन्वितम् ।
पिप्पलीमूलसिद्धं वा स गुडक्षारनागरम् ॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलदधिदाडिमधान्यकैः
सिद्धं सर्पिर्विधातव्यं वातवर्चो विवन्धनुत्

अर्थ—पीपल, सोंठ, जवाखार, कालाजी
रा, धनियां, जीरा और गुडकी राव इन सब
में अनारदानेकी खटाई और घृत डालकर
सेवन करे । अथवा पीपल, पीपलामूल,
चीता, गजपीपल, अदरख और जवाखार
इनमें सिद्ध किया हुआ घृत पान करे । अथवा
चव्य और चीतेके साथ सिद्ध किया हुआ,
वा गुड और जवाखारमें मिलाकर, वा पी-
पलामूलके साथ पिद्ध किया हुआ जिसमें
गुड, जवाखार और सोंठ मिलाकर अथवा
पीपल, पीपलामूल, दही, अनार, धनियां
इनके साथ सिद्ध किया हुआ घृतपान क-
रावे, अधोवायु और दस्तकी रुकावट दूर
हो जायगी ॥

चव्यादिघृत ।

चव्यं त्रिकदुकपाठाक्षारंकुस्तुम्बुरुणिच ।
यवानीपिप्पलीमूलमुभेचविडसंधवे । चि-
त्रकं विल्वमभयां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।
शकृद्वातानुलोम्यार्थं जाते दधिचतुर्गुणे ॥
प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् ।
गुदवंक्षणशूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति ॥

अर्थ—चव्य, त्रिकुटा, पाठा, जवाखार, धनियां, अजवायन पीपलामूल, विडनमक, सैधानमक, चीता, बेलफल, हरड इनको पीसकर चौगुने दहीके साथ घृतको पकावै। इस घृतके सेवनसे विष्टा और अधोवायुका अनुलोमन होता है। तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, परिस्त्राव, गुदशूल और वंक्षणशूलको भी दूरकरता है।

नागरादिघृत

नागरपिप्पलीमूलचित्रकोहस्तिपिप्पली श्वदंष्ट्रापिप्पलीधान्यं विल्वपाठायमानिकाः। चाङ्गेरीस्वरसेसर्पिःकल्कैरैतैर्विपाचयेत्। चतुर्गुणेनदध्नाचतुर्दृतकफवातनुत्। अर्शासिप्रहणीदोषमूत्रकृच्छ्रप्रवाहिकाम्। गुदभ्रंशार्तिमानाहघृतमेतद्व्यपोहति।

अर्थ—सोंठ, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, गोखरू, पीपल, धनियां, बेलगिरी, पाठा, अजवायन, इन सबको पीसकर चांगेरी के रस तथा चौगुने दहीके साथ घृत को पकाकर सेवन करै तौ कफवात दूर होता है। इस घृतसे अर्शरोग, प्रहणीदोष, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, अर्ति और आनाह ये सब रोग दूरहोजाते हैं।

पिप्पल्यादिघृत।

पिप्पलीनागरपाठांश्वदंष्ट्राश्चपृथक्पृथक् भागांस्त्रिपलिकानुकृत्वाकपायमुपकल्पयेत्॥ कण्डीरंपिप्पलीमूलव्योषंचव्यश्च चित्रकम्। पिष्ट्वाकपायेविनयेत्पूतेद्विपलिकंभिषक्॥ पलानिसर्पिस्तस्मिन्

त्वारिशतपदापयेत्। चाङ्गेरीस्वरसंतुल्यं सर्पिपादधिपद्गुणम्॥ मृदग्निनाततःसाध्यंसिद्धंसर्पिर्निधापयेत्। तदाहारेविधा तव्यपानेप्रायोगिकेविधौ॥ ग्रहण्यर्शो विकाररुन्मूलमहद्रोगेनाशनम्। शोथप्लीहोदरानाहमूत्रकृच्छ्रज्वरापहम्॥ कासहिकारुचिश्वाससूदनपार्श्वशूलनुत्। बलपुष्टिकरंवर्ण्यमग्निसन्दीपनंपरम्॥

अर्थ—पीपल, सोंठ, पाठा और गोखरू इन चारोंको तीन २ पल लेकर सयका काथ करलेवै। इस काथको छानकर इसमें कण्डीर [एक प्रकारकी तुलसी होती है], पीपलामूल, त्रिकुटा, चव्य और चीता दो २ पल पीसकर मिलादेवै, तथा घृत चालीस पल, इतनाही चांगेरीका रस और घांसे छः गुना दही डालकर मंदी २ आग पर पकावै। इस घृतका विधिपूर्वक खानेपीनेमें प्रयोग करनेसे ग्रहणी, अर्श, गुल्म, हृद्रोग, शोथ, प्लीहा, उदररोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, खांसी, हिचकी, अरुचि, श्वास और पार्श्वशूल दूर होजाते हैं ॥

हरीतकी प्रयोग।

सगुडांपिप्पलीयुक्तांघृतभृष्टांहरितकीम्। त्रिवृदन्दीयुतांवापिभक्तयेदानुलोमिकीम्। विद्वातकफपित्तानामानुलोम्येननिर्मले। गुदेऽर्शासिप्रशाम्यन्तिपावकश्चाभिवर्द्धते।

अर्थ—हरडको घीमें भूनकर पीपल और गुड मिलाकर सेवन करै अथवा निसोथ और दंती मिलाकर भक्षण करै तौ विष्टाका अनुलोमन होता है। इसके सेवनसे विष्टा,

अधोवायु, कफ और पित्तका अनुलोमन होता है, गुदा निर्मल होजाती है अर्शजाता रहता है और जठराग्नि प्रदीप्त होजाती है ॥

अर्श पर पथ्य ।

वर्हित्तिचिरिलावांनारसान्म्लान्मुसस्कृतान् ॥ दक्षाणां वर्त्तकानां श्रद्धाद्विदवातसंग्रहे विष्टदन्ती पलाशानां चाद्देय्याश्चित्रकस्य च ॥ सुभृष्टं यमकेदद्याच्छाकं दधिसरायुतम् उपोदिका तण्डुलीयवीरां वस्तुकपलवान् सुवर्चलां सलोणां कायवशाकमवल्लुङ्गम् । काकमाचीं रुद्रापलं महापत्रं तथा म्लिकाम् जीवन्ती शदिशाकं च शाकं यज्जनकस्य च । दधिद्रादिमसिद्धानि भृष्टानियमकेऽपि च धान्यनागरयुक्तानि शाकान्येता निदापयेत् । गोधाश्ववित्सलोपाकगार्जारोष्णवामपि ॥ कूर्मशल्लकयोश्च वसाधयेच्छाकवद्रसान् । रक्तशाल्योदनं दद्याद्रसैस्त्वैर्वातशान्तये ॥

अर्थ....विष्टा और अधोवायुका अवरोध होने पर मोर तीतर मुर्गी, बतक और लवाके मांसरसमें खटाई डालकर सेवन करें । अथवा निसोध, दन्ती, ढाक, चांगेरी और चीता इनके शाकको घी तेलमें भूनकर दही की मलाईके साथ सेवन करें अथवा पोई, चोलाई, काकोली, बधुआ, सांचौली, नीनिया, यवशाक, वावची, मकोय गिलोयके पत्र, महापत्र, अम्लिका, जीवन्ती, शटी, गाजर इनके शाकको घी तेलमें भूनकर दही और अनारकी खटाई डालकर तथा धनियां और सोंठ मिळारदेवै ॥

गोह, सेह, लोपाक, विहरी, ऊंट, गौ, कछुआ और शालकी इनके मांसरसको ऊपर कहे हुए शाकोंकी तरह सिद्ध करें और इन मांसरसोंके साथ वातकी शान्तिके निमित्त लाल शालीचाबलोंका भातदेवै ॥

अर्श पर मद्यविधि ।

ज्ञात्वा वातो लवणं रुक्षं दीप्तिं शुद्धजातुरम् ॥ मदिरां शार्करं जातशीधुतं क्रतुपोदकम् ॥ अरिष्टं दधिमण्डं वा शृतं वा शिशिरं जलम् । कण्टकार्यं शृतं वा पिशृतं नागरधान्यकैः ॥ अनुपानं भिषग्दद्यात् वातवर्चोऽनुलोमनम् अर्थ....वाताधिक्य अर्शमें यदि रोगी के रुक्षता तथा अग्निसेदीपनहो तो शर्करा से बनी हुई मदिरा, शीधु, तक्र, तुपोदक अरिष्ट दधिमण्ड, वा औटाकर, ठंडा किया हुआ जल वा कटेरी डालकर औटया हुआ जल, वा सोंठ और धनियां डालकर औटया हुआ जल अनुपानमें देवै तो अधोवायु और विष्टा का अनुलोमन होता है ।

अनुवासनके योग्य मन्त्रंय ।

उदावर्त्तपरीतायेयचात्यर्थविरुक्षिताः ॥

विलोमघाताः शूलार्चाः तेष्विष्टमनुवासनम्

अर्थ....जो उदावर्त्त रोगी हैं, अत्यन्त रुक्ष हैं जिनकी वायु विलोम होगई है तथा जो शूलार्त्त हैं उनको अनुवासन हित है ।

आनुवासनिक तैल ।

पिप्पलीमदनं विल्वं शताहामधुकं वचाम् ॥

कुपुंशर्वोपुष्कराख्यं चित्रकं देवदारुच ॥

पिद्धतैवेऽपि पक्त्वा पयसादिगुणेन च ॥

अर्शसां मूढवातानां तच्चेष्टमनुवासनम् ॥

दनिःसरणंशूलमूत्रकृच्छ्रप्रवाहिकाम् । क
द्यूरुपुष्टौर्विलयमानाहंक्षणाश्रयम् । पि
च्छास्त्रावंगुदंशोफंवातवर्चोविनिग्रहम् ॥

उत्थानं बहुशोयच्च जयेत्तच्चानुवासनम् ।

अर्थ....पीपल, मेनकल, बेलगिरी, सोंफ, मुल्हठी, वच, कूट, शठी, पुष्कर, चीता, देवदारु, इन सबको पीसकर दूना दूध डालकर ते भोँ पकावै । यह अनुवासन अर्श रोग तथा गुदवातमें हितकारी होता है । इसमें गुदाका निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका, कमर, ऊरु और पीठकी दुर्बलता, वंक्षणका आनाह, पिच्छास्त्राव, गुदाकी सूजन तथा अधोवायु और विष्टाका विबंध, बारबार रोगका उठना ये सब दूर होजातेहैं । अनुवासनिकैःपिष्टैःसुखोष्णैःस्नेहसंयुतैर्दाबन्तैःस्तब्धशूलानिगुदजानिप्रलेपयेत् दिग्ध्वातैःप्रस्रवन्त्याशुश्चेप्पपिच्छांसशोषिताम् ॥ कण्ठस्तम्भसरुक्षोफःस्नुतानां विनिवर्त्तये ।

अर्थ—पीपलसे लेकर देवदारु पर्यन्त सब आनुवासनिक द्रव्योंको पीसकर स्नेह मिलाकर कुछ गरम करले और इसका लेप करे तो अर्शसे उत्पन्न हुआ शूल और स्तब्धता दूर होजाती है । इस लेपके करनेसे रक्तसहित पिच्छिल कफ तत्काल निकलजाताहै और खुजली, स्तम्भता, वेदना और सूजन रक्तके निकलनेसे दूर होजाती है ।

निरुहण प्रयोग

निरुहवाप्रयुज्जीतसत्तीरंदाशमूलिकम् ॥
समृन्नेहलवणकल्कैर्युक्तफलादिभिः ॥

अर्थ—दूध, दशमूल, गोमूत्र, स्नेह, सेंधा नमक और मेनकल इनका काथ करके निरुहणवास्तिका प्रयोग करे ॥

हरीतक्यारिष्ट ।

हरीतकीनां प्रस्थार्द्धमस्थामामलकस्य च ॥
स्यात्कपित्थादशपलंततोऽर्द्धाचेन्द्रवारुणी ।
विडङ्गपिप्पलीरोध्रंमरिचंसेलवालुकम् ।
द्विपलांशंजलस्यैतच्चतुर्द्रोणेविपाचयेत् ॥
द्रोणशेपेरसेतस्मिन्पूतशीतिसमावपेत् ॥
गुडस्यद्विशतंतिष्ठेत्तत्सर्वघृतभाजने ।
पक्षादध्वमेवत्पेयाततोमात्रांयथावलम् ॥
अस्याभ्यासादरिष्टस्यनश्यन्तिगुदजानपि ।
ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहागुल्मोदरापहाः ॥
कुष्ठशोफारुचिहरोवलवर्णाग्निवर्द्धनः ।
सिद्धोऽयमभयारिष्टःकामलाश्वित्रनाशनः ॥
किमिग्रन्ध्यवुद्व्यङ्गराजयक्ष्मज्वरान्तकृत् ।

अर्थ....हरड़ आधाप्रस्थ, आंवला एक प्रस्थ, कैथ दशपल, इन्द्रायण पांचपल, वायविडंग दो पल, लोध दोपल, कालीमेरच दोपल, एलुआ दोपल इन सबको चार द्रोण जलमें पकावै जब चौथाई शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवै, जब यह ठंडा होजाय तब इसमें दो सौ पल गुड डालकर घाँके पात्रमें भरेदेवै और एकपक्ष पीछे बलके अनुसार इसकी मात्राका सेवन करे । इस अरिष्टके सेवनका अभ्यास करनेसे अर्शरोग ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म रोग, उदररोग, कुष्ठ, शोफ, अरुचि, इनको नाश करता है, यह वर्ण और अग्निको

बढाता है, यह अरिष्ट अनुभव किया हुआ है, इस से कामला और श्वित्र दूर होजाते हैं । तथा क्रिमिरोग, ग्रन्थिरोग, अर्बुद, व्यंग राजयक्ष्मा और ज्वर नष्ट होजाते हैं ॥

दन्त्यारिष्ट ।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः ॥
भागान्पलांशानामपोथ्यजलद्रोणेविपाचयेत् ।
त्रिफलायादलानां च प्रक्षिप्यत्रिपलं ततः ॥
रसेचतुर्थशेषेतुषूतशीतिसमावपेत् तुलां गुडस्य तच्चिष्टेत्मासार्द्धघृतभाजने ।
तन्मात्रयापिवेत्रित्यमर्शोभ्योऽपि प्रमुच्यते ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं वातवर्चोऽनूलो मनम् ॥
दीपनश्चासुचिघ्नश्च दन्त्यारिष्टमिदं विदुः ।

अर्थ....दन्ती, चीतेकी जड़, दोनों पंचमूल इन सबको एक एक पल लेकर [सब बारह पल] तथा त्रिफलाके छिलके तीन पल कूटकर एक द्रोण जलमें पकावै, जब चौथाई शेष रहजाय तब उतारकर छानले और ठंडा होनेपर एक तुला गुड डालकर घाँके चिकनेपात्रमें भरकर पंद्रह दिवस तक धरा रहनेदेवै । तदनन्तर बलके अनुसार नित्यप्रति सेवन करने से अर्श, ग्रहणीरोग पाण्डुरोग दूर होजातेहैं । अधोवायु और विष्टाका अनुलोमन होता है, यह दन्त्यारिष्ट अग्निसंदीपन और अरुचिनाशक होताहै ।

फलारिष्ट ।

हरति कफं फलमस्थं प्रस्थमामलकस्य च ।
विशालायादधित्यस्य पाठाचित्रकमूलयोः ॥
द्वेद्वेपलेसमापोथ्यद्विद्रोणे साधयेदपाम् ॥

पादावशेषपूतचरसेतस्मिन्प्रदापयेत् ॥
गुडस्यैकां तुलां वैद्यः संस्थाप्य घृतभाजने ॥
पक्षास्थितं पित्ते देनं ग्रहण्यर्शो विकारवान् ॥
हृत्पाण्डुरोगं ग्रीहानं कामलां विषमज्वरम् ॥
वर्चोमूत्रानिलकृतान् विबन्धान् ग्निसमादिव-
म्भाकासं गुल्ममुदावर्त्तफलारिष्टोऽप्यपोहति ।

अर्थ—हरड एक प्रस्थ, आंवला एक प्रस्थ, इन्द्रायणकी जड़ दोपल, कैथ दोपल, पाठा दोपल, चीतेकी जड़ दोपल, इन सबको कूटकर दोद्रोण जलमें पकावै । चौथाई शेष रहनेपर उताकर छानले और जब यह ठंडा होजाय तब उसमें एक तुला गुड डालकर घाँके पात्रमें भरकर पंद्रह दिन तक धरा रहनेदे । फिर मात्रा के अनुसार ग्रहणी और अर्श विकाशवाला रोगी इसका सेवन करे । इस फलारिष्टके सेवन करनेसे हृद्रोग पाण्डुरोग, ग्रीहा, कामला, विषमज्वर, मलविवन्ध, मूत्रविवन्ध, अधोवायुविवन्ध, मन्दाग्नि, कास, गुल्म और उदावर्त्त ये सब रोग नष्ट होजातेहैं ।

दुरालभारिष्ट ।

दुरालभायाः प्रस्थः स्याच्चित्रकस्य नृपस्य च ॥
पथ्यामलकयोश्चैव पाठायानागरस्य च ।
दन्त्याश्चाद्विप्रलान् भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥
पादावशेषपूतचसुशीतेशर्कगशृतम् ।
प्रक्षिप्य स्थापयेत्कुम्भे मासार्द्धघृतभाजने ॥
प्रलिप्तेपिप्लीचव्यभिंयुक्तौद्रसर्पिपा ॥
तस्य मात्रां पित्ते कालेशर्करस्य यथावलम् ।
अर्शासिग्रहणीदोषमुदावर्त्तमरोचकम् ॥
शकृन्मूत्रानिलोत्सारविबन्धानामिदं नृमम् ॥

हृद्रोगपाण्डुरोगञ्चसर्वमेतेन साधयेत् ।

अर्थ—दुरालभा एक प्रस्थ, चीता, अदु-
सा, हरड़, आंवला, पाठा, सोंठ, दन्ती, इन
के दोदो पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावै ।
फिर चौथाई शेष रहनेपर छानकर ठंडा हो-
नेपर सौ पल शर्करा मिलाकर पन्द्रहदिन त-
क घीके पात्रमें भरारखै। इस घडेके भीतर
पीपल, चव्य, प्रियंगु, शहत और घी इनका
लेप करदेवै । वल के अनुसार इसकी मात्रा
का सेवन करै । इसके सेवन करनेसे अर्श-
रोग, ग्रहणी दोष, उदावर्त, अरुचि, विष्टा,
मूत्र, अधोवायु, उद्गार, विवन्ध, मन्दाग्नि,
हृद्रोग, पाण्डुरोग दूर होतातेहैं ।

कनकारिष्ट ॥

नवस्यामलकस्यैकांकुर्याज्जर्जरितांतुला
म् । कुडवांशविडङ्गानिपिप्पलीमरिचानिच
पाठामूलंचापिप्पल्याःक्रमुकचव्यचित्रकौ ॥
मञ्जिष्टैबालुकरोध्रपालिकान्युपकल्पयेत्
कुष्ठदारुहरिद्रांचसुराह्वंशारिवाह्वयम् ॥
इन्द्राह्वाभद्रमुस्तंचकुर्व्यादिर्दपलोन्मितम्
चत्वारिणागपुष्पस्यपलान्यभिनवस्यच
द्रोणाभ्यामभसोद्वाभ्यांसाधयित्वावता
रयेत् ॥ पादावशेषपूतेचरसेतस्मिन्सभा
वपेत् ॥ मृद्रीकाद्व्याढकरसंशीतानिर्यूहसं
मितम् ॥ शर्करायाञ्चशुक्लायांदद्याद्वि
गुणितान्तुलाम् ॥ कुसुमस्वरस्यैकमर्द्धप्रस्थं
नवस्यच ॥ त्वगेलाप्लवपत्रा—
म्बुसेव्यक्रमुककेसरम् ॥ चूर्णयित्वातुमति
मान्कार्षिकानत्रदापयेत् । तत्सर्वस्था-
पयेत्पक्षशुचौचघृतभाजने । प्रलिप्तेसर्पिं

पाकिञ्चिच्छर्करागुरुधूपेते । पक्षादूर्ध्वम-
रिष्टोऽयंकनकोनामविश्रुतः ॥ प्रायःस्वाद-
रसोहृद्यःप्रयोगाद्भक्तरोचनः । अर्शांसि
ग्रहणीदोषमानाहमुदरञ्ज्वरम् । हृद्रोगं
पाण्डुतांशोपंगुलमवर्चोविनिगृहम् : का
संश्लेष्मामयांशोग्रान्सर्वानेवापकर्पति ॥
बलीपलितखालित्यदोषजंचव्यपोहति ।

अर्थ—नये आंवले एक तुला; वायविडंग,
पीपल और कालीमिरच ये तीनों एक एक
कुडव । पाठा पीपलामूल, सुपारी, चव्य, ची-
ता, मजीठ, एलुआ, लोध इनको एक एक
पल लेवै; कूठ, दारुहलदी, देवदार, दोनों
साग्विा, कुठज, भद्रमोथा ये आधे आधे पल
लेवै तथा नई नागकेसर चारपल इन सबको
जौकुट करके दो द्रोण जलमें पकावै जब
चौथाई शेष रहजाव तब उतार कर छानले
और उसमें उस काथके समान दो आठक
दाखकारस, दो तुला सफेद चीनी, नया श-
हत आधा प्रस्थ; दालचीनी, इलायची, ते-
जपात, मोथा, नेत्रवाला, सुपारी, केसर, इन
सबको एक एक कर्प लेकर चूर्ण करके उस
में मिलादेवै । फिर एक शुद्ध घीके वर्तनमें
भरकर पन्द्रह दिन तक धरा रखै । पूर्वो-
क्त द्रव्योंको घडेमें भरनेसे पहिले घीमें ची-
नी डालकर उसके भीतर लेप करदेवै और
अगरकी धूनी देवै । एक पक्ष पीछे यह क-
नकारिष्ट तयार होजाताहै । यह स्वादमें मि-
ष्ट, हृदयप्रिय और भोजनमें रुचि बढ़ाने वा-
ला होताहै । इसके सेवन करनेसे अर्श, ग्र-
हणीदोष, आनाह, उरदरोग, ज्वर, हृद्रोग;

पाण्डुरोग, शोष, गुल्म, पुरीषविबन्ध, खांसी तथा सब प्रकारके उग्र कफरोग दूर होजाते हैं और बल, पलित और खालिय रोगभी नष्ट होजाते हैं ।

पत्रभक्षोदकैः शौचं कुर्व्यादुष्णेन चाभ्यसा
इति शुष्कार्शसां पूर्वमुक्तमेतच्चिकित्सितम्
अर्थ—वायुनाशक पत्रोंका क्वाथ करके गरम २ से गुदाप्रक्षालन करता रहें । ये सब शुष्क अर्शकी अनुभवकी हुई चिकित्सा वर्णन की गई है ।

रक्तार्शकी चिकित्सा ।

चिकित्सितमिदं सिद्धं स्त्राविणं शृण्वतः प-
रम् ॥ तत्रानुबन्धो द्विविधः श्लेष्मणोमारु-
तस्य च ।

अर्थ—अब खूनी क्वाथीरके अनुभव किये हुए प्रयोगोंका वर्णन करते हैं । इसमें दो दोषों का अनुबन्ध होता है एक कफका, दूसरा वायुका ॥

वातकफानुबन्धी रक्तार्श के लक्षण ।
विद्वेष्या च कठिनं रुक्षं चाधो वायुर्न वर्त्तते ॥
तनुचारुणवर्णं च फेनिलं चासृग्गर्शसाम् ।
कट्योरुगुदशूलं च दौर्बल्यं यदियाधिकम् ॥
तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदिविरुक्षणम् ।
शिथिलं चेतपीतं च विट्स्निग्धगुरु पिच्छ-
लं ॥ पथशसां च न वासक्तन्तु मत्पाण्डुपि-
च्छलम् ॥ गुदः सपिच्छः स्तिमितो गुरुस्नि-
ग्धश्चकारणम् ॥ श्लेष्मानुबन्धो विशेषतः
रक्तार्शसां बुधैः ।

अर्थ....जो रोगीका दस्त काला, कड़ा और रुक्ष हो और अधोवायुकी प्रवृत्ति न होती

हो, और अर्शका रक्त पतला लाल, रंगका और हागदार हो, रोगीकी कमर, ऊरु और गुदा में शूल होना हो, दुर्बलता अधिक हो, तथा जो रुक्ष पदार्थोंके सेवनसे उत्पन्न हुई हो उसे वातानुबन्धी अर्श कहते हैं ।

जिस रोगीका विष्टा ढीला, सफेद, पीला, स्निग्ध, भारी और पिच्छिल हो, जिस अर्शका रक्त गाढा, तन्नुदार, पाण्डु वर्ण और पिच्छिल हो, गुदा पिच्छिल और स्तिमित हो, जो गुरु और स्निग्ध पदार्थोंके सेवन से उत्पन्न हुआ हो उसे कफानुबन्धी रक्तार्श कहते हैं ॥

रक्तार्श में चिकित्सा क्रम
स्निग्धशीतं हितं वातेरुक्षशीतं कफेऽनुगे ॥
चिकित्सितमिदं तस्मात्सम्प्रधार्यैवेयं
जयेत् । पित्तश्लेष्माधिकमत्वा शोधनेनोप-
पादेयत् ॥ स्रवणं चाप्युपेक्षेत लघनं वासना-
चरेत् । मृत्तमादावर्शोभ्यो योनिर्मुह्यता-
त्यबुद्धिमान् ॥ शोणितदोषमनिलं तद्गो-
घ्नयेद्बहुन् । रक्तं पित्तं ज्वरं तृष्णा-
मशिनान्शमरोचकम् ॥ कामलांश्च यक्षु-
लं गुदं वक्षणसं श्रयम् । कण्डूवरुः कोठपि-
काकुष्ठपाण्डूवागयंगदम् ॥ वातमूत्रपुरा-
णां विबन्धनिरसोरुजम् । स्तौमित्यंगु-
मात्रं च तगान्यान् रक्तजान् गदान् ॥ तस्मा-
त्तु ते दुष्टरक्ते रक्तसंग्रहणं मतम् । हेतुलक्ष-
णकालज्ञो बलशोणितवर्णो बलः ॥

अर्थ—वातानुबन्धी रक्तार्शमें स्निग्ध और शीतल, तथा कफानुबन्धी रक्तार्शमें रुक्ष और शीतल चिकित्सा करना आवश्यक है । जो

रक्ताश्रममें कफ पित्तकी अधिकताहो तो संशो-
धनद्वारा चिकित्सा करै अथवा स्त्रावणी उ-
पेक्षा करके लघनद्वारा चिकित्सा करै ॥

जो मूर्ख वैद्य प्रथमही अश्रुके बहतेहुए
रुधिरको रोकदेताहै; तब रक्त वातज दोषों
से दूषित होजाताहै और वायुकर्तृक अनेक
प्रकारके उपद्रव खडे होजातेहैं, यथा—रक्त
पित्त, ज्वर, तृष्णा, मन्दाग्नि, अरुचि, कामला
रोग, सूजन, गुदशूल, वंक्षणशूल, खुजली,
फुन्सी, पित्ती, पिडका, कोढ़, पाण्डुरोग, अधोवायु
और मलमूत्रका विवन्ध, शिरोवेदना, स्तिमिता,
देहमें भारापन, तथा और भी बहुतसे रक्त-
जरोग उत्पन्न होजातेहैं । इस हेतुसे दूषित
रक्तके स्त्रावके हेतु, लक्षण, काल, बल और
रुधिरको रोग देखकर रुधिर को बन्द करना
चाहिये ।

कालं तावदुपेक्षेत यावन्नात्ययमाप्नुयात् ।
अग्निसन्दीपनार्थं च रक्तसंग्रहणाय च ॥
दोषाणां पाचनार्थं च परित्तैरुपाचरेत् ।
यत्तु प्रक्षीणदोषस्य रक्तं वा तोलवणस्य च ।
वर्त्तते स्नेहसाध्यं तत्पानाभ्यङ्गानुवासनैः ।
यत्तु पित्तोत्प्लवणं रक्तं घर्मकाले प्रवर्त्तते ॥
स्तम्भनीयं तदेकान्ताञ्च चेद्वा तदकफानुगम् ।

अर्थ—रक्तस्त्रावकी उस समयतक उपेक्षा
करनी चाहिये जबतक किसी उपद्रवके होने
की सम्भावना नहो । तदनन्तर अग्निको ब-
ढाने, रक्तको रोकने और दोषोंको पचानेके
लिये तित्त औषधियों का प्रयोग करै ॥

क्षीणदोषवाले वाताधिक्य अश्रुरोगीका
रक्त जो स्नेहमाप्य होता है वह स्नेहपान,

अभ्यंग और अनुवासन द्वारा शान्त होजाता
है जो पित्ताधिक्य रक्त ग्रीष्मकालमें प्रवृत्त
होताहै, यदि उसमें वातकफका अनुबन्ध न
हो, तो उसे सर्वथा रोकदेना चाहिये ।

रक्तसंग्राही औषध ।

कुटजत्वङ्निगूर्हः सनागरः स्निग्धरक्तसं-
ग्रहणः ॥ त्वग्दाडिमस्य तद्वत्सनागरः च
न्दनरसश्च । चन्दनकिराततित्तकधन्वयवा
साः सनागराः कथितः ॥ रक्ताश्रिसंग्रह-
मनादार्घ्यं त्वगुशीरनिम्बाश्च । सातिविपा
कुटजतत्वकफलं च सरसाञ्जनम् ॥ मधुयुतं
हिरक्तापहंप्रदद्यात्पिपासवे तण्डुलजलेन ।

अर्थ—कुड़ाकी छालके काथमें सोंठ
डालकर पीनेसे स्निग्ध रक्त बन्द होजाताहै ।
इसीतरह अनार के छिलके के काथमें सोंठ
डालकर सेवन करने से, अथवा चन्दन के
काथ में सोंठ डालकर सेवन करने से रक्त
बन्द हो जाता है । अथवा चन्दन, चिायता,
जवासा, और सोंठ इनका ब्याध कर के
सेवन करने से रक्ताश्र बन्द होता है । अ-
थवा दारुहल्दी, दालचीनी, उसीर और नीम
के ब्याध का सेवन करै । अथवा अर्ताम,
कुड़ाकी छाल, इन्द्रजौ और रसात इनके चूर्ण
को शहत और तण्डुल जलके साथ जब प्यास
लगे तबही पान करावेतौ रक्ताश्र दूरहोव ।

कुटजादिकाथ ।

कुटजशूलस्य साध्यं पलशतमार्द्रस्य मेघ
सलिलेन ॥ यावत्स्यादतरसंतद्द्रव्यं
पूतोरसस्ततो ग्राह्यः । गोचरसः सप्तमद्गः ।
फलीनीचसमांशिकैस्त्रिभिस्तैश्च । वरसक

वीजंतुल्यंचूर्णितमत्रप्रदातव्यम् ॥ घृतः
 कथितः सरसोदावीलेपोततः समवताग्न्यः ।
 मात्राकालोपहितारसक्रियैपाजयतिरक्त-
 म् ॥ छागलीपयसापीतापेयामण्डेनवाय
 थाभिषलम् । जीर्णौषधश्शालीन्पयसा
 छागेनभञ्जीतः ॥

अर्थ.... हरीकुडाकी छालके छोटे २ टुकड़े
 सौ पल लेकर आन्तरीक्ष जलमें पकावें, जब
 पकते २ उनका रस निकलआवे तब उसे
 उतारकर छान लेंगे । इस क्वाथ में मोचरस
 चाराहक्रान्ता और प्रियंगु का चूर्ण समान
 भाग लेकर मिलादेंगे, फिर इन तीनोंके वरा-
 धर इन्द्रजौ पीसकर मिलादेंगे इन सबको अ-
 ग्निपर चढ़ादें और चलाते २ जब यह ऐसा
 गाढ़ा पड़जाय कि करछी से लगने लगे
 तब उतारकर मात्रा और कालके अनुसार
 इसका सेवन करें तब यह रक्तार्श को दूर
 करदेताहै । इसको बकरीके दूध साथ अथ-
 वा पेया वा मण्डके साथ सेवन करना चा-
 हिये औषधके पचनेपर बकरीके दूधके सा-
 थ शालीचांवलोंके भातका सेवन करें ॥

अन्यप्रयोग ।

नीलोत्पलंसमङ्गापोचरसश्चन्दनंतिला-
 लोध्रम् । पीत्वाछागलीपयसाभोज्यं प-
 यसैवशाल्यञ्च ॥ छागलीपयःप्रयुक्तं निह-
 न्तिरक्तं सवास्तुकरसश्च । धन्वविहंगमृगा-
 णां रसो निरम्लः कदम्बलोवा ॥ पाठावत्स-
 कवीजरसाज्जननागरं यवानीं वा । विल्व-
 मितिचगुदजान्ताविधूयैपेयानिशूलेषु ॥
 दार्याकिराततिक्तं मुस्तदुःस्पर्शकञ्चराधि-

रघम् । रक्तेऽतिवर्त्तमानेशूले च घृतविधा-
 तव्यम् ॥

अर्थ—नीलकमल, समंगा, मोचरस, रक्त-
 चन्दन, तिल और लोध्र इनको बकरीके दूध
 के साथ पानकरें और बकरीके दूधके साथ
 ही शालीचांवलोंका भात भोजनकरें । अथवा
 बकरीका दूध और वथुयेका रस इनको मि-
 लाकर पीनेसे रक्तार्श दूर होजाती है । अ-
 थवा धन्वदेशज पशुपक्षियोंका मांस रस बिना
 खटाईका अथवा थोड़ी खटाई डालकर सेवन
 करें । अथवा पाठा, इन्द्रजौ, रसौत, सोंठ,
 अजवायन और बेलगिरी इनके चूर्णका सेवन
 करनेसे शूलयुक्त अर्श दूर होजाताहै । अथवा
 दारुहल्दी, चिरायता, मोथा और जवासा
 इनका चूर्ण सेवन करनेसे भी रक्त बन्द
 होजाताहै । तथा जो शूल होताहो और रक्त
 अत्यन्त बहताहो तब इन्हीं दार्व्यादि चारों
 द्रव्योंके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत सेवनकरें ।

अर्शपरघृतप्रयोग ।

कुटजफलवल्ककेसरनीलोत्पलरोध्रधात-
 कीकल्कैः । सिद्धं घृतिविधेयं शूलरक्तार्श-
 सांभिषजा । सर्पिःसदादिमरससयाव-
 शूकं जयन्त्याशु । रक्तं सशूलमथवानिदि-
 ग्धिकादुग्धिकासिद्धम् ॥

अर्थ—कुडाकी काल, इन्द्रजौ, केसर, नी-
 लकमल, लोध्र और धातुके कूळ इनके कल्क
 के साथ मिद्ध कियाहुआ घृत शूलयुक्त अर्श
 में देवे । अथवा अनारके रस और जवाहार
 के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा कटेरी
 और दुद्धा के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत शू-

ल युक्त रक्ताशमें सेवन करे ।

रक्ताशपरपेया ।

लाजैःपेयापीताचुक्रिकाकेसरोत्पलैः सि-
द्धाहन्त्याशुरक्तरागंतथावलापृश्निपर्णी-
भ्याम् । ह्रीदेरविल्वनागरनिर्यूहेसाधि-
तांसनवनीताम् ॥ वृक्षाम्लादाडिमाम्ला
मल्लीकाम्लासकालाम्लाम् । गृञ्जनक-
सुरासिद्धांभृष्टांयमकेनवापिवेत्पेयाम् ।

रक्तातिसारशूलप्रवाहिकाशोधनिग्रहणीम्
अर्थ—चुक्रिका, केसर, नीलकमल, तथा
यला और पृश्निपर्णी सहित सिद्ध की हुई
खीलोंकी पेया रक्ताशको दूर करतीहै; अथवा
नेत्रवाला, बेलगिरी, सोंठ इनके साथमें सिद्ध
की हुई पेयामें मोखन डालकर पान करे
अथवा लहसन और मयके साथमें सिद्धकी
हुई अथवा घी तेलमें भुनीहुई पेयामें वृक्षाम्ल,
अनार, इमली वा बेरकी खटाई डालकर पान
करे । इस पेयाके पान करनेसे रक्तातिसार,
शूल प्रवाहिका और शोध दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

काशपर्यामलकानांसकर्वुदारफलाम्ला-
नाम् ॥ गृञ्जनकशालमलीनांक्षीरिण्याः
चुक्रिकायाश्च । न्यग्रोधशुद्धकानांखण्डा
स्तथाकोविदारपुष्पाणाम् ॥ दध्नःशरे-
णसिद्धादद्याद्रक्तेप्रवृत्तेऽति ।

अर्थ—खमारी, आवला, सफेदकचनार,

सिद्धपलाण्डुशाकंचतक्रेणोपदिकांसवद-
रांच ॥ रुधिरस्रवेप्रदद्यान्मसूरपञ्चतका
म्लम् । पयसाशृतेनयूपैर्मसूरमुद्गाढकीम
कुष्ठानाम् ॥ भोजनमद्यादम्लैःशालिश्या
माककोद्रवजम् । शशहरिणलावमांसैःक-
पिञ्जलैणेयैःसुसिद्धैश्च ॥ भोजनमद्याद
म्लैर्मधुरैरीपत्समारिचैर्वा । दक्षशिश्विति-
त्तिरिरसैर्द्रिककुललोपाकजैश्चमधुराम्लैः
अद्याद्रसैरतिवहेष्वर्शः स्वनिलोव्वणशरी
रः । रसखड्गयूपयवागूसंयुक्तःकेवलोऽथ
वाजयति । रक्तमतिवर्त्तमानंवातंचपला
ण्डुरूपयुक्तः । छागान्तरोधितरुणंसरुधि
रमुपसाधितंवहुपलाण्डु । व्यत्यासान्म-
धुराम्लंविद्शोणितसंक्षेपेदेयम् ॥

अर्थ—जो अशमेंसे रुधिर बहता हो तो
प्याजका शाक, पोईका शाक, वा बेरका शाक
तमके साथ सिद्धकरके देवे, अथवा मसूरकी
दालमें मठा डालकर देवे । मसूर, मूंग अ-
डहर और मोठ इनके यूपको दूधके साथ
सिद्धकरके देवे । अथवा शाली चांबल, मों-
खिया और कोंदों इनको मय और खटाईके
साथमें देवे । अथवा सस्ता, हिरन, उवा,
सफेद तीतर और एणमृगका मांस मदिरा,
खटाई, मीठा और घोंडीकी काट्टीमिरच
डालकर देवे ।

प्याजका खाना वा केवल प्याजही का सेवन करना अत्यन्त बहुतेहुए रक्त और वातको दूरकर देताहै ।

इस रोगमें विष्टा और रुधिरके अत्यन्त क्षीण होनेपर बकरेकी देहके बीचका ताजी मांस रुधिरसहित बहुतसी प्याज डालकर सिद्ध करे और विपरीत क्रमसे खटाई मिठाई डालकर सेवन करे ॥

नवनीतघृताभ्यासात्केसरनवनीतशर्कराभ्यासात् । दधिसरमथिताभ्यासादर्शास्पयान्तिरक्तानि ॥ नवनीतघृतच्छागं मांससपष्टिकःशालिः । तरुणश्चसुरामण्डः तरुणाचमुरानिहन्त्यजसम् ॥ प्रायेण वातबहुलान्यर्शासिभवन्त्यतिछुत्तेरक्ते ॥ तस्माद्रक्तेदुष्टेऽप्यनिलःसविशेषतोद्देश्यः द्वातुरक्तपित्तप्रबलकफवातलिङ्गमल्पश्च । शीताःश्रियाःप्रयोज्याःयथेरितावक्ष्यतेचान्याः ॥

अर्थ—मक्खन घीके सेवन करने से, केसर, मक्खन और शर्कराके अभ्यास से, तथा दहीको मलाई समेत रईसे मथकर सेवन करनेसे रक्तार्शे दूर होजाताहै । मक्खन, घृत, बकरे का मांस, साठी चावल, शाळी-चावल, नवीन सुरामण्ड, नवीन मदिरा इनके सेवनसे भी अर्शे शीघ्र शान्त होजाताहै । रक्त के अत्यन्त निकल जानेपर अर्शमें प्रायःवातकी अधिकता होजातीहै । इस लिये रक्तके दूषित होनेपर भी विशेष करके वायुको शान्त करने का उपाय करें । अर्शे में रक्तपित्तकी प्रबलता तथा कफवात की

अल्पताको देखकर पहिले कही हुई वागे आनिवाली शांतिल क्रियाओं का प्रयोग करे । परिपेकादि प्रयोग ।

टोलम् ।

वापनिर्म्वाश्च ॥

अर्थ—मुलहटी, पंचवलक [गूलर, पीपल, बड़, पाकड़ और बेतकी छाल] बरकी छाल उदुम्बर, धौकी छाल, पखल, अदुसा, अर्जुन, जवासा, और नीम इनका क्वाथ करके रक्तार्शेमें परिपेचन करे ॥

अवगाहन प्रयोग ।

रक्तेऽतिवर्त्तमानेदाह्वलेदेचगाह्येच्चापि मधुकमृणालपद्मकचन्दनकुशकाशनिक्वाथे ॥ इक्षुरसमधुकवेतसर्निर्युहेशीतलेपयसिवातम् । अवगाह्येत्प्रदिग्धपूर्वशिशिरणतैलेन ॥

अर्थ—रक्तके अत्यन्त बहनेपर तथा दाह और छेदके उत्पन्न होनेपर शरीर में शीतल तेलकी मालिश करके मुलहटी, कमलनाल, पदमाख, रक्तचन्दन, कुशा, कांस इनके क्वाथमें स्नान करावे अथवा ईखका रस, मुलहटी और बेतके क्वाथ से या ठंडे दूधसे रोगीको स्नान करावे ।

दत्त्वाघृतंसर्शरमुपस्थदेशोगुदेभ्रिकदेशे । शिशिरजलस्पर्शसुखाधाराःप्रस्तम्भनीर्मुज्याः ॥ कदलीदलैरभिनयैश्चशीतजलसिक्तैः । प्रच्छादनंमुहुर्मुहुरिष्टंप्रोत्पलदलैश्च ॥ दूर्वाघृतप्रदेहःशतधीतसहस्रधीतमपिसपिः । व्यजनपवनश्चरक्तोरक्तसावजयत्याधु ।

अर्थ—उपस्थेन्द्रिय, गुदा और त्रिकस्थान में घी और शर्करा सोनकर लेप करे, फिर धीरे २ ठंडे जलकी धार डाले तो रक्तका बहना बन्द होजाता है । नवीन केलेके पत्ते अथवा शीतल जलसे छिडके हुये कमल के पत्ते वा नीलकमलके पत्तों से बार २ अर्श को ढकना भी हित है ॥ दूध और घीका लेप अथवा सौवार वा हजारवार धुलाहुआ घी इनका लेप, वा प्रेलेकी हवा इनसे भी बहताहुआ रक्त शीघ्रबन्द होजाता है ॥

अर्शपर घृत ।

ममद्वापधुक्ताभ्यां तिलमधुकाभ्यां रसाञ्जनघृताभ्यां । सर्जरसघृताभ्यां वानिम्बघृताभ्यां मधुघृताभ्याम् ॥ दार्वीत्वं कसर्पिभ्यां सचन्दनाभ्यामथोत्पलघृताभ्याम् । दाहहृदभ्रंशे गुदजाभ्यां तिसारणीयाः स्युः ।

अर्थ—समंगा और मुलहटी; तिल और मुलहटी; रसौत और घी; राख और घी; नीम और घी; दाहहृदी काँछाल और घी; अथवा रक्तचन्दन, नीलकमल और घृत इनका लेप करनेसे दाह, हृद, गुदभ्रंश और अर्श शान्त होजाते हैं ॥

आभिः क्रियाभिरथवा शीताभिर्यस्य तिष्ठति न रक्तम् । तत्काले स्निग्धोष्णैर्मसैस्तपयेन्मतिमान् । अवपीडकसर्पिर्भिः कोष्णैर्घृततैलैस्तथाभ्यंगैः ॥ क्षीरघृततोयसकैः कोष्णैः समुपाचरेदाशु । कोष्णे न वातप्रबलं घृतमण्डेनानुवासयेत्तर्षाघम् । पिच्छावस्ति दद्याद्वास्तिकाले तस्याथवा सिद्धम् ॥

अर्थ—इन ऊपर कही हुई क्रियाओंसे अथवा शीतल क्रियाओंसे जिसका रुधिरबन्द न हो उसको ठीक समयमें स्निग्धोष्ण मांस द्वारा तर्पण देवे, अथवा शिरोविरेचनकर्ता घृत देवे, अथवा ईषदुष्ण घृत तेलकी मालिश करावे अथवा ईषदुष्ण दूध घी वा जलसे परिपेक करे ॥ ऐसे वातप्रबल रोगीको ईषदुष्ण घृतमण्ड से शीघ्र अनुवासन देवे । अथवा यथा समय पिच्छावस्ति वा सिद्धावस्ति देवे ॥

पिच्छावस्ति सिद्धावस्ति ।

यवासकुशकाशानां मूलपुष्पञ्चशाल्मलम् । न्यग्रोधोडुम्बराश्वत्थशुद्धाश्च द्विपलोन्मिताः । त्रिप्रस्थे सलिलस्यैतत् क्षीरप्रस्थे च साधयेत् । क्षीरशेषं कपायं च घृतं कल्कैर्विमिश्रयेत् । कल्काः शाल्मलिनिर्य्याससमंगा चन्दनोत्पलं वत्सकस्य च बीजानि भिंयं गुपबकेसरम् । पिच्छावस्ति रयं सिद्धः स घृतक्षौद्रशर्करः ॥ प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तसावज्वरापहः ॥

अर्थ—जगसा, कुशा और कांसकीजड सेमरका फूल, बड, गूलर और पीपल की कोंपल ये सब दो २ पल छेवे ॥ तथा तीन प्रस्थ जल और एक प्रस्थ घृत में मिलाकर पकावे जब दूध शेष रहजाय तब इसको छान छेवे फिर इसमें सेमरका गोंद, काशहक्रान्ता, चन्दन, नीलकमल, इन्द्रजी, प्रियंगु, नाग केसर इनको पाँच कर मिलादेवे इसका नाम पिच्छावस्ति है यदि इसमें घी, शहत, और चानाभी मिलावे जब तो यह सिद्धावस्ति होजाता है । इन कस्ति

प्रयोग करनेसे प्रवाहिका, गुदभ्रंश, रक्तला-
व तथा अवर शान्त होजाताहै ।

अनुवासन-वस्ति प्रयोग ।

प्रपौण्डरीकंपधुकंपिच्छावस्तौयथेरितम् ॥
पिप्पुवा अनुवासनं स्नेहं क्षीरं द्विगुणितं पचेत् ।

अर्थ—पुण्डरिका, मुलहटी तथा पिच्छा-
वस्तिमें कहे हुए द्रव्योंको पीसकर स्नेह तथा
दुग्धना दूध डालकर सिद्ध करके अनुवास-
न वस्ति देवै ।

हीवेरादि घृत ।

हीवेरमुत्पलरोध्रसमंगाचव्यचन्दनम् ॥

पाठासातिविपाचिल्वधातकीदेवदारुच ।

दार्वीत्वक्नागरं मासीमुस्तं क्षारोयवागृजः ।

चित्रकश्चेतिपेप्याणि चागेरीस्वरसो घृतम्

एकध्वंसाधये सर्वतत्सर्पिः परमौषधम् ॥

अंशोऽतिसारग्रहणीपाण्डुरोगज्वरारुचौ ।

मूत्रकृच्छ्रे गुदभ्रंशे वस्त्यानाहं प्रवाहने ॥ पि

च्छासावेदं शशांशूले योज्यमेतत् त्रिदोषनुत् ।

अर्थ—नेत्रवाला, नीलकमल, लोध, लज्जा-

ल, चव्य, चन्दन, पाठा, अतीस, बेलगिरी

धायेक फूल, देवदारु, दारुहल्दीकी छाल, सों-

ठ, जटामांसी, मोथा, जवाखार, चीता, इ-

न सबको पीसकर चागेरीके रसके साथ

घृत मिलाकर सबको सानकर पकावै, यह

घृत अत्यन्त गुणकारी होताहै । इसका

सेवन अंश, अतिसार, ग्रहणदोष,

पाण्डुरोग, अवर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, गुदभ्रं-

श, वस्तिका आनाह, प्रवाहन, पिच्छासाव,

अंशगुलं और त्रिदोषजन्य अंश को दूर क-

रनेवाला है ॥

अवाकपुष्पादि घृत ।

अवाकपुष्पीवलादार्वीपृथिपर्णी ।

कपायपपेप्यास्तुजीवन्तीकडुरोहिणी ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलं नागरं सुरदारुच ।

कलिंगाः शाल्मलं पुष्पं वरिचन्दनमुत्पल

म् । कदफलं चित्रकं मुस्तं मिश्रं गतिविपा

स्थिराः ॥ पद्मोत्पलानां किञ्चलकंस

मंगासनिदिग्धिका ॥ विल्वं मोचरसः

पाठाभागाः कर्पसमन्विताः । चतुःप्रस्थे

श्रितं प्रस्थं कपायस्यावतारयेत् ॥ त्रिंशत्प

लानि प्रस्थोऽत्र विज्ञेयो द्विपलाधिकः ।

मुनिपण्णकचंगिर्याः प्रस्थोर्द्धास्वरसस्य च

सर्वैरेतैर्यथा हि घृष्टं त्रिंशत्प्रस्थं विपाचयेत् । ए

तदर्शस्त्वतीसारैरक्तसावे त्रिदोषजे ॥

प्रवाहने गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च ।

उत्थाने चातिबहुशः शोथशूले गुदाश्रये ॥

मूत्रग्रहे मूदवाते मन्देनावरुचावपि ॥ प्रयो

ज्यं विधिवत् सर्पिर्विलवर्णा भिषज्जनम् ॥

विविधेष्वक्षपानेषु कवलं वानिरत्ययम् ।

अर्थ—सोंफ, खैरी, दारुहल्दी, प्रणि-

पर्णी, गोखरु, बड़की कौपल, गूलरकी कों-

पल; पीपलका कोंपल इनमेंसे प्रत्येक दो-

दोपल लेकर चार प्रस्थ जलमें चढादे जब

चौथाई शेष रहै तब उतारकर छानलेवे ।

फिर जेती, कुटकी, पीपल, पीपलामूल, सों-

ठ, देवदारु, इन्द्रजौ, सेमरका फूल काकोली

रक्तचन्दन, नील कमल, कायफल, चीता,

मोथा, प्रिमशु, अतीस, शालिपर्णी, लाङ्गक-

की केसर, नीलकमलकी केसर, वजाळ,

कटेरी, बेलगिरी, मोचरस, पाठा इन सबको एक एक कर्ष लेकर पीसकर उसमें मिला दे-
वै (यहां ३२ पलका प्रस्थ समझना चाहिये)
किंर इसमें चौपतियाका रस एक प्रस्थ, चां-
गेरीका रस एक प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ इन सबको
मिलाकर पाक करे। यह घृत अर्शरोग,
अर्शोसार, त्रिदोषज रक्तसाव, प्रवाहिका, गु-
दभ्रंश, अनेक प्रकारके पिच्छासाव, अनेक
प्रकारसे बार बार मलका निकलना, गुदशो-
थ, गुदशूल, मूत्रग्रह, मूढवात, मन्दाग्नि, अ-
रुचि. इन रोगोंको दूर करताहै। वल, वर्ण
और अग्निको बढ़ाताहै। यह घृत अकेलाही
वा अनेक प्रकारके अन्नपान के साथ दि-
या जाताहै।

भवन्ति चात्र ।

व्यत्यासान्मधुराम्लानिशीतोष्णानिच
योजयेत् ॥ नित्यमग्निबलापेक्षीजयत्य
शःकृतान्नगदान् ॥ त्रयोविकाराः प्रायेण
येपरस्परहेतवः । अर्शासिचातिसारश्च
ग्रहणीदोषएवच ॥ एषामग्निबलंहीने
वृद्धिवृद्धेपरिक्षयः । तस्मादग्निबलंरक्ष्य
मेपुत्रिपुविशेषतः ॥

अर्थ—अर्शरोगमें विपरीत क्रमसे मधुर
और अम्ल, तथा शीत और उष्ण द्रव्यों
का व्यवहार करना चाहिये। अग्निबलको
अपेक्षा करनेवाला अर्शसे उत्पन्न हुए रोगों
को जीत लेताहै। अर्श, अतिसार और ग्र-
हणीदोष ये तीन रोग ऐसे हैं कि इनमें से
परस्पर एक दूसरेका हेतु होताहै। अग्निके
क्षीण होने से इन रोगों की वृद्धि होती है

और अग्निके बढ़ने से इन रोगोंकी क्षीणता
होतीहै। इस लिये इन तीनों रोगोंमें विशेष
करके अग्निबलकी रक्षा कर्त्तव्यहै।

सेव्यासेव्यका संक्षिप्तवर्णन ।

भृष्टैः शार्कैर्यवागूभिर्यूपामांसरसैः खडैः ।
क्षीरतक्रमयोगैश्च विचित्रैर्गुदजान्जयेत् ॥

यद्वायोरानुलोम्यायदग्निबलवृद्धये ।

अन्नपानौपधद्रव्यतत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥

यदतोविपरीतस्याभिदानेयत्प्रदर्शितम् ॥

गुदजैस्तत्परीतेनैवसेव्यं कथञ्चन ॥

अर्थ—अनेक प्रकार के भुनेहुए सांग
यवागू, यूप, मांसरस, खड्गयूप, दूध और
मठके प्रयोगोंसे अर्शरोगोंका दमन करना
चाहिये। जो द्रव्य वायुका अनुलोमन कर
ते है, जो अग्निबलको बढ़ाते है वह अन्नपान
और औषध नित्यही अर्श रोगियोंको सेवनी-
यहै। जो इनसे विपरीतहै तथा अर्शके उ-
त्पन्न होनेके हेतुओं में जो द्रव्य वर्णन कि-
ये गयेहै वे अर्शरोगियोंको कदापि सेवनीय
नहीं हैं।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

अर्शसां द्विविधं जन्मपृथगायतनानिच ।

स्थानसंस्थानलिङ्गानि साध्यासाध्यत्रि

निश्चयः ॥ अभ्यंगाः स्वेदनधूमाः सावंगा

हाः पलेपनाः ॥ शोणितस्यावसेकश्चैवो

गादीपनपाचनाः ॥ तक्रपौगाक्षपानानि

वातवच्चोऽनुलोमनः । योगांसंशोधनाश्चैव

सार्पिविविधानिच ॥ अन्नपानमधोभागं

वस्त्यरिष्टाः सशर्कराः । शुष्काणामर्शसां

शस्ताः साविणालक्षुणानिच ॥ द्विविधं सा

नुबन्धानांतेषांचेष्टयौपधम् ॥ रक्तसंश
मनायोगाश्रेष्ठाश्चविविधात्मिकाः ॥ स्ने
हपानविधिश्चाप्रचोविधिःपानाश्रयोश्च
यः॥परिपेकावगाहाश्चमदेहाःप्रतिसारणम्
अतिदृक्तस्परक्तस्यविधातव्यंयदुत्तरम् ।
तत्सर्वमिहनिर्दिष्टंगुदजातांचिकित्सितम्
अर्थ—इस अर्श चिकित्सित अध्याय में
निम्नलिखित बातें वर्णन की गई हैं, यथा
अर्शकी दो प्रकारकी उत्पत्ति; अर्शके भिन्न
भिन्न कारण, स्थान, आकृति, लक्षण, सा-
ध्यासाध्यः विचार, अम्यंग, स्वेदन, घूम,
अवगाह, प्रलेप, फस्त खेलना, दीपनयोग
पाचनयोग, तक्रयोग, अघोवायु और पुरीष
के अनुलोमन कानेवाले अन्नपान, संशोधन
योग, अनेक प्रकारके घृत, वास्तिप्रयोग,
शर्करा मिलेहुए अरिष्ट, सूखीबवासीर की
औषध, स्त्रावीअर्श के लक्षण, दो प्रकारके
अनुबन्ध, अर्भीष्ट औषध, रक्तसंशमनकर्ता
अनेक प्रकारके उत्तम २ प्रयोग स्नेहपान,
विधि, अन्नपानविधि, तथा रक्तके अत्यन्त
बहने में परिपेक, अवगाह, प्रदेह और प्र-
तिमारण । ये सब इस अध्यायमें वर्णन
किये गये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचिता-
यांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांचिकि-
त्सितव्यम्ने अर्शचिकित्सितं नामन-
वमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ॥

अथातोऽतीसारचिकित्सितंन्याख्यास्याम
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोलेकि
अब हम अतीसार चिकित्सित नामक अ-
ध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

भगवन्तरत्नत्वात्रेयंकृतान्हिकंकृतान्निहीत्र
मासीनमृपिगणपरिदृतमुत्तरेहिमवतःपार्श्वे
विनयादुपेत्याभिवाद्याभिवेशजवाचभं-
गवन्नतीसारस्यप्रागुत्पत्तिनिमित्तलस
णोपशमनानिमज्जानुग्राहार्थमाख्यातुमर्ह
सीति ।

अर्थ—एक समय हिमालयके उत्तर की
ओर जब भगवान् आत्रेय आग्निहक तथा
अग्निहोत्रादिकर्म से निश्चित होकर बैठे
हुए थे तथा बहुतसे ऋषि मुनि भी उस स-
मय उपस्थित थे, उससमय अग्निवेश ने
बहुत नम्रतापूर्वक अभिवादन करके पूछा
कि हे भगवन् ! प्रजाके अनुग्रहके लिये
आप अतीसारकी प्रथम उत्पत्तिका वर्णन,
हेतु, लक्षण तथा उसके शमनोपायोंका व-
र्णन करने योग्य हैं ॥

अतीसारकी प्रागुत्पत्ति ॥

अथभगवानात्रेयःतदभिवेशवचनमनुनि-
श्चयोवाच । श्रूयतामभिवेश । सर्वमेत
दखिलेनन्याख्यायमानमादिकाले । स्व
लुपक्षेपुपशवःसमालम्भनीयावभूवुर्नार
म्भायप्रक्रियन्तेस्म ततोदस्यद्वयमत्यवर-
कालंमनोःपुत्राणांमरिष्यन्नाभागेत्वाङ्क-
कुविदचर्यात्पादीनाञ्चक्रतुष्टुपशुनामेवा

भ्यनुज्ञानात्पशवः प्रोक्ष्यमवापुः । अत-
श्चप्रत्यवरकालंपृषधेर्दधिसूत्रेणयजमानेन
पशुनामलाभाद्रवामालम्भः प्रावर्त्तितः ।
तंहृष्ट्वामव्यथिताभूतगणाः तेषाञ्चोपयो-
गादुपकृतानांगवांगौरवादैर्ण्ययादसात्म्य
त्वादशस्तोपयोगाचोपहताग्नीनामुपहत
मनसां अतीसारः पूर्वमुत्पन्नः पृषधयज्ञे ।

अर्थ—अग्निवेशके इस वचनको सुनकर
मगवान् आत्रेय बोलेकि हे अग्निवेश ! यह
सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तेरे साम्हने कहताहूँ तू
सावधान होकर श्रवणकर । प्राचीनकाल में
यह प्रथा थी कि यज्ञमें पशुओंका वध नहीं
कियाजाता था, परन्तु यज्ञभूमि में लाये
जाते थे, तदनन्तर दक्षके यज्ञके पाँडे मरि-
ष्यन्, नाभाग, इक्ष्वाकु, कुविडचर्या आदि
मनुके पुत्रोंके यज्ञों में पशुओंकी अनुमति से
पशु छोड़ दियेजाते थे । इससे पीछे राजा
पृषधने जो यज्ञ कियेथे । उनमें पशुओं के
न मिलनेसे गोवधकी प्रथा प्रचलित करदी
थी । इस बातको देखकर गौओं के अत्यन्त
उपयोगी होने के कारण सम्पूर्ण प्राणी बहुत
दुःखित हुये उसी पृषधके यज्ञमें गोमांस के
भारी, उष्ण असात्म्य होनेसे तथा उसके
अशस्त उपयोगसे खनिवालोंकी जठराग्नि
मन्द पड़ गई और मनभी उत्साहहीन होगया
तब ऐसे मनुष्यों के प्रथम अतीसार उत्प-
न्न हुआ ॥

वातातिसार के हेतु ।

अथापरकालं वातलस्य वातातपण्यायामा-
तिमात्रनिषेविणोरुक्षालपममिताशेनः ॥

तीक्ष्णमद्यव्यवायनित्यस्य उदावर्त्तयत्तश्च
वेगाद्वायुः प्रकोपमापद्यते पक्ताचोपहन्यते-
सवायुः कुपितोऽग्रायुपहते मूत्रस्वेदौ पुरीषा-
शयमुपहत्यताभ्यां पुरीषं द्रवीकृत्यातीसा-
रायमकल्पते ।

अर्थ.... वातप्रकृतिवाले मनुष्य के हवा धूप
और शारीरिक परिश्रमके अत्यन्त सेवन से,
रूक्ष, थोडा और प्रमित भोजन करने से,
नित्यप्रति तीक्ष्ण मदिरापान और स्त्रीसम्भोग
से वा मल मूत्रादिके उपस्थित वेगों के रो-
कने से वायु प्रकुपित होजाती है तथा जठ-
राग्नि क्षीण पड़जाती है । इसतरह अग्नि के
क्षीण होजानेपर वह प्रकुपित वायु मूत्र और
स्वेदको पुरीषाशयमें लँकाकर उनके द्वारा
मलको पतला करदेती है तब अतीसार उत्-
पन्न होता है ।

वातातिसारके रूप ।

तस्यरूपाणि विडजलमामविप्लुतमवसा-
दितं रूक्षद्रवं सशब्दगशब्दं वा विवद्धमूत्रवा-
तमतिसार्यते पुरीषं वायुश्रान्तः कोष्ठस्य
सशब्दशूलः तिर्यक्चरति विवद्ध इत्यामा-
तिसारः ।

अर्थ—जिसका विष्टा जलके समान पत-
ला पड़जाताहै और वह विष्टा अपक्वमल से
मिश्रित होताहै, तथा अवसादी, रूक्ष पत-
ला होवै, दस्त होनेमें शब्दहो या सर्वथा
शब्दहीनहो, मूत्र और अवोवायु की विवन्ध
ता के साथ दस्तहो, तथा जिसमें वायु कोष्ठ
के भीतरही विवन्धके साथ और शूलयुक्त
होकर तिरछेपन से विचरती है । यह आ-
मातिसार है ॥

वातात्पक्वविषमलपाल्पसंशब्दंसशूलफे
नपिच्छापरिकर्त्तिकहृष्टरोमाविनिश्चसन्
शुष्कमुखःकट्यूरुत्रिकजानुशूलपृष्ठशुली
भ्रष्टगुदोमुहुर्मुहुर्विग्रथितमुपवेश्यतेपुरीषं
वातात्तमाहुरनुग्रन्थमित्येकेवातानुग्रन्थि
तवर्चस्त्वात् ॥

अर्थ....वातसे पक्व होकर विषम विषम
युक्त शूलयुक्त, क्षागदार, गिलगिला, परिक-
र्त्तिका (ऐंठा) युक्त निकलताहै, उस, स-
मय रोमाश्च खडे होजातेहैं, श्वास चलने लग-
ताहै, मुख शुष्क होजाताहै, कमर, उरु,
त्रिक, जानु और पीठमें शूल होने लगताहै,
गुदास्थि बाहर निकल आतीहै तथा वार-
वार गांठदार मल निकलने लगताहै । वात
के कारण मलमें गांठ पड जाने से कोई
कोई इसे वातनुग्रन्थ कहतेहैं ।

पित्तातिसार के हेतु रूपादि ।

पित्तलस्यापुनरम्ललवणकटुककक्षारोष्ण
तीक्ष्णातिमात्रनिषेविणःप्रतताग्निसूर्यस
न्तापोपहमरुतोपहतगात्रस्यक्रोधेर्ष्याबहु
लस्यपित्तप्रकोपमापद्यतेतत्प्रकुपितद्रवत्वा
दूष्माणमुपहत्यपुरीषाशयविस्तृतमौष्ण्याद्
द्रवत्वात्सरन्वाचभित्वापुरीषमतेसाराय
प्रकल्पते । तस्यरूपाणिह्रिद्गिरितनील
कृष्णपित्तोपहितमातिदुर्गन्धमतेसार्यते
पुरीषंवृष्णादाहस्वेदमूर्च्छाशूलब्रध्मसन्ता

पपाकपरीतइतिपित्तातिसारः ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका खडे
नमकीन, कडेवे, खारी, तीक्ष्ण और उष्ण
पदार्थोंके अत्यन्त सेवनसे, अथवा अग्नि

और सूर्यके सन्ताप द्वारा निरन्तर उप-
हत होनेके कारण वा वायुद्वारा उपहत
होने के कारण वा अत्यन्त क्रोधी ईर्ष्यायु-
क्त पुरुष का पित्त प्रकुपित होजाता है ।
वह प्रकुपित पित्त पतला होनेके कारण अ-
ग्निको मन्द करके पुरीषाशय में स्थित हो-
जाताहै और वहां अपने पतले पन, गरमी
तथा सरताके कारण मलको भेदन करके
अतीसारको उत्पन्न करता है इस अतिसार
का रूप हलर्दाके समान पीला, हरा, नीला,
काला, पित्त संसृष्ट होताहै तथा विष्टामें
अत्यन्त दुर्गन्ध आती है । इस अतिसारमें
तृष्णा, दाह, स्वेद, मूर्च्छा, शूल, ब्रध्मसन्ता-
प और गुदपाक ये उपद्रव भी होते हैं ।

कफातिसार के हेतु रूपादि ।

श्लेष्मलस्यतुगुरुमधुरशीतस्निग्धोपसेवि-
नःसम्पूरकस्याचिन्तयतोदिवास्वप्नपर-
स्यालस्याश्लेष्माकोपमापद्यते । सस्वभा-
वादगुरुमधुरशीतस्निग्धःसस्तोऽग्निमुपह-
त्यसौम्यस्वभावात्पुरीषाशयमुपहत्योप-
क्षेद्यपुरीषमतेसारायकल्पते । तस्यरूपा-
णिस्निग्धंश्वेतपिच्छिलंतन्तुमदामंगुरुदु-
र्गन्धश्लेष्मोपहितमनुबद्धशूलमलपाल्पम
भीक्ष्णमतिसार्यतेसप्रवाहिकंगुरुदरगु-
दवस्तिवक्ष्णोद्देशःकृतोऽप्यकृनसंशोभव-
तिसलोमहर्षःसोत्केशःनिद्रालस्यपरीतः
सादनोऽन्नद्वेषीचेतिश्लेष्मातिसारः ।

अर्थ—कफ प्रकृति वाले पुरुष का कफ
भारी, मीठे, शीतल और चिकने पदार्थों
के अत्यन्त सेवनसे, पेटभर कर खालेनेसे

वा वेफिकरीसे दिनमें सौने का अम्यास वा आलस्य प्रसूत होनेसे कुपित होजाता है । यह श्लेष्मा स्वभावह्रांसे गुरु, मधुर, शीत, स्निग्ध और स्रस्त होता है इसलिये अधिकोक्षीण करके अपने सौम्य स्वभावके कारण पुरीपाशय में पट्टचकर पुरीपको क्लेदित कर के अतिसार में चिकना, सफेद, गिलगिला, तन्तुयुक्त, अपक, भारी, दुर्गन्धित, कफ मिश्रित, शूलयुक्त थोड़ा बार बार दस्त होता है । प्रवाहिकाभी होती है, उदर, गुदा, वास्ति और वक्षण इनमें भारापन होता है रोम हर्ष, उत्केश, निद्रा, आलस्य ये भी होते हैं तथा अंग ग्लानि और अन्नमें अरुचि ये उपद्रव भी होते हैं ।

त्रिदोषज अतिसार के हेत्वादि ।

अतिशीतस्निग्धरूक्षोष्णगुरुखरकठिनविषमविरुद्धासात्म्यभोजनादभोजनात्कालातीतभोजनाद्यात्किञ्चिदभ्यवहरणादुदुष्टमद्यपानीयपानादतिमद्यपानादसंशोधनात्प्रतिकर्मणां विषमगमनादनुपचाराज्ज्वलनादित्यपवनसलिलातिसवनादस्वप्नादतिस्वप्नोद्वेगविधारणादनुविपर्ययादयथाबलमारम्भाद्भयशोकचित्तोद्वेगातियोगात्क्रिमिशोषज्वराशोविकारातिकर्षणाद्वाविषन्नाप्रेस्त्रयोदोषाः प्रकुपिताभूयएवाग्निमुपहत्यामपकाशयमनुप्रविश्यातीसारं सर्वदोषालिङ्गजनयन्ति ।

अर्थ—अत्यन्त शीतल, स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, भारी, खर, कठिन भोजन, विषम भोजन विरुद्ध पदार्थोंका भोजन असात्म्य भो-

जन, निराहार, कालातीत भोजन, अल्पभोजन, दूषित मदिरा और जलका पीना, अत्यन्त मद्यपान, असंशोधन, विरेचनआदिकों विषम गमन अनुपचार, अग्नि, धूप, हवा जलका अत्यन्त सेवन, सर्वथा न सोना, अत्यन्त सोना, मलमूत्रादि वेगोंका रोकना ऋतुविपर्यय (ग्रीष्ममें कम गर्मी वा अधिक गर्मी पडना) वलसे अधिक कार्य करना भय, शोक और चित्तोद्वेगका अतियोग, क्रिमिरोग शोपरोग, ज्वर, अर्श विकार । इन सब कर्मोंसे जो व्यक्ति अत्यन्त कुश होजाता है उसके तीनों दोष कुपित होकर प्रथमही दोषको प्राप्त हुई अग्निको अधिक तर मन्द करके आमपकाशय में प्रविष्ट होकर तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त अतिसार को उत्पन्न करते हैं ।

कृच्छ्रसाध्य के लक्षण ।

अपिचशोणितादीन्धातून्तिप्रदुष्टान्दूषयन्तोधातुदोषस्वभावकृतानतीसारवर्णानुपदर्शयन्ति । तत्रशोणितादिपुधातुषु अतिप्रदुष्टेषुह्रस्विहरितनीलमाज्जिष्ठमांसाधवनसन्निकाशंरक्तकृष्णंश्वेतंवराहमेदःसदृशमनुवद्धवेदनमवेदनवासमासव्यत्यासादुपवेश्यतेशंकृद्मथितमामंसकृतसंकृदपिपकमनतिक्षीणमांसशोणितवलोमन्दाग्निविहतमुखरसस्तादृशमातुरं कृच्छ्रसाध्यंविधात् ।

अर्थ—अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि धातु जब तीनों दोषोंके प्रकोपसे अत्यन्त दूषित हो जाती हैं तब धातुओंके दोषोंके स्वाभाविक

वातात्पक्वंविबद्धमल्पाल्पसंशब्दसशूलफे
नपिच्छापरिकर्त्तिकहृष्टरोमाविनिश्वसन
शुष्कमुखःकट्यूरुत्रिकजानुशूलपृष्ठशूली
भ्रष्टगुदोमुहुर्मुहुर्विग्रथितमुपवेश्यतेपुरीपं
वातात्तमाहुरनुग्रन्थमित्येकेवातानुग्रन्थ
तवर्चस्त्वात् ॥

अर्थ....वातसे पक होकर विद्या विबद्ध
युक्त शूलयुक्त, ज्ञागदार, गिलगिला, परिक-
र्त्तिका (ऐंठा) युक्त निकलताहै, उस, स-
मय रोमाञ्च खड़े होजातेहैं, श्वास चलने लग-
ताहै, मुख शुष्क होजाताहै, कमर, उरू,
त्रिक, जानु और पीठमें शूल होने लगताहै,
गुदास्थि बाहर निकल आतीहै तथा बार
बार गांठदार मल निकलने लगताहै । वात
के का-ण मलमें गांठ पड़ जाने से कोई
कोई इसे वातनुग्रन्थ कहतेहैं ।

पित्तातिसार के हेतु रूपादि ।

पित्तलस्यापुनरमललवणकटुकक्षारोष्ण
तीक्ष्णातिमात्रनिषेविणःप्रतताग्निस्सूर्यस
न्तापोपहमरुतोपहतगात्रस्यक्रोधेर्ष्याबहु
लस्यपित्तंभ्रकोपमापद्यतेतत्प्रकुपितंद्रवत्वा
दूष्माणमुपहत्यपुरीपाशयाविस्तृतमौष्ण्याद
द्रवत्वात्सरन्वाच्चभित्वापुरीपमातेसाराय
प्रकल्पते । तस्यरूपाणिहंदिद्रहरितनील
कृष्णापित्तोपाहितमातिदुर्गन्धमतिसार्यते
पुरीपंतृष्णादाहस्वेदमूर्च्छाशूलव्रध्मसन्ता

पपाकपरीतइतिपित्तातिसारः ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका खड़े
नमकीन, कड़ेये, खारी, तीक्ष्ण और उष्ण
पदार्थोंके अत्यन्त सेवनसे, अथवा अग्नि

और सूर्यके सन्ताप द्वारा निरन्तर उप-
हत होनेके कारण वा वायुद्वारा उपहत
होने के कारण वा अत्यन्त क्रोधी ईर्ष्यायु-
क्त पुरुष का पित्त प्रकुपित होजाता है ।
यह प्रकुपित पित्त पतला होनेके कारण ध-
मिको मन्द करके पुरीपाशय में स्थित हो-
जाताहै और वहां अपने पतले पन, गरमी
तथा सरताके कारण मलको भेदन करके
अतीसारको उत्पन्न करता है इस अतिसार
का रूप हलदीके समान पीला, हरा, नीला,
काला, पित्त संसृष्ट होताहै तथा विष्टामें
अत्यन्त दुर्गन्ध आती है । इस अतिसार-में
तृष्णा, दाह, स्वेद, मूर्च्छा, शूल, व्रध्मसंता-
प और गुदपाक ये उपद्रव भी होते हैं ।

कफातिसार के हेतु रूपादि ।

श्लेष्मलस्यतुगुरुमधुरशीतस्निग्धोपसेवि-
नःसम्पूरकस्याचिन्तयतोदिवास्वप्नपर-
स्यालस्याश्लेष्माकोपमापद्यते । सत्वभा-
वादगुरुमधुरशीतस्निग्धःसस्तोऽग्निमुपह-
त्यसौम्यस्वभावात्पुरीपाशयमुपहत्योप-
क्षेद्यपुरीपमतिसारायकल्पते । तस्यरूपा-
णिस्निग्धंभेतेपिच्छिलंतन्तुमदामंगुरुदु-
र्गन्धश्लेष्मोपहितमनुबद्धशूलमल्पाल्पम
भीक्ष्णमतिसार्यतेसप्रवाहिकंगुरुदरगु-
दवस्तिवक्ष्णोदेशःकृतोऽप्यकृनसंज्ञोभव-
तिसलोमहर्षःसोतलेक्षःनिद्रालस्यपरीतः
सादनोऽन्धोपीचेतिश्लेष्मातिसारः ।

अर्थ—कफ प्रकृति वाले पुरुष का कफ
भारी, मोटे, शीतल और चिकने पदार्थों
के अत्यन्त सेवनसे, पेटभर कर खालेनेसे

वा वेफिकरीसे दिनमें सौने का अभ्यास वा आलस्य प्रसूत होनेसे कुपित होजाता है । यह श्लेष्मा स्वभावह्रासे गुरु, मधुर, शीत, स्निग्ध और स्रस्त होता है इसलिये अग्निको क्षीण करके अपने सौम्य स्वभावके कारण पुरीषाशय में पटुंचकर पुरीषको क्लेशित कर के अतिसार में चिकना, सफेद, गिलागिला, तन्तुयुक्त, अपक्व, भारी, दुर्गन्धित, कफ मिश्रित, शूलयुक्त थोड़ा-वार वार दस्त होता है । प्रवाहिकाभी होती है, उदर, गुदा, वास्ति और वक्षण इनमें भारापन होता है रोम हर्ष, उत्केश, निद्रा, आलस्य ये भी होते हैं तथा अंग ग्लानि और अन्नमें अरुचि ये उपद्रव भी होते हैं ।

त्रिदोषज अतिसार के हेत्यादि ।

अतिशीतस्निग्धरूक्षोष्णगुरुखरकठिनविषमविरुद्धासात्म्यभोजनादभोजनात्कालातीतभोजनाद्यत्किञ्चिदभ्यवहरणादुदुष्टमद्यपानीयपानादतिमद्यपानादसंशोधनात्प्रतिकर्मणां विषमगमनादनुपचाराज्ज्वलनादित्यपवनसलिलातिसघनादस्वप्नादतिस्वप्नोद्वेगविधारणादतुविपर्ययादयथाबलमारम्भाद्भयशोकचित्तोद्वेगातियोगात्किमिशोषज्वरार्शोविकारातिकर्पणाद्वाविषन्नाग्नेस्त्रयोदोषाः प्रकुपिताभूयएवाग्निमुपहत्यामपकाशयमनुप्रविश्यातीसारंसर्वदोषलिङ्गजनयन्ति ।

अर्थ—अत्यन्त शीतल, स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, भारी, खर, कठिन भोजन, विषम भोजन विरुद्ध पदार्थोंका भोजन असात्म्य भो-

जन, निराहार, कालातीत भोजन, अल्पभोजन, दूषित मदिरा और जलका पीना, अत्यन्त मद्यपान, असंशोधन, विरेचनआदिका विषम गमन अनुपचार, अग्नि, घृप, हवा जलका अत्यन्त सेवन, सर्वथा न सौना, अत्यन्त सौना, मलमूत्रादि वेधोंका रोकना ऋतुविपर्यय (ग्रीष्ममें कम गर्मी वा अधिक गर्मी पड़ना) वलसे अधिक कार्य्य करना भय, शोक और चित्तोद्वेगका अतियोग, किमिरोग शोषरोग, ज्वर, अर्श विकार । इन सब कर्मोंसे जो व्यक्ति अत्यन्त क्लेश होजाता है उसके तीनों दोष कुपित होकर प्रथमही दोषको प्राप्त हुई अग्निको अधिक तर मन्द करके आमपकाशय में प्रविष्ट होकर तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त अतिसार को उत्पन्न करते हैं ।

कृच्छ्रमाध्य के लक्षण ।

अपिचशोणितादीन्धातून्तिप्रदुष्टान्दूषयन्तोधातुदोषस्वभावकृतानतीसारवर्णानुपदर्शयन्ति । तत्रशोणितादिपुधातुषु अतिप्रदुष्टेपुहारिद्रहरितनीलमाजिष्ठमांसधावनसन्निकाशरक्तकृष्णश्वेतवराहमेदःसदृशमनुवद्भेदमवेदनंवासमासव्यत्यासादुपवेश्यतेशंकृद्मथितमामंसकृतसकृदपिपक्वमनतिक्षीणमांसशोणितवलोमन्दाग्निविहृतमुखरसस्तादृशमातुरकृच्छ्रसाध्यंविद्यात् ।

अर्थ—अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि धातु जब तीनों दोषोंके प्रकोपसे अत्यन्त दूषित हो जाती है तब धातुओंके दोषके स्वाभाविक

अनुसार अतीसारके वर्ण में भेद होजाताहै ।
यहां अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि धातु
ओंमें हलदी का सा पीला हरा, नीला, मज्जि
के सदृश, मांसके धुले हुए जल के समान
लाल, काला, सफेद, सूअर की मेदा के सदृ
श, शूलयुक्त वा शूल रहित विष्टा थोड़ा
थोड़ा वा विपरीत क्रम से निकलता है, कभी
२ गांठदार कच्चा मल निकलता है, और
कभी पक्का मल आने लगता है । इसमें
रोगी का मांस रुधिर और बल अत्यन्त क्षी
ण नहीं होता, अग्निमन्द पड़जातीहै और
मुखका स्वाद विगड़ता चलाजाता है । इन
लक्षणोंसेयुक्त रोगी कृच्छ्रसाध्य होता है ।

असाध्य के लक्षण ।

एभिर्वर्णैरतिसार्यमाणसोपद्रवमातुरम
साध्योऽयमितिप्रत्याचक्षीवतद्यथाकाप
शोणिताभयकृत्पिण्डोपममांसोदकसन्नि
काशेदधिघृतमज्जतैलवसाक्षीरवेशवारा
भमतिनीलमतिरक्तमतिकृष्णमुदकमिवा
च्छपुनर्मेचकाभंअतिस्निग्धहरितनीलक
पायवर्णकर्पूरमाविलंतन्तुमदामंचन्द्रकोप
हितमतिकुणपपूतिपूयगन्धमामत्स्यगन्धं
मक्षिकाक्रान्तंकाथितवहुधातुद्रवमल्पपुरीष
मपुरीषंवातिसार्यमाणंतृष्णादाहज्वरभ्र
मतमकहिकाश्वासानुबद्धमतिवेदनमवेदनं
वास्तस्तपक्कगुदंपतितगुदवलिमुक्तनालम
तिक्षीणबलमांसशोणितयलंसर्वपाश्वर्वास्थि
शूलिनंमरोचकातिप्रलापसंमोहपरीतंस
हसोपरतविकारमतिसारिणमचिकित्स्यं
विषादितिसान्निपातातिसारः॥

अर्थ—यदि विष्टाका रंग नांचे लिखेहुए
वर्णोंके समान हो और उत्तरोगमें उपद्रव भीहो
तौ वह असाध्य और दुश्चिकित्स्य होताहै; य-
था—यदि विष्टाका रंग काथ, रुधिर, यकृतपि-
ण्ड, मांसधौत जल के सदृश, दही, घी, मज्जा,
तेल, चवी, दूध, वेशवाराके समान हो, अत्यन्त
नीला, अत्यन्त लाल, अत्यन्त काला वा अत्य-
न्त स्वच्छ जलके सदृश हो; मेचक (मुरमा
वा मोर की चन्द्रिका) के समानहो, अत्य-
न्त चिकना, हरा, नीला, कपायवर्ण, कर्पूर
(विचित्र वर्ण) आविल (अस्वच्छ) तन्तुयुक्त,
आम चन्द्रिकायुक्त मुर्दे की गंधके समान,
सड़ीहुई तथा पीवकी गंध के समान, आम-
मत्स्यगन्धयुक्त, जिसपर बहुत सी मक्खियां
आचिपटें, काथ की हुई द्रवधातुके सदृश,
अल्पपुरीष (थोड़ा विष्टा और बहुत सा
जल) अपुरीष (केवल पतला दस्त) इन
सब लक्षणोंसे युक्त मलहो तथा तृष्णा, दाह
ज्वर, भ्रम, तमकश्वास, हिचकी, श्वास अति,
शूल, शूलरहित हो, गुदाढीली वा पकगई
हो, गुदावलि नष्ट हो गई हो काचनिकलती
हो; बल मांस और रुधिर का बल अतिक्षीण
होगया हो, सब पसली और हड्डियोंमें शूल
होता हो, अरुचि, अतिप्रलाप और मोहहो,
और यदि ये सम्पूर्ण उपद्रव एक साथ धिल्लत
होगये हों, तौ ऐसा अतीसार रोगी असाध्य
होता है । ये सन्निपातातिसार के लक्षणहैं ।
साध्यातिसारकाचिकित्साक्रम ।
तमसाध्यतामंसमांसीचिकित्सेयथाप्रधानो-
पक्रमेण हेतुपशयदोषावेशेषपरीक्षयाचेति॥

अर्थ....जो आतिसार असाध्य नहीं हुआ है उसकी चिकित्सा प्रधान दोष के उपचार, हेतु, उपशाय और दोष विशेष की परीक्षा द्वारा कर्तव्य है ।

आगन्तु अतीसारके लक्षण ।
आगन्तुद्रावतीसारौमानसौभयशोकजौ ।
तत्तपोलक्षणंयायोर्यदतीसारलक्षणम् ॥

अर्थ....आगन्तु अतिसार दो प्रकार के होते हैं यथा--भयातिसार और शोकातिसार । इन दोनोंके लक्षण वातज अतिसारके सदृश होते हैं ।

आगन्तु अतिसारमें चिकित्साक्रम ।
पास्तोभयशोकाभ्यांशीघ्रंहिपारिकुप्यति ।
तयोःक्रियावातहरार्हणाश्वासनानिच ॥

अर्थ—भय और शोकसे वायु एक साथ कुपित होजाताहै । इसमें वातनाशक चिकित्सा कर्तव्यहै, तथा हर्षोत्पादककर्म और आश्वासनभी विधेयहै ।

इत्युक्ताःपडतीसाराःअतःपरंसाध्यानांसा

धनमनुव्याख्यास्यामः

अर्थ....इस तरह छः अतीसारों का वर्णन किया गयाहै, अब यहांसे साध्यअतीसारोंकी चिकित्सा वर्णन करेंगे ।

दोषाःसन्निचितायस्यविदग्धाहारमूच्छिताःअतीसारायकल्पन्तेभूयस्तान्संभवर्त्तयेत् ॥ नतुसंग्रहणंदेयपूर्वमामातिसारिणे विवध्यमानाःप्राग्दोषाजनयन्त्यामयान्बद्धन् ॥ शोथपाण्ड्वामयप्लीहाकुष्ठगुल्मोदर-
ज्वरान्दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यशोर्गदां-
स्तथातस्मादुपेक्षेतोत्तिष्ठान्वर्त्तमानान्स्वयं ।

मलान्कृच्छ्रंवावहतान्दद्यादभयांसंभवर्त्तिनीम् ॥ तयाप्रवाहितेदोषेमशम्यत्युदरामयः । जायतेदेहलघुताजठारग्निश्च-
वर्द्धते ॥

अर्थ....जिस मनुष्यकेअपक्व आहार के कारण दोष समृद्धित होकर इकठे होजातेहैं और अतीसार को उत्पन्न करतेहैं उसके दोषों को फिर प्रवृत्त करावै । आमातिसार में प्रथमही संग्राही औषधोंका देना अयोग्यहै । क्योंकि प्रथमही से रोकेंहुये दोष अनेकप्रकार के रोगोंको उत्पन्न करदेतेहैं; यथा-शोक, पाण्डुरोग, प्लीहा, कोष्ठ, गुल्मरोग, उदररोग ज्वर, दण्डक, अलसक, आध्मान, ग्रहणी, और अशरीरोग इसालिये अपने आप प्रवृत्त हुए उल्लिष्ट मलोंकी प्रथम उपेक्षाकरै । जो मल कठसे निकलता हो तौ हरड का सेवन करावै । हरडकेद्वारा दोषोंके निकलने पर उदररोग शान्त होजातेहैं, देहमें हलकापन उत्पन्न होताहै और जठराग्नि भी बढतीहै ॥

प्रमथ्यामध्यदोषाणांदद्याद्दीपनपाचनीम्
लघनञ्चाल्पदोषाणामशस्तमत्तिसारिणाम्
अर्थ—मध्यबलवाले अतिसारों में दीपन और पाचन प्रमथ्या (औषध) देवै, इसी तरह अल्प दोषवालों में लघन हितहै ।

प्रमथ्या के प्रयोग ।

पिप्पलीनागरंधान्यंभूतीकमभयावचाद्दी-
वेरंभद्रमुस्तानिविल्वैनागरंधान्यकम् ॥ पृश्नि-
पर्णीश्वदंष्ट्राचसमांशोकण्टकारिकातिसःप्र-
मथ्याविहिताःश्लोकार्द्धेज्वरतिसारिणाम् ॥

१=समंशाकण्टकारिकेतिगंगाधरः ।

अर्थ....पीपल, सोंठ, धनियाँ, अजवायन हरद. और वच । नेत्रवाला, भद्रमोथा, बेल-गिरी, सोंठ और धनियाँ । प्रणिपणी, गो-खरू, और समानभाग कटेरी । आधे २ श्लोकमें कहेहुए ये तीन प्रमथ्याप्रयोग अ-तिसारमें हित हैं ।

अतिसार में अन्नपानादिप्रयोग ।

वचामतिविषाभ्यांवामुस्तर्पणकेनवा ।
द्विवेरश्रद्धेवराभ्यांपक्ववापाययेज्जलम् ॥
युक्तेऽन्नकालेक्षुत्सामलघून्यन्नानिभोज-
येत् । तथासशीप्रमाप्नोतिरुचिमग्निलं-
बलम् ॥ तत्रेणावन्तिसोमेनयवाग्वातर्प-
णेनवासुरयामधुनाचादौयथारात्म्यगु-
पाचेत् ॥ यवागूभिर्विलेपीभिःखड्यूपैर-
सौदनैः । दीपनग्राहिसंयुक्तैःक्रमश्चस्या-
दतःपरम् ॥

अर्थ—वच और अतीस, अथवा मोथा और पित्तपापडा; अथवा नेत्रवाला और अद-रख इनको डालकर औटायानुआ जल पान-करावै । अतीसार में क्षुधा के लगने पर हलके अन्नका भोजन करावै, ऐसा करने से रोगी की रुचि, अग्निबल, शारीरिक बल शी-घ्र बढ़जायगे । अतिसारमें यथा साम्य तक, कांजी, यवागू, तर्पण, मदिरा और मधु इन में से कभी किसीका और कभी किसीका सेवन कराता रहै । तत्पश्चात् दीपन और सं-प्रादी औषधोंसे सिद्ध करके क्रमसे यवागू, बिलेपी, खड्यूप, मांसरस और ओदनदेताहै ।
साल्पणीपृश्निपर्णीद्विहर्ताकण्टकारिकाम् ।

बलांश्वदंष्ट्रां विल्वानिपाठानागरधान्यकम् ।
शुंठीपलाशंहपुर्पावचाजीरकपिप्पलीम् ।
यवानीपिप्पलीमूलचित्रकंहस्तिपिप्पलीम् ।
वृक्षाम्लंदाडिमाम्लञ्चसंहिगुविट्सन्धवम् ।
प्रयोजयेदन्नपानेविधिनासूपकल्पितम् ॥
वातश्लेष्महरोहपगणोदीपनपाचनः ॥
ग्राहिवलयोरोचनश्चतस्मात्शस्तोऽति-
सारिणाम् ॥

अर्थ....शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, बडोकटेरी छोटी कटेरी, खरैटी, गोखरू, बेलगिरी, पा-ठा, सोंठ, धनियाँ, कचूर, ढाक, हाऊबर, वच, जीरा, पीपल, अजवायन, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, वृक्षाम्ल, अनार, हांग, विडनमक, संधानमक, इन सबको व्यंजन की तरह सिद्ध करके अन्नपान में प्रयुक्त क-रै । यह गण वात कफनाशक, दीपन, पा-चन, संग्राही, बलकर्ता और रुचिवर्द्धक है, इसलिये अतिसार में हित है ।

आमेपरिणतेयस्तुविवद्धमतिसार्यते ।
सशूलपिच्छमलपालंपवहुशःसप्रवाहिकम् ।
तमूलकानांगूपेणवदराणामथापिवा । उ-
पोदकायाःक्षीरिण्यातवान्यावास्तुकस्य-
वा । सुवर्चलायाश्चोर्वाशाकेनावल्गुज-
स्यवा । शल्याःकर्करुकाणांवाजीवन्त्या-
श्चिर्भटस्यवा ॥ लोणीकायाःसपाठायाः-
शुष्कशाकेनवापुनः । दधिदाडिमसिद्धेन-
बहुस्नेहेनभोजयेत् ॥

अर्थ आमके परिपक होजानेपर जा-दस्त रुक २ कर शूलयुक्त, गिलगिला थोड़ा २, वार २ और प्रवाहिका युक्तहोवै तो उस

अर्थ—चागेरी, वेर, दही, अनार, सोंठ, जवाहार इनको मिलाकर पकाया हुआ घी गुदभ्रंश और शूलको नष्ट करता है ।

चव्यादि घृत ।

सचव्यपिप्पलीमूलसव्योपविडदाडिम
म् । पेयमम्लघृतं युक्तं वा सधान्याजाजि
चित्रकम् ॥

अर्थ—चव्य, पीपलामूल, त्रिकुटा, विड
नमक, अनार, धनियां, जीरा, चीता इनसे
सिद्ध किया हुआ घृत पूर्वोक्त गुणकर्ता है ।

दशमूलोपसिद्धं वा सविल्वमनुवासनम् ।

शताद्वाशटिविल्वैर्वा च चयाचित्रकेण वा ॥

स्तब्धभ्रष्टो गुदे पूर्वस्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् ।

सुखि बभ्रुमृदुभृतं पिचुना सं प्रवेशयेत् ॥

अर्थ—दशमूल और कच्ची बेलगिरीको
भिद्ध करके अनुवासनवस्ति देवै । अथवा
सोंठ, कचूर, बेलगिरी, अथवा वच, और
चीता इनको सिद्ध करके अनुवासन वस्ति
देवै । इससे गुदस्तब्ध, गुदभ्रंश दूर होजाते
हैं, परन्तु प्रथम स्नेहन और स्वेदनकर्मकरै ।
पसीने देने पर जब गुदा मृदु होजाय तब
रुई के फोए से प्रवेश करै ॥

विषद्वयातवर्चास्तु यद्दुःशूलमवाहिकः ।

सरक्तपिच्छस्तृष्णा च क्षीरसौहित्यम-

हति ॥ यमकस्योपरि क्षीरंधारोष्णं वा

पिबन्नरः । शृतमैरण्डमूलेन बालविल्वेन वा

पयः ॥ एवं क्षीरप्रयोगेन रक्तपिच्छावशा

भ्यां त । शूलमवाहिका चैव विबन्धोप

शाम्यति ॥

अर्थ—अधोपाय और मलके बह होनेपर

शूल और प्रवाहिकाके अत्यन्त बढजाने पर;
रुधिर सहित पिच्छिल मलके निकलने पर
और तृषाके अधिक होने पर दूधको पेट भर
कर पान करावै । यमक केह (घी तेल)
के ऊपर धारोष्ण दुग्ध पान करावै । अथवा
अंडीकी जड़ या कच्ची बेलगिरी डालकर दूध
को ओटाकर पान करावै । दूधके इन प्रयो-
गोंसे रक्त और पिच्छा शान्त होजाते हैं
तथा शूल प्रवाहिका और विबन्ध भी नष्ट
होजाते हैं ।

पित्तातिसारकी चिकित्सा ।

पित्तातिसारं पुनर्निदानोपशयाकृतिभिरा-
मान्वयमुपलभ्य यथावलं लघनपाचना
भ्यामुपाचरेत् तृप्यतस्तुमुस्तर्पणकोशी
रंशारिवाचन्दनकिराततित्तकोदीच्यवा
रिभिरुपाचरोलंघितस्य चाहारकाले बला
तिबलासूप्यशालपर्णीपृथिनपर्णीवृहतीक-
ण्टकारिकाशतावरीश्वदंष्ट्रानिग्रहसंयुक्तेन
यथासात्म्यं यवागू मण्डादिना तर्पणादि
नावाक्रमेणोपचारः सुदृढसूरहरेणुमकुट्टकपू-
पैः लावकपिञ्जलशहरिणं गणयकालपुच्छक
रसैरीषदम्लैरनम्लैर्वाक्रमशोऽग्निसन्धुस्त
तेदनुबन्धत्वे त्वस्पर्दोपनोयपाचनीयोपश-
मनीयसंग्रहणीयान्नयोगान्नप्रयोजयेदिति ।

अर्थ—पित्तातिसारमें निदान, उपशय
आर आकृति द्वारा यदि यह जाना जाय कि
रोग आमाचित है तो बलके अनुसार लघन
पाचन देवै । यदि तृषा प्रबल हो तो मोथा,
पित्तपापडा, खण, शारिवा रक्त चन्दन, चि-
रायता और नेत्रवाला इनके साथ सिद्ध किया

हुआ जल देवै । लंघन करानेके पीछे भोजन के समय बला, अतिबला, मुद्रपर्णी, शालिपर्णी, पृथिवपर्णी, दोनों कटेरी, सितावर, गोखरू, इनके काथके साथ यवागूमण्ड और तर्पणादिको भोजनमें देवै । मूंग, मसूर, हरेणु, मोठ इनका यूव अथवा लवा, कर्पिजल खर्गोश, हरिण, एण, कालपुच्छ, इनके मांस रस में खटाई डालकर वा बिना खटाई देकर धीरे २ जठराग्निको उत्तेजित करें । इन उपायों के करने परभी यदि कुछ शेष रहजाय तो दीपन, पाचन, संशमनीय और संप्राही औषधोंका प्रयोग करें ।

भवति चात्र ।

ससौद्रातिविपपिप्वावत्सकस्यफलत्वचम्
पिबेत्पित्तातिसारघ्नतण्डुलदेकसंयुतम् ॥

अर्थ—अतीस, इन्द्रजौ, कुडाकी छाल इनको जलमें पीसकर तण्डुलजल और शहत के साथ सेवन करें तो पित्तातिसार नष्ट होजाताहै ।

पित्तातिसार पर छः प्रयोग ।

किराततिक्तकमुस्तंबत्सकः सरसाञ्जनः ।
विल्वं दारुहरिद्राश्चत्वक्कहीवेरंदुरालभम् । च
न्दनश्चमृणालश्चनगरंरोध्रमुत्पलम् ॥ तिला
मोचरंसोरोध्रंसमहाकमलोत्पलम् । कट्फ
लनागरपाठाजम्बाग्रास्थिदुरालभाः ॥
योगाः पडेते सौद्रास्तण्डुलोदकसंयुताः ।
पेयाः पित्तातिसारघ्नाः श्लोकाद्धेननि ।

दर्शिताः ॥

अर्थ—(१) चिरायता, मोथा, इन्द्रजौ, रसौत । (२) बेलगैर, दारुहलदा,

दालचीनी, नेत्रवाला, जवासा । (३) चन्दन, कमलनाल, सोंठ, लोध, नीलकमल, (४) तिल, मोचरस, लोध, लजालु, नीलकमल, लालकमल । (५) नीलकमल, धाय के फूल, अनारकी छाल और सोंठ । (६) कायफल, सोंठ, पाठा, जामनकी, गुठली, आमकी गुठली जवासा । आधे आधे श्लोक में कहेहुए इन छः प्रयोगों को शहत और तण्डुल जलके साथ सेवन करने से पित्ताति सार दूर होजाताहै ।

जीर्णौषधानांशस्यन्तेयथायोगंमकल्पितैः
रसेःसांग्राहिकैर्युक्ताःपुराणारक्तशालयः ।

अर्थ—औषध के जीर्ण होनेपर उसी उसी योगकी औषधों से सिद्ध किये हुए संप्राही नांसारसों के साथ लाल शालीचांबलों का सेवन करें ।

पित्तातिसारोदीप्ताग्नेःक्षिप्रंसमुपशाम्यति
आजक्षीरप्रयोगेनवल्वर्णश्ववर्द्धते ॥ बहु
दोषस्यदीप्तानेःसम्प्राणस्यनतिष्ठति । प
त्तिकोयद्यतीसारःपयसातंविरेचयेत् ॥
पलाशफलनिर्यहंपयसापाययेततम् । त
तोऽनुपाययेत्कोष्णक्षीरमेवयथावलम् ॥
प्रवाहितेनमलेप्रशाम्यत्युदरामयः ॥ प
लाशवत्प्रयोज्यावात्रायमाणाविशोधिनी

अर्थ—दीप्ताग्निवाले पुरुषका पित्तातिसार शीघ्रही शान्त होजाताहै । इससमय बकरी का दूध सेवन कराने से बल और वर्ण बढ़जाते हैं । बहुत दोषों से युक्त दीप्ताग्नि वाले और बलवान् पित्तातिसारीको दूध के साथ विरेचन देनेसे फिर पित्तातिसार नहीं

रहता है । इस रोगीको दूधके साथ ढाक के फलोंका काश पान करावे । फिर यथाशक्ति कुछ २ गरम दूधका अनुपान करावे । इस रीतिसे मलके निकलजानेपर उदररोग शान्त होजाते हैं । अथवा मलके शोधनके निमित्त पलाशफलके सदृश त्रायमाण का प्रयोगकरे ।
 संसर्ग्याक्रियमाणायांशूलंयद्यनुवर्त्तते ।
 क्षुतदोषस्यतंशीघ्रंयथावदनुवासयेत् ॥
 शतपुष्पावरीभ्याञ्चपयसामधुकेनवा ।
 तैलपादघृतसंसिद्धं सविल्वमनुवासनम् ।
 कृतानुवासनस्यापिकृतसंसर्जनस्यच ॥
 यत्तेतद्यत्तिसारःपिच्छावस्तिरतःपरम् ।

अर्थ—विरेचनके पछेवाली सम्पूर्ण क्रियाओं के करनेपर भी यदि उदरशूल रहजावे तो दोषोंके निकलनेके पश्चात् अनुवासन कर्म करे ॥ सोंफ, सितावर, दूध, मुलहठी, धी से चौथाई तेल, बेलगिरी इन सबको सिद्ध करके इनके द्वारा अनुवासनवस्ति देवे अनुवासनवस्ति देनेपरभी तथा तत्पश्चात् पेयादि क्रमके अवलंबन करने परभी जो अतीसार दूर नहो तो नीचेलिखी हुई रीति से पिच्छावस्ति देवे ॥

पिच्छावस्ति विधान ।

परिवेष्ट्यकुशैरादिरार्द्रवृत्तानि शाल्मलेः ॥
 कृष्णमृत्तिकया लिप्यस्वेदयेद्रोमयाग्निना
 सुशुष्कांमृत्तिकां ज्ञात्वा तानि वृत्तानि शाल्मलेः ॥
 श्रिते पयसि मृद्गीयादापोऽध्वालूखलेततः ।
 पिष्टुंमृष्टसमंस्थेतत्प्लुतं तैलसपिपा ॥
 योजितं मात्रया युक्तं कल्केन मधुकस्यच ।
 वस्तिमभ्यक्तगात्राय दद्यात्प्रत्या-

गतेततः ॥ स्नात्वा भुञ्जीत पयसा जातलानारसेन वा ।
 पिप्तातिसारज्वरशोथगुल्मा । जीर्णातिसारग्रहणीप्रदोपान् ॥
 जयन्त्ययं शीघ्रमतिप्रवृद्धान् । विरेचनास्थापनगोश्च वस्तिः

अर्थ—सेमरके हरे डंठलोंको हरी कुन्ना से लेपटकर ऊपरसे काली मिट्टी लेपट कर मर्दों २ आगमें पकावे, जब मृत्तिका अच्छी तरह सूखजाय तब सेमर के डंठलोंको उड़खलमें कूटकर चार तोले लेकर एक प्रस्थ दूधमें औटावे, फिर मात्राके अनुसार तेल, सरसों और मुलहठीमें सानकर वस्तिसे देवे, परन्तु प्रथम रोगीके देहपर तैल की मालिश करलेवे । वस्तिके प्रत्यागमन होनेपर स्नान करके दूध अथवा जांगल पशुओंके मांसरस के साथ भोजन करावे। इस वस्ति से पिप्तातिसार, ज्वर, शोथ, गुल्म, अजीर्ण, अतिसार ग्रहणीदोष, तथा विरेचन जन्य और आस्थापन जन्यरोग शीघ्रही शान्त होजाते हैं ।

रक्तातिसारका वर्णन ।

पिप्तातिसारीयस्त्वेतां क्रियां मुक्त्वानिर्पेव ते ॥
 पित्तलान्यन्नपानानितस्य पित्तमहाशूलम् ।
 कुर्याद्रक्तातिसारान्तरक्तमाशुप्रदपयेत् ॥
 वृष्णांशूलं विदारं च गुदपाकञ्च दारुणम् ॥
 छागंतलपयः शस्तं शीतं समधुशर्करम् ॥
 पानार्थे व्यञ्जनार्थे च गुदमक्षालनं तथा ।
 भोजनं रक्तशालीनां पयसा तेन भोजयेत् ॥

अर्थ—पिप्तातिसारी मनुष्य इन ऊपर कही हुई क्रियाओंको छाड़कर पित्तकी अ-

ल्लस्ति लानां कृष्णानां शर्करा पञ्च भागिकः
आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं निपच्छति ॥
पलं वत्सकवीजस्य श्रपयित्वा रसं पिबेत् ।
योरसा शीजयेच्छीघ्रं सपैचं जठरा मयम् । पी-
त्वास शर्करा सौद्रं चन्दनं तण्डुलम्भसा ।
दाह तृष्णा प्रमेहं भयोरक्तसा वा द्विमुच्यते ॥

अर्थ.... दारुहल्लीकी छाल, इन्द्रजौ, पीपल
अंदाख, दाख और कुटकी इन छः औष-
धियोंसे सिद्ध किया हुआ घी तथा ऊपरसे पेया
और मण्डका अनुपान करे तो त्रिदोषजनित
दारुण अतीसार भी दूर होजाताहै ।

कालीमिठी, शंख की भस्म, कुकुम और
तेडुलजल इन सबको शहतमें मिलाकर सेवन
करे तो रक्त बन्द होजाताहै, प्रियगुका कल्क,
शहत, और तण्डुल जल इनको सेवन करने
से रक्त बन्द होजाताहै, इसके साथही जां-
गल पशुओंके मांस रसका भी सेवन करता
रहे ॥ एकभाग चीनी और पांचभाग काले
तिल इन सबको बकरी के दूधके साथ पान
करे तो शीघ्रही रक्तातिसार दूर होजाताहै ।
इन्द्रजौ एकपल के काथ को पीकर मांसरस
का सेवन करे तो पित्तजनित उदररोग शीघ्र
ही नष्ट होजाताहै ॥ रक्तचन्दन, तण्डुलजल,
शहत, शर्करा, इनको मिलाकर पानसे दाह,
तृष्णा, प्रमेह और रक्तातिसार दूर होजातेहैं ।

गुदपाककीचिकित्सा

गुदाय बहुभिरुत्थानैर्यस्य पित्तेन पच्यते ।
सेचयेच्चं मुशीतेन पटोलमधुकाम्पुना ॥ पं-
चवल्कमधुकानारसैरिधुरसंघृतैः । छागै-
र्गन्धैः पयोभिर्वा शर्करासौद्रसंयुतैः ॥ मक्ष

लनानां कल्कैर्वाससर्पिकैः प्रलेपयेत् ।
एपांवासुकृतैश्चूर्णैस्तं गुदं प्रतिसारयेत् ॥
धातकी रोध्रचूर्णैर्वासमांशैः प्रतिसारयेत् ।
तथा तत्र सवत्सं गुदस्तैः प्रतिसारितम् ॥
यथोक्तसेचनैः शीतैः शोणितेनैः सवत्सपि ।
गुदवंक्षणकट्यूरुसेचयेद् घृतभा वितम् ॥
चन्दनाद्येन तैलेन शतधा तेन सर्पिषा । का-
पसि सहयोगेन सेचयेद् गुदवंक्षणौ ॥

अर्थ—जिस पित्तातिसारी मनुष्यकी गुदा
बहुत दस्तोंके होनेसे पकजातीहै उसकी गुदाको
परवल और मुलहटीके शीतल काथसे प्रक्षा-
लन करे । अथवा पंचवल्क और महुआके
काथसे, अथवा ईखके रस और घी से अ-
थवा शहत और चीनी मिलेहुए गौ बकरीके
दूधसे गुदा को प्रक्षालन करे, अथवा इन प्र-
क्षालनकर्त्ता द्रव्योंके कल्कको घीमें सानकर
गुदापर लेपकरे । अथवा इन द्रव्योंका चूर्ण
करके गुदापर प्रतिसारण करे अथवा धातके
फूल और लोध समान भाग लेकर इनसे
प्रतिसारण करे । इन द्रव्योंसे प्रतिसारित
किये जानेपर गुदासे रक्तस्राव होताहै । रक्त
के निकलने पर गुदा, वंक्षण, कमर और
ऊरु इन पर घृत लगाकर पूर्वोक्त शीतल
काथोंसे सेचन करे । अथवा चन्दनाद्य तैल
वा सौंवार के धुलेहुए घी को कपासके जल
में डालकर गुदा और वंक्षणको सेचन करे ।
अल्पाल्पबहुशोरक्तं सशूलमुपवेश्यते ।
यदा वायुर्विवद्वद्भ्रुकृच्छ्रञ्चरति वानवा ॥
पिच्छावस्ति तदा तस्य यथोक्तमुपकल्पयेत् ।
प्रणुहरीकसिद्धेन सर्पिषा चानुवासयेत् ।

प्रायशोर्दुर्बलगुदाः चिरकालातिसारिणः ।
तस्माद्भीक्षणशस्तेषां गुदस्नेहप्रयोजयेत् ॥
पवनोऽतिप्रवृत्तो हि स्वेस्थानेलभतेऽधिकम्
बलंतस्य सपित्तस्य जयार्थे वस्तिरुत्तमः ॥

अर्थ—जब बारबार थोड़ा थोड़ा रक्त शूल
समेत निकले और वायु रुककर कोष्ठमें क-
ठिनतासे विचरै अथवा न विचरै तो उस समय
पूर्वोक्त रीतिसे पिच्छावस्ति का प्रयोग करै तथा
पुण्डरिया डालकर सिद्धकिये हुए घृतसे अनु-
वासनवस्ति देवै ।

बहुत दिवस तक अतिसार रहनेसे गुदा
प्रायः दुर्बल पड़जाती है इसलिये उन मनुष्यों
को गुदा पर स्नेह लगाना चाहिये ।

अतिसार की अत्यन्त प्रवृत्तिमें वायु अपने
स्थानमें अत्यन्त कुपित होकर पित्त से मि-
लजाती है अतएव वातपित्तके मिले हुए बलकी
शान्तिके निमित्त वस्तिक्रिया उत्तम होती है ।

रक्तमिश्रित मलमें चिकित्सा ।

रक्तविद्रुसहितपूर्वपश्चाद्वायोऽतिसार्यते ।
शतावरीघृततस्य लेहार्थमुपकल्पयेत् ॥ श-
र्करार्द्धांशिकलीद्वानवनीतनबोद्धृतम् ॥
सौद्रपादं जयेच्छीघ्रतं विकारं हितशिनः ।
न्यग्रोधोदुम्बरादवत्यशुद्धानापोध्यवास-
येत् ॥ अहोरात्रं जले तप्ते घृतं तेनाम्भसाप-
चेत् । तदर्द्धशर्करायुक्तं लिङ्गात्स सौद्रपा-
दिकम् ॥ अधोवायदिवाप्यूर्ध्वस्य रक्तं
प्रवर्त्तते । यस्त्वेवं दुर्बलो मोहात् पित्तला-
न्येव सेवते ॥ शीघ्रं विपद्यते प्राप्य वलीपा-
कं मुदारुणम् ॥

अर्थ—जिसके प्रथमही दस्तके साथ रु-

धिर निकले और फिर अधोवायुकी प्रवृत्ति के
साथ पतला दस्त हो उसको सितार का
सिद्ध किया हुआ घृत चटावै अथवा ताजी
माखन घी, उससे आधी चीनी और चौ-
थाई शहत मिलाकर सेवन करनेसे वह रोग
शान्त होजाता है परन्तु हित आहार का से-
वन करै ॥

बड़, गूलर और पीपल इनकी कोंपलों
को लेकर कूटकर गरम जलमें एक दिन
रात भिजो रखै, उस जलसे घृत पाक
करै इसमें आधी चीनी और चौथाई शहत
मिलाकर चाटे ।

जिस मनुष्यके दस्त अथवा वमन द्वारा
रुधिर निकले और वह दुर्बल यदि मोहसे
पित्तकर्त्ता द्रव्योंका सेवन करै तो उस के
दारुण बलीपाक होजाता है और वह शीघ्र
ही मरजाता है ।

कफातिसारकी चिकित्सा ।

श्लेष्मातिसारे प्रथमं हितं लघनपाचनम् ॥
योज्यश्चामातिसारघ्नो यथोक्तो दीपनाग-
णः । लघितस्यानुपूर्व्याश्च कृताया न नि-
वर्त्तते ॥ कफजोऽयं तीसारः कफघ्नैस्त-
मुपाचरेत् ।

अर्थ—कफातिसारमें प्रथमही लघन और
पाचन हित हैं तथा इसमें पहिले कहा हुआ
आमातिसारनाशक दीपनीय गणका प्रयोग
करना चाहिये । लघन कराने और तत्प-
श्चात् पेयादि आनुपूर्वी क्रम के करनेपर भी
यदि कफातिसार शान्त न हो तो कफनाशक
औषधियों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥

कफातिसारपर चारयोग ।

विल्वककटिकासुस्तमभयाविश्वभेषजम् ॥

वचाविडङ्गभूतीकंधान्यकंदेवदारुच । कु

पुंसातिविषापाठाचव्यंकटुकरोहिणी ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पली

योगान्श्लोकार्द्धविहितांश्चतुरस्तान्प्रयो

जयेत् ॥ शृतान्श्लेष्मातिसारेणुकायाग्नि

बलवर्द्धनान् ।

अर्थ—वेलगिरी, काकडासींगी, मोथा,

हरड, सोंठ, (२) वच, बायविडंग, अज-

वायन, धनियां और देवदारु, (३) कूठ-

अतीस, पाठा, चव्य कुटकी, (४) पीपल,

पीपलामूल, चीता, गजपीपल । इन आधे

आधे श्लोकमें कहे हुए चारों प्रयोगों का

काथ पान करनेसे कफातिसार दूर होजाता

है तथा कायाग्नि और बल बढ़ताहै ।

अजार्जीससितांपाठानागरंमरिचानिचा

धातकी द्विगुणंदद्यान्मातुलंगरसाप्लुतम्

रसाञ्जनंसातिविपंकुटजस्पुफलानिच ॥

धातकीद्विगुणं दद्यात्पातुं सक्षौद्रनागरम्

अर्थ—जीरा, मिश्री, पाठा, सोंठ काली

मिरच इन सबसे दूने धायके फूल का

चूर्ण बनाकर विजौरेके रसमें घोटकर देवे अ-

थवा रसौत, अतीस, इन्द्रजौ, इनसे दूने

धायके फूल शहत और सोंठ में मिला-

कर सेवन करे ।

धातकीनागरं विल्वलोघ्रंपद्मस्यकेशरम् ।

जम्बूत्वक्नागरंधान्यं पाठा मोचरसं बला

समं धातकीं चिल्वगमध्यं जम्बूवाघमोस्तथा

चा । कपित्थानिविडङ्गानिनागरंमरिचा

निच ॥ चाङ्गेरीफोलतकाम्लान्श्चतुरस्तान्

कफातुरे । श्लोकार्द्धविहितान्दद्यात्स

स्नेहलवणान्खडान् ।

अर्थ—[१] धायके फूल, सोंठ, वेल-

गिरी, लोघ, नागकेशर, [२] जामनकी

छाल, सोंठ, धनियां, पाठा, मोचरस, खैरटी

[३] लज्जाल, धायके फूल, वेलगिरी,

जामनकी छाल, आमकी छाल, [४] कैथ

वायविडंग, सोंठ काली मिरच, । इनआधे

आधे श्लोकमें कहेहुए चार प्रयोगों को

चांगेरी, बेर और मठाकी खटाई देकर तथा

स्नेह लवण डालकर खडयूप बनाकर कफ-

रोगमें सेवन करे ।

कपित्थमध्यलीद्वातुसव्यापसौद्रशर्कर

म् ॥ कट्फलंमधुयुक्तंवामुच्यतेजठराम-

यात् ।

अर्थ—कैथकीगिरी, त्रिकुटा, शहत औ

शर्कराको चाटनेसे अथवा कायफलमें शहत

मिलाकर चाटने से उदररोग दूर होजाते हैं

कणांगधुमुतांपीत्वातर्कचीत्वासचित्रकं।

जग्ध्वावावालविल्वानिमुच्यतेजठराम-

यात् ॥

अर्थ—शहत और पीपल चाटने से अ-

थवा मठामें चीता डालकर पीनेसे अथवा

कच्चीवेलगिरी खानेसे उदररोग दूर होजातेहैं

वालविल्वगुडतैलपिप्पलींविश्वभेषजम् ।

लिखाद्वातेमतिहृतेसशूलः समवाहिकः ॥

भोज्यमूलकपायेणवातघ्नेश्रोपसेवनेः ।

वातातिसारविहितैर्युपैर्मांसरसैः खटैः ॥

पूर्वोक्तमम्लसर्पिर्वापट्पलंवायथावलम् ।

पैर्विविधैःस्निग्धैर्निलयंकुमुपसम्पदैः ॥ वम
 द्विर्मधुरान्गन्धान्सर्वतः स्वभ्यलंकृतोविह
 रन्तंजितात्मानमात्रेयमृषिवन्दितमामहर्षि
 भिःपरिवृतविभुभूतहितैरतम् । अग्निवेशो
 गुल्फालेविनयादिद्रुक्तवान् । भगवन् !
 दारुणरोगमाशीविषविषोपममृषिविसर्पन्तं
 शरीरेषुदेहिनामुपलभ्ये ॥ सहस्रवनरा
 स्तेनपरीताःशीघ्रकारिणः । विनश्यन्त्य
 नुपक्रान्तास्तत्रनःसशयोमहानासनाम्नाके
 नविज्ञेयःसंज्ञितःकेनहेतुना । कतिभेदः
 कियद्भातुःकिनिदानःकिमाश्रयः ॥ सुख
 साध्यःकृच्छ्रसाध्योक्षेपोयश्चानुपक्रमः ।
 कथंकैलक्षणैःकिञ्च भगवंस्तस्यभेषजम् ॥

अर्थ—एक समय कैलाश पर्वतपर जहां
 बहुतसे किन्नर निवास करतेहैं जहां अनेक
 झरने, अनेक प्रकार की औषधी और अने-
 क प्रकारके वृक्ष सदैव फलफूलसे लदे रहते
 हैं इन पुष्पोंमें से अनेक प्रकारकी सुगन्ध
 चली आतीथी, ऋषिगणपूज्य जितेंद्रिय आ-
 त्रेय ऋषि विचार रहेये, बहुतसे ऋषि, मु-
 नि, उनके साथ थे और प्राणियोंके हितमें
 दत्ताचित्त थे । इस समय को उचित सम-
 शकर अग्निवेशने अत्यन्त मृदुभाव से पूछा
 कि हे भगवन् ! एक भयंकर रोगप्राणियों
 के शरीरमें फैलताहुआ देखने में आता है
 यह रोग सर्पके विषसे भी तीक्ष्णहै । इस
 रोगसे मनुष्य प्रस्त होकर शीघ्रही नष्ट हो-
 जातेहैं उनकी चिकित्साका समय भी हाथ
 नहीं लगता । इसका हमको यदा संशयहै ।
 इस रोग का नाम क्याहै ? इस नाम पडने

का कारण क्याहै ? इस के कितने भेदहैं ?
 कौनसी धातुहै ? हेतु क्याहै ? आश्रय क्या
 है ? यह सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य या असाध्य
 है ? इसके लक्षण क्या हैं ? और औषधी क्या हैं ?
 तदग्निवेशस्यवचःश्रुत्वाभ्यःसुदुर्वचम् ॥
 यथावदखिलंसर्वमोवाचमुनिसत्तमः ॥
 अर्थ—अग्निवेश के इस प्रश्नको सुनक-
 र मुनिसत्तम आत्रेय इस सम्पूर्ण महाकठिन
 विषयका पूर्ण रीतिसे वर्णन करने लगे ।

विसर्प की निरुक्ति ।

विविधंसर्पतियतोतिसर्पस्तेनसस्मृतः ॥
 परिसर्पोऽथवानाम्नासर्वतःपरिसर्पणात् ॥

अर्थ....यह रोग शरीरमें अनेक प्रकारसे
 फैलता है अतएव विसर्प कहलाता है । अ-
 थवा चारोंओर परिसर्पण करनेसे परिसर्प
 भी कहलाता है ॥

विसर्प के भेद ।

सचसप्तविधोदोपैर्विज्ञेयःसप्तधातुकः ।
 पृथक्त्रयस्त्रिभिधैकोविसर्पाद्द्वन्द्वजास्त्रयः ॥
 वातिकःपैत्तिकश्चैवकफजःसात्रिपातिकः ।
 चत्वारएतेवीसर्पावीक्ष्यन्तेद्वन्द्वजास्त्रयः ॥
 आग्नेयोवातपित्ताभ्यांग्रन्थाख्यंकफवा-
 तजः । यस्तुर्कर्मकोद्योगःसपित्तकफस-

म्भवः ॥

अर्थ ...दोषोंके अनुसार विसर्प सात प्र-
 कारका होता है, यह सप्तधातुओंका आ-
 श्रयभूत है । पृथक्त्रयस्त्रिभिधैकोविसर्पाद्द्वन्द्वजास्त्रयः
 । भाज्यमूलकपायेणवातघ्नोदोषोसे एक
 प्रकार का, दोषघ्नितैर्यौषधैर्घ्नने से तीन
 प्रकार का । इसतरह सब मिलकर सात प्र-

विपरीत द्रव्योंके सेवन से दूर होता है । यह सब वातज्विसर्प का वर्णन है ।

पित्तज्विसर्पकेलक्षणादि ।

पित्तमुष्णोपचारादिविदाहम्लाशनैश्चित्तम् । दूष्यसंदूष्यमार्गैश्चपूरयन्वैविसर्पति ॥ तस्यरूपाणि ज्वरस्तृष्णा मूर्च्छा मोहच्छर्दिरोचकोऽङ्गभेदः स्वेदोऽतिमात्रमन्तर्दाहः प्रलापः शिरोरुक्चक्षुषोराकुलत्वमरतिभ्रमः शीतवातवारितर्षोऽतिमात्रहरितनेत्रमूत्रवर्चस्त्वन्तेपांहरितहारिद्रूपदर्शनंयस्मिन्श्चावकाशेविसर्पोऽनुसर्पतिसोऽवकाशस्ताम्रहरितहारिद्रनीलकृष्णरक्तानां वर्णानामन्यतमं पुप्यति । सोत्सेधैश्चातिमात्रंदाहसस्वेदनपरीतैः स्फोटकैरुपचीयतेतुल्यवर्णास्तवैरचिरपाकैर्निदानोक्तानिनोपशेरतेविपरीतानिचोपशेरतइतिपित्तज्विसर्पः ॥

अर्थ—उष्णक्रियाके अवलम्बनसे तथा विदाही और खटे पदार्थों के सेवनसे संचित हुआ पित्त दूष्य धातुओं को दूषित करके स्रोतोंके मार्गोंको रोकदेताहै । तब पित्तजनित विसर्प फैलने लगता है । इस विसर्पके रूप ये हैं यथा—ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, मोह, वमन अरुचि, अंगभेद, स्वेद, अत्यन्त अन्तर्दाह, प्रलाप, शिरोवेदना, नेत्रों में विकलता, अरति, भ्रम, शीतलवायु और शीतलजल की अत्यन्त तृप्ता, नेत्र, मूत्र, विष्टाका हरावर्ण, नेत्रोंसे प्रत्येक वस्तुका हरा वा हल्दीके समान दीखना । जिस स्थानमें विसर्प फैलताहो उसका ताम्रवर्ण, हरा,

हल्दीके समान, नीलवर्ण, रक्तवर्ण इनमें से किसी एक रंगका होजाताहै । यह- विसर्प अत्यन्त ऊंचा तथा दाह और स्वेदयुक्त फोड़ोंसे आच्छादित होताहै, इन फोड़ोंमें से इनकेही रंगके सदृश स्राव होताहै और ये फोड़े थोड़ेही कालमें पकभी जातेहैं । निदानोक्त द्रव्योंके सेवन से ये बढ़तेहैं और उन से विपरीत द्रव्योंके सेवन से घटते हैं । ये सब पित्तज विसर्प का वर्णन है ।

कफ विसर्पकेलक्षणादि ।

स्वादम्ललवणस्निग्धगुर्वन्नस्वप्नसंचितः कफःसंदूषयन्दूष्यंकृच्छ्रमङ्गेविसर्पति ॥ तस्यरूपाणि शीतकः शीतकज्वरोगौरवं निद्रातन्द्रारोचकोमधुरास्यत्वमास्योपलेपोनिष्ठीविकाछर्दिरालस्यस्तैमित्यमग्निनाशोदौर्वर्ण्यंयस्मिन्श्चावकाशेविसर्पति सोऽवकाशः श्वयधुमान्पाण्डुमान्नातिरक्तस्नेहः सुप्तिस्तम्भगौरवैरन्वितोऽल्पवेदनः कृच्छ्रपाकैः चिरकारिभिः बहुलत्वगुपलेपैः स्फोटैः श्वेतपाण्डुभिरनुवध्यतेप्रभिन्नस्तु श्वेतपिच्छिलतन्तुमज्जनमनुवर्द्धस्निग्धमास्त्रावस्रवत्यूर्ध्वचक्षुर्गभिः स्निग्धैर्जलावततैः स्निग्धैर्बहुलत्वगुपलेपैर्वर्णैरनुवध्यतेऽनुसङ्गीश्वेतनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चस्तानिनिदानोक्तानि नोपशेरतेविपरीतानिचोपशेरतइतिश्लेष्मज्विसर्पः ॥

अर्थ—मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध और भारी अन्न और अधिक निद्रा इनके सेवन करनेसे संचित हुआ कफ दूष्य धातुओं को दूषित करके कृच्छ्रसाध्य विसर्पको उत्पन्न

करताहै। इसके रूप ये हैं यथा—शीत, शीतज्वर, भारापन, निद्रा, तन्द्रा, अरुचि मुख्यमें मीठापन, मुखमें लिहसापट, मुंहका भरना, वमन, आलस्य, स्तिमिता, अग्निनाश और दुर्बलता, जिस स्थानमें यह विसर्प फैलताहै वह स्थान सूजन, पाण्डुता, अतिस्राव, अतिस्नेह, मुक्ति, स्तम्भता, भारापन, और अल्पवेदनां इनसे युक्त होता है इसमें कठिनतासे तथा देरमें पकनेवाले बद्ध लत्वगुपलेपी स्वेत वा पाण्डुवर्ण के फोड़े हो जाते हैं इन फोड़ोंके फूटनेपर सफेद गिलगिला तन्तुयुक्त, गाढा, लगातार तथा क्षिग्धस्ताव होता रहताहै। इसका ऊपरला भाग भारी, क्षिग्ध, जलयुक्त, स्निग्धगाढे, त्वगुपलेपी व्रणोंसे आच्छादित होजाता है। अनुपंगी नख, नेत्र, वदन, त्वचा, मूत्र, विष्टाका वर्ण सफेद होजाताहै। यह रोग निदानोक्त द्रव्योंके सेवनसे बढताहै और तद्विपरीत द्रव्योंके सेवन से घटताहै। यह कफजविसर्प का वर्णन है।

वातपित्तजविसर्पके लक्षणानि ।
वातपित्तमकुपितमतिमात्रंस्वेतुभिः । प-
रस्परलब्धबलेद्दृढ्वाग्रं विसर्पति ॥ त-
दुपतापादातुरः सर्वेशरीरमंगारैरिवाकी-
र्यमाणं मन्यते । छर्द्यतीसारमूर्च्छादाह
मोहज्वरतमकारोचकास्थिसन्धिभेदतृ-
ष्णाविपाकागभेदादिभिश्चाभिभूयते ।
यंचावकाशं विसर्पोऽनुसर्पति सोऽवका-
शः शान्तांगारमकाशोऽतिरिक्तो वा भव-
त्यग्निदग्धमकारिश्च स्फोटैरुपचीयते सं-

शीघ्रंगत्वादाश्वेयमर्मानुसारी भवति मर्मा-
णिचोपतप्तपवनोऽतिबलोभिनत्यंगान्य-
तिमात्रंमोहयति संज्ञां हि काश्चासौ जन-
यति नाशयति निद्रां । स नष्टनिद्रः प्रमदसं-
ज्ञो व्यथितचेतानरुचिश्चिद्वचनमुखमुपलभ-
अरतिपरीतः स्थानादासनात् शय्यां का-
न्तुमिच्छति क्लिष्टभूयिष्ठश्चाधुनिद्रां भज-
त्यबलोदुस्वप्रबोधश्च तमेवंविधमग्निर्वीर्य-
परीतमचिकित्स्यं विधातु ॥

अर्थ—अपने २ हेतुओं से अत्यन्त कु-
पितहुए वात पित्त एक दूसरे के संगसे अ-
त्यन्त बलवान् होकर शरीरको दग्ध करते
हुये विसर्पको उत्पन्न करते हैं। इन कफ
वातके उपतापसे रोगीको अपना सब श-
रीर जलतेहुए अंगारोंके सदृश मादूम होने
लगताहै। वमन, अतीसार, मूर्च्छा, दाह
मोह, ज्वर, तमक, अरुचि, अस्थिभेद, सन्धि
भेद, तृष्णा, अविपाक, अंगभेद आदि उपद्रव उ-
त्पन्न होते हैं। शरीरके जिस २ विभाग में
विसर्प फैलता है। उस २ स्थान में शुशा-
ए हुए अंगारों के सदृश कृष्णवर्ण, तथा
उस से भी अधिक कालापन होता है।
इसमें आग से जलेहुए फफोले के सदृश
फोड़े होजाते हैं यह अत्यन्त शीघ्र गामी
होनेसे मर्मोंमें गमन करताहै मर्मोंमें वायु
की उत्तप्तता से अत्यन्त वेग से अंगों का
भेदन और चेतन्यता का नाश होता है।
हिचकी और श्वास, उत्पन्न होतेहैं, निद्रा
का नाश होताहै, रोगी इस तरह निद्राना-
श, और संज्ञानाश, और व्यथितचित्ततासे

किसी तरह सुख प्राप्त नहीं करता है । अत्यन्त दुःख के कारण वह स्थान, आसन वा शय्या पर आड़ा तिरछा होना चाहता है इस तरह अत्यन्त क्लिष्ट होकर शीघ्र सोजाता है, यह रोगी अत्यन्त दुर्बलता के कारण जगाने से भी नहीं जगता है । इस अग्निविसर्प का रोगी दुश्चिकित्स्य होता है ॥

कफपित्तज्विसर्पकैलक्षणादि ॥

कफपित्तमकुपित्तबलवत्स्वेनहेतुना ।
विसर्पत्येकदेशंतुमक्लेदयतिदेहिनः ॥
तद्विकाराः शीतज्वरः शिरोरुस्त्वन्दाहः स्तै-
मित्यमंगवासादनानेदातन्द्रामोहोऽन्त्रद्वेषः
प्रलापोऽग्निनाशो दौर्बल्यमस्थिभेदो मूर्च्छा
पिपासा स्रोतसंप्रलेपो जाड्यमिन्द्रियाणां
आमोपवेशनमंगविशेषोऽगमर्दोऽरतिरौ-
त्सुक्यंचोपजायते प्रायश्चामाशये विसर्प-
त्पलसक एकदेशग्राही यस्मिन्श्चावकाशो वि-
सर्पतिसोऽवकाशो रक्तपीतपाण्डुपिडका-
पकीणइव मेचका भः कालो मलिनः स्निग्धो
बहुष्मागुरुस्तिमितवेदनः श्वयधुमान्गम्भी-
रपाकः निरास्त्रावः शीघ्रक्लेदः स्विन्नविल-
नपूतिमांसत्वक्क्रमेणाल्परुक्परमृष्टोऽव-
दीर्यते । कर्दमइवापीडितोऽन्तरप्रय-
च्छत्युपाकिलन्नपूतमांसत्यागी शिरास्ना-
युसंदर्शीकुणपगन्धी संज्ञास्पृतिहर्षातर्क-
दमवीसर्पपरतिमचिकित्स्यविद्यात् ।

अर्थ.... अपने अपने हेतुओं से कफपित्त प्रकुपित होकर तथा एक दूसरे की सहायता से अत्यन्त बलिष्ठ होकर देह को क्लेदित करके शरीरके एक भाग में विचरता है । उस

के विकार ये हैं यथा-शीत ज्वर, सिरका मो-
रपन, दाह, स्तिमिता, अंगगळानि, निद्रा,
तन्द्रा, मोह, अन्नमें द्वेष, प्रलाप अग्निनाश,
दुर्बलता, अस्थिभेद, मूर्च्छा, तृषा, स्रोतःस-
मूहमें लिहसावट, इन्द्रियोंमें जडता, आमका
निकलना, हाथ पांवका पटकना, अंगमर्द,
अरति, उत्सुकता ये उपद्रव होते हैं । यह
प्रायः आमाशयमें उत्पन्न होकर शरीरके किसी
एक भागमें फैलता चला जाता है । जिस
स्थान में यह फैलता है उस स्थानमें लाल पीले
तथा पाण्डु वर्ण के फोड़े होजाते हैं । तथा
सुरमाके सदृश काला, मलीन, स्निग्ध अत्यन्त
गरम, भारी, स्तिमित, वेदनायुक्त सूजनयुक्त,
गंभीरपाकी, निरास्त्रावी और शीघ्रक्लेदी होता
है । उस स्थानका मांस स्विन्न, क्लिन्न और
सड़ा हुआ सा होजाता है । इसमें थोड़ा २
दर्द होता है और हाथसे रगड़ने पर फट-
जाता है । अधिक रगड़ने पर इसमें कीचकी
तरह उंगली गड़जाती है । धीरे धीरे इसमें
से सड़ा हुआ दुर्गन्धित मांस निकलने ल-
गता है और भीतर की नस, स्नायु आदि
दिखाई देने लगती हैं, इसमें मुर्देकी सी गंध
आने लगती है, इससे संज्ञा और स्मरण शक्ति
का नाश होजाता है ॥ यह कर्दमवीसर्प क
हलाता है, यह रोग असाध्य होता है ॥

ग्रन्थिविसर्पकैलक्षणादि ।

स्थिरगुरुकठिनमधुरशीतस्निग्धान्नपाना-
भिष्यन्दिसेविनामव्यायामासेविनामप्र-
तिकर्मशालिनां श्लेष्मावायुश्चप्रकोपमा-
पद्यते तावुभौ दुष्टप्रवद्धौ अतिबलामद्व्यद-

प्यविसर्पायकल्पते । तत्रवायुःश्लेष्माणा
विवद्वमार्गस्तमेवश्लेष्माणमनेकधाभिन्द
नक्रमेणग्रन्थिमालांकृच्छ्रापाकसाध्यांक
फाशयेसंजनयत्युत्सन्नरक्तस्यवाप्रदूप्यर
क्तसिरास्नायुमांसत्वगाश्रितग्रन्थिवीस-
र्पकुरुतेतीव्ररुजाग्रन्थीनांस्थूलानामणू
नादीर्घवृत्तरक्तानांतदुपतापाज्वराती
सारकासदिकाश्वासशोषममेहवैचर्ण्यारो
चकाविपाकच्छर्दिमूर्च्छाभिगानिद्रारति
संसदनाद्याः प्रादुर्भवन्त्युपद्रवास्तैरुपद्रवै
रुपद्रुतःसर्वकर्मणांविषयमातिपातितोवि
वर्जनीयोभवतीतिग्रन्थिवीसर्पः ॥

अर्थ—स्थिर, भारी, कठोर, मधुर, शी-
तल और सिग्ध, अन्नपान के सेवनसे अ-
भिप्यन्दी द्रव्योंके सेवनसे, शारीरिक परि-
श्रम न करनेसे, संचित दोषोंको वमन वि-
रेचनादि द्वारा दूर न करनेसे कफ और
वायु प्रकुपित होजाते हैं, ये दोनों दूषित
होकर वृद्धि पाकर अत्यन्त बलवान् होजाते
हैं तब रक्तादि दूष्य धातुओं को दूषित
करके विसर्परोग को उत्पन्न करते हैं । उ-
त्सर्गमय वायु का मार्ग कफके द्वारा रुक जा-
ने पर यह वायु उसी कफके अनेक भाग
करदेतीहै और कफाशय में कृच्छ्रभक्त और
कृच्छ्रसाध्य ग्रन्थिमाला को उत्पन्न करदेतीहै
अथवा कफ और वायु ये दोनों ही उत्सन्न
रक्तवाले मनुष्य के रक्तको दूषित करके सि,
रा, स्नायु, मांस और त्वचामें गांठदार वि-
सर्पको उत्पन्न करतेहैं । इन गांठोंमें बड़ी
तीन वेदना होतीहै, ये गांठें मोटी, छोटी,

दीर्घ, गोल होतीहै, इनमें उपताप होनेसे
ज्वर, अतीसार, खांसी, हिचकी, स्वास, शो-
ष, प्रमेह, विवर्णता, अरुचि, अविपाक, व-
मन मूर्च्छा, अंगभंग, निद्रा, अरति, ग्लानि
आदि उपद्रव उत्पन्न होतेहैं, उन उपद्रवोंसे
अभिभूत होकर रोगी सम्पूर्ण कर्मोंके करने
के अयोग्य होजाताहै, इस कारणसे ग्रन्थि-
वीसर्पकी चिकित्सा करना वर्जनीय है ।

रोग और उपद्रव में अन्तर ।

उपद्रवस्तुखलुरोगान्तरकालजोरागाश्र
योरोगएवस्थूलोऽणुर्वारोगात्पदचाज्जा
यतेत्युपद्रवसंज्ञः ॥ तत्रप्रधानोव्याधि-
व्याधिर्गुणीभूतउपद्रवस्तस्यप्रायःप्रधान-
प्रशभेप्रशमोभवति । सत्तुपीडाकरतरोभ-
वाति । पश्चादुत्पद्यमानोव्याधिःपरिविलं
ष्टशरीरत्वात्तस्मादुपद्रवंत्वरमाणोऽभिवा-
धते ॥

अर्थ—उपद्रव रोग के उत्पन्न होने से
पीछे उसी रोगका आश्रय लेकर उत्पन्न होता
है । यह रोग स्थूल वा सूक्ष्मरूप में रोग
से पीछे उत्पन्न होता है इसीसे इसे उपद्रव
कहते हैं । यहां पहली व्याधि प्रधान होती
है और उपद्रव व्याधि का गुणीभूत होता
है अर्थात् व्याधिके अनुसार ही उपद्रव में
गुण होते हैं । इस उपद्रव की शान्ति प्रधा-
न रोग की शान्ति के साथ होजाती है ।
शरीर में अत्यन्त क्लेश होने से यह व्याधि
पीछे उत्पन्न होतीहै, परन्तु प्रधान व्याधिसे
भी अधिक क्लेशकारक होतीहै अतएवअत्यन्त
शीघ्रता से उपद्रवोंके शान्ति का उपायकरे ।

सांनिपातिकाविसर्प ।

सर्वायतनसंमुत्थंसर्वाल्लङ्घ्यापिनंसर्वधा
त्वनुसारिणमाशुकारिणंमहात्वयिकमिति
संनिपातवीसर्पमाचिकित्स्यविद्यात् ।

अर्थ—सम्पूर्ण कारणों से उत्पन्नहुआ स
म्पूर्ण लक्षणों से युक्त, सम्पूर्ण धातुओं का
अनुसरणकर्ता, शीघ्रकारी, महाउपद्रवों का
करनेवाला संनिपातिक विसर्प दुश्चिकित्स्य
होताहै ॥

विसर्पोंका साध्यासाध्यवर्णन ।

तत्रवातपित्तश्लेष्मनिमित्ताविसर्पास्त्रयः
साध्याभवन्त्याग्निकर्दमाख्यापुनरनुपष्ट
ष्टमर्मणिअनुपहतेवासिरास्नायुमांसवले
देसावधारणाक्रियाभिरुपायैःतावेवाभ्य
स्यमानौप्रशान्तिमापयेयातामनादरोप
क्रान्तपुनस्तयोरन्यतरोहन्यादेहमाभेवा
शीविषवत् । तथाग्रन्थिवीसर्पमज्जातो
पद्रवमारभेताचिकित्सितुमुपद्रवोपद्रुतन्वे
नपरिहरेत् । संनिपातजसर्वधात्वनुसारि
त्वादाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वाच्चासा
ध्यविद्यात् । तत्रसाध्यानांसाधनमनु
व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ -- इन सब विसर्पों में से वातज, पित्त
ज और कफज ये तीन विसर्प साध्यहोते हैं,
अग्नि विसर्प और कर्दम विसर्प मर्मस्थान से
बिना मिले होने पर और सिरा स्नायु, मांस
और क्लेद के अनुपहत होने पर साधारण
क्रियाओं के द्वारा चिकित्सा किये जाने पर
शान्त होजातेहैं, तथा प्रयत्नपूर्वक चिकित्सा
न किये जाने पर आशीविषकी तरह देह को

शीघ्रही नष्टकर देतेहै । ग्रन्थिवीसर्प की चि
कित्सा करने का प्रारम्भ उस समय करें
जो उस में उपद्रव उत्पन्न न हुए हों । उप
द्रवोंके उत्पन्न होनेपर चिकित्सा करना छोड़
देवे संनिपातज विसर्प भी असाध्य होताहै
क्योंकि वह सर्वधात्वानुसारी, आशुकारी हों
ताहै और इसकी चिकित्सा भी विरुद्ध उ
पायों से करनी पडती है ॥ अब हम साध्य
वीसर्पों की चिकित्साका वर्णन करेंगे ।

विसर्प की साधारण चिकित्सा ।

लंघनोल्लेखनेशस्तोतित्तकानांचसेवनम् ।
कफस्थानगतेसोमेरुक्षशीतैःप्रलेपयेत् ॥
पित्तस्थानगतेऽप्येतत्सामेकुर्व्याचिकित्सि
तम् । शोणितस्यावसेकञ्चविरेकंच
विशेषतः ॥ मारुताशयसम्भूतेऽप्यादि
तःस्याद्विरूपक्षणम् । रक्तपित्तान्वयेऽप्या
दौस्नेहंनहितमतम् ॥ वातोल्बणोतित्तघृ
तपैत्तिकेचप्रशस्यते । लघुदोषेमहादोषैप
त्तिकेस्याद्विरचनम् ॥ नघृतं बहुदोषायदे
यंयन्नविरेचयेत् । तेनदोषोह्युपस्तब्धः
त्वह्मांसरुधिरंपचेत् ॥ तस्माद्विरैकमेवा
दौशस्तंविद्याद्विसर्पिणः । रुधिरस्याव
सेकंचतद्भ्रूयस्याश्रयसंज्ञितम् ॥ इतिवीस
र्पनुत्प्रेक्तंसंसासेनचिकित्सितम् । एतदे
वपुनःसर्वव्यासतःसंप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—आमयुक्त दोषके कफस्थानमें जाने
पर लंघन, वमन और तित्त द्रव्योंका सेवन
हितहै तथा जिस स्थानपर विसर्प हुआहो
वहां रूक्ष और शीतल द्रव्योंका लेप करें ।
उसी आमसंयुक्त दोषके पित्ताशयमें जान

पर पूर्वोक्त क्रमका अवलम्बन उचितहै, इस रोगमें फस्त खोलना और दस्त कराना ये दो बातें अधिक कर्तव्य हैं । वाताशय सम्भूत रोगोंमें तथा रक्तापित्तान्वय में उत्पन्न होनेवाले रोगों में प्रथमही से रूक्षण क्रिया करना उचितहै, इसमें स्नेहन क्रिया अहित होती है वाताधिक्य विसर्पमें तथा अल्पदोष वाले पित्तज विसर्प में तित्त घृत हित हैं, एवं महादोषों से युक्त पित्तज विसर्प में विरेचन उत्तम होताहै । जो घृत विरेचनकर्त्ता न हो वह बहुत दोषोंसे युक्त विसर्प रोगी को देना उचित नहीं है क्योंकि इस घृत के देने से दोष रुककर त्वचा, मांस और रुधिर में पकावट पैदा करदेते हैं, अतएव विसर्प रोगीको सबसे प्रथम विरेचन देना चाहिये । पीछे रक्तमोक्षणभी कराताहै क्यों कि रुधिरही विसर्पका प्रधान स्थानहै । यह सञ्चरमे विसर्प की चिकित्सा वर्णन कीगई है । अब हम यहां से विसर्परोगों की चिकित्साका विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे ।

कफापित्तविसर्प की चिकित्सा ।

मदनमधुकर्त्तान्म्वत्सकस्यफलानि च । वमनंसंभदातव्यं विसर्पकफपित्तजे ॥ पटोलपिचुमदाभ्यां पिप्लवामदनेन च । वीसर्पवमनशस्तवथा चेन्द्रयवै सह ॥ यांश्च योगान्मवक्ष्यामि कल्पेणुकफपित्तिनाम् । विसर्पिणां प्रयोज्यास्ते दोषनिर्हरणाः परम् । हस्तनिम्बपटोलानाञ्चन्दनोत्पलशोरपि । शारिदापयसोशीरं सुस्नानां वा विचक्षण ॥ पापवेतकपायान् हि सिद्धान् वीसर्पनाशनान् । किराततित्तकरो ध्रुवालभांस च

न्दनाम् ॥ नागरं पद्माकिञ्जल्कमुत्पलसन्धिभीतकम् ॥ मधुकर्त्तानागपुष्पचदयाद्वीसर्पशान्तये ॥ प्रपुण्डरीकं मधुकफपद्माकिञ्जल्कमुत्पलम् ॥ नागपुष्पचरोध्रचतैर्नैव विधिनापिवेत् ॥ द्राक्षां पर्पटकं शुष्ठीं गुडूचीं धन्वयासकम् । निशापर्षुपित्तदद्यात्तृष्णावीसर्पशान्तये ॥ पटोलपिचुमदञ्च दार्वीककुङ्करीं हिणीम् । यष्ट्या हात्रायमाणञ्च दद्याद्वीसर्पशान्तये ॥ पटोलादिकपायं वा पिवेत् त्रिफलया सह । मसूरविदलैर्युक्तं घृतमिश्रमदापयेत् ॥ पटोलपत्रमुद्गानां रसमामलकस्य च । पायेत्तद्वृत्तान्मिश्रं नरं वीसर्पपीडितम् ॥

अर्थ—कफ पित्तसे उत्पन्न हुए विसर्पमें मेनफल, मुलहठी, नीम, इन्द्रजौ इनका काथ पान कराके वमन करावै । अथवा परवल, नीम, पीपल, मेनफल, और इन्द्रजौ इनका काथ पान कराके वमन करावै कल्पस्थानमें कफपित्त रोगियोंके लिये जो जो प्रयोग वर्णन किये जायेंगे वे सब विसर्प रोगमें प्रयोजनीय होते हैं, ये प्रयोग अलगव्य दोषानिःसारकहैं । मोथा, नीम और परवल अथवा रक्तचन्दन और नीलकमल अथवा शारिवा, आंवला, उसीर और मोथा । इन तीन योगोंके काथ का पान करानेसे विसर्प दूर होजाताहै, ये अनुभूत प्रयोगहैं ।

अथवा चिरायता, लोध, जवासा, रक्तचन्दन, सोंठ, नागकेशर, नीलकमल, बंहडा मुलहठी, नागपुष्प इन का काथ विसर्पनाशक होताहै ।

पुण्डरियाकाठ, मुलहठी, पत्रकेशर, नील कमल, नागपुष्प और लोध इनके काथ को पूर्वोक्त विधिसे विसर्प रोगी को देवै। अथवा दाख, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय, जवासा इनको रात्रि में भिजोकर प्रातःकाल पान करै तो तृप्ता और विसर्प दूर होवै। अथवा परवल, नीम, दारुहलदी कुटकी मुलहठी त्रायमाणा, इनका काथ विसर्प की शान्ति के निमित्त देवै।

अथवा पटोलादि काथ का त्रिफला के साथ पान कराने से विसर्प की शान्ति होती है। अथवा घी मिलाकर मसूरकी दाख देवै अथवा परवल, मूंग और आंवले के रसमें घृत मिलाकर उस मनुष्यको पान करावै जो विसर्प रोग से पीडित हो।

विसर्पनाशकअन्यप्रयोग ।

यच्चसर्पिर्महातिक्तपित्तकुष्ठनिर्वहणम् ।
निर्दिष्टतदपिमाज्ञोदयाद्रीसर्पशान्तये ॥
त्रायमाणाघृतंसिद्धगौलिमकेयदुदाहृतम् ।
वीसर्पाणांप्रशान्त्यर्थं दद्यात्तदपिबुद्धिमान् ।
त्रिवृच्चूर्णसमालोड्य मर्पिपापयसा तथा
यर्म्माम्बुनावासंयोज्यामृद्रीकानारसेन
वा । विरेकार्थं प्रयोक्तव्यं सिद्धं वीसर्पना
शनम् ॥ त्रायमाणाघृतं वापिपयोदद्या
द्विरेचनम् ॥ त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रि
वृतया सह । प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं वीसर्प
ज्वरनाशनम् ॥ रसमामलकानां वाघृत
मिश्रेण दापयेत् । स एव गुरुकोष्ठाय त्रिवृच्चू
र्णयुतोद्भूतः ॥ दोषकोष्ठगते भूय एतत्कु
र्याच्चिकित्सितम् । शाखादुष्टे रुधिर-

क्तमेवादितो हरेत् ॥ भिषग्वातान्वितं रक्तं
विपाणेनाभिर्निहरेत् । पित्तान्वितं जलौ
काभिः कफान्वितं मलाबुभिः ॥

अर्थ..... पित्त कुष्ठनाशक जो महातिक्तक घृत वर्णन किया गया है वह घृत विसर्प के नष्ट करनेमें भी अत्यन्त उपयोगी है। गुल्मरोग में जो त्रायमाणादि घृत वर्णन किया गया है वह भी विसर्पकी शान्तिके निमित्त उत्तम है। निसोथके चूर्ण को घीके साथ, दूधके साथ, उष्णजलके साथ अथवा दाखके रसके साथ विसर्पको दूर करनेके लिये पान करावै। अथवा त्रायमाणा डालकर औटाया हुआ दूध विरेचनके लिये देवै। त्रिफलाके काथके साथ अथवा निसोथके साथ घृत का प्रयोग करने से विरेचनके द्वारा विसर्प जनित ज्वर जाता रहता है। अथवा आंवले के काथमें घृत मिलाकर देवै और जो रोगीका कोठा कड़ा हो तो उसीमें निसोथका चूर्ण और मिला देवै। दोषोंके कोष्ठगत होनेपर यहाँ चिकित्सा फिर करै जो रुधिर शाखामें दूषित हुआ हो उसे प्रथमही फस्त लगाकर निकाल देवै। वैद्य को उचित है कि घात संसृष्ट रुधिरको सीगी लगाकर निकाले, पित्तसंसृष्ट को जोकों से और कफसंसृष्टको अलावू द्वारा निकाले ॥ यथासंश्रं विकारस्य व्यथयेदाशुवासिनाम् त्वद्दमांसस्तायुसंक्लेदोरक्तक्लेदादि जायते ॥ अन्तःशरीरसंशुद्धे दोषत्वद्दमांसं श्रिते । आदितः स्वल्पदोषाणां क्रियावा-
ह्याप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—विसर्पके पासवाली नसमें नस्तर

लगाकर फस्त खोलें जिससे रुधिरमें क्लेद-
ता न होनेपावै क्योंकि रक्तमें क्लेदताके होने
ही से त्वचा, मांस और स्नायुमें क्लेदता उ-
त्पन्न होती है । इन उपायोंके करने से जब
शरीर भीतरसे शुद्ध होजाताहै और दोष
केवल त्वचा और मांस में रहजातेहैं तब दोष
बहुत सूक्ष्म रहजाते हैं उस समय बाह्यक्रिया
की जाती है, अब उन बाह्य उपायोंको व-
र्णन करते हैं ।

वातपित्तजविसर्पपरमलेप

उदुम्बरत्वङ्मधुकपञ्चकिञ्जल्कमुत्पलम् ।

नागपुष्पम्रियंगुश्वप्रदेहः सघृतोहितः ॥

न्यग्रोधपादास्तरुणाः कदलीगर्भसंपुताः ।

विसग्रन्थिः सलेपः स्यात् शतधातघृताप्लुतः

कालीयमधुकहेमवलयचन्दनपञ्चकम् ।

लामृणालफलनीमलेपः स्याद् घृताप्लुतः ।

शाल्लश्चमृणालश्च शंखचन्दनमुत्पलम् ।

वेतसस्यचमूलानि प्रदेहः स्यात् सतण्डुलम् ।

शारिवापञ्चकिञ्जल्कमुशीरं पञ्चकोत्पलम्

मञ्जिष्ठाचन्दनं रोध्रमभयाचमलेपनम् ॥

नलद्वज्जहरेणुधरोध्रमधुकपञ्चकौ ।

दूर्वा सर्जरसश्चैव सघृतं स्यात् परमलेपनम् ॥ या-

वकाः शकवैश्वसर्पिषा सह योजिताः ।

प्रदेहो मधुकवीरासघृतायवशक्तवः ॥ व

लामुत्पलशाल्लकवीरामगुरुचन्दनम् ।

कुर्म्यादालेपनं वैद्यो मृणालञ्च विसान्वि-

तम् ॥ यवचूर्णसमधुकंसघृतञ्च परमलेप-

नम् ॥ हरेणुममूराश्वसमुद्गाः श्वेतशा-

लयः । पृथक्पृथक् प्रदेहास्युः सर्वे यासर्पि-

षासः ॥ पञ्चनीकिर्दमः शीतो मौक्तिकं

पिष्टमेव वा । शंखः प्रवालः शुक्तिर्वागैरि-
को वा घृताप्लुतः ॥ प्रपुण्डरीकं मधुकं व-

लाशाल्लकमुत्पलम् । न्यग्रोधपत्रं दुग्धी

कासघृतं स्यात् परमलेपनम् ॥ विसानि च मृ

णालाश्वसघृता च कशेरुकं । शतावरीया

विदार्याश्च कन्दौ धौतघृताप्लुतौ ॥ श-

वालं नलमूलानि गोजिह्वा वृषकार्षिका ।

इन्द्राणी शाकं सघृतं शरीरपत्वग्बलाघृतम्

न्यग्रोभो दुग्धं रज्जुसवेतसां श्वत्थपल्लवैः ।

त्वक्कल्कैर्वहुसां पिप्पलैः शीतैरा लेपनं हितम् ॥

प्रदेहाः सर्वे एवैते वातापित्तोत्पल्लवेषु भाः ।

सक्तफे तु मवक्ष्यामि मलेपनपरान् शुभान् ॥

अर्थ—गूलरकी छाल, मुलहटी, पद्मकेशर

नीलकमल, नागपुष्प, म्रियंगु इनको, पीस-

कर घी में सानकर लेप करें । बडकी नम्री

न डाढी, केलेका गूदा, कमलनालकी जड़

इनको सोवार धुले हुए घी में मिलाकर लेप

करें । अथवा कालीय (पीतचन्दन) मुल-

हटी, धतूरा, बल्या, चन्दन, पचास, इला-

यची कमलनाल और म्रियंगु इनको घृत में

सानकर लेप करें । अथवा दूध, कमलनाल

शंखकी भस्म, रक्तचन्दन, नीलकमल, वेत

की जड़ और वायविडंग इनको पीसकर लेप

करें अथवा शारिवा, पद्मकेशर, खस, पद्मास्त्र

नीलकमल, मजीठ, रक्तचन्दन, लोध, हरड

इनको पीसकर लेप करें । अथवा खस, क-

रेणु, लोध, मुलहटी, पद्मास्त्र, दूध, राल, और

घी इनका लेप करें, अथवा जी के सत्तूको

घी में सानकर लेप करें । अथवा मुलहटी,

क्षीरकाकोली, घी और जीका सत्तू इनका

लेप करें अथवा खैरेटी, नीलकमल, शाळक (कुमुदादिकी जड), क्षीरकाकोली, अगर, लालचन्दन, अथवा खस और लालचन्दन, इनका लेप करें, अथवा जीका चून, मुञ्जहटी और घी का लेप करें । अथवा हरेणु, मसूर, मूंग, सफेदचाँवल इनको पृथक् २ का सबको मिलाकर घी में सानकर लेप करें अथवा कमलकीजड की ठंडीकाँच, अथवा मोतियोंको जलमें पीसकर अथवा शंख, मूंगा सीपी वा गेरूको घीमें सानकर लेप करें । अथवा पुण्डरिया काठ, मुलहटी, खैरेटी, शाळक, उत्पल, बडके पत्ते और दुद्धी इन को घीमें सानकर लेप करें । अथवा विस, मृणाल और कसेरूको घीमें सानकर लेप करें अथवा शतावरी और विदारीकंद इनको धुलेहुए घृतमें सानकर लेप करें । सित्रार (तलाव के जलकी ऊपरवाली काई), सरकंडेकी जड, गोजिह्वा, वृषकर्णी और इन्द्राणीके पत्ते इनको घीमें सानकर लेप करें अथवा सिरसकी छाल और खैरेटी को घीमें सानकर लेप करें । अथवा बड, गूलर, पाकड, बेत, और पीपलके पत्ते और छाल इनको पीसकर बहुतसे घीमें सानलेवें और ठंडे २ का लेप करें ताँ विसर्परोग दूर हो जाते हैं । ... ये जो ऊपर सम्पूर्ण लेप वर्णन किये गये हैं वे वातपित्तकी अधिकता वाले विसर्प में हितकारी होते हैं । अब हम वात कफ में उपयोगी लेपोंका वर्णन करेंगे ॥

वातकफविसर्पमें लेप ।

त्रिफलापञ्चकोशीरंसमङ्गाकरवीरकम् ।

(१०७)

नलमूलान्यनन्तचमदेहमुकल्पयेत् ॥ ख-
दिरंसप्तपर्णञ्चमुस्तमारग्वधंधवम् । कु-
रुण्टकंदेवदारुदद्यादालेपनांभिषक् ॥ आ-
रग्वधस्यपत्राणित्वचंश्लेष्मान्तकस्यच-
इन्द्राणीशाकंकाकाहाशिरीषकुसुमानि
च । प्रपुण्डरीकंहीवेरंदावीत्वङ्मधुकं-
लाम् ॥ पृथगालेपनंकुर्याद् द्वन्द्वशःस-
र्वशोऽपिवा । प्रदेहाःसर्वएवैतेदेयाःस्व-
ल्पघृतायुताः । वातपित्तोल्बणेपेतुम-
देहास्तेघृताधिकाः ॥ घृतेनशतधौतेनम-
दिह्यात्केवलेनच ॥

अर्थ—त्रिफला, पञ्चाल, उशीर, लज्जालु कनेरकी जड, सरकंडे की जड, अनन्त-
मूल इनका लेप बनाकर लगावै । अथवा खैरसार, सप्तपर्णी, मोथा, अमलतास, धौ की छाल, कुरुण्टक और देवदारु इनका लेप करें । अथवा अमलतासके पत्ते, बहेडे की छाल, इन्द्राणी शाक, मकोय, सिरस के फूल पुण्डरियाकाठ, हाऊबर, दारुहल्दी की छाल मुलहटी, खैरेटी, इनमेंसे एक २ का वा दो २ का वा सबका मिलाकर लेप करें इन लेपोंमें घी बहुत थोडा मिलाया जाता है, वातापित्त के विसर्प में जो लेप कियेजाते हैं उनमें घी अधिक होता है । केवल सौ बार धुलेहुये घीका लेप करें ।

विसर्पकीअन्याचिकित्सा ।

घृतमण्डेनशीतेनपयसायधुकाम्बुना । पं-
चवल्ककपायेणसेचयेच्छीतलेनवा ॥ वा-
तासृक्पित्तबहुल विसर्पबहुशोभिषक् ।
सेचनास्तेप्रदेहायेतएवघृतसाधनाः ॥

तेचूर्णयोगांघ्रीसर्पचूर्णानामवचूर्णनाः ।

दूर्वास्वरसासिद्धचघृतस्याद्वज्रणरोपणम् ॥

दार्वात्त्वङ्मधुक्रोश्रकेसरञ्चावचूर्णनम् ।

पटोलःपिचुमर्दस्तुत्रिफलामधुकोत्पले ॥

एतत्प्रक्षालनंसापिर्वणचूर्णप्रलेपनम् ।

अर्थ....जो विसर्प पित्त बहुल और वात

रक्तसे उपद्रुतहै उसपर घृतमण्ड, शीतल

दूध, जल मिलाहुआ शहत अथवा पंचबल्क

के ठंडे काय द्वारा सेचन करें । जिन प्र-

योगोंका घीमें लेप कियाजाता है, उन्हीं

द्रव्योंका काय सेचनमें कामआता है । उन्हीं

द्रव्योंको पीसकर विसर्पपर चुकी दीजाती है

दूबके रसमें सिद्ध कियाहुआ घी लगाने से

व्रण पुरजाताहै । अथवा दारुहल्दी की छाल

मुडहटी, लोध, और केसर इनको पीसकर

विसर्पपर बुरकें अथवा परबल, नीम, त्रि-

फला, मुलहटी नीलकमल, इनका काय

बनाकर विसर्पको धोवै । इन्हीं द्रव्यों के

घृत, चूर्ण प्रलेपादि नियमों को काममें लावै

लेपलगाने की विधि ।

प्रदेहाःसर्वेष्वन्तेकर्त्तव्याःसंप्रसादनाः ॥

क्षणेक्षणेप्रयोक्तव्याःपूर्वमुद्धृत्यलेपनम् ।

नवीनघृतेपूर्वप्रदेहावहुशोधनाः ॥ दे-

याःप्रदेहाःकफनेपरीधानोद्घृतेधनाः ।

विभागांगुष्ठमात्रःस्यात्प्रलेपःकल्कपेपितः

नातिस्निग्धो नरुक्षश्चनपिण्डो नद्रवःसमः ॥

नचपण्डुपित्तंलेपंकदाचिदवचारयेत् ॥ न

चतेनैवलेपेनपुनर्जातुप्रलेपयेत् । क्लृद्वी

सर्पयूलानिसोष्णभावात्प्रवर्त्तयेत् ॥

लेपोद्भृत्परिपट्टस्पृक्तःस्वेदयतिव्रणम् ।

स्वेदजाःपिडकास्तस्यकण्डूश्चैवोपजायते ॥

उपर्युपरिलेपस्यलेपोयद्यवचार्यते ।

तानेवदोषान्जनयेत्पट्टस्योपरियानुकृतः ॥

अतिस्निग्धोऽतिद्रवश्चलेपोयद्यवचार्यते

त्वचिनाश्लिष्यतेसम्यङ्हनदोपंशमयत्यपि

तन्वालिप्तंनकुर्वतिसंशुष्कोह्यापुटायते ॥

नचौषधिरसोऽग्न्याधिप्राप्तोत्यपिचशुष्य

तितान्वालिप्तेनपेदोपास्तानेवजनयेद्वश

म् । संशुष्कःपीडयेद्व्याधिनिस्नेहोऽव

चारितः ॥

अर्थ—ये सब लेप चित के प्रसन्नकर

नेवाले हैं, पहिले लेपको छुड़ा छुड़ाकर

थोड़ी २ देरमें फिर नये करने चाहियें ॥

पुराने घी में मिलाहुआ लेप बहुत शोधक

होताहै ॥ कफज विसर्प में पहिले लेपका

छुड़ाकर गाढ़ा २. लेपकरै, औषधों को

पीसकर जौभर मोटा लेपकरै ॥ लेप अत्यन्त

चिकना, रूखा, पिण्डित और द्रव नहो सब

जंगह समान हो, वासी लेप को कभी न

लगावै ॥ जिसका एकवार लेप किया है

उसका फिर लेप न करै क्योंकि वह उष्ण

भाव से क्लृद, विसर्प और शूलरोगों को

उत्पन्न करताहै, व्रणके ऊपर पट्टी धरकर ले-

प करनेसे व्रण में स्वेदन होता है । उन

पसीनोंसे फुत्तियां और खुजली उत्पन्न हो-

जाती हैं ॥ लेप के ऊपर लेप करनेसे भी

वही दोष उत्पन्न होते हैं जो धस्त्रके ऊपर

लेप करने से होते हैं ॥ जो लेप बहुत चि-

कनां और बहुत पतला किया जाता है वह

त्वचा में अच्छी तरह नहीं लगता है और

न उससे दोष शान्त होते हैं ॥

पतला लेप कभी न करना चाहिये क्यों-
कि वह सूखकर पपडा जाता है ॥ इस लेप
की औषध का रस व्याधि के पास भी नहीं
पहुँचने पाता और पहिलेही सूखजाता है ।
पतले लेपके करनेसे पूर्वोक्त दोष बहुत बढ
जाते हैं । विना चिकनाईका लेप सूखकर
व्याधिको अत्यन्त पीडित करता है ॥

विसर्पमेषध्यापथ्य ॥

अन्नपानानिवक्ष्यामिर्वीसर्पणानिवृत्तये
लंघितेभ्योहितोमन्योरुक्षःसक्षौद्रशर्करः
मधुरःकिञ्चिदम्लोवादादिमामलकान्वि
तः॥सपरूपकगृद्धीकःसखर्जूरःशृताम्बुना।
तर्पणैर्यवशालीनांसस्नेहावावलेहिका ॥
जीर्णोपुराणशालानांयूपैर्भुञ्जतिभोजनम्
मुद्गान्मसूरांश्चणकान्यूपार्थमुपकल्पयेत् ।
अनम्लान्द्रादिमाम्लान्वापटोलामलकैः
सह ॥ जाङ्गलानाञ्चमांसानांरसांस्त
स्योपकल्पयेत् । रुक्षान्परुषकद्राक्षादा
दिमामलकान्वितान् ॥ रक्ताःश्वेतामहा
हाश्चशालयःपीठकैःसह ॥ भोजनार्थं
मशस्पन्तेपुराणाःसुपरिस्तुताः । पयोमो-
धूमसात्म्यानांसात्म्यान्वेवप्रदापयेत् ।
येषानात्युचितःशालिनैरायेचकफाधिकाः

अर्थ—अब हम विसर्पकी शान्तिके नि-
मित्त अन्नपानकी विधि वर्णन करते हैं वि-
सर्प रोगीको लंघन करानेके पश्चात् शहत
और चीनीके साथ रुक्ष मन्य देवै । अथवा
उसी मन्य में अनार और आंवले की खटा
ई देकर वा कुछ मिष्ट करके देवै । फालसा
किसामिस, खजूर इनके साथ में ओटाये हु

ये जलके साथ तर्पण देवै । अथवा जौ
और शाली चांवलों का अवलेह घृत मिला
कर देवै । इनके पचनेपर पुराने चांवलोंका
भात यूपके साथ भोजनमें देवै, मूंग, मसूर
चना इनका यूप विना खटाईका अथवा
अनारकी खटाई डालकर परवल और आं-
वलेके साथ देवै । जांगल पशुओंका मांस
रस विना चिकनाई डाले फालसे, दाख, अ-
नार और आंवले डालकर सेवन करावै, भो
जनके लिये लाल चांवल, सफेद चांवल, म-
हाशाली, साठी चांवल, इनको उयांलकर
अच्छीतरह मांड निकाल कर देवै परन्तु ये
पुराने होने चाहियें । जिस रोगीको दूध
और गेहूं सात्म्यहों उनको ये ही देवै, जिन
को शालीचांवल सात्म्य नहीं है और जिन
को कफकी अधिकताहै उनको दूध और गेहूंदेवै
विदाहीन्यन्नपानानिविरुद्धानिचर्वजये
त् । क्रोधव्यायामसूर्याग्निप्रचातस्वपनं
दिवा ॥ कुर्याच्चिकित्सतान्यस्मात्शी
तप्रायाणिपैत्तिके ॥ रुक्षप्रायाणिकफजे
स्नैहिकान्यनिलात्मके । वातपित्तप्रशम
नमग्निर्वीसर्पणेहितम् ॥ कफपित्तप्रशमनं
प्रायःकृद्मसंज्ञिते ।

अर्थ—विदाही और विरुद्ध अन्नपान का
परित्याग करदेना उचितहै, क्रोध भी त्याग
कर देवै । पैत्तिक विसर्पमें शीत प्राय चि-
कित्सा करै, कफज विसर्पमें रुक्षप्राय और
वातज विसर्पमें स्निग्धप्राय चिकित्सा करै ।
अग्निविसर्पमें वातपित्त को शमन करनेवाली
औषधी देवै । कृद्म विसर्प में प्रायः कफ
पित्तनाशक औषधियोंका प्रयोग करै ॥

ग्रन्थिविसर्प में चिकित्सा ।
 रक्तपित्तोत्तरदृष्ट्वाग्रन्थिवीसर्पमादितः ॥
 रूक्षणैर्लघनैःसैकैःप्रदेहैःपाञ्चवल्कैः ।
 शिरामोसैर्जलौकाभिर्वमनैःसाविरेचनैः ॥
 घृतैःकपायतित्तैश्चकालज्ञैःसमुपाचरेत् ।
 ऊर्ध्वञ्चाधश्चशुद्धायरक्तेचाप्यवसेचिते ॥
 वातश्लेष्महरं कर्मग्रन्थिवीसर्पिणेहितम् ॥
 उत्कारिकाभिरुष्णाभिरुपनाहःप्रशस्यते ॥
 स्निग्धाभिर्वेशवारैर्वाग्रन्थिवीसर्पशूलिनः
 दशमूलोपसिद्धेनतैलेनोष्णेनसेचयेत् ॥
 सुखोष्णयाप्रादिद्वापिष्ट्याकृष्णगन्ध
 या । शुष्कमूलककल्केननक्तमालत्वचा
 पित्रा ॥ विभीतकस्यचाम्रान्थिकल्केनोष्णे
 नवापिवेत् । बलांनागबलांपथ्यांभूर्जप्र
 न्थिविभीतकम् । वंशपत्राण्यग्निमन्थंकुट्य
 तृगुन्थिप्रलेपनम् ॥ दन्तीचित्रकमूलत्व-
 क्साधारकैपयसीगुडः ॥ भल्लातकास्थि
 कासीसलेपोभिन्द्याच्छिलामपि । वहि
 मर्गस्थितंग्रन्थिकिंपुनःकफसम्भवम् ॥
 अर्थ—ग्रन्थिवीसर्पमें जो रक्तपित्तकी अ-
 धिकता होवे तो प्रथमही से रूक्षक्रिया
 लघन, पंचवल्कल के काथका परिपेक,
 प्रदेह, फस्तखोलना, जोंक लगाना, वमन,
 विरेचन, कपाय और तित्त औषधियों से
 सिद्ध कियाहुआ घी देवे । तथा इस रोग
 में वमन विरेचन और फस्त खोलकर शुद्ध
 करने के पश्चात् वातकफ नाशक क्रियाका
 अवलम्बन करना हितहै । गरम २ छुपडी
 और उपनाह भी हितकारी होतेहैं । जो यह
 रोग शल्युक्त हो तो स्निग्ध वेशवार का

प्रयोग करे और दशमूलसे सिद्ध कियेहुए
 तेलद्वारा परिपेचन करे ॥ अथवा सहजने
 की छालको पीसकर सुहाते हुए गरम गरम
 का लेप करे, अथवा सूखी मूली या कंजा
 की छाल को पीसकर लेप करे अथवा ब-
 हेडेके कल्कको कुछ गुनगुना करके लेप-
 करे अथवा खैरेटी, नागबला, हरड, भोज-
 पत्रकी गांठ, बहेडा, वांसके पत्ते, अरनी इन
 का ग्रन्थि विसर्प पर लेप करे । अथवा दन्ती
 चीते की छाल, सेंडुड और आक का दूध
 गुड, मिलाये की गुठली, फासीस इनका लेप
 करनेसे शिला भी टूट जातीहै तब बाहर-
 वाली कफकी गांठ के भिन्न होजानेमें क्या
 संदेह है ।

चिरकलीन ग्रन्थिकी चिकित्सा
 दीर्घकालस्थितंग्रन्थिभिन्द्याद्वाभेपजैरिमैः
 मूलकानांकुलत्थानांयूपैः सक्षारदादिभ्यैः ।
 गोधूमानैर्पवानैर्वासशीधुमधुशर्करैः ।
 सक्षौद्रैर्वारुणीमण्डैर्मातुलङ्गरसान्वितैः ॥
 त्रिफलायाःप्रयौगैश्चपिप्पलीक्षौद्रसंयुतैः ।
 मुस्तभल्लातशक्नूनांप्रयोगैर्माक्षिकस्यच ॥
 देवदारुगुड्गुल्याश्चप्रयोगैर्गिरिजस्यच

अर्थ—नीचे लिखीहुई औषधियोंसे बहुत
 दिनकी उत्पन्न हुई गांठके तोड़नेका उपाय
 करे । यथा जवाखार और अनार डालकर
 कुलधी वा मूलीका यूप; शीधु, शहत और
 चीनी मिलाकर गेहू वा जौके पदार्थ, विजौरे
 का रस डालकर शहत मिलाहुआ सुरामण्ड,
 पीपल और शहत डालकर त्रिफलाका प्र-
 योग, मोथा, मिलाया और शहत ये डाल-

कर सत्तुओंके प्रयोग, देवदारु और गिलोय के प्रयोग तथा गेरूके प्रयोग। इन प्रयोगों से पुरानी गांठ टूट जाती है।

ग्रन्थिनाशक अन्य विधि ।

धूमैर्विरेकैःशिरसःपूर्वोक्तैर्गुल्मभेदनैः ॥

अयोलवणपापाणहेमताम्रप्रपीडनैः ।

आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिर्विविधाभिर्वलीस्थिरः ॥ ग्रन्थिःपापाणकठिनोयदा

नैवोपशम्यति । अथास्यदाहःक्षारेण

शरैर्लोहेनवाहितः ॥ पाकिभिःपाचयि

त्वावापाटयित्वासमुद्धरेत् । मोसयेत्व

हुशश्चास्यरक्तमुत्केशमागतम् ॥ पुनश्चा

पहेतरक्तेनातश्छेपमजिदौपधम् । धूमोवि-

रेकैःशिरसःस्वेदनपरिमर्दनम् ॥ अपशा

म्यतिदाहेनपाटवंवाप्रशस्यते । प्रक्लिन्ने

दाहपाकाभ्यांभिषक्शोधनरोपणैः ।

वाहैश्चाभ्यन्तरैश्चैवव्रणवत्समुपाचरेत् ।

अर्थ—गुल्मके दूर करनेके लिये जो धू-

मपान, शिरोविरेचन, लोह, लवण, पापाण

सोना, तांबा और प्रपीडन पहिले वर्णनकिये

गयेहैं उनका प्रयोग इस गांठके दूर करने

के लिये करें। और यदि इन अनेक प्रयो-

गोंके करने परभी इस बलवान, स्थिर और

पत्थरके समान कठोर गांठका शमन न हो

ताँ क्षार, शर और लोहसे दग्ध करनाहित

है। अथवा पकाने वाली औषधों से पका-

कर चीर डालें तथा इसके उत्केशित हुए

रक्तको बार बार निकालदेयें रुधिरके निक-

लनेके पीछे वातकफनाशक औषध, धूमपान,

शिरोविरेचन, स्वेदन, परिमर्दन आदिका प्र-

योग करे। जो गांठ दाहसे शान्त न होतौ उसका चीरना हितहै। इस ग्रन्थिके दाह और पाकसे क्लिन्न होनेपर व्रण की रीतिसे बाह्य और आम्प्यान्तरिक शोधन रोपणद्वारा चिकित्सा करे।

ग्रन्थिव्रणकीचिकित्सा ।

कम्पिलयकंविडङ्गानिदार्वाकारश्चकफ-
लम्॥पिष्ट्वातैलंविपक्तव्यंग्रन्थिव्रणचि-
कित्सितम् । द्विव्रणीयोपदिष्टेनकर्मणा
चाप्युपाचरेत् ॥ देशकालप्रमाणज्ञोव्रण-

ग्रन्थिविसर्पवित्

अर्थ—कवीला, वायविडंग, दारुहल्दी, कंजेके फल, इनको पीसकर तैलमें पकाकर ग्रन्थिव्रण पर लगावें। तथा देशकाल और प्रमाणको जाननेवाला वैद्यद्विव्रणीय चिकित्सित प्रकरणमें कहेहुये प्रयोगों को भी इस जगह प्रयुक्त करें।

गलगण्डकीचिकित्साकाक्रम ।

यएवविधिरुद्दिष्टोग्रन्थिनांविनिवृत्तये ॥

सएवगलगण्डानांकफजानानिवृत्तये ।

सर्वेचगलगण्डास्तुयेकफानुगतावृणाम्॥

घृतक्षारकपायाणामभ्यासान्नभवन्ति

अर्थ—ग्रन्थियोंके दूर करनेके लिये जोर

विधि यहां वर्णन की गईहै, वेही कफज ग-

लगण्ड के दूर करने में उपयोगी होती हैं।

कफसे उत्पन्न हुए सब प्रकार के गलगण्ड

घी, क्षार और कपाय का अभ्यास करनेसे

नहीं होने पाते।

रक्तमोक्षणकी उत्कृष्टता ।

यानीहोक्तानिकर्माणिर्वीसर्पाणांनिवृत्तः

ये ॥ एकतस्तानिसर्वाणिरक्तमोक्षणमे-
कतः । विसर्पेन ह्यसंस्पृष्टोरक्तपित्तेन जा-
यते ॥ तस्मात्साधारणं सर्वमुक्तमेतच्चि-
कित्सितम् । विशेषोदोषैवपम्यान्नचनो-
क्तः समासतः ॥ समासव्यासनिर्दिष्टां कि-
यां विद्यानुपाचरेत् ॥

अर्थ.... विसर्पों की शान्तिके निमित्त जो
कर्म वर्णन किये गये हैं वे सब एक ओर हैं
और रक्तमोक्षण एक ओर हैं, क्योंकि रक्त-
पित्तकी संस्पृष्टताके बिना विसर्प होता ही
नहीं है । इसतरह सम्पूर्ण विसर्पोंकी साधारण
चिकित्सा वर्णन की गई है । तथा दोषों की
भिन्नताके कारण यह वर्णन मर्यादा साक्षित
भी नहीं है । इस संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन
के अनुसारही चिकित्सा करना योग्य है ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

निरुक्तनामभेदाच्च दोषादप्याणिहेतवः ।
आश्रयो मार्गतश्चैव वीसर्पगुरुलाघवम् ॥
लिङ्गान्युपद्रवायेच यल्लक्षण उपद्रवाः ।

साध्यत्वं न च साध्यानां साधनश्च यथाक्रम-
म् । इति पिप्रसंगे साक्षि मग्निवेशाय धीमते ॥
उक्तं भगवता ह्येतद् वीसर्पाणां चिकित्सितम् ।

अर्थ.... इस विसर्प चिकित्सिताध्यायमें
भगवान् आश्विनने, चतुराशिरोमणि और
जिज्ञासु अग्निवेश को विसर्प की निरुक्ति
नामभेद, दोष, दूष्य, हेतु, आश्रय, विसर्प
के मार्ग, गुरुता, लघुता, लिङ्ग, उपद्रव,
उपद्रवों के लक्षण, साध्यासाध्य वर्णन, सा-
ध्य विसर्पों की यथा क्रम चिकित्सा का व-
र्णन सुनाया ।

इति श्री भाषाटीकावित्तायां अग्निवेश विर-
चितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां
चिकित्सितस्थाने वीसर्प चिकित्सितं
नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

—१-१-१—

द्वादशोऽध्यायः ॥

अथातो मदात्ययचिकित्सितं व्याख्यास्या-
म इति हस्माद् भगवान् आत्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले-
कि अब हम मदात्ययचिकित्सित नामक अ-
ध्याय की व्याख्या करेंगे ।

सुरैः सुरेशसहितैर्यापुराप्रतिपूजिता । सौ-
त्रामण्याहृत्य ते या कर्मभिर्या प्रतिष्ठिता ॥
यज्ञेहिताया शक्रस्य सोमो निपिवतो भृशम्
नीरुजस्तमसा विष्टस्तस्माद्दुर्गत्समुद्धृतः
विधिभिर्वेदाविहितैर्याजस्मिन् महात्माभिः ।

दृश्यास्पृश्याप्रकल्प्याच यज्ञिया यज्ञसिद्ध-
ये ॥ योनि संस्कारनामाद्यैर्विशेषैर्वहुधा-
चया । भूत्वा भवत्येका विधा सामान्या न्म-
दलक्षणात् ॥ यादेवानमृतं भूत्वा स्वधा-
भूत्वा पितृभ्यः । सोमो भूत्वा द्विजातीन्या
युक्ते श्रेयोभिरुत्तमैः ॥ आश्विनं यामह-
त्तेजो योग्यं सारस्वतञ्चया । वलमैन्द्र-
ञ्चया सोमः सौत्रामण्याञ्चयामता ॥

शोकारतिभयो द्वे गणाशनीयामहाबला ।
याम्रीतिर्यारतिर्यावाग्यापुष्टिर्याचानिर्द-
तिः ॥ यामुरासुरगन्धर्वयक्षराक्षसमानुषैः ॥
रतिः सुरेत्याभीहता तां सुरां विधिनापि वेत्ता ॥
अर्थ—जिस मदिराका अमरेश्वर इन्द्रने
पूर्वकालमें पूजन किया है, जिसकी सूत्रांगणि

हवन में आहुति दी जाती है जो वेद विहित कर्मों से प्रतिष्ठित होती है, जो सोमपान करनेवाले इन्द्रके यज्ञमें हित है तमसाविष्ट इन्द्र जिसके पानसे निरोग तथा क्लेशसे उद्धत होगया । यज्ञमें उपयोगी यह सुरा यज्ञ की सिद्धिके लिये वेदविहित कर्मोंके द्वारा यज्ञकरनेवाले महात्माओंसे दर्शन के योग्य, छूने के योग्य, और कल्पना करने के योग्य की जाती है । यह सुरा अनेक द्रव्यों से बनाये जाने के कारण वा अनेक नाम भेद से अनेक प्रकारकी होती है परन्तु 'नशा होना, यह एक साधारण धर्म सबमें है इस से अनेक प्रकारके मद्य भी एकही प्रकारके माने जाते हैं । यह सुरा अमृतरूप होकर देवताओंकी, स्वधा होकर पित्राश्वरों की और सोम होकर द्विजन्माओंकी शोभा और कान्ति को बढ़ाती है । यह सुरा स्वर्ग वैद्य अश्विनीकुमार का महत्तेज है, सरस्वतीका वीर्य है, इन्द्रका बल है और सूत्रामणि यज्ञ में सोमके सदृश है । यह सुरा शोक, अरति भय, उद्वेगका नाश करनेवाली है, अत्यन्त बलको बढ़ाने वाली है, यही सुरा, प्रीति, रति, वाणी, पुष्टि और निवृत्ति की साक्षात् मूर्ति है । जिस सुराको देवता अमुर, गन्धर्व यक्ष, राक्षस, मनुष्य रति नामसे पुकारते है उस सुराको विधि पूर्वक पान करें । (विधि पूर्वक कहने का यहाँ तात्पर्य है कि इसके पानमें व्यतिक्रम होनेसे यह पूर्वोक्त गुणों से विपरीत फल देती है) ।

सुरापानकी विधि ॥

शरीरकृतसंस्कारः शुचिरुत्तमगन्धवान् ।
 प्रावृतो निर्मलैर्वस्त्रैर्यथार्तुद्दामगन्धिभिः ॥
 विचित्रविधिस्रग्वीरत्नाभरणभूषितः ।
 देवादिजातीनसंपूज्यस्पृष्ट्वामङ्गलमुत्तमम्
 देशेयथर्तुकेष्टेष्टेकुसुममकरीकृते ॥ संवा
 ससंमतेमुख्येधूपसंमोदवोधिते । सोपधा
 नेष्टुसंस्तीर्णेविहितेशयनासने ॥ उप
 विष्टोऽथवातिर्यक् स्वशरीरमुखेस्थितः ।
 सौवर्णेः राजतैश्चापितथामणिमयैरापि ॥
 भाजनेर्विमलैश्चित्रैः सुकृतैश्चपिवेत्सदा ।
 स्त्रीभिर्यौवनमत्ताभिः शिक्षिताभिर्यथर्तुकैः
 वस्त्राभरणमाल्यैश्चभूषिताभिर्विभूषितः ।
 शौचानुरागयुक्ताभिः समदाभिरितस्ततः ॥
 संवाहमानः प्रोष्ठाभिः पिवेन्मध्यमनूत्तमम् ॥
 पिवेन्मद्यानुकूलैर्वाफलैर्हारीतकैः शुभैः ॥
 लवणैर्गन्धापि शुनैर्वरदंशैर्यथर्तुकैः । भृष्टै
 र्मांसैर्वहुविधैर्भूजलाम्बरचारिणाम् ॥
 पांगवजविहितैर्भक्ष्यैश्चविधिसात्मकैः
 अर्थ—वसन विरचन के पश्चात् देहके शुद्ध होने पर पवित्र, उत्तम सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त होकर सुगन्धित निर्मल वस्त्रों को धारण करें अनेक प्रकार के पुष्पों की माला धारण करें, तरह तरह के सुगन्धित आभूषणोंको पहरे देवता और द्विजोंकी पूजाकरके मंगलद्रव्योंका स्पर्श करें । तदनंतर ऋतुके अनुकूल अनेक प्रकार के पुष्पों से निर्मित, सुगन्धित द्रव्योंसे भूषित, बसने योग्य स्थानमें एक शय्या बिछवाये जिसपर मनोऽनुकूल तौंसक तकिये लगाये हों, उस

शय्या वा आसनपर बैठकर अथवा मुख फेर कर सोने, चांदी वा मणिमय निर्मल चित्र विचित्र और अच्छे घने हुए पात्रमें मद्यको भरकर पान किया करें। यौवनके मदमें चूर, सुशिक्षित ऋतुके अनुकूल वस्त्र आभूषण, मालाओंसे अलंकृत, आभूषणोंसे भूषित, शौच और अनुरागसे युक्त, मनोहारिणी स्त्रियां देह पर इधर विधर हाथ फे-
रतीहों। मदपानके पश्चात् मद्यानुकूल उत्तम हरे फल वा ऋतु के अनुकूल नमकीन और सुगंधित अवदंशादि (माजून, चटनी इत्या-
दि) का सेवन करें ॥ अनेक प्रकारके थ-
लचर जलचर आकाशचर जीवोंका मांस भू-
न कर उन में नमक सुगंध द्रव्य आदि म-
साले डालकर अनेक प्रकार के बनाकर से-
वन करें ॥

दोषानुसार मद्यपान विधि ।

पूजयित्वासुरान्पूर्वमाशिशः प्राक्प्रयुज्य च
प्रदाय सजलं मद्यमादितो वसुधातले ।
अभ्यङ्गोत्सादनस्नानवासो धूपानुलेपनैः
स्निग्धोष्णैर्भावितैश्चान्नैर्व्रातिके मद्यमा-
चरेत् । शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरस्निग्ध-
शीतलैः । पित्तिको भावितश्चात्रैः पिवे-
न्मद्यं न सीदति ॥ उपचारैरशिशैर्यव
गोधूमभृक्षपिवेत् । श्लैष्मिकैर्धन्वजैर्मौ-
सैर्मद्यमारिचकैः सह ॥ विधिर्वसुमता मे-
भविष्यद्विभवाश्रये । यथोपपत्तिकै-
र्मद्यपातव्यं मात्रया हितम् ॥

अर्थ—प्रथम देवताओंका पूजन करके
मंगल पाठ्यारे फिर मद्यमें घोड़ासा जल मि-

लाकर पृथ्वी पर डाल दें। तदनन्तर वा-
तप्रकृति वाला मनुष्य अभ्यंग, उबटना स्नान
करके, कपड़े पहनकर, धूमपानकरके चन्दन
लगाके स्निग्ध और उष्ण अन्नके साथ मद्य
का सेवन करें। पित्तप्रकृति वाला पुरुष अ-
नेक प्रकारके शीतल उपचारोंके पीछे मधुर,
स्निग्ध और शीतल अन्नोंके साथ मद्यका
सेवन करें। इसीतरह कफप्रकृतिवाला पुरुष
उष्ण उपचारोंके करनेके पश्चात् गेहूँके प-
दार्थ और कालीमिरच डालकर सिद्ध किये-
हुए धन्वज पशुओंके मांसके साथ मद्यपान करें
जो मनुष्य धनपात्रहै, वा भविष्यत्में
धनपात्र होना चाहतेहैं वे ऊपर कही हुई विधि
के अनुसार प्रमाण पूर्वक मद्य का पान करें।

प्रकृत्यनुसार पेयमद्य ।

वातिकेभ्यो हितं मद्यं प्रायोगौडिकपेट्टिकम्
कफपित्ताधिकेभ्यस्तु फालमाधवशर्करम्
बहुद्रव्यबहुगुणं बहुकर्मप्रदात्मकम् ॥
गुणैर्दोषैश्च तन्मद्यमुभयैरुपदेक्ष्यते ।

अर्थ....वातप्रकृतिवाले पुरुषों को प्रायः
गुडसे बनाहुआ और पिष्टकसे बनाहुआ मद्य
हितहै, कफप्रकृति तथा पित्त प्रकृति वालों
को फल, मधु और शर्करासे बनाहुआ हित
होताहै। मद्य अत्यन्त पतला होताहै यह अ-
नेक प्रकारके कर्म और गुणोंका करने वा-
ला है। अब मद्यके गुण और दोष वर्णन
किये जाते हैं ।

मद्यके गुणदोष ।

विधिना मात्रया काले हितैरन्यथा बलम् ॥
महृद्दोषः पिवेन्मद्यं तस्य स्यादमृतोपमम् ।

यथोपेतं पुनर्मद्यं प्रसंगाद्येन पीयते ॥ रुक्ष
व्यायामनित्येन विपद्यत्तितस्य तत् ।
मद्यं हृदयमाविश्य स्वगुणैरोजसोगुणान् ॥
दशभिर्दशसंक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ।

अर्थ.... उचित समयमें विधिपूर्वक मात्रा-
वत् और हितकारी अन्नके साथ बलके अ-
नुसार प्रसन्न चित्त से मद्यपान करे । तौ
यह मद्य अमृतके समान गुणकारक होता है।
और जो रुक्ष और परिश्रमी मनुष्य यथा-
प्राप्त मद्यको अत्यन्त प्रसंगसे पीलता है उस
को विपद्ये समान है ।

मद्य हृदयमें प्रवेश करके अपने दशगुणों
से ओजोधातुके दशगुणोंको क्षुभित करके
चित्तमें विकार उत्पन्न करता है ।

मद्यके दशगुण ।

लघूष्णतीक्ष्णमूक्षमाम्लव्यवायाशुगमे
वच ॥ रुक्षं विकासि विपदं मद्यं दशगुणं
स्मृतम् ।

अर्थ—मद्यमें दश प्रकारके गुण होते हैं,
यथा—हलकापन, उष्णता, तीक्ष्णता, सू-
क्ष्मता, खटाई, व्याघात, शीघ्रगामित्व, रु-
क्षता, विकासित्व और विपदता ।

ओजोधातुके दशगुण ।

गुरुशीतं मृदुश्लक्ष्णं बहुलमधुरं स्थिरम् ॥
प्रसन्नं पिच्छिलं स्निग्धं ओजो दशगुणं तथा ॥

अर्थ.... भारीपन, शीतलता, मृदुता, श्ल-
क्ष्णता, बहुलता, मधुरता, स्थिरता, प्रसन्न-
ता, पिच्छिलता और स्निग्धता ये दश गुण
ओजोधातुके हैं ।

मद्यगुणोंसे ओजके गुणोंका नाश ।
गुरुत्वं व्याघाच्छत्यं चाष्ण्यादम्लस्वभा

(१०८)

वतः । माधुर्यमादिवं तैक्ष्ण्यात्प्रसादश्चा
शुभावनात् ॥ रौक्ष्यात्स्नेहं व्यापित्वा
स्थिरत्वं श्लक्ष्णतामपि । विकासिभा
वात्पिच्छिल्यं वै शिघ्रात्सान्द्रतां तथा ।
सौक्ष्म्यान्मद्यं विदित्येवमोजसः स्वगुणैर्गु-
णान् ॥

अर्थ... मद्यके दशगुणोंसे ओजोधातुके द-
शगुणोंका नाश नीचे लिखी हुई रीतिसे होता
है । यथा मद्यके हलकापनसे ओजका भारा-
पन, उष्णतासे शीतलता, अम्लतासे मधुर-
ता, तीक्ष्णतासे मृदुता, शीघ्रगामित्व से स्व-
च्छता, रुखापनसे चिकनाई, व्याघातसे
स्थिरता, विकासितासे श्लक्ष्णता, पिच्छिलता
से विशदता और सूक्ष्मतासे गाढापनका
नाश होता है ॥

नशोकाकारण ।

सत्त्वं तदाश्रयं चाशुसंक्षोभ्य जनयेन्मदम् ।

अर्थ—मन ओजोधातुके आश्रित है अत-
एव ओजो धातुके नष्ट होनेसे शीघ्र ही मद्य
उत्पन्न होता है ।

रसधात्वादिमार्गाणां सत्त्वं बुद्धिन्द्रियात्म-
नाम् ॥ प्रधानस्याजसत्त्वं हृदयस्थानमु-
च्यते । अतिपीनेन मद्येन विदितेन ओजसा-
चतत् ॥ हृदये याति विकृत्यं न प्रमत्तये-
वानय ।

अर्थ—हृदय रसादि धातुओं का स्थान है,
मन, बुद्धि, इन्द्रियगण, आत्मा और प्रज्ञा
ओजोधातुका स्थान है । अत्यन्त मद्यपान
करनेमें ओजोधातु नष्ट होजाती है इस ओ-
जोधातुके नष्ट होनेमें हृदय विकृत हो जाता है
और हृदयस्थ धातु भी नष्ट होजाती है ।

मद्यको पूर्वापरत्व ।

ओजस्यविहितपूर्वहृदिचमतिबोधिते ॥

मध्यमेविहितेऽल्पेचविहितेत्तमोमदः ।

अर्थ—जितने मद्यके पानसे ओज अविहितहो और हृदयमें चैतन्यताहो उसको पूर्व मद कहतेहैं । ओजके अल्पविहित होने पर मध्यममद और सर्वथा विहित होनेपर उत्तममद कहाताहै ॥

पैष्टिकमद्यकेगुण ।

नैवंविधातंजनयेन्मद्यपैष्टिकमोजसः ॥

विकासरूक्षाविपदागुणास्तत्रहिनोत्वणाः

अर्थ—पैष्टिकमद्य भोजोधातुमें ऐसा विकार कभी उत्पन्न नहीं करताहै, क्योंकि इसमें विकासी, रूक्ष और विपद ये गुण अधिक नहीं होतेहैं ॥

मद्यगुणाविष्टकेलक्षण ।

हृदिमद्यगुणाविष्टेहर्षस्त्वर्पोरतिःसुखम् ।

अर्थ....हृदयके मद्यगुणसे आविष्ट होनेपर हर्ष, तर्प (इच्छा), रति और सुख ये उत्पन्न होतेहैं ।

अतिसेवितमद्यकेउपद्रव ।

विकारादचययासत्वंचित्राजसतामसाः
जायन्तेर्मोहनिद्रार्त्तामद्यस्यातिनिषेवणा
त्तासमद्यविभ्रमोनाम्नामदइत्यभिधीयते ॥

अर्थ—मद्यके अत्यन्त पानसे जैसा मध्य होताहै उसके अनुसार अनेक प्रकार के रजोगुण उत्पन्न होतेहैं मोह तथा निद्रा की उत्पत्ति भी होती है । इसीदशा को मद्य विभ्रम वा मद कहते हैं ॥

मद्यकेभेद ।

प्रापमानस्यमद्यस्याविज्ञातव्यास्रयोमदाः

प्रथमोमध्यमोऽन्यश्चलक्षणैस्तान्प्रवक्ष्यते

अर्थ—मद्यपानसे तीनप्रकारका नशा उत्पन्न होताहै, यथा -प्रथम, मध्यम और अन्यम । अब इनमें से प्रत्येकके लक्षण कहतेहैं

प्रथममदकेलक्षण ।

महर्षणःप्रीतिकरःपानान्नगुणदर्शकः ॥

वाद्यगीतप्रहासानां कथानाञ्चप्रवर्त्तकः

नचबुद्धिस्मृतिहरोविषयेषुनचाक्षमः ॥

सुखनिद्राप्रबोधश्चप्रथमःसमुखोमदः ।

अर्थ—प्रथममद हर्षवर्द्धक, प्रीतिकारक अन्नपानके गुणोंका दिखानेवाला, बाजा, गीत, प्रहास और अनेक प्रकारकी वार्ताओंका प्रवर्त्तक होताहै, इससे बुद्धि और स्मृति का नाश नहीं होता, इन्द्रिय विषयोंमें असमर्थता नहीं होती, सोने और जागने में सुख होता है ॥

मध्यममदकेलक्षण ।

मुहुःस्मृतिर्मुहुर्मोहोव्यक्तासज्जातिवाहमुहुः

युक्तायुक्तप्रलापश्चप्रचलायनमेवच ।

स्थानपानान्नसां कथ्येयोजनासविपर्यया

लिङ्गायेतानिजानीयादाविष्टेमध्यमेमदे ।

अर्थ....कभी वाणी की व्यक्तता, कभी कण्ठ का घिरजाना, युक्त और अयुक्त प्रलाप, कभी चलना, कभी बैठजाना, कभी खाना, कभी पीना आदि विपर्ययकर्म होते हैं ॥

मध्यममदकानिषेध ।

मध्यमेमदमुत्कम्पपदमप्राप्यचोत्तमज्ञान

किञ्चिन्नाशुभं कुर्युर्नरारजसतामसाः

कोमदतादृशविद्राजुन्मादमिवदारुणम् ॥

गच्छेद्ध्वानमस्वन्तवहुदोषमिवाध्वगः ।

अर्थ—रजोगुणी और तमोगुणी मनुष्यों को जो उत्तममद प्राप्त न हो तोवे मध्यममद को प्राप्त करके अनेक प्रकारके अशुभकर्म कर बैठते हैं। इस भयानक मध्यम मदका इसतरह त्यागकर देना चाहिये जैसे यात्री बहुत बिघ्नोंसे युक्त मार्गका परित्याग करदेते हैं।

तृतीय मद के लक्षण ॥

तृतीयंतुमदं प्राप्य भग्नदार्ढ्यं विनिष्क्रियः ॥
मदमोहावृत्तमना जीवन्नपि भूतः समः । र-
मणीयान्सविपयान् भवेत्तिनसुहृज्जनम् ॥
यदर्थं पीयते मध्वरतितां च न विन्दति ॥ का-
र्याकार्यसुखदुःखं लोके यच्च हिताहितम् ।
यदवस्थोन जानाति कोऽवस्थां तां व्रजेद्विष-
सदूष्यः सर्वभूतानि निन्धया ग्राह्य एव च ॥
व्यसन्नित्वादुदकं च सदुःखं व्याधिमश्नुते ॥

अर्थ—तीसरे मदके होनेसे मनुष्य टूटी लकड़ीकी तरह निष्काम होजाता है, उसका मन मद और मोहसे आवृत होनेके कारण वह जीता हुआ भी मरे हुए के समान होता है, उस दशामें उसको भोग्य विषय और सुहृज्जनोंका भी ज्ञान नहीं रहता है। जिस रति विलास के श्रिये वह मद्यपान करता है उसका आनन्द भी उसके हाथ नहीं लगता है। जिस अवस्थाके ज्ञान होनेमें कर्तव्याकर्तव्यकर्म, सुख दुःख और हिताहित का ज्ञान नहीं रहता है, उस अवस्था को प्राप्त करने को कौनसा बुद्धिमान् देखता करता है। ऐसा मद्य मनुष्य सब प्राणियों की दृष्टिमें दूष्य, निन्दनीय और अपाक्ष होजाता है और बुद्धिमें पूर्व दुर्बलता

के कारण कृच्छ्रसाध्य व्याधियोंसे ग्रस्त होजाता है

मदके अवगुण ॥

प्रेत्य चेह च यच्छ्रेयः श्रेयो मोक्षश्च यत्परम् ॥
मनःसमापौतत्सर्वभायत्सर्वदेहिनाम् ।
मद्येन मनसश्चास्य सक्षोभः क्रियते महान्
महामारुतवेगेन तदस्थस्य वशास्विनः ।

अर्थ....इस लोक और परलोक में जो श्रेय पदार्थ हैं और जो उत्तम मोक्ष है वह प्राणियों के मनकी एकाग्रता पर निर्भर है। यह एकाग्रता मद्यपान से नष्ट होजाती है, जैसे वायु के वेग से किनारे के वृक्ष टूट पड़ते हैं ॥

मद के अन्य अवगुण ।

मद्यमसद्मन्त्रानं पद्मादोपमहागदम् ॥ सु-
खमित्यधिगच्छन्ति रजोमोक्षपराजिताः ॥
मद्योपहतविज्ञाना विमुक्ताः सार्चिकर्गुणः ॥
श्रेयोभिर्विषमगुण्यन्तमदान्ध्यामदव्यायसाः ॥
मद्येमोहोभयं शोकक्रोधांमृग्यश्रमं श्रिताः ।
मोन्मादं मदमूर्च्छायाः सापस्मारापनान-
काः ॥ यत्र कस्मृतिविप्रगुस्तप्रमथमया
वृत्तः । इत्येवं मद्योपमा मथ्य गरीक्षितय-

ग्नयः ॥

अर्थ....मद्य में आत्मिक का होना श्र-
ज्ञान, महादोष और मथ्यकर गंगोंका उलपथ
करने वाला है। रज और मोक्ष में पराजित
हूय मनुष्यों का इस में गुण गुणता है।
मदाब्ध और मद की व्यायसा करने वाले
मनुष्य मद्यपान से ज्ञान शक्ति क्षीण हैं,
उनके मर्तागुण नष्ट होजाते हैं और श्रेय-
कार पदार्थों में वह विषम होजाते हैं। म-

पान में मोह, भय, शोक, क्रोध मृत्यु उन्माद, मद, मूर्च्छा, अपस्मार और अपतानक इतने उपद्रव आश्रित रहते हैं, मद्य में स्थिति विप्रश एक सव में भारी दोष है इसी से सम्पूर्ण उपद्रव उत्पन्न होते हैं।
इसतरह मद्यके दोषोंके जानने वालों ने मद्य की निन्दा की है।

युक्ति वाजत मद्यपान के दोष।
सत्यमेते महादोषामद्यस्योक्तानसंशयः ॥
अहितस्यातिमात्रस्य पीतस्य विधिवर्जनम्
किन्तु मद्यस्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम्।
अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं तथा मृतम् ॥
प्राणः प्राणभृतामन्नं तद्रयुक्त्यानिहन्त्यमूनं।
विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥

अर्थ—विधि रहित अहितकारी मद्यका अत्यन्त पान करने से जो महादोष मद्य के कहे गये हैं वे ठीकही हैं, उनमें कोई संदेह नहीं है, परन्तु मद्यका और अन्नका स्वभाव एकसा है। विना युक्ति से युक्त किया मद्य रोगों को उत्पन्न करता है और उसीका युक्ति पूर्वक सेवन करना अमृत के समान गुणकारी है, जैसे युक्ति पूर्वक अन्नका सेवन करनेसे प्राणोंका पोषण होता है और अयुक्ति पूर्वक सेवन करने से प्राणों का हरण कर लेता है। जो विष प्राणोंका नष्ट करने वाला है उसी का युक्ति पूर्वक सेवन करनेसे रसायन का काम देता है ॥

युक्तिपूर्वक मद्यके गुण ॥

हृषीकेशोऽपि पुष्टिमारोग्यं पौरुषं परम्। युक्त्या पीतं करोत्याशु मद्यमदं सुखावहम् ॥

रोचनं दीपनं हृद्यं स्वरवर्णप्रसादनम्। प्रीणनं वृंहणं बल्यं भयशोकश्रमापहम् ॥ स्वापनं नष्टनिद्राणाम् कानां वाग्विबोधनम्। बोधनञ्चातिनिद्राणां विवृद्धानां विवन्धनम् ॥ वध्वन्धपरिकेशदुःखानाञ्चावमोहनम्। मदोत्थानाश्च रोगाणामद्यमेव प्रसाधकम् ॥ रतिविषयसंयोगप्रीतिसंयोगवर्द्धनम्। अतिप्रवयसामद्यमुत्सवा मोदकारकम् ॥

अर्थ....युक्तिपूर्वक मद्य के सेवनसे हर्ष, उत्साह, मद, पुष्टि, अरोगिता और अत्यन्त पुरुषार्थ बढ़ता है, मद्यका मद सुख प्रबोधक होता है। यह राक्षसवर्द्धक अग्निसे दीपन, हृदयको हितकारी, स्वर और वर्णको बढ़ाने वाला, प्रीणनकर्त्ता, वृंहणकर्त्ता बलकर्त्ता भयनाशक, शोकहर्त्ता, श्रमनाशक है जिसकी निद्रा नष्ट होगई हो उसको नींद आजाती है, गुणोंकी बोलखुलजाती है, अतिनिद्रित अर्थात् गाफिलों को चेत होजाता है, जिन को दस्तकी कवजियत होती है उनका कवज मिट जाता है। बन्ध वन्ध, परिकेश और दुःखोंका इससे नाश होजाता है, मद से उत्पन्न हुए रोगों को मद्धी दूर करता है, यह रति विषयमें संयोजक, प्रीतिके संयोग का वर्द्धक, वृद्धमनुष्योंको आल्हाद और आमोद का उत्पन्न करने वाला है ॥

प्रथम मद के गुण।

पञ्चस्वर्गेषु कान्ते पुयारतिः प्रथमे पदे। युनां वास्थविराणां वा तस्य नास्त्युपमा भुवि बहुदुःखकृतस्यास्पृशो केनोपहतस्य च।

विश्रामोजीवलोकस्यमदयुक्त्यानिपेधि
तम् ॥

अर्थ—मदकी प्रथमावस्था में युवा और
वृद्ध मनुष्यों को जो आनन्द पाँचों इन्द्रियों
के निषेधोंमें प्राप्त होताहै उसकी उपमा पृ-
थ्वी में नहीं है। युक्ति पूर्वक सेवन किया
हुआ मद बहुत दुःखों से व्याप्त और शोक
से उपहत प्राणियों के लिये विश्राम दायकहै॥

मद्यपान में कर्त्तव्य ।

अन्नपानवयोव्याधिवलकालात्रिकाणि
षट् । त्रीनदोषांस्त्रिविधसत्त्वज्ञात्वामयं
पिवेतुसदा ॥

अर्थ....अन्न, पान, वय, व्याधि, वल
कालकी तीन अवस्था ये सब छः और ती-
नों दोष, तीनों प्रकारका सत्व इनको वि-
चार के मद्यपान करे ।

तेपात्रिकाणामष्टानां योजनायुक्तिरुच्यते
यथायुक्त्यापिवेन्मद्यमद्यदोषैर्नयुज्यते ॥
मद्यस्यचगुणान्सर्वान्यथोक्तान्समुपाश्रुते ।
धर्मार्थयोःपीडार्थैर्नरः सत्वगुणोच्छ्रितः ॥

अर्थ—इन आठोंकी तीन तीन युक्तियों
के अनुसार मद्यका योग करना मद्य की
युक्ति कहाती है । युक्ति पूर्वक मद्यके सेवनसे
मद्य के दोष नहीं होने पाते, और मद्य के
यथोक्त सम्पूर्ण गुण भोगने में आते हैं, त-
था धर्मार्थ के अवपीडन और सत्वगुणके
बढनेसे आनन्द प्राप्त होता है ॥

सत्त्वानितुप्रभुष्यन्तेप्रायशःप्रथमेमदे । द्वि-
तीयेव्यक्ततायातिमदेचोत्तममध्ययोः ॥
सत्त्वसम्बोधकहर्षहेमप्रकृतिदर्शकः । यथा
गिरेर्वसत्त्वानांमद्यमकृतिदर्शकम् ॥

अर्थ—उत्तम और मध्यम प्रकृतिवाले
मनुष्योंके प्रथम मदमें सम्पूर्ण सत्व प्रबुद्ध
होते हैं और मध्यम मदमें सम्पूर्ण सत्व व्य-
क्त अर्थात् स्पष्ट होजाते हैं, जैसे अग्नि से
सुवर्णकी प्रकृति दीखने लगती है उसी त-
रह मद्य भी सत्व सम्बोधक, हर्षवर्द्धक और
प्रकृतिदर्शक होताहै ॥

सुगन्धमालयगन्धैर्वासुप्रणतिमनाकुलम् ।
मिष्टान्नपानविशदंसदामधुरसंकथम् ॥
सुखप्रमाणंमुमदंमहर्षप्रीतिवर्द्धनम् । स्व-
न्तंसात्त्विकमापन्नंचोत्तममदमदम् ॥

अर्थ....सुगन्धित गंधमालाको धारण कर
के, सुन्दर वनायेहुए निर्मल मिष्टान्न पान
के साथ प्रमाणसे सेवन कियाहुआ मद्य तथा
मिष्टवार्ताओं से युक्तिपूर्वक सेवन कियाहुआ
मद्य उत्तम नशा करता है, हर्ष और प्रीति
को बढाता है यह मद अन्तमें सात्त्विकता
उत्पन्न करता है तथा इससे उत्तम और
कोई मद नहीं है ॥

वैगुण्यंसहसायान्तिमद्यदोषैर्नसात्त्विकाः
मद्यं हि वलवत्सत्त्वभृदातिसहसान्तु ॥

अर्थ....मद्यके दोषसे सत्वप्रकृति पुरुष
शीघ्रही विगुणताको प्राप्त नहीं होजाते हैं ।
मद्य बलवान् सत्व को सहसा पराजित नहीं
करसक्ता है ॥

राजसादिप्रकृतिमद्यकेकर्म ॥

सौम्यासौम्यकथामायंविपदाविपदक्षणा
त्चित्रंराजसमापानंप्रायेणास्वन्तमाकुल
म्॥हर्षस्मृतिकयोपेतमतुष्टपानभोजनेसंभो-
हकोधनिद्रार्त्तमापानंतामसंस्मृतम् ॥

अर्थ—राजसप्रकृतिवाला मनुष्य मद्यके पीने से कभी सौम्य कभी असौम्य घातें करने लगता है, क्षणभर में विशद और क्षणभर में अविशद भाव को ग्रहण करता है, उस के स्वभाव में एक तरह की विचित्रता पैदा होजाती है, अन्त में प्रायः आकुल होजाता है । इसको हर्ष, स्मरण और कथोपकथन बढ़जाता है, खाने पीने में तुष्टि नहीं होती है । जिसमें मोह, क्रोध और निद्रा पीनेवाले को घेरलेते हैं उसे तामस आपान कहते हैं ।

आपानेसाच्चिकानुधुद्वातथाराजसतामसान् । जहात्सहायान्यैःपीत्वासहदां पानुपाश्रुते ॥

अर्थ—मदिरालयमें सात्विक, राजस और तामस का विचार करके जिन के साथ मद्यपान करने से दोष बढ़ते हैं उन का परित्याग करेदेवे ॥

मद्यपानके योग्य साथी ।

सुखशीलाःसुसंभाषा सुमुखाःसंमताःसताम् । कलासुधाव्यविषदाविषयप्रवणाश्चये ॥ परस्परविधेयायेयेपामैक्यंसुहृत्तया । प्रहर्षप्रीतिमाधुर्यैरापानं चर्द्धयन्ति ये ॥ उत्सवादुत्सवतरयेपामन्योन्यदर्शनम् । तेसहायाःसुखाःपानैःतैःपिवन्सहमोदते ॥ रूपगन्धरसस्पर्शैःशब्दैश्चापिमनोरमैः । पिवन्तिसुसहायायेतेवसुकृतिभिःसमाः । पञ्चभिर्विषयैरिष्टरूपैर्मनसःपिबैः । देवैकालेपिवेन्मद्यग्रहणेनान्तरात्मना ॥

अर्थ—जिन मनुष्यों का स्वभाव शील-सम्पन्न हो, जो मधुरभाषी, सुमुख, ससंगी हों जो कलाकुशल, बात कहने में प्रवीण, विषयों में लीन, परस्परस्नेही, ऐक्यतायुक्त सुहृदता सम्पन्न हों, जो मदिरालय में हर्ष प्रीति, और मधुरता को बढ़ावें । जिन के एक दूसरे से मिलने में अत्यन्त आनन्द की वृद्धि हो । ऐसे मनुष्यों के साथ मद्यपान करने से सुख बढ़ता है और इन्हींके साथ में मद्यपान करना चाहिये । मनकोहरण करनेवाले रूप, रस गंध, स्पर्श तथा शब्दों के बीच में उत्तम साधियों के साथ जो मद्यपान करतेहैं वे बड़े सुकृती पुरुष होतेहैं ॥ उत्तमदेश काल में अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे मनोऽनुकूल शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध इन पांच विषयों से युक्त होकर मद्यपान करना चाहिये ।

स्थिरसत्त्वशरीरायेपुराणामद्यपान्व्याः । बहुमद्योचितायेचमात्रान्तिसहसान्ते ॥ प्राङ्मद्याःक्षुत्पिपासार्त्तादुर्वलावातपैत्तिकाः । रूक्षाल्पप्रमिताहाराविस्तब्धःसत्त्वदुर्वलाः ॥ क्रोधिनाऽनुचिताःक्षीणाःपरिश्रान्तामदक्षताः । अल्पेनापिमदंशी ग्रयान्तिमद्येनमानवाः ॥

अर्थ—जिस मनुष्यका मन और शरीर स्थिरहै, जिसके कुटुम्बमें मद्य पीतेआये हैं जो बहुत मदिरा पीनेका अभ्यास रखतेहैं उनको नशा बहुत शीघ्र नहीं होता जो क्षुधा और प्यास से आतुर हैं, दुर्बल है, वापित्त की प्रकृतिवाले हैं, जो रूखा थोड़ा

और प्रमित मोजन करते हैं, जो विस्तब्ध हैं जिनका मन दुर्बल है, जो क्रोधी हैं, जिनको मद्यपान का अभ्यास नहीं है, जो क्षीण, धकेलुए और मद से क्षय हैं, ऐसे मनुष्योंको थोड़ा भी मद्य पाने से बहुत शीघ्र-नशा होजाता है ॥

ऊर्ध्वमदात्ययस्यातःसम्भवंस्वस्वलक्षणम् । अग्निवेश ! चिकित्साञ्चप्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ॥

अर्थ....हे अग्निवेश! अब यहां से मदात्यय की उत्पत्ति, लक्षण और पृथक् र चिकित्सा का क्रम से वर्णन करेंगे ॥

वातप्रायमदात्ययकी उत्पत्तिका कारण । स्त्रीशोकभयमाराध्वकर्म्मभियोऽतिकर्षितः । रूक्षाल्पप्रमिताशवायःपिवत्यतिमात्रया ॥ रूक्षपरिणतमयंनिशिनिद्राविहृत्यच । करोतितस्यतच्छीघ्रंवातप्रायमदात्ययम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य अत्यन्त स्त्रीसेवन, शोक, भय, भारबुहने और मार्गगमन आदि परिश्रमोंसे अत्यन्त कृश होगया है और रूक्ष; अल्प और प्रमित भोजन किया करता है । ऐसा मनुष्य यदि अत्यन्त मद्यपान करे तो वह मद्य परिणाममें अत्यन्त रूक्षता को उत्पन्न करके रात्रिमें निद्रा को दूर करके शीघ्रही वातजन्य मदात्यय रोगों को उत्पन्न करदेता है ॥

वातिकमदात्यय के लक्षण ।

द्विकृत्कासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागैः । विद्याद्बहुप्रलापस्यंवातप्रायमदात्ययम् । अर्थ....हिचकी, सांती, शिरःकम्प, पार्श्व

शूल, निद्रानाश और अत्यन्त प्रलाप ये वातप्राय मदात्यय के लक्षण हैं ।

पित्तजमदात्ययका वर्णन ।

तीक्ष्णोष्णमद्यममृशंवायोऽतिमात्रंनिपेवते । अम्लोष्णतीक्ष्णभोजीचक्रोधनोऽग्न्यातपप्रियः ॥ तस्योपजायतेपित्ताद्विशेषेणमदात्ययः । सतुवातोल्बणस्याशुप्रशमंयातिहन्तिवा ॥ तृष्णादाहज्वरस्वेदमूर्च्छातीसारविभ्रमैः । विद्याद्वरितवर्णस्यपित्तप्रायमदात्ययम् ॥

अर्थ....जो मनुष्य तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल मद्य का अत्यन्त सेवन करताहै, तथा जो खट्टे, उष्ण और तीक्ष्ण भोजन किया करता है, जो अत्यन्त क्रोधी होताहै तथा जिसको अग्नि और धूप अच्छे लगते हैं उसके पित्तजन्य मदात्यय उत्पन्न होताहै । वातोल्वणवाले मनुष्यको पित्तजन्य मदात्यय या तो शीघ्रही मारडालता है या अच्छा होजाता है ।....तृष्णा, दाह, ज्वर, स्वेद, मूर्च्छा, अतीसार, विभ्रम और देहका हरावर्ण ये पित्तज मदात्यय के लक्षण हैं ॥

कफप्रायमदात्ययका वर्णन ।

तरुणमधुरप्रायंगोर्दपट्टिकेमववा ॥ मधुरस्निग्धगुर्वाशीयःपिवत्यतिमात्रया । अव्यायामदिवास्वप्नश्च्युत्सन्नसुखेरतः ॥ मदात्ययंकफप्रायंसशीघ्रमाधिगच्छति ।

छर्चरोचकहृत्तासतन्द्रास्तेमित्यगौरवः ॥ विद्यात्शीतपरीतस्यकफप्रायमदात्ययम् । अर्थ....मोठे, चिकने और भारी प्रदायो का भोजन करनेवाला मनुष्य यदि, गया,

मधुरप्राय गुडका बनाहुआ वा पैष्टिकमद्य का अत्यन्त सेवन करै और कसरत कस्ती न करै, दिन में सोवै सुखासन वा शय्या पर पड़ा रहै तौ उसके कफप्रायमदात्यय उत्पन्न होता है । वमन, अरुचि, हृल्लास, तंद्रा, स्तिमिता, गौरव और शीत ये सब कफप्राय मदात्यय के लक्षण हैं ॥

विपश्येयगुणादृष्टाः सन्निपातप्रकोपणाः ॥
तएवमद्येदृश्यन्ते विपेतुबलवत्तराः । हन्त्या
शुद्धिविपकिञ्चित्किञ्चित् रोगाय कल्प
ते ॥ यथा विपतयैवान्त्यो ज्ञेयो मद्यकृतो मदः
तस्मात्त्रिदोषजं लिङ्गं सर्वत्रापि मदात्यये ॥
दृश्यते रूपवैशेष्यात्पृथक्कंचास्य लक्ष्यते

अर्थ.... विपके जो सन्निपातको प्रकोप करानेवाले गुण हैं वेही सम्पूर्ण गुण मद्य में दिखाई देते हैं और तब वेही गुण विपमें अत्यन्त बलवान् दिखाई देते हैं, कोई विप शीघ्रही प्राणों का नाश करते हैं और कोई रोगों को उत्पन्न करते हैं । विपके सदृशही मद्यकृत अन्त्यमद्य होता है । इसी हेतुसे मदात्यय रोगोंमें सब जगहही त्रिदोषके लक्षण दृष्टिगत होते हैं । केवल भिन्न २ लक्षणों के कारण उनमें पृथक्ता दिखाई देती है ॥

मदात्ययके रूप ।

शरीरदुःखबलवत्संमोहो हृदयव्यथा ॥
अरुचिः प्रततातृष्णाज्वरः शीतोष्णलक्षणः
शिरःपार्श्वस्थिसन्धीनां विद्युत्तुल्या च वे
दना ॥ जायतेऽतिबलाजृम्भास्फुरणं व
पनेश्रमः । उरोविबन्ध कासश्च हिकाश्वा
राः प्रजागरः ॥ शरीरकम्पः कर्णाक्षिमुख

रोगस्त्रिकग्रहः । छर्द्यतीसारमुत्केशोवात
पित्तकफात्मकः ॥ भ्रमः प्रलापो रूपाणां
मसतांचैव दर्शनम् । तृणभस्मलतापर्णपां
सुभिश्चावपूरणम् । प्रधर्पणं विहर्षश्च भ्रा
न्तचेताः समन्यते ॥ व्याकुलानामशस्ता
नां स्वप्नानां दर्शनानि च । मदात्ययस्य
रूपाणि सर्वाण्येतानि लक्ष्येत् ।

अर्थ.... अत्यन्त शारीरिक क्लेश, सम्मोह, हृदयव्यथा, अरुचि निरन्तर तृषा की आधि-
कता, ज्वर, शीतज्वर, उष्णज्वर, शिर, प-
सली, हड्डी और जोड़ों में विजड़ोंके समान
वेदना, वेगवती जंभाई, फडफडाहट, कंपन,
परिश्रम, हृदयमें रुकावट, खांसी, हिचकी
श्वास, निद्रानाश, शरीर कम्पन, कर्णरोग,
नेत्ररोग, मुखरोग, त्रिकग्रह, वमन, अतीसार,
वातोक्लेश, पित्तोक्लेश, कफोक्लेश, भ्रम, प्र-
लाप, भयंकर रूपोंका दर्शन, तिनुका, भस्म
लता, पत्ते, धूल आदिसे भराहुआसा दिखाई
देना, विहंगोंसे भयका बोध, चित्तमें भ्रांति,
घबड़ाहट पैदा करनेवाले दुःस्वप्नोंका देखना
ये सब मदात्ययके लक्षण हैं ।

मदात्यय में चिकित्साक्रम ।

सर्वमदात्ययं विधात् त्रिदोषमधिकन्तु यत्
दोषं मदात्यये पश्येत्तस्यादौ प्रतिकारयेत् ॥
कफस्थानानुपूर्व्या च क्रियाकार्यमिदात्य-
ये । पित्तमारुतपर्यन्तः प्रायेण हि मदा
त्ययः ॥

अर्थ—सब प्रकारके मदात्यय त्रिदोष से
होते हैं, परन्तु जो दोष अधिक दीखे उसी
को प्रथम चिकित्सा करना उचित है कफ-

स्थानके आनुपूर्वाक्रमसे मदात्ययमें चिकित्सा करना योग्यहै जैसे प्रथम कफ स्थानहै, पीछे पित्तस्थानहै, उससे पीछे वायुस्थानहै । इसी क्रमसे प्रथम कफकी, फिर पित्तकी और फिर वातकी चिकित्सा करे ॥

मिथ्यातिहीनपीतेनयोन्याधिरुपजायते।
समपीतेनतेनैवसमयेनोपशाम्यति ॥ जी
र्णाममद्यदोषायमद्यमेवप्रदापयेत् । प्रका
क्षालाघवेजातेयद्यदस्मैहितंभवेत् ॥
सौवर्चलानुसंविद्धंशीतंसविदसैन्धवम् ॥
मातुलुङ्गार्द्रकोपेतंजलयुक्तंप्रमाणवित् ।

अर्थ....मद्यके मिथ्यापान, अतिपान वा हीन पान से जो व्याधि उत्पन्न होतीहै उन को समान मद्यपान द्वाराशमन करे । जिसका आमजीर्ण होगया हो ऐसे मदात्यय रोगीको मद्यही का पान करावे । तथा शरीरमें हल-कापन होनेपर इच्छाके अनुसार हितकारी मद्यपान करावे । मद्यमें सौवर्चल नमक, वि-डनमक, सेंधानमक, विजोरेका रस, अदरक का रस, जल और शीतवीर्य औषध मिला-कर प्रमाणके अनुसार पान करावे ।

तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेणपीतेनाम्लविदा-
हिना ॥ मयेनान्नरसोत्कृष्टोविदग्धःक्षार-
रतांगतः । अन्तर्दाहंज्वरंतृष्णांप्रमोहंवि-
भ्रममदम् ॥ जनयत्याशुतच्छान्त्यैमद्यमे-
वप्रदापयेत् । क्षारोहिपातिमाधुर्य्यंशीघ्र-
मम्लोपसंहितः ॥ श्रेष्ठमम्लेषुमद्यञ्चयै

गुणैस्तान्परमृणु ।

अर्थ....उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल और विदाही मद्यके अत्यन्त सेवन करनेसे अन्नके रसका

उत्कृष्ट होकर विदग्धता होतीहै और फिर उसमें खारीपन होताहै तदनन्तर अन्तर्दाह, ज्वर, तृष्णा, प्रमोह विभ्रम और मद ये शी-घ्रही उत्पन्न होजाते हैं इससे इनकी शान्ति के निमित्त मद्यपानही करावे । अम्लसे मि-लने पर क्षार में फिर शीघ्रही मधुरता उत्प-न्न होजातीहै ॥

अब हम उन गुणोंका वर्णन करतेहैं जिन के कारण मद्य सब अम्ल रसोंमें श्रेष्ठहै ।

मनके चार अनुरस ॥

मद्यस्याम्लस्वभावस्यचत्वारोऽनुरसा-
स्मृताः ॥ मधुरश्चकषायश्चातिक्तःकटुक-
एवच । गुणाश्चदशपूर्वोक्तास्तैःचतुर्दश-
भिर्गुणैः ॥ सर्वेषामद्यमम्लानामुपर्युप-
रितिप्रति ।

अर्थ....मद्यका स्वभाव अम्ल है, इसमें चार अनुरस होते हैं यथा- मधुर, तिक्त, कटु और कषाय । और इस मद्यके दस गुण पहिले वर्णन किये है । इन चौदह गुणों के कारण मद्य सब अम्ल रसों में उत्तम होता है ।

मदोत्क्रिष्टेनदोषेणरूढः स्रोतः सुमारुतः ।

फरोतिवेदनातीव्रांशिरस्यस्थिपुसन्धिषु

अर्थ....मदोत्क्रिष्ट दोषसे स्रोतःसमूहों के रुकजाने पर वायु सिर, हड्डी और संधियों में अत्यन्त तीव्र वेदनाको उत्पन्न करती हैं ।

दोषविष्यन्दनार्थंहितस्मैमद्याविशेषतः॥
व्यत्रायितीक्ष्णोष्णतयादेयमम्लेषुसत्-
स्वापि । स्रोतोविबन्धमुन्मथ्यमारुतस्वा

मुलोमनम् ॥ रोचनदीपनं चाग्नेरभ्यासा
तृप्तात्म्यमेव च । रसस्रोतः स्वरुद्धे पुमारु
ते चानुलोमि ते ॥ निवर्त्तन्ते विकाराश्च शा
म्यन्त्यास्यमदोदयाः ।

अर्थ.... दोषोंको निकालनेके निमित्त उ-
सको विशेष करके मद्यपान करावै । मद्य
न्यायी तीक्ष्ण और उष्ण होने के कारण
स्रोतः समूहके विवन्ध को दूर करके वायु
का अनुलोमन करता है तथा रुचिकर्त्ता
अग्निवर्द्धक और सात्म्य होता है ॥ रस-
वाही स्रोतों के खुलने पर और वायुके
अनुलोमन होनेपर सम्पूर्ण विकार शान्त
होजाते हैं और सब प्रकारके मदजन्य विकार
भी दूर होजाते हैं ॥

वातशमनमें मद्यका प्रयोग ।

बीजपूरकटुक्षाम्लकोलदाडिमसंयुतम्
यमानीहपुपाजाजीमूतवेराचचूर्णितम् ।
सस्नेहैः श्वेतुभिर्द्युक्तमर्धदशैश्चिरोत्थितम्
दद्यात्सलवणमर्धपैष्टिकं वातशान्तये ॥

अर्थ—विजौरा, वृक्षाम्ल, वेर, अनारइन
का रस अजयायन, हाऊयेर, जीरा, अदरख
इनका चूर्ण डालकर दे अथवा स्नेह सहित
संतू के साथ नमक डालकर पुराना मद्य
पान करावै तो वातजन्यरोग शान्त होजाता है

वातोत्थणमदात्ययमें चिकित्सा ।

दृष्ट्वा वातोत्थणं लिङ्गरसैश्चैनमुपाचरेत् । ला
वति चिरिदक्षणां स्निग्धाम्लैः शिखिनाम
विपक्षिणामृगमत्स्यानामानूपानाश्च संस्कृ
तैः भूशयमसहानाश्च रसैः शालपोदनेन च ।
स्निग्धोष्णलवणाम्लैश्च वेश्वरैर्मुखामि

यैः ॥ चित्रगोधूमिकैश्चात्रैर्वारुणीमण्ड-
संयुतैः । पिशिताद्रकगर्भाभिः स्निग्धाभिः
धूमवर्तिभिः ॥ मापपूपलिकाभिश्च वाति
कंसमुपाचरेत् । नातिस्निग्धेन चाम्लेन
सिद्धं समरिचार्द्रकम् ॥ रसप्रलोपे संपूर्णः
सुखोष्णैः सह संपिबेत् ।

अर्थ—मदात्ययमें यदि वातकी उत्प-
णता के लक्षण दिखाई दें तो लवा, तीतर,
मोर और मुर्गेका मांस रस चिकनाई और
खटाई के साथ देकर इसकी चिकित्सा
करै । तथा आनूप, भूशय और प्रसहजा-
तिके पशु और मछलियोंके मांस रस के साथ
शालीचावल देवै । चिकने, गरम, नमकीन
और खट्टे तथा मुखके जायके को सुधा
रनेवाले वेश्वार, सुरामण्ड से युक्त अनेक
प्रकार के गेहूंओं के पदार्थ, मांस और अ-
दरख की पिठ्ठी भरी हुई स्निग्ध धूमवर्ती
और उरद के बड़े आदिको देकर वातिक
मदात्ययको दूर करै । इस पूर्वोक्त मांस रस
को थोड़ी चिकनाई डालकर खटाई, काली
मिरच और अदरख डालकर देवै । अथवा
सुहाता २ गरम गोधूमपिष्टक में मांस रस
मिलाकर पान करावै ।

भक्तेन वारुणीमण्डं दद्यात्पातुं पिपासवे ॥
दाडिमस्परसंवाथजलं वापाश्च मूलिकम् ।
धान्यनागरतोयं च दधि मण्डमथापि वा ॥
अम्लकाञ्जिकमण्डं वा शुक्तोदकमथापि वा
कर्मणानेन सिद्धेन विकार उपशाम्यति ॥
मात्राकालप्रयुक्तेन वलवर्णश्च वर्द्धते ।

अर्थ—मदात्ययमें तृपाकी प्रवृत्ता होने

पर भातके साथ धारुणमण्डका पान करावे । अथवा अनार का रस वा पंचमूल का काथ, वा धनिये और सोंठका काथ, अथवा दधिमण्ड वा अम्ल कांजीका मण्ड वा शुक्तोदक देवे । इन अनुभव कियेहुये प्रयोगों से मदात्यय के विकार शान्त हो जाते हैं, तथा उचित समयपर प्रमाणके अनुसार देनेसे बल और वर्णकी वृद्धि होती है रागखाण्डवसंयोगैर्विवैर्भक्तरोचनैः ॥ पिशितैर्वहुपिष्टान्नैर्यवगोधूमशालिभिः । अभ्यङ्गोत्सादनैः स्नानैरुष्णैः प्रावरणैर्धनैः ॥ घनैरगुरुपङ्कैश्च धूपैश्चागुरुजैर्धनैः ॥ नारीणां यौवनोष्णानां निर्दयैरवगूहनैः ॥ श्रोण्युरुकुचभारैश्च संरोधोष्णमुखावहैः ॥ शयनाच्छादनैरुष्णैः रुक्षैश्चान्तर्गृहैः सुखैः मारुतः प्रबलः शीघ्रं प्रशम्यति मदात्ययः ॥

अर्थ—इस बातिक मदात्यय में भोजन में रुचि बढ़ानेवाले अनेक प्रकारके राग पाडव, अनेक प्रकारके मांस, अनेक प्रकार के मिष्ठान, अनेक प्रकारके जौ, गेहूं, शाली चावल, अम्यंग, उत्सादन, स्नान, गरम और गाढे ओढने के वस्त्र, कपूर और अंगूरका लेप, कपूर और अंगूरकी धूप, यौवन के जोरसे उष्ण स्त्रियोंसे गाढ आलिंगन उन स्त्रियों के श्रोणी, ऊरु, कुर्चोंके धर्षण से उत्पन्न गर्मी, उष्णशय्या, उष्ण आच्छादन वस्त्र, सुखदायक रुक्ष अन्तर्गृह, इन वस्तुओंका सेवन करने से वातजन्य प्रबल मदात्यय शीघ्रही शान्त होजाता है ।

पित्तमदात्ययमें चिकित्सा ।
भग्यखर्जूरमृद्धाकापरूपकरसैर्द्युतम् ॥
सदाडिमरसंशीतं शक्तुभिः स्ववचूर्णितम् ।
सशर्करं शार्करं वामाध्वीकमथवा परम् ॥
दद्यात् बहूदकं काले पातुं पित्तमदात्यये ।
शशान्कपिञ्जलानेणानुलावानसितपुच्छा-
कान् । मधुराम्लान्प्रयुञ्जीत भोजने शालि-
पिष्टकान् ॥ पटोलयूपमिश्रं वा छागलंकल्प-
येद्रसम् ॥ सतीनमुद्रमिश्रं वा दाडिमामलं-
कान्वितम् ॥ द्राक्षामलकखर्जूरपरूपकर-
सेनवा ॥ कल्पनान्तर्पणान्पूपान् रसां-
श्च विविधात्मकान् ॥

अर्थ....भग्य, खजूर, किसमिस और फालसे का रस, तथा अनारका रस सत्तू के साथ मिलाकर, थोड़ीसी चीनी डालकर शर्करामय, वा माध्वीकमय अथवा और किसी मय में बहुतसा जल मिलाकर पित्त-जनित मदात्ययमें पान करावे ।

सस्सा, सफेदतीतर, एण, लवा, काली-पूँठका हरिण इनके मांसको मधुराम्ल करके शाली चावल और साठी चावलों के भात के साथ देवे । अथवा बकरे के मांसरस में परबलका यूप मिलाकर उक्तभात का भोजन करावे । अथवा मटर और मूँग के यूप में अनार और आंवले का रस मिलाकर इनके साथमें उक्त भात देवे । अथवा दाख आंवला, खजूर, फालसे का रस इनके साथ में अनेक प्रकारसे सिद्ध किये हुए तर्पण, यूप और मांसरस देवे ।

कफपित्त मदात्ययमे चिकित्सा ।

आमाशयस्थमुत्क्रिष्टकफपित्तमदात्यये ॥

विज्ञायचहुदोषस्पदह्यमानस्यतृप्यतः ।

मर्धद्राक्षारसंतोयंदत्वातर्पणमेववा ॥ नि

शेषवामयेतशीघ्रमेवैरागाद्विमुच्यते ।

अर्थ—बहुत दोषोंसे युक्त कफपित्त म-
दात्ययमें आमाशयस्थ आमके अत्यन्त उ-
त्क्रिष्ट होनेपर जब दाह और तृषाकी अधि-
कताहो तब मर्ध, दाखका रस और जलको
तृप्ति पर्यन्त पान कराके नि-शेष धमनकरा
देवें तो शीघ्रही रोग जाता रहता है ।

कालेषुनस्तर्पणाढ्यक्रमंकुर्यात्तृपकांक्षिते

तेनाग्निर्दीप्यतेतस्यदोषशेषान्नपाचनः ।

कासेसरक्तनिष्टीविपात्रैस्तनरुजोस्तथा ॥

तृप्यतेसविदाहेचसोत्कृष्टेहृदयोरसि ।

गृह्णीभद्रमुस्तानांपटोलस्याथवाभिपक्

रसंसनागरंदद्यात्तित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥

तृप्यतेचातिबलवद्वातपित्तसमुद्धतो दद्या

द्द्राक्षारसंपातुंशतिदोषानुलोमम् ॥

जीर्णसमधुराम्लेनछागमांसरसेनतम् ।

भोजनंभोजयेन्मद्यस्यानुतर्पश्चपार्ययेत् ॥

अनुतर्पस्यमात्रासाययानोहन्यतेमनः ।

तृप्यतेमद्यमलपालंप्रदेयंस्याद्वहृदकम् ॥

तृष्णायेनचसंशम्येन्मर्दयेनचनान्नुपात्

परूपकाणांपीलूनारंसंशतिमयापिवा ॥

पर्णिनीनांचतट्टणापिवेद्वाशिशिरंजलम्

मुस्तदादिमलाजानांतृष्णाध्नंवापिवेद्रस

म् ॥ फोलदादिमट्टसाम्लचुम्बिकाचुक्रि

कारसः । पश्चाम्लकोमुखालेपः सद्यःतृ-

ष्णानियञ्छति ॥

अर्थ—किर उचित समयपर मुख में
इच्छा उत्पन्न होनेपर तर्पणः क्रमका अव-
लम्बन करें, जिससे जठराग्नि बढजाय और
दोष निःशेष होकर अन्न पचजाय ।

जो खांसीके साथ रुधिर निकलने लगे,
पसली और छातीमें वेदना होवै, दाहके
साथ तृषा उत्पन्न होवै, हृदय और वक्षः
स्थलमें उत्कृष्ट हो तो गिलेय और मद्र-
मोथा वा परबलका काथ सोंठ डालकर देवै
और खाने के लिये तीतरका मांस देवै ।

जो वातपित्त के प्रबल होनेपर तृषाका
वेग अधिक हो तो उसको किसमिस का
काथ ठंडा करके देवै इससे दोषों का अनु-
लोमन होता है । औषध के पचने पर म-
धुराम्ल वकरी के मांसरस के साथ भोजन
करावै और तृषा लगने पर मद्यका पान
करावै । तृपित्तको मद्यकी ऐसी मात्रा देवै
कि जिससे बेहोशी नहो, तृषाके लगनेपर
मद्यमें बहुतसा जल मिलाकर थोडा २ पान
करावै जिससे तृषाभी शान्त होजाय और
नशा भी उत्पन्न नहो । अथवा फालसा,
पीछू इनका शीतल काथ अथवा चारोंपणी
का ठंडा काथ अथवा ठंडा जल अथवा
मोथा, अनार, खील इनका काथ पान क-
रावै । इन प्रयोगों से तृषा शान्त होतीहै ।
अथवा बेर, अनार, वृक्षाम्ल, चुम्बिका,
चूका इन पाँचों खटाइयों का मुख में लेप
करने से तृषा तत्काल शान्त होजाती है ॥

पित्त मदात्ययमें सेवनीय कर्म ।
शीतलान्पक्वपानानिशीतशय्यासनानिच

शीतवातजलस्पर्शः शीतान्युपवनानिच॥
 सौमपद्मोत्पलानाञ्चमणीनामौक्तिकस्य
 च । चन्दनोदकशीतानांस्पर्शाश्चन्द्रांशु
 शीतलाः ॥ हेमराजतकांस्यानांपात्राणां
 शीतवारिभिः । पूर्णानां हिमपूर्णानां हता
 नांपवनाहताः । संस्पर्शाश्चन्दनार्द्राणां ना
 रीणाञ्चसमारुताः ॥ चन्दनानाञ्चमुख्या
 नांशस्ताः पित्तमदात्यये ।

अर्थ—शीतल अन्नपान, शीतल शय्या
 और आसन, शीतल वायु, जलका स्पर्श
 शीतल उपवन, रेशमबिख, छालकमल, नी
 लकमल, मणि, मोती, चन्दन और शीत-
 लजलका स्पर्श, चन्द्रमाकां शीतल किरणों का
 सेवन, शीतल जलसे भरे हुए साने, चांदी
 और कांसी के पात्रों का स्पर्श हिमपूर्ण पव
 नाहत द्रुति (मशक) का स्पर्श तथा ह-
 वादार स्थानमें चन्दनसे तर वतर स्त्रियोंका
 स्पर्श और चन्दनका लेपन ये सब पित्त-
 मदात्ययमें श्रेयस्कर हैं ।

मदात्ययजन्य दाहमें कर्तव्यकर्म ।
 कुमुदोत्पलपत्राणांसित्तानाञ्चन्दनाम्बु
 ना ॥ हिताः स्पर्शान्नोद्धानां दाहेमयसमु
 त्थिते । कथार्थविविधाः शस्ताः शब्दाञ्च
 शिखिनां शिवाः ॥ तोयदानाञ्च सद्वाहि
 रामयन्ति मदात्ययम् । जलयन्त्राभिवर्षा
 णिवातयन्त्रवहानिच ॥ कल्पनीयानि
 भिपजादाहेभारागृह्णाणिच । फल्गिनीसे
 व्यलोधाम्बुहेमपत्रकुट्टनम् ॥ कान्तीय
 करसोपेतदाहेनस्तंभलेपनम् । चद्रपि
 ल्लवोत्थाधतयैवारिष्टकोदयाः । फेनि

लायाश्चयः फेनस्तर्दाहिलेपनं शुभम् ॥ सु-
 रासमण्डादध्यम्लमातुल्यरसोमधु ॥
 सेकप्रदेहेशस्यन्ते दाहघ्नाः साम्लकाञ्चि
 काः । परिपेकावगाहेषु व्यञ्जनानाञ्च से
 वने । शस्यते शिशिरतोयं दाहवृष्णामशा
 न्तये ॥ मात्राकालप्रयुक्तेन कर्मणानेन
 शाम्यति । धीमतो वै च वश्यस्य शीर्घ्रपित्त
 मदात्ययम् ।

अर्थ—मद्यसे उत्पन्न हुए दाहमें चन्दन
 के जल से सींचे हुए कमोदनी और कमल
 के मनोज्ञ पत्तों का स्पर्श हित है, अनेक
 प्रकारकी कथा, मोरोंका मधुर शब्द, वाद-
 लों की गर्जन ये सब मदात्यय को शान्त
 करने वाले हैं । इस दाहमें रोगी को ऐसे
 धागगृहमें निवास करावे जिसमें फव्वारे च
 लतेहो और कलके पंखों की हवा आतीहो।
 इस दाह में प्रियंगु, खस, लोध, नेत्रवाला
 हेमपत्र और कुट्टनट इनको पीत चन्दन
 के जलमें पसिकर लेप करें । अथवा वेर के
 पत्तोंके शाग, नामके पत्तों के शाग, या रीड़ा
 के शागों का भी लेपकरने से दाह शान्त
 होता है । सुरामण्ड, दही, खटाई, भिजरेका
 रस, शहत इनको अम्लकांजी में मिलाकर परि
 पेक और प्रदेहमें उपयुक्त करने से दाह
 शान्त होजाता है । शीतल जलसे परिपेक
 स्नान और जलार्द्र पंखोंकी हवाका सेवन
 दाह और लृपाकी शान्ति के निमित्त है ।
 यथाचिन फाटमें मात्रा के अनुतार इन क-
 र्मोंका प्रयोग करने में बुद्धिमान और वैद्यानुया
 यी रोगीका मदात्यय शीघ्र शान्त होजाता है

कफमद्यकी तृपा के उपाय ॥ :

उल्लेखनोपचासाभ्यांजयेत्कफमदात्यय
म् ॥ तृप्यतेसलिलंचास्मैदद्याद्हीधेरसा
धितम् । वलायाःपृष्ठेपण्यावाकण्टका
र्याथवाशृतम् ॥ सनागराभिःसर्वाभि
र्जलंवाभृतशतिलम् । दुःस्पर्शितेनमुस्ते
नमुस्तर्पणकनवा ॥ जलंमुस्तैःशृतंवा
पिदद्याद्दोषविपाचनम् । एतदेवचपानी
यंसर्वत्रापिमदात्यये ॥ निरत्ययपीयमा
नपिपासाज्वरनाशनम् ॥

अर्थ—कफजन्य मदात्यय को वमन और
लघन द्वारा दूर करै, इस रोगमें तृपाकी
प्रवृत्ति होने पर नेत्रवाला डालकर औटा
याहुआ जल ठंडा करके देवै । अथवा खैर-
टी, पृष्णिपर्णी वा कटेरीका ठंडा काथ देवै,
अथवा तीनों ये और चौथी सोंठ डालकर
औटायाहुआ जल ठंडा करके देवै ॥ अथवा
जवासा और मोथा अथवा मोथा और पित्त-
पापडा अथवा केवल मोथा डालकर औटाया
हुआ जल पान कराने से दोष पचजातेहैं ॥
सब मदात्ययोंमें इन्हींका प्रयोग श्रेष्ठहै । इस
के पीनेसे किसी प्रकारका उपद्रव नहीं हो-
ताहै, किन्तु तृपा और ज्वर नष्ट होजातेहैं ॥

कफमदात्ययमेंअन्यप्रयोग ।

निरामकांक्षितकालेससौद्रपाययेन्नुतम् ।
शार्करमधुवाजीर्णमारिष्टंशुधुमेववा ॥
रुक्षतर्पणसंयुक्तंयवानीनागरान्वितम् ।
यवगोधूमिकंचान्नंरुक्षयूपेणभोजयेत् ॥
कुलत्थानांसुधुष्कानांमूलकानारसेनवा ॥
सनुनालेपनलघुनाकट्वम्लेनाल्पसपिपा ॥

व्योषयूपमथाम्लंवायूपंवासाम्लवेतसम् ।
छागमांसरसरुक्षमम्लवाजांगलरसम् ॥
स्थाल्यांवायकपालेवाभृष्टंनीरसवात्सनम् ।
कट्वम्ललवणंमांसंभक्षयन्तृणुयान्मधु ॥

अर्थ—जब कफमदात्यय में रोगी का
आम दूर होजाय और भूख पर इच्छाहो
तब उस समय उसे शहद डालकर शर्करा
मद्य देवे अथवा पुराना शहत, वा अरिष्ट
वा शीधु पान करावै । इस रोग में अजवा
यन और सोंठ डालकर रुक्षतर्पण देवे अ-
थवा रुक्ष यूपके साथ जौ और गेहूं का अ-
न्न देवे ॥ अथवा कुलर्धाका यूप वा अत्य-
न्त सूखीहुई मूलेयोंका रस पतला, थोडा,
हलका, कटु और अम्लयुक्त थोडा घी डा-
लकर देवै । अथवा त्रिकुटा डालकर अम्ल-
यूप वा अमलवेत डालाहुआ यूप वा यक्रे
का रुक्ष मांसरस वा अम्लजांगल पशुओं
का मांसरस देवै । अथवा बटले वा मिष्ट-
के पात्रमें भूना हुआ नीरस मांस कटु, अ-
म्ल और नमक डालकर भोजन करै ऊपर
से शहत पीवै ॥

अन्यप्रयोग ।

व्यक्तमारिचिकंपांसमातुलुङ्गरसान्वितम् ।
भृष्टंदाडिमसाराम्लमुष्णयूपोपवोष्टितम् ॥
यथार्भिभक्षयेत्कालेमभूताद्रकपेक्षितम् ।
पिवेचनिगदंमद्यंकफप्रायेमदात्यये ॥
सौवर्चलमजाजीचट्टक्षाम्लेसाम्लवेतसम् ।
त्वगेलापरिचाद्धीशशर्कराभागयोजितम् ॥
एतल्वणमष्टांगमयिसन्दीपनपरम् । मदा
त्ययंकफप्रायेदद्यात्सोतोविशोधनम् ॥

एतदेवपुनर्युक्त्याधूमराम्लैर्द्रवीकृतम् । गो
धूमान्नयवान्नानांमांसानाञ्चातिरोचनम्
पपयेत्कडुकेयुक्तांश्वेतावीजविवार्जिताम्
मृद्धीकामातुलङ्गस्यदाडिमस्यरसेनवा ।

अर्थ—तेजमिरच डालकर तथा विजौरे
का रस मिलाकर मांसको भूने इसमें अना
रदाने की खटाई डालकर गरम २ यूप का
जठराग्नि के बल के अनुसार भक्षण करै
इसमें बहुतसी अदरक भी पीसकर डालदेवै
इस कफजन्य मदात्यय में निगद मद्य का
पान करावै । अथवा संचलनमक कालाजी
रा, वृक्षाम्ल, अमलवेत, दालचीनी, छोटी
इलायची और नमक से आधी मिश्री डाल
कर चूर्ण तय्यार करै । यह चूर्ण अत्यन्त
अग्निसंदीपन है, इस चूर्णको अष्टांगलवण
कहते हैं, । यही चूर्ण स्रोतः समूह के मार्गों
का शुद्ध करनेवाला भी है । इसी चूर्णको
मधुराम्ल द्रव्यों से पतला करके गेहूँ और
जौ के पदार्थ तथा मांस के साथ सेवन करै
तौ अत्यन्त रुचि बढै ॥ अथवा मिरच आ-
दि तीक्ष्ण द्रव्योंको डालकर सफेद दूध,
विनावीजकी दाखको विजौरे अथवा अनार
के रसमें पीसकर सेवन करै ॥

अन्यप्रयोग ॥

सौवर्चलैलामरिचैरजाजीभृङ्गदीप्यकैः ।
सरागःसौद्रस्युक्तःश्रेष्ठोरोचनदीपनः ॥
मृद्धीकानांविधानेनकारयेत्कारवीमपि ।
युक्तमत्स्यण्डिकोपेतरागंदीपनपाचनम् ।
आम्रामलकपेशीनारागान्कुर्यात्पृथक्
पृथक् । धान्यसौवर्चलाजाजीकारवीम-

रिचान्वितान् ॥ गुडेनमधुयुक्तेनव्यक्ता
म्ललवणीकृतान् । तैरन्नरोचतेदिग्धः
सम्यक्मुक्तविजिर्प्यति ॥

अर्थ—संचरनमक, छोटीइलायची, काली
मिरच, जीरा, भांगरा, अजवायन, इनका
चूर्ण रागपाडव और शहत में मिलाकर से-
वन करै ॥ यह अत्यन्त उत्तम रुचिवर्द्धक और
अग्निसंदीपन प्रयोगहै ॥ विधिपूर्वक दाख,
कारवी और मिश्री का रागपाडव दीपन
और पाचन होता है । आम और आंवले
के गूदे का जुदा २ रागपाडव बनावै ।
और इनमें धनिया, संचरनमक, जीरा, का-
रवी और मिरच डालै तथा गुड और शहत
भी मिलावै, खटाई और नमक तेज डालै ।
इन रागपाडवों से भोजन करै तौ अच्छी
तरह पचजाय ॥

अन्यउपचार ।

रूक्षोष्णान्नपानेनस्नानेनाशिशिरेणच ।
व्यायामलंघनाभ्यांचयुक्ताभ्यांजागरेणतु
कालेयुक्तेनतीक्ष्णेनस्नानेनाद्रवर्त्तनेनच ।
स्नानवर्णकवासानांपहर्षाणाञ्चसेवया ॥
सेवयायमनानाञ्चयुष्णामगुरोरापि ॥
सकामोष्णमुखान्नीनामग्नानाञ्चसेवया
मुखशिक्षितहस्तानांस्त्रीणांसंवाहनेनच ।
मदात्ययःकफमायःशीघ्रमेवोपशाम्यति ।

अर्थ—रूक्ष और उष्ण अन्नपान का
सेवन, उष्णजल से स्नान, व्यायाम, उष्ण-
पान, जागरण, तीक्ष्ण द्रव्यों का उबटना
करके स्नान करना, रूक्षवस्त्र

तदुक्तमखिलं मदात्ययचिकित्सिते ॥

अर्थ — इस मदात्यय चिकित्सित नामक अध्यायमें भगवती मदिरादेवीका प्रभाव उसके पीनेकी विधि, मदिराके द्रव्य, जिसको यह अभीष्ट है, मदिराके भिन्न भिन्न मदोंके भेद, मदिराके महागुण, मद के तीन भेद, तीनोंके पृथक् पृथक् लक्षण, मयकृत दोष, मयकृत गुण, तीन प्रकारके मदिरालय, तीनों स्त्वोंके पृथक् २ लक्षण, मयपानके योग्य साथी, जिनको देरमें नशाहोवै और जिनको शीघ्रनशाहोवै ऐसे पुरुषोंका वर्णन मदात्यय के हेतु और लक्षण, मयसे उत्पन्न हुए रोगोंकी चिकित्सा, ये सब बातें पूरी रीति, से वर्णन की गई हैं ।

इति श्रीभामापीकान्वितायां अग्निवेशविरचिता
यांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-
त्सित स्थाने मदात्यय चिकित्सित-
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो द्वित्रणीयचिकित्सितव्याख्या
स्याम इति हस्माद् भगवान् आत्रेयः ॥

अर्थ — तदनन्तरः भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम द्वित्रणीय चिकित्सितनामक
अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

परावरजमात्रेयगतमानमदव्यथम् ॥ अग्नि
वेशोगुरुकाले विनयादिदमुक्तवान् ॥ भगव-
न्पूर्वमुद्दिष्टो द्वित्रणौ रोगसंग्रहो तयोर्लिङ्गं
चिकित्साञ्च वक्तुमर्हसि शर्मद ॥
इत्यग्निवेशस्य वचो निश्चयगुरुरब्रवीत्

यौत्रणौ पूर्वमुद्दिष्टौ निजश्चागन्तुरेव च ॥ भूय
तां विधिवत्सौम्य ! तयोर्लिङ्गञ्च भेषजम् ॥

अर्थ — अग्निवेशने अत्रकाश पाकर अति
नम्रतासे परावरके जाननेवाले, मान, मद
और व्यथा से रहित अपने गुरु आत्रेय से
बूला कि भगवन् ! जो आपने रोगों के
संग्रहमें दो प्रकार के त्रणोंका वर्णन किया
था अब आप हे कल्याणदाता ! उनके
लक्षण और चिकित्सा कहो । अग्निवेशके
इस वचन को सुनकर गुरु बोले कि हे
सौम्य ! जो निज और आगन्तु दो प्रकार
के त्रणों का वर्णन किया गया है, उनके
विधिपूर्वक लक्षण और चिकित्सा श्रवण करो ।

निजागन्तुवृणों के लक्षण ।

निजः शरीरदोषोत्थ आगन्तुर्बाह्यहेतुजः ॥

अर्थ — जो शरीर के दोष से उत्पन्न होते
हैं वे निजवृण कहाते हैं, तथा जो बाहर
के हेतुओं से उत्पन्न होते हैं वे आगन्तुवृण
होते हैं ।

आगन्तुवृण के हेतु ।

वधवन्धप्रपतनादंष्ट्रादन्तनखक्षतात् । आ-
गन्तुवोत्रणास्तद्वद्विषस्पर्शाग्निशस्त्रजाः ॥
मन्त्रागदप्रलेपाद्यैर्भेषजैर्हेतुभिश्च ते । लि-
ङ्गैकदेशैर्निर्दिष्टा विपरीता निजैर्वृणाः ॥

अर्थ — वध, वन्ध, प्रपतन (गिरपडना)
छाट, दांत नख आदिका लगना विषका
स्पर्श, अग्निसे जलना, शस्त्रका लगना,
मन्त्र, औषधका लेप आदि हेतुओंसे
आगन्तुवृण होते हैं । इसीतरह निज ल-
क्षणों के एक देशद्वारा जो वृण निर्दिष्ट

होते हैं वे निज हैं उनकी उत्पत्ति ऊपर कहेहुये हेतुओं से विपरीत होती है ।

व्रणानानिजहेतूनामागन्तूनामसाध्यताम् । कुर्यादोषबलापेक्षीनिजानामौषधंतथा ॥

अर्थ—दोष और बल की अपेक्षा करके निज और आगन्तुव्रणोंकी चिकित्सा करें एवं निज व्रणोंकी औषधियोंका वर्णन करते हैं ।

निजव्रणों का कारण ।

यथास्वैर्हेतुभिर्दुष्टावातपित्तकफानृणाम् । वहिर्मार्गसमाश्रित्यजनयन्तिनिजान् व्रणान् ॥

अर्थ—अपने २ हेतुओं से दूषितहुये वातपित्त कफ वहिर्मार्ग का अवलम्बन कर के निज व्रणों को उत्पन्न करते हैं ।

वातजव्रणकेलक्षण

स्तब्धःकठिनसंस्पर्शोमन्दस्त्रावोऽतितीव्ररूक् । तुद्यतेस्फुरतिश्यावोव्रणोमारुतसम्भवः ॥

अर्थ—जो व्रण वातसे उत्पन्न होता है वह स्तब्ध, छूने में कठोर, धीरे २ स्त्रावित होनेवाला, अत्यन्त तीव्र शूलयुक्त, तोदयुक्त, स्फुरणयुक्त, कृष्णवर्ण होता है ।

वातजव्रणका चिकित्साक्रम ।

संपूरणैःस्नेहपानैःस्निग्धैःस्वेदोपनाहनैः । प्रदेहैःपरिपेकैश्चातव्रणमुपाचरेत् ॥

अर्थ—संपूरण, स्नेहपान, स्निग्धस्वेद, स्निग्ध उपनाहन, प्रदेह, परिपेक से वातजव्रण की चिकित्सा करें ।

पित्तजव्रणकेलक्षणऔरचिकित्सा
तृष्णामोहज्वरस्वेददाहावदरणौषधैः ।
व्रणंपित्तकृतंविद्यातृगन्धस्त्रावैःसपूतिकैः ॥
शीतलैर्मधुरैस्तिक्तैःप्रदेहपरिपेचनैः । स-
पिःपानैर्विरेकैश्चपित्तकंशमयेद्वृणम् ॥

अर्थ—पित्तजव्रण में तृष्णा, मोह, ज्वर, स्वेद, दाह, औषधियों द्वारा अवदारण, दुर्गन्ध, दुष्टस्त्राव होते हैं । शीतल, मधुर, तिक्त, प्रदेह, परिपेक तथा घृतपान और विरेचन द्वारा इसकी चिकित्सा कीजाती है ।

कफजव्रणके लक्षणादि ।

बहुपिच्छोगुरुःस्निग्धःस्तिमितोमन्दवेदनः ।
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेशचिरकारीकफव्रणः ।
कपायकटुरूक्षोष्णैःप्रदेहपरिपेचनैः ॥
कफव्रणप्रशमयेत्तथालंघनपाचनैः ॥

अर्थ—कफजव्रणमें बहुत पिच्छलता, भारा पन, स्निग्धता, स्तिमिता, मंदवेदना, पाण्डु वर्ण, अल्पसंक्लेश तथा चिरकारीता होती है । अर्थात् इसमें बहुत दिन लगते हैं । कपाय, कटु, रूक्ष, उष्ण, प्रदेह, परिपेक तथा लंघन और पाचन द्वारा कफव्रणकी चिकित्सा होती है ।

दोनोंव्रणोंकेभिन्न २ भेद ।

तौद्वौनानात्वभेदेननिरुक्ताविंशतिव्रणाः ।
तेपांपरीक्षात्रिविधाप्रदुष्टाद्वादशसंभूताः ॥
स्थानान्यष्टौतथागंधाःपरिस्त्रावाश्चतुर्दश ।
पोडशोपद्रवादोपाश्चत्वारोविंशतिस्तथा ।
तथाचोपक्रमाःसिद्धाःपद्मविंशत्समुदाह-
ताः । विभाव्यमानाःशृणुतान्सर्वानव-
यथेरितान् ॥

हैं तो ग्रण कष्टसाध्य होता है और जो सबही गुणों का अभाव होता है तो ग्रण दुःसाध्य होता है ।

ग्रणमें प्रथमकर्त्तव्य ।

ग्रणानामादितः कार्य्ययथासंशोधनम् । ऊर्ध्वभागैरधोभागैः शस्त्रैर्वस्तिभिरेवच ॥ सद्यः शुद्धशरीराणां प्रशमयान्ति हि व्रणाः । यथाक्रममतश्चोर्ध्वशृणुसर्वानुपक्रमान् ॥

अर्थ—ग्रणकी चिकित्सा करनेके आरम्भमें प्रथमही ग्रणका संशोधन करना उचित है और यह संशोधन आसन अर्थात् समीपवर्ती होना चाहिये अर्थात् कफज-ग्रणमें ऊर्ध्वभागगामी संशोधनदेवै, पित्तज ग्रणमें अधोभागगामी अर्थात् दस्त करावै । रक्तजग्रणमें फस्त खोलै, और वातजग्रणमें वस्तिप्रयोग करें । इसतरह शरीरके शुद्ध होनेपर ग्रण बहुत शीघ्र शान्त होजाते हैं ।

अब हम यहांसे यथाक्रम सबकी चिकित्सा वर्णन करते हैं ।

छत्तीसप्रकारकीचिकित्सा ।

शोफग्रंथद्विविधश्च शस्त्रकर्मविपीडनम् ।

निर्वापणं ससन्धानं स्वेदः शमनमेपणा ।

शोधनं रोपणीयौ च कपायौ समलेपनौ ॥

द्वौ स्नेहोत्प्लवणौ पत्रच्छेदेनेद्वच बन्धने ।

ज्यमुत्सादनं दाहो द्विविधः सावसादनः ॥

काठिन्यमार्दवकरे धूपनालेपने शुभे ।

ग्रावचूर्णनं ग्रन्थलेपनं लोमरोपणम् ॥

इति षड्विंशद्विष्टाग्रणानां सप्तप्रक्रमाः ॥

अर्थ—शोफ शशक छः प्रकार के शस्त्र

कर्म, अवपीडन, निर्वापण, संधान, स्वेद, शमन, एपणा, दो प्रकार के शोधनकर्त्ता कपाय, दो प्रकार के रोपणकपाय, शोधन प्रलेप, रोपणप्रलेप, शोधन स्नेह, रोपण स्नेह, दो प्रकार का पत्रच्छेद, दो प्रकार का बन्धन, भोजन विधि, उत्सादन, दो प्रकार का दाह, अवसादन, काठिन्यकर धूपन, काठिन्यकर आलेपन, मार्दवकर धूपन मार्दवकर आलेपन, ग्रणावचूर्णन, ग्रण कौ हितकारी लेप, लोमरोपण इसतरह ग्रणोंकी ये ३६ प्रकार की चिकित्सा हैं ।

ग्रणके पूर्वरूपमें कर्त्तव्य ।

पूर्वरूपं भिषक् बुद्ध्या ग्रणानां शोफमादितः ।

रक्तावसेचनं कुट्यादिजातग्रणशान्तये ।

शोधयेद्बहुदोषान्तु स्वल्पदोषान् बिलंघयेत् ॥

पूर्वकपायैः सर्पिर्भिर्जयेद्द्वामारुतोत्तरम् ॥

अर्थ—वैद्य को उचित है कि जब उस ग्रणका पूर्वरूप विदित होनेलगे तबही अनुपलब्ध ग्रण की शान्तिके निमित्त रुधिर निकाल देवै । जो ग्रण बहुत दोषोंसे युक्त हो तो लघन करावै ।

प्रथमही काथ वा घृत प्रयोग से घाताधिक्यं ग्रण की शान्ति करे ।

शोफनाशकलेप ।

न्यग्रोषो दुग्धराश्वत्थपुच्छवेतसवल्कलाः ससर्पिष्कः प्रलेपः स्यात् शोफनिर्वापणं परम् । विजयामधुकवीराविसग्रन्थिः शमावरी । नीलोत्पलनागपुष्पप्रदेहः स्यात् सचन्दनः ॥ शक्तवामधुकसापिः प्रदेहः

स्यात्सशर्करः । अत्रिदाहीनिचान्नानि
शोफेभेपजमुत्तमम् ॥ सर्वदैवमुपक्रान्तः
शोफोनप्रशमनं जेतु । तस्योपनाहः पक्वस्य
पाटनं हितमुच्यते ॥

अर्थ—बड़, गूलर, पीपल, पाकड़, और
वेत इनकी छालको पीसकर घृतमें सान-
कर लेप करनेसे शोफ दूर होजाती है ।
अथवा हरड़, मुलहठी, काकोली, कमलनाल
की जड़, सतावर, नलिकमल, नागकेसर,
रक्तचन्दन, इन को पीसकर लेप करनेसे
शोफ जतारहता है । अथवा सतू, मुल
हठी, घी और चीनी का लेप करें । शोफमें
अविदाही अन्नका भोजनभी उत्तम औषध
है । जो इन लेपों से शोफ की शान्ति न-
हो तो उसपर छपड़ी वा पुलटिस बांधकर
उसे पकाले और पकने पर चीरा लगादेवै ।
शोफ पर पुलटिस ॥

तैलेनवासर्पिपावाताभ्यां वा शक्तुपिण्डि-
का । सुखोष्णाशोफपाकार्थमुपनाहः प्रश-
स्यते ॥ सतिलासातसीवीजदध्मप्लाश-
क्तुपिण्डिका । सकिण्वकुण्डलवणाशस्ता-
स्यादुपनाहने ॥

अर्थ—सतूमें तेल वा घी डालकर पुल-
टिस तयार करें, इसको गरम शोफ के प-
कानेके निमित्त बांध देवै ॥ अथवा तिल,
अलसी, दही, कांजी, सतू, सुरावीज, कूठ
और नमक इनकी पुलटिस भी बहुत अ-
च्छी होती है ॥

विदग्ध शोथके लक्षण ।
रुदाहुरोगतोदैवविदग्धशोथमादिशेत् ॥

अर्थ—जिस सूजनमें वेदना, जलन,
सूची भेदन के समान पीड़ा होती है उसे
विदग्ध कहते हैं ।

पक्व शोथ के लक्षण ।

जलवस्ति सप्तस्पर्शसंपर्कपिण्डितोन्नतम्

अर्थ—जो स्पर्श करने में जलकी मशक
के समान हो, गोल तथा ऊँची हो उसे पक्व
समझो ।

पक्वशोथ के भेदन कर्त्ता द्रव्य ।

उमाथगुग्गुलुः सौधंपयोदक्षकपोतयोः ।

विट्पलाशभवः क्षारो हेमक्षीरी मकूलकः ॥

इत्युक्तो भेपजगणः पक्वशोथप्रभेदनः ।

सुकुमारस्य कृच्छ्रस्य संश्रान्तु परमुच्यते ॥

अर्थ—पकी हुई सूजन को फाड़ने वाले
ये द्रव्य हैं, यथा—गूगल, सेंहुडका दूध,
मुर्गा और कबूतरकी बीट, विड्ममक, टाक
का खार, स्वर्णक्षीरी और दन्ती ।

जो शोफ कोमल और कष्ट साथ्य हो
अर्थात् औषधों से न फटती हो तो शस्त्र
कर्म करें ।

छः प्रकार के शस्त्र कर्म ।

पाटनं व्यधनं चैव छेदनं लेखनं तथा । प्रच्छ-

न्नं सीवनं चैव पडविधं शस्त्रकर्म तत् ॥

अर्थ—पाटन, व्यधन, छेदन, लेखन,
प्रच्छन्न और सीवन, ये छः प्रकार के शस्त्र
कर्म होते हैं ।

पाटन के योग्य शोथ ।

नाडीघणाः पक्वशोथास्तथा सतगुदोदरम् ॥

अन्तः शल्याश्च ये देशाः पाठ्यास्ते तद्विधा-
श्रये ॥

अर्थ—नाडीव्रण, मकशोथ, क्षतगुदोदर
अन्तःशल्य (जिनके भीतर शल्यहो) तथा
ऐसेही और भी पाटन अर्थात् चीरा लगने
के योग्य होते हैं ।

• व्यधन योग्य व्रण ।

दकोदराणिसंपकागुल्मायेयेचरक्तजाः॥

वध्याःशोणितरोगाश्चविसर्पपिडकादयः

अर्थ—दकोदर [जलधर], पकाहुआ
गुल्म, रक्तजगुल्म, तथा विसर्प और पिड
कादिक अन्य. रक्तके रोग व्यधन अर्थात्
वधने के योग्य होते हैं ।

छेदनीय व्रण ।

उद्धृत्तानस्थूलपर्यन्तानुत्सन्नान्कठिनान्
वृणान् । अर्शःप्रभृत्यधीमांसछेदनेनोप

पादेयत् ॥

अर्थ—उद्धृत्त [जिसका गोलासा बन
गयाहो], स्थूलपर्यन्त (जिसके किनारे
मोटे हों), जो उत्सन्न और कडा हो,
अर्श आदि रोग जिनमें मांस बढ़ गयाहो
वे छेदनके योग्य होते हैं ॥

लेखन के योग्य रोग ।

किलासानिसकुष्ठानिलिखेल्लेख्यानि-
बुद्धिमान् ।

अर्थ—किलास और फोड आदि लेख
नीय रोगोंका लेखन करै ॥

प्रच्छन्नके योग्यरोग ।

वातासृग्ग्रन्थिपिडिकाः सकोठारक्तमण्ड
लाः ॥ कुष्ठान्यभ्याहतेचाङ्गशोथांश्चम
च्छयेद्विपक्वम् ।

अर्थ—वातरक्त, ग्रन्थि, पिडका, फोड

(पित्ती) रक्तमण्डल (खूनके चकत्ते),
कुष्ठ, अभ्याहत अंग और शोथ ये प्रच्छन्न
अर्थात् पछना के योग्य होते हैं ।

सीवन के योग्य व्रण ।

सीव्यंकुक्ष्युदराद्यन्तुगम्भीरंयद्विपाटित-
म् ॥ इतिषड्विधमुद्दिष्टंशस्त्रकर्ममनी
षिभिः ।

अर्थ—कूख और उदर में जो गहरा
फटगया हो वह सीवन के योग्य होता है ।
ये छः प्रकार के शस्त्रकर्मः पण्डितों ने व-
र्णन किये हैं ।

पीडनयोग्य व्रण ।

सूक्ष्माननाःकोपवन्तोयेवृणास्तान्प्रपी-
डयेत् ॥

अर्थ—सूक्ष्ममुखवाले तथा कोपवानव्रण
(जो भीतर पोला पड़जाता है) प्रपीडन
के योग्य होते हैं ।

पीडनद्रव्य ।

कलायाश्चमसूराश्चगोधूमाःसहरेणवः ।
कल्कीकृताःप्रशस्यन्तेनिःस्नेहाव्रणपीडने

अर्थ—कलाय, मसूर, गेहूं, रेणुका इन
का कल्क करके बिना चिकनाई डालेव्रण
पर चिपकादेवै ।

अन्यप्रयोग ।

शालमलीत्वग्बलामूलतथान्यग्रोधपल्लवा-
न्यग्रोधादिकमुद्दिष्टवलादिकमथापिर्वो ॥
आलेपनंनिर्वापणंतद्विधान्यैश्चसेचनम् ॥
सर्पिपाशतथैतेनपयसामधुकाम्बुना ।
निर्वापयेत्सुशीतेनरक्तपित्तोत्तरान्वृणान्
लम्बानिवृणमांसानिप्रलिप्यमधुसार्पिषा

नूप मांस, वेशवार, तथा गरम २ लुपदी
द्वारा स्वेदन देवे । इस स्वेदन से, रोगी को
शीघ्रही सुख प्राप्त होता है ॥ जिन वातप्रधान
ग्रणों में दाह और वेदना इन दोनों की अ-
धिकता होती है उन में तिल और अलसी
को भूनकर दूध में भिगो देवे । फिर उसी
दूध के साथ उन्हें पीसकर लेपकर देवे ॥

वृणोपरप्रयोग ।

बलागुहृचीमधुकंपृश्निपणीशतावरी ॥
जीवन्तीशर्कराक्षीरतैलमत्स्यवसाघृतम् ।
ससिद्धासमधुच्छिष्टाशूलधनीस्नेहशर्करा ॥
विषञ्चमूलकाथितेनाम्भसापयसाधवा ।
सर्पिपावासतैलेनकोप्णेनपरिपेचयेत् ॥
यवचूर्णसमधुकंसतैलसहसर्पिपा । द-
द्यादालेपनंकोप्णंदाहशूलोपशान्तये ॥
उपनाहश्चकर्तव्यः सतिलोमुद्रपायसः ।
रुग्दाहयोः प्रशमनोवृणेष्वेवुविधिर्हितः ।

अर्थ—खरेटी, गिलोय, मुलहटी, पृश्नि-
पणी, सितावर जीवन्ती, चीनी, दूध, तेल,
मछली, चर्वी, घी और मोम इन को पक-
कारके लेप करें तो ग्रणका शूलजाता रहता
है । इस मरहम का नाम स्नेह शर्करा है ॥

दशमूल डालकर सिद्ध किया हुआ कुछ
कुल गरम जल या दूध अथवा तेल मिले-
हुए घृत का सेचन करें ॥

जौ का चून, मुलहटी, तेल और घी
इन को पक्व करके सुहाते हुए गरमका लेप
करने से दाह और शूल शान्त होजातेहैं ॥

तिल और मूंग का दूध के साथ पीस
कर लेप करने से वेदना और दाह शान्त
होगाते हैं ॥

एषणीय वृण ।

सूक्ष्मानानावहुसावाकोशवन्तश्चयेब-
णाः ॥ नचमर्माश्रितास्तेषामेपणांहित-
मुच्यते ।

अर्थ—जो ग्रण सूक्ष्म, अनेक प्रकार के
बहुत स्त्रावयुक्त और कोशयुक्त हों परन्तु
मर्म स्थान में न हों उन में सलाई डालना
हितकरहै ॥

एषणा के भेद ।

द्विविधामेपणांविद्यात्मृद्वीञ्चकठिनामपि
उद्भिदैर्मृदुभिर्नालैर्लोहानांवाशलाकया ।
गम्भीरमांसगेदेशेपार्थ्वैर्लोहशलाकया ॥
एष्यंविद्याद्द्रवणंनालैर्विपरीतमतोभिपद्य
अर्थ—एषणा अर्थात् सलाई मृदु और
कठिन दो प्रकार की होतीहै । इन में से
उद्भिदकी सलाई मृदु और लोहे की कठिन
होती है । जहां गहरा मांस हो वहां लोहे
की सलाई डाले और जहां गहरा मांस न
हो वहां मृदु सलाई डाले ॥

शोधनीय वृण ।

पूतिगन्धान्विवर्णाश्चबहुसावान्महा-
रुजः ॥ वृणानश्चक्षुदान्विज्ञायशोधनैःस-
मुपाचरेत् ॥

अर्थ—जिन ग्रणों में दुर्गन्ध आती हो,
जो विवर्ण, बहूसावी, अत्यन्त, वेदनायुक्त,
और अशुद्ध हों उन को प्रथम शुद्ध करें ।

शोधनद्रव्य ।

त्रिफलाखदिरोदावीन्यग्रोथोऽतिबला-
कुशः । निम्बकोलकपत्राणिकपायाः
शोधनामताः ॥ तिलकल्कःसलवणो

द्वेदिरिद्रेत्रिदृष्टम् । मधुकनिम्बपत्राणि
मलेपोषणशोधनः ॥

अर्थ—त्रिफला, खैरसार, दारुहलदी, न्य-
ग्रोधादि गण, अतिवला, कुशा, नीमके पत्ते
धेरके पत्ते इनके काथसे व्रण को धोये तौ व्रण
शुद्ध हो जाता है । तिलका कल्क, संधानमक, दो-
नों हलदी, निसोथ, घृत, मुलहटी और नीमके
पत्तों का लेप करनेसे व्रण शुद्ध हो जाता है ॥

रोपणीय व्रणोंकी चिकित्सा ।

नातिरक्तो नातिपाण्डुर्नातिश्यावो न चाति
रुक् । न चोत्सन्नो न चोत्सङ्गी शुद्धो रोप्यः
परिव्रणः ॥ न्यग्रोधो दुग्धराश्वत्थकदम्बपु-
क्षवेतसाः । करवीरार्ककुटजाः कपाया
रोपणाः स्मृताः ॥ चन्दनं पद्मकम्बुकं दार्वी
त्वङ्नीलमुत्पलम् । मेदां मूर्वा समश्नाञ्च
पट्या ह्यवर्णरोपणम् ॥ मण्डरीकं जी-
वन्तीक्षोजिह्वाधातकी वलाम् । रोपणं स-
तिलं कुर्यात्पलेपं घृतं व्रणे ॥ कम्पिलकं
विडंगानिवत्सकं त्रिफलां वलाम् ॥ पटो
लं पिचुमर्दं च रोधं मुस्तां प्रियंगुकम् ॥ खदि-
रं धातकीं सन्नेपेलामगुरुचन्दने । पिप्प-
त्रा साध्यं भवेत्तैलं तत्परिव्रणशोधनम् ॥ मण्ड-
रीकं मधुकं काकोलयौ द्वे सचन्दने । सि-
द्धमेतैः समैस्तैलं तर्पणं व्रणरोपणम् ॥ दार्वी त्वच-
श्च कल्केन मधुना व्रणरोपणम् ॥ येन विधिं
नातैलं घृतं तेनैव साधयेत् । रक्तपित्तोत्त-
रं दण्डारोपणीयं घृतं तथा ॥ कदम्बार्जु-
ननिम्बानां पाटल्याः पिप्पलस्य च । व्रण-
मच्छादने विद्वान्पत्राण्यर्कस्य चादिशेत् ॥

वाक्षोऽथ वादरश्चैव पट्टो व्रणहितः स्मृतः ॥

वन्धश्च द्विविधः शस्तो व्रणानां सव्यदक्षिणः

अर्थ.... जो व्रण अत्यन्त लाल, पाण्डुरवर्ण
श्याव, वेदनायुक्त, उत्सन्न और उत्सङ्गी
नहीं होते हैं वे रोपण करने के योग्य हो-
ते हैं । बड़, गूलर, पीपल कदम्ब, पाकर,
वेत, कनेर, आक, कुडाकी छाल, इनका
कपाय रोपणकर्त्ता होता है ॥ रक्तचन्दन, ला-
ल कमल की केशर, दारुहलदीकी छाल, नी-
ल कमल, मेदा, मूर्वा, लज्जाल और मुलह-
टी ये व्रणको रोपण करने वाले हैं ॥ पुण्ड-
रिया, जीवन्ती, गोभी, धायके फूल, खैरटी,
तिल इनके कल्कको घीमें सानकर लेप क-
रनेसे व्रणका रोपण होता है ॥ कबीला, वां-
यविडंग, इन्द्रजौ, त्रिफला, खैरटी, परवल,
नीम, लोध, मोथा, प्रियंगु, खैर, धायके
फूल, राल, इलायची, अगर, चन्दन इनका
तेल व्रणको शोधन कर्त्ता होता है ॥ पुण्ड-
रिया, मुलहटी, दोनों काकोली, चन्दन,
इनके साथमें सिद्ध किया हुआ तेल तर्पणकर्त्ता
और रोपणकर्त्ता है । दूधका रस डालकर अथवा क-
बीला डालकर अथवा दारुहलदी की छाल डालकर
सिद्ध किया हुआ तेल व्रणरोपण के निमित्त
अत्यन्त उत्तम प्रयोग है । जिन २ द्रव्यों
को डालकर तेल पकाया जाता है उनही
से घृत भी सिद्ध किया जाता है । जो व्रणमें
रक्त पित्त की अधिकता होती है तौ घृतही
प्रयुक्त किया जाता है । कदम्ब, अर्जुन, नीम,
पाटला, पीपल और आक के पत्ते व्रण के
ढकनेमें काम आते हैं रुग्णदार चर्मे वा

सूती कपडे की पट्टी ब्रण पर बाई और दाहिनी दोनों ओर से बांधी जाती है ॥

ब्रणपर पथ्यविधि ।

लवणाम्लकट्टणानिविदाहीनिगुरुणि
च ॥ वर्जयेदन्नपानानिवृणीमैथुनमेवच ।
नातिशीतगुरुस्निग्धमविदाहियथाक्रमम् ।
अन्नपानवृणाहितंहितंवास्वापनंदिवा ॥

अर्थ—नमकीन, खटा, कडवा, ऊष्ण, विदाही और भारी अन्नपान तथा मैथुन ब्रणरोग में वर्जित है ॥ न अत्यन्त शीतल न भारी, न स्निग्ध, अविदाही अन्नपान और दिनमें न सोना ये ब्रणमें हितकर होते हैं ॥

स्तन्यानिजीवनीयानिवृहणीयानिन्यानि
च । उत्सादनार्थनिम्नानांब्रणानातानि
कल्पयेत् ॥ भूर्जग्रन्थ्यश्मकासीसमधो
भागानिगुगुलुः । ब्रणावसादनंतद्वत्क
लविद्धकपोतविद् ॥

अर्थ—नीचे ब्रणोंको ऊंचा करने केलिये स्तन्यवर्द्धक गणोक्त, जीवनीयगणोक्त और वृंहणीय गणोक्त औषधोंका प्रलेप करे ॥ भोजपत्र की गांठ, पाखानभेद, हीराकसीस और गुग्गुलुका लेप करनेसे ब्रण एक होजाता है और इसीतरह मुर्गे और कबूतर की बीट का प्रयोग भी किया जाता है ॥

अग्निकर्मकेयोग्यब्रण

रुधिरंतिप्रवृद्धेतुच्छिन्नेछेऽधिमांसके ।
कफग्रन्थिपुगण्डेषुवातस्तम्भानिलातिपु ॥
गूढपूलसीकेपुगम्भीरेषुस्थिरेषु च । क्षि
न्नेषुचाद्देशेषुकर्मान्नेः संप्रशस्यते ॥

अर्थ—छेदन के योग्य, अधिमांसके काट-

नेपर जो रुधिर अत्यन्त बहने लगे तो, कफग्रन्थि, गूढगण्ड, वातस्तम्भ, वातजवेदना, गूढपूल (जिसमें पीव बहुत भीतरको हो) गूढलसीका, गम्भीर, स्थिर, और क्षिन्न अंगावयवों में अग्निकर्म श्रेष्ठ होता है । मधुच्छिद्येनतैलेनमज्जसौद्रवसाघृतैः । तप्तैर्वाविविधैर्लोहैर्दहेद्वाहंविशेषानित् ॥ रूक्षाणांमुकुमाराणांगम्भीरान्मास्तोचः रान् ॥ दहेत्स्नेहैर्मधुच्छिद्यैर्लोहैःक्षौद्रैस्त तोऽन्यथा ॥

अर्थ—मोम, तेल, मज्जा, शहत, चर्बी, घी, तथा लोहा आदि अनेक धातुओंको गम कर करके ब्रण को दग्ध करे । रूक्ष कोमल, गम्भीर और वाताधिक्य ब्रणोंको स्नेह और मोम द्वारा दग्ध करे । पित्ताधिक्य ब्रणको लोह द्वारा और कफाधिक्य ब्रणको शहतद्वारा दग्धकरे ।

अग्निकर्म के अयोग्यव्याक्ति ।

वालदुर्बलवृद्धानांगार्भिण्यारक्तपित्तिना
म् । तृष्णाज्वरपरीतानांप्रवलानांविषा
दिनाम् ॥ नाग्निकर्मोपदेष्टव्यंस्नायुर्मर्मव्र
णेषुच । सविशेषेषुचशल्येषुनेत्रकुपुत्रणेषुच ।

अर्थ—वालक, दुर्बल, वृद्ध, गर्भिणीस्त्री रक्तपित्तरोगी, तृषारोगी, ज्वररोगी, प्रवल विषादग्रस्त, स्नायुवृणी, मर्मवृणी, सविषारोगी, शल्ययुक्त रोगी, नेत्रवृणी, कुपुत्रवृणी आदिरोगी आग्निकर्म से वर्जित हैं । रोगदोषवलापेक्षामात्राकालाग्निकोविदः । शस्त्रकर्माग्निकृत्येषुक्षारमप्यवचारयेत् ॥ कठिनत्वंब्रणायान्तिगन्धःसारैश्चपूषिताः ।

सर्पिर्मज्जवसाधूपैःशैथिल्यंयान्तिहिव्रणाः॥

रुजःस्त्रावाश्चगन्धाश्चक्रिमयश्चव्रणाश्रिताः

शैथिल्यंमार्दवंवापिधूपनेनोपशाम्यति॥

अर्थ—रोग, दोष, बल, मात्रा काल और अग्नि की अपेक्षा करके शस्त्रकर्म और अग्निकर्मके योग्य स्थलोंमें क्षारका प्रयोग करें ॥ गन्धद्रव्य और रालआदि की धूनी देनेसे व्रण कड़ा पड़जाता है, इसी तरह घी, मज्जा और चर्बीकी धूनी देनेसे व्रण शिथिल पड़जाते हैं । व्रणकी वेदना, स्त्राव, गंध और क्रिमि तथा ढाँलापन और मृदुता धूनी देनेसे मिटजाती है ।

अन्यप्रयोग ॥

रोध्न्यग्रोधशृङ्गानिखदिरस्त्रिफलाघृतम्
प्रलेपोव्रणशैथिल्यंसौकुमार्याभिवाधेनः॥

सरुजकठिनास्तब्धानिरास्त्रावाश्चयेव-
णाः । यवचूर्णैःसर्पिष्वैवदुःशस्तान्प्रले-

पयेत् ॥ मुद्गपट्टकशालीनांपायसैर्वाय-
थाक्रमम् । सघृतैर्जीवनीयैर्वार्तर्पयेत्तान्

भीक्ष्णशः ॥ ककुभोदुम्बराश्वत्थरोध्जा-
म्बवकट्फलैः । त्वचमाश्वेवमृद्घणन्तित्व-

वचूर्णैश्चूर्णिताव्रणाः ॥ मनःशिलैलाम-
ञ्जिष्णालाक्षाचरजनीद्वयम् । प्रलेपःस-

घृतःसौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरःपरः॥ अयोरजः-
सकासीसत्रिफलाकुसुमानिच । करोति

लेपःकृष्णत्वंसद्यएव नवत्वचि ॥ काली-
यकनताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमाः ।

लेपःसगोमयसःसवर्णीकरणःपरः॥ क्रमु-
काश्वत्थनिचुलमूललाक्षासगौरिका । स-

हेमश्चाभृतासङ्गाकासीसञ्जेतिवर्णकृत् ॥

अर्थ—पठानां लोध, बडकी कौपल, खैर सार, त्रिफला, घी इनका लेप व्रणकी शिथिलता और सुकुमारताको दूर करता है । जिन व्रणोंमें वेदना, कड़ापन, स्तब्धता, निरास्त्रावता होतीहै उनपर बहुत घी मिले हुए जौके चून का लेप करें । मृगा, साठी चावल, शाली चावल इनमें से प्रत्येक को दूधके साथ सिद्ध करके लेप करें अथवा जीवनीय गणोक्त औषधियों को घृतमें सानकर लेप करें तौ तर्पण होता है । अर्जुन गूलर, पीपल, लोध, जामन, कायफल इनकी छाल का चूर्ण करके लेप करने से व्रण पर शीघ्र खाल आजाती है । मनसिल, इलायची, मजीठ, लाख, दोनों हलदी, घी और शहत इनका लेप त्वचाको शुद्ध करता है । लोहचूर्ण, फसीस, त्रिफलाके फूल इनका लेप करने से नई त्वचा शीघ्र काली पड़जाती है । कालीयक तगर, आमकी गुठली, नागकेसर, कान्ती सार इनको गोबर के रसमें मिलाकर लेप करनेसे व्रणकी त्वचा शरीर की अन्य त्वचा के समान होजाती है । सुपारी, पीपल की जड़, हिंजलकी जड़, लाख, गेरू, केसर, मुर्दासंग, हीराकसीस इनका लेप करने से व्रणका वर्ण देहकी त्वचाके समान होजाताहै॥

व्रणपर बालजमने की विधि-

चतुष्पदाहित्वग्लामखुरमृंगास्थिमस्मना

तैलाक्ताचूर्णिताभूमिर्भवेद्विपरुहापुनः॥

पोढशोषद्रवायेचव्रणानांपरिकीर्तिताःते

पाचिकित्सानिदिष्टायथास्वंचिकित्सिते

चित्तप्रमोहयन्सञ्जनयेद्विकारम् ॥

अर्थ—बहुत भोजन करने से तथा शरीरके मन्द व्यवहारसे ऊष्मा सहित कफ मर्मस्थान अर्थात् हृदय में वृद्धि पाकर वृद्धि और स्मृतिका नाश करके चित्तको मुग्ध करता हुआ उन्मादको उत्पन्न करता है ।

कफज उन्माद के लक्षण ।

वाक्चेष्टितमन्दमरोचकश्चनारीविविक्तप्रियतातिनिद्रा छर्दिश्चलालाचबलश्रंभुक्तेनखादिशैक्ल्यञ्चकफात्मके स्यात् ॥

अर्थ—वाणी और चेष्टाका मन्द पड़जाना अरुचि होना, स्त्रियोंमें अनुराग, एकान्तकी अभिलाषा, असन्त निद्रा, वमन, लाला-स्राव, भोजन के पछे रोगकी वृद्धि, नख नयन, मूत्र पुरीषादिका संफेद पड़जाना ये सब कफज उन्मादके लक्षण हैं ॥

सांनिपातिक उन्माद के हेत्वादि ।

पःसंनिपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैः सतुहेतुभिः स्यात् ॥ सर्वाणिरूपाणि विभर्त्सितादृगाविरुद्धमैषज्यविधिर्विबर्ज्यः ॥

अर्थ—जो उन्माद सांनिपातसे होता है वह असन्त घोर होता है और वह पूर्वोक्त तीनों दोषों के मिले हुए लक्षणों से उत्पन्न होता है तथा इसके लक्षण भी मिले हुए तीनों दोषोंके समान होते हैं, इसकी चिकित्सा विरुद्ध होती है, इससे यह रोग वर्जित होता है ।

आगन्तु उन्माद के हेत्वादि ।

देवपिगन्धर्वपिशाचयक्षरक्षःपितृणामभिर्भर्णानि ॥ आगन्तुहेतुभियमपृतादिभिध्याकृतः कर्मच पूर्वदेहे ॥

अर्थ—देवता, ऋषि, गंधर्व, पिशाच, यक्ष, राक्षस और पितृगणों की अवधर्षणानियम और व्रतों में विक्षेप, तथा पूर्वजन्माजित कर्मफलसे आगन्तु उन्माद होता है ।

भूतोन्मादके लक्षण ॥

असत्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टाज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्भ्यः ॥ उन्मादकालोऽनियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—वाणी, पराक्रम, वीर्य, चेष्टा ज्ञान, विज्ञान और बलके मिथ्या आचरण से जो उन्माद होता है तथा जिसके घटने बढ़ने का समय नियत नहीं है उसे भूतोन्माद कहते हैं ।

देवादिके शरीरमें प्रविष्ट हानिमें दृष्टान्त अदृश्यन्तः पुरुषस्य देहदेवादयः स्वैश्वर्यगुणप्रभावाः । विशन्तपदस्पर्शस्तरसायैव छायातपौ दर्पणसूर्यकान्तौ ॥

अर्थ—देवतादिक अपने गुणों के प्रभाव से शरीरको बिना दूषित किये अलक्षित रीति से मनुष्योंके देहमें ऐसे प्रविष्ट होजाने हैं जैसे दर्पण और सूर्यकान्तिमणि में छाया और आतप प्रविष्ट होजाते हैं ।

आयातकालो हि स पूर्व रूपः प्रोक्तो निदानेऽस्य परं सुराद्यैः ॥ उन्मादरूपाणि पृथङ्निबोधकालश्च गन्धपुरुषाञ्च तेषामिति

अर्थ—निदानस्थान में इस उन्मादरोग में देवादि गणका शरीर में प्रवेश होने का काल, और पूर्वरूप वर्णन किया गया है । अब हम उन्मादके पृथक् लक्षण और शरीरमें प्रविष्ट होने का काल वर्णन करते हैं ।

देवोन्मत्त के लक्षण ॥

सौम्यदृष्टिगम्भीरिमप्रधृष्यमकोपनमस्व
भोजनाभिलाषिणमल्पस्वेदमूत्रपुरी
पत्राचंभुभगन्धकुल्लपद्मबदनइतिदेवो-
न्मत्तंविद्यात् ॥

अर्थ--सौम्य दृष्टिवाला, गम्भीर, अप्रधृष्य [धर्मणके अयोग्य) अक्रोधी, निद्राहीन, भोजनाभिलाषी, तथा जिसके पसिने, मूत्र मल कम होते हों, जो कम बोलता हो, देह में सुगन्ध आती हो, जिसका मुख प्रकुल्लित कमलके समान हो, ऐसा पुरुष देवोन्मत्त होता है ।

अभिचारोन्मादके लक्षण ।

गुरुदृष्टिसिद्धर्षिणाभिचाराभिध्याना
नुरुपाहारचेष्टान्याहारैरुन्मत्तंवि-
द्यात् ॥

अर्थ....जिस उन्मादमें गुरु, दृष्ट, सिद्ध तथा ऋषियोंके अभिचार और अभिध्यान के अनुरूप आहार, चेष्टा और व्याहार होता है वह उन्माद गुरुदृष्टादिकृत होता है ।

पितृगणकृतउन्माद ।

अप्रसन्नदृष्टिमप्रपन्तनिद्रालुं प्रतिहतवाच
मनन्नाभिलाषारोचकाविपाकपरीतं पितृ-
भिरुन्मत्तंविद्यात् ।

अर्थ....जो मनुष्य पित्रोंके किये हुए उन्माद से ग्रस्त होता है उसकी दृष्टि स्वच्छ नहीं होती है वह पदार्थों को अच्छी तरह नहीं देख सकता है, और निद्रालु होता है उसकी वाणी यथावत् नहीं निकल सकती है, अन्नमें अनिच्छा और भोजनमें अरुचि होती है

[११२]

तथा वह अविपाक रोगसे पीडित होता है ।

गन्धर्वोन्मादके लक्षण

चण्डसाहसिकतीक्ष्णगम्भीरमप्रधृष्यमु-
खवाद्यनृत्यगीतानुपानस्नानपानमाल्य
धूपगन्धरक्तवस्त्रवलिकर्महास्यकथायो-
गप्रियंभुभगन्धमितिगन्धर्वोन्मत्तंविद्यात्-
अर्थ—जो चण्डप्रकृति, साहसिक, तीक्ष्ण स्वभाव, गम्भीर, अप्रधृष्य, मुखसे वाजा बजाने का अनुरागी, नृत्य, गीत, अनुपान, स्नान, मालाधारण, धूप, गंध, लालवस्त्र, वलिकर्म, हास्य, आदिकर्मों में प्रीति रखने-वाला हो जो देहमें सुगन्धित पदार्थों को लगा-ता हो उसे गन्धर्वोन्मत्त समझो ॥

यक्षोन्माद के लक्षण

असकृत्स्वप्नरोदनहास्यंनृत्यमीतवाद्य
कथानपानस्नानमाल्यधूपगन्धरतिरक्त
विप्लुताक्षं द्विजातिवैद्यपरिवर्दिनरहस्य
भाषिणमितियक्षोन्मत्तंविद्यात् ।

अर्थ—जो बार २ सोता है, रोता है, हंस्ता है, नाचता है, गाता है, बजाता है, शकता है, खाता पीता है, स्नान करता है, झूलमाला, धूप गंध धारण करता है, जिसकी आंखें अत्यन्त लाल होती हैं जो द्विजाति और वैद्य की निन्दा करता है जो अपनी या और की गुह्य बातोंका प्रकाश करदेता है उसे यक्षोन्मादी समझो ।

राक्षसोन्माद के लक्षण ।

नष्टनिद्रमन्नपानद्वेषिणमनाहारममतिव-
लिनश्चस्वशोणितमांसरक्तमाल्याभिला-
षिणं तज्जनमितिराक्षसोन्मत्तंविद्यात् ।

अर्थ—जिसकी निद्रा नाश होगई हो, जिसको अन्नपानसे द्वेष हो, जो भोजन न करता हो, जो अतीव बलवान् हो, जो शस्त्र रुधिर, मांस और लालपुष्पोंकीमाला धारण करनेका अभिलाषी हो उसे राक्षसोन्मत्त समझो ॥

ब्रह्मराक्षसोन्मत्त के लक्षण

ग्रहासन्तत्यप्रधानंदेवविप्रवैद्यद्वेषावज्ञाभि
ष्टुतिवेदमन्त्रशास्त्रोदाहरणैःकाष्टादिभि
रात्मपीडनेनचब्रह्मराक्षसोन्मत्तंविद्यात् ।

अर्थ—जो अत्यन्तही हँसता वा नाचता हो, जो देवता, ब्राह्मण और वैद्योंसे द्वेष रखता हो, जो अवज्ञा पूर्वक स्तुति करता हो, जो वेदमन्त्र और शास्त्रके उदाहरण देता हो, जो अपनी देहमें लकड़ी लाठी आदि मारताहो, वह ब्रह्मराक्षसोन्मत्त होता है ।

पिशाचोन्मत्त के लक्षण ।

अस्वस्थचित्तस्थानमलभमानंनृत्यगीतहा
सिनंयद्वाचद्वप्रभाषिणसङ्कटकूटमालिनर
ध्याचेलतृणेष्वारोहणरतिसंभिन्नवर्णरू
क्षस्वरंनग्नंविधायन्तनैकत्रतिष्ठन्तदुःखा
न्यावेदयन्तंनष्टस्मृतिपिशाचोन्मत्तंविद्यात्

अर्थ—जिसका चित्त एक ठिकाने नहीं रहता है और चंचल होता है, जो नाचता, गाता और हँसता रहता है, जो प्रसंगाप्रसंगगत बातें बकता रहता है, जो कष्टकारक पहाड़ों की चोटियों पर चढ़जाता है, जो ऊँचे भागों पर, चिथड़ोंके ढेरोंपर, तृणों के ढेरोंपर चढ़जाता है, जिसके देह का वर्ण विगड़जाता है, स्वरमें रूखापन होता है, जो गंगा होजाता है, इधर उधर दौ

ड़ने लगता है, एक स्थान पर नहीं ठहरता है, दुःखों को कहता फिरता है, जिसकी स्मृति नष्ट होजाती है उसे पिशाचोन्मत्त कहते हैं ॥

देवादिहृत उन्माद की विधि ॥

तत्रशौचाचारंतपःस्वाध्यायकोविदनंरंभा
यःशुक्रप्रतिपदित्रयोदश्याञ्चदेवाः॥स्नान
नशुचिविविक्तसेविनंधर्मशास्त्रश्रुतिका
व्यकुशलंप्रायःपट्टीनवम्योर्ऋषयः । मा
तृपितृगुरुष्टद्धसिद्धाचार्योपसेविनंप्रायोद
शम्याममावास्यायाञ्चापितरः॥ गन्धर्वा
स्तुस्तुतिगीतवादित्ररतिपरदारगन्धमाल्य
भियशौचाचारंद्वादश्याञ्चतुर्दश्याञ्च ॥
सत्त्वबलरूपगर्वशौर्ययुक्तंमालयानुलेपनं
हास्यभियमातिवाकरणंप्रायःशुक्लैकाद
श्यांसप्तम्यांचयक्षाः । स्वाध्यायतपोनि
यमोपवासव्रतचर्यादेवयतिगुरुपूजारति
भ्रष्टशौचब्राह्मणमन्त्राहणंवाग्नहवादिनं
शूरमानिनंदेवतागारसालिलक्रीडनरति
प्रायःशुक्रपञ्चम्यांपूर्णचन्द्रदर्शनेचब्रह्मरा
क्षसाः । रक्षःपिशाचास्तुहीनसत्त्वपिथुन
स्त्रैणलुब्धंप्रापेद्वितीयातृतीयाष्टमीपुषु
पंछिमवैश्याभिर्धर्षयन्तीत्यपरिसंख्ये
यानांग्रहाणामाविष्कृततमाहृष्टावेतेव्या

ख्याताः ।

अर्थ....इन में से जो मनुष्य शौच, आचार, तप और स्वाध्याय में निरत है उसको छिद्र पाकर देवगण शुक पक्षकी प्रतिपदा वा त्रयोदशी को दवाते हैं । जो स्नानादि से पवित्र रहता है एकान्त में रहता

है जो धर्मशास्त्र, श्रुति और काव्यमें कुशल है उसको ऋषिगण प्रायः छट् वा नवर्षाको दवाते हैं। जो माता, पिता, गुरु वृद्ध, सिद्ध और आचार्यों की सेवा करता है उसे पितृगण प्रायः दशमी वा अमावास्या को दवाते हैं। जो मनुष्य स्तुतिपाठ, गाने और वज्राने में लीन रहता है, पर स्त्री गामी होता है, गंध, माला, शौचाचार से हित रखता है उसे गन्धर्व द्वादशी वा चतुर्दशीको दवाते हैं। जो मनुष्य सत्व, बल, रूप, गर्व शौर्य से युक्त होता है, हंसी दिल्गुी करता रहता है, अत्यन्त बोलता है, उसे यक्षगण प्रायः शुक्लपक्षकी एकादशी वा सप्तमी को दवाते हैं। जो स्वाध्याय, तप, नियम, उपवास, व्रतचर्या देवता, यति और गुरु की पूजा में विरक्त मन है, अपवित्र है, जो ब्राह्मण को अब्राह्मण कहता है, जो ब्रह्मवादी है, जो शूरमानी है जो देवस्थानमें जलक्रीडा करता है उसे ब्रह्मराक्षस प्रायः शुक्लपक्षकी प्रचमी वा पूर्णमासी को दवाते हैं। जो मनुष्य हीन पराक्रम छली पर स्त्री लम्पट और लोभी होता है उसे राक्षस और पिशाचगण छिद्रपाकर द्वितीया तृतीया वा अष्टमी को धर दवाते हैं। असंख्य ग्रहोंमें से ये आठ बड़े उग्र हैं इससे इन्ही का यहां वर्णन किया गया है

असाध्य उन्माद के लक्षण ।

सर्वेष्वापितुखल्वेपुयोहस्ताबुध्यम्यरोपसरं-
भानिःसंज्ञमन्येष्वात्मनिवापातयेत् ।
सोऽस्यसाध्योऽज्ञेयस्तथासाधुनेत्रोमेद्रप्रवृत्त

रक्तःक्षतजिह्वःप्रसृतनसिसक्तः । छिद्यमा-
नमर्माप्रतिहन्यमानपाणिःसततविकूजन-
दुर्धर्णस्तृपार्तःपूतिगन्धिश्चर्हिंसार्थीउन्म-
चोऽज्ञेयस्तपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ—इन सब रोगियोंमें जो रोगी अपने दोनों हाथोंको ऊंचे करके रोपके आवेग में अचेत होकर और के देह पर स्वयं ही गिर पड़ता है वह असाध्य होता है, तथा जिस उन्मादरोगी के नेत्रों में आंसू आते हैं, मेढसे रक्त निकलता है, जीभमें घाव होजाता है, नाक टपकती है, मर्म स्थान में छिदने की सी पीड़ा होती है हाथोंको दे मारता है, कंठ में कूजन शब्द होता है, शरीर का रंग विगड़ जाता है, तृपा से पीड़ित होता है जिसके देहमें दुर्गन्ध आती है जो हिंसा करनेके लिये उत्थत होता है, ऐसा रोगी त्यागनेके योग्य होता है ॥

मंत्रादि द्वारा चिकित्स्य रोगी ।
रत्यर्चनाकामोन्मादिनैतुभिपगभिप्राया
चाराभ्यां बुद्ध्वा तदज्ञेयपहारवलिश्रेणमं-
त्रभैषज्यविधिनोपक्रमेत् । तत्र द्वयोरपि निजा-
गन्तुनिमित्तयोरुन्मादयोः समासविस्तारा-
भ्यां भैषज्यविधिं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—देवतोंके पूजा पाठमें व्यक्तिक्रम होनेसे वा काम पीड़ित होनेसे जो अभिशाप वा अभिचार द्वारा उन्माद होता है उसमें उपहार, बलिदान और मंत्रमिश्रित औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥

अब हम निज और आगन्तु दोनों प्रकार

र के उन्मादों की चिकित्सा संक्षेप और विस्तारसे कहते हैं ।

वातज उन्माद में चिकित्साक्रम ।

उन्मादेवातजे पूर्वस्नेहपानं विशेषावित् ।
कुर्यादावृतमार्गं तु सस्नेहं मृदुशोधनम् ।

अर्थ—वातज उन्मादमें प्रथम स्नेह पान कराना उचित है और जो स्रोतों के मार्ग रुकरहे हों तौ स्नेह मिश्रित मृदु संशोधन देवै ।

कफपित्तोन्माद में चिकित्साक्रम ।

कफपित्तभवेऽप्यादौ वमनं स विरेचनम् ॥

स्निग्धस्विन्नस्य कर्त्तव्यं शुद्धे संसर्जनक्रमः ।

निरूहणस्नेहवस्ती शिरसश्च विरेचनम् ।

ततः कुर्याद्यथादोषं तेषां भूयस्त्वमाचरेत् ॥

अर्थ—स्नेहन और स्वेदनकर्म कराने के पश्चात् कफज उन्मादमें वमन और पित्तजमें विरेचन देवै अथवा दोनों ही देवै । इसके पीछे पूर्वोक्त क्रमसे पेया आदि का सेवन करावै । फिर निरूहणवस्ति और शिरो विरेचन देवै । फिर जैसा दोष हो उसीके अनुसार बार बार वमन विरेचनादि का प्रयोग करतारहै ॥

वमनादिकाफल ।

हृदिन्द्रियशिरःकोष्ठसंशुद्धे वमनादिभिः ।

मनःप्रसादमाप्नोति स्मृति संज्ञाञ्चाविन्दति ।

अर्थ—वमन विरेचनादि प्रयोगोंसे हृदय इन्द्रियगण, शिर और कोष्ठके शुद्ध हो जाने पर मनमें प्रसन्नता तथा स्मरणशक्ति और चैतन्यता बढ़ती है ।

आचारविभ्रंशोपपाय ।

शुद्धस्याचारविभ्रंशोतीक्ष्णनावनमञ्जनम् ।

ताडनञ्च मनोबुद्धिदेहसंतर्जनहितम् ॥

यः शक्तो विनयेत्पट्टैः संयम्य मुहूर्तैः मुखैः ।

अपंतलोष्ठाप्राग्राद्यैः संरोध्य शतमोहृहैः ॥

अर्थ....वमन विरेचनादि से शुद्धव्यक्ति के आचार विभ्रंश होने पर तक्षिण नस्य, अंजन और ताड़ना का प्रयोग करे । मन, बुद्धि और देह का ताड़ना हित होता है जो रोगी बलवान् हो तौ छोह और काष्ठको छोड़कर मजबूत सुखदाई पाटियोंसे बांधकर अंधेरे घर में बन्दकरदेवै ॥

स्मृतिवर्द्धक उपाय ।

तर्जनत्रासनं दानं सान्त्वनं हर्षणं भयम् ।

विस्मयो विस्मृतेर्हेतुर्नयति प्रकृतिमनः ॥

प्रदेहोत्सादनाभ्यङ्गधूमपानञ्च सर्पिः ।

प्रयोक्तव्यं मनोबुद्धिस्मृति संज्ञाप्रबोधनम् ॥

अर्थ....डराना, धमकाना, दैना, समझाना, प्रसन्नकराना, भय दिखाना और भूखमें डालना इन बातों से स्मृति बढ़ती है और मन सुस्थ होता है । प्रदेह, उत्सादन, अभ्यङ्ग, धूमपान, घृतपान इन प्रयोगों से बुद्धि स्मृति और संज्ञा बढ़ती है ।

आगन्तु उन्मादमें उपाय ।

सर्पिःपानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्लेष्यतेवि-

धिः । अतः सिद्धतमान्योगान् शृणुन्माद-

विनाशनाम् ॥

अर्थ—आगन्तु उन्माद में घृतपान और मंत्र प्रयोग बहुत अच्छे होते हैं । अब उन्मादको दूर करनेवाले उत्तम २ अनुभव कियेहुये प्रयोगों को लिखते हैं ।

उन्मादनाशकप्रयोग ।

द्विगुसौवर्चलाव्योपैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ।
चतुर्गुणैर्गवामूत्रेसिद्धमुन्मादनाशनम् ॥

अर्थ—हींग, संचलनमक, त्रिकुटा इनमें से प्रत्येक द्रव्य को दो २ पल लेकर एक आढक घृत और चौगुने जल में पकाकर सेवन करें, यह उन्मादनाशक प्रयोग है ॥

कल्याणकघृत ।

विशालात्रिफलाकौन्तीदेवदार्वेलबालुक
म् । स्थिरानन्तारजःपुण्ड्रेशारिवेद्वेप्रियंगु
कम् ॥ नीलोत्पलैलामज्जिष्ठादन्ती
दाडिमकेसरम् । तालीसपत्रवृद्धतमाल
त्याकुमुमनवम् ॥ विडंगपृष्ठीपर्णीचकु
पुचन्दनपद्मकम् । कल्कैः कर्पसमैरेतैर्विशं
त्यष्टाभिरेवच ॥ चतुर्गुणेजलेपक्त्वा
घृतप्रस्थं प्रयोजयेत् । अपस्मारेज्वरेकासे
श्वासेमन्देऽनलक्षये ॥ वातरोगेप्रतिश्या
येतृतीयकचतुर्थके । छर्द्यशोमूत्रकृच्छेच
विसर्पोपहतपुच ॥ कण्डूपाण्ड्वामयो
न्मादविपमेपुगरेपुच । भूतोपहताचित्ता
नांगद्वदानामरतेसाम् ॥ शस्तस्त्रीणाञ्च
बन्ध्यानां धन्यमायुर्वलप्रदम् । अलक्ष्मी
पापरक्षोघ्नसर्वग्रहविनाशनम् ॥ कल्या
णकमिदं सर्पिःश्रेष्ठं पुंसवनपुच ।

अर्थ.... इन्द्रायण, त्रिफला, रेणुका, देव-
दारु, एलुआ, शालिपर्णी, अनन्ता, दोनोंहल्दी,
दोनों शारिवा, प्रियंगु, नीलोत्तर, इलायची,
मजीठ, दन्ती, अनार, नागकेशर, तालीस
पत्र, बड़ी कटेरी; मालती के नये फूल, वा-
यविडंग, पृष्णिपर्णी, कूट, चन्दन, पद्माक्ष,

इन अट्ठाईस द्रव्योंका एक एककर्म कल्क
लेवै । इनको चौगुने जलमें पकाकर एक
प्रस्थ घी डाल देवै । यहघृत मृगीरोग, ज्वर
खांसी. श्वास. मन्दाग्नि. वातरोग. प्रतिश्याय
तृतीयकज्वर. चतुर्थकज्वर. वमन. ववासीर.
मूत्रकृच्छ्र. विसर्प. खुजली. पाण्डुरोग. उन्माद
विप. प्रमेह. विपरोग भूतोपहता चित्त, गद-
गदरोग वीर्यनाश तथा स्त्रियों के बन्ध्यापन
को दूर करताहै । यह आयु और बलका
वढानेवाला है तथा अलक्ष्मी. पाप. राक्षस
और सम्पूर्ण ग्रहों को नष्ट करनेवाला है ।
यह कल्याणनामकघृत पुंसवनकर्ममें श्रेष्ठहै ।

महाकल्याणकघृत ।

एभ्यएवस्थिरादीनिजलेपक्त्वैकाविंशति-
म् ॥ रसेतस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिर्क्षीरचतुर्गुणे
वीराद्विमापकाकोलीस्वगुप्तर्पभकर्द्धिभिः
मेदयाचसमैः कल्कैस्तत्स्यात्कल्याणकं
महत् । वृंहणीयंविशेषेणसन्निपातहरं-
परम् ॥

अर्थ.... शालपर्णी से आदि लेकर इक्कोस
द्रव्यों को ऊपर कहेहुये प्रमाण से लेकर
जलमें औटावै, उस काथमें एक बार व्याई
हुई गौ का चौगुना दूध डालकर घी पकावै
इसमें क्षीरकाकोली, दोनोंप्रकारकेमाप, काको-
ली, केच, ऋषभक, ऋद्धि और मेदा इन
सब को समान भाग लेकर कूटकर डाल
देवै यह महाकल्याणक घृत है । यह घृत
अत्यन्त वृंहणकर्ता और सन्निपात को दूर
करने वाला है

महापैशाचिक घृत ।

जाटिलां पूतनाकेशीचारटीमर्षदीपचाम् ।

त्रायमाणान्यांवीराञ्चीरकंकदुरोहिणीम्
वयःस्थांशुकरंछिब्रामतिच्छत्रापलङ्कपाम् ।
महापुरुषदन्ताञ्चवयःस्थानाकुलीद्वयम् ॥
कटम्भरांष्ट्रशिकालींस्थिरांचाहृत्यतैर्घृतम्
सिद्धंचतुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ।
महापैशाचिकंनामघृतमेतद्यथाघृतम् ॥
बुद्धिस्मृतिकरंचैववालानांचाङ्गवर्द्धनम् ।

अर्थ—जटांमासी, हरड, केसी (नीली-
वृक्ष), चारटी, केंच, वच, त्रायमाणा, जया,
क्षीरकाकोली, चौरपुष्पी, कुटकी, गिलोय,
बाराहीकन्द, छत्रा, अतिक्षत्रा गूगल, शतमू-
ली, वयस्या, दोनों नाकुली (दो प्रकार की
रास्ना), कटभी, वृश्चिकाली, शालिपर्णी
इन को कूटकर इनके क्वाथ में घृत पकावै
यह घृत अनुभव किया हुआ है । इस के
सेवन से चौथैया ज्वर, उन्माद, ग्रह, अप-
स्मार नष्ट होजातेहैं यह महापैशाचनामक
घृत अमृत के समान गुणकारी बुद्धि और
स्मृति को बढ़ाने वाला है । यह घृत वा-
लकों के अंगों को बढ़ाता है ॥

लथुनाद्य घृत ।

लथुनानांशतंत्रिशदभयाच्यूपणात्पलम् ।
गवांचर्ममसीप्रस्थोद्व्यादकंक्षीरमूत्रयोः ॥
पुराणसर्पिषःप्रस्थमोभिःसिद्धंप्रयोजयेत् ।
हिंसुचूर्णपलंशतिदत्त्वाचमधुमानिकाम् ॥
तद्वापागतुसम्भूतानुन्मादान्विषमज्वरान्
अपस्मारांश्चहन्त्याथुपानाम्यजननावनैः

अर्थ—सौ गांठ लहसन, तांस हरड, त्रि-
कुटा एक पल, गोचर्म का भस्म एक प्रस्थ
गों का दूध और गों का मूत्र एक एक

आढक, पुराना घी एक प्रस्थ इन सब को
मिद्ध करलेवै । जब यह ठंडा होजाय तब
इसमें एक पल हांग पिसी हुई और आठ
पल शहत डालकर मिलावे । इस घृतको
पान अभ्यजन और नस्यकर्म में प्रयोग क-
रने से आगन्तुक उन्माद, विषमज्वर और
अपस्मार नष्ट होजाते हैं ॥

अन्य लथुनादि घृत ।

लथुनस्याविनष्टस्यतुलद्भिनिस्तुपीकृतम्
तदर्द्धदशमूलस्यद्व्यादकेऽपांविपाचयेत् ।
पादशेषेघृतप्रस्थंलथुनस्यरसंतथा ॥
कोलमूलकटक्षाम्लमातुलद्भिर्द्वैकरसैः ।
दाडिमाम्बुसुरामस्तुकांजिकाम्लैस्तदर्द्ध
कैः । साधयेत्त्रिफलादारुलवणव्याप
दीप्यकैः ॥ यवानीचव्यहिलग्वम्लवेतसै
श्चपलाद्विकैः । सिद्धमेतत्पिबेच्छलगुल्मा
पौजठरापहम् ॥ ब्रध्मपाण्ड्वामयंघ्नीह
योनिदोषज्वरकिमीन् । वातश्लेष्मामया
न्सर्वानुन्मादञ्चापकर्षति ॥

अर्थ—उत्तम लहसन की छिलका दूर
की हुई गांठ पचासपल, दशमूल पचीसपल
इन को दो आढक जठमें पकावै, जब
चौथाई शेषरहजाय तब इस काथमें एक
प्रस्थ घी, एक प्रस्थ लहसन का रस, बेर,
मूली, वृक्षाम्ल, त्रिजैरा, अदरकका रस
अनारका रस, ये सब एक एक प्रस्थ लेवै
तथा सुरा, मस्तु और कांजी आधे आधे
प्रस्थ लेवै । तथा त्रिफला, दारुहलदी, सेंधा
नमक, त्रिकुटा, दोनों अजबायन, चव्य,
हांग, अमलवेत इन सबका आधे आधे

पल चूर्ण मिलाकर पाक करै । इस घृतका पान करनेसे शूल, गुल्म, अर्श, जठररोग ब्रध्म, पाण्डुरोग, प्रीहा, योनिदोष, ज्वर क्रिमिरोग, वातकफरोग तथा सबप्रकार के उन्मादरोग नष्ट होजाते हैं ।

अन्य घृत ।

हिङ्गुनाहिङ्गुपर्णचिसकायस्यावयस्थयासि
क्षेसर्पिर्हिततद्ब्रध्मस्याहिङ्गुरोचकैः केवलं
सिद्धमेभिर्वापुराणपाययेदघृतम् । पाय
यित्वात्तमांमात्रांश्वध्रेरुन्ध्याद्गृहेऽपि वा
अर्थ—हींग, हिङ्गुपर्णी, हरड और गि-
लोय इनको डालकर पुराना घी पान करै
अथवा गिलोय, हींग और रोचक [राजपलां-
डु] डालकर पुराना घी सिद्ध करै । इस
घृत की उत्तम मात्रा पान कराके रोगी को
किसी श्वश्रु [तहखाने] में वा घर में बि-
ठलाये रखे ।

पुराने घी के गुण ।

विशेषतः पुराणञ्च घृतं तं पाययेद्विपक्व ।
त्रिदोषघ्नं पवित्रत्वाद्दिशेपाद्ग्रहमोक्षणम्
गुणकर्माधिकं स्थानादास्वादान्कटुति-
क्तकम् ॥ उग्रगन्धं पुराणस्यादशवर्षस्थि-
तं घृतम् । लाक्षारसानि भक्षितं तद्विष-
ग्रहापहम् । मेध्यं विरेचनेष्वग्न्यग्रपुराणम-
तः परम् । नासाध्यनामतस्यास्ति यत्स्या-
द्वर्षशतस्थितम् ॥ दृष्टं स्पृष्टं यथाघ्रातं
द्विष सर्वग्रहापहम् । अपस्मारग्रहोन्मादव-
तांशस्तविशेषतः ॥

अर्थ—जैयको उचित है कि उन्माद

रोगमें विशेष करके पुराना घी पान करावे

यह घृत त्रिदोषनाशक और पवित्र होने से
ग्रहमोक्षण कर्त्ता है । पुराना घी बहुत दि-
वस का होने से गुण और कर्म में अधिक
होता है, स्वादमें कटु और तिक्त होता है,
इसमें गंध बड़ी उग्र आती है इस तरह
दसवर्ष का घी पुराना होता है । जो घृत
लाख के रस के समान और शीतल होता
है वह सर्वग्रह नाशक होता है । दश वर्ष
से अधिक दिनका घी मेधावर्द्धक और उ-
त्तम विरेचनकर्त्ता है, इसे प्रपुराण कहते हैं
सौ बरसके घी के सामने कोई भी ऐसा
रोग नहीं है जो साध्य न हो । इस घृत
के देखने, छूने और सूंघनेहीसे सम्पूर्ण ग्रह
शान्त होजाते हैं । यह घृत अपस्मार
और ग्रहोन्माद रोगियों को विशेष करके
उपयोगी होता है ।

नस्याञ्जन प्रयोग ।

एतैरौषधैर्गर्वाविधेयत्वं सगच्छति । अ-
ञ्जनोत्सादनालेपान्नाचनादींश्च योजयेत्
शिरिषोमधुकं हिङ्गुलशुनंतगरं यचाम् ॥ कु-
ष्ठञ्च वस्तमूत्रेण पिष्टं स्यान्नाचनाञ्जनम् ।
अर्थ—इन्हीं नीचे लिखी हुई औषधियों
द्वारा उन्मादका विधान किया जाता है,
तथा अंजन, उत्सादन, आलेपन और न-
स्यकर्म में भी प्रयुक्त की जाती हैं । उन
औषधियों के नाम ये हैं, सिरस, मुलहटी,
हींग, लहसुन, तगर, यच, और कूठ इन
को दफरे के मूत्र में पीसकर नस्यकर्म और
अञ्जन में प्रयुक्त करे ॥

अन्यप्रयोग ।

तद्व्योपहरीद्रेवमञ्जिष्ठाहिंगुसर्पपाः । शिरीषबीजश्चोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ।
अर्थ—ऊपरकी रीतिके अनुसारही दोनों हलदी, मजीठ, हींग, सरसों, सिरस के बीज इनको नस्यकर्म और अञ्जन में प्रयुक्त करें । इससे उन्माद, प्रहरोग और अपस्मार दूर होजाते हैं ॥

अन्यप्रयोग ।

पिप्पलातुल्यमपामार्गहिंगुलाहिंगुपात्रिकाम् ॥
घर्त्तिः स्यान्मरिचार्द्धापापित्ताभ्यांगोभृगालयोः । तयांजयेदपस्मारभूतोन्मादज्वरादितान् ॥ भूतार्चानमरार्चाश्चनरार्त्ताश्चैवगोमये । मरिचञ्चातपेमांसंसापित्तं स्थितमञ्जनम् ॥ वैकृतंपश्यतः कार्य्यदोषभूतहतस्मृतेः ॥

अर्थ—ओंगा, हींगल और हींगपत्री, इनको समानभाग लेवै और तीनोंसे आधी कालीमिरच डालकर गौ वा शृगाल के पित्त के साथ बत्ती बनावै । इससे अपस्मार, भूतोन्माद, ज्वर, अर्दित, भूतार्त, देवार्त्तद्विरोग नष्ट होजाते हैं ।

कालीमिरच, गोमांस और गोपित्त इन तीनोंको मिलाकर धूपमें रख देवै फिर इनको आखों में आंजै तौ दृष्टि की विकृति, दोषज उन्माद, भूतोन्माद तथा स्मृतिनाश ये सब जाते रहते हैं ।

(किन्ती २ पुस्तक में 'मांस की जगह मांस पांठ करके यह अर्थ किया है कि महीने भरतक धूप में रखै)

अन्यप्रयोग ॥

सिद्धार्थकोयचाहिंगुकरञ्जन्देवदारुच
प्रात्रिफलाद्येताकटभीत्वकटुत्रिकम् ॥ समानानिप्रियंगुश्चशिरीषोरजनीद्वयम् । वस्तुमूत्रेणपिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम् । नस्यमालेपनश्चैवस्नानमुद्वर्त्तनंतथा । अपस्मारविपोन्मादकृत्यालक्ष्मोज्वरापहः ॥ भूतेभ्यश्चभयंहन्तिराजद्वारेचशस्यते । सर्पिरेतेनसिद्धंवासगोमूत्रंतदर्थकृत् ॥

अर्थ—सफेदसरसों, वच, हींग, दोनों प्रकारके कड़ा, देवदारु, मजीठ, त्रिफला, सफेदकोयल, कटभीकीछाल, त्रिकुटा, प्रियंगु, सिरसकी छाल, दोनों हलदी, इन सबको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें पीस लेवै इस औषधका पान, अंजन, नस्य, आलेपन, स्नान, उद्वर्त्तन में प्रयोग करने से अपस्मार, विपोन्माद, कृत्या, अलक्ष्मी और ज्वर नष्ट होजाते हैं । इसका अंजन लगाने से भूतोंका डर जाता रहता है और राज द्वार में प्रशंसा का पात्र होता है ॥ इन्हीं औषधियों को गोमूत्र में पीसकर घृत पाक करके सेवनकरै तौ पूर्वोक्त गुण होतेहैं ॥

अन्य प्रयोग ॥

प्रसेकेपीनसेगन्धैर्धूमवर्त्तिकृतापिवेत् ।
वैरेचनिकधूमोक्तैः श्वेताद्यैर्वासहिंगुभिः ॥
शङ्खकोलूकमार्जारजम्बूकटुकवस्तजैः ।
मूत्रपित्तशकृलोपनखैश्चर्मभिरेवच ॥ सेकाञ्जनप्रथमननस्यधूमश्चकारयेत् ॥

अर्थ ... जो उन्माद रोगमें मुखसे लार गिरती हो वा पीनसका रोग होगया हो तो

त्रेरेचनिक धूममें कोह हुए सुगंधित द्रव्यों की बत्ती बनाकर धूमपान करें, अथवा ऊपरके प्रयोग में कहीं हुई श्वेत कायल से आदि लेकर सब द्रव्य और हांग इनकी बत्ती बनाकर धूमपान करें। अथवा सेह, घुग्घू, विहड़ी, सिरकटा, भेडिया और बकरा इन के मूत्र, पित्त, विष्टा, लोम, नख, और चर्म इन सब के द्वारा सेक अंजन, प्रथमन, नस्य और धूम ये कर्म करें।

अन्यप्रयोग ॥

वातश्लेष्मात्मके प्रायः पैतृतिकेचप्रशस्यते ॥
तिक्तकंजीवतीयश्च सर्पिः स्नेहश्चामिश्रकः ।
शीतानि चान्नपानानि मधुराणि मृदूनि च ॥

अर्थ—प्रायः वातश्लेष्मात्मक तथा पित्तज उन्मादमें तिक्तकघृत, जीवनीयघृत और मिश्रस्नेह तथा ठंडा मीठा और कोमल अन्नपान का प्रयोग करें ॥

उन्माद में फस्त ।

शंखकेशान्तसन्धौ वा मोक्षयेत् शोभिपक्षि
राम् । उन्मादे विपमे चैव ज्वरेऽपस्मार
एव च ॥

अर्थ—उन्माद, विपमज्वर और अपस्मार में कनपटी और केशान्त की सन्धियों में फस्त खोड़े ॥

अन्यप्रयोग ।

घृतमांसवितृप्तवानिवातेस्थापयेत् सुखम् ।
त्यक्त्वामतिस्मृतभृंशं संज्ञालब्ध्या प्रबुध्य
ते । आश्वासयेत् सुहृद्वातवाक्यैर्धर्मार्थसं
हितैः ॥ मूयादिपृष्ठविनाशं वा दर्शयेदक्रुता
निवातश्चासर्पपतलाक्तं यस्य सौत्तानममा
[११३]

तपे ॥ कापिकच्छ्वाथवातसैल्लोहतैलजलैः
स्पृशेत् ॥ कशाभिस्ताडयित्वा वा सुबद्धं
विजने गृहे ॥ रुन्ध्याचेतो हि विभ्रान्तब्र-
जत्यस्य तथा शमम् ।

अर्थ—उन्मादरोगी को पेट भरकर पु-
राना घी वा मांस पान कराके सुखपूर्वक
निर्यातस्थान में बैठायै ऐसा करने से रोगी
की बुद्धि और स्मरणशक्ति ठीक होजाती
हैं और वह होश में आजाता है । अथवा
रोगी के सुहृदजन धर्म और अर्थ के वा-
क्यों द्वारा रोगी को आश्वासन दें कि किसी
प्यारी वस्तु के नाश होनेका संवाद सुना-
वै अथवा कोई आश्चर्योत्पादक वस्तुओं
का दर्शन करावै । कभी २ सरसों का
तेल लगाकर चित्त करके तथा बांधकर घू-
प में डालदेवै । अथवा केंचकी फली,
गरमलोहा, गरमतेल, गरमजल रोगी के श-
रीर के लगावै । अथवा निर्जन घरमें र-
स्सियों से ढ़ढ़ बांधकर कोड़ों की मार ल-
गावै । अथवा उसके विभ्रान्तचित्तको ऐसी
रीति से रोके जिस से उसको शान्ति होवै ।

अन्यप्रयोग ।

सर्पेणोद्धृतदंष्ट्रेण दान्तैः सिंहैर्गजैश्च तम्
त्रासयेच्छस्त्रहस्तैर्वा तस्करः शत्रुभिस्तथा
अथ चाराजपुरुषा विहीनत्वा मुसंयतम् ॥
त्रासयेत्तुर्बधेन न तर्जयन्तो नृपाक्षया । देह
दुःखमयेभ्यो हि परंप्राणभयं महत् ॥ तेन या-
तिशमंतस्य सर्वतो विप्लवंतमनः । इष्टद्रव्य
विनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते ॥ तस्य त-
त्सदृशमाप्तिश्चात्याश्रासः शमनयेत् । का-

मशोकमयक्रोधहर्षेर्प्यालोभसम्भवान् ॥
परस्परप्रतिद्वन्द्वरेभिरेवशमनयेत् ॥

अर्थ—दांत उखाड़े हुये सर्पों से उसे कटवावै, पालतू सिंह और हाथियों से डर पावै, हाथमें शस्त्र लेकर, तस्करों द्वारा वा शत्रुओं द्वारा भय दिखावै । अथवा राजा के कर्मचारी राजाकी आज्ञा लेकर उसे अच्छी तरह बांधकर बाहर ले जाकर खूब मारपीट करें क्योंकि देह के दुःखों के भय से प्राणों का भय अधिक होता है । उसी प्राणभय के कारण उसका विभ्रान्त चित्त स्थिर होजाताहै । जिस अभीष्ट वस्तुके नष्ट होने से मन चलायमान होजाता है, उसको उसीके सदृश वस्तुका दर्शन करनेसे, तथा समझाने और आश्वासन करने से चित्त शान्त होजाता है । जिसका मन काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या और लोभ द्वारा चालित होताहै उस को उसीके विपरीत कारणसे शान्त करे, जैसे क्रोधजन्य उन्माद को हर्ष से, इसी तरह और भी ।

बुद्ध्यादेशंबयःसात्त्व्यदोषकालंबलावलम् ॥ चिकित्सितमिदं कुर्यादुन्मादे भूतदोषजे । देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य तुबुद्धिमान् ॥ वर्जयेदञ्जनादीनितीक्ष्णानिभ्रूरकर्मच । सर्पिष्पानादितस्पेहृदुभैपज्यमाचरेत् ॥ पूजाम्बल्युपहारांश्चमन्त्राञ्जनाविधांस्तथा । शान्तिकर्मैष्टिहोमांश्चजप्यस्वस्त्ययनांनिचावेदोक्तान्निगमांश्चापिमायश्रित्यानिचाचरेत् । भूतानाम

धिपदेवमीश्वरंजगतःप्रभुम् ॥ पूजयन्प्रयतो नित्यं जयत्युन्मादं भयम् । रुद्रस्यममथानामगणालोकेचरन्ति ये ॥ तेषांपूजाञ्चकुर्वाण उन्मादेभ्योविमुच्यते ।

अर्थ—भूत दोषज उन्माद में देश, वय, सात्त्व्य, दोष, काल, बल और अवलंकी परीक्षा करके चिकित्सा करे । देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व इन से किये हुए उन्माद में तीक्ष्ण अञ्जनादि तथा भ्रूरकर्म न करे । तथा घृतपान और मृदु औषध इस मेंहितकारी होती हैं और पूजा, बलिदान, उपहार मंत्र तथा अंजन विधिका प्रयोग करे । शान्तिकर्म, यज्ञ, होम, जप स्वास्तिवाचन तथा वेदोक्त नियम और प्रायश्चित्त का अवलम्बन करे । जगत् के स्वामी भूतनाथ महादेवजी का विधि पूर्वक नित्य नियम से पूजन करता रहै तो उन्मादज भय दूर होजाता है । रुद्र के जो प्रमथ नामक गण संसार में भिचरते रहते हैं उनका पूजन करनेसे उन्माद पास नहीं आताहै ।

बलिभिर्मंगलैर्होमैरौषध्यगदधारणैः । सत्याचारतपोज्ञानप्रदानिनियमव्रतैः । देवगुह्यकविभाणां गुरुणां पूजनेन च ॥ आगन्तुः प्रशमंयातिसिद्धैर्मन्त्रौषधैस्तथा ।

अर्थ—बलिदान, मंगलपाठ, होम, अंगद, औषधधारण, सत्याचरण, तप, ज्ञान, दान, नियम, व्रतादि नियमोंका पालन, देव, गुह्यक, विप्र, गुरुका पूजन, तथा सिद्ध मंत्र और औषधियों द्वारा आगन्तु उन्माद शान्त होजाता है । यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारेचिकित्सिते

उन्मादेतच्चकर्त्तव्यसामान्याद्देतुदूष्ययोः

अर्थ—जो जो चिकित्सा अपस्मार रोग में वर्णन कीजायगी, वही चिकित्सा उन्मादरोग में भी कर्त्तव्य हैं क्योंकि इनदोनों रोगों के हेतु और दूष्य एकही हैं ।

उन्माद के अयोग्यव्यक्ति ।

निवृत्ताभिपमद्योयोहिताशीप्रियतःशुचिः॥

निजागन्तुभिरुन्मादैःसत्त्ववान्नसयुज्यते।

अर्थ—जो मद्य मांसका सेवन नहीं करता है, हित भोजन करता है जितेन्द्रिय और पवित्र रहता है, ऐसे सत्त्ववान् पुरुषके निज और आगन्तु उन्माद नहीं होने पाते हैं ।

उन्मादमुक्तके लक्षण

प्रसादश्चेन्द्रियार्थानांबुद्ध्यात्ममनसांतथा धातूनांप्रकृतिस्थत्वंविगतोन्मादलक्षणम्।

अर्थ—इन्द्रियों के विषय, बुद्धि, आत्मा तथा मन इनकी प्रसन्नता, तथा धातुओं का प्रकृतिस्थ होना ये विगत उन्मादके लक्षण हैं ।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ॥

उन्मादानांसमुत्थानंलक्षणंसंचिकित्सितम् ॥ निजागन्तुनिमित्तानामुक्तवान्भि

पगुत्तमः॥

अर्थ—वैद्यवर आत्रेयने इस अध्याय में निज और आगन्तु भेद वाले उन्मादों की उत्पत्ति, लक्षण और चिकित्सा वर्णन की हैं ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सित

स्थाने उन्माद चिकित्सित-

नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

—:~:—

पञ्चदशोऽध्यायः ॥

अथातोऽपस्मारचिकित्सितं व्याख्यास्याम
इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम अपस्मार रोग की चिकित्सा का वर्णन करेंगे ।

अपस्मार की निरुक्ति ।

स्मृतेरपगमं प्रहुरपस्मारं भिषग्विदः । तमः
प्रवेशवीभत्सचेष्टंभीसत्त्वसंघुवात् ॥

अर्थ—आयुर्वेदज्ञ स्मृति के नाश होजाने को अपस्मार कहते हैं । इस में बुद्धि और मनके संघातित अर्थात् नष्ट होने से अंधकार में प्रवेश हेनिकी सी दशा और भयंकर चेष्टा होजाती है ।

अपस्मार के कारण ।

विभ्रान्तबहुदोषाणामहिताशुचिभोजनाम् । रजस्तमोभ्यांविहतेसत्त्वेदोषावृ
तेहृदि ॥ चिन्ताकामभयक्रोधशोकोद्वेगा
दिभिस्तथा । मनस्यभ्याहतेनृणामपस्मा
रःप्रवर्तते ॥

अर्थ—चलितचित्त, बहुदोषी अहित और अपवित्र भोजी के तथा जिसका सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण द्वारा नष्ट हो गया है, जिसका हृदय दोषों से आवृत है तथा जिसका चित्त चिन्ता, काम, भय, क्रोध, शोक और उद्वेगादिसे व्याप्त है उस के अपस्मार रोग होता है ।

अपस्मारके वेगका रूप ।

घमनीभिःश्रितादोषाहृदयपीडयन्ति ।

दूध और मूत्र डाल देवे । यह अमृत के समान गुणकारी महापंचगव्यनामक घृत है । यह घृत अपस्मार, उन्माद, सूजन, उदररोग, गुल्म, अर्शरोग, पाण्डुरोग, कामला, भगन्दर, अलक्ष्मी, ग्रहरोग, चातुर्थिकज्वर इन सबको नष्टकर देता है ॥

अन्यप्रकारके घृत ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेवच ॥

पुराणघृतमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्माजित्
घृतंसैधवाहिगुभ्यांवापेवात्तेचतुर्गुणे ॥

मूत्रेसिद्धमपस्मारहृद्ग्रहामयनाशनम् ॥

वचासम्पाककैट्यवयःस्थाहिगुरोचकैः ॥

सिद्धं पलकपायुक्तैर्वातश्लेष्मात्मके घृतम् ।

तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥

क्षीरद्रोणे पचेत्तसिद्धमपस्मारविनाशनम् ।

कसेक्षीरेक्षुरसयोः काश्मर्येऽष्टगुणे रसे ॥

कार्पकेर्जीवनीयैश्च घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

वातपित्तोद्भवं क्षिप्रमपस्मारान्नियच्छति ॥

अर्थ—ब्राह्मीका रस, वच, कूट, शंख-पुष्पी इन के साथ में पुराने घृत को पककर के सेवन करे, तो उन्माद, अलक्ष्मी, अपस्मार और पाप्मा दूर होजाती है । संधानमक; हींग इन से चौगुना घी, घी से चौगुना थैल वा बकरे का मूत्र इन को सिद्ध कर के पान करने से अपस्मार, हृद्ग्रह, ग्रहरोग सब शान्त होजाते हैं । वच, अमलता-स; कायकल, बहेडा, हींग, रोचक, [राज-पलांडु] और गूगल इन के साथमें घृतको पक्व करके सेवन करने से वातश्लेष्मात्मक अपस्मार दूर होजाती है । एक प्रस्थ तेर-

एक प्रस्थ घी, जीवनीय गणोक्तद्रव्य एक २ पल, इनको एक द्रोण दूध में पकाकरदे तो अपस्मार नष्ट होवे । दूध और ईख का रस चार २ सेर खंभारी का रस आठगुना; जीवनीय गणोक्त द्रव्य एक २ कर्प, एक प्रस्थ घी इनको पकाकर सेवन करने से वातपित्तोद्भव अपस्मार शान्त होजाता है ॥

अन्यप्रयोग ।

तद्वत्काशविदारीधुकुशवचाथमृतपयः ।

मधुकाद्विपलेकलकेद्रोणे चामलकीरसात् ।

तद्वत्सिद्धो घृतप्रस्थः पित्तापस्मारभेषजम् ॥

अभ्यङ्गः सार्षपतैलवस्तमूत्रचतुर्गुणे ।

सिद्धस्याद्रोशकृन्मूत्रे स्नानोत्सादनमेव च

कटभीनिम्बकद्वजमधुशिशुत्वचारसे ।

सिद्धं मूत्रसमतैलमभ्यङ्गार्थं प्रशस्यते ॥

पलङ्कपावचापथ्यावृश्चिकान्यर्कसर्पपैः ।

जटिलापूतनाकेशीनाकुलोहिगुरोचकैः ॥

लशुनातिरसाचित्राकुष्ठैर्विह्वलिभक्षि-

णाम् । मांसाशिनां यथा लाभं वस्तमूत्रच-

तुर्गुणे ॥ सिद्धमभ्यञ्जनं तैलमपस्मार-

विनाशनम् । एतैश्चैवौषधैः कार्यं धूपनं

सम्प्रलेपनम् ॥

अर्थ—इसीतरह से कांस, विदारी कंद, ईखकी जड़, कुशा इनके क्वाथ में औटाया हुआ दूध देवे । किसी २ पुस्तक में घृत है । यह दूध वा घृत पूर्वोक्त गुणकर्ता है । मुलहटी दो पल, आंवले का रस एकद्रोण इस में एक प्रस्थ पुराना घी पकाकर सेवन करने से पित्तापस्मार दूर होजाता है सरसों के तेल को चौगुने बकरे के मूत्र में औटाकर

मालिश करें । फिर गोबरका उबटना करके गोमूत्र से स्नान करें । कटभी, नीम, कटुवंग और सहजना इनकी छाल का रस तथा गोमूत्र और इमके समानही तेल डालकर औंटावै फिर इससे मालिश करें तौ अपस्मार दूर होवै। गूगल, वच, हरड़, विछवन, आक, सरसों, जटामांसी, पूतना (हरड़) केशी, रास्ना, हॉंग, राजपलंडु, लहसन, आतिरसा (मुलहठी) चीता, कूठ, मांसाहारी पक्षियों की विष्टा जिनकी मिलसकै लाकर तेलसे चौगुना वक्रे का मूत्र डालकर सिद्ध करें। इस तेल का मर्दन करने से अपस्मार जाता रहता है । इन्हीं औषधियों को पीसकर अपस्मार रोगीको घूप देवै वा उसके लेप करें ।

अन्य प्रयोग ।

पिप्पलीलवणशिशुहिगुहिगुशिवाटिकाम्
काकोलीसर्पपान्काकनासाकैडर्यचंदने।
शुनःस्कन्धास्थिनखरान्पशुकांश्चेतिपेप-
येत् । वस्तमूत्रेणपुष्यक्षेप्रदेहःस्यात्सधू-
पनः ॥ अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिरोच-
कैः ॥ उत्सादनंमूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचनम्
खरास्थिभिर्हस्तिनखैस्तथागोपुच्छलोम-
भिः । कपिलानांगवांमूत्रंनावनंपरमंहि-
तम् । श्वगृगालविडालानांसिंहादीनां
चशस्यते ॥ भार्गवचानागदन्तीश्वेता
श्वेताविषाणिका । ज्योतिष्पतीनागद-
न्तीपादोत्थामूत्रपेपिताः ॥ योगास्त्रयोऽ-
तःपड्विन्दून्पञ्चवानावयोद्विपक् । त्रि-
फलाव्योपपीतद्वयवक्षारफणिञ्जकैः ॥
श्यामापामार्गकारञ्जफलैर्मूत्रैऽथवस्तजे।

साधितंनावनंतैलमपस्मारविनाशनम् ॥

अर्थ—पीपल, संधानमक, सहजना, हॉंग
गोंदनी के पत्ते काकोली, सरसों, कैंआ टोंटी,
कायफल, रक्तचन्दन, कुत्ते का कंधा, नख,
पसली इनको पुष्यनक्षत्र में लाकर वक्रेके
मूत्र में पीस लेवै इसका लेप करने से वा घूप
देने से अपस्मार दूर होजाता है । काली
तुलसी, कूठ, हरड़, केशी, राजपलण्डु,
इनको गोमूत्र में पीसकर उत्सादन करें तथा
गोमूत्र में धोलकर इनके द्वारा सेचन करें ।
चमगिड़ड़ की विष्टाका लेप करै अथवा जले
हुये वक्रेके लोम, गंधकी हड्डी, हाथीके नख
वा गौ की पूंछ के लोमों का लेप करें ॥ क-
पिला गौके मूत्र की नस्य परमहितकारी होती
है ॥ इसी तरह कुता, सिंगटा, बिल्ली और
सिंहादिक जीवों के मूत्रकी नस्य भी उत्तम
होती है । भांडगी, वच, नागदन्ती, तथा दो-
नों प्रकार की अपराजिता और भेड़ासिंगी
तथा मालकांगनी और नागदन्ती इन तीनों
प्रयोगों को गोमूत्र में पीसलेवै फिर इसमें से
पांच वा छः विन्दुनाक में डालै । त्रिफला,
त्रिकुटा, दारुहल्ली, जवाखार, फणिञ्जक,
निसोध, आंगा, कंजा के फल इनको पीस
कर वक्रे का मूत्र और तेल अग्निपर चढ़ादे ।
पक होने पर इसकी नास लेवै तो अपस्मार
दूर होजाता है ॥

पिप्पलीवृश्चिकालीचकुपुंचलवणानिच ।
भार्गवचूर्णितंनस्तःकार्थ्यप्रथमनपरम् ॥
कायस्थानशारदान्मुद्गान्मुस्तोशीर्यवां
स्तथा ॥ सव्योपान्स्तमूत्रेणपिष्टवाच-

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुर्कुर्वत्यपस्मारंदोषाः प्रकुपितायथा ॥
सामान्यतः पृथक्त्वाच्च लिङ्गं तेषां च भेषज
म् ॥ महागदसमुत्थानं लिङ्गं चोवाच सौप
धम् ॥ मुनिर्व्याससमासाभ्यामपस्माराचि
कित्सिते ॥

अर्थ—इस अपस्मार चिकित्सित अध्याय
में पुनर्वसुने अपस्मार के हेतु, प्रकुपित दोषों
के द्वारा रोगकी उत्पत्ति, तथा सामान्य री-
ति से पृथक् पृथक् उसके लक्षण और औ-
षध, महागदकी उत्पत्ति लक्षण और औ-
षध ये सब बातें संक्षिप्त और सविस्तर उ-
भय प्रकार से वर्णन की हैं ॥

इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचि-
तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहिताय
चिकित्सितस्थानेऽपस्मारचिकित्सितं
नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

— () :—

षोडशोऽध्यायः

अथातः क्षतक्षीणचिकित्सितव्याख्यास्याम
इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम क्षतक्षीण रोगोंकी चिकित्सा
का वर्णन करेंगे ।

उदारकीर्तिर्ब्रह्मर्षिरात्रेयः परमार्थवित् ॥
क्षतक्षीणचिकित्सार्थमिदमाह चिकित्सि-
तम् ॥

अर्थ—उदारकीर्ति, ब्रह्मर्षि और परार्थ
वित्, आत्रेयने क्षतक्षीण की चिकित्सा के
निमित्त यह अध्याय वर्णन किया है ॥

क्षतरोगकाहेतुः

धनुषपायस्य तोऽत्यर्थं भारमुद्धहतो गुरुम् ॥
पततो विषमो चेभ्यो युध्यमानस्य चापिकैः
वृषंहयं वा धावन्तं दम्प्यं वान्यं निवृण्णतः ॥
शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान् क्षिपतो निव्रतः
परान् ॥ अधीयमानस्यात्पुच्छं दूरं वा ब्रज
तोद्भुतम् ॥ महानदीं वा तरतो गजैर्वासह
धावतः ॥ सहस्रोत्पततो दूरं तूर्णं चातिप्र-
वृत्ततः ॥ तथान्यैः कर्मभिः कुरैर्भृशम-
भ्या इतस्य वा ॥ विक्षते वक्षसि व्याधिर्व

लवान् समुदीर्यते ॥

अर्थ—धनुष लेकर अत्यन्त डोलना
बहुत भारी बोझको उठाना, उंचे नीचे
स्थानोंसे गिर पडना, अधिक बलवान् के
साथ युद्ध करना, दौड़ते हुये घेरे वा घेरे
के रोकने का प्रयत्न करना, शिला, काठ
वा पत्थर का मुद्गर फेंकना और उनसे
शत्रुओंका मारना, बहुत चिल्ला चिल्लाकर
पडना, जोरसे दूरतक भागते हुए चला
जाना, गम्भीर बड़ी नदी में तैरना, हाथी
घोड़ेके साथ दौड़ना; सहसा उछलकर दूर
जा पडना, वेगसे नृत्य करना वा और
और काठिन्यकोंको फरना । इन सब बातों
से आहत होकर वक्षस्थल में घाव हो जाता
है तब बलवान् व्याधि का उदय होता है।
क्षीणरोगकाहेतुः ।

स्त्रीपुत्रातिप्रसक्तस्य रुक्षाल्पप्रमिताशिनः
अर्थ—रुक्ष, अल्प और थोड़ा खानेवाला
मनुष्य जो स्त्रियोंसे अत्यन्त संगम करता है
उसके क्षीणरोग होता है ।

क्षतक्षीणकेलक्षण ।

उरोरानिरुज्यतेतस्यभित्तयेऽथविदह्यते ॥
मपीड्यतेततःपार्श्वेऽभ्युत्थ्यङ्गमवेपते ।
कृमादीर्यवल्बर्णोरुचिराग्निश्चहीयते ॥
ज्वरोव्यथामनोदैर्न्यविद्भेदोऽग्निवधस्त
थादुष्टःश्यावःसदुर्गन्धःपीतोविग्रंथितो
बहुः । कासमानस्यचश्लेष्मासरक्तःसंम
वर्त्तते । क्षतःक्षीयतेत्यर्थं तथाशुक्रौ

जसोक्षयात्

अर्थ—जिनके क्षतक्षीण रोग होतेहैं
उनके हृदयमें वेदना, भेदन और दाह होता
रहताहै पसलीमें पीडा, अंग का शुष्क होना
और शरीरका कांपना ये बातें भी होतीहैं ।
क्रम २ से वरु, वर्ण रुचि, और अग्निक्षीण
होती चलीजाती है । ज्वर, व्यथा, मनमें
दीनता, पुरीषभेद और अग्निमान्य होता है।
खांसीके साथ विगडा हुआ, कुछ काला,
दुर्गंध युक्त, पीतवर्ण, गांठदार, बहुतसा कफ
रुधिर निकलताहै ॥ इस प्रकार क्षतयुक्त
प्राणी अत्यन्त क्षीण होजाता है और शुक्र
आदि के क्षीण होने से भी प्राणी ऐसे ही
क्षीण होजाता है ॥

क्षतक्षीण के वैशेषिकलक्षण ।

अव्यक्तलक्षणंतस्यपूर्वरूपमितिस्मृतम् ।
उरोरुक्कशोणितश्छर्दिःकासोवैशेषिकः
क्षते । क्षीणेसरक्तमूत्रत्वंपार्श्वेऽपृष्ठकाटिग्रहः ॥

अर्थ—पूर्वोक्त समस्त लक्षण जब तक
अस्पष्ट हों तब तक उनको इन दोनों रोगों
के पूर्वरूप कहते हैं । क्षतरोग में वक्षःस्थल
में पीडा रुधिरकी, वमन, और खांसी होती

है । क्षीणरोग में रुधिर सहित मूत्र, पसली
पीठ और कमर में जकडन होतीहै ।

साध्यासाध्यलक्षण ।

अल्पलिंगस्यदीप्ताग्नेःसाध्योबलवतोनरः
गतेसम्बत्सरेयाप्यःसर्वलिंगतुवर्जयेत् ॥

अर्थ—दोपोंका अल्प लक्षण, अग्निकी
तीव्रता और रोगीका बलवान् होना, जब ये
बातें होतीहैं तब उक्त रोग साध्य होतेहैं ।
एक वर्षके पुरानेरोग याप्य होतेहैं और जि-
न रोगोंमें पूर्ण लक्षण होजाते हैं वे
असाध्य होतेहैं ॥

क्षतमेंचिकित्सा ।

उरोमःवाक्षंतलाक्षांपछसामधुसंयुताम् ।
सद्यप्यपिवेर्जीणपयसाद्यात्सशर्करम् ॥
पार्श्ववस्तिरुज्ज्वाल्येपित्ताग्निस्तांसुरायु
ताम् । भिन्नविट्कःसमुस्तातिविपांपाठां
सवत्सकाम् ॥ लाक्षांसर्पिमधूच्छिष्टंजीव
नीयगणंसिताम् । त्वक्क्षीरीसम्मितक्षीरे
पक्त्वादीप्तानलःपिबेत् ॥ इक्ष्वालिफवि
सग्राथिपक्षकेसरचन्दनैः । शृतंपयोमधु
युतंसन्धानार्थंपिबेत्क्षती ॥

अर्थ—हृदयमें घावका अनुमान होनेपर
लाख को दूध और शहदके साथ तत्काल
पान करावे और औषधके जीर्ण होनेपर
दूध और चीनीके साथ भोजन करावे ॥
यदि पसली और वस्तिमें वेदना होती हो
और पित्ताग्नि अल्प पडगई हो तो लाख
को मधमें मिलाकर पान करावे । मक्खके
फटनेपर मोथा, अतीस, पाठा और इन्द्र
जी का काथ देवे । अग्नि के तीव्र होनेपर

दाख, घी, मोम, जीवनीय गणोक्त द्रव्य
मिथी, वंशलोचन इन का समान भाग ले-
कर दूध में औटाकर पीये । क्षत के संधान
करने के लिये इक्ष्वाकिक, फमल की जड़,
नागकेसर, रक्तचन्दन इनको दूध में औटा-
कर शहत डालकर पीये ॥

यवानांचूर्णमादायक्षीरसिद्धघृताप्लुतम् ।
ज्वरदाहसिताक्षौद्रशक्नुन्यापयसापिबे-
त् ॥ कासीपर्वास्थिशूलचालिह्वान्तसघृत
माक्षिकाः । मधुकमधुकक्षाक्षीरसिद्धघृताप्लुतम् ॥

पिप्पलीबलाः ॥

अर्थ....ज्वरदाह में जाँके चून को दूध
में सिद्ध करके बहुतसा घी डालकर पीये
अथवा मिथी शहत और सत्तूको मिलाकर
दूध के साथ पीये, जो रोगी के खांसी होवे
अथवा पोटल और हड्डियों में वेदना हो तो
महुआ, मुलहठी, दाख, वंशलोचन, पीपल
और खैरटी, इनके चूर्ण को घी और शहत
में सानकर सेवन करे ।

एलादि बटिका ।

एलापत्रवचोर्ध्वाक्षाःपिप्पल्यर्धपलंतथा-
सितामधुकवज्जूरमृद्धीकाधपलोमिताः ॥
संचूर्ण्यमधुनायुक्तागुलिकाःसंमकल्पयेत् ।
अशतुल्यास्ततश्चैकामभक्षयेन्नादिनेदिने-
कासंश्वासंज्वरंहिक्कांछर्दिमूर्च्छामिदंभ्रम-
म् ॥ रक्तनिष्टीवनंतृष्णांपार्श्वशूलमरो-
चकम् । शोषप्लीहाद्व्यावातंश्चस्वरभेदंक्षत
क्षयम् ॥ गुलिकातर्पणावृष्यारक्तपित्त-
ञ्चनाशयेत् ।

अर्थ—छोटी इलायची, तेजपात, दाखचीनी

इनमें से प्रत्येक आधे २ तोला, पीपल दो,
तोला, मिथी, मुलहठी, खजूर और दाख
प्रत्येक चार तोला, इन सब को पीसकर
शहत में तोले तोले भरकी गोली बनालेवे
और प्रति दिन एक गोली का सेवन करे
तो खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, यमन
मूर्च्छा, मद, भ्रम, रक्तनिष्टीवन, तृष्णा,
पार्श्वशूल, अरुचि, शोष प्लीहा, आठ्वावात
स्वरभंग, क्षत, क्षीणता और रक्तपित्त इत-
ने रोग नष्ट होजाते हैं । येगोली तुलिकर्चा
और वृष्य होती हैं ।

रक्तेऽतिरुद्धेदक्षाण्डंयूपेस्तोयेनवापिबेत् ॥

चटकाण्डरसंवापिरक्तवाद्यागजाङ्गलम् ।

चूर्णपौनर्नवैरक्तशालितण्डुलशर्करम् ॥

रक्तप्लीवीपिबेत्सिद्धद्राक्षारसपयोघृतैः ।

मधुकमधुकक्षीरसिद्धवातण्डुलीयकम् ।

मृदवातस्त्वजामेदःसुरागृह्यंससंन्धवमृक्षा

मःक्षीणःक्षतोरस्कस्त्वानिद्रःसत्रलेऽनले ॥

शृतक्षीररसेनाद्यात्तक्षौद्रघृतशर्करम् ॥

अर्थ—रुधिरके अत्यन्त निकलनेपर मु-
नो के अंडे, या चिलियाके अंडों का रस
वा बकरा या जांगल जीवों का रक्त यूप वा
जल के साथ पीये । साँठ, लाल शाली चा-
वल, शर्करा, द्राक्षारस दूध और घी इनको
मिलाकर पानेसे रुधिर बन्द होजाता है ।
महुआ और मुलहठीको दूधमें औटाकर अ-
थवा खोलाई की जड़को दूधमें औटाकर
पीये । मृदवातरोगी बकरके मेदको मुगों
गर्म करके संधानकर डालकर पीये ॥
घातकी अधिकता से जब क्षत रोगी रुधिर

और क्षाण हाजाय और निद्रा जाती रहै
तो औंटे हुए दूध के साथ मांसरसका सेवन
करै उसमें शहत, घी और चीनीभी डाललै
शर्कराञ्चयवक्षौद्रजविकर्षभकोमधु ॥
शृतक्षीरानुपानं चालिद्यात्क्षीणः क्षतः क्रुशः
क्रव्यादमांसनिर्ग्रहं घृतभृष्टं पिबेच्च सः ।
पिप्पलीचौद्रसंयुक्तं मांसशोणितवर्द्धनम्
न्यग्रोधोदुम्बराश्च त्वष्टशालम्रियगुभिः ॥

तालमस्तकजम्बूत्वक्पियालैश्च सपक्वैः ॥

साश्वकर्णैः शृतात्क्षीरादद्याज्जातेन सपि
पा । शालयोदनक्षतोरस्कः क्षीणशुक्रश्च
मानवः । यज्ज्याद्वानागवलयोः काथेक्षी-
रसमेघृतम् ॥ पयसापिप्पलीवांशीकल्क
सिद्धं क्षते शुभम् । कोललाक्षारसेतद्रत्नी
राष्ट्रगुणसाधितम् । कल्कैः कट्वद्गदावी
त्यग्वत्सकत्ववफलैर्घृतम् ।

अर्थ—जब क्षतक्षाण रोगी क्रुश होजाय
तब वह शर्करा, जोका चून और शहत अ
थवा जांवक, ऋषभक और शहत को चाट
कर ऊपर से गरम दूध पौवै । मांस और
रुधिरकी वृद्धिके लिये मांसाहारी पशुओं के
मांस रसको घी में छोककर पीपल और श-
हन मिलाकर सेवन करै । अथवा वड, गुलर
पांपल, कांकर, म्रियंगु, ताडकाछाल, पियाल
जामनकाछाल, पञ्जाप, अश्वकर्ण (शालका
भेद) इनको डालकर दूध औंटावै, इस दूध
में से घृत निकाल कर शाली चावलों का
भात सेवन करै तो वक्षःस्थल का क्षत और
शुक्रकी क्षीणता दूर होजाताहै । अथवा
मुटहरी और नागवलाके काथ में दूध और

घी समान भाग डाले तथा क्षीर काकोली,
पीपल और वंशलोचन डालकर पान करै
तो क्षतरोग दूर होजाताहै । अथवा वेर और
लाक्षारस का समान भाग घी और दूध में
औंटाकर पूर्ववत् सेवन करै । अथवा सोना-
पाठा, दारुहलदी की छाल, कुडाकी छाल
इनको घृतसे अठगुने दूध में औंटाकर से-
वन करै ।

अमृत प्राशघृत ।

जीवर्कषभकौवीरांजीवन्तीनागरशर्दीम् ।
चतस्रःपणिनीमैदकाकोल्याद्रेनिदिग्धिके
पुनर्नयेद्रेमधुक्तं सात्पुस्तं शतावरीम् ॥
क्रुद्धिपरुषकं भार्गीमृक्षीकां वृहती तथा । श्रद्धा
टर्कीतामलकीं पयस्यां पिप्पलीं विलाम् । वद
राक्षोदत्त्वर्ज्जूरचातामाभिषुकाप्यपि ।
फलानि चैव मार्दनि कल्कान् दुर्वीतकापिका
न् । धात्रीरमविदारीक्षुलागमांसरसं पयः
कुट्यात्प्रस्थोन्मितेन घृतप्रस्थं विपाचयेन्
प्रस्थार्द्धमधुनः शीते शर्कराद्वैतुलांतथा ।
द्विकार्पिकाणि पंचलाद्रेमत्पद्मरिचानि च ॥
चूणितानि विनीयास्मालिह्वन्मात्रांसदा
नरः । अमृतप्राश्यमित्येतन्नराणाममृतघृतम्
सुधामृतरसं प्राश्य क्षीरमांसरसाग्निना नष्ट
शुक्रक्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकपितान् । स्त्री
प्रसक्तान् क्रुशान् वर्णस्वरहीनांश्च हृदयेत् ।
कासद्विक्लाञ्छरस्यासदा हृत्प्लासपित्तनु
त् । पुत्रदंयमिगूर्च्छाद्वयोनिमूत्रामेयापहम्
अर्थ—जीवक, ऋषभक, क्षीरकाकोली,
जीवन्ती, सोंठ, कचूर चारोपणी [शालिः
पणी, पृथिवीपणी, मापपणी, मुद्गपणी]

मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, छो
 टी कटेरी, बड़ीकटेरी, सफेदसांठ, लालसां-
 ठ, मुलहटी, केंच, सितावर, ऋद्धि, फालसा,
 भ्रांडगी, दाख, बड़ी कटेरी, सिंघाड़ा, भूम्यां
 बला, विदारीकन्द, पीपल, खैरटी, बेर अ-
 म्बरोट, खजूर, बदाम, पिस्ता, तथा अन्य ऐसे
 ही फलोंको एक २ कर्प लेकर पीसलेवै ॥
 आंवलेका रस, विदारीकारम, ईखका रस,
 यकरोका मांमारस, दूध प्रत्येक एक २ प्रस्थ
 लेकर एक प्रस्थ घी डालकर पकावै, ठंडी होने
 पर आधा प्रस्थ शहत, आधा तुला शर्करा
 तथा तेजपात, इलायची, दाउचीनी, काली
 मिर्च प्रत्येक दो दो कर्प लेकर चूर्ण कर
 के मिठांदेवै । जो मनुष्य इस अमृतप्राश
 नामक घृत का प्रति दिन ठीक प्रमाण से
 सेवन करता है, उमे यह अमृतके समान
 गुणकारी है ॥ इसपर दुग्ध और मांसरस
 का अनुपान करै । इसके सेवन से शुक्रश-
 य, क्षतक्षीणता, दुर्बलता व्याधिसे कर्प-
 ता, स्त्री प्रसंग से कृशता, वर्णहीनता
 और स्वरहीनता ये सब नष्ट होजाते हैं ।
 तथा खांसी, हिचकी, ज्वर, स्वास, दाह,
 तृष्णा, रक्तापित्त, वमन, मूर्च्छा, योनिरोग,
 भूत्ररोग भी नष्ट होजाते हैं ॥ इसके सेवन
 से पुत्र की उत्पत्ति होती है ।

स्वदंष्ट्रादिघृत ।

स्वदंष्ट्रोशीरमज्जिग्रावलाकाशमर्याकट
 णम् ॥ दर्भमूलं पृथक्पणीपलाशर्षभकौ
 स्थिराम् । पालिकंसाधयेत्तेपांरसेक्षीर
 बहुगुणे ॥ कल्कैः स्वगुप्ताजीवन्तमिदं कर्प-

भजीवकैः ॥ शतावर्यृद्धिमृद्धीकाशर्करा
 श्रावणीविसैः ॥ प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपि-
 त्तद्वद्रवशूलनुत् । मूत्रकृच्छ्रममेहार्शः कास
 शोषक्षयापहः ॥ धनुः स्त्रीमद्यभाराध्वस्त्रि
 नानां वलमांसदः ।

अर्थ—गोखरू, खस, मजीठ, खैरटी
 खंभारी, कतृण, दाभकी जड़, पृथक्पणी,
 ढाक, ऋषभक, शालिपर्णी, इनमें से प्र-
 त्येकको एक २ पल लेकर इनका काथ
 करै । चौथाई शोष रहनेपर चौगुना दूध,
 तथा केंच, जीवन्ती, मेदा, ऋषभक, जीवक
 शतावरी, ऋद्धि, दाख, शर्करा, श्रावणी,
 कमलनाल, इनका कल्क डालकर एकप्रस्थ
 घृत सिद्ध करै । यह घृत वातापित्त, इच्छू-
 ल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्शरोग, खांसां,
 शोष, क्षयी इनको दूर करता है । जो ध-
 नुष, स्त्रांसेवन, मद्यपान, भारवहन, मार्ग
 भ्रमण से व्याधित है उसको बल और मांस
 का बढ़ानेवाला है ।

मधुकाष्ठपलं द्राक्षाप्रस्थव्याधे घृतं पचेत् ॥
 पिप्पल्यप्लवलेककेप्रस्थसिद्धे च शीतले ।
 पृथगप्लवलेक्षौद्रशर्कराभ्यां च मिश्रयेत् ॥
 समंश्चक्षुक्षतक्षीणैरक्तगुल्मे पुतादितम् ॥

अर्थ—मुलहटी आठ पल, दाख एक
 प्रस्थ, पीपल आठपल, इनके काथमें एक
 प्रस्थ घृत पक करै ठंडा होने पर आठपल
 शहत और आठपल शर्करा मिला लेवै फिर
 इसमें समान भाग सत्तू मिलाकर मात्रावत्
 सेवन करै तो क्षतक्षीणता और रक्तगुल्म
 दूर होजाते हैं ।

धान्यादिघृत ।

धात्रीफलविदारीक्षुजीवनीपरसादघृतात्
छागगोपयसोश्वेवसप्तस्थानपचोद्विपक्व
सिद्धशीतोसिताक्षौद्राद्विप्रस्थांविनयेत्ततः ॥
यक्ष्मापस्मारपित्तास्रकासमोहक्षयापहम् ।
वयःस्थापनमायुष्यमांसशुक्रबलप्रदम् ॥

अर्थ—आंवलेका रस, विदारीका रस ई-
खंका रस, जीवनीय द्रव्योंका रस, घृत,
वकरीका दूध, गौका दूध, येसब एक एक
प्रस्थ लेकर पकावें । जब टंडा होजाय तब
उसमें एक २ प्रस्थ मिश्री और शहत-
मिलादेवें । इस घृतका सेवन करने से य-
क्ष्मा, अपस्मार, रक्तपित्त, खांसी, मोह और
क्षयरोग दूर होजाते हैं । यह घृत वयः
स्थापन कर्त्ता, आयुवर्द्धक, मांसवर्द्धक, शु-
क्रोत्पादक और बलकारक होता है ॥

घृतंतुपित्तेऽभ्याधिकेलिह्येद्वातेऽधिकेपिवेत्
लीहंनिर्वापयेत्पित्तमल्पत्वाद्धान्तिनानिल-
म् ॥ आक्रामत्यनिलं पतिमूष्माणानिरुण-
द्धिच । क्षामशीणकृशाङ्गानामेतायेवघृता-
निच ॥ त्वक्क्षीरीशर्करालाजचूर्णैः पा-
नानियोजयेत् । सर्पिर्गुडान्समभ्यंशान्
जग्ध्वादद्यात्पयोनुच ॥ रेतोवीर्य्यबलं
पुष्टितैराशुतरमाप्नुयात् ॥

अर्थ—इस क्षतक्षीण रोगमें पित्तकी अ-
धिकता होने से घृतको चाटें, वातकी अ-
धिकता में घृतका पानकरें, क्योंकि चाटा-
हुआ घृत थोड़ा होनेके कारण पित्त को
शान्त करदेताहै किन्तु वायु नष्ट नहीं करने
पाता है । पिपाहुआ घृत वायुको नष्ट कर
देता है और ऊष्मा को रोकदेताहै ॥ दुर्बल,

क्षीण और कृश मनुष्योंको ऊपर कहेहुये
घृत वंशलोचन, मिश्री और लाजचूर्ण डा-
लकरदेवें ॥ सर्पिर्गुडमें मधु मिलाकर देवें
ऊपर से दूधका अनुपान करावें, तौ रोगी
शीघ्रही शुक्र, वीर्य, बल और पुष्टि से युक्त
होजाता है ॥

सर्पिर्गुड ।

बलांविदारीह्रस्वपञ्चमूर्लीपुनर्नवाम् ।
पञ्चानांक्षीरिवृक्षाणांशुद्धामुत्प्यंशकाम
पि ॥ एपांकपायेद्विषीरेविदार्य्याजरसां
सिकोजीवनीयैः पचेत्कल्कैरक्षमात्रैघृताढ-
कम् ॥ सितापलानिपूतस्मिन्शीतेद्वा
त्रिंशतंक्षिपेत् ॥ गोधूमपिप्पलीवांशचू-
र्णमृद्गाटकस्यच । सक्षौद्रकुडवांशेनतत्
सर्वस्वजमूर्च्छितम् ॥ सत्यानंसर्पिर्गुडान्
कृत्वाभूर्जपत्रेणवेष्टयेत् । तान्जग्ध्वापलि-
कान्क्षीरमयवानुपिवेत्कफे । शोषेकासे
क्षतेक्षीणश्रमस्त्रीभारकापितः ॥ रक्तनिष्ठी-
वनेतापेपीनसेचोरसिस्थिते ॥ शस्ताः
पार्श्वशिरःशूलेविभेदेस्वरवर्णयोः ।

अर्थ—खैरटी, विदारीकन्द, लघुपंचमूल
साठ और पांचों क्षीर वृक्ष, ये प्रत्येक एक
एक पल लेकर इनका काथ करें ॥ फिर
इस काथमें काथसे दूना दूध, विदारी का
रस, वकरीका मांसरस और घृत एक एक
आढक लेवें और इसी में जीवनीय, गणोक्त
द्रव्य दो दो तोले डालदेवें । जब पकाते
पकाते घृत शेष रहजाय तब छान कर
टंडा होने पर वर्तीसपल मिश्री डालदे-
वें और गेहू, पीपल, वंशलोचन, मिवाड़ा,

ज्ञाता, प्रवर, पुनर्वसु ने निज आगन्तुक, एकांगज, सर्वांगज, शोथों के वातादि दोषों से किये हुए तीन भेद वर्णन किये ।

निजशोथके कारण ॥

धृद्धामपामाभक्तकृशावलानांक्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा । दध्याममृच्छाकविरोधिदुष्णरोपमृष्टान्ननिपेवणंच ॥ अर्शास्यचेष्टानंचदेहशुद्धिर्मर्मोपघातोविपमामसूतिः । मिथ्योपचारःप्रतिकर्मणाञ्च निजस्येहतुःश्वययौपदिष्टः ॥

अर्थ—संशोधन किया, रोग और निराहार रहनेसे जो मनुष्य कृश और दुर्बल होगये है उनके क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और गुरु, पदार्थों के सेवन से, दही कच्चा-पदार्थ, शाक, विरोधी अन्न, दुष्ट भोजन, विषसंमृष्ट भोजन के अत्यन्त करने से अर्शादि रोगों से, चेष्टा न करनेसे, देहकी शुद्धि न होने से, मर्म में चोट लगने से, विषमरीति से प्रसूति होने के कारण, शोधन क्रियाओं के मिथ्या उपचार से निज शोथ उत्पन्न होता है ।

आगन्तु के लक्षण ।

वाह्यास्त्वचोद्भूतपिप्पिताभिघातः ।

फाण्डाश्मशस्त्रान्यशनोधिपाद्यैः ॥

अर्थ—लकड़ी पत्थर, शस्त्र, अग्नि, वज्र विष आदिकी चोट बाहरकी त्वचा पर लगने से आगन्तुशोथ होता है ।

शोफके भेद ।

आगन्तुहेतुःत्रिविधोनिजश्च ।

सर्वादिगात्रावयवाश्रितत्वात् ॥

अर्थ—आगन्तुनिमित्तक तथा तीन प्रकार की निजशोफ सर्वांग अर्द्धांग या अर्द्धांग अंगावयव का आश्रय लेकर उत्पन्न होती है ।

वातिकशोथ का हेतु ।

वाह्याःसिराः प्राप्ययदाकफासृकरूपिताः निसंदूषयतीहवायुः ॥ तैर्वद्धमार्गःसतः दाविसर्पन्नुत्सेधलिङ्गंश्वयधुङ्करोति ॥

अर्थ—वायु जब बाहरकी शिराओंका ग्रहण करके कफ, रक्त और पित्तको दूषित करती है, तब कफादिके द्वारा वायुके बाहर निकलने का मार्ग बन्दहोजाता है, तब सम्पूर्ण शरीर में फैलती हुई शोफको उत्पन्न करती है । देह के किसी भागके फूल जाने का नाम शोथ है ।

नामपरत्वशेथों के भेद ।

उरःस्थितैरूर्ध्वमधस्तुवायोः स्थानस्थि-
तैर्मध्यगतैस्तुमध्ये ॥ सर्वांगैःसर्वगतैः
कचित्स्थैर्दोषैःकचित्स्यात्स्वयधुस्त-
दाख्या ॥

अर्थ—दोषों के ऊर्ध्वस्थान में स्थित होनेसे देह के ऊपर छे भागों में सूजन होती है, इसी तरह नीचे के अवयवोंमें स्थित होनेसे नीचे और बीच में स्थित होनेसे मध्य देह में सूजन होती है । दोषों के सम्पूर्ण देह में विचरने से सर्वांगगामी शोफ होती है तथा शरीर के जिस २ विभागमें दोष स्थित होकर सूजनको उत्पन्न करते हैं वह सूजन उती स्थान विशेष के नामसे कहलाती है । ऊष्मातयास्याद्वधुः शिराणा मायास्त इत्येवचपूर्वरूपं ॥ सर्वास्त्रिदोषोऽधिक

दोषलिंगैस्तत्संज्ञमभ्येतिभिपकृजितं च ।
अर्थ—सूजन उत्पन्न होनेसे पहिले देह में गरमी और दाह होता है, नसें फूल जाती है, सब प्रकारकी सूजन त्रिदोष से होती है, इन में जिस दोषकी अधिकता होती है, उसी के नाम से वह सूजन कहलाती है और उसी प्रधान दोष पर दृष्टि रखकर चिकित्सा की जाती है ।

शोफके सामान्यलक्षण ।

सगौरवंस्यादनवस्थितत्वं । सोत्सेधमु
प्याथशिरातनुत्वम् । सलोमहर्पांगविवर्णता
च सामान्यलिंगाश्च यथोऽभिदिष्टम् ॥

अर्थ—भागपन, चंचलता, ऊँचापन, गर्मी, नसों का पतलापन, लोमहर्षण, अंग की विवर्णता, ये सब सूजन के सामान्य लक्षण हैं ।

वाताधिक्यशोफ के लक्षण ।

चलस्तनुत्वकूपरूपोऽरुणोऽशितः सुषुप्तिह
पीत्तिद्युतो निमित्ततः ॥ प्रशाम्यति प्रोन्न
मतिमपीदितो । दिवाचली च श्वयथुः
समरिणात् ॥

अर्थ—वायुकी अधिकता से सूजन स्थानान्तर में जाती रहती है, खाल पतली पड़ जाती है, और उसका वर्ण पुरुष, लाल या काला पड़ जाता है सूजनकी जगह सुन्न, रोमाञ्चित और वेदनायुक्त होती है, हेतु विपरीत औषध से ये शान्त हो जाती है । दवाने पर फिर ऊँची हो जाती है, दिन में इसका वेग बढ़ जाता है ॥

पित्ताधिक्यशोफके लक्षण ।

मृदुःसगन्धोऽसितपीतरागवान् । भ्रमज्व

रस्वेदतृषामदान्वितः । यउप्यतेऽस्पर्शस-
होऽशिरागकृत्सपित्तशोथोभृशदाहपाकवान् ।

अर्थ—पित्ताधिक्य शोफ कोमल, गन्ध युक्त, काली, पीली या लाल होती है इसके होने से चक्कर, ज्वर, पभीना, तृषा, और भ्रम होता है ॥ इस सूजन में हाथ लगाना बुरा माँकूम होता है, आँखें बाल पड़ जाती हैं, दाह और पाक बहुत होता है ।

कफाधिक्यशोफके लक्षण ।

गुरुःस्थिरः पाण्डुरोऽरुचिः कान्वितः प्रसेकानि
द्रावमिव हिमानीकृत् ॥ सुकृच्छजन्मप्रशयो
निपीडितो न चोन्नमेद्रात्रिवलीकफान्वितः ।

अर्थ—कफाधिक्य शोफ भारी, अचंचल और पांडुरंगका होता है, इसके होने से अन्नमें अरुचि, लार टपकना, निद्रा, वमन और मंदाग्नि होती है, इसके उत्पन्न होने और शान्त होने में बड़ी कठिनता होती है दाबने पर फिर उठती नहीं है रात्रिके समय इसका वेग बढ़ जाता है ।

असाध्य शोफके लक्षण ।

कृशस्य रोगैरवलस्य यो भवेदुपद्रवैर्वा वा मि
पूर्वकैर्युतः । महार्तिमर्मानुगतोऽथ राजि-
मान्परिस्रवन्मीमन्बलश्च सर्वशः ॥

अर्थ—कृश मनुष्यकी, रोगसे दुर्बल मनुष्य की, वमनादि उपद्रवों से युक्त सूजन, मर्म स्थान की सूजन, रेखाओं की सूजन सावयुक्त सूजन और हीनबल पुरुष की सूजन असाध्य होती है ।

साध्य शोफके लक्षण ।

अहीनर्मांसस्य एकदोषजनोऽवलस्तः ।

स्यसुखःसप्ताधने । निदानदोषतुविपर्यय
यक्रमैरुपाचरेत्तवलदोषकालवित् ॥

अर्थ....जिसका मांस क्षीण न हुआ हो
उन्से बलवान् व्यक्ति की एक दोष से उत्प-
न्न हुई नवीन-सूजन सुख साध्य होती है ।
बल, दोष और काल को जाननेवाले वैद्य
को उचितहै कि इस की चिकित्सा निदान,
दोष और ऋतुकी विपरीततासे करे ।

निकित्साक्रम ॥

अधामज्जलंघनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुत्त्व-
णदोषमादितः । शिरोगतंशीर्षविरेचनैर-
धोविरेचनैरूर्ध्वह्रैस्तथोर्ध्वजम् ॥ उपा-
चरेत्स्नेहगतविरुक्ष्णैःप्रकल्पयेत्स्नेहवि-
धिञ्चरुक्षजे । विवद्धाविट्केनिलजेनिरु-
हणंघृतंतुपित्तानिलजेसतित्तकम् ॥ प-
यश्चमूर्च्छारतिदाहतपितेविशोधनीयेतुस-
मूत्रमिष्येत । कफोत्थितंश्चारकट्टणसंयु-
तःसम्पूतकासवयुक्तिर्भिज्येत ॥

अर्थ — आम से उत्पन्न सूजन को लंघन
और पाचन से, उत्त्वण दोष वाली सूजन
को विशोधन द्वारा, अधोगामी शोफ को
दस्त कराके, उर्ध्वाग शोफको वमन करा-
के, घृतको अधिक सेवन से उत्पन्न शोथको
विरुक्षण क्रियासे, रुक्षज शोफको स्नेह
विधिसं, जीतने का उपाय करे । विवन्धयु-
क्त वातज शोफ को निरुहण वस्ति से, वा-
त पित्तज शोफ को तित्तक-घृत से, विजय
करे । मूर्च्छा, अरति, दाह और तृषासे यु-
क्त सूजन में दूधको और विशोधन के यो-
ग्य सूजनमें गोमूत्रमिलाकर दूध को देवे ।

इसीतरह कफज शोफमें क्षार, कटु, उष्ण
द्रव्यों से युक्त गोमूत्र मिले हुए तक वा-
आसय का प्रयोग करे ॥

सूजन में त्याग के योग्य पदार्थः
ग्राम्यान्पंपिशितलवणंशुष्कशार्कनवाज-
म् । गौर्दंष्ट्रपिष्टं धितिलकृतांविज्वलंमद्यम-
म्लम् ॥ धानाबल्लूरसमशनमयोगुर्वसा-
त्म्यंविदाहि । स्वप्नश्चरात्रौभयधुगद-
वान्वर्ज्येन्मैथुनंच ॥

अर्थ—ग्राम्य और आनूप पशुओं का
मांस, लवण, सूखाशोफ, नवीन अन्न, गुड़
के पदार्थ, पिट्ठी के पदार्थ, दहते, तिलके
पदार्थ, कुछ रसीले व्यंजन, मद्य, खटाई,
जौ की धानी, सूखामांस, समशन, भारी,
असात्म्य और विदाही अन्न, रात्रिमें सौना
और मैथुन इन कर्मों का परित्याग शोथ
रोगी को करदेना उचित है ।

कफज शोफ पर प्रयोग ॥

व्योपंत्रिष्टित्तिकरोहिणीचसायोरजस्का-
त्रिफलारसेन । पीतंकफोत्थंशमयेत्तुशोफ-
मूत्रेणगव्येनहरीतकीवा ॥ हरीतकीना-
गरदेवदारुमुखाम्बुयुक्तंसंयुनर्नवा । सं-
र्वपिवेध्विज्वपिमूत्रयुक्तंस्नातश्चजर्णिपय-
सान्नमयात् ।

अर्थ—त्रिकुटा, निसोथ, कुटकी, छोह
चूर्ण इनको त्रिफलोके रस के साथ पानका-
रै अथवा हरड़के चूर्ण को गोमूत्रके साथ
पानकरै तो कफकी सूजन दूर होजाती है ।
अथवा हरड़, सोंठ, देवदारु और सोंठ इन
के चूर्ण को गरम जलके साथ फाँके तो क-

फ की सूजन जाती है अथवा इसी चूर्ण को गोमूत्र के साथ फांके तो तीनों प्रकार की सूजन दूर होजाती है, औषध के पचने पर दूधके साथ अन्न का सेवन करें ॥

वातज शोफ के प्रयोग ।

पुनर्नवानागरमुस्तकलकानप्रस्थेनधीरः
पयसोऽक्षमात्रान् । मयूरकं मागधिकांसमू
लासनागरांवाप्रविधेरसवाते ॥ दन्तीत्रि
हृत्पणचित्रकैर्वापयःशृतदोषहरपिवेत्ना
दिप्रस्थमात्रञ्चपलाजिकैस्तैर्द्धावाशिष्टं
पचनेसापित्ते । सधुण्ठिपीतदुरसंप्रयोज्यं
श्यामोरुवृक्षोपणसाधितंवा ॥ त्वग्दारुव
र्पान्तमहौषधैर्वागुडचिकानागरदन्तिभिर्वा

अर्थ—सांठ, सोंठ और मोथा प्रत्येकदो तोला इनको एकप्रस्थ दूधमें औटाकर आधा शोष रहने पर पान करें । अथवा ओंगा की जड़, पीपल, पीपलगूल और सोंठ इन को ऊपरकी रीतिसे पीधे तो वातकी सूजन जाती रहती है । अथवा दन्ती, निसोथ, त्रिकुटा, चीता इनको दूधमें डालकर औटावे और पान करें तो सूजन के दोष दूर होजाते हैं ॥ अथवा दन्ती, निसोथ, त्रिकुटा चीता इनको आधे आधे पल लेकर दो प्रस्थ दूध में औटावे जब एक प्रस्थ रहजाय तब पान करें तो वातपित्त का शोफ दूर होजाता है ॥ सोंठ और देवदारु का काष्ठ दूध के साथ पीने से अथवा काली निसोथ, अरंड की जड़ और कालीमिरच इन सबको समान भाग लेकर अठगुने दूध और उससे चौगुने जल में चढ़ाकर दूध शोष रहने पर छानक

र पीधे तो वातपित्त की सूजन जाती रहती है ॥ अथवा दालचीनी, दारुहलदी, पुनर्न वा और सोंठ, अथवा गिलोय, सोंठ और दन्ती इन दोनों में से किसी को दूधमें औटाकर पान करने से वातपित्त की सूजन दूर होजाती है ॥

सप्ताहमौष्ट्यदिवापिमासंपयःपिवेद्भोजन
वारिवर्जी । गव्यंसमूत्रंमीहपीपयोवाक्षीः
राशनंमूत्रमयोगवांवा ॥ तक्रंपिबेद्वागुरु
भिन्नवर्चासव्योपसौवर्चलमाक्षिकंवा ।
गुडाभयांवागुडनागरांवासदोषभिन्नाम
विवद्धवर्चाः ॥ विड्वातसोऽप्यसारसैर्वा
प्राग्भुक्तमद्यादुरुचूकतैलम् । स्रोतोविब
न्धेऽग्निरुचिप्रणोशमयान्यरिष्टांश्रपिबे
त्युजातान् ॥

अर्थ—वातपित्तकी सूजनमें भोजन और जलको छोड़कर एक सप्ताह वा एक महीने तक केवल ऊंटनी का दूध पीकर रहे अथवा इसी तरह से गोमूत्र और भैंस के दूधका सेवन करें, अथवा गौ के दूध को भोजन में और पीने में प्रयुक्त करें । सूजन में मलका अत्यन्त भेद होनेसे त्रिकुटा संचलनमक और राहत डालकर मठा पीधे दोपोंके द्वारा भिन्न हुए आम और विवद्ध मलमें गुड और हरड अथवा गुड और सोंठका पान करावे । मल और अधोवायु के रुकनेपर भोजन करने से पहिले अंडा का तेल दूध या मांस रसके साथ पान करावे स्रोतोंके बन्द होने पर जटराग्नि और रुचि के नष्ट होने पर उत्तम बने हुए मद्य और अरिष्टों का पान करें ॥

कण्डीराद्यरिष्ट ।

कण्डीरभलातकचित्रकांश्चन्योपविद्धं च
इतीदृशश्च । द्विमस्थिकंगोमयपावकेन
द्रोणपचेत्काञ्जिकमस्तुनस्तु ॥ त्रिभा
गशेषश्चसुपूतशीतद्रोणेनतत्प्राकृतमस्तुना
श्च । सितोपलायाश्चशतेनयूक्तलिप्तघटे
त्रिजकपिप्पलीनाम् ॥ वैहायसेस्थापित
मादशाहात्प्रयोजयंस्तद्विनिहान्तिशोकान्
भगन्दरार्शः क्रिमिकुष्ठमेहान् वैवर्ण्यकादर्या
निलहिकनञ्च ॥

अर्थ.... कण्डीर, भिलाया, चीता, त्रिकुटा
वायविडंग, दोनों कटेरी, इन सबको दो
प्रस्थ लेकर जौकुट करले फिर इसे एक
द्राण कांजी और दही के तोड़में गौ के गो-
बरके उपलों की आगपर पकावै । तिहाई
जलजाने पर इस को उतारकर छान लेवै
और ठंडा होने पर एक द्रोण दहीका तोड़ सौ
पल मिश्री इसमें मिलाकर एक ऐसे घड़े
में भरदेवै जिस में चीते और पीपलों की
भावना दी हो, इस घड़े को ढककर छाँके
पर दस दिन तक ढंगा रहनेदे । फिर इस
का सेवन करने से सूजन, भगन्दर, अर्श,
क्रिमिरोग, कुछ प्रमेह, विवर्णता, कृशता,
पातरोग और हिचकी नष्ट होजाते हैं ।

अष्टाशतअरिष्ट ।

काश्मर्यधारीमारिचामयानां द्राक्षाफला
नाञ्चसपिप्पलीनाम् । शतशतं जीर्णगु
डातुलाञ्चससुखबुम्भेमधुनामालेप्ते ॥
सप्ताहमृण्याद्विगुणन्तुशीतोस्थितं जलद्रोण
युतापिबेत्वा । शोफान्विवन्धान्कफघात

जांश्चसहन्त्यरिष्टोऽष्टशतोधिकृष्य ॥

अर्थ.... खंमारी के फल, आंवला, कांई
मिरच, हरड, दाख और पीपल, प्रत्येक सौ
सौ लेवै, पुराना गुड एक तुला इन सब
को जौकुट करके गुडमें सानकर एक ऐसे
घड़ेमें भरै जिसमें भीतर शहत पोता गया
हो और उम घड़ेमें एक द्रोण जल भी म
खदेवै, इस घड़ेको गरमी की वस्तुमें एक स-
प्ताह इसी तरह धरा रहने देवै ॥ इस अरि
ष्टका सेवन करने से सूजन, कफघातज
विवन्ध दूर होजाते हैं और जठराग्नि बढ़तीहै ॥

पुनर्नवाद्यरिष्ट ।

पुनर्नवेद्वेचयलेसपाठेदन्तीगुहूचीमथचित्रक
श्चानिदिग्धिकाञ्चत्रिपलानिपक्त्वाद्रोणा
र्द्धशेषसलिलेततस्तम् । पूतवारसंद्वेचगुडा
त्पुराणात्तुलेमधुमस्थयुतंसुशतम् ॥ गां
संनिदध्याद्घृतभाजनस्थं पल्लेयवानां पीर
तस्तुमासान् । चूर्णाकृतैरर्द्धपलांशिकैस्तं
पत्रत्वगेलामरिचाम्बुलोहैः ॥ गन्धान्वि-
तं क्षौद्रघृतमदिग्धैर्जीर्णपिबद्धान्धाधिवलेसभी-
क्ष्यात्पुण्डुरोमंश्चयथुंमवृद्धं क्षीहभ्रमारोच
कमेहगुल्मान् । भगन्दरं पट्टजठराणिकासं
श्वासं ग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ॥ शास्त्रानिलं
वद्धपुरीपताञ्चहिक्कां किलासञ्चहलीम
कञ्च । क्षिपंजयेद्धर्णवलायुरोजस्तेजोन्वि
तामांसरसाश्रंभोक्ता ॥

अर्थ.... सफेद साठ, लालसाठ, खरेटी,
नागवला, पाठा, दन्ती, गिलोय, चीता और
कटेरी, इनमें से प्रत्येक को तीन तीन पल
लेकर एक द्रोण जलमें चढ़ावै जब आधा

शेष रहजाय तब छानकर ठंडा होने पर इस में दो तुला पुराना गुड और एकप्रस्थ शहत मिलाकर घीके चिकने घडेमें भरकर जौके ढेर में एक महीने तक गढ़ा रहनेदेवे । महीने भर पीछे इस में तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायची, काली मिर्च और नेत्रवाला का चूर्ण आधा २ पल डालकर सुगंध युक्त करै ॥ पुराना होने पर इस अरिष्टमें घृत शहत मिलाकर व्याधि और बलके अनुसार सेवन करै तौ हृदरोग, पाण्डुरोग, बढी हुई सृजन, झाँहा, भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्मरोग, भगन्दर, छःप्रकारके जठररोग खाँसी, श्वास, ग्रहणीरोग, कोढ, खुजली, शाखागत वायु, मलकी वद्धता, हिचकी, किलास और हली मक, ये सब रोग शीघ्रही दूर होजाते हैं ॥ इस अरिष्टको सेवन करके मांसरस और अन्नका भोजन करने से वर्ण, बल, आयु, ओज और तेज बढता है ॥

त्रिफलारिष्ट ।

फलत्रिकंदीप्यकचित्रकौचसपिप्पलीलो हरजोविडङ्गम् । चूर्णाकृतकौडविकंदिरंशं सौद्रंपुराणस्यतुलांगुडस्य ॥ मासनिदध्या दधृतभाजनस्थंयत्रेपुतानेवनिहन्तिरोगान् ।
अर्थ....त्रिफला, अजवायन, चीता, पीपल, लोहभस्म, वायविडंग, प्रत्येक एक २ कुडव, शहत दो कुडव, पुराना गुड एक तुला इन सबको घी की हांडी में भरकर महीने भरतक जौ के ढेरमें गाढदे और फिर सेवन करै तौ पूर्वोक्त फलहोय ॥

ये चार्शसापाण्डुविकारिणाश्च । प्रोक्ताः शुभाः शोफिपुतेऽप्यरिष्टाः ॥

अर्थ....अशरीरोग और पाण्डुविकारों में जो २ अरिष्ट वर्णन कियेगये हैं वे सब शोफमें हितकारी होते हैं ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण ।

कृष्णासपाठागजपिप्पलीचनिदिग्धिका चित्रकनागरेच । सपिप्पलीमूलरजन्यजाजीमुस्तञ्चचूर्णसुखतोयपतिम् ॥ हन्यात्त्रिदोषंचिरजञ्चशोफंकल्कश्चभूनि म्वमहौपधस्य । अयोरजस्यूपणयावशूकंचूर्णञ्चपीतत्रिफलारसेन ॥

अर्थ—पीपल, पाठ, गजपीपल, कटेरी, चीता, सौंठ, पीपलामूल, हल्दी, कालाजीरा और मोथा इनके चूर्णको गुनगुने जलके साथ फांकनेसे त्रिदोषज पुराना शोफ दूरहो जाताहै, इसीतरह चिरायता और सौंठका चूर्ण गरमजलके साथ फांकनेसे पूर्वोक्त गुण होता है । अथवा लोहचूर्ण, त्रिकुटा, जवाखार इनके चूर्णको त्रिफला के रसके साथ पीनेसे भी पूर्वोक्त गुण होता है ॥

क्षारादिवटिका ।

क्षारद्वयस्यालवणानिचत्वार्थयोरजोव्योपफलत्रिकंच । सपिप्पलीमूलविडङ्गसारं मुस्ताजमोदामरदारुविल्वम् । कलिङ्गकाश्चित्रकमूलपाटंसयष्टिकञ्चातिविपपलांशम् ॥ सहिगुर्कपत्वनुसृक्ष्मचूर्णद्रोणंयथा मूलकशृण्डिकानाम् । स्याद्भस्मनस्तत्सलिलेनसाध्यमालोड्ययावद्वनमपदग्धम् ॥ स्त्यानंततःकोलसमाप्तुमात्रांकृत्वा सुशुष्काविधिनाभजेत् । श्लिहोदरश्वित्रहलीमकांस्तुपाण्ड्वामपारोचकशोषशो-

फान् ॥ विसूचिकागुल्मगराशमरीश्चस

श्वासकासाःमण्डदेस्सकुप्राः

अर्थ—दोनों प्रकारके खार, चारोंनमक, लोहचूर्ण, त्रिकुटा, त्रिफला, पीपलामूल, वायविडंगकी मींगी, मोथा, अजमोद, देवदारु, बेलगिरी, इन्द्रजौ, चित्ते की जड़, पाटा, मुलहठी, और अतीस एक २ पल लेवै और एक कर्प मुनी हुई हाँग लेवै इन सबका महीन चूर्ण करलेवै । फिर मूली और सोंठ की भस्मको अठगुने जलमें डालकर अग्निपर चढ़ादे जब चौधई शेष रहै तब उतारकर छानले । फिर इनमें पूर्वोक्त चूर्ण डालकर अग्निपर धरकर चलातारहै जिससे लगने न पावै। गाढाहोने पर बेर की बराबर गोली बनाकर सुखालेवै । इन गोलियोंका विधिपूर्वक सेवन करने से प्लीहा, उदररोग, दिक्त्रकुष्ठ, हर्षामक, पाण्डुरोग, अरुचि, शोष, शोफ, विसूचिका गुल्मरोग, पथरी, श्वास, खांसी और कोढ़ शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥

अन्यप्रयोगः

मयोजयेदाद्रकनागरंवातुल्यं गुडेनार्द्धपलाभिष्टब्धम् ॥ मात्रापलंपञ्चपलानिमांसंजीर्णपेयोयूपरसान्नभोक्ता ॥ गुल्मोदरार्शः श्वयधुप्रमेहान्श्वासप्रतिश्यालसकाविपाकान् । सकामलांशोपमनोविकारान्कासं कफञ्चैव जयेत्प्रयोगः ॥

अर्थ—अधिपल अदरख वा सोंठ को समानभाग पुराने गुड़के साथ सेवन करै । फिर प्रतिदिन आधा २ पल बढ़ाता रहै,

जब पांचपल पूरे होजाय तब महीने भरतक प्रतिदिन पांचपल का सेवन करता रहै । औषधके जीर्ण होने पर दूध, यूप और मांसरस का सेवन करता रहै । इस औषध सेगुल्म, उदररोग, अर्शविकार, सूजन, प्रमेह, श्वास, प्रतिश्याय, अलसक, अविपाक, कामला, शोष, मनोविकार, खांसी और कफ दूर होजाते हैं ।

रसस्तथैवार्द्रकनागरस्यपेयोऽथजीर्णपयसान्नमद्यात् जत्वश्मजञ्चत्रिफलारसेन हन्यात्रिदोषं श्वयधुंप्रसह्य ॥

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिके अनुसार ही प्रतिदिन आधे २ पल बढ़ाकर अदरख का रस पान करै, जब पांचपल पर पहुँच जाय तब एक महीने पर्यन्त प्रति दिन पांच पल सेवन करतारहै । औषध के पचनेपर दूध के साथ अन्नका भोजन करै । त्रिफला के क्वाथ केसाथ शिलाजतु पीनेसे भी त्रिदोष की सूजन जाती रहती है ।

हरीतक्यादिप्रयोगः

द्विपञ्चमूलस्यपचेत्कपायेकंसेभयानाञ्च शतंगुडस्य । लेहेसुसिद्धेचविनीयचूर्णव्योपन्त्रिसौगन्ध्यमुपांस्थितेच ॥ प्रस्यार्द्धमात्रंमधुनः सुशीतेकिञ्चिच्चचूर्णादापिया चशुकात् ॥ एकाभ्यां प्राश्यततश्चलेहाच्छुक्तिनिहन्तिश्वयधुंप्रवृद्धम् । श्वासज्वरारोचकमेहहिकाप्लीहात्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ॥ काश्यामवातान्मृगम्लपित्तं वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥

अर्थ—चारसेर दशमूल और सौ हरडको

सोलह सेर जल में भरकर अग्निपर चढ़ा देवै जब चौथाई रहजाय तब उतारकर छान लेवै और हरडोंके भीतर से गुठली निकालकर फेंकदे । फिर उस क्वाथ को हरडोंके गूदे और पुराने गुडके साथ अग्निपर चढ़ादे जब चाटने के योग्य गाढ़ी होजाय तब अग्निपरसे उतारकर त्रि कुटा, ढालचीनी, इलायची, तेजपात, इन को पीसकर उसमें डाल देवै तथा आधा प्रस्थ शहत और थोडासा यवशूक डालकर मिलाकर उतार लेवै । फिर प्रतिदिन इनमें से एक हरड खाकर अधेपल चटनी चाट लेवै तौ अत्यन्त बढीहुई सूजन नष्ट होजाती है तथा श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, हिचकी, घ्रांहा, त्रिदोषजन्य उदर रोग, पाण्डुरोग, कृशता, आमवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष, वातदोष, शुक्रदोष ये सब रोग दूर होजाते हैं ॥

पटोलादिघृत ।

पटोलमूलासुरदारुदन्तीत्रायन्तिपिप्पल्य भयाविशालाः ॥ यष्ट्याह्विकातित्त करोहिणीच । सचन्दनास्यान्निचुला निंदावी ॥ कर्पोत्थितैस्तैः कथितः कृपा यो । घृतस्यपेयः कुडवेनयुक्तः । वीसर्पदाहज्वरसन्निपातां स्तृष्णांविपाणिश्वयधुंनिहन्ति ॥

अर्थ....परबलकी जड़, देवदारु, दन्ती, त्रायमाणा, पीपल, हरड, इन्द्रायणकीजड़, मुलहठी, कुटकी, रक्तचन्दन निचुल और दारुहलदी, इनमें से प्रत्येक को एक एक क-

र्ष लेकर अठगुने जल में चढ़ा दे चौथाई शेष रहने पर उतारकर छान ले और इस क्वाथ में एक कुडव घृत डालकर फिर पकावै जब घृत शेष रहजाय तब नित्यप्रति मात्राके अनुसार सेवन करै तौ विसर्प, दाह ज्वर, सन्निपात, तृष्णा विपरीग और सूजन दूर होजावैगी ॥

चित्रकादिघृत ॥

सचित्रकंधान्ययवान्यजाजी । सौवर्च लंघ्यूपणवेतसाम्लम् । विल्वात्फलंदाडिमयावशूकौ । सपिप्पलीमूलमथोऽपि चव्यम् ॥ पिष्ट्वाक्षमात्राणिजलाढकेन पक्त्वाघृतप्रस्थमथोविदध्यात् ॥ अशीसिगुलमंश्वयधुञ्चदुःखं । तदन्तिवन्दिश्चकरोतिदीप्तम् ॥ पिबेद्घृतंवाष्टगुणाम्बुसिद्धं । सचित्रकक्षारमुदारवर्यम् ॥ कल्याणकंवापिसपञ्चगव्यं । तिस्रमहद्वाप्यथतित्तकंवा ॥

अर्थ—चीता, धनियां, अजवायन, कालजीरा, संचलनमक, कालीमिरचं, सोंठ, पीपल, अमलवेत, बेलफल, अनारकीछाल, जवाखार, पीपलामूल, चव्य, इन सबको दो २ तोले लेकर एक आढक जल में पकावै फिर चौथाई शेष रहनेपर छानकर पूर्वोक्तरीतिसे एक प्रस्थ घृत पकावै, घृत शेष रहनेपर उतार लेवै । इस घृतके सेवन करनेसे अशरीरोग, गुल्म, सूजन और मूत्रदोष दूर होजाते हैं और जठराग्नि प्रबल होतीहै । अथवा चीते और जवाखारको अठगुने जलमें चढ़ाकर उसके साथ घृत

पथियोंका वर्णन किया गया है अब उन औ-
पथियोंका का वर्णन करेंगे जो बाहर लगा-
नेमें काम आती हैं, यथा वातजशोथमें स्नेह,
प्रदेह, परिपेचन और स्वेदन ॥

शैलेयतैल ।

शैलेयकुप्रागुरुदारुकौन्ती । त्वक्पत्रकै-
लाम्बुपलाशमुस्तैः ॥ म्रियंगुथौणेयकहे-
ममांसी । तालीसपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥
श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिःस्पृक्तवानखै
ध्रैयवथोपलाभम् । वातान्वितेऽभ्यङ्गमु-
पन्तितैलसिद्धसुपिष्टैरपिचप्रदेहमजलेच
वासारककरञ्जिशिमुकाश्मर्यपत्रार्जकजैश्च
सिद्धैः । स्विन्नोमृदूणोरवितप्ततोयस्ना
तश्चगन्धैरनुलेपनीयः ॥

अर्थ....शिलापुष्प, कूठ, अगर, दारुह-
लदी, पद्माख, इलायची, नेत्रवाला, पलाश,
मोथा, प्रियंगु, धूनेर, जटामांसी, तालीसपत्र,
केवटामोथा, तेजपात, धनियां, श्रीवेष्टक,
ध्यामक, स्पृका, नखी, इनद्रव्योंमें से जित
नी मिलसके उनको लेकर उनके काथमेंतेल
पकाकर वादीकी सूजनपर लेपकरे ॥

अडूसा, कंजा, सहजना, खंभारी, और
तुलसी, इनके पत्तोंको डालकर जलऔटावै
और इस गरम, गरम, जलसे सूजनके स्थान
को धोवै अथवा घूपसे कियेहुए गरम जल
द्वारा पसीनेलेवै । इसजलसे स्नानकरके ग-
न्धद्रव्यों का लेपकरे ॥

पित्तज शोफपर तैलादि ।

सवेतसाक्षीरवतान्द्रुमाणान्वचःसमञ्जि-
ष्ठवंलामृणालाः । सचन्दनापक्षकवाल-

कौचपैतृप्रदेहस्तुसतैलपाकः ॥ आक्तस्प-
तेनाम्बुरविप्रतप्तसचन्दनसाभयपद्मकञ्ज-
स्नानेमतक्षीरवतांकपायःक्षीरोदकचन्दन-
लेपनंच ॥ कफेतुकृष्णासिकतापुराण
पिण्याकशिमुःवगुमाम्लेपःकुलत्थशुण्ठी
जलमूत्रसेकचण्डागुरुभ्यामनुलेपनंच ॥

अर्थ—पित्तजशोफमें त्रेत और गूलर, पीप-
ल आदि दूधके बृक्षोंकी छाल, मजीठ, खैर-
टी, कमलनाल, रक्तचंदन, पद्माख, नेत्रवा-
ला, इनको पीसकर लेपकरे अथवा इनद्रव्यों
के काथमें तेल पकाकर लगावै । इसतेलको
लगाकर रक्तचंदन, हरड और पद्माख डाल
कर जलको घूपमें गरमकरके स्नानकरे ।
इसीतरह दूधिया बृक्षोंकी छालके काथसे
वा दूध मिलेहुए जलसे स्नान करके चन्दनका
लेपकरे ॥

कफजशोफपर तैलादि ।

विभीतकानांफलमध्यलेपःसर्वेपुदाहार्ति-
हरःप्रलेपः । यष्ट्याहमुस्तैःसकपित्यपत्रैः
सचन्दनैस्तत्पिडकासुलेपःरास्नावृषार्क-
त्रिफलाविडंगा ॥ शिशुत्वचोमृषिकर्णि-
काचानिम्बार्जकौव्याघ्रनखसदूर्वासुवर्च-
लास्यात्कटुरोहिणीचसकाकमार्चिष्टृहतांस-
कुप्रापुनर्नवाचित्रकनागरेच ॥ उन्मर्दनं
शोफिपुमूत्रपिण्डशस्तस्थामूलकतोयसेकः

अर्थ....कफकी सूजन में पीपल का चूर्ण,
पुरानाखल, सहजनेकी छाल और राई इन
को पीसकर लेप करे । कुलथी और सोंठके
काथ में गोमूत्रको मिलाकर परिपेक करे ॥
पीछे चण्डा और अगरका लेपकरे । बहेडे

के गूदे का लेप करने से सब प्रकार की सूजनोका दाह शान्त होजाताहै । जो सूजन में कुन्सियां होजाय तौ मुलहट्टी, मोथा, कैथके पत्ते, और रक्तचंदन का लेप करै ।

रास्ना, अड्सा, आक, त्रिफला, वायविडग, सहजने की छाल, मूषिकपर्णी, नीम, तुलसी, वाघनखी, दूध, सुवर्चला, कुटकी, मकीय, कोटरी, कूट, पुनर्नवा, चीता और सोंठ इन सबको गोमूत्रमें पीसकर लेप करै । अथवा सूखीमूली को जल में औटाकर इस जलसे परिपेक करै ॥

शोफास्तुगात्रावयवाश्रितायेतेस्थानंदूष्या कृतिनामभेदात् । अनेकसंख्याः कतिचिद्यतेषां निदर्शनार्थं शृणु चोच्यमानान् । दोषास्त्रयस्वैः कुपितानि दानैः कुर्वन्ति शोफान् शिरसः सुयोरान् ॥ अन्तर्गलैर्घुर्घुरिकांश्चितं च शालूकमुत्श्वासीनो रोधनानि । गलस्य सन्ध्याचिबुके गले च सदाहरागश्च सनासु चोग्रः शोफो भृशार्तिस्तु विडालिका स्याद्दन्त्याद्वले च द्रव्यीकृता स्यात् ॥

अर्थ—जो सूजन शरीर के जुदे २ स्था नोंमें होती है वह स्थान, दूष्य, आकृति और नामके भेदसे अनेक प्रकार की होती है, अब हम उनमें से उदाहरण के निमित्त थोड़ीसी शोफोंका वर्णन करते हैं उन्हें सुनो ।

अपने २ कारणोंसे कुपित होकर तानों दोष सिरमें घोर सूजन उत्पन्न करते हैं ॥ इसमें गले के भीतर घुर्घुर शब्द होने लगता है और स्वास रुकने लगता है इसका नाम शालूकशोफ है ॥ गलेकी संधि

ठोड़ी और गले में दाह, राग और स्वास से युक्त सुचोग्रनामक शोफ उत्पन्न होता है ॥ जब यह सूजन गलेमें मंडलाकार हो कर अत्यन्त वेदना उत्पन्न करके मनुष्य को मारती है तब उसे विडालिका कहते हैं ॥

अन्यशोफोंके नाम ।

स्यात्तालुविद्रध्यपि दाहो गैर्युता भवेत्तालुनिसात्रिदोषात् । जिहोपरिप्लुतादुपजिह्विका स्यात्कफादधस्तादधिजिह्विका च । यो दन्तमांसेषु तुरक्तचित्तात् पाको भवेत्सोपकुशः प्रदिष्टः । स्यादन्तविद्रध्यपि दन्तमांसे शोफः कफाच्छोणितसंञ्चयोत्थः ॥

अर्थ—जो शोफ दाह युक्त और रक्त वर्ण की तालुमें होता है उसे तालुविद्रधि कहते हैं ॥ यह त्रिदोषसे होता है ॥ जो जिह्वा के ऊपर होती है उसे उपजिह्विका कहते हैं ॥ और जो कफके कारण जिह्वासे नीचे होती है उसे अधिजिह्विका कहते हैं ॥ रक्तपित्त के कारण दांतों के मांस में जो पाकयुक्त शोफ होती है उसे उपकुश कहते हैं ॥ दांतोंके मांस में जो सूजन रक्त और कफ के संचय से उठती है उसे दन्त विद्रधि कहते हैं ।

गलगण्डशोफ ।

गलस्य पार्श्वे गलगण्ड एकः स्याद्गण्डमाला बहुभिस्तु गण्डैः । साध्याः स्मृताः पीनसः पार्श्वशूलकामज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः ।

अर्थ—गलेकी गलमें जो एक गांठ उठती है उसे गलगण्ड कहते हैं और जो बहुतसी गांठ होती है उन्हें गण्डमाला क-

हते हैं । ये दोनों साध्य होती हैं परन्तु जब ये पीनस, पार्श्वशूल, खांसी, ज्वर और ब-
मनसे युक्त होती हैं तब असाध्य होती हैं ।

शोफों में चिकित्साक्रम ।

तेपांसिराकायशिरोविरेकोधूमःपुराणस्य
घृतस्पपानम् । सलङ्घनं वक्त्रं भवे पुचापि
प्रहर्षणं स्यात्कवलग्रहश्च ॥

अर्थ—इन ऊपरकी शोफों में सिरामो-
क्षण, कायविरेचन, और शिरोविरेचन, धूम
पान, पुराना घृतपान, और लघनहितकारी है
तथा मुखमें होनेवाली सूजनोंमें सूजन के
नाश करने वाले द्रव्योंको रगड़े और उन्हीं
द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ कवल धारण करें ।

अन्य ग्रन्थियों का वर्णन ।

अत्रैकदेशेष्वाग्निनादिभिस्त्यात्स्वरूपधा-
रीस्फुरणःसिराभिः । ग्रन्थिर्महान्मांस
भवस्त्वनर्तिर्मदोभवःस्निग्धतत्त्वलश्च ॥

अर्थ—वातादि दोषोंकी प्रबलतासे शरीर
के विशेष २ अंगों में मूर्तिमान् लक्षणों से
युक्त सूजन होती है । एक सूजन तौ नसों
में रुधिरका बहना बन्द होजाने से होती है।
एक बड़ी गांठ मांसमें होती है इसमें वेदना
नहीं होती है । एक गांठ मेदामें होती है
यह बहुत चिकनी और चलायमान होती है
तंशोधितस्वेदितमद्मकाष्ठःसाङ्गुष्ठदण्ड-
विनयेदपक्वम् । विपात्र्यचोद्धृत्यभिष-
कुसकोशं शस्त्रेण दग्ध्वा व्रणवध्मिक्त्सेत् ॥
अदग्धैर्पित्तपरिशोषितधमयातिभूयोऽपि
शनैर्विद्वद्भिः । तस्मादशेष-कुशलसमन्ता
त्तेयोभवेद्दीप्यशरीरदेशान् ॥ शोपेक

तेपाकवशेन शीर्येत्ततः सतोत्थः प्रसरेद्वि-
सर्पः ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके ऐसी गांठ होजाय
उसको बिना पकेही शोधन देकर पत्थर
वा काठ द्वारा स्वेदन देकर अंगूठा वा ट-
कड़ी लगाकर नरम करदे । उसके पकने
पर शस्त्रसे चीरा लगाकर सब मवाद और
गजी हुई खालको अलग करके दग्ध करें
और फिर व्रणवत् चिकित्सा करें । जो दग्ध
न कीजाय तौ कम शुष्क होने के कारण
वह फिर धीरे २ बढजाती है । इसलिये
कुदाख वैद्यको उचित है कि उस दग्ध
के स्थान का विचार करके उनको जड़
से दूरकर दें । काटने पर नी शोषवर्द्ध
तौ पाकके कारण शीगे होकर उन्में क्षतज
विसर्प उत्पन्न होगा ।

वर्जनीय ग्रन्थि ।

उपद्रवंतं प्रनिवारयन्तः स्वभेषजैर्नृपुत्रैर्नृप-
योक्तैः । ततः क्रमेणास्यययाविधानमुन्न-
व्रणमस्त्वस्याचिकित्सेन् ॥ विवर्जयेन्
कुसुमदुराश्रितश्च तयाग्रे मर्मगमिश्रितश्च
स्यूतः खरश्चापि भवति वज्रजो यश्चापि
वालस्य विरावश्चानां ॥

अर्थ—इस क्षतज विमर्ष नामक उपद्रव
को दूर करनेके लिये पहिले कहीं हुई
विसर्प चिकित्साओंके द्वारा चिकित्सा करें
फिर क्रम से यथाविधान व्रणके ममान क्रि-
याओं का प्रारम्भ करें] जो गांठ कृष्ण, उदर
गले और मर्मस्थान में हुई हो वह साध्य
है । जो वालक, बूढ़े और दृक्क के दृक्को
वह भी वर्जनीय है ।

नयेदोषहरैर्यथास्व । मालेपनच्छेदन-

भेददौहः ॥

अर्थ—इसमें तीनों दोष होते हैं परन्तु पित्त प्रबल होता है । यह तीव्र पतली और रक्तपाक युक्त होती है । इसमें जो सूजन होती है उस में ज्वर और तृषा का वेग होता है । यह जालगर्दभ नामक विसर्प रोग होता है । इस में लघन, रक्तमोक्षण, विरूक्षण, कामविरेचन, आंवलेका प्रयोग और शीतल लेप हितकारी होते हैं । इसीतरह अन्य सूजनों में भी वातादि दोषोंके लक्षणों की विवेचना करके यथा दोष आलेपन, भेदन, और दाह्यादि कर्मों से शोथ को अच्छा करै ॥

आगन्तु शोफ का वर्णन ।

प्रायोऽभिघातादनिलःसरक्तः ।

शोथं सरागमं करोति तत्र ॥

वीसर्पनुन्माखतरक्तनुच ।

कार्यं विपघ्नं विपजे च कर्म ॥

अर्थ—प्रायः चोट लगने से वातरक्त दूषित होकर लालरंगकी सूजन उत्पन्न करते हैं । इस सूजन में विसर्प नाशक और वातरक्त नाशक क्रिया करै तथा विपज शोथ में विपनाशक क्रिया करै ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

त्रिविधस्य दोषभेदात् सर्वाद्वायवगात्रभेदाच्च । अथ यो द्विविधस्य तथा लिङ्गानि चिकित्सितं चोक्तम् ॥

अर्थ—इस अध्याय में भगवान् पुनर्वसु तीन दोषों के भेद से तीन प्रकार की

शोफ, सर्वांग शोफ, अर्द्धांगशोफ, अवयव-शोफ, निजशोफ, आगन्तु शोफ इनके लक्षण और चिकित्सा वर्णन की है ।

इति श्री भाषाटीकाभिव्यासायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने श्वयधु चिकित्सितनामसप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

—*—

अष्टादशोऽध्यायः ॥

अथात उदरचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम उदर चिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

अग्निवेश का प्रश्न ।

सिद्धविद्याधराकीर्णकैलासेनन्दनोपमे । तप्यमाजंतपस्तीव्रसाक्षादूर्ध्वमिव स्थितम् ॥ आयुर्वेदविदां श्रेष्ठं भगवन्विद्याप्रवर्त्तकम् । पुनर्वसुजितात्मानमग्निवेशोऽब्रवीद्वचः ॥ भगवन्नुदरैर्दुःखं हि दृश्यन्ते हृदि तानराः । शुष्कवक्त्राः कृशैर्गौरैराध्मातोदरकुक्षयः ॥ प्रणष्टाग्निबलाहारा सर्वचेष्टास्वनीश्वराः । दीनाः प्रतिक्रियाभावाज्जहतोऽसूननाथवत् ॥ तेपामायतनं संख्यां प्राप्नुयाच्छ्रुतिभेषजान् । यथावत् ज्ञातुमिच्छामि गुरुणा सम्यगीरितम् ॥ सर्वभूतहितायपिः शिष्येणैव प्रचोदितः । सर्वभूतहितं वाक्यं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥

अर्थ—सिद्ध और विद्याधरों से सेवित, नन्दन काननके सदृश कैलास पर्वतमें तीव्रतप में लीन, साक्षात् मुक्तिमान् धर्मस्वरूप,

आयुर्वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठतम, आयुर्वेद प्रवर्त्तक और जितेन्द्रिय पुनर्वसु से अग्निवेशने यह प्रश्न किया कि हे भगवन् ! प्रायःसर्व मनुष्य उदर रोगों से पीडित दिखाई देते हैं जिनके मुख सूख गये हैं, गात्र कुश पड गये हैं, उदर और कूखझूल गये हैं जठराग्नि बल और आहार धक गये हैं, सम्पूर्ण चेष्टाओं से हीन होगये हैं ॥ ये दीन मनुष्य चिकित्सा के अभावसे अनाथकी तरह प्राणोंका परित्याग करदेते हैं । इस से हे प्रभो ! मैं आप के मुखसे उनका आयतन, संख्या, पूर्वरूप आकृति और चिकित्सा यथावत् सुनना चाहता हूँ । शिष्य से इस तरह प्रेरणा किये जाने पर सम्पूर्ण प्राणियों के हित के निमित्त सम्पूर्ण प्राणियों के हितकारी वाक्योंके कहने में उद्यत हुए ।

उदरविषयमें आत्रेयका वाक्य ।

अग्निदोषान्मनुष्याणारोगसंघाः पृथग्विधाः । मलवृद्ध्यामवर्त्तन्ते विशेषेणोदराणितु ॥ मन्देऽग्नौमलिनैर्भुक्तैरपाकादोपसञ्चयः । प्राणापानान्निहंसदूष्यमार्गान्वद्भोत्तरोत्तरान् ॥ त्वङ्मांसान्तरमागम्यकुक्षिमाध्मापयन्भृशमृजनयत्युदरं तस्य हेतुं शृणु सलक्षणम् ॥

अर्थ—जठराग्नि के दोषसे मनुष्यों के अनेक प्रकारके रोगों के समूह उत्पन्न होते हैं, तथा विशेष करके मलकी वृद्धि से उदर रोग होते हैं । मन्दाग्नि में मलवर्द्धक भोजनों के अपाक से दोष संचित होकर प्राण और अपान वायुओंको दूषित करके ऊपर और

नीचेके मार्गोंको रोक कर त्वचा और मांस के मध्यमें स्थित होकर कुक्षिको अत्यन्त फुला देते हैं और फिर उदर रोगोंको पैदा करते हैं उसके लक्षण सहित हेतुओं को सुनो ।

अत्युष्णलवणक्षारविदाहाम्लरसाशनात् मिथ्यासंसर्जनाद्भक्षिविरोद्धाशुचिभोजनात् ॥ श्लेष्माशौग्रहणीदोषकर्पणात्कर्मविभ्रमात् । विलष्टानामप्रतीकाराद्दौर्लभ्याद्देगविधारणात् ॥ स्रोतसादूषणादामात्संक्षोभादतिपूरणात् । अशौष्वातशकृद्रोधादन्त्रस्फुटनभेदनात् । अतिसञ्चितदोषाणां पापकर्मचकुर्वताम् । उदराण्युपजायन्ते मन्दाग्नीनां विशेषतः ।

अर्थ—अत्यन्त उष्ण, नमकीन, खारी, विदाह और खट्टे रसोंके भोजन करने से, मिथ्या और असंसर्जनकर्मसे रूक्ष, अशुचि और विरुद्ध भोजनोंके करने से, प्लीहा, अर्श ग्रहणी दोष इनके कारण शरीरके कुश हो जानेसे, स्वेदनादि कर्मोंके यथावत् नहोनेसे, क्लिष्ट रोगोंकी चिकित्सा न करने से, रूक्षतासे, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगोंको रोकने से, स्रोतोंके दूषित होनेसे, आम दोष से संक्षोभसे, अत्यन्त पेट भरकर भोजन करने से अर्शकी अवलि के कारण विष्टाके रुकने से, आंतों में फटनेकी सी पीडा होने से, अति संचित दोषवाले मनुष्यों के पापकर्मों के करने से, और विशेष करके मन्दाग्नि वालों के उदररोग उत्पन्न होते हैं ।

उदररोग के पूर्वरूप ।

क्षुत्ताशः स्वाद्वीतस्त्रिगुण्यं अपर्यातीचरा-

त् ॥ भुक्तं विदाहते सर्वजीर्णाजीर्णनवे
त्तिच । स हतेनातिसौहित्यं शोफरोपञ्च
पादयोः ॥ शश्वद्वलक्षयोऽल्पेऽपि व्या
यामे श्वासमृच्छति । पुरीषनिचयो वृद्धि
रुदावर्त्तकृता चरुक् ॥ वस्ति सन्ध्या रूगा
ध्मानवर्द्धते पाथ्यतेऽपि च । आतन्यते च
जठरमपिलघ्वल्पभोजनात् ॥ राजीजन्म
वलीनाश इति लिंगं भविष्यताम् ॥

अर्थ—क्षुधाका नष्ट होना, मीठे, चिकने
और भारी अन्नका देरमें पचना; भुक्त अन्न
से विदाह होना; जीर्ण वा अजीर्ण का ज्ञान
न होना; पेट भरकर भोजन करने में अ-
समर्थता; पाँवों में कुछ सूजन होना, बल
का निरन्तर नष्ट होना, थोड़े परिश्रम में
भी श्वास बढ़ना, मलकी वृद्धि, उदावर्त्तकृत
वेदना, वस्ति सन्धि में वेदना, अफरा का
बढ़ना, हड्डियों और थोड़े भोजन से भी पेट
का तन जाना, उदरमें रेखाओं की उत्पत्ति
और अवलीका नाश, ये सब उदररोग के
पूर्वरूप हैं ।

उदररोग की साधारण उत्पत्ति ।
रुद्धास्वेदाम्बुवाहानिदोषाः स्रोतांसिसञ्चि
ताः । प्राणापानान्दिसंद्रूप्यजनयन्त्युद
रं नृणाम् ॥

अर्थ—स्वेदवाही और जलवाही स्रोतों
को रोककर संचित दोष, प्राण और अपान
वायुओं को दूषित करके उदररोगों को
उत्पन्न करते हैं ॥

उदररोग के साधारण लक्षण ।
नेत्राणां चोदरस्य च ॥

मन्दोऽग्निः श्लक्ष्णगण्डत्वं कार्श्यञ्चोदर
लक्षणम् ॥

अर्थ—कृशमें आध्मान, अफरा, हाथ
पाँवमें सूजन, मन्दाग्नि, गण्डस्थल में श्ल-
क्ष्णता और देह में कृशता ये सब उदर-
रोगों के लक्षण हैं ॥

उदररोगों की संख्या ।-

पृथग्दोषैः समस्तैश्च पृथिव्यद्वक्षतोदकैः ॥
संभवन्त्युदराण्यष्टे पांलिगं पृथक् शृणु ।

अर्थ—...पृथक् पृथक् दोषों से, सम्पूर्ण
दोषों से, ग्रीहा, वद्ध, क्षत और उदक से
आठ प्रकार के उदररोग उत्पन्न होते हैं ।
अब उन के पृथक् २ लक्षण सुनो ॥

वात के कारण उदर रोग ।-

रूक्षाल्पभोजनायासवेगोदावर्त्तकर्शनैः ॥
वायुः प्रकुपितः कुक्षिहृदस्तिगुदमार्गः ।
हृत्वाग्निफकुप्यते रुद्धगतिस्तथा ॥ आ-
चिनोत्पुदरं जन्तोः त्वद्दमां सान्तरमाश्रितः ॥

अर्थ—...रूक्ष और अल्पभोजन करने से,
आयास से, वेग धारण से उत्पन्न उदावर्त्त
से, और कृशता से कृश, हृदय, वस्ति और
गुदमार्गोंमें विचरने वाली वायु कुपित
होकर अग्निको मन्द करके कफको बढ़ा
देती है । तब इस कफसे मार्ग रुक जाने के
कारण त्वचा और मांसके बीच में स्थित
होकर वायु उदर रोगों को उत्पन्न करता है ।

वायुजन्य उदररोग के लक्षण ।

तस्य रूपाणि कुक्षिपाणि पाददृष्टपणश्च यथु
दरविपाटनमनियतौ च वृद्धिहासौ कुक्षिपा-
श्वशूलोदावर्त्तगमर्दपर्वभेदशुष्ककासका-

शरीरदौर्बल्यारोचकविपाकाअधोगुरुत्वंचा-
तवर्चोमूत्रसङ्गः श्यावारुणत्वं नखनयनव-
दनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरं तन्नसितरा-
जीशिरासन्ततमाहतमाध्मातृतिशब्दव-
द्भवति । वायुश्रोध्वमध्मास्तिर्यक्सचशु-
लशब्दश्चरत्येतद्वातोदरं विद्यात् ॥

अर्थ—कूख, हाथ, पांव और अंडकोशों
में सूजन, उदरमें फटनेकी सी पीड़ा क-
भी उदर का बढना और कभी घटना,
कुक्षिशूल, पसलमिश्रूल, उदावर्त; अंग-
मर्द; सीधियोंमें हड्ढटन; सूखी खांसी,
कृशता; दुर्बलता, अरुचि, अविपाक, पेटके
नीचे के भागमें भारापन, अधोवायु, विष्टा
और मूत्रका रुकजाना, नख, नेत्र, मुख,
त्वचा, मूत्र और विष्टाका काला या लाल
होजाना, पतली और काली रेखाओंका उ-
दरपर पडना, नीली नसोंका चमकना, पेट
को वजाने से फूलीहुई मशक के समान
बन्दहोना, तथा वायुका ऊपर, नाँचे, तिरछे
शूल और शब्दयुक्त धूमना ये सब वातो-
दर के लक्षण हैं ॥

पिचोदरका कारण ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णान्यातपसे-
वनैः । विदाह्यध्यशनाजीर्णैश्चाशुपित्तं
समाचिनम् ॥ प्राप्यानिलकफोरुद्ध्वा
मार्गमुन्मार्गमास्थितम् । निहत्यः माशये
बन्धिनजनयत्युदरंततः ॥

अर्थ—कडे, खट्टे, नमकीन, अत्यन्त
उष्ण और तीक्ष्ण भोजनों के करने से, अ-
ग्नि और धूपका सेवन करने से, विदाही

अन्न, अध्यशन और अजीर्णकर्त्ता अग्निके
सेवन से पित्त इकट्ठा होकर कफ और वात
से मिलजाता है और तब ये पित्तके मार्ग
को रोकलेते हैं, इस मार्ग के रुकने से पित्त
ऊपरको जाताहै और आमाराशयस्थ बन्धिका
नाश होजाता है और तब पित्त के कारण
उदररोग उत्पन्न होते हैं ॥

पित्तोदर के लक्षण ॥

तस्यरूपाणि । दाहज्वरतृष्णा मूर्च्छा ती-
सारभ्रमाः कटुकास्यत्नं हरितहरिद्रत्वं न-
खनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरं-
नीलपीतहारिद्रहरिततारप्रराजीशिरावन-
ज्दं दद्यात् । शूलपथे धूप्यते उपमायते स्विद्यते
क्रियते मृदुस्पर्शक्षिप्रपाकश्च भवत्येतत्पि-
चोदरं विद्यात् ।

अर्थ—दाह, ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, अ-
तीसार, भ्रम, मुखमें कड़वापन, नख, नेत्र,
मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टाका हरा वा
हलदी के समान वर्ण होजाना, पेटमें नीली
पीली, हारिद्रवर्ण, हरी और ताँवेकीसी रे-
खाओं का पडजाना, नसोंका चमकना, तथा
पेट में दाह, ऐंठा, धूमनिर्गम, ऊष्मा, स्वे-
दन, क्लेद, मृदुस्पर्श और क्षिप्रपाक भी हो
ता है, ये सब पित्तोदर के लक्षण हैं ॥

कफोदर के हेतु ॥

अव्यायामदिवास्वप्नस्वाद्रतिस्निग्धपि-
च्छिलैः । दधिदुग्धोदकानूपमांसैश्चा-
त्युष रेषितैः ॥ कुट्टेन श्लेष्मणा स्रोतः स्वाह-
तेष्वावृताऽनिलः । तमेव पीडयन् दुर्ग्यादुद-
रं वाहिरन्वगः ॥

अर्थ—व्यायाम न करने से दिनमें सोने से, मीठे, अत्यन्तचिकेन, पिच्छिल भोजनों के करने से, दही, दूध, जल और आनूप-मांसके अत्यन्त सेवन से कुपित कफ स्रोतः समूह से व्यायुको रोक देता है। तब वह वायु श्लेष्माको बाहर और भीतर पीडित कर के कफोदर को उत्पन्न करती है ॥

कफोदर के लक्षण ॥

तस्यरूपाणिगौरवारोचकाविपाकाङ्गमर्द सुतिपाणिपादमुष्कोरुशोफोत्क्लेशनिद्राका सञ्वासाःशुक्लत्वञ्चनखनयनवदनत्वङ् मूत्रवर्चसामपिचोदरंशुक्लराजीसिरासन्त तशुशुस्तमितस्थिरं कठिनञ्चभवत्येतत् श्लेष्मोदरंविद्यात् ॥

अर्थ....भारापन, अरुचि, अविपाक, अङ्गमर्द, सुति, हाथ, पांव और अङ्गकोषों में सूजन, उत्क्लेश, निद्रा, खांसी, श्वास, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टाका श्वेत होजाना, पेट में श्वेतधारियों और नसोंका चमकना, पेटमें भारापन, स्तिमिता, स्थिरता और कठिनता ये सब लक्षण कफोदरके हैं ॥

सन्निपातिक उदर रोग के हेतु ॥

दुर्बलमेरपध्यामविरोधिगुरुभोजनात् । सधुर्क्तश्चरजोरोमविष्णूत्रास्थिनखादिभिः । विषञ्चापन्दैर्वातायाःकुपिताःमन्त्रिचिताःत्रयः । शनैःकोष्ठेप्रकुर्वन्तो जनयन्त्युदरंरूपां ॥

अर्थ—मन्दाग्नि वाला मनुष्य अहिता क-वा, विरोधा और भारी भोजन करे। अथ रज, रोम, विष्टा, मूत्र हड्डी और नख भोजनके साथ खाजाय अथवा मन्द

विपका सेवन करे तब उसके तीनों दोष कुपित होकर शनैः २ कोष्ठमें इकट्ठे हो कर उदररोगों को करते हैं ॥

सन्निपातिक उदर रोगके लक्षण ॥
सर्वेषामेवदोषाणांसमस्तानिलिङ्गान्युप-
लभ्यन्तेवर्णाश्चनखादिपूदरमपिनात्राव-
र्णराजीसिरासन्ततंभवत्येतत्सन्निपातो-
दरंविद्यात् ।

अर्थ—त्रिदोषज उदररोगमें सम्पूर्ण दोषों के मिलेहुए लक्षण पाये जाते हैं। नख, नयन, वदन, मूत्र और पुगीपमें सब प्रकार का रंग होता है। पेटमें अनेक रंगोंकी धारियाँ और नसोंका जाल होता है इन लक्षणों से युक्त उदरको सन्निपातोदर कहते हैं ।

प्लीहोदर के कारण ।

अशितस्यातिसंस्रोभाद्यानयानाभिचे-
ष्टितैः । अतिव्यवायभाराध्वमनव्या-
धिकर्शनैः ॥ वामपार्श्वश्रितःप्लीहाच्युतः
स्थानात्प्रवर्द्धते । शोणितंवारसादिभ्यो
विवृद्धन्तीववर्द्धयेत् ॥

अर्थ—भोजन करके सवारी पर चढ़कर वा वैसेही कठिन चेष्टाओंके द्वारा संश्लोभ करनेसे, अन्यन्त व्यवाय, भारवहन, मार्ग चलना, वमनादि व्याधियों से कर्षण, इन हेतुओंसे बाये पसवाडे में स्थित प्लीहा (ता-पतिल्ली) अपने स्थानको छोड़कर बढ़ने लगती है। अथवा रसादि से बड़ा हुआ रक्त प्लीहा को बढ़ाने लगता है ।

प्लीहोदर की वृद्धि ।

इतितस्यप्लीहाकठिनोष्णिलेवादौवर्द्धमानः ।

कच्छपसंस्थानउपलभ्यतेसञ्चोपेक्षितः
क्रमेणकुक्षिजठरमग्न्याधिष्ठानंचपरीक्षम-
न्मुदरमभिनिवर्त्तयति ॥

अर्थ—इस तरह यह प्लीहा प्रथम पत्थर के समान कठोर होती है, और फिर बढ़ते बढ़ते कछुएकी पीठके समान आकृति धारण करलेती है । यदि इसकी चिकित्सा न की जाय तौ यह क्रम से कूख, जठर और अग्निस्थानको परिक्षिप्त करके उदर रोगको उत्पन्न करती है ।

प्लीहोदर के लक्षण ।

दौर्बल्याग्रेचकाविपाकवर्चोमूत्रग्रहतमकपि
पासाङ्गमर्दच्छर्दिमूर्च्छागसादकासश्वास
मृदुज्वरानाहाग्निनाशकाश्यास्पवैरस्यप
र्वभेदकोष्ठवातशूलान्पिचोदरमरुणवर्णावि
वर्णवानीलहरितहारिद्राजिमज्जवत्पेवमे
वयकृदपिदक्षिणपार्श्वस्थकुम्भ्यात्तुल्यहे-
तुर्लिगौषधत्वात्तस्यप्लीहजप्रावरोध-
त्येतत्प्लीहोदरविद्यात् ।

अर्थ—दुर्बलता, अरुचि अविपाक, मूत्रग्रह-
तमकश्वास, प्यास, अंगमर्द, वमन, मूर्च्छा
अंगरुलानि, खांसी, श्वास, मृदुज्वर, आनाह
मृदाग्नि, कृशता, मुख में विरसता हड्डी-
टन, कोष्ठ में वात वेदना, पेटका लाल वर्ण
वा विवर्णता, पेटपर नीली, हरी, हरिद्वर्ण
रेखाओं का होना आदि उपद्रव होते हैं । इसी
तरह दाहिनी कूखमें जो यकृत होती है वह
भी ऊपर कहे हुए लक्षणों को प्रकट करती
है । परन्तु यकृत और प्लीहाके हेतु, लक्षण
और औषध एकसेही हैं । इससे प्लीहा से

इसकी उत्पत्तिका अवरोध है ये प्लीहोदर
के लक्षण हैं ॥

बद्धोदर के हेतु ।

पक्ष्मवालैःसहान्नेनभुक्तैर्वद्वायनेगुदे ।
उदावर्त्तैस्तथाशौभिरन्त्रसंमूर्च्छेनैववा ॥
अपानोमार्गसंरोधाद्धत्वाग्निकुपितोऽन-
लः।वर्चःपित्तकफान्मृद्ध्वाजनयत्युदरततः

अर्थ—पक्ष्म और बाल मिलाहुआ भोजन कर लेंने से उदावर्त्त से; अंशसे वां-
आंतों के सुकड़ जानेसे गुदाका मार्ग रुक-
जाने पर मार्ग संरोध के कारण कुपित हुई
अपानवायु जठराग्नि को नष्ट करके पुरीष,
पित्त और कफको रोककर उदर रोग को
उत्पन्न करती है ।

बद्धगुदोदर के लक्षण ।

तस्यरूपाणितृष्णादाहज्वरमुखतालुशोषो
रसादकासश्वासदौर्बल्यारोचकाविपाकव-
र्चोमूत्रसंगाध्मानछर्दिःक्ष्वथुशिरोहन्नाभि
गुदशूलान्पिचोदरंमूढवातंस्थिरमरुणनी
लराजिसिरावनद्धंमराजिकंवाप्रायोनाभ्यु
परिगोपुच्छवदभिनिवर्त्ततइत्येतद्बद्धगु-
दोदरविद्यात् ॥

अर्थ—तृष्णा, दाह, ज्वर, मुखशोष, तालु-
शोष, ऊहसाद, खांसी, श्वास, दुर्बलता,
अरुचि, अविपाक, पुरीषवद्धता, मूत्रवद्धता,
आध्मान, वमन, छौंक, शिरः शूल, हृदशूल,
नाभिशूल, गुदशूल, तथा अधोवातकी
विवन्धता, पेट में स्थिरता, लाल और नी-
लवर्णकी रेखा, नसेकजालों का चमकना,
अथवा रेखाओं का न होना, प्राग्नाभि

के ऊपर गौकीं घूँछ के आकार के सदृश होजाना, ये सब वद्वगुदोदके लक्षण हैं ॥

छिद्रोदर के हेतु ॥

शर्करातृणकाष्ठास्थिकण्टकैरन्नसंयुतैः ।
भिक्षेतान्त्रयदाभुक्तैर्जृम्भयात्याशितस्यच ॥
इयात्पाकरसस्तेभ्यः छिद्रेभ्यः प्रसवद्व
हिः । पूरयन् गुदमवज्जनयत्युदरं ततः ॥

अर्थ.... भोजनके साथ में रेत, कंकर, तिनुका, काठ, हड्डी वा कांटे खालेनेसे जब आँते फटजाती हैं अथवा अत्यन्त भोजन करके जोर से जैभाई लेने के कारण जब आँते फटजाती हैं । तब उन छिद्रोंमें होकर पाक रस बाहर टपकने लगता है और गुदा और आँतोंको पूर्ण करके उदररोगों को उत्पन्न करता है ॥

छिद्रोदरके लक्षण ॥

इतितदधोनाभ्याः प्रायोऽभिनिवर्त्तमान
मुदकोदरस्य च यथावलंचदोपाणारूपाणि
दर्शयत्यपि चातुरः सलोहितनीलपीतोप
च्छिलकुणपगन्धामवर्च उपवेशतो हिकाभ्या
सकासतृष्णा प्रमेहारोचकाधिपाकदौर्बल्यप
रीतश्च भवत्येताच्छिद्रोदरं विद्यात् ॥

अर्थ—यह रोग प्रायः नाभीके नीचे उत्पन्न होता है और दोपों के बलके अनुसार इसमें जलोदरके से लक्षण दिखलाई पड़ते हैं और रोगीके लाल, नीला, पीला निच्छिल, कुणुपगंधी और आम विष्टा निकलता है । तथा उसके हिचकी, श्वास, खोसी, तृष्णा, प्रमेह, अरुचि अविपाक, दुर्बलता ये उपद्रव होते हैं इसे ही छिद्रोदर या क्षुतोदर कहते हैं ॥

जलोदरके हेतु ॥

सनेहपीतस्य मन्दाग्निः क्षीणस्याति कुशस्य वा
अत्यम्बुपानान्नेष्टेऽर्जामासुतः क्लोमिनस
स्थितः ॥ स्रोतः मुरुद्ध मार्गेषु कफश्चोदक
मूर्च्छितः ॥ चर्द्धयेतां तदेवाभ्युतत्स्थानादुद
रायतौ ॥

अर्थ—जिसने खेह पान किया है, जिसकी अग्नि मन्द है, जो क्षीण और अत्यन्त कुश है उसके अत्यन्त जल पीलेनेसे, आग्नि मंद पड़जाती है और वायु पिपासास्थानका आश्रय लेकर और जल से मूर्च्छित कफ स्रोतों के रुके हुए मार्गोंमें ठहरकर दोनों कफ और वायु बढ़ने लगते हैं और वह जल वहांसे उदरमें आकर जलोदर उत्पन्न करता है ।

जलोदरके लक्षण ॥

तस्य रूपाण्यनन्तकान्नापि पासागुदस्ताव
शूलश्वासकासदौर्बल्यान्यपि चोदराना
नावर्णराजिशिरासन्ततमुदकपूर्णवृत्तिक्षो
भसंस्पर्शं भवत्येतदुदकोदरं विद्यात् ॥

अर्थ—अन्नमें अनिच्छा, तृष्णा, गुदा से जलका स्त्राव, शूल, श्वास, खोसी, दुर्बलता पेट में अनेक रंगकी रेखाओं का होना, न सोका चमकना तथा जलसे भरी हुई मशकके समान उदरका हाथ लगातेही धलधलकरना, ये सब जलोदर के लक्षण हैं ।

चिकित्साके योग्य उदररोग ॥

तत्राचिरोत्पन्नमनुपद्रवमनुदकमासुदरं
त्वरमाणः चिकित्सेदुपेक्षितानां हि पांशोपाः
स्वस्थानादपावृत्ताः अपरिपाकाद्द्विभूताः

पंनरम् ॥ जन्मनैवोदरं सर्वमायः कृच्छत
ममत्तम् । वलिनस्तदजाताम्बुयत्नसाध्यं
वोत्थितम् ॥

अर्थ....जिस उदररोगी की आंखों पर
सूजन आजाती है, उपस्थेन्द्रिय टेढ़ी पड़-
जाती है, त्वचा छिन्न और पतली पड़जाती है
बल, रक्त, मांस और जठराग्नि क्षीण पड़-
जाती हैं, उसे त्याग देवै । मर्मस्थानों में सू-
जन, श्वास, हिचकी, अरुचि तृषा, मूछी,
वमन, अतिसार आदि उपद्रवों के होने से
उदररोगी मरजाता है । उत्पन्न होतेही सब
प्रकारके उदररोग प्रायः असाध्य होते हैं
परन्तु इन में से वह रोग जो बलवान् पुरुष
के नहीं ही हुआ हो और जिस में जल
उत्पन्न न हुआ हो वह बहुत यत्न करने से
साध्य होजाता है ॥

अजातउदकोदरके लक्षण ।

अशोधमरुणाभासंसंशब्दनातिभारिकम्
सदागुडगुडायन्तं शिराजालगवाक्षितम् ।
नाभिर्विष्टभ्यपायौ तु वेगं कृत्वा प्रगश्याति ॥
हृन्नाभिवेक्षणकटीगुदप्रत्येकशूलिनः ।
कर्कशसृजते वातं नातिमन्दे च पायके ॥
मूत्रेऽल्पे संहते विपिलालया विरेसे मुखे ।
अजातोदकमित्येतैर्लिङ्गैर्विज्ञायतत्त्वतः ॥
उपक्रामत्भिषग्दोषवलकालविशेषवित् ।

अर्थ—जिस उदररोगी के पेट पर सू-
जन नहीं होती है, उदरका रंग लाल हो,
शब्दयुक्त हो, पेटमें बहुत भारापन न हो,
सदा गुड गुड शब्द होता रहता हो, गवाक्ष
के समान नसों के जाल से प्रति, वायु

नाभि के पाससे गुड़ गुड़ाहट उत्पन्न कर
के गुदा में वेग उत्पन्न करके नष्ट होजाती
हो रोगी के हृदय, नाभि, वेक्षण, कमर
और गुदा प्रत्येक स्थान में शूल होता हो
कर्कश शब्द करती हुई वायु निकले ।
अग्नि अति मन्द न हो, पेशाब थोड़ा हो,
विष्टा कम हो, मुखसे लारटपकती हो, मुख
का जायका बिगड़ गया हो । ये सब लक्ष-
ण उस उदररोग के हैं जिस में जल उत्प-
न्न न हुआ हो । इन सब लक्षणों का विचा-
र करके दोष, बल और काल के अनुसार
उदररोगों का चिकित्सा करे ।

वातोदर में चिकित्साक्रम ।

वातोदरे वलवतः पूर्वस्नेहैरुपाचरेत् ॥ स्नि-
ग्धायस्वेदितां गायदद्यात्स्नेहविरेचनम् ।
हृते दोषे परिम्लानवेष्टयेद्वातसोदरम् ॥
तथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाश्मापयेत्तु पुनः ।
वोपातिमात्रे पचयात्स्रोतसां सन्निरोध-
नात् ॥ सम्भवन्त्युदराण्येवमतो नित्यं
विशोधयेत् । शृङ्गं संसृज्य च क्षीरं वलार्थं
पाययेत्तु तम् ॥ प्रागुत्केशाग्निवर्त्य
श्रवले लब्धक्रमात्पयः । यूपैरसैर्वा मन्दा
म्ललवणैरोधितानलम् ॥ सोदावर्त्तपुनः
स्निग्धं स्विन्नमास्थापयेन्नरम् ॥

अर्थ—वातोदर में बलवान् मनुष्यकी
प्रथम स्नेहनकर्म द्वारा चिकित्सा करे । स्ने-
हन और स्वेदन के पीछे स्नेह विरेचनका
प्रयोग हित है इस तरह दोषों के दूर होने
पर जब म्लानता उत्पन्न होजाय तब
उदर पर वज्र छेपटना चाहिये, ऐसा करने

से वायु प्रवेश होनेका स्थान न पाकर फिर पेटको नहीं फुलासकती है ॥ दोपों के अधिक इकट्ठे होजाने से और खोंतो के रुक जानेही से उदररोग हुआ करते हैं इससे उदररोग में नित्यप्रति विरेचन देना चाहिये ॥ जब रोगी शुद्ध होजाय तब पेयादि विरेचन के उत्तरक्रमोंका साधन कराके बल बढ़ानेके निमित्त दुग्धपान करावै । बल आजाने पर दोपों के उत्केश होने से पहिलेही क्रम से दुग्धका त्याग करादेवै, अग्नि का रोध होजाने पर और उदावर्तमें फिर स्नेहन करके किंचित् नमक और खटाई डालकर यूप वा मांस रस की आस्थापन वस्ति देवै ॥

स्फुरणाक्षेपसन्ध्यस्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकार्तिपु॥
दक्षिणविबद्धविड्वातंरूक्षमप्यनुवासयेत्॥
तीक्ष्णाधोभागयुक्तःस्पान्निरूहोदाशमू
लिकः ॥ वातघ्नान्मलसृतैरण्डतिलतैला
नुवासनः॥

अर्थ—फुरफुरी वा आक्षेप (हाथ पांव फेंकना) होने से तथा सान्धि, अस्थि, पसली पाँठ और त्रिकमें वेदना होने से उस दाँताग्नि पुरुषका जिसका विष्टा वन्द होग याहो और जो रूक्षभी हो उसे अनुवासन वस्ति देवे ॥ तीक्ष्ण विरेचनकर्त्ता औपधियों को मिला कर दशमूल के क्वाथ से निरुहणवस्ति देवै । तथा वातनाशक अम्ल औपधियों को संयुक्त करके अरंडी के तेलकी अनुवासन वस्ति देवै ॥

विरेचन के अयोग्य व्यक्ति ।

अविरेच्यंतुयंविद्याद्दुर्बलंस्थविरंशिथुम्॥

सुकुमारं प्रकृत्याल्पदोषं वातोत्त्वणानलम्
तं भिषक् रुशमनैः सर्पिर्धूपमांसरसौदनैः ।
वस्त्यभ्यङ्गानुवासैश्चक्षीरैश्चोपाचरेद्बुधः

अर्थ—दुर्बल मनुष्य, बुड्ढा, बालक, सुकुमार, प्रकृति से अल्पदोष युक्त व्यक्ति तथा वातोत्त्वण मनुष्यको विरेचन देना ठीक नहीं है । ऐसे रोगीको घृत, यूप, मांसरस और ओदनके संयोगों से संशमन औपधियाँ देवै, तथा वस्ति, अभ्यंग, अनुवासन और दुग्धद्वारा चिकित्सा करै ॥

पित्तोदर में चिकित्साक्रम ॥

पित्तोदरे तु विलनं पूर्वमेव विरेचयेत् । दुर्बलं
त्वनुवास्यादौ शोधयेत् क्षीरवस्तिना ॥
संजातबलकायाग्निपुनःस्निग्धं विरेचयेत् ।
पयसा सान्निवृत्तकलेनो रूक्कशृतेन वा
सातलात्रायमाणाभ्यां शृतेनारग्वधेन वा
सकफेवासमूत्रेण सवातोत्तकसर्पिणा ॥
पुनःक्षीरप्रयोगंच वस्तिकर्म विरेचनम् ॥
क्रमेण ध्रुवमातिप्रुनयुक्तः पित्तोदरं जयेत् ।

अर्थ—पित्तोदरमें बलवान् रोगीको प्रथम विरेचन देवै ॥ और जो रोगी दुर्बल हो तौ उसे प्रथम अनुवासन देकर क्षीरवस्ति द्वारा शुद्धकरै ॥ इस तरह बल और जडरा मिले बढनेपर स्नेहनकर्म करने के पछुद विरेचन देवै ॥ विरेचन देने के समय में हैं, यथा दूध और नितोषका कत्त. जेने के बीज डालकर बाँटाया हुआ दूध, कपूर, सातला और प्रायमाणा दालकर कट्टाया हुआ दूध, कपूर, कन्कज, इन्कज, और टाया हुआ दूध । कन्कज, इन्कज, और

गोमूत्र मिलाकर दूध पानकरावे और वाता-
नुबन्धी पित्तोदरमें तिक्तक घृतद्वारा विरेचन
देवै ॥ इसतरह दूधका प्रयोग करने के पीछे
वास्तिकर्म करके विरेचन देने से रोगका बल
ठीक रहता है और पित्तोदरभी शीघ्रही शान्त
हो जाता है ॥

कफोदर में चिकित्साक्रम ॥

स्निग्धस्निग्धविशुद्धतुकफोदरिणमातुरम् ।
संसर्जयेत्कडुसारगुक्कैरशैः कफापहैः ॥
गोमूत्रारिष्टपानैश्च चूर्णायस्ततिभिस्तथा
संसारैस्तैलपानैश्च शमयेत्तुकफोदरम् ॥

अर्थ—कफोदर रोगी को स्नेहन, स्वेदन
और संशोधन देकर कफनाशक कटु और
क्षार युक्त अन्नका पच्य विधान करै । तथा
गोमूत्र, अरिष्ट, लोहचूर्ण, क्षार, तैलपान
आदि से कफोदर को दूर करै ॥

सन्निपातोदर में चिकित्साक्रम ॥

सन्निपातोदरे सर्वायथोक्ताः कारयेत्तुक्कि-
याः ॥ सोपद्रवन्तुनिर्गुत्तं प्रत्याख्येयां वि-
जानता ॥

अर्थ—सन्निपातोदरमें पूर्वोक्त सम्पूर्ण कि-
याओंका करना उचित है । यदि इस उ-
दररोग में उपद्रव हों तो चिकित्सा करना
त्याग देवै ॥

श्लीहोदर में चिकित्साक्रम ॥

उदावर्तलग्नानाहैर्दाहमोहत्पाज्वरैः ॥
गौरवारुनिकाठिन्यैः चानिलादीन्यथाक्रमम् ।
लिङ्गैः श्लीहोदरानुहृष्टारक्तवापि
स्वलक्षणैः ॥ चिकित्सासंभ्रुवर्तितयथा-
दोषपयावलं ॥

अर्थ—श्लीहोदर में उदावर्त, शूल और
आनाह के होने पर वात की चिकित्सा करै
करै । दाह, मोह, तृषा और ज्वर होनेपर
पित्तकी और भाराग्न, अरुचि और काठिन
ता के होनेपर कफ की चिकित्सा कर्तव्य है,
और यदि रक्तज ग्रहा के लक्षण दिखाई
दें तो रक्त की चिकित्सा करै । इसमें दोष
और बलपर अवश्य ध्यान देना उचित है ॥

उदररोग में कर्तव्य कर्म ॥

स्नेहस्वेदं विरेकञ्च निरूहमनुवासनम् ।
समीक्ष्य कारयेद्वाहौ वामे वा व्यधयेच्छिरा-
म् ॥ पट्पट्वापि वेत्सर्पिः पिप्पलीर्वा प्र-
योजयेत् । सगुडामभयां वापि क्षारारि-
ष्टगणांस्तथा ॥

अर्थ—जैसा उदररोग हो उस के अनु-
सारही स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, निरूहण
और अनुवासनादि कर्म करावै अथवा वाम
वाह में रगको वेधकर रुधिर निकाल दे ।
अथवा पट्पटघृत, वा पिप्पल्यादि रसायन,
वा गुड और हरड वा क्षारों और अरिष्टोंका
देना उचित है ॥

उदररोग में प्रयोग ॥

पिप्पलीनागरदन्तीचित्रकंद्विगुणाभयम्
विडङ्गाशयुतचूर्णमेतदुष्णाम्बुनापिबेत् ॥
विडङ्गचित्रकंशुटीसघृतांसैन्धवं यचाम् ।
दग्ध्वाकपालेपयसागुल्मश्लीहापहंभवेत् ।
रोहीतकलतानान्तुकाण्डिकासाभयाज-
ले । मूत्रवाशतमेतच्च सप्तरात्रस्थितोपिबेत्
कामलागुल्ममेहार्शः प्लहिसर्वोदरकिमीनात्
दन्पाजांगलरसैर्जीर्णस्यान्नान्नभोजनम् ॥

अर्थ—पीपल, सोंठ, दंती और चीता ये चारों समानभाग, दोभाग हरड, चतुर्थांश घायविडंग इन सबका चूर्ण बनाकर गरम-जलके साथ फांकना चाहिये ॥ वायवि-डंग, चीता, सोंठ घृत, संधानमक और वच इन को एक कुलड़े में भरकर फूंकले फिर इनका चूर्ण बनाकर दूधके साथ सेवन करें ती गुल्मरोग और प्लीहा दूर होजाते हैं ॥ रोहेडाकी शाखाके अप्रभागों को लेकर और हरड को कूटका जल वा गोमूत्र में औटाकर छानले और सातरात तक धरारहने दें । तदुपरांत इनका सेवनकरने से कामला गुल्म, मेह, अर्श, प्लीहा, सब प्रकार के उदररोग और क्रिमि नष्ट होजाते हैं । इस औषध के पचने पर जांगल जीवों के मांस रसके साथ भोजन करें ।

रोहीतक घृत ।

रोहीतकत्वचःकृत्वापलानांपञ्चविंशतिम्
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तकपायमुपकल्पयेत् ॥
पालिकैःपञ्चकोलैस्तुतैःसर्वैश्चापितुल्यया
रोहीतकत्वचापिष्टैःघृतप्रस्थविपाचयेत् ।
प्लीहातिवृद्धिशमयत्येतदाशुप्रयोजितम् ।
तथागुल्मोदरश्वासक्रिमिपाण्डुत्वकामलाः

अर्थ—रोहेडे की छाल पच्चासपल, कोल दो प्रस्थ इन दोनों को अठगुने जल में चढादे और चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले । फिर इस में पंचकोलोक्त द्रव्य एक एक पल और रोहेडे की छाल पांच पल इनका चूर्ण करके ढालदे और एक प्रस्थ घी ढाला र पकाई घृत शेष रहने पर

उतार लेवै यह घृत अत्यन्त बड़ी हुई प्लीहा को शीघ्रही शान्त करदेता है, तथा गुल्म-रोग, उदररोग, श्वास, क्रिमिरोग, पाण्डुरोग और कामला इन को भी दूर करदेता है ॥

अन्यप्रयोग ।

अग्निर्कर्मचकुर्याताभिषवातकफोत्प्लेणे ।
पैत्तिकेजीवनीयानिसर्पीपिक्सीर्यस्तयः ।
रक्तावसेकःसंशुद्धिःक्षीरपानंचशस्यते ॥
यूपैर्मांसरसैश्चापिदीपनीयसमांयुतैः ।
लघून्यन्नानिसंसृज्यभजेत्प्लीहोदरीनरः

अर्थ....वात और कफकी अधिकता में अग्निर्कर्म करना हित है । पैत्तिक उदर में जीवनीय गणोक्त द्रव्य, तिक्तकादि घृत क्षीर वास्ति, रक्तमोक्षण, संशोधन और दुग्ध-पान हितकर होते हैं प्लीहोदर में दीपनीय औषधियों से सिद्ध यूप और मांसरस के साथ लघु अन्नका भोजन हित है ।

बद्धोदर में चिकित्सा ।

स्विन्नागबद्धोदरिणेभूवतीक्ष्णौषधान्वि-
तम् । संतललवणंदद्यान्निरुहंसानुवास-
नम् ॥ परिसंसीनिचान्नानितीक्ष्णञ्चैव
विरेचनम् उदावर्त्तहरं कर्मकार्येवातघ्नमेव च

अर्थ....बद्धोदररोगी को स्नेहन देकर तीक्ष्ण विरेचन देंवै, उदावर्त्त नाशक कर्म तथा वातनाशक क्रिया का भी प्रयोग करें ॥

छिद्रोदर में कर्त्तव्यकर्म ।

छिद्रोदरघृतेस्वेदात्तुल्योदरवदाचरेत् ।
जातंजातंजलंस्नान्यमेवंतत्पाययेद्विपका ।
तृष्णाकासज्वरास्तुक्षीणमांसाग्निभोज-
नम् ॥ वर्जयेत्स्वासिनंतद्वत्शूलिनंदु-
र्बलेन्द्रिगम् ॥

अर्थ....छिद्रोदरमें स्वेदनकर्मके अतिरिक्त कफोदर के सदृश शेष चिकित्सा करनी चाहिये। जितना जितना जल पेटमें उत्पन्न होता जाय उतना उतनाही निकाल देना उचित है। इसतरह इस रोगको याप्य करता रहे। जिस छिद्रोदर में तृष्णा, खांसी, ज्वर, क्षीणमांस, क्षीणाग्नि, क्षीणभोजन, स्वास, शूल और दुर्बलेन्द्रियता आदि उपद्रव होते हैं वह दुर्चिकित्स्य होता है ॥

जलोदर में चिकित्सा ।

अपांदोपेग्रहण्यादौ विदध्यादुदकोदरे ।
मूत्रयुक्तानि तीक्ष्णानि विविधं क्षारवन्ति च
दीपनीयैः कफघ्नैश्च तमाहारैरुपाचरेत् ।
द्रव्यैश्चोदकादिभ्यो नियच्छेदनुपूर्वशः ।

अर्थ—जलोदरमें ग्रहणी आदि में जल का दोष होनेपर गोमूत्र मिश्रित तीक्ष्णक्षार युक्त औषधियोंका प्रयोग करे। दीपनीय औषधियोंसे संयुक्त कफनाशक औहार का सेवन करावे। इस रोगमें जल आदि द्रव पदार्थों का सेवन कराना बन्द रखे ॥

उदररोगोंमें साधारणविधि ।

सर्वमेवोदरं प्रायोदोषसंघातजं मतम् । त-
स्मात्त्रिदोषशमनीं क्रियां सर्वेषु कारयेत् ॥
दोषैः कुक्षौ हि संपूर्णैर्बन्धिर्मन्दत्वमृच्छति ।
तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघू-
नि च ॥ रक्तशालीन्यवानमुद्रान् जांगला-
श्च मृगद्विजान् । पयोमूत्रासवारिष्ठान् मधु-
शीधूंस्तथा मुरान् । यवागूमोदनं वापि यू-
मुर्याद्रसैरीष ॥ मन्दा म्लस्नेहकटुभिः
यच्च मूलोपसाधितः ॥

अर्थ—प्रायः सम्पूर्ण उदररोग त्रिदोष से उत्पन्न होते हैं इससे इनमें त्रिदोषनाशिनी क्रिया करना उचित है। दोषों के कुक्षिमें भरजाने से अग्नि मन्द पड़जाती है इस लिये अग्निसंदीपन और लघु भोजन करना चाहिये, यथा रक्तशालि, जौ, मृग, जांगल पशुपक्षियोंका मांस, दूध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु, शीधु, और मुरा दें। थोड़ी सी खटाई, चिकनाई और कटुद्रव्य डाल कर लघुपंचमूलसे सिद्ध कियेहुये यूप और मांसरस के साथ यवागू और भातका सेवन करावे ।

उदरमें वर्जितकर्म ।

औदकानूपजं मांसं शाकं पिष्टकृतं तिलान् ॥
व्यायामाध्वद्विवास्वप्नं यानयानञ्च वर्जयेत् ।
तथोष्णलवणाम्लानि विदाहीनि गुरुणि च ।
नाद्यान्नानि जठरीतो यपानं च वर्जयेत् ॥

अर्थ—औदक और आनूपजोंका मांस शाक, पिष्टपदार्थ, तिलके पदार्थ, व्यायाम, भ्रमण, दिवानिद्रा, सवारीपर चढ़कर चलना इन कर्मोंका त्याग देना उचित है। तथा उष्ण, नमकीन, खट्टे, विदाही, भारी भन्नोंका सेवन और जलपानभी त्याग देना चाहिये ।

उदरमें तत्क्रमयोग ।

नातिसान्द्रं मतं पाने स्वादु तत्क्रमेण लवम् ।
यूपणक्षारलवणैर्युक्तं तु निचयोदरी ॥
वातोदरीपि वेत्तं क्रोपिष्णलीलवणान्वित-
म् । शर्करामरिचोपेतं स्वादुपि चोदरीपि-
वेत् ॥ यवानीसैन्धवाजाजीव्योपयुक्तं

कफोदरी । पिवेन्मधुयुतं तं क्रव्यक्ताम्लं
नातिपेलवम् । मधुतैलवचाशुंठीशताद्वा
कुपुसैन्धवैः ॥ युक्तं ग्रीहोदरीजातं सव्यो
पन्तुदकोदरी । वद्धोदरी तु हवुपायमान्य
जाजीसैन्धवैः ॥ पिवेच्छिद्रोदरी तं क्रपि
प्लीक्षौद्रसंयुतम् ॥ गौरवारोचकार्चा
नांसमन्दाग्न्यातिसारिणाम् । तक्रवात
कफार्त्तानाममृतत्यायकल्पते ।

अर्थ—सब प्रकारके उदररोगोंमें त्रिकुटा
क्षार और नमक डालकर ऐसा मठा पीना
चाहिये जो स्वादु और स्निग्ध हो परन्तु ब-
हुत गाढा न हो । वातोदरमें पीपल और
नमक डालकर मठा पीवै । पित्तोदरमें श-
र्करा, कालीमिरच, डालकर मीठा मठापीवै
कफोदरमें अजवायन, सैधानमक, कालाजीरा
और त्रिकुटा डालकर तक्रपान हित है ।
परन्तु इस तक्रमें शहत और तेज खाई
डालेवै । यह अत्यन्त गाढा भी न होना
चाहिये । ग्रीहोदरमें शहत, तेल, वच, सोंठ
सोंफ, कूठ और सैधानमक डालकर तक्र
का पानकरै । जलोदरमें त्रिकुटा डालकर
तक्रपान करै । वद्धोदरमें हाऊवेर, अजवा-
यन, कालाजीरा और सैधानमक डालकर
तक्रपान करै । छिद्रोदरमें पीपल और श-
हत डालकर तक्रपान करै । जो मनुष्य
गौरव, अरुचि, मन्दाग्नि, अतिसार और
वातकफ रोगों से पीडित हैं उनको मठा
अमृत के समान गुणकारी होता है ॥

उदरमेंदुग्धप्रयोग ।

दाहाशोकार्त्तितृणामूर्च्छापीडितेकारभंपयः

शुद्धानां क्षामदेहानां गन्धच्छागंसमाहिपम् ॥

अर्थ—दाह, शोक, अर्ति, तृषा और
मूर्च्छा इन रोगोंके होनेपर हाथिनीका दूध
पान करावै । तथा संशोधन से जो क्षीण
देह होगये हैं उनको गौ, बकरी और भैंस
का दूध पान करावै ॥

उदरपर लेपनादिप्रयोग ।

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिमुक्कैः ॥
साम्बगन्धैः सगोमूत्रैः मदिह्यादुदरसमैः ॥
वृश्चिकालीवचाकुपुपञ्चमूलापुनर्नवाम् ॥
भूतीकांनागरंधान्यं जलेपकावसेचयेत् ॥
पलाशंकटुणं रास्नातद्दपवत्वावसेचयेत् ॥
मूत्राण्वघावुदरिणां सेकेपानेचयोजयेत् ॥

अर्थ—देवदारु, ढाक, आक, गुजरीपल्ले
संहजना और असगन्ध इनको गोमूत्र में
पीसकर पेटपर लेप करै । तथा विछवन,
वच, कूठ, पंचमूल, सांठ, अजवायन, सोंठ
और धनियां इनको जलमें औटाकर उस
जलसे पेट पर तरछा देवै । अथवा ढाक,
कटुण और रास्ना इनको जलमें औटाकर
इस जलसे तरछा देवै । आठों प्रकारके मूत्र
उदररोग में परिपेक और पानमें प्रयुक्त
किये जाते हैं ।

रूक्षानां बहुवातानां तथा संशोधनाधिनाम्
स्नेहनीयानि सर्पीपिजठरघ्नानि वक्ष्यते ॥

अर्थ—रूक्ष, बहुवातपीडित और संशो-
धन के योग्य मनुष्यों के निमित्त उदर-
नाशक स्नेहनीय घृतोंका वर्णन किया जाता है

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्याचित्रकनागरः ॥

सप्ताररुद्धपलिकैस्तैःप्रस्थंसर्पिषःपचेत् ॥
कल्कैर्द्विपञ्चमूलस्यतुलार्द्धस्परसेनच ।
दधिमण्डातकोपेततत्सर्पिर्जठरापहम् ॥

श्वयधुंवातविष्टम्भगुल्मार्शसिचनाशयेत्
अर्थ....पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता,
सोंठ और जवाखार इनमें से प्रत्येक आधे २
पल लेवै, घृत एक प्रस्थ, दशमूल का का-
थ आधातुला और दहीका तोड़ एक तुला
इन सबको पकाकर घृत प्रस्तुत करै इस
घृत के सेवन करनेसे उदररोग, कृजन,
पात विष्टम्भ, गुल्म और आर्श दूर होजातेहैं
नागरादिघृत ।

नागरत्रिफलाप्रस्थघृतौलाचथाढकम् ॥
मस्तुनःसाधयित्वैतत्पिबेत्सर्वोदरापहम्
कफमारुतसम्भूतेगुल्मेचैतत्प्रशस्यते ॥

अर्थ—सोंठ और त्रिफला एक प्रस्थ
ची और तेल एक आढक इनको दहीके
दूने तोड़में पकावै । यह घृत सम्पूर्ण प्रकार
के उदररोग, तथा कफवात से उत्पन्न गु-
ल्मरोगों में हित है ।

चित्रकघृत ।

चतुर्गुणेजलेमूत्रेद्विगुणेचित्रकास्पले ॥
फलकैसिद्धंघृतप्रस्थंसच्चारंजठरीपिवेत् ।

अर्थ—चीता एक पल, घृत एक प्रस्थ,
जवाखार एक पल, गोमूत्र दो प्रस्थ और
जल चार प्रस्थ इनको पाक करले । यह
घृत जठररोग में हित है ॥

यवादि घृत ॥

यवकोलकुलत्थानांपञ्चमूलरसेनच । तु
हासौवीरकाश्यांचसिद्धंघ्रापिपिबेद्घृतम् ॥

अर्थ—जौ, बेर, कुलथी इनका कल्क
पञ्चमूल का काथ मुरा और सौवीर इन
के साथ घृत को पकाकर सेवन करै ।

एभिःस्निग्धायसंजातेबलेशान्तेचमारुते ॥
सस्तेदोपाशयेदद्यात्कल्पदृष्टाविरचनम् ॥

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए घृतोंसे जब
रोगी स्निग्ध होजाय, उसमें बल बढ़जाय
और वातभी शान्त होजाय तब दोपाशय
की शुद्धिके निमित्त कल्पस्थानमें कहा हुआ
विरचन देखै ।

पटोलादि चूर्ण ॥

पटोलमूलरजनीविडङ्गात्रिफलात्वचम् ।
काम्पिल्यकोनीलिनीचत्रिष्टताचेतिचूर्णे
येत् ॥ पडाद्यान्कार्पिकानन्यास्त्रिचिद्वि
त्रिचतुर्गुणान् । कृत्वाचूर्णमतोमुष्टिगवां
मूत्रेणवापिवेत् ॥ विरिक्तोमृदुभुञ्जति
भोजनंजांगलैरसैःमण्डपेयाञ्चपीत्वावास
व्योपपडहंपयः ॥ शृतंपिबेत्ततःचूर्णपिबे
देवपुनःपुनःहन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णजा
तोदिकान्यपि ॥ कामलांपाण्डुरोगञ्च
श्वयधुंचापकर्षति ॥

अर्थ—पटलकी जड़, हलदी, वायविडंग
त्रिफलाकी छाल, प्रत्येक एक एक कर्प, क-
वाला दोकर्प, नीलनी तीन कर्प, और नि-
सोध चारकर्प ॥ इन सबका चूर्ण बना लेवै
इसमें से एक पल चूर्ण गोमूत्र के साथ सेवन
करै ॥ दस्त होने के पीछे जांगल मांसरस
के साथ मृदु भोजन करै अथवा मण्ड पेया
को पीकर त्रिकुटा डाला हुआ दूध छः दि-
वस तक पान करै ॥ इसी तरह फिर चूर्ण

का सेवन करके फिर दुग्धादि का सेवन करे । यह चूर्ण उन उदररोगों को भी दूर कर देता है जिन में जलकी उत्पत्ति हो आई है, तथा कामला, पाण्डुरोग और सूजम को भी दूर कर देता है ॥

गवास्यादि चूर्ण ।

गवाक्षीशंखिर्नादन्तीतिल्वकस्यत्वचंच-
चाम् । पिवेद्द्राक्षाम्बुगोमूत्रकोलक-
र्क-
शुशीधुभिः ॥

अर्थ—इंद्रायण, शंखपुष्पी, दन्ती, लो-
ध, वच इनके चूर्णको दाखके काथ के सा-
थ, वा गोमूत्रके साथ वा कौल वा कर्कन्धुके
काथ के साथ वा शीधुके साथ पानकरे ॥

नाराच चूर्ण ।

यमानीह्रुपाधान्यांत्रिफलाचोपकुञ्चिका ।
फरवीपिपल्लीमूलमजगंधाशटीवचा ॥

शताहाजरिकंव्योपस्वर्णक्षीरीसचित्र-
का ॥ द्वौक्षारौपौष्करंमूलंकुण्टलवणपञ्च
कम् । विडङ्गस्यसमांशानिदन्त्याभागा-
स्त्रयस्तथा ॥ त्रिवृद्धिशालयोर्द्वौद्वौसात-
लास्याचतुर्गुणा । एतन्नाराचकंनाम-
चूर्णरोगगणापहम् ॥ नैतत्प्राप्यातिवर्त्त-
न्तेरोगाविष्णुमिवासुराः । तत्क्रेणोदारि-
भिःपेयंगुलिभिर्ब्रह्माम्बुना ॥ आनद्ध-
वातेसुरयावातरोगेप्रसन्नया । दधिमण्ड-
नविट्स्पर्शेदाडिमाम्बुभिरशैः ॥ परि-
फत्तंसदृक्षाम्लमुष्णाम्बुभिरजीर्णके ।
भगन्दरेपाण्डुरोगेश्वासेकासेगलग्रहे ॥
हृद्रोगेग्रहणीदोषेकुष्ठेमन्देऽनलेज्वरे । दं-
ष्ट्राविपेमूलविपेसगरेकृत्रिमेविपे । यथाहं
स्निग्धकोष्ठेनपेयमेतद्विरेचनम् ॥

[११९]

अर्थ....अजवायन, हाऊवेर, धनियाँ, त्रि-
फला, कालाजीरा, छोटा कालाजीरा, पीप-
लामूल, अजगन्ध, फचूर, वच, सोंफ, जी-
रा, त्रिकुटा, स्वर्णक्षीरी, चीता, दोनों प्रकार
के क्षार, पुहकरमूल, कूठ, पांचों नमक और
वायविविडंग एक एक भाग, दन्ती तीन भाग
निसोथ और इंद्रायण दो २ भाग, सात-
ला चारभाग। इन सबको कूट पीसकर चूर्ण
बना लेवै । इस चूर्णका नाम नाराचचूर्ण
है यह सम्पूर्ण रोग समूहों का नाश करने
वाला है । इस चूर्णका सेवन करनेके पदचा-
त् रोग ऐसे नहीं बढ़नेपाते हैं । जैसे विष्णु
के साम्हने असुर गण सिर नहीं उठासक्ते
हैं । इसचूर्ण के भिन्न २ अनुपान ये हैं,
यथा इस चूर्ण को उदररोग में तत्क्रेके साथ
गुल्मरोग में घेरके काथ के साथ; आनाहमें
सुराके साथ; वातरोग में प्रसन्ना के साथ,
मलकीवद्धता में दधिमण्ड के साथ; अशमें
अनार के काथ के साथ; परिकर्त्तिका (पें-
ठा) में वृक्षाम्लके काथके साथ; अजीर्ण में
गरम जलके साथ सेवन करना चाहिये ।
तथा इन रोगोंके अतिरिक्त यह चूर्ण पाण्डु-
रोग, श्वास, खांसी, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणी
दोष, कुष्ठ, मन्दाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविप (दांत
का विप) मूलविप, विपरोग और कृत्रिम-
विप को दूर करदेताहै । यह विरेचनकर्त्ता
औपच रोगोंके कोष्ठ को स्निग्ध करने के
पीछे दीजाती है ॥

ह्रुपादिचूर्ण ॥

ह्रुपाकाञ्चनाक्षीरीत्रिफलाकटुरोहिणी।

क्रमका अवलंबन करना चाहिये । बार बार घृतपान करके मिश्रकघृतका पानकरै कुशळ वैद्यको उचित है कि गुल्म, गरदोष तथा उदररोगों की शान्ति के निमित्त ऊपर कहे हुए वृत्तों का पान करै ।

पीलुकल्कोपसिद्धं वा घृतमानाहभेदन्मागुल्मधन्नीलिनीसर्पिःस्नेहं वा मिश्रकं पिवेत् ॥

अर्थ—पीलू के कल्क क साथ सिद्ध किया हुआ घी आनाह को दूर करता है । गुल्म नाशक नीलिनी घृत वा मिश्रक स्नेह का पान करने से भी उदररोग दूर होजाते हैं ।

क्रमाग्निहृतदोषाणां जांगलप्रतिभोजिनाम् दोषशेषनिवृत्त्यर्थयोगान् वक्ष्याम्यतः परम्

अर्थ—क्रम से विरेचनादि द्वारा दोषों के निकलने पर जांगल मांसरसादि का भोजन करना चाहिये । अब हम यहां से उन योगों का वर्णन करते हैं जो शेष दोषोंकी निवृत्ति के लिये उपयोगी होते हैं ।

अन्यप्रयोग ।

चित्रकामरदारुभ्यां कल्कं क्षीरेण वा पिवेत् ॥ मांसयुक्तस्तथा हस्तिपिप्पली विश्वभेषजात् । विडङ्गचित्रकोदन्ती च व्योपञ्चतेः पयः ॥ कल्कैः कोलसमैः पीत्वामवृद्धमुदरं जयेत् । पिवेत् कपायं त्रिफलादन्ती रोहीतकैः शृतम् ॥ व्योपसारयुतं जीर्णैरसैरथात् सजांगलैः । मांसवाभोजनं भोज्यं सुधाक्षारशृतान्वितम् ॥ क्षीरानुपानं गोमूत्रमभयां धामयोजयेत् । सप्ताहं माहिपमूत्रं क्षीरं चान्नरुक् पिवेत् । मांसमाहं पयः छागं च न्मासान् व्योपञ्चयेत् ॥

अर्थ—चीता और देवदारु इन दोनों के कल्कको दूधके साथ सेवन करै । अथवा गजपीपल, सोंठ, वायविडंग, चीता, दन्ती, चव्य, और त्रिकुटा इन सबको समान भाग लेकर पीसले । इस कल्कमें से बेरके बराबर दूधके साथ एक महीने तक पीवै तो बड़ा हुआ उदररोग शान्त होजाता है । अथवा त्रिफला, दन्ती और रोहेडा इनका ब्वायकरके त्रिकुटा और क्षार डालकर पान करै । औषधोंके पचनेपर जांगल पशुओंका मांसरस देवे अथवा सेहूँडके दूधके घाँके साथ पकाया हुआ मांस देवे । अथवा गोमूत्र के साथ हरडको फाँककर ऊपरसे दूध पीवै । अथवा सात दिवस तक भैंसका मूत्र पीवै और उसी का दूध पीकर रहै, अन्न छोड़ देवे । अथवा ऊँटका मांस और बकरी का दूध त्रिकुटा डालकर तीन महीने तक पीवै ।

हरतीक्षीसहस्रं वा क्षीराक्षीवांशलाजतु । शिलानतु विधानेन गुग्गुलुं वा प्रयोजयेत् ॥ शृङ्गवेरार्द्रकरसः पाने क्षीरसमो मतः । तैलं रसेन तेनैव सिद्धं दशगुणेन वा ॥ दन्तीद्रवन्तीफलजंतैलं दूष्योदरं मतम् । शूलानाहविवन्धेषु सकृत्तु यूपरसादिभिः । १० सरलामरशिघ्रणां जीर्णो मूलकस्य च ॥ तैलान्यभ्यंगपानार्थं शूलघ्नान्यनिद्रोदरैः । स्तमित्वा रुचिहृल्लासेष्वन्याग्निर्मथपस्तथा ॥ अरिष्टान्वापि वृत्तारान् क्रकस्त्या न स्थिरादरः ।

अर्थ—सहस्र हरडका सेवन एक पद बढ़ाने घटाने का रसि से करै और दूध

पान करके रहे । अथवा शिलाजीत का सेवन करे अथवा शिलाजीत की रीतिही से गूगलका प्रयोग करे । अथवा दूध में समान भाग अदरकका रस मिलाकर पीवे अथवा दसभाग अदरकके रसमें एक भाग तेल पकाकर सेवनकरे । अथवा दन्ती और द्रवन्ती के फलों का तेल दूधोदर में सेवन करे - शूल आनाह और विबन्ध रोगों में शकृत्, यूष और मांसरसके साथ इसी तेल का सेवन करे । वातोदर में शूलको नष्ट करने के लिये सरलकाष्ठ, सहजना वा मूली के बीजोंका तेल अम्यग और पानमें प्रयोग करे ॥ कफोदर में जब उदर कफ के कारण स्निग्ध और स्थिर होजाय तब तथा स्तिमिता, अरुचि, हृत्तास, और अल्पाग्नि में मद्यपीनेशाला मनुष्य अरिष्ट वा क्षारोंका पानकरे ।

पिप्पलीतिलकंहिगुनागरंहस्तिपिप्पलीम्
भस्मलातकंशिमुफलंत्रिफलांकदुरोहिणीम् ।
देवदारुह्रिद्रेक्षरलातिविषेवचाम् ।

कुण्डेमुस्तं तथापञ्चलवणानिमकल्पयेत् ॥
दधिसर्पिर्वसातैलमज्जायुक्तानि दाहयेत् ।
अर्न्धूमतथाक्षारादिदालकपर्दपिबेत् ।
मदिरादधिमण्डोष्णजलारिष्टसुरासवैः ।

हृद्रोगंश्वयधुगुल्मंघ्नीहाशौजठराणि च ॥

विमूचिकामुदावर्त्तवाताष्ठीलाञ्चनाशयेत् ।

अर्थ—पीपल, लोध, हिंग, सोंठ, गज पापल, मिलाया, सहजना, त्रिफला, कुटकी देपदारु, दोनों हलदी, सरला, अर्तास, वच, कूट, मोथा- पाचों नमक, इनको कूटकर

दही, घी, वसा, मज्जा, और तेज मिलाकर ऐसी रीतिसे दग्धकरे कि धूआं भीतरका भी- तरही भरजाय बाहर न निकलने पावे । इस क्षारमें से प्रतिदिन दो तोले मदिरा, दधि- मण्ड, उष्णजल, अरिष्ट, सुरा और आसव के साथ पान करे तो हृद्रोग- सूजन, गुल्म रोग, घ्नीहा, अर्श, जठर, विस्चिका, उदा- वर्त्त और वातघ्नीला दूर होजाते हैं ।

आजकरीपका प्रयोग ॥

क्षारश्चाजकरीपाणांशृतमूर्त्रविपाचयेत् ।
कार्पिकपिप्पलीमूलंपञ्चैव लवणानि च ॥
पिप्पलीचित्रकं धुण्ठीत्रिफलां त्रिष्टतां वचा
म् । क्षारौ शातलां दन्तीं स्वर्णक्षरीं विपा
णिकाम् ॥ कोलममाणां वटिकां पिबेत्
सौवीरसंयुताम् । श्वयथावविपाके च मृद्वे
चोदकोदरे ।

अर्थ—वकरीकी, मँगनियोंको जलाकर अठगुने मूत्रमें पकावै जब औटजाय तब एक छन्नेमें होकर चुआले इसतरह बीस कर्ष क्षार लेवै और पीपल मूल, पांचोनमक पीपल, चीता, सोंठ, त्रिफला, निसोथ, वच, दोनों क्षार, शातला, दन्ती, स्वर्णक्षरी, और मेढासिंगी इनको एक एक कर्ष लेकर पीसकर बरकी बराबर गोली बनावै एकगोली खाकर ऊपरसे सौवीरका पान करे। इससे सू- जन, अविपाक और बढे हुए उदररोग नष्ट होजाते हैं ।

उदररोग में भोजन ।

भावितानां गवां मूत्रे पाण्डिकानां तु तण्डुलैः ।
यवाग्न्यप्यसासिद्धं प्रकामं भोजयेन्नरम् ।
पिबेदिधुरसञ्चानुजठराणां निवृत्तयोस्त्रिं

स्वस्थानं ब्रजत्येपांतथापित्तकफानिलाः ॥

अर्थ—साठीचांबलों को गोमूत्रकी भावना देकर दूधके साथ उनकी यवागू बनाकर यथेष्ट भोजन करावै । ऊपरसे इक्षुरस का पान करै, ऐसा करनेसे जठर रोग शान्त होजातेहैं और वात पित्त कफ अपने अपने स्थानोंको चले जातेहैं ।

शैखिनीस्तुक्रिष्टदन्तीचिरिविल्वादिपल्लवैः । शार्कंगाढपुरीषायप्राग्भक्तं दापयेद्विपक्वम् ॥ ततोऽस्मै शिथिलीभूतवर्चोदोषायशास्त्रवित् । दद्यान्मूत्रयुतं क्षीरं दोषशेषहरं शिवम् ॥ पाश्चर्शूलमुपस्तम्भं दृग्ग्रहं च आपिमारुतः । जनयेद्यस्य तैलं सविल्वक्षारेण नापिवेत् ॥

क्षारेण नापिवेत् ॥

अर्थ—जिस रोगीका मल गाढा पड गया हो उसे शंखाहूली, सेंडुड, निसोध, दन्ती और कंजेके पत्तोंका साग भोजन करने से पहिले देवै । जब विष्टा और दोष ढीले पडजाय तब वचे हुए दोषोंको दूर करने के लिये गोमूत्र और दूधका सेवन करावै । जब वायु पाश्चर्शूल, उपस्तम्भ और हृद्ग्रह उत्पन्न करै तब उसे विल्वक्षार के साथ तैलपान कराना चाहिये ॥

तथाग्रिमन्यश्यानाकपलाशतिलनालजैः । बलाकदल्यपामार्गक्षारैः भृत्यैकशः सुतैः ॥ तैलपक्त्वाभिपगद्घादुदराणां प्रशान्तये नियतेते चोदरिणां हृद्ग्रहश्चानिलोद्भवः ॥

अर्थ—अरुनी, सौनापाठा, ढाक, तिलकी नाळ, खैरटी, फेला, आंगा, इन सब के तारोंको अलग अलग तयार करै । फिर

इन क्षारों के साथ तैल सिद्ध करै । यह तैल उदररोग तथा वातज हृद्ग्रह को दूर करदेता है ।

कफेवातेसपित्तेन ताभ्यां वाप्यावृत्तेऽनिले वलिनः स्वौषधयुतं तैलमैरण्डजं हितम् । सुविरिक्तो नरो यस्तु पुनराधमती हितम् ॥ सुश्चित्तरम्लवर्णैर्निरुहैः समुपाचरेत् ॥

अर्थ—कफ, वात वा वातपित्तसे वायु के आवृत होने पर बलवान रोगी को वात नाशक वा कफनाशक औषधियों के साथ में सिद्ध कियाहुआ अंडी का तैल देवै । अच्छी तरह विरेचन होने के पीछे भी जो फिर उदररोग की उत्पत्ति होवै तौ अम्ल और लवण द्वारा सिग्ध निरुहण वस्ति देवै । जिसरोगी के वायु उपस्तम्भ के साथ उदररोग की उत्पत्ति करै उसे क्षार और गोमूत्र द्वारा तीक्ष्ण वस्ति देवै ।

सोपस्तम्भोऽपि वा वायुराध्मापयति यं नरम् । तीक्ष्णैः सक्षारगोमूत्रैर्वेस्ति भस्ते मुपाचरेत् ॥

अर्थ—अथवा उपस्तम्भ सहित वायु जिस नरको ग्रस्त कर लेती है, उस मनुष्य का तीक्ष्ण क्षार सहित गोमूत्र और वस्ति से उपचार करै ॥

त्रिदोषज उदर में कर्तव्य । क्रियातीते त्रिदोषे च जाठरे चाप्रशम्यति ॥ शातीन्समुद्बुद्धोदासारान्नाह्वयान्नुपतीन् । गुरुन् । अनुज्ञाप्यभिपक्कर्मविदध्यात्संशयमुवन । अक्रियायां भ्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ॥ एवमारुह्यायतस्येदं मनुज्ञातः प्रयोजयेत् ॥

नाभि से चार अंगुल नीचे नापकर बाईकु
खमें चार अंगुल के शस्त्रसे चीरा लगाकर
बद्ध वा क्षत आंतों की परीक्षा करै और
उस आंत में घी चुपड़कर केश आदि जो
शल्य उसमें हैं उनको निकाल डाले । इन
के निकालने से जो आंतों में छिद्र होजाय
उनको बड़ी बड़ी चींटियों से कटवावे ऐसा
करने से आंतें इकट्ठी होकर पुरजायगी
पुरने पर चींटियों को छुड़ा देवै और
आंतों को उनके स्थान पर रखकर गणको
बाहर से सीदेवै ।

जातोदकउदरमें शस्त्रकर्म ।

तथाजातोदकसर्वमुदरव्यधयोद्भपक् ॥
वामपार्श्वत्वधोनाभेनाडीदत्वाचगालये
त् । निःस्त्रान्यचाविमृज्यतैद्वेष्टयेद्वासो-
दरम् ॥ तथावस्तिविरैकाद्यैर्मलान्सर्व-
चवेष्टयेत् । निःसृते लघितः पेयामस्नेहल-
घणापिवेत् ॥ अतः परश्चपन्मासान्क्षी-
रवृत्तिर्भवेन्नरः । त्रीन्मासान्पयसापे-
यापिवेत्तृतीयापिभोजयेत् ॥ श्यामाक-
क्षोरदूष्यचाक्षरिणेलघुभोजनः ॥

अर्थ....जिसउदररोग में जलबद्ध गयाहो
उसमें भी नाभिके नीचेबाई ओर को चीरा
लगाकर एक नली द्वारा सब जल को नि-
काल देवै । जल के निकलनेके पीछे खाल
को जहाँ की तहाँ लगाकर वस्त्र से छेपदे-
वै । इसी तरह वस्ति और विरेचनादिसे म्ला
न उदर को वस्त्रसे छेपदे देवै । जलके नि-
कलनेके पीछे लघन कराके बिना चिकनाई
और नमक की पेयाका सेवन करावे इन मे

पीछे छः महीने पर्यन्त मनुष्य केवल दूध
पीकर रहे । उससे पीछे तीन महीने तक दूध
के साथ पेया पीवे और फिर तीन महीने
तक दूधके साथ सोखिया और कोरदूध आ-
दि हलके अन्नका सेवन करता रहे ॥

नरःसंवत्सरैर्गैर्वजयेत्प्राप्तंजलोदरम् ।
प्रयोगाणान्तुसर्वेषामनुक्षीरं प्रयोजयेत् ॥
दांपानुबन्धुरक्षार्थवलयस्यैर्यथैवच । प्र-
योगापचिताङ्गानांहितं ह्युदरिणांपयः ॥
सर्वधातुक्षयातानां दिवानाममृतं तथा ॥

अर्थ....इस तरह एक बरस तक सुपथ्य
और उत्तम आहार विहार करने से मनु-
ष्य जलोदर को विजय करसकता है । उ-
दररोगों में सम्पूर्ण प्रयोगोंके पीछे दूध का
पीना अवश्य है, ऐसा करनेसे वातादि दो-
षों का अनुबन्ध दूर होजाताहै और बल
तथा दृढता बनी रहतीहै । बहुतसे प्रयोगोंके
कारण रोगीका देह क्षीण होजाताहै और
सम्पूर्ण धातुभी क्षय होजाती हैं इससे उद-
रोगीको दूध ऐसा गुणदायक है जैसे देवतां-
ओं को अमृत ।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुं प्राश्रूपमप्यानां लिङ्गव्याससमासुतः उप-
द्रवान्गरयिस्त्वं साध्यासाध्यत्वमेवच ।
जाताजाताम्बुलिङ्गानिचिकित्सां चोक्त्या
नृपिः ॥ समासव्यासानन्दैश्च रुद्राणां चि-
कित्सितम् ।

अर्थ—इस उदरचिकित्सित नामक अ-
ध्यायमें भगवान् पुनर्वसुने आठ प्रकार के
उदररोगोंके हेतु, प्रवृत्त्य, और निम्नो

रसाद्रक्तविसदृशात्कथं देहेऽभिजायते ।
 रसस्य च न रजोऽस्ति सकथं याति रक्तताम् ॥
 रसाद्रक्तात्स्थिरमांसं कथं तज्जायते नृणाम् ।
 रसाद्रक्ताच्च यामांसां मेदसः श्वेतता कथम् ॥
 शृङ्गाभ्यां मांसमेदोभ्यां खरत्वं कथमास्थि
 षु । खरेष्वस्थिषु मज्जा च केन स्निग्धामृदु
 स्तथा ॥ मज्जाश्च परिणामेन यद्विश्रुतं प्रव
 र्तते । सर्वे सर्वगतं भृङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
 अथापि मध्ये मज्जाश्च भृङ्गं भवति देहिनाम् ।

छिद्रं न दृश्यतेऽस्थ्नाच्च तन्निःसरति नुःकथम्

अर्थ....जब आत्रेय इस तरह कह रहे थे
 तब उनके शिष्यने पूछा कि हे भगवन् ! रस
 और रक्तमें विसदृशता है फिर रससे, रक्त
 कैसे उत्पन्न होता है ? रस में छलाई नहीं
 होती है फिर, रक्तलाल क्यों होजाता है ?
 रस और रक्त तौ पतले हैं फिर इनसे स्थिर
 मांस कैसे उत्पन्न होता है ? रस, रक्त त-
 था मांससे उत्पन्न हुआ मेद सफेद क्यों
 होता है ? मांस और मेदा तौ चिकने होते
 हैं फिर इनसे उत्पन्न हुई हड्डियों में खरख-
 राहट क्यों होता है ? खरदरी हड्डियोंमें कि-
 र मज्जा किस कारणसे स्निग्ध और मृदु
 होती है । और यदि मज्जा के परिणामसे
 ही वीर्य की प्रवृत्ति होती है और उसी शुक्ल
 संबंद्धितं सर्वगत अर्थात् सम्पूर्ण देह
 व्यापक कहते हैं, इससे वीर्य मनुष्योंकी
 कें बीच में ही होता है परन्तु हडि-
 के बीच में उसके निकलने का कोई
 नहीं दिखाई देता है फिर बाहर कैसे
 आता है ॥

रससे रक्त बनने का कारण ॥

एवमुक्तस्तु शिष्येण गुरुः प्राह दमुत्तरम् ।
 तेजो रसानां सर्वेषामनुजानां यदुच्यते ॥
 पित्तोऽप्यणः सरागेण रसो रक्तत्वमृच्छति ॥

अर्थ....इस तरह शिष्य से प्रश्न किये
 जाने पर गुरुने उत्तर दिया कि सम्पूर्ण
 मनुष्यों के आहार रसमें एक तेज नामकरस
 होता है वह पित्त की ऊष्मा से रक्त हो-
 जाता है ॥

मांस और मेदकी रीति ॥

वाय्वाग्नि तेजसार रक्तमूष्मणा चाभिसंयुते मू-
 स्थिरतां प्राप्य शौक्ल्यश्च मेदो देहेऽभिजायते

अर्थ—वह रक्त वायु और अग्नि का तेज
 तथा ऊष्मा से मिलकर जमजाता है और
 मांस बन जाता है एवं मांसकी ऊष्मा से उ-
 सीका सफेद मेद बनजाता है ॥

अस्थिकी विधि ॥

पृथिव्यग्न्यानि लादीनां संघातः श्लेष्मणा वृत्तः
 खरत्वं प्रकरोत्यस्य जायतेऽस्थिततो नृणाम् ॥

अर्थ—कफसे आवृत पृथ्वी, अग्नि और
 वायु के संघात में खरखराहट पैदा होती है
 इसी से हड्डियां उत्पन्न होती हैं ॥

मज्जाकी उत्पत्ति ॥

करोति तत्र सौ शिर्यगस्थानां मध्ये समीरणः ॥
 मेदसस्तानि पूर्यन्ते स्नेहो मज्जा ततः स्मृतः ॥

अर्थ....तब वायु हड्डियों के मध्य में छिद्रों
 को उत्पन्न कर देती है और वे छिद्र मेदा से
 परिपूर्ण होजाते हैं, उससे हड्डियों में स्नि-
 ग्ध मज्जा उत्पन्न होती है ॥

शुक्रकी उत्पत्ति ॥

तस्मान्मज्जस्तुयःस्नेहःशुक्रसंजायतेततः
वाय्वाकाशादिभिर्भावैःसौशिर्यंजायतेऽ
स्थिषु । तेनसंवतितशुक्रंनवात्कुम्भादि-
बोदकम् ॥

अर्थ....उस मज्जा की चिकनाई से शुक्र
की उत्पत्ति होती है और हड्डियों में वायु
और आकाशादि के भावोंद्वारा बहुत से छो
टे २ छिद्र होजाते हैं उन्ही छिद्रों में होक-
र वीर्य ऐसे निकलता है जैसे नये घड़े में
मे जल चुचाता है ॥

वीर्य के निकलने की रीति ।

स्रोतोभिःस्पन्दतेदेहात्समन्तात्शुक्रवाहि-
भिः । हर्षेणोदीरितंरागात्संकल्पाच्चम-
नोभवात् ॥ विलीनंघृतवद्व्यायामोष्म-
णास्थानविच्युतम् । वस्तौसंभृत्यनिर्या-
तिस्थलान्निम्नादिवोदकम् ॥

अर्थ....सम्पूर्ण देह से शुक्रवाही स्रोतों
द्वारा मन से उत्पन्न हुए हर्ष, राग और स-
ंकल्प से शुक्र उद्गीर्ण होताहै तथा मैथुनादि
परिश्रमकी ऊष्मा से घृत के समान पिघल
कर अपने स्थान से च्युत होकर वस्ति में
इकट्ठा होकर इस तरह निकलने लगता
है, जैसे नीची जगह से जल निकलताहै ।

पृथक् २ मलों का वर्णन ।

किट्टमन्स्यविष्णुमूत्रंरसस्यचक्रफोऽमृजः
पित्तमांसस्यचमलोमलःस्वेदस्तुमेदसः ।
स्यात्किट्टकेशलोमास्त्रोमज्जःस्नेहोऽक्षि-
विद्वचाम् ॥ मसादकिट्टेधातूनांपाका
देवाम्बिधः स्मृतः॥

अर्थ....अन्नका किट्ट अर्थात् मल विष्टा
और मूत्र है, रस और रक्त का किट्ट कफ
है, हड्डी का मल केश और लोम, है मज्जा
का किट्ट स्नेह है, त्वचा का किट्ट आँखों का
मल है, इसी तरह धातुओंके पाक से प्रसा-
द और किट्ट उत्पन्न होते हैं ।

परस्परोपसंरम्भाद्धातुस्नेहपरम्परा ॥

वृष्यादीनांप्रभावस्तुपुष्पातिबलमाशुहि-
पद्भिःकेचिदहोरात्रैरिच्छन्तिपरिवर्तनम्
सन्तत्याभोज्यधातूनांपरिष्ठात्तस्तुचक्रवत्

अर्थ—स्नेह परम्परा धातु आपस में
एक दूसरीको पुष्ट करती हैं, परन्तु वृष्य
औषधियोंका यह प्रभाव है कि वे बलको
ही शीघ्र बढ़ाती हैं । किसी २ का यह मत
है कि एक धातु से दूसरी धातु के बनने
में छःदिनरात लगते हैं, परन्तु वास्तव में
एक धातुसे दूसरी धातु का बनना गार्दों के
पहिये की तरह घूमता रहताहै ।

व्यानेनरसधातुर्द्विविधोचितकर्मणा ॥

युगपत्सर्वतोऽजसंदेहेविक्षिप्यतेसदा ।

क्षिप्यमाणस्तुवैगुण्याद्रसःसज्जातियत्रसः

करोतिविकृतिंचान्रखेवर्षमिवतोयदः ।

दोषाणामपिचैर्वस्यादेकदेशप्रकोपनम् ॥

अर्थ—विक्षेपकारी व्यान वायु रसधातु

को निरन्तर सम्पूर्ण देहमें विक्षिप्त करती

रहतीहै । इसतरह विक्षिप्त रस विगुण हो

कर देहमें जहाँ कहीं एकत्रित होजाताहै व-

हाँ विकृति उत्पन्न करता है जैसे आकाश

में बादल एक जगह इकट्ठे होकर बरसने

लगतेहैं । इसीतरह दोष एक स्थानमें

प्रकुपित होजातेहैं ।

जठराग्नि की उत्कृष्टता ।

इतिभौतिकधात्वन्नपक्वणां कर्मभाषितम् ॥
अन्नस्य पक्तासर्वेषां पक्वत्वेनामधिको मतः ॥
तन्मूलास्ते हितदृष्टिदक्षयदृष्टिदक्षयात्मकाः ॥
तस्मात्तन्विधिवद्युक्तैरन्नपानेन धनैर्हितैः ॥
पालयेत्प्रमथतस्तस्य स्थितौ ह्यायुर्वलस्थितिः

अर्थ—ऊपर लिखी हुई रीति के अनुसार भौतिक धातु और पाचकाग्निके कर्म वर्णन किये गये हैं । सम्पूर्ण अग्नियोंमें अन्नको पचानेवाली अग्नि अधिक होती है, पाचकाग्निही सम्पूर्ण अग्नियोंका मूल है क्योंकि इसीके घटने बढ़नेसे औरों की भी घटती बढ़ती होती है । इसलिये ईंधनरूपी हितकारी अन्नपानके विधिवत्सेवन करने से जठराग्नि का पालन करै । पाचकाग्नि के स्थित होनेही से आयु और बल की स्थिति होती है।

ग्रहणी दोषों का कारण ।

यो हि श्लेष्मो विधिमुक्त्वा ग्रहणीदोषजान्गदान् ।
सलौलयाल्लभते शीघ्रं वक्ष्यन्तेऽतः परन्तु ये ॥

अर्थ—जो मनुष्य विधि छोड़कर भोजन करता है, उसके जिह्वाकी लोलपतासे ग्रहणी दोषसे उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के रोग होजाते हैं । अब उन्हीं का वर्णन करते हैं ।

अग्नि के दूषित होने का कारण
अभोजनादजीर्णातिभोजनाद्विपमाशनात् ।
असात्म्यशुरुशीतातिरूक्षसन्दुष्टभोजनात् ॥
विरेकवमनस्नेहविभ्रमाद्व्याधिकर्षणात् ।
देशकालवैषम्याद्वेगानां विधारणात् ॥
दुष्यत्यग्निः सदुष्योऽन्नं न त

त्पचातिलघ्वापि । अपच्यमानं शुक्तत्वं यात्यन्नं विपताञ्चतत् ॥

अर्थ—भोजन न करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, अतिभोजनसे, विषम भोजन से, विरेचन, वमन, और स्नेहन कर्मों के अतियोगसे, व्याधिद्वारा अत्यन्त रुक्ष होनेसे, देशकाल और ऋतुकी विपमता से, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, अग्नि दूषित होजाता है और दुष्ट होनेसे वह लघु अन्न को भी नहीं पचासकती है । और अपच्यमान अन्न खट्टा और विषवत् होजाता है ॥

अजीर्ण अन्न के लक्षण ॥

तस्य लिङ्गमजीर्णस्याविष्टम्भोऽगञ्चसीदति ।
शिरसोरुवचमूर्च्छा च भ्रमः पृष्ठकटिग्रहः ॥
जृम्भांगमर्दस्तृष्णा च ज्वरच्छर्दिः प्रवाहणम् ।
अरोचको विपाकश्च योरमन्निविपञ्चतत् ॥

अर्थ—अपच्यमान अन्न इन उपद्रवों को करता है, यथा गुडगुडाहट, अंगलानि, सिरदर्द, मूर्च्छा, भ्रम पृष्ठग्रह, कटिग्रह, जृम्भा, अंगमर्द, तृष्णा, ज्वर, वमन, ऐंठा, अरुचि और अविपाक, इसतरह अन्न घोर विपके समान होजाता है ॥

भिन्नदोषों से संसृष्ट विपान्न ॥

संसृज्यमानेन पिप्तेन दाहं तृष्णां मुखामयान् ।
जनयत्यम्लपित्तं च पित्तजां श्वापरान्गदान् ॥
यक्ष्मपीनसमेहादीन् कफजान् कफसंगतः ।
करोति वातसंसृष्टं वातजां श्वगदान् बहून् ॥
मूत्ररोगांश्च मूत्रस्थं कुक्षिरोगान् शकृद्गतान् ।
रसादिभिश्च संसृष्टं

कुर्याद्रोगान् रसादिजान् ॥

अर्थ—वही अपच्यमान अन्न पित्तसे मिलकर दाह, तृष्णा, मुखरोग, अम्लपित्त तथा पित्तजन्य अन्य २ रोगोंको उत्पन्न करता है। कफ से मिलकर यक्ष्मा, पीनस प्रमेह तथा अन्यकफज विकारोंको करता है वात से मिलकर अनेक प्रकारके वातरोगोंको करता है, मूत्रसे मिलकर अनेक प्रकारके मूत्ररोगोंको, विष्टासे मिलकर अनेक प्रकारके कुक्ष रोगोंको और इसीतरह रसादिसे मिलकर रसादिसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको करता है ॥

भिन्नजठराग्निके कर्म ।

विषमोधातुवैषम्यं करोति विषमं पचन् ।
तीक्ष्णो मन्देन्धनो धातुर्विशोध्यति पावकः ॥ युक्तं भुक्तवतो युक्तो धातुः साम्यं समं पचन् । दुर्वलो विदहत्यन्नं तद्यात्पूध्वमधोऽपि वा ॥

अर्थ—विषम अग्नि अन्नको विषमरीति से पकाकर धातुओंको विषम करदेती है, तीक्ष्णाग्नि भोजनरूपी ईंधनको अल्पपाकर सम्पूक पक्व करके धातुओंको शुद्ध कर देती है। समान्ति युक्तिपूर्वक भोजन करनेके कारण धातुओं में साम्यता करती है तथा मन्दाग्नि अन्नको अच्छीतरह न पचानेसे विदग्धता करती है और वह अन्न वमन द्वारा वा मलद्वारा बाहर निकल जाता है ॥

ग्रहणी रोग के लक्षण ।

अभ्रश्चपक्वमांषां मृत्तंग्रहणी गदः । उच्यते सर्वमेवान्नं प्रायो ह्यस्य विदम्यते ॥

अतिसृष्टं विचन्द्रं वा द्रवंतं दुपवेश्यते ।

अर्थ—पक्व वा कच्चा अन्न जो अधो-गार्गद्वारा होकर निकलता है, इसे ग्रहणी रोग कहते हैं, इसमें प्रायः सब प्रकार का अन्न विदग्ध होजाता है। विचन्द्रता के साथ वा पतला होकर निकलता है ॥

ग्रहणी रोग के लक्षण ॥

तृष्णारोचकवैरस्य प्रसेकतमकान्वितः ॥
शून्यपादकरः सास्थिपर्वरुक् च दर्शनं ज्वरः ।
लोहामगन्धिस्तित्काम्लउद्गारश्चास्य जायते ॥

अर्थ.... इस रोगमें तृष्णा, अरुचि, विरसता, लालस्राव, तमकश्वास, हाथपांव में सूजन, हड्डी पर्वोंमें वेदना, वमन, ज्वर, लोहगन्धि, आमगन्धि, तथा तित्क और खट्टी डकार आदि उपद्रव होते हैं ॥

ग्रहणी रोगके पूर्वरूप ॥

पूर्वरूपं तु तस्येदं तृष्णालस्यं च लक्षणम् ।
विदाहोऽन्नस्य पाकश्चिरात्कायस्य गौरं वम् ॥

अर्थ—तृष्णा, आलस्य, घटकीक्षीणता, अन्नका विदाह, शरीरमें अन्नका पाक और देह का भारापन ये सब ग्रहणी के पूर्वरूप हैं।

ग्रहणीका विशेष वर्णन ।

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद्ग्रहणीमता ।
नाभेरुपरि राह्यग्निबलोपस्तम्भोऽहिता ॥
अपक्वधारयत्यन्नं परं सृजति पाश्चर्तः । दुर्वलाग्न्यबलाद्दुष्टादाममेव विमुञ्चति ॥

अर्थ—ग्रहणी अग्निका अधिष्ठान है, यह अन्नको ग्रहण करती है इससे इसे ग्रहणी

कहते हैं, यह नामिके ऊपर होती है, अग्निबलही इसके लिये उपस्तम्भ और वृंहण कर्त्ता होता है यह अपक्व अन्न को धारण करती है और पक्व अन्नको पार्श्वद्वारा निकाल देती है। अग्निबलके दूषित होने से यह दूषित होकर अपक्व अन्न को ही निकालने लगती है।

ग्रहणी रोग के भेद ।

वातात्पित्तात्कफात्सर्वात्ग्रहणीदोषश्च्यते । हेतुलिङ्गचिकित्साश्चशृणुतस्य पृथक्पृथक् ॥

अर्थ....ग्रहणीरोग चार प्रकार का होता है, यथा—वातिक, पित्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक। अब इनके पृथक् २ हेतु लक्षण और चिकित्सा वर्णन किये जाते हैं, उन्हें सुनो।

वातिक ग्रहणी के हेतु ।

कटुतिक्तकपायातिरूक्षशीतलभोजनैः । प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैषुनैः ॥ कशैतिकुपितोमन्दमग्निं संच्छाद्यमारुतः ।

अर्थ—कड़वे, तखि, कसाले, अत्यन्त रूखे, अत्यन्त शीतल भोजन करने से, थोड़ा भोजन करने से, या सर्वथा न करने से, अत्यन्त मार्ग चलने से, उपस्थित वेगों के रोकने से और मैथुन करने से वायु कुपित होकर अग्निको ढकंकर मन्द करदेती है, इसी से ग्रहणी रोग उत्पन्न होता है।

वातिक ग्रहणी के लक्षण ।

तस्यान्नपच्यतेदुःखंनुक्तपाकःखरांगता ॥ कण्ठस्पर्शोऽधुतदृष्णातिमिरकण्ठयोः

स्वनः । पार्श्वोरुवक्षणाग्नीवाकजोऽभीक्ष्णं विस्मृचिका ॥ हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यैवैरस्यपरिकर्तिका । गृद्धिःसर्वरसानां चमनसःसदनंतथा ॥ जीर्णजीर्यतिचाध्मा नंथुक्तेस्वास्थ्यमुपैतिच । सवातगुल्मं हृद्रोगघ्नीहाशङ्कीचमानवः ॥ चिराद्दुःखंद्रवंशुष्कतन्वामंशब्दफेनवत् । पुनःपुनसृजेद्वर्चःकासश्वासान्वितोऽनिलात् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके वादी से ग्रहणी रोग होताहै उसका अन्न कठिनेतासे पचता है और अम्लपाक होताहै अर्थात् खट्टी डकारें आने लगती हैं। देहमें खुरदरापन, कण्ठ और मुखमें खुरकी, क्षुधा, तृणांशुओं के साम्हने अंधेरा, कानों में शब्द, पार्श्ववेदना, ऊरुशूल, वक्षणशूल, प्रिया में वेदना, बार बार विस्मृचिका, हृत्पीडा कृशता, दुर्बलता, विरसता, ऐंठा, सम्पूर्ण रसोंमें स्पृहा, मनका शिथिल होना, अन्न के पचनेपर वा पचने के समय अफरा, होता है केवल भोजन करने से सुस्थता होती है। इस रोगी को यह शंका होती है कि मेरे वात गुल्म, हृद्रोग और घ्नीहा होगई है। इस रोगमें देहमें कण्ठसे पतला, सूखा थोड़ा कच्चा, शब्दयुक्त, और शागदार मल बार २ निकलता है, तथा रोगी के खांसी और स्वास भी उत्पन्न हो आते हैं।

पित्तिक ग्रहणी का हेतु ।

कद्वर्जीर्णविदाहम्लसाराद्यैः पित्तमुत्पन्नम् । अधिमाप्लावयद्वृद्धिजलंतप्तमिवानलम् ॥

अर्थ—विदग्ध आहारसे मूर्च्छित होकर जब दोष ग्रहणीका आश्रय लेते हैं तब वि-
ग्रम्भता, लालास्राव, आर्ति, विदाह, अंशुचि,
भारापन और आमके लक्षण दिखाई देने
लगते हैं । उस समय सुहाता हुआ गरम
जल, मेनफलका क्वाथ वा पीपल और सरसों
का कल्क देकर वमन करा देंगे ॥ तथा जो
पक्वाशय में लीन होजाय तौ संदीपन औ-
पधियोंके प्रयोगसे आमको निकाल डालें ।

शरीरानुगतसामेरसेलघनपाचनम् ॥ वि-
शुद्धामाशयायामपञ्चकोलादिभिर्युतम्
दद्यात्पेयादिलघ्वन्नपुनर्योगांश्चदीपनान्

अर्थ—जब आम रस शरीरमें फैलजाय
तब लघन पाचन औपधियों का प्रयोगकरे
इसतरह आमाशयके विशुद्ध होनेपर पंच
कोलादि मिश्रित पेयादि लघु अन्न तथा सं-
दीपन योगोंका प्रयोग करे ।

ज्ञात्वातुपरिपक्वामारुतग्रहणीगदम् । दी-
पनीययुतंसर्पिःपाययेत्ताल्पशोषिकम् ॥ कि-
ञ्चित्सन्धुक्षितेत्वग्रौसक्त विष्णूवमारुत-
म् । द्विग्रीण्यहानिसस्नेहंस्नेहाभ्यक्तंनिरु-
हयेत् ॥ ततःपूरण्डतैलेनसर्पिपातैलकेन
वा । सक्षारेणानिलेशान्तेस्त्रस्तदोषंविरे-
चयेत् ॥ शुद्धरुक्षाशयंवद्वयर्चसञ्चानु-
वासयेत् । दीपनीयाम्बुवातघ्नसिद्धतै-
लेनमात्राया ॥ निरुद्धश्चविरिक्तश्चसम्य-
क्चवानुवासितः । लघ्वन्नमतिस्मभुक्तः
सर्पिरेवाचरेत्पुनः ॥

अर्थ—यानज ग्रहणी रोगमें आमकी प-
रिपक्वता जान पड़े तौ दीपनीय औपधि-

यों से सिद्ध कियाहुआ घृत थोड़ा थोड़ा
देवें । इससे अग्नि के कुछ बढने पर जब
विष्टा, मूत्र और अधोवायुकी विवद्धता दि-
खाई देवें तौ दो तीन दिनतक स्नेहन कर्म
और अभ्यक्त करने के पश्चात् निरुहण
वस्ति देवें । इस तरह दोषों के शिथिल
होनेपर तथा वादीके शान्त होनेपर क्षार
युक्त अंडीका तेल वा विरेचन औपधियों
द्वारा सिद्ध कियाहुआ घृत वा तेल देकर
विरेचन करावें । इसतरह संशोधन औपधियों
के प्रयोग से पक्वाशयके रूक्ष होनेपर विष्टा
की विवन्धतामें दीपनीय औपधियों का क्वाथ
वा वातनाशक औपधियों से सिद्धकियेहुए
तेल द्वारा अनुवासनवस्ति देवें । इसतरह
अच्छी प्रकार से निरुहण, विरेचन और
अनुवासन होने के पश्चात् लघु अन्न का
भोजन कराके नाँचे लिखे हुए घृतों का
सेवन करावें ।

द्विपंचमूलादि घृत ।

द्वेपञ्चमूलसरलंदेवदारुसनागरम् । पिप्प-
लीपिप्पलीमूलचित्रकंहस्तिपिप्पलीम् ॥
शणवीजंयवान्कोलान्कुलत्थान्मुरभी-
स्तथा । पाचयेदारुनालेनदध्नासौवीर-
केणवा ॥ चतुर्भागावशेषेणपंचैत्तेनघृ-
ताढकम् । स्वर्जिकायावशुकाख्यौक्षारौ
दत्वाचघुक्तितः ॥ सैन्धवोद्भिदसामुद्र
विहानारोमकस्यच । ससौवर्चलपावया
नांभागान्द्विपलिकानपृथक् ॥ विनीय
चूर्णितानसिद्धात्ततोद्वेद्वेपलोपिवेत् । करो-
त्यग्निवलंबण्यवातघ्नभुक्तपाचनम् ॥

अर्थ—दोनों पंचमूल, सरला, देवदारु, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चीता; गजपीपल सन के बीज, जी, वेर, कुलथी और मुरभी इन सबको समान भाग लेकर चौगुनी, फांजी, दही वा सौवीरके साथ पकावै, जब चतुर्थांश शेष रहजाय तब उतारकर छान ले, फिर उसमें सज्जी, जवाखार, सेंधा, उद्भिद, सामुद्र, विड, रोमक, सौवर्चल और पाक्य ये सात प्रकारके नमक सबको दो २ पल डालै और एक आठक घृत डालकर पकावै । यह घृत प्रति दिन दोपल सेवन करनेसे अग्नि, बल, और वर्णकों बढ़ाताहै, वादी को मारता, और भोजनको पचाताहै ।

त्र्युपणादि घृत ।

त्र्युपणात्रिफलाकल्केविल्वमात्रेणुडातपले ।
सर्पिणोऽष्टपलंपक्त्वामात्रामन्दानिलःपि-
बेत् ॥

अर्थ—त्रिकुटा और त्रिफला का कल्क एकएक पल, गुड एकपल, घी आठ पल, और चौगुना जल डालकर पानकरी और मात्राको अनुसार सेवन करे ती मन्दाग्नि दूर होजाती है ॥

पंचमूलादि घृत और चूर्ण ।

पञ्चमूलाभयान्योपविङ्गशशटिभिर्घृतम् ।
शुक्तेनमातुलङ्गस्यस्वरसेनार्द्रकस्यच ॥ शु-
ष्कमूलककोलाम्युचुक्रिकादाडिमस्यच ।
तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुपोदकैः ॥
फाञ्जिकेनचतत्पकगग्निदीप्तिकरंपरम् ।
शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम् ॥
सयीजपूरकरसंसिद्धवापाययेद्घृतम् ।

सिद्धमभ्यक्षनार्थञ्चतैलमेतैःप्रयोजयेत् ॥
एतेपामौषधानांवापिवेच्चूर्णसुखाम्बुना ।
वातेश्लेष्मावृतेसामेकफेवावायुनोद्धते ॥

अर्थ—पंचमूल, हरड, त्रिकुटा, वायवि-
डंग, कचूर, इन सबसे चौगुना घी, शुक्त, विजौरेका रस, अदरकका रस, पृथक् २ घी के समान लेवै । सूखी मूली, वेर, नेत्र वाला, चूका, अनार इनका काथ घी के समान, तक्र घी के समान तथा मस्तु, सुरामंड, सौवीरक और तुपोदक ये सब घृत के समान लेकर पकावै । यह घृत अत्यन्त अग्नि को बढ़ानेवाला है तथा शूल, गुल्म उदररोग, श्वास, खांसी और वातकफ को दूर करताहै । अथवा सम्पूर्ण द्रव्यों का कल्क और केवल विजौरे के रसमें सिद्ध कियाहुआ घृत भी ऊपर कहे हुए गुण करताहै । उक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ तेल मालिशमें लगावै । अथवा इन्हीं औषधों का चूर्ण गरम जलके साथ पीवै । इससे कफावृत वात, आमयुक्त कफ वा वात कफ दूर होजाते हैं ॥

मलपरीक्षा ॥

मज्जत्यामादगुरुत्वाद्विद्रवपाकतृप्त्यवतेजले ।
विनातिद्रवसंघातशैत्यश्लेष्मप्रदुपणात् ॥
परीक्ष्यैवंपुरासामंनिरामंवासदोषिणाम् ।
विधिनापाचरेत्सम्यक्पाचनेनेतरेणवा ॥

अर्थ—कच्चा मल भारी होने के कारण जल में डूबजाता है, पक विष्टा जलके ऊपर तैरता रहता है, परन्तु पकाहुआ मलभी अत्यन्त पतला, गाढा, अत्यन्त शीतलता

युक्त वा श्लेष्मासे दूषित होने के कारण
द्वयजाताहै । इसतरह रोगियों की आम
सहित और आमरहित मलकी परीक्षाकरै,
तथा विधिपूर्वक पाचन और दीपन औषधियों
द्वारा चिकित्सा करै ॥

चित्रकादि चूर्ण ॥

चित्रकापिप्पलीमूलद्वौसारौलवणानिच ।
व्योपंहिग्वजमोदश्चचव्यंचैकत्रचूर्णयेत् ॥
शुडिकामातुल्यस्यदाडिमस्यरसेनवा ।
कृताविषाचयन्त्यामन्दीपयन्त्याशुचान-
लम् ॥

अर्थ—चीता, पीपलामूल, दोनों क्षार,
पाँचों नमक, त्रिकुटा, हींग, अजमोद और
चव्य इन सबको विजैरे वा अनार के रस
में खरल फाँके गोली बनालेवै । ये गोळियाँ
आमको पचाती हैं और आग्नि को प्रदीप्त
करती हैं ।

अन्यप्रयोग ।

नागरातिविषामुस्तकायःस्यादामपाचनः
मुस्तान्तकल्कः पथ्यावानागरंचोष्णवा-
रिणा ॥ देवदारुवचामुस्तनागरातिवि-
षामयाः । वारुण्यामामुतास्तोयेकोष्णे
वालव्रणंपिबेत् ॥

अर्थ—सोंठ, अतीस और मोथेकाफाथ
आमको पचाताहै । अथवा इन्हीं तीनोंद्रव्यों
का चूर्ण, अथवा हरड अथवा सोंठ को
गरम जलके साथ फाँकेने से आम पचजा-
ता है । अथवा देवदारु, वच, मोथा, सोंठ
अतीस और हरड इनको वारुणी मद में
बाँठे जब इनका सार उसमें आजाय तब

छानकर पीले अथवा इन्हीं द्रव्यों के चूर्ण
को संधानमक मिटाकर गुनगुने जलके
साथ पीवैतो आम पचजाता है ॥

पिवेत्सपरिकर्चामेलेवादाडिमाशुना ।
विडनलवणंपिष्टाविल्वंचित्रकनागरम् ॥
सामेवासकफेवातेकोष्ठशूलकरोपिबेत् ।
कलिङ्गहिंवातिविषावचासौवर्चलाभयाः
छर्द्यर्शोग्रन्थिशूलेषुपिवेदुष्णेनवारिणा ।
पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णमरिचसंयुतम् ।
अभयापिप्पलीमूलवचांकुडकरोहिणीम्
पाठांयत्सकवीजानिचित्रकंविश्वभेषजम्
पिवेन्निष्काध्यचूर्णानिकृत्वाकोष्णेनवा-
रिणा । पिचश्लेष्मावृतेवातेग्रहण्यामरु-
चातथा ।

अर्थ—जो आम और ऐंठाहो तो बेल-
गिरी, चीता और सोंठ तथा विडनमक
डालकर अनार के कोंथ के साथ पीवै ।
कफयुक्त आम और वातज कोष्ठशूलमें इन्द्र-
जौ, हींग, अतीस, वच, इनके चूर्ण को
गरम जलके साथ पीवै । अथवा वमन, अर्श
रोग, ग्रन्थिशूलमें हरड, संचरनमक जीरा
और कालीमिरच का चूर्ण गरम जल के
साथ पीवै । अथवा हरड, पीपलामूल, वच
कुटकी, पाठा, इन्द्रजौ, चीता और सोंठ
इनका क्वाथ करके पीवै, अथवा इनका चूर्ण
गरम जलके साथ फाँके तो कफ, पित्त और
वातकी ग्रहणी और अरुचि दूर होजाती है
सामेसातिविषांग्व्योपलवणक्षारंहिगुवत्
निःकाध्यपाचयेच्चूर्णकृत्वावाकोष्णवा-
रिणा । पिप्पलीनागरपाठांशारिवावृह

तीद्वयम् ॥ चित्रकंकौटजवीजलवणान्य
थपञ्चच । तच्चूर्णसयवक्षारंदध्युष्णाम्बु
सुरादिभिः ॥ पिवेदग्निवृद्ध्यर्थकोष्ठवा
तहरंनरः ।

अर्थ—आमयुक्त पित्त श्लेष्मावृत ग्रहणी
में अतीस त्रिकुटा, नमक, क्षार, और हींग
इनका क्वाथ करके वा चूर्ण बनाकर गरम
जलके साथ पीवै ! अथवा पीपल, साठ, पाठा
शारिका, दोनोंकटेरी, चीता, कडा, के बीज
पाँचों नमक और जवाखार इनका चूर्ण ब-
नाकर दही, गरम जल वा सुराके साथ
सेवन करै तौ आग्निकी वृद्धि होती है और
कोष्ठगतवायु दूर होजाती है ।

मरिचादि चूर्ण ।

मरिचःकुञ्चिकाम्बष्ठावृक्षाम्लकुडवाः
पृथक् ॥ पलानिदशचाम्लस्यवेतसस्य
पलादिकम् । सौवर्चलंविडम्पाकयंयव
क्षारःससैन्धवः ॥ शटीपुष्करमूलानिहिं
गुहिगुशिवाटिका । तत्सर्वमेकतःसूक्ष्मं
चूर्णं कृत्वाप्रयोजयेत् ॥ हितंवाताभिभूता
यांग्रहण्यामरुचौतया ॥

अर्थ—कालीमरिच, कालाजीरा, पाठ,
वृक्षाम्ल इनको एक २ कुडव ले । अमल-
वेत दसपल, तथा संचलनमक, विडनमक
पात्रयनमक, जवाखार, सेंधानमक, कचूर,
पुहकरनूल, हींग और हिंगुपत्री ये सब आधे
आधे पल लेकर चूर्ण बना लेवै । यह चूर्ण
वाताभिभूत ग्रहणी और अरुचि में हितहै ।
चतुर्णां प्रस्थमल्लानां त्र्युपणाचपलत्रयम् ॥
लवणानां च वत्वारि शर्करायाः पलायकम् ॥

संचूर्ण्य शाकसूपान्नरागादिष्ववचारयेत् ॥
कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डूवामयगु-
ल्मनुत् ।

अर्थ—चारों प्रकारकी खटाई एक प्रस्थ
त्रिकुटा तीनपल, चार प्रकारके लवण चार
पल, शर्करा आठपल इनका चूर्ण बनाकर
साग, दाल, तथा रागादि में डालकर सेवन
करता रहै तौ खांसी, अजीर्ण, अरुचि, स्वा-
स, पाण्डुरोग और गुल्म दूर होजातेहैं ।

यवागू विधि ।

चन्यत्वक्पिप्पलीमूलधातकीव्योपचित्र
कम् ॥ कपित्थं विल्वमम्बुष्ठांशालमलंह-
स्तिपिप्पलीम् ॥ शिलोद्भेदं तथाजार्जोपि
प्रावदरभागिकम् । परिभर्ज्य घृतेदध्ना
यवागूंसाथयेद्भिषक् ॥ रसैः कपित्थचुक्ती
कावृक्षाम्लैर्दाडिमस्य च । सर्वातिसारम-
न्दाग्निगुल्मार्शः प्लीहनाशिनी ॥

अर्थ—चन्य, दालचीनी, पीपलामूल, धाय
के फूल, त्रिकुटा, चीता, कैथ, बेलगिरी,
पाठा, सेमर, गजपीपल, शिलोद्भेद, काल-
जीरा ये सब एक २ तोले लेकर पीसडाले ।
फिर दही, वा कैथ, वा चूका, वा वृक्षाम्ल,
वा अनारके रस के साथ यवागू तयार कर
के घृत में छोंक कर सेवन करै तौ सर्वा-
तिसार, मन्दाग्नि, गुल्म, अर्श और प्लीहा दूर
होजाते हैं ।

भोजनादि विधि ।

पञ्चकोलकयूपश्चमूलकानांचसोपणः ।
स्निग्धोदाडिमतक्राम्लोजाङ्गलः संस्कृतो
रसः ॥ कव्यादस्वरसः शस्तोभोजनाय-

सदीपनः । तक्रारनालभयानिपानार्थैरि-
ष्टएवच ॥

अर्थ....पंचकोल के साथ सिद्ध किया हुआ मूंग का यूप, सूखी मूली का यूप, अनार वा तक्रकी खटाई डालकर सिद्ध किया हुआ जांगल पशुओं का मांसरस, अथवा मांसाहारीजीवों का मांसरस, भोजनमें हित है और मठा, कांजी वा मच पीने में हित है तक्रके गुण ।

तक्रतुग्रहणीदोपेदीपनग्राहिलाघवात् ।
श्रेष्ठमधुरपाकित्वान्नचपित्तप्रकोपयेत् ॥
कपायोष्णावेकासित्वाद्रौक्ष्याच्चैवकफमेत-
म् । वातेस्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कामाविदा-
हितम् ॥ तस्मात्तक्रप्रयोगायेजठराणां-
थशिसाम् । विहिताग्रहणीदोपेसर्वशस्ता-
न्प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—दीपन; संग्राही और हलका होने के कारण तक्र गृहणी दोषों में हित है । गधुर पाकी होने से पित्त को कुपित नहीं करता है । यह कपाय, उष्ण, विकासी और रूक्ष होने से कफ में हितकारक है । यह स्वादु, अम्ल और सान्द्र है अतएव वात में हित है । ताना मठा अविदाही होता है । इसी कारण से तक्रके जोजो प्रयोग जठर रोग और अर्शरोग में कहे गये हैं ये भी ग्रहणी दोषमें प्रशस्त है ।

तक्रारिष्ट ।

यवात्प्यामलकेपथ्यामारिचं त्रिपलां शिकम् ।
लवणानिपलांशानिपञ्चैकत्रचूर्णयेत् ॥
तक्रकं साधुतं जातं तक्रारिष्टं पिवेज्वरः । दी-

पनं शोथगुल्मार्शः क्रिमिमेदोदरापहम् ॥

अर्थ....अजवायन, आंवला, हरड, का-
लीमिरच, प्रत्येक तीन-तीन पल; पांचों न-
मक एक एक पल इन सबका चूर्ण करले फिर इनको सोलहसेर मठे में भरकर तीन-
चार दिन तक रखवा रहने दें । इस तक्रा-
रिष्ट का पानकरने से शोथ, गुल्म, अर्श, क्रि-
मिरोग, मेदरोग, उदररोग, दूर होजाते हैं और यह दीपनभी है ।

स्वस्थानगतमुत्तिलष्टयग्निनिर्वापकं भिषक्
पित्तं ज्ञात्वा विरेकेणानर्हरेद्वमनेन वा ॥

अविदाहिभिरनैश्चलघुभिस्तित्तसंयुतैः ॥

जाङ्गलानारसैर्यूपैर्गृहादीनां खडैरपि

दाडिमाम्लैः ससर्पिर्कैर्दीपनग्राहिसंयुतैः ।

तस्याग्निदीपयच्चूर्णैः सर्पिर्भवासित्तकैः

अर्थ....अग्निका बुझानेवाला पित्त जब अ-
पने स्थान में हो तब विरेचन दें और वह
उत्तिलष्ट हो तब वमन द्वारा निकाल डाले ।

इस रोग में अविदाही, हलका, तित्त औषधियों से संस्कृत भोजन, जांगलमांसरस मूंगकायूप, अनारदाने की खटाई, घृत तथा दीपन और संग्राही औषधियों से संस्कार किया हुआ खडयूप तथा दीपनीय चूर्ण और तित्तक घृत के प्रयोगों से जठराग्नि को उत्तेजित करना उचित है ।

चन्दनादिष्टम् ॥

चन्दनं पत्रकोशीरं पाठां मूर्वाकुट्टनटम् ।
पङ्गुन्थाशारिवास्फोतासप्तपण्डिरूपका-
न् ॥ पटोलोदुम्बरादयस्त्यक्तपुष्पकपीत-
नान् । कडुकारोहिणीं मुस्तं निम्बञ्च दि-

लांशिकम् ॥ द्रोणेऽपांसाधयेत्पादशेषे.
प्रस्थघृतात्पचेत्किराततित्तेन्द्रयवर्वीरा
मागधिकोत्पलैः ॥ कल्कैरक्षसमैःपेयंत-
त्पित्तग्रहणीगदे । तित्कंयद्घृतंचोक्तं-
कौष्ठिकेतच्चदापयेत् ॥

अर्थ—चन्दन, पन्नाख, उसीर, पाठा, मरो
डफली, केवटीमोथा, वच, सारिवा, भास्फोता
सप्तपर्ण, आमडा, परवल गूलर, पीपल, वड, पा
कर, अडूसा; कुटकी, मोथा, नमि, इनमें
से प्रत्येक द्रव्य दो २ पल लेकर एकद्रोण
जल में सिद्ध करें जब चौथाई शेषरहजाय
तब उतारकर छानले और उसमें एकप्रस्थ
घी डालकर पकावै और इसमें साथ ही
चिरायता, इन्द्रजौ, शालिपर्णी, पीपल,
और नीलकमल इन सबका एक २ तोले
कल्क डाल देंगे । इस घृतके पान करने
से पित्तग्रहणी दूर होजाती है तथा कुष्ठरोग
में जो तित्क घृत वर्णन किया गया है
वह भी हित है ॥

नागराद्यचूर्ण ॥

नागरातिविपेमुस्तंघातर्कासरसाञ्जनम् ।
वत्सकत्वक्फलं विल्वपाठांकटुकरोहिणी-
म् । पिवेत्समांशतच्चूर्णसप्तौद्रंतण्डुलाम्बु
ना ॥ पित्तिकग्रहणीदोषेरक्तयक्षोपये
श्यते ॥ अर्शासिचगुदेऽशूलजयेचैवप्रवा
हिकाम् । नागराद्यमिदंचूर्णकृष्णात्रेयेन
पूजितम् ॥

अर्थ—सोंठ, अतीस, मोथा, धायकेफूल,
रसौत, कुडाकीछाल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पा-
कुटकी इनसबको समानभागलेकरचूर्ण बना

वै इस चूर्णको शहत और तण्डुलजलके सा-
थ पीवै इससे पित्तज ग्रहणीदोष, रक्तरोग,
अर्श गुदशूल और प्रवाहिका दूर होजाती है ।
इस नागराद्य चूर्ण की कृष्णात्रेयेन बड़ी प्र-
शंसाकी है ॥

भूजिवाद्यचूर्ण ॥

भूनिम्बकटुकं व्योपमुस्तमिन्द्रयवान्समा
न् । द्रौचित्रकाद्वत्सकत्वग्भागान्पोडश
चूर्णयेत् ॥ गुडशिताम्बुपीतं तद्ग्रहणीदो-
पगुल्मनुत् । कामलाज्वरपाण्डुन्वमेहार-
च्यतिसारानुत् ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, त्रिकुटा, मोथा,
इन्द्रजौ, ये सब समान भाग लेंगे । चीता
दोभाग, कुडाकी छाल सोलहभाग, इनसब
का चूर्ण बनाकर गुड और ठंडे जलके
साथ पानकरै तो ग्रहणी दोष, गुल्म, कां
मला, ज्वर, पांडुरोग, मेह, अरुचि और
अतिसार दूर होजाता है ॥

वचाद्यचूर्ण ॥

वचामतिविपांपाठांसप्तपर्णरसाञ्जनम् ।
श्योनाकोदीच्यकट्वद्वत्सकत्वग्दुराल
भाः ॥ दार्वापपटंकंमूर्वायचानमिधुशिष्ट
कम् । पटोलपत्रंसिद्धार्थान्पूथिकञ्जा
तिपल्लवान् ॥ जाम्बाम्रविल्वमध्यानि
निम्बपत्रफलानिच । तद्रोगशममन्विच्छ
नभूनिम्वाद्येनयोजयेत् ॥

अर्थ—वच, अतीस, पाठा, सप्तपर्ण, रसौत,
नेत्रवाला, श्योनाक, नेत्रवाला, सोनापाठा, कुडा-
कीछाल, जवासा, दारुहलदी, पित्तपापडा, मरोड-
फली, अजवायन, सहजना, परवलकेपत्ते, सपेट

विपाचयेत्। द्रोणशेषेतुत्तच्छीतमध्वर्धाढक
संयुतम् ॥ एलामृणालागुरुभिश्चन्दनेन
चरुपिते ॥ कुम्भेमासस्थितेजातमासव
न्तप्रयोजयेत् ॥ ग्रहणीदीपयत्येष्टहणः
कफपित्तजित् । शोषकुण्डकिलासश्चप्रमे-
हांश्चप्रणाशयेत् ॥

अर्थ—महुआके फूल एक द्रोण, वायवि
रंग आधा द्रोण, चीता चौथाई द्रोण मिलाया
एकआढक, मजीठ आधापल इन सबको ती
न द्रोण जलमें पकावै जब एक द्रोण शेष
रहजाय तब उतारकर छानले उसमें ठंडा
होने पर आधा आढक मधु मिलादेवै । फि
र इसको एक घीकी चिकनी हांडीमें भर
देवै जिसके भीतर इलायची, कमलनाल
अगर और रक्तचन्दनका कल्का पुत रहा
हो । इस घंटेको एक महीने तक बन्द
रहने दे । जब यह उठ आवै अर्धात् आसव
घनजाय तब इसका प्रयोग करै । यह
आसव ग्रहणी को दीप्त करने वाला है;
हृहणकर्त्ता, कफपित्त नाशक, शोष, कोढ़
किलास और प्रमेह को दूर करता है ॥

दूसरा मध्वासव ।

मधूकपुष्पस्वरसंशृतमर्द्धक्षयीकृतम् ।
सौद्रपादयुतंशीतपुर्वयत्सन्निधापयेत् । तं
पिवन्ग्रहणीदोषान्जयेत्सर्वान्निताशनः
तद्द्राक्षेक्षुर्ज्वरस्वरसानामुतान्पिबेत् ॥

अर्थ—महुआके फूलों के रसको औटा
कर आधा रहने पर उतार ले और ठंडा
होने पर चौथाई शहत डालकर पाहिले की
एक मास तक धरा रहने देवै । यदि

हिताहार सेवी मनुष्य इसका पान करै तो
ग्रहणी रोग से मुक्त होजाता है ।

इसीतरह दाख, ईख का रस और ख-
जूर का आसव पान करै ।

दुरालभासव ।

प्रस्थौदुरालभायाद्वैप्रस्थमामलकस्यच ॥
मुष्टीचित्रकदन्त्योर्द्वैप्रत्यग्रंचाभयाशतम्
चतुर्द्वेणैश्चम्भसः पक्त्वासाकंद्रोणावशोपि-
तम् । सगुडाद्विशतं पूतं मधुनः कुडवायुतम्
तद्दत्तिमं यगोः पिप्पलपाः विडंगानांच चूणि-
तैः । कुडवैर्वृतकुम्भस्थं पक्षाज्जातं तं तः पि-
बेत् ॥ ग्रहणीपाण्डुरोगांशः कुष्ठवीसर्पिण-
हनुत् । स्वरवर्णकरदचैपगरपित्तकफापहः

अर्थ—दो प्रस्थ जवासा, दो प्रस्थ आंवला
चीता और दंती दो दो पल, गुठली निका
छी हुई सौ हरड, इन सबको चार द्रोण
जलमें पकावै, जब आधा शेष रहजाय तब
छानकर ठंडा होनेपर दोसौपल गुड, शहत
एक कुडव, प्रियंगु, एककुडव, पीपल एक
कुडव, वायविडंग एक कुडव, इन सबको
उसमें मिलाकर घी की चिकनी हांडी में
भरकर रखदे एक पखवारे पीछे इसका पा-
न करै तो ग्रहणी दोष, पाण्डुरोग, अर्श,
कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, विषदोष, पित्त और
कफदूर होजातेहैं तथा स्वर और वर्णबढ़तेहैं ।

मूलासव ।

हरिद्रापञ्चमूलेद्वयैरर्कपत्रभजीवकम् ॥ ए-
पापञ्चपलान्भागान्श्चतुर्द्वेणैश्चम्भसः पचे-
त् ॥ द्रोणशेषपरस्पृतगुडस्यद्विशतं भिषक्
चूर्णितान् कुडवाद्धांशान्प्रक्षिपेच्चसमाक्षि

कान् ॥ प्रियंगुमुस्तमञ्जिष्ठाविडंगमधुक
प्लवान् । रोधशावरकंचैवमासार्द्धस्था
पयेत्ततः॥ एपमूलासवःसिद्धोदीपनोर-
क्तपित्तजित् ॥ आनाहकफहृद्रोगपाण्डु
रोगांगसादनृत् ॥

अर्थ—हलदी, दोनों पंचमूल, वीरक,
क्रपभक, जीवक, प्रत्येक पांच पांच पल
लेकर चार द्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष
रहने पर उतार कर छानले और ठंडा होने
पर दो सौ पल गुड तथा एक कुडव शहत
डालदे और प्रियंगु, मोथा, मजीठ, वायवि
डंग, मुल्हट्टी, केवटीमोथा, पठानीलोघ, ये
सब आधे आधे कुडव पीसकर डालदे एक
महीने पश्चात् इसका गेवन करै यह मूला-
सव अनुभूत और रक्तपित्त को जतने वाला
है, इससे आनाह, कफ, हृद्रोग, पांडुरोग
और अंगसाद दूर होजातेहैं ।

पिण्डासव ।

मास्त्रिकंपिप्पलीपिष्ट्वागुडमध्यांविभीतका
त् । लदकप्रस्थसंयुक्तंयवपल्लेनिधापयेत् ॥
तस्मात्सुजातात्पुपलंसलिलांज्जलिसंयुतम्
पिवेत्पिण्डासवोद्यप्येवगानीकविनाशनः
स्वस्थोऽप्येनंपिवेन्मासेनरःसिद्धंरसायनम्
इत्येवपामनुत्पिचरोगाणांयैप्रकीर्तिताः॥

अर्थ—एक प्रस्थ पीपल, एक प्रस्थगुड,
एक प्रस्थ बहेडे का गूदा, एक प्रस्थ जल इन
साको घीकी चिकनी हांडीमें भर कर जौके
ढेरमें गाड़ देवै । एक महीने पीछे जब यह
तयार होजाय तब इस में एक पल आध
सेर जलमें मिलाकर पान करै । यह पिण्डासव

रोग समूहों का नाश करनेवालाहै । यदि
इस सिद्ध रसायनका प्रयोग स्वस्थ पुरुषभी
एक महीने तक करे तो उसके रोग होने ही
नहीं पाते हैं ।

मध्वरिष्ट

नवेपिप्पलीमध्वाक्तेकलशेऽगुरुधूपिते ॥
माध्वाढकंजलसमचूर्णनीमानिदापयेत् ॥
कुडवार्द्धविडंगानापिप्पल्याःकुडवंतथा ॥
चतुर्थकांशास्त्वक्सीरयाःकेशरमरिचानि
च ॥ त्वगेलापत्रकशटीक्रमुकातिविपातथा
हरेण्वेलुकतेजोहापिप्पलीमूलाचित्रकान् ॥
कार्षिकास्तान्स्थितंमासमतऊर्ध्वंप्रयोजयेत्
मन्दंसन्दीपयत्यग्निं करोति विषमसमम् ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगकुष्ठार्शःश्वयथुज्वरान
वातश्लेष्माभ्यांश्चान्यानमध्वरिष्टोऽप्यपोहा

अर्थ—एक नवीन मिटी के घड़े में अग
रका धुआं देकर पिसीहुई पीपल शहत मेंमिला
कर उसके भीतर छेप करदे उस घड़े में एक
आढक जल और एक आढक शहत भर
कर नीचे लिखे हुए द्रव्यों का चूर्ण भरदेवै
यथा वायविडंग आधाकुडव, पीपल एक कु-
डव, वशटोचन एकपल, तथा केशर, काली
मिरच दालचीनी, छोट्टी इलायची, तेजपात
कचूर, सुपारी, अतिस, हरेणु, एलुआ
चव्य, पीपलामूल, चीता, इनको एक एक
कर्प डालकर एक महीने तक धरा रहने दे
पीछे इसका प्रयोग करै । यह मन्दाग्नि को
संदीपन करता है विषमग्नि को समान क-
रता है, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी रोग, कोद
अर्श, सूजन, ज्वर, वात श्लेष्मिकरोग तथा

अन्यरोगों को भी दूर करता है ॥

पीपलामूलादिप्रयोग ॥

समूलापिप्पलीक्षारौद्वौपञ्चलवणानिच ॥

मातुलुंगाभयारास्नाशटोमरिचनागरम् ।

कृत्वासमांशतच्चूर्णोपिवेतप्रातः मुखाम्बु

ना ॥ श्लैष्मिकेग्रहणीदोषेवलवर्णाग्निव

र्द्धनम् । एतैरैवोपधैःसिद्धं सर्पिःपेयंसमा

रुते ॥ गोलिमिकेपट्पलप्राक्तंभल्लातक

घृतञ्चयत् ।

अर्थ—पांपलामूल, पांपल, सज्जीखार,

जवाखार, पाचोनमक, विजौरा, हरड, रास्ना

कचूर, कालामिरच, सोंठ, इन सबको समान

भाग लेकर चूर्ण बनावे, प्रतिदिन प्रातःकाल

गरमजलके साथ इसका सेवन करे तौ कफ

की ग्रहणी दूर होजाती है और बल, वर्ण

तथा आग्नि बढ़ती है । अथवा इन्हीं

औषधियों से सिद्ध किया हुआ घी वातयुक्त

कफकी ग्रहणी में उत्तम होता है । गुल्म

रोग के प्रकरणमें कहाहुआ पट्पल घृत

और भल्लातक घृतभी इसरोग में हितहै ॥

क्षारघृत ।

स्वर्जिकाविड्कालोत्पलवर्णयवशूकनम्

सप्तलाकण्टकारीचचित्रकथेतिदाहयेत् ।

सप्तकृत्वः श्रुतस्यास्पक्षारस्पष्ट्यादकेनतु

आदकंसर्पिणः प्रक्त्वापिवेदमिविवर्द्धनम्

अर्थ—सज्जी, विड्मक, काटानमक,

जवाखार, सातला, फटेरी और चीता, इन

सबमें से पिष्टिले तीनों की भस्म कर लैवे ।

इन को दो आदक जलमें घोलकर सात

बार लानले पांछे इनमें एक आदक घृत

ढालकर पकावे, यह घृत अग्निकी बढाने

वाला होता है ॥

पिप्पलीमूलादिक्षार ॥

समूलापिप्पलीपाठाञ्चव्येन्द्र्यवनागरम् ।

चित्रकातिविपेहिगुम्बदंष्ट्रांकुडुरोहिणीम् ।

वचाञ्चकार्पिकंपञ्चलवणानांपलानिच ॥

दध्नःप्रस्थद्वयेतैलसर्पिपोःकुडवद्वये । चू

र्णोक्ृतानिनिष्काध्यशनैरन्तर्गतैरसे ॥

अन्तर्धूमंततोदग्ध्वाचूर्णकृत्वाधृताप्लुत-

म् । पिवेत्पाणितलंतस्मिन्जीर्णेस्पान्म

धुराशनः ॥ वातश्लेष्मापानसर्वान्ह

न्याद्विपगरांश्चसः ॥

अर्थ—पीपलामूल, पीपल, पाठ, चव्य,

इन्द्रजी, सोंठ, चीता, अतीस, हांग, गो-

खरू, कुटकी, और वच इनमें से प्रत्येक

द्रव्य एक एक कर्प लैवे । पांचों नमक,

पांचपल, दही दो प्रस्थ, घी तेळ दो कुडव

इनको जो कुट करके काथ करे और

काथ का जल उसी में लीन होजाय । फिर

इसको एक हांडी में बन्द करके ऐसी रीति

जलावे कि धूआं बाहर न निकलने पावे ॥

इसमें से तोले भर चूर्ण घृतमें सानकर

सेवन करे ॥ औषध के पचने पर मधुर भो

जन करे ॥ यह वात श्लैष्मिक रोग और

सम्पूर्ण प्रकार के विरोगों को करताहै ॥

भल्लातकादि क्षार ।

भल्लातकांत्रिकदुकंक्षिफलालवणात्रिकम् ॥

अन्तर्धूमंक्षिपलिकंगोपुरीपाग्निनादहेतु

सक्षारः सर्पिपापीतोभोज्योवाप्यवचूर्णि-

तः ॥ घृतपाण्डुग्रहणीदोषगुल्मोदावर्त

शोषनु ॥

अर्थ—मिठाया, त्रिकुटा, त्रिफला, लवण त्रिक (सेंधा, संचर और विड) प्रत्येक दो दो पल लेकर गौंके गोबर की अग्नि में अन्तर्धूम रीतिसे जलावे ॥ इस क्षार को घृत में मिलाकर वा भोजन के साथ सेवन करें तो हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी दोष, गुल्म, उदावर्त और शोष दूर होजाते हैं ।

दुरालभादि क्षार ॥

दुरालभाकरञ्जौद्वौसप्तपर्णसवत्सकम् ॥
पद्मग्रन्थामदनंमूर्वापाठामारग्वधंतथा ॥
गोमूत्रेणसमांशानिहृत्वाचूर्णानिदाहयेत् ॥ दग्ध्वाचतपिवेत्क्षारंग्रहणीबलवर्द्धनम् ॥

अर्थ—जवासा, दोनोंकंजा, सप्तपर्ण, इन्द्रजौ, वच, मेनफल, मरोडफली, पाठा और अमलतास इनको समान भाग लेकर खरल करें और फिर अन्तर्धूम रीति से जलाकर गोमूत्रके साथ इस क्षार को सेवन करें तो ग्रहणी के बलकी वृद्धि होती है ॥

भूनिम्बादिक्षार ॥

भूनिम्बरोहिणीतिक्तापटोलनिम्बपर्पटम् ॥ दहेन्माहिपमूत्रेणक्षारणपोऽग्निवर्द्धनम् ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, पर्वल, नीम और पित्तपापडा इनको अन्तर्धूम रीतिसे जलाकर भैंसके मूत्रके साथ सेवन करें तो अग्नि बढती है ॥

हरिद्रादिक्षार ॥

द्वेहारिद्रेवचाकुष्ठांचित्रकः कटुरोहिणी ॥

मुस्तंचवस्तमूत्रेणासिद्धः क्षारोऽग्निवर्द्धनः ॥

अर्थ—दोनों हल्दी, वच, कूट, चीता, कुटकी, मोघा, इनको अन्तर्धूम रीतिसे दग्ध करके बकरे के मूत्र के साथ सेवन करें तो अग्नि बढती है ॥

क्षार वाटिका ॥

चतुष्पलंसुधाकाण्डत्रिपलंलवणत्रयात् ॥
वार्ताकीकुडंबचार्कादष्टौद्वेचित्रकात्पले ।
दग्धानिवार्ताकुरसेगुलिकाभोजनोचराः ॥
भुक्तंभुक्तंपचत्याशुकासश्वासार्षसांदिताः ।
विसृचिकामतिश्यायहृद्रोगशमनाथताः ।

अर्थ....सेंहुड की टहनी चार पल, तीनों नमक तीन पल, वार्ताक एक कुडंब, आक की जड़ आठ पल, चीता दो पल, इनको अन्तर्धूम रीतिसे दग्ध करके-वार्ताकुर से में गोठियां बनावे । भोजन करने से पीछे इनका सेवन करें तो कियाहुआ भोजन शीघ्र पचजाताहै तथा खांसी, श्वास, अर्श विसृचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोग शान्त होजातेहैं ।

वत्सकादि क्षारः ॥

वत्सकातिविपेपाठांदुःस्पर्शहिंशुचित्रकम्
चूर्णिकृत्यपलाशानांक्षारंमूत्रक्षुतेपचेत् ॥
आयसेभाजनेसान्द्रात्तस्मात्कोलंमुखाभ्युना ।
मयैर्वाग्रहणीदोषेशोथार्शःपाण्डुमानपिवेत् ॥

अर्थ—कुडाकी छाल, अतीस, पाठा, जवासा, हांग और चीता इनका चूर्ण करके गोमूत्र में छाने हुए ढाक के क्षार में छोड़े की कढ़ाई में पकावे गाढ़ा होनेपर उतार ले । इस में से एक तोले भर गरम जल वा-

हितम् । परीक्ष्यामंशररिस्यदीपनंस्नेहसं
युतम् ॥ दीपनं बहुपित्तस्य तित्तमधुरसंयु
तम् । बहुवातस्य सस्नेहलवणाम्लयुतं हि
तम् ॥ सन्धुक्षतियथावन्निरेपां विधि
वदिन्धनैः ॥

अर्थ—ग्रहणीरोगियों को जो जो आवश्यक
की क्रिया कर्तव्य है अब उनको सुनो ।
कफाधिक्य ग्रहणी में रुक्ष, संदीपन और
तित्त औषधियों का काथ पान करके लार
टपकावै । जो कफाधिक्य में रोगी कृश हो तो
कभी रूक्षण और कभी स्नेह कर्म करे । कफ
के क्षीण होने पर स्नेहयुक्त दीपन औषधियों
का प्रयोग करे । पित्ताधिक्य में मधुरयुक्त
तित्त औषधियों का प्रयोग करे । वाताधिक्य
में स्नेह, लवण और अम्लसंयुक्त दीपन औ
षधी देवै ॥ दीपनकर्त्ता औषधियों के सेवन
से जठराग्नि इस तरह प्रबल होजाती है जैसे
ईंधन जलने से अग्नि ॥

स्नेहमेव परं विद्याद्दुर्बलानलदीपनम् ।
नालं स्नेहसीमद्धस्य शमायान्नं सुगुर्वपि ॥
मंदाग्निरपि पक्कतपुरीषं योऽतिसार्यते ॥
दीपनयौषधैर्युक्तं घृतमात्रां पिवेत्तु सः ।
तया समानः पवनः प्रसन्नो मार्गमास्थि
तः ॥ अग्नेः समीपचारित्वादाशु प्रक्रमते
बलम् । काठिन्याद्यः पुरीषन्तुकृच्छान्मु-
ष्चातिमानवः ॥ सघृतं लवणैर्युक्तं नरोऽन्ना-
वग्रहं पिवेत् ।

अर्थ—दुर्बल अग्निको बढ़ाने के निमित्त
घृत उत्तम होता है, जो अग्नि घृत से प्रदीप्त

होती है उसे भारी अन्न भी नहीं युष्ठांसकता
है ॥ जो मन्दाग्निव्यक्ति पक्व पुरीषको
अत्यन्त निकालता है उसको उचित है कि
दीपनीय औषधियों से सिद्ध किया हुआ घृत
मात्रा के अनुसार पान करे ॥ इसके पान करने
से समान वायु प्रफुल्लित होकर अपने मार्ग
में स्थित रहती है तथा अग्निके पास रहने
से वह बल को शीघ्र बढ़ाती है ॥ जिस रोगी
का मल कड़ा होकर कठिनता से निकलता
है उसे नमक मिलाकर अन्न के साथ घृत देवै ॥
परीक्ष्यामन्मन्दिपिवेत्सर्पिस्तैलं वा दीपनं युत
म् ॥ आतिस्नेहाक्षुभं देऽग्नौ चूर्णारिष्टास
वाहिताः । भिन्ने गुदोपलेपात्तु मले तैलसु
रासवाः ॥ उदावाच्चात्तु मन्देऽग्नौ निरुहाः
स्नेहवस्तयः । दोषवृद्ध्या तु मन्देऽग्नौ शुद्धौ
दोषविधिं चरेत् ॥ व्याधिसुक्तस्य मन्दे तु
सर्पिरेवाग्निदीपनम् । उपवासाच्च मन्दे
ऽग्नौ यवागूभिः पिवेत् घृतम् । अन्नावपीडि
ते चालं दीपनं वृंहणं च तत् । दीर्घकालप्रसा
दात्तु तत्तक्षीणकृशान्नरान् ॥ प्रसहानां
रसैः साम्लैः भोजयेत्पिशिताशिनाम् ।
लघुतीक्ष्णोष्णशोथित्वादीपयन्त्याशु तेऽ
नलम् ॥ मांसोपचितमांसत्वात्तथाशुतर
वृंहणाः ॥

अर्थ—रूक्षता से अग्निके मन्द होने पर
दीपनीय औषधियों से युक्त घृत वा तैल का
पान करावै । जो अत्यन्त स्नेहपान से मन्दाग्नि
हुई हो तो चूर्ण, अग्नि और आसवों का
सेवन करावै । गुदोपलेप से जो मल भिन्न
होगया हो तो तैल, मुरा और आसव देवै

येन्रम् । भुक्तेऽग्नेलभतेशान्तिर्जीर्णमात्रे
प्रताम्यति । तृदश्यासदाहमूर्च्छाद्याव्या
धयोऽत्यग्निसम्भवाः ।

अर्थ—कफके क्षाण होनेपर पित्तशायिका
अनुगमन करके अत्यन्त कुपित होजाता है
और अपनी गरमासे अग्निस्थानमें जाकर
आग्निको अत्यन्त बलवान् करदेता है ॥
इसतरह रूक्ष देह में वायुसहित अग्नि बल
को पाकर अन्नको परामभव कर देतीहै और
अपनी तीक्ष्णताके कारण अन्नको शीघ्रही
बार बार पचातीहै । इसतरह अन्न का
पाक करके रक्तादिधातुओं काभी पाक कर
देती है ॥ तदनन्तर रोगीको दुर्बलता, रोग
तथा मृत्यु पकड लेतीहै ॥ भोजन करतेही
कुछ शान्ति होजाती है और उसके पचते
ही फिर ताप होने लगताहै । इस अत्यग्नि
के कारण तृषा, श्वास, दाह, मूर्च्छा आदि
अनेक रोग होजातेहैं ॥

अत्यग्निकी शान्ति का उपाय ।

तमत्यग्निं गुरुस्निग्धस्वादुसान्द्रहिमस्थि
रैः ॥ अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं दीप्तमग्निमिवा
म्बुभिः ॥ मुहुर्मुहुर्जीर्णोऽपि भोज्यान्धस्यो
पहारयेत् । निरिन्धनोऽन्तरं लब्धाय यैर्न
नचिपादयेत् ॥

अर्थ—जैसे जलतीहुई अग्निको पानी
से बुझाते हैं वैसेही गुरु, स्निग्ध, मधुर, गाढ़
शीतल और कठोर पदार्थों का भोजन करा
के उस अत्यग्निको शान्त करै । बार बार
अजीर्ण होनेपर भी भोजन कराताही, रहै,
क्योंकि इन्धनरूप भोजनके न मिलनेसे ऐसा

न होकि अग्नि मनुष्यको मारडाले ॥

अत्यग्नि में भोजनादिक्रम ।

पायसं कृशरीस्रगंधपौष्टिकगुडवैकृतम् ॥
अद्याप्यैदकानूपपि शितानि शृतानि च ।
मत्स्यान्विशेषतः श्लक्ष्णान् स्थिरतोयचरां
स्तथा । आधिकं सघृतं मांसमद्यादत्यग्नि
नाशनम् । यवाग्नसमधूच्छिष्टां घृतं वा शु
धितः पिबेत् । पयोवा शर्करासर्पिर्जीवनी
यौर्धः शृतम् । फलानां तैलयोर्नानामु
त्कुञ्चाश्च सर्कराः ॥ मार्दवं जनयत्यग्नेः
स्निग्धान् मांसरसांस्तथा । पिबेत् शीताम्बु
नासर्पिर्मधूच्छिष्टेन वा शृतम् ।

अर्थ—खीर, खिचड़ी, स्नेहयुक्त पेषिक
पदार्थ, गुडके पदार्थ, आँदकमांस, आनूप-
मांस, घृतके पदार्थ, विशेष करके बंधे हुए
जलकी मंछली, घृतभ्रष्ट भेडका मांस, अ-
त्यग्नि के दूर करने के लिये सेवन करै ।
अत्यन्त भूख लगनेपर मोम डालकर यथाग्न
अथवा घृतका पान करै अथवा दूधका पान
करै अथवा मिश्री घोलकर पीवै । अथवा
जीवनीय गणोक्त औषधियों के साथ सिद्ध
किया हुआ घृत पान करै । अथवा जिनसे
तेल बनताहै उन उत्कुंच फलोंको शर्करा
मिलाकर भक्षण करै । स्निग्ध मांसरसोंका
सेवन करनेसे अग्नि मृदु पडजातीहै । पिब-
ला हुआ मोम घृतमें मिलाकर पीवै ऊपर-
से ठंडा जल पीवै ॥

आनूपरससिद्धान्वात्रीन् रूनेर्हस्तैलवार्जि
तान् । गोधूमचूर्णमथं वा गव्यधायित्वा शि
रां पिबेत् ॥ पयसासम्मितञ्चापि नोन्नः

स्नेहसंयुतम् । नारीस्तन्येनसंयुक्तांपित्रे
दौदुम्बरीत्वचम् ॥ आभ्यावापायसंसि
द्धमद्यादत्यग्निशान्तये । श्यामात्रिवृद्धि
पक्वापयोदद्याद्विरेचनम् ॥ असकृत्पि
त्तशान्त्यर्थपायसमातिभोजनम् । यत्कि
ञ्चित्मधुरमेध्यंश्लेष्मलगुरुभोजनम् । त
दत्यग्निहितसर्वभुयत्वाप्रस्वपनंदिवा ॥
मेध्यान्यन्नानियोत्यग्नावप्रशान्तःसमश्नु
ते । नर्ताश्रिमित्तमाप्नोतिव्यसनंपुष्टिमेति
सः ॥ कफेष्टेजितेपित्तमारुतेचानलः
समः । समधातोःपचत्यन्नंपुष्ट्यायुर्वलवृ
द्धये ॥

अर्थ—आनूप मांसरस में सिद्ध करके
तेल को छोड़कर तीन प्रकार के स्नेह
(घी, चर्बी, मज्जा) सेवन करे । अथवा
शिरा मोक्षण करके गेहूँ के चूनका मन्थ
देवे । दूधके साथ गेहूँके चूनका पाक कर
के गाढ़ा करले और इसमें घी, चर्बी और
मज्जा डालकर सेवन करे, अथवा खी के
दूधके साथ गूलरकी छाल औटाकर पान
करे । अथवा खीका दूध या गूलर की छाल
के साथ खीर पकाकर सेवन करे इससे
अत्यग्नि शान्त होजाती है । अथवा श्यामा
निसोध के साथ दुग्धपकाकर विरेचन देवे।
पित्तकी शान्ति के निमित्त रोगी को खीर
का भोजन करावे । मिष्ट, मेध्य, और कफ-
कारी भोजन करके दिनमें सोना भी हित
है । जो नित्यप्रति मेध्य अन्नोका सेवन
करता रहता है उसके अत्यग्नि नहीं होने
पाती किन्तु पुष्टि होती है । कफके बढ़ने

पर और वातपित्त के दूर होनेपर अग्नि
समान होजाती है और वह घातुओं को
समानता प्रतिपादन करके पुष्टि, आयु और
बलको बढ़ाती है ।

समशन के लक्षण ॥

पथ्यापथ्यमिहैकत्रभुक्तंसमशनंमतम् ।

अर्थ—पथ्य और अपथ्य भोजन को मि
लाकर करने का नाम समशन है ॥

विपम भोजन के लक्षण ॥

विपमं बहुवालं वाप्यप्राप्तातीतकालयोः ॥

अर्थ—न्यून वा अधिक, बिना समय वा
समयके बीतनेपर जो भोजन कियाजाताहै
उसे विपम भोजन कहते हैं ॥

अध्यशन के लक्षण ॥

भुक्तं पूर्वान्नशेषेतु पुनरभ्ययनं मतम् । शीघ्रं
प्येतानि मृत्युं वा घोरान् व्याधीन् सृजति न्वा

अर्थ—पहिले भोजनके बिना पंचही जो
भोजन कियाजाताहै उसे अध्यशन कहतेहैं
ये तीनों प्रकारके भोजन मृत्यु अथवा घोर
व्याधियों को उत्पन्न करते हैं ।

दिनके भोजनका वर्णन ॥

प्रातराशेत्यजीर्णेऽपि सायमाशो दुप्यति ॥

दिवाप्रभुभ्यतोऽर्केण हृदयं पुण्डरीकवत् ॥

तस्मिन् विबुद्धे सोतांसि स्फुटत्वं यान्ति सर्व-

शः । व्यायामाश्च विचाराश्च विक्षिप्तत्वा

च्चचेत्सः ॥ उत्क्रेदमपगच्छन्ति दिवा ते

नास्यधावतः । अहिनेष्वन्नमासिकम

न्यत्ते पुन दुप्यति ॥ अविदग्ध इव क्षीरे क्षी

रमन्यद्विमिश्रितम् ।

अर्थ—प्रातःकालके भोजनके बिना पचे

भी जो सार्यकालमें भोजन किया जाताहै वह कुछ अवगुण नहीं करताहै क्योंकि दिन में मनुष्यका हृदय इसतरह विकसित रहता है जैसे सूर्यकी किरणों से कमल । उसके विकसित रहने से सम्पूर्ण स्रोतभी विकसित रहते हैं, तथा दिनमें मनुष्य कुछ न कुछ परिश्रम करता रहताहै, विचारताहै और चित भी इधर विधर चलता रहताहै इससे धातुओं में क्लेद नहीं होने पाताहै । अकिन्न धातुओं में दूसरा भोजन इसतरह अवगुण नहीं करताहै जैसे अविदग्ध दूधमें अन्य िलाया हुआ दूध विकृत नहीं होता है ।

रात्रिके भोजनका वर्णन ।

रात्रौतुहृदयेम्लानेसंवृत्तेष्वयनेषुच ॥

यान्तिकोपेचविक्लेदसंवृत्तेद्विधातवः ।

क्लिबेष्वाप्यदपकेपुतेष्वासिक्तमदुप्यति ॥

विदग्धेषुपयःस्वन्यत्पयस्तप्तेष्विवापितम्

नैशेष्विवाहारजातेषुनापिपकेषुबुद्धिमान् ॥

तस्मादन्यत्समश्रीयात्पालयिष्यन्बलायुषी ।

अर्थ—रात्रिमें हृदय मलीन रहता है, स्रोतः समूह अस्फुट रहते हैं, इसी तरह कोष्ठ भी संवृत रहताहै और देहकी सम्पूर्ण धातु किन्न रहती हैं, किन्न धातुओंमें प्रथम भोजन के परिपक्व हुए बिना दूसरी बार भोजन करना ऐसा अवगुण कर्त्ता है जैसे खटे हुए तप्त दूधमें और दूधका मेल वि-
शत होजाता है । अतएव रात्रिमें कियेहुए आहारके बिना पचे पुनर्बार आहार करना निषिद्ध है । इसनियमसे भोजन करनेसे बल और आयु की वृद्धि होती है ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

अन्तराग्निगुणादेहंयथाधारयतेचसः ॥

यथान्नपच्यतेयांश्चयथाहारःकरोत्यपि ॥

येऽनयोयांश्चपुप्यन्तियावन्तोयेपचन्तिया

न् । रसादीनांक्रमोत्पत्तिर्मलानांतेभ्यए

वच ॥ तृष्णानामाशुकृद्धेतुर्धातुकालोद्भ

वक्रमः । रोगैकदेशकृद्धेतुर्नन्तरप्रिर्यथा

धिकः । सन्दुप्यतिपथादुप्योयानरोगा

नूननयत्यपि ग्रहणीयायथावच्चग्रहणीदो

पलक्षणम् । पूर्वरूपं पृथक्चैवव्यञ्जनंस

चिकित्सितम् । चतुर्विधस्यनिर्दिष्टतथा

चावस्थिकीक्रिया ॥ जायतेचयथात्य-

ग्निर्यच्चतस्यचिकित्सितम् । उक्तयानि

हृतसर्गग्रहणीदोषकेषुनिः ॥

अर्थ—इस ग्रहणी दोष चिकित्सित अध्यायमें भगवान् पुनर्वसुने अन्तर अग्नि के गुण, अन्तराग्नि द्वारा देह धारण की रीति, अन्न के परिपाक की विधि, आहार विधि, अग्निके भेद, अग्निसे पुष्ट होनेवाले द्रव्य, जिनको अग्नि पकाती है, रसादि धातुओंकी क्रमसे उत्पात्ति, धातुओं से मल की उत्पात्ति, तृष्णके शीघ्रकारी हेतु, धातुका कालोद्भव क्रम, अन्तराग्नि द्वारा रोगीक देश कारक हेतु, दुष्ट अन्तराग्नि के दूषित होने की विधि, दूषित अग्निसे उत्पन्न रोगों का वर्णन, ग्रहणी शब्दका अर्थ, ग्रहणीदोष के यथावत् लक्षण, चार प्रकार की ग्रहणी के पूर्वरूप, दोष भेदसे ग्रहणी के पृथक् २ लक्षण, चिकित्सा, आवास्थिकी क्रिया, अत्याग्नि का लक्षण, और उसकी शान्ति

के उपाय ये सब इस अध्याय में वर्णन किये गये हैं ॥

इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने गृहणी चिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

—*—

विंशोऽध्यायः ॥

अथातः पाण्डुरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः । इति हस्माद् भगवानात्रेयः ॥

अर्थ.... तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम यहां से पाण्डुरोग चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

पाण्डुरोग के भेद ।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पञ्च वातपित्तकफैस्त्रयः चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमो भक्षणान्मृदः ॥

अर्थ.... पाण्डुरोग पांच प्रकारका होता है, यथा वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सन्निपातिक, और पांचवां मृदक्षणाद्भव ।

पाण्डुरोग की उत्पत्ति ।

दोषाः पित्तप्रधानास्तु यस्य कुप्यन्ति धातुषु शैथिल्यं तस्य धातूनां गौरवञ्चोपजायते ॥ ततो वर्णवत्स्नेहाये चान्येऽप्योजसो गुणाः व्रजन्ति क्षयमत्यर्थं दोषदूष्यप्रदूषणात् । सोऽल्परक्तोऽल्पमेदस्को निःसारः शिथिलेन्द्रियः । चैवर्ण्यं भजते तस्य हेतुं शृणु सलक्षणम् ॥

अर्थ.... जब मनुष्यके पित्तप्रधान दोष धातुओं में कुपित होजाते हैं और उन के कोषके कारण धातुओं में शिथिलता और भारा-

पन होता, तब दोषों से दूष्योंके दूषित होने से देह के वर्ण, बल, स्नेह तथा ओजधातु के अन्यगुण अत्यन्त क्षीण होजाते हैं और उस रोगी के रुधिर और मेदा कम रहजाते हैं तथा शरीर निःसार और इन्द्रियों शिथिल पडजाती है । उसकी देह का वर्ण भी विगड जाता है । अब उसरोग के हेतु और लक्षणों का वर्णन करते हैं ।

पाण्डुरोग के हेतु ।

क्षारा म्ललवणात्सुप्णाविरुद्धासात्म्यभोजनात् । निष्पाचमापि प्याकतिलतैलनिषेवणात् ॥ विदग्धेऽन्ने दिवा स्वप्नाद्वधायामान्मैथुना चथा । प्रतिकर्मात्तु वैषम्याद्वेगानाञ्च विधारणात् ॥ कामाचिन्ताभयक्रोधशोकोपहतचेतसः । समुदीर्ण्यथापि तद्देयसमवस्थितम् ॥ वायुना वलिना क्षिप्तं सोतोभिर्दशभिः सृतम् । प्रपन्नं केवलं देहं त्वद्दमांसांस्तरमाश्रितम् ॥ प्रदूप्य कफवातासृक्त्वं दमांसानि करोति तत् । वर्णान्हरति हारिद्राण्यपाण्डून् वहुविधास्त्वचि ॥ स पाण्डुरोग इत्युक्तस्तस्यालिंगं भविष्यतः ।

अर्थ.... खारे, खट्टेनमकीन, अत्यन्त उष्ण, विरुद्ध और असात्म्य भोजन के करने से; चोलाई, उरद, खल, तिल और तेल के अत्यन्त सेवन से अन्नके विदग्ध होने से दिन में सोने से, अत्यन्त शारीरिक परिश्रमसे अत्यन्त मैथुन से; स्नेहनादि पंचकर्मों की विषमता से, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों को रोकने से; काम, चिन्ता, भय, क्रोध शो-

कादि से चितका परामय होने से, हृदयस्थ पित्त, उदगीर्ण होजाता है तब वायु उसे अत्यन्त वेग से फेंकती है और यह दसों धमनियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैलकर त्वचा और मांस के बीच में स्थित होजाता- है तब कफ, वात, रुधिर, त्वचा और मांस को दूषित कर देता है तथा त्वचा में हरा, हलदीके समान पाण्डु तथा अनेक प्रकार के वर्णों को उत्पन्न करता है । इसी को पाण्डुरोग कहते हैं । अब इस रोग के पूर्व-रूपका वर्णन करते हैं ।

पाण्डुरोग का पूर्वरूप ।

हृदयस्पन्दनरौक्ष्यस्वेदाभावःश्रमस्तथा ॥

अर्थ....हृदयका फड़कना, रुक्षता, पसीने का अभाव तथा श्रम में पाण्डुरोग के पूर्व रूप हैं॥

पाण्डुरोग के साधारण लक्षण ।

सम्भूतेऽस्मिन्भवेत्सर्वःकर्णक्ष्वेदोहतानलः । दुर्बलःसदनोन्निद्रश्रमभ्रमनिपीडितः ।
गात्रशूलज्वरश्वासगौरवाशुचिमान्नरः ।
मृदितैरिवगात्रैश्चपीडितोन्मथितैरिव ॥
शूनाक्षिकूटोहरितःशीर्णलोमाहतमभः ।
कोपनःशिशिरद्वेषीनिद्रालुष्टीवनोऽल्पवाक् ॥
पिण्डिकोद्वेष्टकदयूरुपादरूक्सदनानिच ।
भवन्त्यारोहणायासैर्विशेषश्चात्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—इस रोग के उत्पन्न होने पर कर्ण नाद, मन्दाक्षि, दुर्बलता, अंगसाद, गतनिद्रता, श्रम, भ्रम, गात्रशूल, ज्वर, श्वास, भारापन और अरुचि, होती है । सम्पूर्ण देह मृदित, पीडित और उन्माथित होजाता है

अक्षिकूट में सूजन, हरावर्ण, लोमों में शीर्णता, कांति का नष्ट होना, स्वभावमें क्रुद्धता शरीर से द्वेष, निद्रालुता, लालास्राव, वाक्-निग्रह, पिण्डियों में बाँटटे तथा चलने फिरने से कष्ट, उरु और पाँवों में वेदना और शिथिलता उत्पन्न होती है । अब इस रोग के विशेष लक्षणों को कहते हैं ॥

वातज पाण्डुरोग के लक्षण ।

आहारैरुपचारैश्चवातलैःकुपितोऽनिलः ।
जनयेत्कुष्णपाण्डुत्वतथाऋसारुणाङ्गताम् ।
अङ्गमर्देरुजन्तोदङ्गमपार्श्वशिरोरुजम् ।
शकृच्छोपास्यवैरस्यशोफानाहचलक्षयान् ।
अर्थ—वातकर्त्ता आहार विहार के सेवन से वायु कुपित होकर शरीर के वर्ण को काला, पीला, रुक्ष वा लाल कर देती है तथा अंगमर्द, वेदना, तोद, कम्प, पार्श्ववेदना, शिरोवेदना मलशोष, विरसता, शोष, आनाह तथा बलक्षयको उत्पन्न करती है ॥

पित्तज पाण्डुरोग के लक्षण ॥

पित्तलस्यापित्तपित्तयथोक्तैःस्वैःप्रकोपनैः ।
दूषयित्वागुरक्तादीन्पाण्डुरोगायकल्पते ।
सपीतोहरिताभोवाज्वरदाहसमान्वितः ।
तृष्णामूर्च्छापरीतस्तुपीतमूत्रशकृन्नरः ॥
स्वेदनःशीतकामश्चनचान्नमाभिनन्दति ॥
फटुकास्पोनचास्पोष्णमुपशेतेऽम्लमेववा ।
उदगारोऽम्लोधिदाहश्चविदग्धेऽन्नेऽस्यजायते ॥
दौर्गन्ध्यभिन्नवर्चस्वदैर्बलयन्तमप्यवच ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका अपने कुपितकर्त्ता द्रव्यों के सेवन से पित्त बढ़-

कर रक्तादि धातुओं को दूषित करके पाण्डुरोग को उत्पन्न करता है । पित्त जनि-
त पाण्डुरोग में देहका वर्ण पीला अथवा ह-
रा होजाता है ! ज्वर, दाह, तृषा और मू-
र्च्छा इन से रोगी गूस्त होजाता है, उस
के विष्टा और मूत्रका रंग पीला पड़जाताहै,
पसीना आताहै, ठंडी वस्तु प्यारी लगती
है, अन्नसे राचि हटजातीहै, मुख में क-
ड़वापन, उष्ण और खट्टे पदार्थका अच्छा
न लगना, खट्टी डकार, विदाह, अन्न
की अपरिपक्वता, दुर्गन्धि, विष्टाका फट-
ना और दुर्बलता ये बातें होती हैं तथा
आँखोंके साम्हने अन्धकार छाजाताहै ॥

कफजपाण्डुरोग के लक्षण ॥

विट्प्लैःश्लेष्मलैःश्लेष्मापाण्डुरोगंसपूर्ववत्
करोतिगौरवतन्द्रांछर्दिश्वेतावभासताम्
प्रसेकंलोमहर्षञ्चसादंमूर्च्छाभ्रमंकलमम् ॥
श्वासकासौतयालस्यंअरुचिंवाक्स्वरग्र-
हम् ॥ शुक्रमूत्राक्षिवर्चस्त्वंकटुरुक्षोष्णका-
सता ॥ श्वयधुमधुरास्यत्वमितिपाण्ड्वा-
मयः कफात् ।

अर्थ—कफकर्त्ता द्रव्यों के सेवन से
कफ कुपित होकर कफज पाण्डुरोग उत्पन्न
करता है, इससे देह में भारापन, तन्द्रा, व-
मन, शरीरमें सफेदाईकी शलक, प्रसेक, लो-
महर्षण, अंगसाद, मूर्च्छा, भ्रम, कलम, श्वा-
स, खाँसी, आलस्य, अरुचि, वाक्ग्रह, स्वर
भंग, मूत्र, नेत्र और विष्टामें सफेदाई तथा
कड़वे, रूक्ष और उष्ण पदार्थोंपर मन
चलना, ये सब कफज पाण्डु के लक्षणहै।

सान्निपातिक पाण्डुरोग के लक्षण ॥

सर्वाज्ञसेविनःसर्वेदुष्टादोपस्त्रिदोषजम् ॥

त्रिलिङ्गसम्प्रकुर्वन्तिपाण्डुरोगंसुदुः सहम्

अर्थ—त्रिदोषकर्त्ता अन्नोके सेवन क-
रने से तीनों दोष कुपित होकर सान्निपातिक
पाण्डुरोग उत्पन्न करतेहैं इस में तीनों दोषों
के कुछ २ लक्षण पाये जाते हैं यह रोग
बड़ा भयंकर होता है ॥

मृद्भक्षणजन्य पाण्डुरोग ॥

मृत्तिकादनशीलस्यकुप्यत्यन्यतमोमलः ॥

कपायामारुतंपित्तंमूपरामधुराकफम् ।

कोपयेन्मृद्रसादींश्चरौक्ष्यात्भक्तंविरुक्ष-
येत् ॥ पूरयत्यपिपैवस्रोतांसिनिरुणादि-

च। इन्द्रियाणां बलं तेजो जौर्वीर्यं निहत्य च

पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥

शून्यगण्डाक्षिकूटमृनाभिपादाग्रमेहनः ॥

क्रिमिकोष्ठोऽतिसार्येतमलं सासृक्कफान्वितम्

अर्थ—मिट्टी खानेकी आदतसे तानों

दोषोंमें से कोई सा दोष कुपित होजाता

है । कसीली, मिट्टी वायुको, ऊपरा पित्त

को और मधुर कफको विगाडदेतीहै ॥ मृ-

तिका रूखी होनेके कारण रसरक्तादि

धातुओंको कुपित करताहै और भोजन को

रूखा कर देतीहै । और पारिपाक को प्राप्त

न होनेके कारण स्रोतोंको पूरित करके रो-

क देतीहै तथा इन्द्रियोंके बल, तेज, ओज,

और वीर्यको नष्ट करके बल, वर्ण, और

अग्निके नाश करने वाले पाण्डुरोगको उत्पन्न

करतीहै । इस रोगमें गडबड, आँखके को-

ये, भृकुटी नाभि, पादोंके अग्रभाग और

महर्नेत्रिय में सूजन उत्पन्न होजातीहै । रोगीके कोष्ठमें कीड़े पडजातेहैं, उसे दस्त बहुत आतेहैं तथा मलके साथ रुधिर और कफ निकलताहै ॥

असाध्य पाण्डुरोग के लक्षण॥

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिध्यति कालप्रकर्षाच्छूनानां यश्च पीतानि पश्यति । यद्वाल्पविट्कंसकफहरितयोऽतिसार्यते । दीनः श्वेतानुदिग्धान्मलदिर्मूर्च्छातृपादितः सनास्त्रमृक्षपाद्यश्च पाण्डुश्चेतस्त्वमाप्नुयात् ॥ इति पञ्चविधस्योक्तपाण्डुरोगस्य लक्षणम् ॥

अर्थ—यहुत दिनका पुराना पाण्डुरोग जिससे देहमें खरदरापन होजाताहै वह असाध्य होताहै । जिसमें बहुत दिनका होनेके कारण सूजन होजातीहै और हरिद्वर्ण होताहै, जो रोगी दीन होजाता है, सब शरीर सफेद पडजाताहै, जो वमन, मूर्च्छा और तृपा से पीडित होताहै और जो पाण्डुरोगी रुधिर की क्षीणतासे सफेद होजाताहै । वह भी असाध्य होता है । इसतरह पांचों प्रकारके पाण्डुरोगोंके लक्षण वर्णन कियेगयेहैं ॥

कामलारोग के लक्षण ॥

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निपेवते तस्य पित्तममृक्ष्मांसं दग्ध्वारोगाय कल्पते । हारिदनेत्रः सभृशं हारिदत्वङ्नखाननः । रक्तपीतशङ्खनमूत्रोभेकवर्णो हतेन्द्रियः । दाहा विपाकदोषैस्तदनाखचिकार्यतः । कामला बहुपित्तपाकोऽन्नासाश्रयामता ॥

अर्थ—जो पाण्डुरोगी पित्तकर्ता पदार्थों

का अत्यन्त सेवन करताहै, उसका पित्त रक्त और मांसको दूषित करके रोगको उत्पन्न करताहै । इसमें रोगीके नेत्र हलदी के समान पीले होजाते हैं तथा त्वचा नख और मुख हलदी के समान होजातेहैं । उसका बिष्टा और मूत्र लाल और पीला पडजाताहै, उसके देह का वर्ण वर्पा के मेडक का सा होजाता है, इन्द्रियां हतशक्ति होजाती हैं, रोगी दाह, अविपाक, दुर्बलता अंगसाद और अरुचिसे कृश होजाता है, इसी को कामला रोग कहते हैं, इसमें पित्तकी अधिकता होती है, कोष्ठ और शाला इसके आश्रय स्थान होते हैं ।

कुम्भकामलाके लक्षण ।

कालान्तरात् खरीभूतात्कुच्छास्यात्कुम्भकामला ॥ कृष्णपीतशङ्खनमूत्रोभेकवर्णः । मानवः ॥ मरक्ताक्षिमुखद्विर्विष्मूत्रो यश्च ताम्ब्यति । दाहारुचितृपानाहतन्द्रामोहसमन्वितः प्रणष्टाश्रितश्चानिर्यात्याशु कामली ॥ साध्यानामितरेषां तु भेषजसं प्रवक्ष्यते ॥

अर्थ....यही कामला रोग कालान्तर में खरता को प्राप्त करके काष्ठसाध्य कुम्भकामला को उत्पन्न करताहै । इसमें बिष्टा और मूत्र काले पीले पडजातेहैं, सूजन बहुत होजातीहै, इसमें आंख, मुख, वमन बिष्टा और मूत्रका रंग लाल होजाता है, दाह, अरुचि, तृपा, आनाह, तन्द्रा और मोह उत्पन्न होते हैं, अग्निमंद पडजाती है, संज्ञा नष्ट होजाती है, यह कामलारोगी

शीघ्र मरजाता है । अब इनसे अतिरिक्त
साध्य रोगों की चिकित्सा का वर्णन करते हैं

पांडुरोग में चिकित्सा विधान ।

तत्र पाण्डवामयी स्निग्धस्तीक्ष्णरूध्वा नुलो
मिकैः ॥ संशोध्यो मृदुभिस्तिकैः कामली
तु विरेचनैः । ताभ्यां संशुद्धकायाभ्यां पथ्या
न्यन्नानि दापयेत् । शालयो यवगोधूमपुरा
णाः मूषसंस्कृताः । मुद्गाढकमसूरैश्च जात्र
लैश्च रसैर्हिताः ॥ यथादोषं विनिष्टञ्चतयो
भैषज्यमाचरेत् ।

अर्थ—इनमें से पाण्डुरोगी को स्निग्ध
और तीक्ष्ण यमन, विरेचन द्वारा संशोधन
देवै । कामलारोगी को मृदु और तिक्त विरे
चन देवै । जब इनसे देह शुद्ध होजाय
तब पथ्य अन्नोका सेवन करावै, यथा पुरा
ने शालीचावल, जौ, गेहूँ, मूँग, अडहर,
मसूर तथा जांगल मांसरसका सेवन हित है ।
इम रोगमें जिस दोषकी अधिकता हो उसी
के अनुसार औषधियोंका प्रयोग हितकर है ।

स्नेहनघृत ।

पञ्चगव्यं महातिक्तं कल्याणकमथापिवा ॥
स्नेहनार्थं घृतं दद्यात् कामला पाण्डुरोगिणे ।
अर्थ—कामलारोगी तथा पाण्डुरोगियोंको
पंचगव्य, महातिक्तक और कल्याणकघृत
स्नेहन करने के लिये देवै ॥

दाडिमाघृत ।

दाडिमात्कुडवो धान्यात्कुडवार्द्धपलंपलम्
चित्रकात्भृङ्गेराक्षीपपल्याष्टमिकात्त
था । तैः कलकैर्विंशतिपलं घृतस्य सलिला
ढके ॥ सिद्धं घृतं पाण्डुरोगार्शः प्लीहवातक

फार्तिनुत् । दीपनश्वासकासघ्नं मूढवा-
ते च शस्यते ॥ दुःखमसाविनीनां च वन्ध्या
नां चैव गर्भदम् ।

अर्थ—अनारकी छाल एक कुडव, धनिगं
आधा कुडव, चीता एक पल, अदरक एक
पल, पीपल, आधा पल, इनका कल्क बीस
पल घृत और एक आठक जलमें सिद्ध करै
यह हृद्रोग, पांडुरोग, अर्श, प्लीहा, वात
कफको दूर करता है, यह दीपन है, श्वास, का-
सको दूर करनेवाला है । और मूढवात में
हितकारी है ॥ जिन स्त्रियोंके बालक कष्ट
से होता है उनको सुखदाई है वन्ध्यास्त्रियों
को गर्भ देनेवाला है ।

कटुकाद्यघृत ।

कटुकारोहिणीमुस्तं हार्द्रिवत्सकात्फलम् ॥
पटोलचन्दनं दूर्वात्रायमाणादुरालभा ।
कृष्णापर्पटको निम्बो भूनिम्बो देवदारुचः ॥
तैः कार्ष्णिकैर्घृतप्रस्थः सिद्धः क्षीरचर्तुगुणः ।
रक्तपित्तज्वरं दाहश्च यथुं स भगन्दरम् ॥
अर्शस्य स्रक्दरं चैव हन्ति विस्फोटकांस्तथा

अर्थ—कुटकी, मोथा, दोनों हलदी, इं-
द्रजौ, परवल, रक्तचन्दन, दूर्वा, त्रायमाणा
जवासा, पीपल, पित्तपापडा, नांम, चिरायता
देवदारु, प्रत्येक एक २ कर्प, धी एक प्रस्थ,
दूध चार प्रस्थ इनको मिलाकर सिद्ध किया
हुआ घृत रक्तपित्त, ज्वर दाह, सूजन
भगन्दर, अर्श, रक्तप्रदर तथा विस्फोटक
रोगोंको दूर करता है ॥

पथ्याघृत ।

पथ्याशतसेपथ्यावृत्तार्द्धतकल्कयान् ॥

द्रव्यों के साथ दूध को औटाकरपीये । इस से भी दोषोंका अनुलोमन होता है ।

अन्यप्रयोग ।

हरीतकीप्रयोगेण गोमूत्रेणाथवापिवेत् ॥
जीर्णक्षीरेण भुञ्जीत रसेन मधुरेण वा ।
सप्तरात्रं गवांमूत्रभावि तवाप्ययोरजः ॥
पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा पायेत तच्च ।

अर्थ—गोमूत्र में भिगोई हुई हरड का गोमूत्रके साथ पानकरै, औषधके पचने पर दूधके साथ अथवा मधुर मांसरस के साथ भोजन करै, अथवा लोहचूर्णको सात दिन तक गोमूत्रकी भावना देकर दूध के साथ पान करै इससे पाण्डुरोग शान्त होजाता है ॥

नवायस चूर्ण ।

च्यूपणात्रिफला मुस्तं विडङ्गचित्रकंसमा ॥
नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णौद्रसर्पिषा ।
भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शः कामलापहम् ॥
नवायसमिदं चूर्णं कृष्णात्रयेन भापितम् ।

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, वायविडंग और चीता ये सब समान भाग लेकर कूट ले तथा इन सबके समान भाग लोहचूर्ण मिलाकर शहत और घीके साथ सेवन करै । इससे पाण्डुरोग, हृद्रोग, कुष्ठ, अर्श और कामला दूर होजाते हैं । यह नवायस नामक चूर्ण कृष्णात्रयेन कहा है ॥

गुडनागरमण्डूरतिलांशान्मानतः समान् ।
पिप्पलीद्विगुणां कुर्व्यात् गुटिकां पाण्डुरो-
गिणे ॥

अर्थ—गुड, सोंठ, मंडूर और तिल चारों समान भाग, तथा पीपल ८ भाग इनकी

गोली बनाकर पाण्डुरोगी को देवे ।

मंडूरघटिका ।

त्रिफलाच्यूपणमुस्तं विडङ्गचव्यचित्रकौ ।
दायीत्वहमाक्षिकोधातुर्ग्रन्थिको देवदारु च ॥
एतान् द्विपलिकान् भागांश्च चूर्णान् कुर्व्यात् पृथक् तथा ।
मण्डूरद्विगुणं चूर्णात् शुद्धमज्जनसंभ्रमम् ॥
मूत्रमष्टगुणं पक्त्वा तस्मिंस्तत्प्रक्षिपेत्ततः ।
उदुम्बरसमानकृत्वा घटकांस्तान् यथाग्निच ॥
उपयुञ्जीत तत्क्रेणसात्स्यं जीर्णं च भोजनम् ।
मण्डूरघटकां ह्येतैः प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ॥
कुष्टाण्यजीरकं शोधय मूर्खस्तम्भं कफमयान् ।
अर्जासिकामलां मेहप्लीहानंशमयान्ति च ॥

अर्थ—त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, मोथा, चव्य, चीता, दारुहलदी की छाल, सोनामाखी, पीपलामूल और देवदारु इन में से प्रत्येक द्रव्य दो दो पल लेकर जुदे जुदे कूट डालै और इन सब से दुगुना शुद्धअज्जनके समानकाला मंडूर और मंडूरसे अठगुना गोमूत्रलेकर प्रथम गोमूत्र और मंडूरको पकावै जब पकने पर आजाय तब त्रिफलादि पूर्वोक्त चूर्ण डालकर गूलर के समान गोल्यां बनावै । इनमें से अग्निघटक अनुसार प्रति दिन एक गोली मठे में घोलकर पान करै । तथा औषध के पचने पर सात्स्य भोजन तक्र के साथ करै । इन मंडूर घटिकाओं का सेवन करना पाण्डुरोगियों को प्राणदायक है । कुष्ठ, अर्जा, शोध, ऊर्खस्तम्भ, कफ रोग, अर्श, कामला, मेह और प्लीहाभी इस के सेवन से शान्त होजाते हैं ।

ताप्यादि चूर्ण ।

ताप्याद्रिजतुरूप्यायोमलाः पञ्चपलाः पृथक् । चित्रकत्रिफलाव्योषविडङ्गैः पालिकैः सह ॥ शर्कराष्टपलोन्मिश्राः चूर्णिता मधुनप्लुताः । अभ्यस्यास्त्वक्षमात्राहिजीर्णेनियमिताशिना ॥ कुलस्थकाकमाच्यादिकपोतपरिहारिणा ॥

अर्थ—सौनामाखी, शिलाजीत, रूपामखली, लोहमल, प्रत्येक पांच २ पल, चीता त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, प्रत्येक एक २ पल, शर्करा आठपल इन सबका चूर्ण कर के प्रतिदिन इस में से एक तोले लेकर श. हत के साथ चाटै । औषध के पचने पर नियमित भोजन करै तथा कुलथी मकोय और कपोतादिका परित्याग करदेवै ।

योगराज वटिका ॥

त्रिफलायास्त्रयोभागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च ॥
भागश्चित्रकमूलस्य विडङ्गानां तथैव च ।
पञ्चाश्वजतुनो भागास्तथारूप्यमलस्य च ।
माक्षिकस्य च शुद्धस्य लोहस्य रजतस्य च ।
अष्टौ भागाः सितायाश्च तत्सर्वसूक्ष्मचूर्णितम् ॥
माक्षिकेणाप्लुतं स्थाप्य मायसे भोजने शुभे ।
उदुम्बरसमां प्रात्राततः खादेद्यथाग्निना ॥
दिने दिने मधुजीतजीर्णे भोज्यं षड्दीप्सितम् ।
वर्जयित्वा कुलस्थानिकाकमाची कपोतकम् ॥
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ।
रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं शिवम् ॥
पाण्डुरोगा विपक्षा संयक्ष्माणं विपमज्वरम् ।
कुष्ठान्यजीरकं मेहं शोषं श्वासमरोचकम् ॥
विशेषादन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ।

अर्थ—त्रिफला तीनभाग, त्रिकुटा तीनभाग, चीतेकी जड़ एकभाग, वायविडंग एकभाग, शिलाजीत पांचभाग, रौप्यमल पांचभाग, शुद्धकी हुई सौनामाखी पांचभाग, शुद्ध किया हुआ लोहचूर्ण पांचभाग, मिश्री आठभाग, इन सबको महीन पीसकर शहतमें मिलाकर लोहे के स्वच्छ पात्रमें भरदे । तत्पश्चात् अग्निबलके अनुसार तोलेभर प्रतिदिन सेवन करै । औषधके जीर्ण होनेपर प्रतिदिन इच्छानुसार भोजन करै । केवल कुलथी, मकोय और कपोत को परित्याग करदेवे । यह अमृतके समान योगराजयोग है । यह रसायन बहुतश्रेष्ठ सम्पूर्ण रोगोंका नाश करने वाला है, इससे पाण्डुरोग, विपमज्वर, खांसी, यक्ष्मा, विपमज्वर, कोढ़, अजीर्ण, प्रमेह, शोष, श्वास अरुचि, दूर होजाते हैं, यह योग विशेषकरके अपस्मार, कामला और अर्श रोग को दूर करता है ॥

शिलाजतु वटिका ।

कौटजत्रिफलानि म्वपटोलघननागरैः ॥
भाविता निदशाहानिरसैर्द्वित्रिगुणानि च ।
शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्कराम् ।
त्वक्क्षीरीपिप्पलीघात्री कर्कटाख्यापलोन्मिता ।
निदिग्ध्याः फलमूलाभ्यां पलं युक्त्या त्रिगान्धिकम् ॥
चूर्णितं मधुरं चर्या त्रिपलेनाक्षिकान् गुडान् ।
दाडिमा म्बुपयः पक्षिरसतोपसुरासवान् ॥
भक्षयित्वा पिबेच्चानुताम्रानि रन्तोऽपुच्छवन् ॥
पाण्डुकृष्टज्वरघ्नी हन्तकाष्ठो भस्मन्दरम् ।

पूतिवृच्छुक्रमूत्राग्निदोषशोषगरोदरम् ।
कासासृग्दरपित्तासृक्शोधगुल्मगरामया-
न् ॥ तैसर्वैविभ्रमानहन्त्युःसर्वरोगहराः-
शिवाः ॥

अर्थ.....इन्द्रजौ, त्रिफला, नाभ, परबल, मो-
था, सोंठ, इन के क्याथ में आठपल शिला-
जीत को दश, बीस वा तीस दिनतक भा-
वना देवै । फिर यह शिलाजीत, इतनी ही
मिश्री, तथा एक एक पल घंशलोचन, पीपल
आंवला और काकडासींगी, कटेरी कीजड
और उसके फल एक पल, त्रिगंध (इलायची
तेजपात और दालचीनी) एक पल, इन
सबका चूर्ण करके तीनपल शहत में सान-
तोले २ भरकी गोली बनाये । भोजन कर
के वा बिना भोजन कियेही इन गोलियोंका
सेवन करै और ऊपर से अनारका रस, दूध
पक्षियों का मांस रस, जल, मुरा और
आसव का पान करै । इसके सेवन करने
से पांडुरोग, कुष्ठ, ज्वर, पीडा, तमक,
अर्श, भगन्दर, पूतिरोग, हृद्रोग, शुक्ररोग,
मूत्ररोग, अग्निदोष, शोषरोग, गरदोष,
उदररोग, खांसी, रक्तप्रदर, रक्तपित्त,
शोथ, गुल्म तथा विपरोग दूर होजाते हैं ।
ये गोलियां सब प्रकारकी भ्रांति और सवप्र-
कारके रोगोंकी हरनेवाली बड़ी कल्याणकर्त्ता हैं

पुनर्नवादि प्रयोग ।

पुनर्नवात्रिवृद्धोपविडंगदारुचित्रकम् ।
कुष्ठहरिद्रेत्रिफलादन्तीचव्यकालिंगकाः ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलंमुस्तश्चेतिपलोन्मितम्-
मण्डूरंदिगुणचूर्णात्तगोमूत्रेद्वयादकेपचत् ।

कोलवदग्गाढिकाःकृत्वातक्रेणालोह्यताः
पिवेत् । ताःपाण्डुरोगान्प्रीहानमर्शांसिबि-
पमज्वरम् । श्वयंयुग्रहणीदोषहन्त्युःकुष्ठं
क्रमोस्तथा ॥

अर्थ—सांठ, निसोथ, त्रिकुटा, वायविडंग,
देवदारु, चीता, कूठ, दोनों हलदी, त्रिफला,
दन्ती, चव्य, इन्द्रजौ, पीपल, पीपलामूल,
मोथा ये सब एक एक पल लेवै, इन सब
से दूना मंडूर मिलाकर चूर्ण बनालेवै और
दो आठक गोमूत्रमें पकाकर घेरके बराबर
गोली बनाकर तक्रमें घोलकर सेवनकरै ।
इससे पांडुरोग, प्लीहा, अर्श, विपमज्वर,
सूजन, ग्रहणीदोष, कोष्ठ और त्रिमिरोग न
ष्ट होजातेहैं ।

अचलेह प्रयोग ।

दार्वात्त्वक्त्रिफलाव्योपविडङ्गमयसोरजः
मधुसर्पिर्गुतंलिह्यात्कामलापाण्डुरांगवान-
तुल्याअयोरजःपथ्याहरिद्राःक्षौद्रसर्पिणा
चूर्णिताःकामलीलिह्यात्गुडक्षौद्रेणवाभयम्
त्रिफलाद्देहरिद्रेचकडुरोहिण्ययोरजः ॥
चूर्णितंक्षौद्रसर्पिर्भ्यासलेहःकामलापहः ।

अर्थ—कामला रोगी और पाण्डुरोगी
दारुहलदीकीछाछ, त्रिफला, त्रिकुटा, वायवि-
डंग, छोहचूर्ण इनको शहत और घांके सा-
थ चाटै। छोहचूर्ण हरड और, हल्दी इनको
समान भाग अथवा केवल हरड को गुड
और शहत के साथ चाटनेसे कामला रोग
नष्ट होताहै । त्रिफला, दोनों हलदी, कुटकी
और छोहचूर्ण इनको घी और शहतके सा-
थ चाटै तौ कामलारोग जातारहताहै ॥

धात्र्यावलेह ।

द्विपलाशन्तुगाक्षीरिनागरमधुयष्टिकाम्
मास्थिकीपिप्पलीद्राक्षांशकरार्द्धतुलांशु
माम् । धात्रीफलरसद्रोणसपिष्टलेहवत्प
चेत् ॥ शीतामधुप्रस्थयुतांलिङ्गात्पाणि
तलंततः । हन्त्येपकामलापित्तपाण्डुका
संहलीमकम् ॥

अर्थ—वशलोचन दो पल, सोंठ, मुलहठी,
पीपल और दाख एक एक प्रस्थ, सफेद-
चीनी आधीतुला, इन सबको पीसकर एक
द्रोण आंवलेके रसमें पकावै, जब हँहीसी
होजाय तब उतार ले और ठंडाग्वीन्ने पर
एक प्रस्थ शहत मिलाकर सयोगी इसमें
से प्रतिदिन दोतोले सेवन करे । गमला,
पित्तोग, पांडुरोग, खांसी और यमभीमक
दूर होजातेहैं ॥

मंडूरगुटिका ॥

व्यूषणत्रिफलाचव्यचित्रकोदेवदारुच ।
विडङ्गान्यथमुस्तश्चवत्सकंचेतिचूर्णयेत् ॥
मण्डूरतुल्यतच्चूर्णगोमूत्रेऽष्टगुणेपचेत् ॥ श-
नैःसिद्धास्तथाशीताःकार्याःकर्मसमागुडाः
यथाग्निभक्षणीयास्तेष्टीहपाण्ड्वामयाप-
हाः । ग्रहण्यर्शोनुदःजीर्णतक्रवाय्यशिनः
स्मृताः ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, चीता, देव-
दारु, वायविडंग, मोथा और इन्द्रजौ इनसबका
चूर्ण बनावै इन सब के बराबर मंडूर लेकर
उत्तसे अठगुने गोमूत्र में प्रथम मंडूर को
पकावै और फिर उसमें उक्त चूर्ण डाल
देवै फिर धीरे २ सेक कर उतारले और

ठंडा होनेपर एक एक कर्पकी गोखियां बनावै
और अग्निबलके अनुसार सेवन करै तो
प्लीहा, पांडुरोग ग्रहणी और अर्शरोग दूर
होजाते हैं । औषधके पचने पर तक्र और
यवमंड का सेवन करै ।

गुडारिष्ट ।

मज्जिप्लारजनीद्राक्षावलामूलान्ययोरजः
रोधूचैतेपुगोढःस्यादरिष्टःपाण्डुरोगिणाम्

अर्थ—मजीठ, हलदी, दाख, खरौटी की
जड़, लोहचूर्ण और लोघ ये सब समान-
भाग लेकर चूर्ण करै तथा इस सबसे
चौगुना गुड़ और, गुड़ेसे चौगुना जल
मिलाकर सबको एक घीकी हांडीमें भर देवे।
यह गुडारिष्ट पांडुरोगियोंको हितहै ।

अन्य अरिष्ट ।

बीजकात्पोडशपलंतिफलायाश्चविंशतिः
द्राक्षायाःपञ्चलाक्षायाःसप्तद्रोणेजलस्यतत्
साध्यंपादावशेषेतुपूतशेषेसमावयेत् । श-
र्करायास्तुलांप्रस्थमाक्षिकस्यचकापिकम् ।
व्योपंव्याघ्रनखोशीरंक्रमुकंशैलचालुकम् ।
मधुकंकुष्ठमित्येतच्चूर्णितंघृतभाजने॥य-
वेपुदशरात्रतद्ग्रीष्मेद्दिःशिशिरेस्थितम् ।
पिवेत्तद्ग्रहणीपाण्डुरोगार्शकामलारु-
चीः ॥ मूत्रकृच्छ्राम्मरीकुष्ठसन्निपातांश्च
नाशयेत् ।

अर्थ—विजौरा सोलहपल, त्रिफला, बीस
पल, दाख पांचपल, लाल सातपल, इनसब
को एक द्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष
रहनेपर उतारकर छानले । ठंडा होने-
पर इसमें एक तुला अनेदचीनी, शहत
एक प्रस्थ, तथा त्रिकुटा, व्याघ्रनखी उशीर,

सुपारी, पलुआ, मुढहटी और कूट, प्रत्येक एक एक कर्प लेकर इनका चूर्ण बनाकर ऊपर कहद्वये काथमें मिलाकर एक चिकनी हांडी में भरदेवै । इसको ग्रीष्मऋतु में दस दिवस तक जोके ढेरमें गाढ़ देवै और सर्दी में बीस दिनतक दवा रहने दे, फिर निकाल कर इसका सेवन करै । इससे ग्रहणीरोग, पांडुरोग, अर्श, कामला, अरुचि, मूत्रकुच्छ, अस्मरी, कोढ़ और सन्निपात दूर होजातेहैं ।

धान्यारिष्ट ।

घात्रीफलसहस्रेष्ट्रेपीडायेत्वारसन्तुतम् ।
क्षौद्राष्टांशेनसंयुक्तकृष्णाद्विकुट्टेनच ॥
शर्कराद्विकुलोन्मिश्रपंकस्निग्धघटस्थितं ।
प्रषिषेत्मात्रयाप्रातर्जीर्णमितहिताशनः ॥
कामलापाण्डुरोगवातासृग्विषमज्वरा
नाकासहिष्कांशार्चिश्वासांश्चोषोरिष्टः प्रणा
शयेत् ॥

अर्थ—दो सहस्र आंवलोंका मर्दनकर के रस निकाल लेंवै । इस रसका आठवां भाग शहत, आधा कुडव पीपल, शर्कराआधा तुला, इन को मिलाकर पकावै और एक चिकने घड़ेमें भरकर रखदे । इसमें से प्रतिदिन प्रातःकाल गात्र के अनुसार सेवन करै और औषधके पचनेपर थोडा और पथ्य भोजन करै, इसके सेवन से कामला, पाण्डुरोग, वातरक्त, विषम ज्वर, खांसी, श्वास हिचकी और अरुचि दूर होजातेहैं ।

स्थिरादिभिः शृतं तोयपानादहरेमंशस्यते ।

पाण्डूनां कामलातीनां मृद्वीकामलकीरसः ॥

अर्थ—पांडुरोगमें । शिथलादि औषधियों

से सिद्ध कियाहुआ जल वा आहार हित है तथा कामलारोगमें दाख और आंवले का रस भी हितहै ।

पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थमिति प्रोक्तं महर्षिणा चिकल्पमेतद्विपजापृथग्दोषवत्प्रतिवातिकेस्नेहभूयिष्ठं पित्तिके तित्तशीतलं ॥ श्लेष्मिके कटुतिक्तोष्णविधिमिश्रं सान्निपातिके ॥

अर्थ—महर्षि आत्रेयने पांडुरोगकी शांतिके लिये जो जो औषधें यहां तक वर्णन की हैं वेही पृथक् पृथक् दोषवत् के अनुसार विकल्पपूर्वक अर्थात् कमीबेशी करके प्रयोग करना ठीकहै । जैसे वातिक रोगमें ये औषधें अधिक स्निग्ध द्रव्योंसे संस्कार करके, श्लेष्मिक रोगमें तित्त शीतल और कफज रोगमें कटु, तित्त और उष्ण तथा सान्निपातिक में तीनों प्रकारकी मिली हुई औषधियां देनी चाहिये ।

मृत्तिका भक्षण में उपाय ।

निर्घातयेत् शरीरात्तु मृत्तिकां भाक्षितां भिषक् युक्तिज्ञः शोषनैस्तर्क्षणैः प्रसमीक्ष्यं वलावलम् ॥ शुद्धकायस्य सर्पापि वलापानानि योजयेत् ।

अर्थ—मृत्तिका भक्षणसे उत्पन्न हुए पांडुरोगमें रोगी का बलावल देखकर तीक्ष्ण संशोधनों द्वारा रोगीके शरीरसे मृत्तिका निकाल देवै । इसंतरह देहकेशुद्ध होने पर निम्नालिखत बलकारक घृत्तोंका प्रयोग करै ।

मृत्तिकादोष पर घृत ।

प्योषं पिल्वं हरिद्रं त्रिफलाद्विपुनर्नये ॥
मुस्तान्ययोरजः पाठा विडङ्गदेवदारुच ।

दृष्टिकालीचभागीचसक्षीरैस्तैःसर्मधृतम् ।
माधयित्वापिवेद्युक्त्यानरोमृदोपपीडितः ।
तद्वत्केशरयष्ट्याहपिप्पलीमूलशाद्वलैः ॥

नर्थ—त्रिकुटा, बेलगिरी, दोनों हलदी, त्रिफला, दोनों प्रकारकी साठ, मोथा, लोह चूर्ण, पाठा, देवदारु, वायविडंग, बिल्वन भांडंगी सब समान भाग लेकर चूर्ण करले इनसे चौगुना घृत और घृतसे चौगुना दूध डालकर पकावै । इस घृतका युक्ति पूर्वक सेवन करनेसे मृद्वक्षजन्म पांडुरोग दूर होजाताहै । इसीतरहसे केशर, मुहहटी, पीपलामूल और शाद्वल (नवीन छोटी घास) से सिद्ध किया घृत उपयोगी होताहै

अन्यउपाय ।

मृदोनिवर्तमानायलौल्यान्मर्त्यायभक्षणात् ।
द्रेप्यार्थभावितांकामंद्यात्तदोपनाशनैः ॥
शुक्लातिविषयानिम्बैर्विडंगैःकुटजेनच ।
वार्त्ताकैःकटुरोहिण्यापाठयामूर्वयापिवा ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको मिट्टी खानेकी बड़ी टेवहै उसको मिट्टीसे अरुचि बढ़ाने के निमित्त दोप नाशक द्रव्यों से भावना की हुई मृत्तिका यथेष्ट खवावै, वे द्रव्य यहहै, यथा अतीस, नीम, वायविडंग, इन्द्र जी, वार्त्ताक, कुटकी, पाठा और मूर्वा ।

यथादोषञ्चकुर्वीतभैषज्यं पांडुरोगिणाम् ।
क्रियाविशेषोऽस्यमतोहेतुविशेषतः ॥

तिलीपिष्टनिभयस्तुवर्चःसृजत्तिकामली ।
श्लेष्मणारुद्धमर्गितत्पित्तकफहरैर्जेयत् ॥

अर्थ—पांडुरोगमें दोषके अनुसार चिक

त्सा करनी चाहिये, हेतु विशेषसे क्रिया में भी अन्तर होताहै । जिसकामला रोगीका विष्टा तिलकी लुगदी सा होताहै उसरोग में पित्तका स्रोत कफसे बन्द होजाताहै, इसमें कफनाशकचिकित्सा करना चाहिये ॥

शाखाश्रित कामलाके लक्षण ।

रूक्षशीतगुरुस्वादुव्यायामैर्वेगनिग्रहैः ।
कफसंमूर्च्छितोवायुःस्थानात्पित्तक्षिपद्वाहिः ।
हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्क्षयेतवर्चास्तदानरः ।
भवेत्साटोपाविष्टम्भोगुरुणाहृदयेनच ॥
दौर्बल्याल्पाग्निपाश्वातिहिकाश्वासारुचिज्वरैः ।
क्रमेणाल्पेऽनुपज्येतापित्तेशाखा समाश्रिते ॥

अर्थ—रूक्ष, शीत, भारी, मिष्ट, व्यायाम और वेगनिग्रहसे वायु कफसे मिलकर पित्त को उसके स्थानसे बाहर निवालती है तब नेत्र, मूत्र और त्वचा हलदीके समान होजाते हैं और विष्टा सफेद होजाताहै । अफरा, गुडगुडाहट हृदयमें भारापन; दुर्बलता, मन्दाग्नि, पार्श्वशूल, हिचकी, स्वास, अरुचि और ज्वर ये उपद्रव होते हैं । यह पित्त क्रमक्रमसे शाखाओं पर आक्रमण करताहै ।

पांडुरोगमेंअन्यउपचार ।

वर्हितीचिरदक्षाणारूक्षाम्लैःकटुकैःरसैः ।
शुष्कमूलककौलत्थैर्यूपैश्चान्निभोजयेत् ।
मातुलुगरसंक्षौद्रं पिप्पलीमरिचान्वितम् ।
सनागरं पिबेत्पित्ततथास्येतिस्वमाशयम् ॥
तृषाम्लैःकटुरूक्षैर्णैलवणैश्चाप्युपक्रमः ।

आपित्तरोगाच्चकृतोवायोश्चाप्रशमाद्भवेत्स्वस्थानमागतोपित्तपुरीषापित्तरिज्जते

निवृत्तोपद्रवस्यास्यपूर्वकामलिकीविधिः॥

अर्थ—मोर, तीतर और मुर्गाके मांसरस को रुक्ष, अम्ल, और कटु द्रव्योंसे संस्कार करके दैवै अथवा सूखीमूली और कुलधी के यूपके साथ भोजन करावे । त्रिजैरे के रसमें शहत, पीपल, कालीमिरच और सोंठ डालकर पानसे पित्त अपने स्थान में चला जातहै । मलके पित्त रंजित न होने और वायु की अशान्ति से जो तृपादि रोग होतेहैं उन में कटु, उष्ण, रुक्ष और लवणापित औषधियों द्वारा चिकित्सा कीजातीहै, जब पित्त अपने स्थानमें आजाताहै और मल पित्तसे रंगजाताहै तब उसके सब उपद्रव निवृत्त हो जातेहैं उस समय कामलारोग की विधि कर्त्तव्यहै।

हलीमकके लक्षण ॥

यदातृपाण्डोर्वर्णः स्याद्भरितश्चावपतिकः
बलोत्साहश्चयस्तन्दाग्नित्वमृदुज्वरः
स्त्रीपृष्ठहर्षोऽङ्गमर्दश्चादस्तृष्णारुचिर्भ्रमः
हलीमकंतदातस्यविद्यादनलिपित्ततः ॥

अर्थ—जब पाण्डुरोगीका वर्ण हरा, काला व पीला पड़जाय, घट और उत्साह क्षीण होजाय, तन्द्रा, मन्दाग्नि, मृदुज्वर स्त्रियोंमें अनिच्छा, अंगमर्द, अंगसाद, तृष्णा, अरुचि, और भ्रम ये उपद्रव उत्पन्नहों तब वात पित्तकेकोपसे हलीमक नाम पाण्डुरोग रोगहोताहै।

हलीमकमें चिकित्सा ।

गृध्रचीस्वरसक्षीरसाधितमाहिपधृतम् ॥
सपिवेतिवृत्तांस्निग्धोरसेनामलकस्यतु॥
गिरिक्तोमधुरमायंसेवितोऽनिलपित्तनुत्।
द्राक्षालेहंशूर्णोक्तंशर्पापिमधुराणिच ॥

यापनान्क्षीरवस्तींश्चक्षीलयेत्सानुवासना
न । मार्द्वीकारिष्टयोगांश्चपिवेद्युक्तचाग्निवृ-
द्धये॥ कासिकञ्चभयालेहंपिप्लीमधुक-
म्बलाम् । पयसावाप्रयुञ्जीतयथादोषय-
थावलम् ॥

अर्थ—गिलोयका रस और दूध इनमें भेंसका घी सिद्ध करके स्नेहन कर्मके लिये पानकरै, स्निग्ध होने के पीछे आंवले के रसके साथ निसोथ पीये जब इससे दस्त होजाय तब वात पित्तको दूरकरनेवाली मधुर औषधियों का सेवन करै । पूर्वोक्त द्राक्षावलेह, मधुर औषधियों से संस्कृत घृत, यापन क्षीरवस्ति और अनुवासन वस्तिर्यों का प्रयोग करै । जठराग्नि को बढ़ाने के लिये मृद्वीकारिष्ट आदियोगों का पानकरै । कासोक्त अध्यायमें कहाहुआ अमयावलेह अथवा पीपल, मुलहठी और खैरटीको दोंप और बलके अनुसार दूध के साथ सेवनकरै अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

पाण्डोः पञ्चविधस्योक्तहेतुलक्षणभेदजम् ।
कामलाद्विधेषांचैवसाध्यासाध्यत्वमेवच
तेपां विकल्पोयथान्योमहाव्याधिर्हलीम-
कः ॥ तस्यचोक्तसमासेनव्यञ्जनंसचि-
कित्सितम् ।

अर्थ—इस अध्यायमें पाण्डुरोगके पांच भेद, उनके हेतु, लक्षण, चिकित्सा, दो प्रकार का कामलारोग, इन रोगों के साध्यासाध्य लक्षण, औषधियों का वैकल्पिक प्रयोग, हलीमक नाम महाव्याधि, तथा संक्षिप्त से हलीमक के लक्षण और चिकित्सा

वर्णन किये गये हैं ॥

इतिथ्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विराचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां

चिकित्सितस्थाने पांडुरोगचिकित्सितं

नामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः॥

अथातोहिकाश्वासचिकित्सितंव्याख्या

स्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अवहम यहांसे हिकाश्वास चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

अग्निवेशका भ्रश ।

वेदलोकार्थतत्त्वज्ञमात्रेयमृषिभिःस्तुतम् ॥

अपृच्छत्संशयंधीमानग्निवेशःकृताञ्जलिः

यश्चेद्विधाःभोक्ताःत्रिदोषास्त्रिप्रकोप

नाः ॥ रोगानानात्मकास्तेपांकःकोभव-

तिदुर्जयः

अर्थ—बुद्धिमान् अग्निवेश ने हाथ जो-

डकर वैदिक और लौकिक विषयों के तत्वों

को जाननेवाले और ऋषिगणोंसे स्तुति किये

हुये भगवान् आत्रेयसे पूछा कि हे भगवन् !

आपने द्विविधात्मक दोषोंका वर्णन किया

तथा तीन दोष और तीनों दोषोंके प्रकुपित

करनेवाले हेतु भी वर्णन किये । अब मेरी

यह जानने की इच्छा है कि इन अनेक प्र-

कार के रोगों में कौन २ रोग दुर्जय हैं

आत्रेय का उत्तर ।

अग्निवेशस्यतद्वाक्यंश्रुत्वामतिमताम्बरः

उवाचपरमप्रीतःपरमार्थविनिश्चयः॥का-

मंप्राणहरारोगावह्वानतुतेतथा ॥ यथा

श्वासश्चहिकाचप्राणानाशुनिरस्यतः।अ-

न्यैरप्युपसृष्टस्यरोगैर्जन्तोःपृथग्विधैः।अ-

न्तेसआयतेहिकाश्वासोवातीप्रवेदनः।

अर्थ—अग्निवेशके इस प्रसन्नको सुनकर

मति मताम्बर, परोपकार परायण आत्रेय

अत्यन्त प्रसन्न होकर बोलेकि यद्यपि प्राण

नाशक रोग बहुत हैं परन्तु वे ऐसे नहीं हैं

जैसे हिका और श्वास शीघ्र प्राणनाशक

होते हैं । प्राणी के अनेक प्रकारके अन्य २

बहुत से रोगों से पीड़ित होनेपर भी अन्त

में तीव्र वेदनावाले हिका और श्वासरोग

उत्पन्न होते हैं अर्थात् मरते समय हिचकी

आती है या श्वास बढ़ता है ॥

हिकाश्वासका स्थानादि विवरण ।

कफवातात्मकावेतौपित्तस्थानसमुद्भवौ॥

हृदयस्यरसादीनांधातूनांचोपशोषणौ ।

तस्मात्साधारणावेतौमममुदुर्जयौ ॥

अर्थ—ये दोनों रोग कफवातसे होते हैं,

इनकी उत्पत्तिका स्थान पित्ताशय है ये दो-

नोंही रोग हृदयस्थ रसादिक धातुओं का

शोषण करते हैं अतएव ये दोनों सब तरह

से सप्पान हैं और दोनों ही दुर्जय हैं ॥

हिकाश्वासके भेद ।

मिथ्योपचरितौकुद्वाहतावाशीविपावित्र

पृथक्पञ्चविधावेतौनिर्दिष्टौरोगसंग्रहे ॥

तयोःशृणुसमुत्थानंलिङ्गान्येकैकशस्तथा

अर्थ—उक्त दोनों रोग मिथ्या आहार

विहारसे उत्पन्न होकर कुद्वाहशी विषकी

तरह मनुष्य को मार डालते हैं । सूत्रस्थानमें

अर्थ—कफसंसृष्टवात प्राणवाही उदकवाही और अन्नवाही स्रोतोंको रोककर हिचकी उत्पन्न करती है । इन हिचकियोंके पृथक् लक्षणोंका वर्णन किया जाता है ।

महाहिका के लक्षण ॥

क्षीणमांसवलप्राणतेजसःसकफोऽनिलः॥
गृहीत्वासहसाकण्ठमुच्चैर्धौपवतीभृशम् ।
करोतिसतताहिकामेकद्वित्रिगुणांतथा ॥
प्राणःस्रोतांसिमर्माणिसंरुद्धयोष्माणमेव
चासंज्ञामुष्णातिगात्राणिस्तम्भसञ्जनय-
त्यपि।मार्गचैवान्नपानानांरुणक्ष्यपहतस्मृतेः
साधुविप्लुतेनत्रस्यस्तब्धशंखच्युतध्रुवः
सक्तजल्पप्रलापस्यानिर्द्वृतिनाधिगच्छतः॥
महामूलमहावेगामहाशब्दामहाबला॥ म
हाहिकेतिसान्दृष्टांसद्यःप्राणहरामता ॥

अर्थ—जिस मनुष्य के मांस, बल, प्राण और तेज क्षीण होगये हैं उसके कंठको कफयुक्त वायु पकडकर अत्यन्त शब्दवाली ऊपरकी हिचकी को उत्पन्न करता है, यह हिचकी निरन्तर एक दो तीन बार आती है । उससमय रोगी के प्राण वाही स्रोत, मर्मस्थान, ऊष्मा और संज्ञा नष्ट होजाती है । देह में उष्णता और स्तम्भता उत्पन्न होती है । उसके अन्न पानके मार्ग रुकजाते हैं, स्मृति नष्ट होजाती है, नेत्रोंमें जल डबडबाता है, कनपटी स्तब्ध और भृकुटी गिरीसां पडती हैं मुंहसे बोल नहीं निकलता है, किसी तरह चैन नहीं पडता है, यह हिका महामूल, महावेगा, महाशब्दा और महाबला होती है, इसीसे इसका नाम महाहिका

है, यह मनुष्यों का तत्काल प्राणनाश करनेवाली होती है ॥

गंभीरा हिकाके लक्षण ।

हिकतेयःप्रवृद्धस्तुक्शोदीनमनानरः ।
जर्जरणोरसासर्वगम्भीरमनुनादयन् ॥
संजृम्भन्संक्षिपंश्चैवतथाहानिप्रसारयन्॥
पाश्वेचोभेसमायस्यकूजनस्तम्भरुगर्दितः
नाभेःपक्काशयाद्वापिहिककाचास्योपजा-
यते ॥ क्षोभयन्तीभृशंदेहनामयन्तीचता-
म्यतः । रुणद्ध्युच्छासमार्गन्तुप्रणष्टव-
लचेतसः।गम्भीरनामासातस्यहिकाप्राण-
न्तिकीमता ॥

अर्थ—जो मनुष्य कुश और दीन मन होकर अत्यन्त हिचकी लेता है, हृदयमें जर्जरता दिखाई देवे, हिचकी का शब्द गंभीर हो, यदि रोगी हाथ पांवोंको फैलाकर जम्हाई लेने लगे और इधर विधर पटकने लगे, दोनों पसवाडोंको लम्बा करदेवे कंठ में कूजन और शरीर में स्तम्भ और शूल होवे । नाभि वा पक्काशयसे हिचकी निकलती माछमहो जिससे सम्पूर्ण देह में क्षोभ हो, देह झुकजाय, वेदना होने लगे श्वास आनेजाने का मार्ग रुकजाय और बल तथा संज्ञा नष्ट होजाय, यह प्राणोंका नाश करनेवाली गंभीरा हिका होती है ।

व्यपेताहिका ।

व्यपेतेजायतेहिककायान्नपानेचतुर्विधे ।
आहारपरिणामान्तेभूयश्चलभतेबलम् ॥
प्रलापवम्यतीसारवृण्णार्तस्यविचेतसः॥
संजृम्भस्यप्लुताक्षस्यशुष्कास्यस्वविना-

मिनः । पर्याध्मातस्य हिक्काया जन्तुमूलाद-
सन्तता ॥ सान्ध्यपेतेति विज्ञेया हिक्काया
पोपरोधिनी ।

अर्थ—जो हिचकी भक्ष्य भोज्यादि चार-
प्रकारके अन्नपान से उठती है और भोजन
के पचनेके समय जिसका बल अधिक बढ़
जाता है जिसके होनेसे प्रलाप, वमन, अतीसार
तृषा और संज्ञा नाश होजाय, जिससे, जम्हाई
नेत्रोंमें आंसू, मुखमें शुष्कता, शरीरका शु-
कना, पेटमें अफरा होवै, और जो जन्तु के
मूलसे उत्पन्न हो उसे व्यपेता हिक्का कहते
हैं यह हिचकी प्राणवाही स्रोतोंको रोक देती है ।

क्षुद्रा हिक्का ।

क्षुद्रवातो यदा कोष्ठाद्व्यायामपरिघटितः ॥
कण्ठे प्रपद्यते हिक्का तदा क्षुद्रां करोति सः ॥
अतिदुःखान् सा चोरः शिरोर्ममप्रवाधिनी ॥
न चोच्छासान्नपानानां मार्गमावृत्य तिष्ठ-
ति । वृद्धिमाया सतो याति भुक्तमात्रे च मार्द-
वम् ॥ यतः प्रवर्तते पूर्वत एव निवर्तते ॥
हृदयं क्लेशमकण्ठञ्च तालुकञ्च समाश्रिता ॥
मृदो सा क्षुद्र हिक्कोति नृणां साध्या मर्कातिता ॥

अर्थ—क्षुद्रवात अत्यन्त परिश्रमके कारण
उदघटित होकर जब कंठमें स्थित होजाती
है तब यह क्षुद्रा हिक्का को उत्पन्न करती
है, यह हिचकी अत्यन्त कष्टदायक नहीं
होती और न यह बक्षस्थल, शिर वा मर्मों
में पड़ि पहुँचती है, न यह स्वास वाही
तथा अन्नपान वाही मार्गों को रोकती है,
परिश्रम से बढ़ती है और भोजन करतेही मृदु
पड़ जाती है यह जिस कारण से उत्पन्न

होती है उसही से निवृत्त होजाती है ।
इसका आश्रयस्थान हृदय, क्लेश, कंठ और
तालु है यह मृदु होती है, इसका नाम
क्षुद्रा हिक्का है । यह हिचकी साध्य होती है ।

अन्नजा हिक्का का लक्षण ।

सहसा तस्य भ्यवहृतैः पानान्नैः पीडितोऽनि-
लः । उर्ध्वमपद्यते कोष्ठान् मधैर्वाति मदम-
दैः । तथा तिरोपभाप्या ध्वभारातिपरि-
वर्तनैः । वायुः कोष्ठगतो धावन् पानभो-
ज्यप्रपीडितः । चरः स्रोतः समाविश्य कु-
र्याद्विक्कां ततोऽन्ननाम् ॥ तथा शनैरसम्ब-
द्धं धुपन् चापि स हिक्कते । नर्ममवाधा जन्-
नी चेन्द्रियाणां प्रवाधिनी ॥ हिक्का पीतेत-
था भुक्ते शमयाति च सान्नजा ।

अर्थ—सहसा अन्नपान के अत्यन्त सेवन
से वा अत्यन्त नशीले मद्यके सेवनसे वायु
बढ़कर ऊपरको कोष्ठोंमें जाती है, तथा
अत्यन्त रोप, भापण, मार्ग-भ्रमण, भारवहन
वा अत्यन्त परिश्रमसे अन्नपान के द्वारा
उत्पीडित होकर कोष्ठगत वायु हृदयस्थ स्रोतोंका
अवलंबन करके अन्नजा हिचकी उत्पन्न
करती है । कभी २ यह हिचकी भोजनसे
नहीं होती है तथा वैसेही हिचक्रिया आने
लगती हैं इनसे मर्मस्थान वा इन्द्रियों में कुछ
बाधा नहीं पहुँचती है और अन्नपान के
सेवनसे ये शान्त होजाती हैं ।

हिक्का का साध्यासाध्यवर्णन ।

आतिसञ्चित दोषस्य भक्तच्छेदक्षतस्य च ॥
व्याधिभिः क्षीण देहस्य वृद्धस्यातिव्यवा-
यिनः । आमाशयात्समुत्पन्ना हिक्का हन्त्या-

शुजीवितम् ॥ यमिकाचप्रलापार्तिवृष्णा
मोहसमन्विता । अक्षीणश्चाप्यदीनश्च
स्थिरघातिन्द्रियश्चयः ॥ तस्यसाधयि
तुंशक्यायमिकाहन्त्यतोऽन्यथा ॥

अर्थ—जिसमनुष्यके दोष अत्यन्त इकट्ठे
होगये हैं जिसको भोजनमें अरुचिहै, जो
क्षतपीडितहै, व्याधियोंसे जिसका देह क्षीणहै,
जो वृद्ध और अति व्याधी है, उसके हिच-
की आमाशय से उत्पन्न होतीहै जिस यमिका
हिचकी में प्रलाप, वेदना, तृष्णा और मोह
होताहै वह भी असाध्य होतीहै, यदि वह
ऐसे पुरुषके होतीहै, जो अक्षीण, अदीन,
स्थिर घातु और स्थिरन्द्रिय होताहै वह साध्य
होतीहै जो इस से भिन्नहै वह असाध्य होतीहै

श्वास की उत्पत्ति ।

यदास्रोतांसिसंरुद्धमारुतःकफपूर्वकः॥वि
ष्वग्भ्रजतिसंरुद्धःतदाश्वासान्करोतिसः

अर्थ—जब कफसे मिली हुई वायु प्राण
वाही स्रोतों को रोक देती है, इसतरह रुकी
हुई वायु सम्पूर्ण देहमें गमन करतीहै तब
श्वास उत्पन्न होता है ।

महाश्वासका लक्षण ।

उद्ध्युयमानवातोयःशब्दवद्दुःखितोनरः
उच्चैःश्वसितिसंरन्धोमत्तर्षभश्वानिशम्॥
मणष्टृक्षानविज्ञानस्तथाविभ्रान्तलोचनः
विकृताक्षाननोवद्धमूत्रवर्चविशिर्णवाक्॥
दीनःप्रश्वसितंचास्पद्राट्क्षिप्यतेभृशम्
महाश्वासोपृमृष्टःसक्षिप्रमेवमपश्यते ॥

अर्थ—वायुके ऊपरको जानेसे संरन्ध
होकर जो मनुष्य मत्त बैठ की तरह अत्यन्त

कष्टसे शब्दयुक्त ऊँचा श्वास लेताहै, तब
उसके ज्ञान विज्ञान नष्ट होजातेहैं, नेत्र
भ्रान्तियुक्त होतेहैं, आँख और मुख विकृत
होजातेहैं, मूत्र विष्टा बन्द होजातेहै, वा-
णी रुक जातीहै, दीनता होजातीहै, उसका
श्वास लैना दूरहीसे दिखाई देने लगता है ।
इसका नाम महाश्वास है, इस के होनेसे
रोगी शीघ्र मरजाताहै ।

उर्ध्वश्वास का लक्षण ।

दीर्घःश्वसितियस्तूर्ध्वनचमत्याहरत्यधः॥
श्लेष्मावृतमुखस्रोताःकुक्षगन्धवहादितः॥
ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्चविभ्रान्ताक्षस्ततस्ततः
प्रमुह्यन्वेदनार्तश्चभृष्कास्योऽतिनिपीडि
तः॥ऊर्ध्वश्वासेप्रवृत्तेचयश्वाधःश्वासरोधभा
क् । ताम्यतोभ्राम्यतधोर्ध्वश्वासस्तस्यै
पहन्त्यसूनु ।

अर्थ—जो ऊपरको मुख करके दीर्घ
श्वास लेताहै और नीचा मुखकरके भीत-
रको नहीं खींच सकताहै, जिसके मुख
स्रोत कफसे आच्छन्न हैं, जिसके मुखसे
कुक्ष दुर्गन्धितवायु निकलताहै जो ऊपर
को दृष्टि करके भ्रान्तियुक्त नेत्रोंसे
देखता है, वेदनासे व्याकुल होकर मुग्ध
होजाता है, मुख सूख जाता है वेदना
अत्यन्त होती है, ऊर्ध्व श्वासके प्रवृत्त होने
पर जिसका अधःश्वास रुकजाता है, इसमें
हेश बहुत होता है, यह उर्ध्वश्वास शीघ्र
ही प्राणों का नाश कर देताहै ।

छिन्नश्वास के लक्षण ।

यस्तुदधीसीतीवीच्छन्नंसर्वप्राणेनपीडि

तः । नवाश्वसितिदुःखार्तोर्मर्भच्छेदरुग
दितः । आनाहस्वेदमूर्च्छार्तोदक्षमानेन
वस्तिना । विच्छ्रुताक्षः परिशीणः श्वसनर
क्तकलोचनः ॥ विचेताः परिशुष्कास्यो वि
वर्णः प्रलपन्नरः । छिन्नश्वासेनसांछिन्नः
सशीघ्रमजहात्यसूनु ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके टूटा हुआ श्वास
निकलता है और सम्पूर्ण देह में इससे
कष्ट होता है अथवा कष्टके कारण श्वास
कम निकलता है तथा मर्मस्थान में वेदना
होने लगती है वेदनाके कारण आनाह,
स्वेद और मूर्च्छा होजाती है, वस्ति में दाह
होने लगता है, नेत्रोंमें पानी भर आता है,
क्षीणता होती है, नेत्र लाल पड़जाते हैं,
संज्ञानाश होजाती है, मुख सूख जाता है,
देह का वर्ण विगड़ जाता है, प्रलप होता
है, ये छिन्न श्वास के लक्षण हैं । इस रोग
से पीडित मनुष्य शीघ्रही प्राणों को त्याग
देता है ।

तमकश्वासकेलक्षण ।

प्रातिलोम्यदावायुः श्रोतांसि मतिपद्यते ।
ग्रीवांशिरश्च संग्रह्य श्लेष्माणसमुदीर्य च ॥
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा । अतीव
तीव्रवेगज्जश्वासं प्राणप्रपीडकम् । प्रताम्य
त्यतिवेगाच्च कासते सन्निरुच्यते । प्रपोहं
कासमानश्च संगच्छति मुहुर्मुहुः ॥ श्लेष्माण्य
मुच्यमाने च भृशं भवति दुःखितः । तस्यैव
च यिमोक्षान्ते मुहुर्त्तं विन्दते सुखम् । अथास्यो
द्धंसते कण्ठः कृच्छ्रात् श्वसन्नोति वाधितुं ।
न चापि निद्रालभते शयानः श्वासपीडितः ॥

पार्श्वतस्यावयुहणातिशयानस्य समीरणः
आसीनो लभते सौख्यमुष्णं च वाभिनन्दति
उच्छ्रुताश्रोललाटेन स्विद्यतां भृशमर्तिमान्
विशुष्कास्यो मुहुश्वासो मुहुर्दुश्वाधमत्य-
पि । मेघाम्बुशतिमाग्यातः श्लेष्मलश्वा
भिवर्धते । सयाप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा
स्यान्नवोत्थितः ॥

अर्थ—जब वायु प्रतिलोम अर्थात् उलटी
होकर प्राणवाही श्रोतोंमें स्थित होजाती है,
तब, वह ग्रीवा और शिरको जकड़कर तथा
कफको उद्गर्षि करके पीनस उत्पन्न क-
देती है और स्वयं रुद्ध होकर कंठ में घुरघुरा
हट पैदा करती है तब उस समय प्राणों
को कष्ट देनेवाला और बड़े तीव्र वेगवाला
श्वास उत्पन्न होता है इसके उत्पन्न होने
पर रोगी अत्यन्त वेगसे खांसने लगता है
तथा खांसते २ कंठ रुकासा हो जाता
है, खांसते २ रोगी बार-बार मूर्च्छित हो
जाता है । और कफके न निकलने के
कारण रोगी अत्यन्तही क्लेशित होता है,
कफके निकलने पर थोड़ी देर को चैनसा
पड़जाता है । गलेमें धूआं सा घुमडता रहता
है इससे वातभी कठिनता से कर सकता है ।
सौनेमें श्वासका वेग अधिक बढ़ता है, इससे
वह सोनेभी नहीं पाता है, करवट भी लेने
में कष्ट होता है क्योंकि करवट लेनेमें श्वास
का वेग अधिक बढ़ता है, बैठे होने पर
कुछ सुख मिलता है, उष्ण द्रव्योंमें इच्छा
बढ़ती है, आंख फटीसी होजाती है, माथे पर
पसीना आजाता है, वेदना अधिक होने
लगती है, मुख सूख जाता है, बारबार श्वास

बढ़ता है, बार बार देह में झोटे से लंगते हैं वादलों के होने पर, शीतल जल के स्पर्श पर पूर्व की वायु के चलने पर और कफकारी द्रव्यों के सेवन से श्वास की वृद्धि होती है। यह तमकश्वास वाय्व होता है, यदि नया होता है तो साध्य भी होता है ॥

प्रतमकश्वासका लक्षण ।

ज्वरमूर्च्छा परीतस्य विद्यात् प्रतमकन्तुतम् ।

अर्थ—यदि तमकश्वास में रोगी को ज्वर और मूर्च्छा होती है प्रतमकश्वास कहते हैं ।

सन्तमकश्वासका लक्षण ।

उदावर्त्त रजो जीर्ण क्लिन्न का य निरोधजः ।
तमसा वर्द्धतेऽस्य र्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति-
मज्जतस्तमसी वास्य विद्यात् संतमकन्तुतम् ।

अर्थ—उदावर्त्त, रज, तथा अजीर्ण से देह के क्लिन्न होने से वा जठराग्नि के निरोध से जो श्वास होता है, तथा जो अंधकार से अत्यन्त बढ़ता है, शीतोपचार से शान्त होता है तथा रोगी को श्वास में अंधरासा छाया हुआ दीखे तो इस श्वास को सन्तमक-श्वास कहते हैं ।

क्षुद्रश्वासका लक्षण ।

रूक्षाया सोऽद्भ्यः कोष्ठे क्षुद्रवात उदीरयेत् ॥
क्षुद्रश्वासो न सोऽप्यर्थदुःखेनाह भवाधकः ॥
हिनस्ति न स गान्त्रीण न च दुःखी यथेतरः ॥
न च भोजन पानानां निरुण्ण दध्युचितांगति-
म् ॥ नेन्द्रियाणां व्यथानां पिकाञ्चिदुत्पा-
दयेद्भुजम् । स साध्य उक्तो वालिनः सर्वेषां
व्यक्तलक्षणाः ॥

अर्थ—रूक्ष पदार्थों के सेवन और परिश्रम से अल्पनिदान और अल्पलक्षणों से युक्त वायु उदीर्ण होकर क्षुद्रश्वास को उत्पन्न करता है यह देह को अत्यन्त कष्ट नहीं देता है, वह अंगावयवों को और श्वासें क्षी तरह पीड़ित नहीं करता है, न अन्न पानों की उचित गतिको रोकता है इन्द्रियों को व्यथित नहीं करता है न किसी प्रकार की वेदना वा अन्य उपद्रवों को उत्पन्न करता है यह श्वास साध्य होता है, तथा, बलवान् पुरुष के सचही श्वास जिनके पूर्ण लक्षण नहीं होते हैं साध्य होते हैं ।

इति श्वासाः समुद्दिष्टा हि काश्चैव स्वलक्षणैः
एषां प्राणहरावर्ज्या घोरास्ते ह्याशु कारिणः ॥
भेषजैः साध्ययाप्यास्तु क्षिप्रं भिषगुपाचरे-
त् ॥ उपेक्षिता देहयुर्हि शुष्कं कक्षमिवान-
लाः ॥ कारणस्थानमूलव्यादेकमेव चि-
कित्सितम् । द्वयोरपि यथादृष्टमपि भिस्त-
न्निबोधत ॥

अर्थ—इस तरह श्वास और हिचकियों के पृथक् पृथक् लक्षण वर्णन किये गये हैं इनमें से जो जो प्राणनाशक, भयंकर और क्षीघ्रकारी हैं वे त्याग के योग्य होते हैं साध्य और वाय्वरोगों की चिकित्सा औषधियों द्वारा क्षीघ्र ही करनी चाहिये । जैसे अग्नि सूत्रे तृणों के ढेर को क्षीघ्र ही जला देती है उसी तरह उपेक्षा किये हुए उत्तरोग देह को क्षीघ्र ही दग्ध कर देते हैं । हिचकी रोग के कारण, स्थान और मूल एक ही हैं इससे कृपियों ने दोनों की चिकित्सा भी एक ही कर दी

हे, अत्र उसीका वर्णन किया जाताहै ॥

ह्रिकका और श्वास में चिकित्सा
ह्रिकश्वासादितस्निग्धरादीस्वेदरूपाच
रेत् । युक्तलवणतैलेननाडीप्रस्तरशङ्करैः ॥
तैरस्यग्रथितःश्लेष्मास्रोतःश्वभिधिलीय
ते । खानिमादवमायान्तिततोवातानुलो
मता ॥ यथाद्रिकुञ्जेप्यर्काशुतप्तंविष्य
न्दतेहिमम् ॥ स्थिरःश्लेष्माशरीरस्थाः
स्वेदैविष्यन्दतेतथा ॥

अर्थ— ह्रिककी वा श्वास से पाण्डित
मनुष्यको प्रथम स्निग्ध करके स्वेदन देवे,
अर्थात् प्रथम लवणयुक्त तैल से स्निग्ध कर
के नाडी, प्रस्तर वा संकर स्वेद द्वारा पसीने
देवे, ऐसा करने से रोगी के स्रोतः समूह
में जमाहुआ कफ गलजाता है, तब सम्पूर्ण
स्रोत नरम पड़जायगे और वायु अनुलोम
गामी होगी । जैसे पहाडकी गुहाओं में ज-
माहुआ बर्फ सूर्य की तप्तकिरणोंसे पिघल
जाता है उसीतरह शरीर के स्रोतोंमें जमा-
हुआ कफ भी स्वेदन कर्मसे पिघलजाताहै ॥

स्वेदनोत्तर भोजनादिक्रम ।

स्विन्नंज्ञात्वाततस्तूर्णभोजयेत्स्निग्धमोद
नम् । मत्स्यानांशुकराणांवारसैर्दध्युत्तरेण
चा ॥ ततःश्लेष्माणिसंष्टेद्वमनंपाययेत्तु
तम् ॥ विप्पलीसैन्धवसौद्रैर्युक्तंवातावि
रोधियत् ॥ निर्दृतेसुखमाप्नोतिसकफेदु
ष्टिग्रहे । स्रोतःसुचविशुद्धेषुचरत्यानिह
तोऽनिलः ॥ लीनश्लेष्मणोपशेषःस्यात्तंधूपै
र्निहरेद्बुधः । हरिद्रापत्रमैरण्डमूलंलासां
मनःशिलाम् ॥ सदेवदार्वेलंमांसांषिपिष्ट्वा

वात्तिप्रकल्प्यचा तांघृताक्तांपिवेद्भूमयैवै-
र्वाघृतसंयुतैः ॥ मधूच्छिष्टंसर्जरसंघृतम-
ल्लकसंपुटे । कृत्वाभूमंपिवेत्छागंवालेवा
स्नायुचागवाम् ॥

अर्थ....स्वेदनकर्म के पश्चात् शीघ्रहीरोगी
को स्निग्ध भोजन करावे अथवा दही डाल
कर मछली और सूअर का मांसरस देवे ।
ऐसा करनेसे कफकी वृद्धि होगी, कफके व-
ढनेपर वमनकारक औषधियोंका पान करा-
वे । इस वमन कारक औषध में पीपल, स-
धानमक, शहत और वातविरोधी अन्यद्रव्य
डालदेवे । वमन होनेसे विगड़ेहुये कफ
निकलने पर रोगीको सुख प्रतीत होगा और
वायु भी शुद्ध स्रोतों में बिना रुकावट के धू-
मने लगेगा । यदि वमन कराने पर भी दोष
रहें तो निम्नलिखित धूमपान करावे । हल-
दी, तेजपात, अरंडकी जड़, लास, मनसि-
ल, देवदारु, इलायची, इन सबको पीस ब-
ची बनाकर घीमें भिजोकर धूमपान करे अ-
थवा जौ पीसकर बत्ती बनाकर घीमें भिजो
कर धूमपान करे । अथवा मोम, राल और
घी इनको पीसकर चिलम में धरकर पीस
अथवा बकरे वा गौके बाल और स्नायुका
धूमपान करे ।

अन्यधूमपान ।

श्वोनाकवर्द्धमानानानाडीशुष्कांकुशस्त्र
वा । पञ्चकंगुगुलुलोहंशलकीवाघृताप्स
ताम् ।

अर्थ—श्वोनाक, अरंड अथवा कसाक
सूखी नली को घी में भिजोकर धूमपान क-

रै अथवा पद्माक्ष, गुग्गुलु, लोह, और शङ्ख-
की को पीस बत्ती बना घी में भिगोकर घूम-
पान करे ।

स्वरक्षीणातिसारासृक्पित्तदाहानुबन्ध-
जान् । मधुरस्निग्धशीताद्यैर्हिकाश्वासा
नुपाचरेत् ॥

अर्थ....जिस श्वास और हिचकी में स्वर
क्षीणता, अतिसार, रक्त पित्त और दाहका
अनुबन्ध हो उसमें मधुर, शीत और स्निग्ध
क्रियाओं द्वारा चिकित्सा करे ।

अस्वेद्यरोगी ।

नस्वेद्याःपित्तदाहार्तारक्तस्वेदातिवर्ति-
नः । क्षीणधातुबलारूक्षागर्भिण्यश्चाप्य
पित्तलाः ॥

अर्थ—पित्तरोगी, दाहरोगी, रक्तरोगी,
स्वेदरोगी, क्षीणधातुरोगी, क्षीणबल, रूक्ष,
गर्भिणी स्त्रियाँ और पित्तलधातुवाले ये सब
स्वेदन कर्म के योग्य नहीं हैं ॥

कोष्णैः काममुरःकण्ठस्नेहसकैःसशर्करैः
उत्कारिकोपनाहैश्चस्वेदयेत्तृदुभिक्षण-
म् ॥ तिलोमामागोधूमचूर्णैर्वीतहरैःसह ।
स्नेहैश्चोत्कारिकासाम्लैःसक्षीरैर्वीकृतादि
ता ॥ नवज्वरामदोपेपुरुक्षस्वेदं विलब्ध
नम् । समीक्ष्योत्प्लेखनंवापिकारयेत्प्लव
णाम्बुना ॥

अर्थ—यदि ऊपर कहे हुए रोगियों को
स्वेदन देने की आवश्यकता हो तो उस के
हृदय और कंठ पर चीनी मिलेहुये कुठगु-
नगुन स्नेह सचन द्वारा वा मृदु उत्कारिका
वा उपनाह द्वारा क्षणमात्र स्वेदनदेवें । अ-

थवा तिल, अलसी, उरद, और गेहूँका चून
पिसवाकर इसमें वातनाशक द्रव्य मिलावे
और कांजी एवं स्नेह डालकर अथवा दूध
डालकर उत्कारिका बनाकर स्वेदन देवें ।
नवीन ज्वर और आमदोष में रूक्ष स्वेदन
वा लंघन करावै । अथवा इस के साथही
नमक और जल पान कराके वमन करादेवें ।
अतियोगोद्धतंवापिदृष्ट्वावातहरैर्भिषक् ।
रसाद्यैर्नातिशीतोष्णैरभ्यङ्गैश्चशमनयेत् ॥
उदावर्ततथाध्मानेमातुलुङ्गाम्लवेतसैः ।
हिंयुपीलुविडैश्चान्यक्तंस्यादनुलोमनम् ॥

अर्थ—वमन का अतियोग होनेसे जो वां
युकी प्रवृत्तता हो तो वातनाशक मांसादि र-
स और न अत्यन्त उष्ण और न अत्यन्त
ठंडे अभ्यंगों द्वारा उसे शान्त करे । उदा-
वर्त और आध्मान के होने पर विजौरा, अ-
मलवेत, हिंग, पीछू, विडनमक के साथ भो
जन कराने से अनुलोमन होता है ॥

भिन्न २ अवस्थाओंमें चिकित्सा-
हिकाश्वासामयीहोकोबलवान्दुर्बलोऽपरः-
कफाधिकस्तथैवैकोरूक्षवह्निलोऽपरः ।
कफाधिकेवलस्थेचवमनंसविरेचनम् ॥
कुर्यात्पथ्याशनेधूमलेहादिशमनंततः ।
वातिकान्दुर्बलान्दृढान्दृढांश्चानिलसू-
दनैः ॥ तर्पयेदेवशमनैःस्नेहयूपरसादिभिः

अर्थ—हिकका और श्वास से पीड़ित को
ई मनुष्य तो बलवान् और कोई दुर्बल हो-
ता है, कोई कफाधिक कोई रूक्ष और को-
ई अत्यन्त वात से पीड़ित होता है । कफ-
की अधिकता में बलवान् रोगी को वमन

जल पीये तौहिचकी और श्वास दूर होजाते हैं । अथवा भाङ्गी और सोंठ का फल्क अथवा कालीमिरच और जवाखारका फल्क अथवा सरलकाष्ठ, चीता, आस्फोता, मूवी, इनका फल्क गरमजल के साथ पीने से उक्त रोग दूर होजाते हैं ॥

उत्तरोगोंमें अन्यप्रयोग ।

मधूलिकातुगाक्षीरीशर्करापिप्पलीतथा ।
उत्कारिकाघृतेसिद्धाश्वासेपित्तानुबन्धजे
श्वाविधःशशमांसश्चशशकस्यचशोणितम्
पिप्पलीघृतसिद्धानिश्वासेवातानुबन्ध
जे॥मुवर्चलारसोदुग्धघृतंत्रिकटुकायुतम् ।
शाल्योदनस्यानुपानवातपित्तानुगेपरम्
शिरापुष्पस्वरसःसप्तपर्णस्पवापुनः॥पिप्प
लीमधुसंयुक्तःकफपित्तानुगेमतः॥मधुकं
पिप्पलीमूलगुडोऽश्वशकृद्रसः॥घृतंशौद्रश्चत
च्छासेरौक्ष्याभिप्यन्दजेभृभम् ॥

अर्थ—श्वास में पित्त का अनुबन्ध होने पर गेहूँकी मैदा, बंशलोचन, चीनी और पीपल इनकी उत्कारिका बनाकर घी में सिद्ध करके देवै । वातानुबन्धी श्वासमें सेह का मांस, सस्से का मांस अथवा छोटी सेह का रुधिर पीपल डालकर घी में सिद्ध करके देवै । वातपित्त का अनुबन्ध होनेपर श्वास में सांचौली का रस अथवा घी, दूध और त्रिकुटा डालकर शालीचावलका भातदेवै । कफपित्त का अनुबन्ध होनेपर श्वास में सि- रस के फूलों का स्वरस पीपल और शहत मिलाकर देवै । रुक्षता और अभिप्यन्दज श्वास में मुलहदी पीपलामूल, गुड, गोबरकारस

घोड़ेकीलीद का रस इनको घी और शहत के साथ सेवन करें ॥

अन्यप्रयोग ।

खराश्वोप्वराहाणामिपस्यचगजस्यच ।
शकृद्रसंवहुकफैर्चकैकंमधुनापिचेत्॥शार-
श्वाप्यश्वगन्धापालेहयेत्शौद्रसर्पिषा ।

अर्थ—गधा, घोडा, ऊँट, सूअर, मेंढा हाथीइनमें से किसी एक के विष्टाका रस शहत डालकर कफकी अधिकतामें पानकरै अथवा असगंधके दारको शहत और घीके साथचाटे कफकी अधिकता में अन्यप्रयोग मयूरपादनालंवाशकलंशल्लकस्यवा ॥ श्वाविज्जाण्डकचापाणारोमाणिकुररस्य वा । शृङ्गयेकद्विशफानांवाचर्मास्थीनि सुरांस्तथा ॥ सर्वाण्येकैकशोवापिदग्ध्वाशौद्रघृतान्वितान् । चूर्णलीह्वाज चेत्कासंहिकांश्वासञ्चदारुणम् ॥ एतेहिकफसरुद्धगतिप्राणप्रकोपजाः । तस्मात्तन्मार्गशुद्ध्यर्थेलेहायोज्याननिष्कपे

अर्थ—मोरके पंजे वा नली वा सेहके कांटे अथवा सेह, जाण्डक, नीलकंठ वा कुरर के रोम अथवा सींग वाले एक या दो खुर के पशुओंके चर्म, हड्डी इनको एक एक वा सब को एक साथ जलाकर इन की भस्मको शहत और घीके साथ चाटे तौ खांसी, हिचकी और दारुण श्वास दूरहो जाते हैं । कफसे प्राण वायुका मार्ग रुक- जाने पर जब वह कुपित होतीहै तब ये प्रयोग हितकारी होतेहैं, प्राणवायु के मार्ग की शुद्धिके लिये इनका सेवन हित है, यदि

कफनहो तो इनका सेवन कदापिन करे ।
सुतरांमार्गसंरोधाद्वाहिर्जलमुदीर्यते ।
यथातथानिलस्तस्यमार्गशुद्धीयतेतना ॥

अर्थ—जैसे नदियों का बाहर का मार्ग रुकजाने से बीच में रुकाहुआ जल बढता चला जाता है, उसी तरह वायुका मार्ग रुकने पर वह भी बढती चली जाती है इस लिये उसके मार्गकी शुद्धि यत्नपूर्वक करना चाहिये तमक श्वास में प्रयोग ।

शटीचौरकजीवन्तीत्वड्मुस्तपुष्कराद्वयम्
सरसंतामलक्येलापिप्लवगुरुनागरम् ।
वालकञ्चसमंचूर्णकृत्वाष्टगुणशर्करम् ।
सर्वथातमकेश्वासेहिकायाञ्चमयोजेयत् ॥

अर्थ—कचूर, चोरक, जीवन्ती, दालचीनी मोथा, पुहकरमूल, वा कूठ, तुलसी भूयांवाला, छोटी इलायची, अगर, पापल, नेत्रवाला इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे और अठगुनी चीनी मिलाकर तमकश्वास और हिक्का में प्रयोग करे ॥

छर्दनंकासमानस्यस्वरभेदेप्रताम्यतः ।
घातश्लेष्महरैर्योज्यतमकेतुविरेचनम् ॥

अर्थ—खांसी, स्वरभेद की अधिकता में घातकफ नाशक द्रव्यों के द्वारा वमन करावे और तमकश्वास में उन्ही औषधियों से सिद्ध विरेचन देवे ।

मुक्तादिचूर्ण ।

मुक्तामवालवैदूर्यशंखस्फटिकमञ्जनम् ।
ससारगन्धकाचार्कमृक्षैलालवणद्वयम् ॥
तामायोरजसीरूप्यसौगन्धिकमेववा ।
जातीफलशुणाद्वीजमशामार्गश्चतण्डुलाः

एपांपाणितलाच्चूर्णात्तुल्यानांत्तौद्रसर्पि
पा । हिकांश्वासञ्चकासञ्चलीढमाशुनि
यच्छति । अञ्जनात्तिमिरंकाचनीलिकं
पुष्पकंतमः ॥ पैलंकण्डूभभिष्यन्दमन्द
ञ्चतत्तृणाशयेत् ॥

अर्थ—मोती, मूंगा, वैदूर्यमणि, शंख स्फटिक [विल्वौर], रसौत, काचमणि, गन्धक आककीजड, छोटी इलायची, दोनों नमकं ताम्रभस्म, लोहभस्म, रौप्यभस्म, जायफल, सन के बीज, आंगा के बीज, ॥ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे ॥ फिर दो तोले चूर्ण को घी और शहत के साथ चाटे इसके सेवन करने से हिचकी, श्वास, खांसी शीघ्र ही दूर होजाते हैं तथा इसी चूर्ण को आंखोंमें आंजने से तिमिर, काच, नोडक, पुत्लीतम, पैल, कंडू, अभिष्यन्द, और मन्दता दूर होजाती है

अन्यप्रयोग ।

शटीपुष्करमूलानांचूर्णमामलकस्यच ।
मधुनासंयुतलेहं चूर्णवायोरजोमयम् ॥
सशर्करांतामलकांश्चाक्षौण्डीश्वसकृद्रसम् ।
तुल्यं गुडं नागरञ्च प्राशयेत् नाययेत्तथा ॥
लगुनस्य पलाण्डोर्चारसंगृह्णनकस्यवा ।
नाययेच्चन्दनं वापि नारीक्षीरेण संयुतम् ॥
सुखोष्णं घृतमण्डं वा सैन्धवेनावचूर्णितम् ।
नावयेन्मक्षिकाविष्टामलक्तकरसेनवा ॥
स्त्रियाः स्तन्येन सिद्धं वा सापैर्मधुरकैरपि ।
पतिं नस्तो निषिक्तं वा सद्यो हिकां नियच्छति

अर्थ—कचूर, पुहकरमूल, आवला, इनका चूर्ण अथवा लोहभस्म को शहत के साथ चाटे । अथवा चीनी, भूयांवाला,

दाख, गौ और घोड़े के बिठा का रस तथा गुड और सोंठ समान भाग लेकर खानेको देवै वा सुंघावै । अथवा लहसन, प्याज वा गृज्जनका रस नस्य में देवै । अथवा चन्दन और स्त्रीके दूधकी नस्य देवै । अथवा इर्षदुण्ण घृत मंड में सेंधा नमक मिलाकर नस्यदेवै । अथवा मक्खी का मल और महावरके रसकी नस्यदेवै, अथवा मक्खी के बिष्ठाको स्त्रीके दूधमें मिलाकर नस्य देवै । अथवा मधुरगण से सिद्ध घृत को पान कराने, वा नस्य देने से शीघ्रही हिच की दूर होजातीहै ।

अन्य प्रयोग ।

पिप्पलीमधुयुक्तौवारसौधात्रीकपित्थयोः लाजालाक्षामधुद्राक्षापिप्पल्यश्चशकुद्रसान् ॥ लिप्तात्कोलमधुद्राक्षापिप्पलीनाम राणिवा । शीताम्बुसेकः सहसात्रासो रमापनंभयम् ॥ क्रोधहर्षाप्रियोद्वेगाहिक्का प्रच्यवनामताः । हिक्काश्वासविकाराणां निदानंयत्प्रकीर्तितम् ॥ वर्ज्यमारोग्य कामैस्तद्विकाश्यासाविकारीभिः ।

अर्थ—आमलेके रस वा कौथके रस में पीपल और शहत मिलाकर पान करै ॥ अथवा खील, लाख, शहत और घोड़े की छीदके रसका सेवन करै । अथवा वेर, शहत, दाख, पीपल और सोंठका सेवनकरै । शीतल जलका तरडा, सहसा त्रास दिखाना भूलेंग डालना, भय दिखाना, क्रोध करना, हर्षकराना, प्यारों का उद्वेग कराना इनसब से हिक्का दूर होदीहै ॥ हिक्का और श्वास ये

दोनोरोग जिन प्रकारोंसे होतेहैं उनका त्यागदे ना उन हिक्का और श्वासत्रिकागियोंके छिये हित है जो आरोग्यकी इच्छा करतेहैं ।

उत्तरोगोंमें घृतविधान ।

हिक्काश्वासानुबन्धायेथुष्कोरः कण्ठतालुकाः ॥ मकृत्यारुक्षदेहाश्चसर्पिर्भिस्तानु पाचरेत् ।

अर्थ—जिन मनुष्यों के हिचकी और श्वास के अनुबन्धमें वक्षःस्थल, कंठ और तालु सूखगयेहैं और जिनकी देह स्वाभाविक रूक्ष है उनको घृतदेवै ।

दशमूलादिघृत ।

दशमूलरसेसर्पिर्दधिमण्डेचसाधयेत् ॥ कृष्णासौवर्चलक्षारवयः स्याद्दिगुचोरकैः ॥ कायस्थयाचसंसिद्धकासश्वासौष्मणाशयेत् ॥

अर्थ—दशमूलके काथ और दधिमंड में पीपल, संचलनमक, जवाखार, हरड़, हींग और चोरक डालकर घृत पाक करै । अथवा दशमूलके काथमें छोटी इलायची डालकर घृत सिद्ध करै । इसके पानसे हिक्का और श्वास नष्ट होजातेहैं ।

तेजोवत्यादिघृत ।

तेजोवत्यभयाकुण्डपिप्पलीकटुरोहिणी । भूतकीपौष्करमूलपलाशाश्चित्रकः शटी ॥ सौवर्चलतामलकीसैन्धवयविल्वपेशिका । तालीसपत्रंजीवन्तीवचातैरक्षसम्मितैः ॥ हिंगुपादैर्घृतमस्थं पचेत्तोये चतुर्गुणैः ॥ एतद्यथावलंपीत्वा हिक्काश्वासौजयेन्नरः ॥ शान्तिनालाशौग्रहणीघृतपार्श्वरुजएववा ।

अर्थ—तेजोवती, हरड़, कूठ, पीपल, कु-

टकी, अजत्रायन, पुष्करमूल, ढाक, चीत्तिकी जड, कचूर, संचलनमक, भूपर्वाला, सेंधानमक, नेलगिरी, तालीसपत्र, जीवन्ती, वच ये सब दो २ तोले लेवै फिर इनका काथ करके चौगुने काथमें एक प्रस्थवी पकावै इसमें भुनीहुई हींग आधा तोला डालदेवै । इस घृतको बलानुसार पीनेसे हिका और श्वास दूर होजातेहैं । शाखावात, अर्श, ग्रहणीरोग, इद्रोग और पार्श्ववेदना ये भी सब दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

मनःशिलासर्जरसलाक्षारजनिपत्रकैः॥
मस्त्रिपुलैश्चकर्पाशैःप्रस्थःसिद्धीघृताद्धितः
जीवनीयोपसिद्धवासक्षौद्रंलेहयेद्घृतम्॥
व्यूषणंचाधिकंवापिपेबेद्वृषृतंतथा ॥
यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णवातानुलेप-
नम्।भेषजंपाप्तमंत्रवाताद्धतश्वासद्विकीने
वातकृद्वाकफहरंकफकृद्वातिलापहम्॥
कार्यनैकान्तिकंताभ्यामायःश्रेयोऽनिला
पहम्॥

अर्थ—मनसिल, राख, लाख, हलदी, पन्नाख, मजीठ और छोटी इलायची ये सब एक २ कर्प लेकर इनके चतुर्गुण काथ में घृत पाक करके सेवन करै । यह घृत अनुभव, कियाहुआहै। अथवा जीवनीय गणमें सिद्ध किया हुआ घृत शहत मिलाकर सेवन करै अथवा वासाघृतमें त्रिकुटा डालकर सेवन करै जो जो द्रव्य कफ वातनाशक, उष्ण और वातानुलोमाहैं ये सब खाने वा पीनेमें श्वास वा हिचकी रोगवाले को देवै ।

जो द्रव्य वातकर्ता और कफनाशकहैं अथवा जो कफकर्ता और वातनाशकहैं। ऐसे द्रव्यों का सेवन ठीक नहींहै इनसे तो केवल वात नाशक द्रव्यहो उत्तरोर्गो में हितहैं ॥

उत्तरोर्गोमेंसंशमनद्रव्योंकोविधान ।
सर्वोपावृहणोहृत्पःशक्यश्चप्रायशोभवेत्॥
नात्पर्थशमनोपायोभृशःशक्यश्चकर्षणे ।
तस्मात्शुद्धान्मुद्गाश्चशर्मनैवृहणरपिहि
क्काश्वासादितान्जन्तून्प्रायशःसमुपाच
रेदति ॥

अर्थ— इन संपूर्ण रोगोंमें वृंहणकर्ता द्रव्य प्रायः अल्पशक्य होतेहैं, संशमनकर्ता द्रव्य अत्यन्त शक्य नहीं होते और कर्षण अत्यन्त शक्य होते हैं, अतएव हिककाश्वास रोगी संशोधन द्रव्योंसे शुद्ध हुये हों वा न हुयेहों उनको शमनकर्ता और वृंहणकर्ता औषधियोंका सेवन प्रायः करावै ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन
दुर्जयत्वेसमुत्पत्तौकियैकत्वेचकारणम्॥
लिङ्गपथ्यञ्चाहिकानांश्वासानांचेद्द-

शितम् ॥

अर्थ— इस अध्याय में हिका और श्वासकी दुर्जयता, समानोत्पत्ति, समान चिकित्सा, समान कारण, लक्षण और पथ्य वर्णन किये गये हैं ।

इतिग्री मापाटीकन्वितायां अग्निवेशाथिराचि-
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां-
चिकित्सितस्थाने हिककाश्वासचिकि-
त्सितानामैकविंशोऽध्यायः॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः॥

अथातःकासचिकित्सितं व्याख्यास्याम
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तरं भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम कासचिकित्सितनामक अध्याय
को व्याख्या करेंगे ।

तपसायशसावृत्याश्रियाचपरयान्वितः॥
आत्रेयःकासशान्त्यर्थंसिद्धं प्राहचिकित्सि
तम् ।

अर्थ—तप, यज्ञ, वृत्ति, और श्रौ के
कारण सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हुए आत्रेय
ऋषि खांसी को निवृत्ति के लिये अनुभूत
चिकित्सा का वर्णन करने लगे ।

कास के भेद ।

वातादिभ्यस्त्रयोपेक्षतजःक्षयजस्तथा॥
पञ्चैतेऽस्युत्पत्तिर्वाकासां वर्द्धमानाः क्षयप्रदाः ।

अर्थ—वातज, पित्तज, कफज, क्षतज
और क्षयज इन पांच प्रकारकी खांसी होती
है, क्रम २ से बढ़कर ये खांसी शरीर को
क्षीण करदेती है ।

खांसी के पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता ॥ क-
ण्ठे कण्ठश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ।

अर्थ—गले और मुखमें शूक भरा हुआ
मादम होना, कंठमें खुजली, तथा भुक्त प-
दार्थका अवरोध ये सब कास के पूर्वरूप हैं

कासका लक्षण ।

अथःप्रतिहतोवायुरूर्ध्वसांतःसमाश्रितः॥
उदानभादमापन्नः कण्ठे सक्तस्तथीरासि ।

आचिन्त्यन्निरेसः खानिसर्वाणि प्रतिपूर-

यन् ॥ आभञ्जन्नाक्षिपन् देहं हनुमन्यतथा
क्षिणी । नेत्रे पृष्ठमुरः पार्श्वानि भज्यस्तव
यंस्ततः ॥ शुष्को वासकफो वापिकसना
तृकामञ्ज्यते ॥

अर्थ—नाचिसे रूकी हुई वायु ऊपर की
उठकर ऊपरवाले स्रोतों का आश्रय लेकर
उदानवायु से मिलकर जत्र कंठ और वक्षः
स्थल में प्रवृत्त होजाती है, तब सिर के
सम्पूर्ण स्रोतों को भरकर सम्पूर्ण देह को
विकल करदेती है, तथा हनु, मन्या और
आंखोंको विचलित करदेती है । तदनन्तर
वही वायु दोनों नेत्र, पीठ, वक्षस्थल और
पसलियों को तोड़कर स्तम्भित करदेती है ।
सूखी वा कफके साथ खुल २ शब्द करने
से खांसी कहलाती है ।

कासमें विषमशब्दका हेतु ।

प्रतिघातविशेषणतस्य वायोः सरंहसः ॥
वेदनाशब्दवैषम्यं कासानां गुपजायते ॥

अर्थ—नाचिसे रुकने के कारण वायु के
ऊपर जानेमें अनेक प्रकारकी वेदना होती है
इसी के अनुसार खांसीमें विषम शब्द होते हैं ।

वातज कास का निदान ॥

रूक्षशीतकृपायाल्पप्रमितानशनस्त्रियः ॥
वेगधारणमायासो वातकासप्रवर्तकाः ॥

अर्थ—रूखे, कसाले और शीतल
पदार्थों के सेवनसे, अल्पाहार करनेसे, प्रमित
भोजनसे या बिल्कुल न खाने से, खांसि सर्ग
से, वेग धारणसे, परिश्रम से वातज खांसी
की प्रवृत्ति होती है ।

वातज खांसी के लक्षण ।

हृत्पाश्वोरः शिरः शूलस्वरभेदकरो भृशम् ॥

शुष्कोरः कण्ठवक्त्रास्यहृष्टलोम्नः प्रताम्य
तः । निर्योपीस्तनतोदैर्न्यदौर्वल्यक्षयमो
हकृत् ॥ शुष्ककासः कफं शुष्कं कृच्छ्रान्मु-
क्त्वाल्पतां ज्ञेयम् । स्निग्धाम्ललवणो
ष्णैश्च भुक्तमात्रे प्रशम्यति ॥ ऊर्ध्ववातस्य
जीर्णैश्चैवैगवान्मारुतो भवेत् ।

अर्थ—हृदय, पसली, वक्षःस्थल और
शिरसें शुष्क होता है, स्वरभंग होजाता है,
वक्षःस्थल, कंठ और मुखमें शुष्कता होती
है, लोम खड़े होजाते हैं, आंखों के साम्हने
अंधेरा छाजाता है शब्द बन्द होजाता है,
दीनता होती है, दुर्बलता, क्षीणता और
मोह होते हैं । सूखी, खांसी सूखा कफ बड़ी
कठिनतासे थोड़ासा निकलता है । चिकना
खट्टा, नमकीन और उष्ण भोजन करनेही
से शान्ति होजाती है । अन्नके पचनेपर
वायु फिर बलवान् होजाती है ॥

पित्तजकास का निदान ।

कटुकोष्णविदाह्यम्लक्षाराणामतिसेवन-
म् ॥ पित्तकासकरं क्रोधः सन्तापश्चाग्नि
सूर्यजः ॥

अर्थ—कडेव, ईपदुष्ण, विदाहो, खड़े
और क्षारादिके अत्यन्त सेवन से, क्रोधसे,
अग्नि वा सूर्य के सन्तापसे पित्तजकास उ-
त्पन्न होता है ।

पित्तजकासके लक्षण ॥

पीतनिष्ठीवनाक्षतं तित्कास्यत्वं स्वराम-
यः । उरोधूमायनं तृष्णादाहोमोहोरुचि-
भ्रमः ॥ प्रतत्कासमानं श्रज्योर्त्तीपीवचप-
श्यति । श्लेष्माणं पित्तसंसृष्टं निष्ठीवति च
पैत्तिके ॥

अर्थ—कफका पीलापन, नेत्रों में पीला-
पन, मुखमें कड़वापन, स्वरभंग, हृदय में
धूआसा घुमडना, तृष्णा, दाह, मोह, अरुचि
भ्रम, अत्यन्त खांसने के समय आंखों के
सामने तारोंकीसी चमक, दिखाई देना तथा
पित्त मिलाहुआ कफ निकलना ये सब पित्त-
जकास के लक्षण हैं ।

कफजकासके हेतु ।

गुर्वभिष्यन्दिमधुरस्निग्धस्वप्नाविचेष्टनैः
वृद्धः श्लेष्मानिलं रुद्धाकफकासं करोति हि

अर्थ—भारी, अभिष्यन्दी, मधुर और
स्निग्ध द्रव्यों के सेवन से, निद्रा और वि-
चेष्टासे, बढाहुआ कफ वायुको रोककर क-
फकी खांसी उत्पन्न करता है ।

कफजकास के लक्षण ।

मन्दाग्नित्वारुचिच्छर्दिपीनसो बलेश्चौरवैः

लोमहर्षस्य माधुर्यं बलेदसंसदैन्युत्तम् ।
बहलं मधुरास्निग्धनिष्ठीवति घनं कफम् ।
कासमानोऽतिरुक्वक्षः सम्पूर्णमिव मन्यते ॥

अर्थ—मन्दाग्नि, अरुचि, वमन, पीनस,
क्लेश, भारापन, लोमहर्ष, मुखमें गटापन,
क्लेश, अंगगलानि, अत्यन्त मधुर, स्निग्ध
और गाढ़ा कफ निकलना तथा खांसते
समय अत्यन्त वेदना होना और वक्षःस्थल
कफ से भराहुआ मादम होना ये कफजका-
स के लक्षण हैं ।

क्षतजकास का हेतु ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाध्वगजविग्रहैः ।
रुक्षस्योरक्षतं वायुः गृहीत्वा कासमावहेत् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्त्रीगमन करने से; वीर्य

होने से, मार्ग चलने से, युद्ध करने से
घोड़े हाथियों को रोकने से रुक्ष व्यक्ति के
वक्षःस्थल में घाव होजाता है इस से वायु
का संसर्ग होने से क्षतजकास उत्पन्न होता है

क्षयजकासके लक्षण ।

सपूर्वकामते शुष्कततः प्रीवेत्सशोणितम् ।
रुज्यमानेन कण्ठेन विरुग्नेनैव चोरसा ॥ मू-
चीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तु द्यमानेन शूलिना
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडा भितापिना ॥
पर्वभेदं ज्वरश्चासतृष्णा वैस्वर्यपीडितः ॥

पारावत इवाकूज नकासवेगात् क्षतोद्भवात्

अर्थ—इस रोग में प्रथम सूखी खांसी
उठती है फिर थूक के साथ में रुधिर आने
लगता है, कंठ और वक्षःस्थल में अत्यन्त
वेदना होने लगती है, पैनी सुई के चुभने
कासा शूल होने लगता है, वक्ष स्थल के
हाथ लगाने में दर्द होता है, फटने कीसी
पीडा तथा ताप होता है । जोड़ों में दर्द
ज्वर, स्वास, तृष्णा, और स्वरभंगता ये
उपद्रव भी होते हैं । इस क्षतजकास में
कंठ के भीतर कबूतर के कूजने के समान
शब्द होता है ।

क्षयजकासका हेतु ।

विषमासात्स्य भोज्यातिव्यवायाद्वेगनि-
प्रहात् । घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्ने शौ-
त्रयोमलाः । कुपिताः क्षयजकासं कुर्युर्देहं क्ष-
यमदम्

अर्थ....विषम भोजन, असात्म्य भोजन
अति स्त्री संसर्ग मद्यग्रादि वेगनिप्रहादि
कारणों से, तृष्णा से, शोचसे, अग्नि के मन्द

होने से तानों, दोष कुपित होकर देह को
क्षीण करने वाली क्षयज खांसी को उत्पन्न
करते हैं ।

क्षयजकासके लक्षण ॥

दुर्गन्धहरितं रक्तं प्लीवेत्पूयो मपंकफमास्था-
नादुत्कासमानश्च हृदयं मन्यते च्युतम् । अ-
कस्मादुष्णशीतात्तर्विह्वलाशी दुर्वलः कृशः ॥
स्निग्धाज्जमुखवर्णत्वक्श्रमिदशनलोचनं ।
पाणिपादतलैः श्लक्ष्णैः सततासूयको घृणी
ज्वरो मिश्राकृतिस्तस्य पार्श्वरूपी न सोऽ-
रुचिः । स्वरभेदो निमित्तञ्च भिन्नं वृत्तपुरी-
पता ॥ इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहना-
शनः ॥

अर्थ—इस खांसीमें दुर्गन्धयुक्त हरा वा
लाल राधके समान कफ निकलता है, खांसी-
नेमें ऐसा माद्धम होने लगता है कि हृदय
अपने स्थानसे जुदा हुआ जाता है । रोगीको
अकस्मात् कभी जाड़ा और कभी गर्मी ल-
गने लगती है, भोजन बहुत करता है इस
पर भी दुर्वल और कृश रहता है । मुखके
वर्ण और त्वचामें स्निग्धता और स्वच्छता
होती है, दांत और नेत्रोंमें चमक होती है ।
हथेली और पगंतली में चिकनापन होता है।
असूयकता और घृणा उत्पन्न होती है, ज्वर,
मिश्राकृति, पार्श्व वेदना, पीनस और अरुचि
होती है । मल फटजाता है विनाही निमित्त
स्वरभंग होजाता है, यह क्षीण पुरुषोंकी देह
को नाश करनेवाली क्षयजकास होती है
कासका साध्यासाध्यवर्णन ।
याप्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेव क्षतो

स्थितः॥कदाचिदपिसिद्ध्येतामेतौपादगुणान्वितौ । स्थविराणांजराकासःसर्वो याप्यःप्रकीर्तितः । त्रीन्साध्यान्साधयेत् पूर्वान्पथ्यैर्याप्यांश्चयापयेत् । चिकित्सांमत्तऊर्ध्वन्तुगृणुकासनिवर्हिणीम् ॥

अर्थ—बलवान् रोगीके क्षतज और क्षयज कास याप्य होजातीहै और यदि चिकित्साके चारों पाद ठीक हों तौ ये दोनों साध्य भी हो जाताहै, वृद्ध मनुष्योंकी जरा कालीन खांसी याप्यही होती है । पहिली तीन प्रकार की साध्य खांसियों को दूर करने का उपाय करै दूसरी दो याप्य हैं इन को पथ्यद्वारा याप्य करै । अब कास नाशक चिकित्साका वर्णन करते हैं उसे श्रवण करो ।

वातकास में चिकित्साक्रम ।

रूक्षस्यानिलजंकासमादौस्नेहैरुपाचरेत् । सर्पिर्भविस्तिभिःपेयायूपक्षीररसादिभिः । वातघ्नसिद्धैःस्नेहाद्यधूमैर्लहैश्चयुक्तैः । अभ्यङ्गैःपरिपेकैश्चास्निग्धैःस्वेदैश्चबुद्धिमान् । वस्तिभिर्वृद्धविद्ध्वातंशुष्कोर्ध्वश्चोर्ध्वभक्तिकैः । घृतैःसपित्तसकफजयेत्तुस्नेहविरेचनः ॥

अर्थ—रूक्ष व्यक्ति की वातज खांसीमें प्रथम स्नेहन करै, पीछे घृत, वस्ति, पेयायूप, क्षीर, मांसरसादि द्वारा चिकित्सा करै । वातनाशक द्रव्यों से संस्कार किये हुए स्नेहयुक्त धूमपान और अवलेहों का प्रयोग करै, तथा अभ्यंग, परिपेक और स्निग्ध स्वेदन भी करै । विष्टा और अधोवायु के व-

न्द होने पर वस्ति देवै और ऊर्ध्वभाग के शुष्क होने पर भोजनोत्तर घृतपान करावै तथा इस खांसी में कफ वा पित्तका संसर्ग भी हो तौ स्नेह विरेचन देवै ।

कण्टकारी घृत ।

कण्टकारीगुडूचीभ्यांपृथक्त्रिंशत्पलाद्रसे प्रस्थःसिद्धोघृताद्वातकासनुद्धिदीपनः

अर्थ....कटेरी और गिलोष तीस तीस पल लेकर इनका अठगुने जल में काथ करै चौथाई शेष रहने पर इस को छानकर इस में एक प्रस्थ घृत पकावै, इस के सेवन से वातज कास नष्ट होजातीहै और अग्नि बढजाती है ।

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलेचव्यचित्रकनांगरैः॥

धान्यपाठावचारास्नायष्ट्याहक्षारहिंशुभिः । कोलमात्रैर्घृतप्रस्थादशमूलैरसाढके सिद्धांचतुर्थिकांपीत्वापेयामण्डापिवेदनु ॥ तच्छासकामहृत्पाश्वग्रहणीदोपगुल्मनुत् ।

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता सोंठ धनियां, पाठा, वच, रास्ना, मुलहठी, जवाखार और हिंग इनका चूर्ण करले फिर दशमूलके एक आढक काथमें एक प्रस्थ घी और उक्त चूर्ण डालकर सिद्ध करे इस-घृत में से प्रतिदिन एक पल सेवन करके ऊपरसे पेया वा मंड पीवै, यह घृत स्वास, खांसी, हृच्छूल, पार्श्वशूल, ग्रहणीदोप और गुल्मरोगोंको दूर कर देताहै ॥

त्र्युपणाद्यघृत ।

त्र्युपणंत्रिफलांद्राक्षांकाश्मर्याणिपरूपकम्

को पांच आढ़क जलमें पकावै, जव जो सीज जाय और काथ भी चौथाई रहजाय तब उतार कर छानले, फिर इस काथमें एक तुला गुड, एक कुडव घी, एक कुडव तेल, एक कुडव पीपलीका चूर्ण डालै और पूर्वोक्त हरडों की गुठली निकालकर उसमें डाले जव ये पक जाय तब उतारले ठंडा होने पर इस में एक कुडव शहत डालकर रख छोडै । इसमें से थोडा सा अयलेह और दो हरड प्रति दिन सेवन करै । इसके सेवन करने से झुर्रि और वालों का गिरना बन्द होजाता है वर्ण, आयु और बल बढ़ताहै, पांचों प्रकारकी खांसी, क्षयी, श्वास, हिचकी, विषमज्वर, अर्श, प्रहणी रोग, हृद्रोग, अरुचि और पीनस दूर होजातेहैं । यह उत्तम रसायन अगस्तजीने वर्णनकी है । (इसी में से कुछ परिवर्तन करके यूनानी हकीम मुरब्बे की हरड बनातेहैं) ।

अन्यप्रयोग ।

सैन्धवंपिप्पलीभागीशृङ्गवेरंदुरालभाम् दाडिमाम्लेनकोष्णेनभागीनांगरमम्बुना पिबेत्स्त्रीदिरसारं वामदिरादधिमस्तुभिः । अथवापिप्पलीकल्कं घृतभृष्टं सैन्धवम् ॥
अर्थ—सैधानमक, पीपल, भांडगी, अदरक जवासा, इनके चूर्णको अनारके रसके साथ पीवै अथवा भांडगी और सोंटके चूर्ण को गरमजलके साथ फांकै अथवा खैर-सार को मदिरा वा दहीके तोडके साथ पीवै अथवा पीसी हुई पीपल को घीमें भून कर सैधानमक डालकर सेवन करै ।

धूमपान विधि ।

शिरसःसदनेस्त्रावेनासायाहृदिताम्पति कांसप्रतिश्यायरसेधूमंवैद्यःप्रयोजयेत् ॥ दशांगुलोंन्मितानाडीअथवाष्टांगुलोंन्मिताम् । शरावसंपुटछिद्रेकृत्वाजिह्वाविचक्षणः ॥ वैरेचनंमुखेनैवकासवानुधूमपिबेत् । तमुरःकेवलंप्राप्तंमुखेनैवोद्धमेत् पुनः ॥ सद्यस्यतैक्षण्याद्विशिष्यश्रेष्ठाणमुरसिस्थितम् ॥ निष्कृप्यशमयेत्कांसं वातश्लेष्मोभयोद्भवम् ॥

अर्थ—खांसी और जुकाममें जो शिरमें वेदना, नासास्त्राव और हृदय में वेदना होतीहो तो धूमपान करावै । आठ वा दस अंगुलकी एक नली लेकर एक शराव सम्पुट के छिद्र में लगा देवै यह नली टेढ़ी होनी चाहिये (जैसा बहुधा हुकों में देखने में आता है) इस शराव सम्पुट अर्थात् चिलम में वातनाशक द्रव्योंको धरकर ऊपर से आगि रखदे और पूर्वोक्त नली को मुंह में लगाकर धूँआं खींचै । जव यह धूँआं वक्षःस्थल के भीतर पहुंच जाय तब इसे मुख के रस्ते सेही बाहर निकाल देवै । इस धूँए की तेजी से छाती में जमाहुआ कफ खिचकर बाहर निकलजाता है । इस रीति से वातकफजन्य खांसी दूर होजाती है ॥

धूमपान का प्रयोग और गुण ।

मनःशिलालयपृथाहमांसीमुस्तेगुदैःपिबेत् । धूमंतस्यानुचक्षीरंमुखोष्णंसगुडं पिबेत् ॥ एपकासान्पृथग्दोषसन्निपातोद्भवान्जयेत् । मसद्यपर्यसंसिद्धानन्यैर्योगशतैरपि ॥

अर्थ—मनसिल, हरिताल, मुलहटी, जटामोसी, मोथा और गौदी इन को पूर्वोक्त रीति से पीवें ऊपर से गुनगुने दूध में गुड डालकर पीवें । यह धूमपान पृथक् २ दोष तथा सन्निपात से उत्पन्न हुई खांसी को दूर कर देता है तथा जो अन्य सैकड़ों प्रयोगों से भी खांसी दूर नहीं हुई है वह इससे दूर होजाती है ।

धूमपानके अन्यप्रयोग ।

प्रपुण्डरीकमधुकंशार्क्षालमनःशिलाम् ।
मरिचपिप्पलीद्राक्षामेलांशुरसमञ्जरीम् ॥
कृत्वावर्त्तिपिबेद्धूमक्षौमश्चैलानुवर्त्तिताम् ।
घृताक्तामनुचक्षीरगुण्डादेकमथापिवा ॥
मनःशिलैलामरिचक्षाराञ्जनकुटन्नटैः ।
वंशलोचनशैवालक्षौमलक्तकरोहिषैः ॥
पूर्वकल्पेनधूमोऽयंसानुपानोविधीयते ।
आलमनःशिलातद्वत्पिप्पलीनागरैःसह
त्वर्गुण्डीवृहत्पौद्धेतालमूलमनःशिला ।
कार्पासास्थ्यश्वगन्धाचधूमःकासविनाशनः ॥

अर्थ—पुण्डरिया, मुलहटी, शार्ङ्ग (घंटाखा), हरिताल, मनसिल, कालीमिरच, पीपल, दाख, इलायची, तुलसीकी मंजरी, इन सबको पीसकर बत्तीसीबना एक रेशमी कपड़ेमें लपेटे फिर इसे घीमें भिगोकर धूम पानकरे । पीछे दूध वा गुड का शरबत पीवें ॥ अथवा मनसिल, इलायची, कालीमिरच, जवाखार, अंजन, केवटीमोथा, वंशलोचन, शैवाल, अलसी, लाख, रोहिपतृण इनसबकी पूर्वोक्त रीतिसेबत्ती बनाकर धूमपान करे । तथा पूर्वोक्त अनुपानका सेवनभी करे ।

अथवा हरिताल, मनसिल, पीपल और सोंठकी बत्ती बनाकर पूर्वोक्त रीतिसे धूमपान करे । अथवा गौदीकी छाल, दोनोंकटेरी, तालमूली, मनसिल, विनौला और असंगंध का भी पूर्वोक्त रीति से धूमपान करने पर खांसी दूर होजातीहै ॥

यूपादिप्रयोग ।

ग्राम्यान्पौदकैःशालियवगोधूमपष्टिकान्
रसैर्मांसात्मगुप्तानांयूपैर्वादापेयिद्धतान् ॥
यवानीपिप्पलीविल्वमध्यनागरचित्रकैः ।
रास्नाजाजीपृथक्पर्णीपलाशशटिपौष्करैः
स्निग्धाम्ललवणांसिद्धापेयामनिलजेपि-
वेत् । कटीवृत्पार्श्वकोष्टार्तिश्वासहिका
प्रणाशनीम् ॥ दशमूलरसेतद्वत्पञ्चको-
लगुण्डान्विताम् । पिबेत्समतिलापेयांक्षी-
रेवापिससैन्धवाम् ॥ मत्स्यकौक्कुटवा-
राहैरामिपैर्वाघृत्तान्वितैः । सिद्धांससैन्ध-
वापेयांवातकासीपिबेन्नरः ॥ वास्तुकवा-
यसीशाकमूलकंमुनिपण्णकम् । स्नेहांस्त-
लादयोभक्ष्याःक्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥
दध्यारनालाम्लफलप्रसन्नापानगेवच ।
शस्यतेवातकासेतुस्वादम्ललवणानिच ॥

अर्थ—ग्राम्य, आनूप, और औदक मांस रसोंके साथ अथवा केच के बीजके यूप के साथ शालीचांवल, जौ, गेहूं, और साठी चांवल देवें । अजवायन, पीपल, बेलगिरी सोंठ, चीता, रास्ना, जीरा, पृष्णपर्णी, पलास, कचूर, पौष्कर । इन सबको समान भाग लेकर इनका ब्याध करे इस ब्याधमें चिकनाई, खटाई और नमक डालकर पेया

सेवन करावै । दोनों काकोली दोनों कटेरी, मेदा, महा मेदा, अहसा और सोंठ इनके साथ पित्त कास में मांसरस, यूप वा दूध बनाकर देवै । शरादि पंचमूल, पीपल और दाख इनके कपाय के साथ औटाया हुआ दूध शहत और चीनी डालकर पान करावै ॥

स्थिरादि दूध वा घृत

स्थिरामितापृश्निपर्णाश्रावणावृहतीयुगेः ।
जीवकर्मभकाकोलीतामलक्यदिंजीरकैः ॥
शृतंपयःपिवेत्कासीज्वरीदाहीक्षतक्षयी ।
तज्जंवाभाभयेत्सर्पिःसक्षीरेक्षुरसंभिपक्व ॥

अर्थ—शालिपर्णी, चीनी, पृष्णिपर्णी, श्रावणी, महाश्रावणी, कटेरी, बड़ी कटेरी, जीवक, ऋषभक, काकोली, भून्वाबला, वृद्धिजीरा इन के साथ औटाया हुआ दूध पीने से खांसी, ज्वर, दाह, क्षत और क्षय दूर होजाते हैं अथवा इन्ही द्रव्यों के साथ दूध और ईश्वकारस डालकर सिद्ध किया हुआ घी हितकारी होता है ।

जीवकायैर्मधुरकैःफलैश्चाभिषुकादिभिः ।
कल्कैस्त्रिकापिकैःसिद्धेपूतशोषेचसर्पिषि ॥
शर्करापिप्पलीचूर्णस्त्वर्क्षीर्यामरिच
स्यच । शृङ्गाटकस्यचावाप्यसौद्रगर्भान्
पलोन्मितान् ॥ गुडान्गोधूमचूर्णेनकृत्वा
खादेद्विनाशनः । शृङ्गादोपशोषेपुका
सक्षीणक्षतेपुच ॥ शर्करानांगरोदीच्यं
फण्डकरीशर्वासिमाम् । पिष्ट्वारसंपिवे
त्पूतवस्त्रेणघृतमृच्छितम् ॥ महिष्यजा
विगोक्षीरपात्रीफलरसैःसपैः ॥ सर्पिः

सिद्धंपिवेद्युवत्यापित्तकासनिवहणम् ॥

अर्थ—जीवकादि मधुरगणोक्त दस द्रव्य, मधुरफल तथा पिस्तादि फल ये तीन तीन कर्प लेकर इनका काथ करै और चौथाई शेष रहनेपर घृत सिद्ध करै और इसमें शर्करा, पीपल, वंशलोचन, कालीमिरच, सिंघाड़ा, इन सब को समानभाग लेकर उक्त घीमें डालदे और इस घीमें गेंहूँका चून सेककर एक एक पलके ऐसे मोदक बनावै जिनके वाँच में शहत भराहो । इसके सेवनसे शुक्रदोष रक्तदोष, शोष, खांसी, और क्षीण क्षतरोग शान्त होजाते हैं ।

सोंठ, नेत्रवाला कटेरी और कचूर समान भाग लेके पीसकर रस निकालले इसमें चीनी और घृत डालकर सेवन करै । भैंस का दूध, बकरीका दूध, भेडका दूध, गौका दूध, आंवलेका रस, इन सबको समानभाग लेकर इनमें सिद्ध किया हुआ घी युक्तिपूर्वक सेवन करनेसे पित्तकी खांसी दूर होजातीहै ।

कफजकासमेंचिकित्साक्रम ।

वलिनं वमनैरादौशोधयेत्कफकासिनम् ।
यवान्नैःकडूरुक्षोणैःकफघ्नैश्चाप्युपाच
रेत् ॥ पिप्पलीक्षारिकैर्यूपैःकौलत्थंमूलक
स्यचालघून्यजानिंशुद्धीतरसैर्वाकडुंका
न्वितैःधान्वैवलयरसैःस्नेहैःतिलसर्पप
विल्वजैः । मध्वम्लोष्णांभुतक्रंवाभयंवा
निगदंपिवेत् ॥

अर्थ—कफकी खांसी वाला रोगी जो बलवान् हो तो प्रथम वमन देकर संशोधन करै फिर कफनाशक कडु, रुक्ष और उष्ण प-

द्राव्येसे संस्कार कियाहुआ यवान्न देवे । पी-
पल और जवाखार डालकर कुलथी वा मूली
के यूपके साथ हलंक अन्नका भोजन करावे
अथवा कटुरसोंसे तयार कियाहुआ धान्वदे-
शज अथवा विलेश्यों का मांसरस देवे,
अथवा तिल, सरसों और विल्वके तेलके सा-
थ भोजन करावे ऊपर से मधु, कांजी, गर-
मजल, छाल मद्य वा निगद सेवन करावे ॥

कफजकास में पेयद्रव्य ।

पौष्कराग्वधमूलपटोलान्तनिशास्थित-
म् । जलमधुयुतपेयंकालेष्वन्नस्यवात्रिषु ॥
कट्फलंकटुणंभार्गीमुस्तंधान्यंवचाभया
म् । शुण्ठीपर्वटकःशृङ्गीसुराह्वञ्चशृतंज
ले ॥ मधुहिंशुयुतपेयंकासेवातकफात्मके
कण्ठरोगमुखेशूलश्वासहिकाज्वरेषुच ॥

अर्थ—पौहकरमूल, अमलतासकी जड़
परबल इनको रात्रि में भिगोदेवे, दूसरेदिन
भोजन के समय इस जल में शहत डालकर
पीवे । अथवा कायरुल गंधतृण, भाङ्गी,
मोथा, धनियां, वच, हरड़, सोंठ, पित्तपा-
पडा, काकडासींगी इनका क्वाथ करके शहत
और सुनीहुई होंग डालकर पीवे, इस से
वातकफ की खांसी, कंठरोग, मुखरोग, शूल
श्वास, हिचकी और ज्वर दूर होजाते हैं ।
पाठांशुण्ठीशृङ्गीमूर्त्तगवाक्षीमुस्तपिप्पलीम्
पिप्पलाघर्मांमुनाहिंसुसैन्धवाभ्यायुतांपि-
वेत् ॥ नागरातिविंपांमुस्तंशृङ्गीकटुक
स्यच । हरीतकीशटीचैवतेनैयविधिना
पिबेत् ॥ तैलभृष्टंचपिप्पल्याःकल्काक्षंस
सितोत्पलम् । पिबेद्वाश्लेष्मकासघ्नकु

(१२८)

लत्थरससंयुतम् ॥ कासमर्दाश्वविट्भृङ्गर-
जोवार्ताकजारसाः । संक्षौद्राःकफकास
घ्नाःसुरसस्यासितस्यच ॥ देवदारुश
टीरास्नाकर्कटाख्यादुरालभा । पिप्पली
नागरंमुस्तंपथ्याधातीसितोपलाः ॥ म
धुतैल्युताचेतैलेहौवातानुगेकफे ॥

अर्थ—पाठा, सोंठ, कचूर, मरोडफली
इन्द्रायण, मोथा, पीपल इनको पीसकर
हींग और सेंधानमक मिलाकर गरमजलके
साथ पान करे । अथवा सोंठ, अतीस, मो
था, काकडासींगी, हरड़ और कचूरको पी
स होंग और सेंधानमक डालकर गरमजल
के साथ पीवे । अथवा पीपलके तेलभर
कल्कको तेलमें भूनकर मिश्री डालकर कुल-
थी के रसमें मिलाकर पीवे इससे कफकी
खांसी दूर होजातीहै । अथवा कसौंदी के
पत्तोंका रस, घोड़ेकी लीद का रस,
भांगरेका रस, बैंगनका रस, शहतके साथ
मिलाकर पीवे, अथवा काली तुलसी के प-
त्तों का रस शहत डालकर पीवे । अथवा
(१) देवदारु, कचूर, रास्ना, काकडासी-
ंगी, जवासा, अथवा (२) पीपल, सोंठ,
मोथा, हरड़, आंवला और मिश्री इनदोनों
प्रयोगों को शहत और तेलमें मिलाकर चा
टनेसे वातानुबंधी कफकीखांसी दूर होजातीहै
कफजकासनाशक चार प्रयोग ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली
पथ्यातामलकीधात्रीभद्रमुस्तानिपिप्पली
देवदार्वभयामुस्तंपिप्पलीविश्वभेषजम् ।
विशालापिप्पलीमुस्तंविष्टताचेतिलेहयेत्

उनको पित्तकास में कहा हुआ पथ्य देना चाहिये । तथा इस पथ्य में दूध, घी और मधु का अधिक भाग होना चाहिये । परन्तु उन खांसियों में जो दो २ दोषों के मेल से उत्पन्न हुई हैं उन में कुछ विशेषता होती है, यथा — वातपित्त की खांसी में शरीर में भेदनवत् पांडा होनेपर घृत से अभ्यंग करावै । वायुकी अधिकता होनेपर वातनाशक तैलों को काम में लावै, जो हृदय और पसली में वेदना की अधिकता होती जीवनीय द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घृत हितकर होता है । ऐसे खांसीवालोंको जिनके दाह हो, कफके साथ रुधिर आता हो, जठराग्नि प्रबल हो और उनको मांस भक्षण अनुकूल हो तो लावादिक पक्षियोंका मांसरस पान करावै । जो तृपाकी प्रबलता हो तो शरमूलादि द्रव्यों को डालकर औटाया हुआ बकरी का दूधदेवै । जिसके नाक या मुख के रस्ते से रुधिर जारी हो । उसे दूध से निकाला हुआ घी पान करावै वा उसकी नस्य देना हितकर होता है, जो रोगी थक गया हो, क्षीण होगया हो वा उसकी अग्नि मन्द पड़ गई हो तो उसे यवागू पान करावै । देह की स्तम्भता वा आयाम के होने पर घीकी उत्तम अर्थात् बड़ी मात्राका पान करावै । इस में पित्तरक्त से अधिरोधी वात नाशक क्रिया भी हितकर होती है ।

धूमपान के द्रव्य ।

निवृत्तेक्षतदोषेतुक्केष्टुदरःशिरः ।
दाहपित्तकासिनोपस्पसधूमात्रापिवेदिमानः ।

द्रुमेदेमधुकंदेचयलेतैःक्षौमलक्तकैः । वार्तितधूममापीयजीवनीयवृत्तपिवेत् ॥ मनःशिलापलाशाजगन्धात्वक्षीरिनागरः । भावयित्वापिवेत्धूमशर्करैश्चगुडोदकम् ॥ पिष्ट्वापानःशिलातुल्यामाद्रियाचटशुंगयाससर्पिष्कपिवेद्धूमंतिचिरिप्रतिभोजनम् । भावितंजीवनीयैर्वाकुलिङ्गाण्डरसायुतैः । क्षौमधूमांपिवेत्क्षीरंशृतंचाग्रोगुडैःपिवेत् ॥ अर्थ—जो छाती का क्षत मिटजाय और उसके उत्तेजक वातपित्त दोषभी शान्त हो जाय । परन्तु कफ बढ जाय और उस कफ के बढने से शिर में दलने कीसीपीडा हो तो निम्न लिखित धूमपान हितकर होते हैं । मेदा, महामेदा, मुलहटी, बला, नागबला, इनको पीसकर रेशमी वस्त्र में और चिथड़े में लपेटकर घी में भिगोकर धूमपान करै । धूमपान करने के पीछे जीवनीय घृत का सेवन करै । मनसिल, पलाश, अजगन्ध, वंशलोचन और सोंठ इनको पीसकर पूर्वोक्त रीति से बत्ती तयार कर के धूमपान करै । तदनन्तर गुडका शरवत वा शर्करैश्च (चीनी का शरवत—ईखकारस) पान करै । बडकी हरी कोपल और मनसिल ये दोनों समानभाग लेकर पांसले और घीमें सानकर पूर्ववत् धूमपान करै, पीछे, तीतर के मांस रसके साथ पथ्य लेवै । अथवा जीवनीय गणोक्त द्रव्य और चिरोंटे के अण्डे इन के रसकी रेशमीवस्त्रमें भावना देकर सुखाले और इसकी बत्ती बनाकर धूमपान करै और ऊपरसे गरम गरम छेहे के गोले डालकर गरम किया हुआ दूध पान करावै ।

क्षयज कास में चिकित्साक्रम ।
सम्पूर्णरूपेक्षयजं दुर्बलस्याविवर्जयेत् ।
नवोत्थितं बलवतः प्रत्याख्यायाचरेत् ।
याम् ॥ तस्मै वृंहणमेवादीकुर्यादग्नेश्च व
र्द्धनम् । बहुदोषाय सस्नेहं मृदुदद्याच्च शो
धनम् ॥

अर्थ—यदि क्षयकी खांसी अपने पूर्ण
रूप पर पहुंच गई हो और रोगी दुर्बल
हो तो उसकी चिकित्सा न करे । और जो
रोग नया हो और रोगी भी बलवान् हो
तो यह कहकर चिकित्सा करे कि “आराम
होगा तो होजायगा और न होगा तो खैर,,
ऐसे रोगी को प्रथमही वृंहणकर्त्ता और
अग्निवर्द्धक औषध देनी चाहिये और जो
बहुत दोषों से रोगी युक्त हो तो मृदु स्नि-
ग्ध विरेचन देवे ।

क्षयजकास में विरेचन ।

शम्पाकेन त्रिवृत्या मृद्वीकारसयुक्तया ।
विल्वकस्य कपायेण विदारीस्वरसेन च ॥
तपिःसिद्धं पिवेद्युक्त्या क्षीणदेहो विशोधन
म् । हितं तदेहबलयोरस्य संवरणमतम् ॥

अर्थ—अमलतासका गूदा और निसोथ
इसमें दाखका रस ढालकर घी सिद्ध कर
के पान करावे अथवा निसोथ और विदारी
कन्द के कपाय में घृत सिद्ध करके देवे ।
यह क्षीण देहवालोंके लिये उत्तम विरेचन
है । इस रोग में देह के बलकी रक्षा करना
आवश्यक है ॥

पित्तकफेचसंक्षीणे परिक्षीणे पुधातुषु ॥
घृतककटकीक्षीरं द्विवलासाधितं पिवेत् ॥

विदारीभिः कदम्बैर्वा तालशस्यैस्तथा शृत
म् ॥ घृतं पयश्च मूत्रस्य वैवर्ण्यं कृच्छ्र एव च
शूलसवेदने मेदोपायौ सश्रोणि वंक्षणे ॥
अनुवास्यो घृतमण्डेन मधुना मिश्रकेण वा ।
अर्थ—पित्त और कफके क्षीण होने
पर तथा धातुओंके क्षीण होने पर काकडा
सींगी, खरैटी, नागबला इनको पीसकर
इनमें इनसे चौगुना दूध और चौथाई घी
ढालकर सिद्ध करे । अथवा मूत्रकी विवर्ण
ता और मूत्रकृच्छ्र में विदारीकन्द अथवा
कदम्ब अथवा ताल के अंकुरोंके साथ पाक
किया हुआ घी दूध देवे । मेढ, गुदा, श्रोणी
और वंक्षण में शूल तथा वेदना होने पर
शहत मिले हुए घृतमण्ड की अनुवासन वस्ति
देवे अथवा घी और तेल मिलाकर अनु-
वासन देवे ।

जाङ्गलैः प्रतिभुक्तस्य वर्तकाद्या विलेशयाः ॥
क्रमशः प्रसहाश्चैव प्रयोज्याः पिशिता शिमः
औष्ण्यात् प्रमाथिभावाच्च स्रोतोभ्यः च्या
वयान्ति ततोऽकफैः शुद्धैश्च तैः पुष्टिकुर्यात्सम्य
ग्वहनरसः ॥

अर्थ—जांगल, वर्तकादिक विलेशय तथा
मांसाहारी प्रसहोंका मांस क्रमसे देवे, इन
का मांस उष्ण और प्रमाथी होने से स्रोतों
से कफको निकाल देता है । जब सब स्रोत
शुद्ध होजाते हैं तब उनमें अच्छी तरह बहता
हुआ रुधिर शरीरको पुष्ट करदेता है ॥

दशमूलादि घृत ।

चविकात्रिफला भार्गी दशमूलैः सचित्रकैः
कुलत्थपिप्पली मूलपाठा कोलयवैर्जले ॥

शृतैर्नगिरदुःस्पर्शापिण्णलीशठिपौष्करैः।
कलैः कर्कटशृङ्गाचसमैः सर्पिविपाचये
त् ॥ सिद्धेऽस्मिंश्चूर्णितौक्षारद्वौषधलव
णानिच । दत्त्वाधुक्त्वापिच्यन्मात्रांक्षय
कासनिपीडितः ॥

अर्थ—चव्य, त्रिफला, भाङ्गी, दशमूल
चीता, कुलथी, पीपलामूल, पाठा, वेर और
जौ इनके काथ में सोंठ, जवासा, पीपल,
कचूर, पौहकारमूल और काकडासींगी इन
सबका समान समान कलक डालकर घृत
पकावै घृत पकनेपर दोनों क्षार और पाँचों
नमक डाल युक्तिपूर्वक मात्राके अनुसारपीवै
इससे क्षयकी खांसी दूर होजाती है ।

गुह्य्यादि घृत ।

गुह्यर्चापिप्पलीमूर्वाहरिद्रांश्रेयसविचाम्
निदिग्धिकांकासमर्दपाठांचित्रकनागरम्
जलेचतुर्गुणपयत्वापादशेषेणतत्समम् ।
सिद्धंसर्पिःपिबेद्गुल्मश्वासातिक्षयकास
नुव ॥

अर्थ—गिलोय, पीपल, मरोडफली, ह
लदी, गजपीपल, वच कटेरी, कसौदी,
पाठा, चीता, सोंठ, इनसबका चौगुने जल
में काथकरै, चौथाई शेष रहनेपर घृत पका
कर सेवन करै । इस घृतसे गुल्म, श्वास,
और क्षयजकास दूर होजाती है ॥

कासमर्दादि घृत ।

कासमर्दाभयामुस्तपाठाकटफलनागरैः ।

उरी
सुरसेनच
आतारसाढके । प-
चेद्गोपज्वरह्रीहसर्वकासहरंशिवम् ॥

अर्थ—कसौदी, हरड, मोथा, पाठा, का
यफल, सोंठ, पीपल, कुटकी, खंभारी और
तुलसी इनसबको एक २पल लेकर इन का
काथ करै । इसमें दूध और दाखका रस
एक आढक डालकर एक प्रस्थ घी पका
कर सेवन करै तौ शोष, ज्वर, ग्रीहा और
सम्पूर्ण प्रकारकी खांसी दूर होजाती है ॥

धात्री फलादि घृत ।

धात्रीफलैः क्षीरसिद्धः सर्पिवाप्यवचूर्णि
तम् । द्विगुणेदाडिमरसेविषकंव्योपसं
युतम् ॥ पिवेदुपरिभक्तस्ययवक्षारघृतं
नरः । पिप्पलीगुडसिद्धंवाछागक्षीरयुतं
घृतम् ॥ एतान्यभिविचृद्ध्यर्थसर्पापिष्य
कासिनाम् । स्युर्दोषवद्धकोष्ठोरःस्रोत-
सांचविशुद्ध्ये ॥

अर्थ—दूधमें आंवलोंको पकाकर उन
की गुठलीनिकाल डालै फिर इनकी लुगदी
बना घृतमें पकावै अथवा घी से दुगुना
अनारका रस इसमें त्रिकुटा डालकरपकावै ।
तथा भोजन करनेके पछि जवाखारके साथ
सिद्ध किये हुए घृतका पान करै अथवा
पीपल, गुड, वकरीका दूध और घृत इन
को सिद्ध करके देवै । ये घृत क्षयकासवाले
रोगी की अग्नि बढ़ाने में उपयोगी होते हैं
तथा इनके सेवन करने से दोषों की विव-
द्धता, कोष्ठ और उरःस्रोत शुद्ध होजातेहैं।
हरीतक्यावलेह ।

हरीतकीयवकाथद्वयाढकेविंशतिपचेत् ।
स्विन्नामृदिवातास्तास्मिन् पुराणं गुडपद-
लम् ॥ दधान्मनःशिलाकर्पकपर्पार्द्धचर-

साधनान् । कुट्टयन्निष्कृतिपिप्पल्याःमले
हःश्वासकासनुन् ॥

अर्थ—हृदय नग बीज लेकर जो के दो
आयक वषाणमें पकौ सीजनकर गुठटियों
निकासकर सीमझमें उनमें छ. पत्र पुगना
गुठ टालकर साथ एक कर्ष मनसिद्ध, आधा
कर्ष रसौत, आधा कुट्टय पांचउ में साथ
पीसकर डाढ़ेंद्वे । इस छेहका रोपन करने
से श्वास और गानी दूर होजाते हैं ॥

अथ भ्रंवेदः ।

श्वाविषःसूत्रपौदग्याःसमृतसौद्रगफेराः।
श्वासकामदरावर्दिवाद्योषाभाद्रसर्पिषा ।
परण्टपप्रसारंगान्योपतलमुद्रान्यनम् ।
सुरसरण्टपत्राणांविधिनानेनलेहयेत् ।
द्राक्षापप्रकयानांविधिनानेनलेहयेत् ।
लिगान्धूपणचूर्णवापुराणंगुटमार्षिषा ॥
विप्रकंभिप्रकल्यानांविधिनानेनलेहयेत् ।
द्राक्षान्चसौद्रासर्विधिनानेनलेहयेत् ।
गुटेनवा ।

अर्थ—मेहके काटों की भस्मको घी,
शहत और चीनी मिठाकर चाटे अथवा मौर
के पंजोंकी भस्म को घी और शहत के
साथ चाटने से श्वास और काम दूरहोजाते
हैं, अथवा शरई के पत्तों का क्षार त्रिकुटा
मिठाकर गुठ और सेठ के साथ चाटे
अथवा इसी रीतिसे गुलसी और अरई के
पत्तोंका क्षार चाटे । दाग, पप्पान, धँगन,
पीपल इनके चूर्ण को घी और शहत के
साथ चाटे अथवा उम में त्रिकुटा का चूर्ण,
पुगना गुड़ और घी मिठा कर चाटे । ची-

सा, नितला, और, काकडासीगी, त्रिकुटा
और दाग इनको घी, शहत और गुड़ के
साथ चाटे ।

पप्रकायवेदः ।

पप्रकंभिप्रकल्यान्योपविष्टंमुरदाकच ॥
पलांरास्नांचतुन्यानिगृह्णं चूर्णानिकार-
येत् ॥ सर्वरोभिःसमंचूर्णःपृथक्सांद्रपृत्त-
सिताम् । विमध्यवेदःपेदेहंमर्षसागरं
शिवम् ॥

अर्थ—पप्पान, नितला, त्रिकुटा वाय-
निष्टग, देवदाक, रसौत, शाना, इनमरको
समन भाग लेकर महीन पीसते और इनमें
चीनी, शहत और घी प्रत्येक चूर्ण के वषा-
णिकाकर चाटे । इससे सम्पूर्णप्रकारकी गी-
सी दूर होजाती है ।

जीवन्त्याचवेदः ।

जीवन्तीमधुकंषाटांत्यक्षीरंविप्रकलाश-
टीम् । सुरनेलेपप्रकंद्राक्षाद्वेष्टयौवितुन्न
कम् ॥ शारिवापौष्करंमूलकंकाट्यांर
साउनम् । पुनर्नवारंजालोदंवायमाणां
यवानिकाम् ॥ भार्गीतामलकींक्षुद्रिचि
ट्पृथक्नयसाकम् । शारचित्रकचव्याम्ल
चेतमन्योपदारुच ॥ चूर्णाकृत्यसमांश
निलेहयेत्सांद्रसर्पिषा । चूर्णात्पाणितलं
पञ्चकासानेपप्यपोहंति ॥

अर्थ....जीवन्ती, गुलहटी, पाठा, यंश-
छोचन, त्रिकुटा, कचूर, मोथा, छोटी इत्या-
यची, पप्पान, द्राक्षा, दोनों कटेरी धनियां
शारिवा, पुष्करमूल, काकडासीगी, रसौत,
साठ, लोहचूर्ण, प्रायमाणा, अजवायन,

भोजनमें अरुचि ये तीन वमनके पूर्वरूप हैं

वातजवमनका निदान ।

व्यायामतीक्ष्णौषधशोकरोगभयोपवासा
द्यतिकर्षितस्याकृद्धोमहास्रोतसिमातरिश्वा
दोपानसमुत्प्लिलश्यतद्दग्धमस्यन् । आमा
शयोद्रेककृतश्चर्ममपीडयेच्छर्दिस्तीरयेच्च ।

अर्थ—व्यायाम, तीक्ष्ण औषध, शोक
रोग, भय और उपवास से अत्यन्त कृश
हुए मनुष्य के महास्रोतों में वायु कुपित हो
कर दोषोंको उत्क्रिष्ट करके ऊपर को फेंकती
है तथा हृदयादि मर्मस्थानोंको पीडित करके
वमनको करता है । यह वमन आमाशयके
उद्रेकसे भी होती है ॥

वातजवमन के लक्षण ॥

हृत्पार्श्वपीडामुखशोपमूर्धनाभ्यर्तिकास
स्वरभेदतौदैः । उद्गारशब्दप्रवलसफेनविच्छि
न्नकृष्टतनुकंपायम् ॥ कृच्छ्रेणचाल्पमह
ताचवेगेनार्त्तोऽनिलाच्छर्दयतहिदुःखम् ॥

अर्थ—हृदय और पसली में वेदना, मुख-
शोष, नाभिके ऊपर पीडा, खांसी, स्वरभेद
तोद, और डकारमें अत्यन्त शब्द होता है ।
तथा ज्ञागदार, फटी हुई कष्टकर पतली कसी-
ली, अत्यन्त कष्ट से, थोड़ी, और अत्यन्त
वेगवती वमन होती है । वातज वमन बड़ी
दुखदाई होती है ।

पित्तजवमनका निदान ॥

अजीर्णकट्वम्लविदाहशीतैरामाशयेपि
क्षुदीर्णवेगम् ॥ रसायनीभिर्विसृतं मपीड्य
मपीर्द्धमागम्यवमिकरोति ॥

अर्थ—अजीर्णमें कड़वे, खट्टे, विदाही

और उष्ण पदार्थोंके अत्यन्त सेवनसे आम-
शयमें पित्त अत्यन्त उर्दार्ण होकर रसवाही
स्रोतोंके द्वारा फैलकर मर्मस्थान को पीडित
करके ऊपरको उठकर वमन करता है ॥

पित्तजवमनके लक्षण ॥

मूर्च्छापिपासामुखमूर्द्धकण्ठताल्वक्षिसन्ता
पतमोभ्रमार्त्तः । पित्तभृशोष्णहरितसतित्तं
धूम्रञ्चपित्तेनवमेत्सदारम् ॥

अर्थ—पित्तज वमन में मूर्च्छा पिपासा,
मुख, मूर्द्धा, कंठ, तालु, अक्षि, इनमें संताप
अंधकार, छाना; चकर आना, ये लक्षण होते
हैं । तथा इसमें अत्यन्त उष्ण, ताँखे, धूँआं
और दाहयुक्त पित्त निकलते हैं ॥

कफज वमनका निदान ।

स्निग्धातिगुर्वाभिविदाहिभोज्यैः । स्वप्ना
दिभिश्चैवकफोऽतिवृद्धः ॥ उरःशिरामर्मर
सायनीश्चः सर्वाः समावृत्यवमिकरोति ॥

अर्थ—स्निग्ध, भारी, आम और विदाही
भोजनों के करने से अथवा बहुत सोने से
कफ अत्यन्त वृद्धि पाकर, हृदय, शिर, मर्म
स्थान, और रसवाही स्रोतों को घेरकर व-
मन उत्पन्न करता है ॥

कफजवमनका लक्षण ॥

तन्द्रास्यमाधुर्यकफमसेकसन्तोपानिद्रारु
चिगौरवार्त्तः ॥ स्निग्धघनं स्वादुकफं विधुद्धं
सलोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥

अर्थ.... कफज वमनमें तन्द्रा मुख में मी-
ठापन कफ प्रसेक, सन्तोष तथा नि-
द्रा, अरुचि, भारापन, और वेदना होती है
तथा वमन में चिकनाई, गाढ़ापन, मिष्टता

मेवतस्मात् । प्राकारयेन्मारुतजं विमुच्य
संशोधनं वाक्फपित्तहारि ॥

अर्थ—सर्व प्रकारकी वमन आमाशय के उत्क्रेश से उत्पन्न होती है इससे वमन में प्रथम लघन कराना हित है । तत्पश्चात् कफपित्तनाशक संशोधन देवै । परन्तु वातज वमन में ऐसा नहीं किया जाता है ॥

कफपित्तनाशक वमन विरेचन ।
चूर्णानिलह्वानमधुना भयानाह्वयानि-
वायानि विरेचनानि । मधैः पयोभिश्च युता
नियुक्तानयत्न्यधोदोषमुदीर्णमूर्ध्वम् ॥
बल्लीफलार्थैर्वमनं पिबेद्वायो दुर्बलस्तंशम
नैधिक्षिप्तेत् । रसैर्मनोर्जैर्लघुभिर्विशुष्कै
र्भक्ष्यैः सभोज्यैर्विधैः सपानैः ॥

अर्थ—हरडका चूर्ण शहतके संग चाटे अथवा अन्य द्रव्य भी जो हृदयप्रिय और विरेचन कर्त्ता हैं उन्हें मद्य वा दूध के संग सेवन करै, ऐसा करने से ऊपरको उठे हुए दौप फिर नीचेको चले जाते हैं । अथवा बल्लीफलादि द्वारा वमन करावै । दुर्बल मनुष्यको संशोधन न देवै उसकी संशमन क्रिया करना उचित है । दुर्बल मनुष्य को मनके अनुकूल लघु मांसरस शुष्क भोजन तथा अनेक प्रकार के पेय द्रव्य देवै ।

सुसंस्कृतास्तिचिरिर्वहिलाधारसान्वयो
हन्त्यनिलमष्टत्म् । छर्दिस्तथा कोलकुल
त्यमापविल्वादिमूलाभ्युयवैश्च यूपः ॥

अर्थ—अच्छी तरह संस्कार किये हुए तीतर, मोर, लास इनके मांसरस बढी हुई वातज वमनको शान्त करदेते हैं इसी तरह

वेर, कुलथी, उरद, विल्वादि पंचमूल का क्वाथ और जौ का यूप भी वातज वमन को दूर करता है ।

वातज वमनकी चिकित्सा ।

घातात्मके हृद्द्वकासयुक्तो नरः पिवेत्सैन्ध
ववद्धृतन्तु । सिद्धं तथा धान्यकनागरा-
भ्यां दध्ना च तोयेन च दाडिमस्य ॥ व्योषे
ण युक्तां लयणैस्त्रिभिश्च घृतस्य मात्रामथवा
विदध्यात् । स्निग्धानि हृद्यानि च भोजना
निरसैः सयूपैर्दधिदाडिमाम्लैः ॥

अर्थ—वातज वमनमें जो हृदय में फट फडाहट हो तथा खांसी हो तो उसे सेंधानमक मिलाकर घृतपान करावै अथवा सोंठ और धनिये को पीसकर दहीके साथ सिद्ध किये घृत में डालकर पानकरै, अथवा अनार के रस में घृतको सिद्ध करलें अथवा उक्त घृत में त्रिकुटा और तीनों नमक डालकर मात्राके अनुसार पान करै और दही तथा अनारकी खटाई डालकर मांसरस और यूपके साथ स्निग्ध और हृद्य भोजन देवै ॥

पित्तज वमनमें चिकित्सा ।

पित्तात्मिकायामनुलोमनार्थं द्राक्षाविदारी
क्षुरसैस्त्रिघृतस्यात् । कफाशयस्थन्त्वति
मात्रवृद्धं । पित्तं हरेत्स्वादुभिरूर्ध्वमेव ॥
शुद्धायकाले मधुशर्कराभ्यां ॥ लाजैश्च म
न्यं यदिवापि पेयाम् ॥ प्रदापयेन्मुद्गरसं
नवापि । शाल्योदनं जंगलजैरसैर्वा ॥
सितोपलामाक्षिकपिप्पलीभिः कुलमापला
जायवसवतुष्टुजान् ॥ खर्जूरमांसांश्चान्यथ-

युक्तैर्वम्यांकफामाशयशोधनार्थम् ॥ गो-
धूमशालीन्सयवानपुराणान्गूपैःपटोला
मृताचित्रकाणाम् । व्योपस्यनिम्बस्यचत
क्रांसिद्वैर्गूपैःफलाम्लैःकटुभिस्तुवाद्यात् ।
रसांश्चशूल्यानिचजाङ्गलानांमांसानिजी
र्णान्मधुशिश्वारिष्ठान् । रागांस्तथाखाद
वपानकानिद्राक्षाकपित्थैःफलपूरकैश्च ॥
अर्थ—कफात्मक वमनमें कफाशय और
आमाशयका शोधन करनेके निमित्त पीपल
सरसों, नीमका क्वाथ, मेनफल और
सैधानमक मिलाकर वमन देवै । पुराने गेहूं
शालीधान्य और जौको परवल, गिलोय और
चाँतेके यूपके साथ देवै अथवा त्रिकुटा डाल
कर मठाके साथ वा नीमके क्वाथ के साथ
सिद्ध किये हुए मठे के साथ अथवा फलाम्ल
और कटुद्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुए
यूप के साथ देवै । जांगल मांसरस वा
जांगल मांस शूलपर भुना हुआ पुराना श-
हत शीधु, अरिष्ट, रागपाइव और दाख,
कैथ वा विजौरे के रस के साथ सिद्ध किये
हुए पानक सेवन करावै ।

इद्वान्सगोधूमयवान्कलायान्मृष्टान्गु-
तान्नागरमाक्षिकाभ्याम् ॥ अघाततथैवात्रि
फलाविडङ्ग । चूर्णविडङ्गप्लवयोरथोवा ॥
सजाम्बतंवावदरस्यचूर्णमुस्तायुतांकर्कटक
स्यशृंगीम् ॥ दुरालभांवामधुसम्प्रयुक्तालि
प्तात्कफछर्दिनिग्रहार्थम् ॥ मनःशिला
याःफलपूरकस्यरसैःकपित्थस्यचपिप्पली
नाम् ॥ शोद्रेणचूर्णमरिचश्चयुक्तलिहन्
जपेत्छर्दिरुदीर्घवेगम् ॥

अर्थ—गूंग, गेहूं जौ और मटर इनको
घीमें तलकर सोंठ और शहत मिलाकर
सेवन करै अथवा त्रिफला और वायविडंग
का चूर्ण शहत के साथ चाँटे अथवा वाय-
विडंग और केवटी मोथा को शहतके साथ
चाँटे अथवा जामनकी मर्गि और बेरकी
मर्गि का चूर्ण बना कर शहत के साथ
सेवन करै अथवा मोथा और कांकडासींगी
वा जवासा इनके चूर्णको शहतके साथ से-
वन करै । इनसे कफकी वमन शान्त होजा-
ती है ॥ विजौरे वा कैथके रसके साथ मनसि-
ल का चूर्ण सेवन करनेसे वा पीपल और
कालीमिरच का चूर्ण शहतमें मिलाकर सेवन
करनेसे उर्दाण वेगवाली वमन दूर होजाती है ।

सान्निपातिक वमन में चिकित्सा ।
वैपापृथक्तेनतयाक्रियोक्तातांसान्निपातेऽ-
पिसमीक्ष्यबुद्ध्यादोपतुदेहाग्निबलान्यवे
क्ष्यप्रयोजयेत्सास्त्रविदममत्तः ॥

अर्थ—जुदे २ दोषोंसे उत्पन्न हुई वमन
की जो जो जुदी जुदी क्रिया वर्णन कीगई
हैं वे सम्पूर्ण क्रिया दोष ऋतु, देह अग्नि और
बलकी परीक्षा करके अत्यन्त सावधानीसे स-
न्निपातज वमन के दूर करनेके लिये प्रयुक्त करै

दुष्टसंयोगजवमन में उपाय
मनोभिघातितुमनोनुकूलावाचःसमाश्वा
सनहर्षणानिलोकमसादःश्रुतयोवयस्याः
शृङ्गारिकाथैवहिताविहाराः ॥ गन्धाविचि
त्रामनसोऽनुकूलामृतपुष्पशुक्लाम्लफ
लादिकानाम् ॥ शाकानि भोज्यान्व्यथपा
नकानिमुसंस्कृताः साढवरागलेहाः ॥ यु-

पारसाकाम्बालिकाः खट्वाक्षमांसानि धा-
नाविविधाश्च भक्ष्याः ॥ फलानि मूलानि
च गन्धवर्णै रसैरुपेतानि यमिञ्जयन्ति ॥
गन्धरसस्पर्शमथापिशब्दरूपञ्च यद्यत्तु मि-
थमप्यसात्म्यम् ॥ तदेव कुर्यात्प्रशमायत-
स्यास्तज्जोहिदोषः सुख एव जेतुम् ॥

अर्थ—जो वमन मनमें किसी प्रकार की
घृणा उत्पन्न होनेसे होती है उसमें मन के
अनुकूल वाणी, संतोषदायक वचन, प्रसन्न
करनेवाली कहानियाँ समानवयवाली स्त्री से
संगमन, तथा शृंगारादि हितकर विहार
उत्तम होते हैं । मनके अनुकूल अनेक प्रकार
के सुगंधित द्रव्य, खिले हुए फूलोंकी सुगंधि,
शाक, भोजनके पदार्थ, पानक अच्छी तरह
से संस्कार किये हुए पाडव, मुरब्बे, अखलेह
अनेक प्रकार के यूप, रस, काबलिक यूप
खडयूप, मांस, धान, अनेक प्रकारके मत्स्य
पदार्थ, अनेक प्रकार के गंध, वर्ण और
रसों से युक्त फल मूल का सेवन वमनको
दूर करता है । जो जो गंध, रस, स्पर्श,
शब्द और रूप रोगीको प्रिय हों यद्यपि ये
गंधादि असात्म्य भी होंतौ भी रोगकी नि-
वृत्तिके लिये इनका प्रयोग करे क्योंकि मन
की घृणासे उत्पन्न हुए रोग मनोऽनुकूल
पदार्थोंके सेवनसेही सुखपूर्वक दूर करनेमें आने है
वम्युत्थितानांच चिकित्सितं स्याच्चिकित्सा
तं कार्यमुपद्रवाणाम् । अतिप्रवृत्तासु विरच-
नस्य कर्माति योगे विहितं विधेयम् ॥ यमि-
प्रसङ्गात्पवनोऽप्यवश्यं धातुक्षयादृद्धिमुपै-
तितस्मात् ॥ चिरप्रवृत्तांस्वनिलापहानि

कार्याण्युपस्तम्भनवृंहणानि ॥ सर्पिर्गुहा-
क्षीरविधिर्घृतानि कल्याणकः यूपणजीव-
नानि ॥ वृष्यास्तथा मांसरसः सलेहाः चि-
रमसक्ताश्च वमिञ्जयन्ति ॥

अर्थ—जो चिकित्सा वमन के दूर करने
की होती है वही चिकित्सा वमन से उत्पन्न
हुए उपद्रवों में भी की जाती है तथा विरचन
के अतियोग होने में जो जो चिकित्सा नि-
रूपण की गई है वेही वेही चिकित्सा वमन
के अतियोग में भी होता है । वमनके प्रमग्न
से धातुओं के क्षीण हो जानेपर बापु भक्ष्य
ही बढ़ जाती है अतएव पुराने वमन रोग में
वातनाशक, रन्ध्रन और वृंहण क्रियाकारक ।
सर्पिर्गुह, क्षीरविधि, कल्याण घृत, स्मृत्युत
जीवनाय घृत, वृष्यप्रयोग मानस और
अवलेह इनमें बहुत दिन की पुगती यमि
दूर हो जाती है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

संख्यादिनृलक्षणमुपद्रवान् । माध्यमार्त्त-
योगांच चर्द्धानाम् प्रथमार्थमाह चिकित्सा
तमुमुनिवर्त्य ॥

अर्थ—इस वमन चिकित्सा नामक अध्यायमें
पुनर्वमन वमन रोगोंकी संख्या, हेतु, लक्षण
उपद्रव, साध्यामाध्य विचार और औषध
वर्णन की है ।

इति श्रीभाषाटीकाविवेचनायां आश्रये शशि-
सायाचरकप्रतिसंस्मृत्यायां महिषायां
चिकित्सितस्थानेऽष्टाचिकित्सासंग्रह-
प्रयोगेशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः॥

अथातस्तृष्णाचिकित्सितग्याख्यास्याम
इतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर, भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम तृष्णाचिकित्सित नामक अध्याय
की व्याख्या करेंगे ।

ज्ञानप्रशमनतपोभिःख्यातोऽत्रिसुतो जग
द्वितेऽभिरतः। तृष्णानां प्रशमार्थं चिकि
त्सितं प्राह पञ्चानाम् ॥

अर्थ—जो भगवान् आत्रेय अपने ज्ञान
शान्ति और तपोगुणसे जगत् में विख्यात
हैं और संसारके हितमें दत्तचित्त हैं वे पांच-
प्रकार के तृष्णारोगोंकी शान्तिका उपाय
वर्णन करने लगे ।

तृषा रोग का हेतु ।

शोभाद्भयाच्छ्रमादपिशोकात्क्रोधाद्विलं
घनान्मद्यात्॥ क्षाराम्ललवणकटुकोष्ण
रूक्षशुष्काक्षेवाभिः ॥ धातुक्षयगदक
र्पणवमनाद्यतियोगसूर्यसन्तापैः। पित्ता
निलौघद्व्यौसौम्यान्धातुं शोषयत ॥
रसवाहिनीश्च नाली जिह्वामूलगलतालु
होमनः । संशोष्य तृष्णां देहे कुरुतः तृष्णाम्
हावलावेतौ । पतिपतिं हि जलं शोषयतस्त
मतो न याति शमम् । घोरव्याधि कृशानां प्र
भवत्सुपतर्गभूतासा ॥

अर्थ—क्षोभ, भय, श्रम, शोक, क्रोध,
लघन, और मद्यपान के करने से, खारे, ख
ट्टे, नमकीन, कड़वे, गरम, रूखे और सूखे
क्षय के सेवन से, धातुकी क्षीणता, रोग
के कारण कृशता, वमनातियोग और सूर्य

सन्ताप से पित्त और वात बढकर ये दोनों
महावली सौम्यधातुओं को सुखाते हुए रस
वाहिनी नाडी, जिह्वामूल, गला, तालु
और पिपासास्थान इन को सुखाकर मनुष्य
की देह में तृष्णा की उत्पन्न करते हैं, जल
पति पति सूखता चला जाता है और किसी
तरह से तृष्णा की शान्ति नहीं होती । जो
मनुष्य घोर व्याधि के कारण कृश होगये
हैं उन के उपद्रव सहित तृष्णा उत्पन्न
होती है ।

तृषाका प्रामूप । ।

प्रामूपं मुखशोषं स्वलक्षणं सर्वदाम्बुकाभि
स्त्वम् ॥

अर्थ....मुखशोष, तृषाका लक्षण और
सदैव जलपान की इच्छा ये तृषा के पूर्वरूप हैं ।

तृष्णानां सर्वासां लिङ्गानां लाघवमपायः ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार की लक्षणवाली
तृष्णाओं का लाघवही अपाय है ।

तृषा के लक्षण ।

मुखशोषस्वरभेदभ्रमसन्तापप्रलापसंस्त-
म्भान् । ताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाकर्कशतां
चित्तनाशञ्च ॥ जिह्वा निर्गममरुचिं वा
धिर्यमपाणान्दवंसादम् । तृष्णोद्धृतान्
जयेत्पञ्चाविधां लिङ्गतः शृणुताम् ॥

अर्थ—मुखशोष, स्वरभंग, भ्रम, संताप,
प्रलाप, संस्तम्भ, तालु शोष, कंठ और जि-
ह्वा में कर्कशता, चित्तनाश, जिह्वा का वा-
हर निकलना, अरुचि, धीरता, मर्मों में
ताप और शिथिलता ये लक्षण तृषा रोग में
होते हैं । तृषापांच प्रकार की होती है अ-

य इनके पृथक् पृथक् लक्षणों का वर्णन किया जाता है ॥

वातजतृपाकाहेतु ॥

अवधातुदेहस्थंकुपितःपवनोपदाविशोप
यंति। तस्मिन्शुष्केशुष्यत्यवलस्तृप्यथ-
विशुष्यन् ॥

अर्थ—पवन कुपित होकर जब देहस्थ जलधातु को सुखा देती है तब उस के सूखने पर दुर्बल मनुष्य शुष्क होजाता है और शुष्क होने से उसे तृपा उत्पन्न होती है ।

वातज तृपाका लक्षण ।

निद्रानाशःशिरसोभ्रमस्तथाशुष्कविरस
मुखता । श्रोत्रोपरोधइतिचस्यालिङ्गवा-
ततृष्णायाः ॥

अर्थ—निद्रानाश, शिरका धूपना, मुखमें सूखापन और विरसता, कानों में सुनताये लक्षण वात की तृष्णा में होते हैं ।

पित्तज तृपाका हेतु ।

पित्तमत्तंकुपितमाग्नेयंकुपितचेत्तापयत्य
पांथातुम् । सन्तप्तःसाहिजनयेतृष्णांदा
होत्वर्णान्तराम् ॥

अर्थ—प्रथमकहचुके हैं कि पित्त आग्नेय होता है और जब यह कुपित होजाता है तब जल धातु को तप्त करता है और जल धातु तप्त होकर मनुष्यों के दाहाधिक्य तृपा को उत्पन्न करती है ।

पित्तजतृपा के लक्षण ।

तिक्तास्पृश्वेशिरसोदाहाःशीताभिनन्दि
तामूर्च्छा । पीताक्षिभ्रवर्चस्त्वमाकृतिः
पित्ततृष्णायाः ॥

(१३०)

अर्थ—मुख में कड़वापन, शिर में दाह, शीतलवस्तु में स्पृहा, मूर्च्छा, नेत्र, मूत्र और विष्टामें पीलापन ये पित्तजतृपाके लक्षण हैं ।

कफज तृपा ।

तृष्णायामप्रभवासाप्याग्नेय्यामपिचज
नितत्वम् । लिङ्गं तस्याधारुचिराध्मानक
फमसेकाच ॥

अर्थ—जो तृपा आमसे उत्पन्न होती है वह आम्रिय होती है, क्योंकि यह धा माश्रित पित्तसे उत्पन्न होती है । अरुचि, आप्मान और कफप्रसेक इसके लक्षण हैं । देहोरसजोऽम्बुभवारसाश्च तस्य शयाश्च-
तृप्येत्तु । दीनस्वरःप्रताम्यन्दीनःसंशु-
ष्कहृदयगलतालुः ॥ भवतिखलुसोपस-
र्गान्तृष्णासाभवतिशोषणीकष्टाञ्चरमेह
क्षयशोषश्वासाष्टुसृष्टदेहानाम् ॥ सर्वा
स्त्वतिप्रसक्तारोगकृत्तानां वामिसक्ताना-
म् । घोरोपद्रव्युक्तास्तृष्णामरणाय-
विज्ञेया ॥॥

अर्थ—रससे देह उत्पन्न होता है और रस जलसे होता है, इससे रसधातुके क्षीण होनेसे तृपा उत्पन्न होती है । इस तृपामें स्वर क्षीण होजाता है, दीनता होजाती है हृदय, गला और तालु शुष्क होजाता है ।

ज्वर, प्रमेह, क्षय, शोष और स्वासादि उपद्रवों से युक्त मनुष्य के जो तृपा उत्पन्न होती है वह सोपद्रव होती है, इसे शोषणी कहते हैं, यह कष्टसाध्य होती है । सब प्रकार की अत्यन्त प्रसक्त तृपा, तथा रोग से कष्ट पुर्णोंकी तृपा, वमन रोगियों की

तृपा तथा घोर उपद्रवों से युक्त पुरुषों की तृपा मनुष्य की मृत्युकारक होती है ।

अग्नि और पवनको तृपाकाकारणत्व ।
नाग्निविनाहितर्पःपवनाद्वातौहिशोपणेहेतू
अन्धातोरतिवृद्धावपांक्षयेतृप्यतिनरोहि

अर्थ—अग्नि और पवन के बिना तृपा उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि येही जलधातु को सुखानेवाली है इसतरहजल धातु के अत्यन्त क्षीण होने ही से तृपारोगउत्पन्न होता है ॥

तृपा के अन्यकारण ।

गुर्वनपयःस्नेहैःसंमूर्च्छद्भिर्विदाहकालेच ।
यस्तृप्येद्धृतमार्गौतत्राप्यानिजलौहेतू ॥
तीक्ष्णोष्णरूक्षभावान्मद्यपित्तानिऔष-
कोपयति । शोपयतोऽपांधातुंतावाशुमद्य
शीलानाम् ॥ तस्मात्स्विवसिकतामुहितदा
शुमद्यतोयंविशुष्यति । क्षिप्रतेपांसन्तस्मा
नाहिमजलपानाद्भवतिमर्म । शिशिरस्ना
तस्योष्मारुद्धःकोष्ठमपद्यतर्पयति । तस्मा
त्त्रोष्णः क्लान्तोभजेतसहसाजलंशीतम्
लिङ्गसर्वास्वेतास्वनिलक्षयात्पित्तजंभव
त्ययतु । पृथगागमाधिकित्सितमतःप्रव
क्ष्यामिनृष्णानां ॥

अर्थ—पारिपेक होते हुए भारीअन्न, दूध औरघृतादि पदार्थोंके विदाहकालमें तृपा उत्पन्न होतीहै । इसमें भी रुकेहुए मार्ग वाले जल और अग्निही हेतुहैं । तीक्ष्ण और रूक्ष भावोंके कारण मद्य पित्त और वायुको कुपित करता है । येही पित्त और वायु मद्यप मनुष्यकी जलधातु को शुष्क कर देतेहैं ।

गरमवायुमें जल डालनेसे जल शुष्कहोजाता है उसी तरह मद्यसे संतप्त मनुष्योंके ठंडा जलपान शुष्कहोकर मर्म को सुखादेताहै । सहसा ठंडे जल के स्नानसे ऊष्मा रुककर कोष्ठमें पड़चकर तृपा उत्पन्न करतीहै इस लिये गरमीका माराडुआ मनुष्य शीघ्रही शीतल जलसे स्नान न करे । इन ऊपरवर्णन कियेहुए सम्पूर्ण कारणों में वायु के क्षीण होनेसे पित्तज तृपाके लक्षण होतेहैं । अब हम सब प्रकारकी तृपाओंकी पृथक्चिकित्सा वर्णन करतेहैं ॥

तृपारोगमें चिकित्सा ।

अपांक्षयादितृष्णासंशोष्यनर्मणाशये
दायु । तस्मादैन्द्रंतोयंसमधुपिवेत्तद्गुणं
वान्यत् ॥ किञ्चित्तुरानुरसंतत्रालघुंशी
तंसुगन्धिसुरसम् । अनभिष्यन्दिचयत्तं
तृक्षितिगतमप्यैन्द्रवज्ज्येयम् ॥ शृतंशीतं
ससितोपलमधवाशरपूर्वपञ्चमूलेन । ला
जासक्तुसिताक्तान्मधुयुतमैन्द्रेणवामन्यं ॥
वात्स्यावासुययानांशीतमधुशर्करायुतंदद्यात्
पिपांवाशालीनांदद्याद्वाकोरदूपाणाम्
पयसाशृतेनभोजनमधवामधुशर्करायुतंभो
ज्यम् । पारावतादिकरसैर्घृतभृष्टैर्वाप्यं
लवणाम्लैः ॥ तृणपञ्चमूलमुद्धातकैःपि
यालैश्चजांगलाःसुकृताःशस्ताःरसाःपयो
वातैःसिद्धंशर्करामधुमत् ॥

अर्थ—जलधातु के क्षीण होनेसेही तृष्णा मनुष्यको सुखाकर शीघ्र मारडालतीहै । इसलिये तृपाभोगमें आन्तरीक्षजल शहत मिलाकर या तद्गुण विशिष्ट अन्य जल

पीना चाहिये । पृथ्वीमें गिराहुआ जल भी जिसमें कुछ कसीलापन और हलकापन, ठंडापन, सुगन्धि, सुरसता और अनभिष्यन्दता होती है वह आन्तरीक्ष जलके समानही होता है । जलको औटाकर वा शरादि पंचमूल का काथ करके मिश्री डालकर पीवै । खील का सत्तू मिश्री मिलाकर वा शहत और मन्थको आन्तरीक्ष जलमें घोलकर देवै ॥ अथवा जौकी वाद्य में ठंडा होनेपर शहत और चीनी मिलाकर देवै अथवा शालिचांवळ वा कोदों की पेया देवै अथवा औटेहुए दूध में शहत और चीनी डालकर उसके साथ भोजन करै अथवा पारावतादि पक्षियोंके मांसरसको घी में भूनकर बिना नमक और खटाईके सेवन करै अथवा तृण पंचमूल, मूज और पियालके काथके साथ जांगल मांसरस अच्छांतरह पक्व करके सेवन करै । अथवा लन्ही तृणपंचमूलादि में दूध औटाकर शहत और चीनी डालकर पीवै ॥

शतधौतघृतनाक्तःपयःपिवेत्शतितोयमवगाहामुद्गमगूरचणकजारसास्तुभृष्टाघृते देयाः॥मधुरैःसजीवनीयैःशीतैश्चसत्तिकैः शृतंशीरं । पानाभ्यजनसेकेण्विष्टंमधुशर्करायुक्तंतज्जं॥ वाघृतमिष्टपानाभ्यङ्गेपुनस्यमपिचस्यात् । नारीपयःसशर्करमुष्ट्या अपिनस्यमिधुरसः ॥

अर्थ—साँझर धुले हुए घीकी देह पर मालिश करके ठंडे जलसे स्नान करके दूध पीवै । मूज, मसूर और चनेके यूप को घी

में भूनकर देवै । अथवा मधुरगण, जीवनीय गण और शीतल तिक्तद्रव्योंके साथमें औटायाहुआ दूध शहत और चीनी मिलाहुआ पान, अभ्यंग और सेक में हितहै अथवा इसी दूधसे निकाला हुआ घी पान, अभ्यंग और नस्यमें हित होता है । चीनी मिलाकर स्त्रीका दूध, ऊंटनी का दूध; अथवा ईखका रस नस्य में हित है ॥

श्रीरेक्षुरसगुडोदकसितोपलाघैःसौद्रसीधुमाध्वीकैः । वृक्षाम्लमातुलङ्गैर्गण्डूपास्तालशोपघ्नाः ॥ जम्वाघ्रातकचदरीनडवेतसपञ्चपल्लवैश्चाम्लाः । हन्मुखशिरःप्रलेपाःसघृतामूर्च्छाभ्रमतृपणाः ॥ दाडिमदधित्थलोघ्रैःसाविदारीवीजपूरकैः । शिरसःप्रलेपोगौरामलकैर्घृतारनालायुतैश्चहितः ॥

अर्थ—दूध, ईखका रस, गुडोदक, (गुड़ का शरवत) , मिश्री का शर्बत, शहत, शीधु, माध्वीक, वृक्षाम्ल, विजौरा, इनके रसके कुहड़े तालुशोपको दूर करते हैं । जामन, अंबाडा, वेर, वेळ फल और पंचपल्लव इनके कल्कका घृत मिलाकर हृदय, मुख और सिर पर लेप करने से मूर्छा, भ्रम और तृषा नष्ट होजातीहै । अनार, खैर लोध, विदारी और विजौरा इनके कल्क का सिर पर लेप करनेसे अथवा कपूर और आंवलेको घी और कांजी में मिलाकर लेप करने से तृषा शान्त होजातीहै ।

शैवालपङ्कजलजैःसाम्लैःसघृतैश्चसक्तुभिल्लैः । मस्तवारनालकमलार्द्रवसनम-

णिहारसंस्पर्शाः ॥ शिशिराम्बुचन्दनाद्रा
स्तनतटपाणितलसंस्पर्शाः । क्षौमाद्रिवसना
नां वराङ्गनानां मियाणाञ्च ॥ हिमवदरी
पनसरित्सरोराम्बुजपवनेन्दुपादशिशिरा
णाम् । रम्पशिरोदकानां स्मरणञ्च क
थाश्चतृष्णाधन्यः ॥

अर्थ—शैवाल, काँचड़ और कमलका
लेप अथवा घी और खटाई मिलाकर सत्तू
फालेप तृप्ताको शान्त करता है । अथवा
दही का तोउं, काँजी, गीला वस्त्र, माणियों
के हारका स्पर्श करने से भी तृप्ताशान्त होजा
ती है । शीतल जलसे आर्द्र वा चन्दन लगी
हुई नववालाओंके स्तनों का और हाथोंका
स्पर्श करने से तृप्ता शान्त होजाती है । रेशमी
गीले वस्त्रोंको धारण करनेवाली मनोहारिणी
स्त्रियों का स्पर्श करने से भी तृप्ता शान्त
होती है । हिमालयकी शीतल गुहा, वन,
नदी, सरोवर, कमल, पवन, चन्द्रमाकी शी-
तल किरण, शिशिर ऋतु और रमणीय शी-
तल जलों के स्मरण करने से भी तृप्ता
शान्त होती है ।

वातघ्नमन्नपानं मृदुलघुशतिञ्च वाततृष्णा
याः । क्षतकासनुतृप्तक्षीरमूर्ध्वा वातक्षय
तृप्ता स्यात् । स्याज्जीवनीयसिद्धक्षीरघृत
वातपित्तोजतपै । पैत्तद्राक्षचन्दनखजूर
शीरमधुपुततोयम् ॥ लोहितकशालित
ण्डुलखजूरपरुषकात्पलद्राक्षाः । मधुपवक
लोष्ठमेव च जले घृतं शीतं लेपयम् । लोहितश
लितन्दुलप्रस्थः सलोधमधुकाञ्जनोत्पलः
पद्माम्लोष्णमधुजलसमायुतो मृण्मयेपयः

अर्थ—वातनाशक, मृदु, लघु और शी
तल अन्नपान वातजतृष्णाका नाश करने
वाला होता है । क्षत कासको नाश करने
वाले घी को पीकर ऊपरसे दूध पी लेने से
वातजतृप्ता क्षय होजाती है । वातापित्तकी तृप्ता
में जीवनीयगणोक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत और
दूध हितकारक है । पित्तकी तृप्ता में दाख,
चन्दन, खजूर, खस इनके शीतल स्वाद्य
में शहत मिलाकर पीना चाहिये । टालशाली
चाँवल, खजूर, फालसा, नील कमल
दाख इनको पीस कर जल में छान
ले और एक मिट्टी के डेले को अग्नि में
अच्छी तरह गरम कर के उस में बुझादे
फिर ठंडा होने पर शहत मिलाकर पीवें ।
टालशाली चाँवल एक प्रस्थ, लोध, मुलहटी
रसीत और नीलकमल इनको पीसकर एक
मिट्टी के पात्र में छान ले और गरम मिट्टी
का डेला उस में बुझा कर ठंडा होने पर
शहत मिलाकर पीवें ।

वटमातुलङ्गवेतसपल्लवकुशकाशमूलयष्ट
याइवैः ॥ सिद्धेऽम्भस्याग्निनिर्भाः कृष्ण
मृदः कृष्णासिकतावा । तप्तानि नवकपो
लान्यथ चानिर्वाप्य पाययेताच्छम् । सपा
कशर्करायामृतयल्लघुदकं तृपहन्ति । क्षीर
वतां मधुराणां शीतानां शकरामधुविमिश्राः
शीतकपायामृदभृष्टसंयुताः पित्ततृष्णाधनाः

अर्थ—वट, विजौरा, वेतके पत्ते, कुश,
कांसकी जड़, मुलहटी, इनको डालकर सिद्ध
किये हुए जल में काळी मिट्टी वा काळी
बादल वा नवीन खीपड़ोंको अग्नि के समान

यन्वास्तुतालशोपेपिवेद्वृतवृष्यमनुमद्यम्
सर्पिर्भृष्टक्षरिमांसरसांश्चायलःस्निग्धा
न् । अतिरूक्षदुर्बलानांतर्पशमयेन्नृणाभि
हाथुपयः ॥ छागोवाघृतभृष्टःशीतोमधु
रोरसोदृढः । स्निग्धेऽन्नेभुक्त्यातृष्णा
स्यात्तांगुडाम्बुनाशमयेत् ॥ तर्पमूर्च्छाभि
हतस्यरक्तपिचापैर्हह्यात् ।

अर्थ—तालशोप में तृपायुक्त रोगी जो बलवान् हो तौ घृष्य घृतपान करै ऊपरसे मद्य का अनुपान करै । तथा जो रोगी निर्वल हो तौ दूध और घी में तले हुए स्निग्ध मांसरस देवै । अत्यन्त रूक्ष और दुर्बल मनुष्यों की तृपा दूध से शीघ्रही शान्त होजाती है अथवा बकरे का मांसरस सेवन करने से भी तृपा शान्त होजाती है । स्निग्ध अन्नके भोजन करनेसे जो तृपा उत्पन्न होतीहै वह गुडका शर्बत पीने से मिटतीहै । मूर्च्छारोगीकी तृपा रक्त पित्तनाशक औषधियोंसे दूर होतीहै ।

शीतोष्णजलकीविधि ।

छर्द्याम्लदाहमूर्च्छातमःकृममदात्यया
स्रविपपिचे ॥ शस्तस्वभावशीतशृतशी
तंसन्निपातेऽम्भः । हिक्काश्वासनवज्वर-
पीनसघृतपीतपार्श्वगलरोगे ॥ कफवो
तक्रुतेस्त्यानेसद्यःशुद्धेचहितमुष्णम् । पा
एहृदरपीनसमेहगुल्ममन्दानिलातिसारे
षु ॥ छीहनिचयेतोयमशुभंकाममशक्ये
पिवेदल्पम् ॥

अर्थ—यमन, अम्लपित्त, दाह, मूर्च्छा, तम, हान्ति, मरान्यय, रक्तपित्त और विपरो-

गों में स्वभावशीतल जल दितकर होताहै और सन्निपातमें औटाकर टंडाकिया हुआ जल हितावह है ॥ हिचकी, श्वास, नदीनज्वर, पीनस, घृतपानजरोग, पार्श्ववेदना, कफवातरोग, कफका गाढापन और संशोधन के पीछे तत्कालही उष्णजल हित होता है ॥ पांडुरोग, उदर रोग, पीनस, प्रमेह गुल्मरोग, मन्दाग्नि, अतिसार और छीहा इन में जल पीना अच्छा नहीं है । जो जल पिये बिना काम न चउसके, तौ बहुत थोडा पीना चाहिये ।

पूर्वामयातुरःसंदीनस्तृष्णादितोगलंकां
क्षन् ॥ नलभेतसचेन्मरणमाश्ववाप्नुया
दीर्घरोगंवा । तस्माद्दान्याम्युपिवेतृष्य
नरोगीसशर्कराक्षौद्रम् ॥ यद्वातस्यान्य
त्स्यात्सात्सम्यंरोगस्यतच्चेष्टम् । तस्यांवि
निष्टत्तायांतज्जन्योपद्रवःसुखज्जेतुम् ॥
तस्मात्तृष्णापूर्वजयेद्वहुभ्योऽपिरोगेभ्यः

अर्थ—रोग से पीडित तृपार्चमनुष्य यदि पानी चाहै और उसे न मिलै तौ वह शीघ्रही मरजाता है वा उस के कोई बंडारोग होजाता है, इसलिये उसे धनिया के जल शहत और चीनी डालकर पान करावै अथवा रोग के अनुसार और कोई साम्य द्रव्य हो तौ उसे देवै । तृपा के शान्त होने पर उस से उत्पन्न हुए अन्य उपद्रव भी सुखपूर्वक दूर होजाते हैं । इसलिये सब रोगों से पहिले तृपा का उपाय करना उचित है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

हेतूयथाग्निपवनौकुरुतःसोपद्रवांचपञ्चा
नां । तृष्णानांपृथगाकृतिरसाध्यतासा
ध्यतासाधनचोक्तम् ॥

अर्थ—इस तृपा चिकित्सित अध्याय में
पांचों प्रकार की तृपा के हेतु अग्नि और
वायु हैं और येही तृपाके साथ उपद्रवों को
भी उत्पन्न करते हैं । इस अध्याय में तृ-
पाकी पृथक् २ आकृति, साध्यता, असाध्य
ता तथा साधन के उपाय वर्णन कियेगये हैं ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितयाअग्निवेशाविराचि
तायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचि
कित्सितस्थानेतृपाचिकित्सितं नाम
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

—:~*~:—

पंचविंशोऽध्यायः

अथातोविपचिकित्सितं व्याख्यास्याम
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम विप चिकित्सित नामक अध्याय
की व्याख्या करेंगे ॥

विप की उत्पत्ति ।

प्रागुत्पत्तिगुणान्योन्येवानुलिङ्गान्युप
क्रमान् ॥ विपस्यमुच्यतःसम्पगाग्निवेशनि
बोधये ॥ अमृतार्थसमुद्रेतुमध्यमानेमुरा
मुरैः । जग्रेप्रागमृतोत्पत्तेःपुरुषोपोरदर्श
नः ॥ दीप्तनेजाधतुर्दष्टोदरिक्तेनोऽनले
क्षणः । जगद्दृष्ट्वाविषण्णन्तांविपंसन्तुवि
पादनात् ॥

अर्थ—आत्रेय बोले कि हे अग्निवेश !

मैं तेरे साम्हने विपकी उत्पत्ति, गुण, योनि
वेग, लक्षण और चिकित्सा को वर्णन करता
हूँ तू सावधानी से सुन । जब देवता और
राक्षसों ने मिलकर अमृत के डिये समुद्र
को मथा था तब अमृत के उत्पन्न होने से
पहिले एक ऐसा पुरुष निकला जिसका बड़ा
भयंकर रूप था, उसमें बड़ा तेज था, चार
डाढ़ थीं, हरे केश थे और उसकी आँखें
अग्निके समान थीं, उस पुरुष को देखकर
सम्पूर्ण जगत् विषण्ण अर्थात् विपाद युक्त
होगया, इस विपाद के कारणही से उसको
विप कहने लग गये ॥

विपकी योन्यादि संख्या ।

जङ्गमस्थावरायांतयोर्नात्रह्यान्ययोनयत्
तदभ्युसम्भवंतस्माद्द्विद्विधंपावकोपमम्
अष्टवेगं दशगुणं चतुर्विंशत्युपक्रमम् ।

अर्थ—ब्रह्माने इस विप को स्थावर और
जंगम दो योनियों में स्थापित कर दिया
इसी हेतु से अग्निके समान तत्क्षिण यह ज-
लसे उत्पन्न हुआ विपदो प्रकारका होता है ।
विप में आठ वेग, दस गुण और चौबीस
प्रकारकी चिकित्सा होती है ॥

तदूर्पास्यभ्युपानित्वात्संलुदं गुडयद्गतम्
सर्पत्यग्नुधरापायेतदगस्त्योद्दिनास्तिच ।
प्रयातिगन्दर्वापित्वाविपंतस्माद्दनात्यये ।

अर्थ—विपकी योनि जल है इससे यह
वर्षाकाल में तेजताको प्राप्त होकर गुडकी
तरह पतला पड़ जाता है और पृथ्वी में यह
ने लगता है तथा वर्षा के अन्त में जब अ-
गस्त्य का उदय होता है तब विप नष्ट हो-

जाता है और इसी हेतु में वर्षा के पीछे वि-
प मन्दवर्षि पडजाता है ।

जंगम विपकी योनि ।

सर्पाः कीटोन्दुरालतावृधिकागृहगोधिकाः
जलौकामत्स्यमण्डूकाः शलभाः सङ्ककण्ट-
काः । श्वसिंह्याग्रगोमायुतरक्षुनकुला-
दयः ॥ दंष्ट्रिणो भविष्यते पादंष्ट्रोत्थं जङ्ग-
ममनम् ।

अर्थ—सर्प, कीट, चूहा, मकड़ी, चील,
छपकली, जोक, मछली, मेंढक, चींटी, किर-
केंटा, कुत्ता, सिंह, व्याघ्र, सिरकटा, तरक्षु,
और नकुल आदि ये दंष्ट्री अर्थात् दांत
वाले होते हैं इनकी डाढ़ लगने से जो विप
उत्पन्न होता है उसे जंगम विप कहते हैं ।

स्थावर विपका वर्णन ।

मुस्तकं पौष्करं कौश्वत्सना भवलाहकम् ।
कर्कटं कालकूटेन्द्रकरवीरकसञ्ज्ञकम् ॥ गा-
लवेन्द्रायुषतैलमेघकं कुशपुष्पकम् ॥ रो-
हिषपुण्डरीकाक्षलाङ्गलव्यञ्जनाभकम् ।
संज्ञौचमर्कटं शृगिषिपहालाहलं तथा । एव-
मादीनि चान्यानि मूलजानि स्थिराणि च ।
अर्थ—मुस्तक, पौष्कर, कौच, वत्सनाभ
बलाहक, कर्कट, कालकूटेन्द्र, करवीरक,
गालव, इन्द्रायुध, तेल, मेघक, कुशपुष्पक,
रोहिष, पुण्डरीकाक्ष, लांगलवी, अंजनाभक
संकोच, मर्कट, शृगविष, हालाहल तथा ऐसे
ही और भी मूलज और धातुज विपहेति हैं

गरविष का वर्णन ।

गरगं योगजं चान्यद्गरसंज्ञं भृगुदग्धम् ॥
फालान्तरविपाकित्वा जतदाधुहरत्यमृ-

अर्थ—विपके संयोगसे उत्पन्न हुआ
संयोगी विप होता है इसे गरविष कहते हैं
यह रोगोंको उत्पन्न करता है इसका विपाक
बहुत दिनके पीछे होता है इससे वह प्राणों
को शीघ्र नष्ट नहीं करता है ।

जंगम विप के कार्य ।

निद्रांतन्द्रां वलमंदाहंसपाकं लोमहर्षणम् ॥
शोफचैवातिसारश्च जनयेज्जंगमविषम् ॥

अर्थ—निद्रा, तन्द्रा, क्षान्ति, दाह, पाक
रोमहर्षण, सूजन और अतिसार ये सब
जंगम विपके कर्म हैं ॥

स्थावर विपके कर्म ।

स्थावरंतुज्वरं हिक्कादन्तहर्षगलग्रहम् ॥
फेनवम्यरुचिश्वासमूर्च्छाश्च जनयेद्विषम् ।

अर्थ—ज्वर, हिक्का, दन्तहर्ष, गलग्रह,
शाग, वमन, अरुचि, श्वास और मूर्च्छा,
इनको स्थावरविप उत्पन्न करता है ॥

दोनों विपोंका परस्पर विरोध ।

जंगमं स्यादधोभागमूर्द्धभागंतु मूलजम् ॥
तस्मादंष्ट्रिषिपमौलं हन्ति मौलं च दंष्ट्रिजम् ।

अर्थ—जंगमविप अधोगामी होता है और
स्थावर, विप ऊर्ध्वगामी होता है, इससे जंग-
म विप स्थावरविपको और स्थावर विप जं-
गमविपको मारता है ।

सातों वेगोंके कर्म ।

तृणमोहदन्तहर्षमसेकवमथुलमाभवन्त्या-
दौ। वेगे रसभेदोपादसूक्ष्मभेदोपात् द्वितीये च
वैवर्ण्यभ्रमभेदपथुमूर्च्छाजृम्भांगचिमिचिमा-
तमकाः ॥ दुष्टपिशितातृतीयगण्डलकण्ड-
व्यधुकोटाः । बातादिजाश्चतुर्थे छर्दि

विष को त्रिदोषानुगामित्व ।

दोषस्थानप्रकृतीः प्राप्यान्यतमह्युदीरय
ति ॥ स्याद्वातिकस्य वातस्थाने कफपित्त
लिंगमीपत्तु । तृष्णार्चिमोहगलग्र
हछर्दिफेनादिपित्ताशयिस्थितपैत्तिकस्य
कफवातयोर्विपतद्वत् । तृत्कासज्वरवम
थुक्लमदाहतमोऽतिसारादि ॥ कफदेश
गतञ्चकफस्य दर्शयेद्वातपित्तयोश्चैतत् ॥
लिंगंश्वासगलग्रहकण्डूलालावमथ्वादि ॥
दूषीविपंतुशोणितदुष्टकिटिभकोठादिरक्त
लिंगञ्च ॥ विषमेकैकदोषसन्दूष्यहरत्यसू
नेवम् ।

अर्थ—विष दोष के स्थान और प्रकृति
को प्राप्त करके एक दोषको उदीर्ण कर
देताहै अर्थात् जौनसा दोष अधिक होता
है उस की स्थान और प्रकृति को प्राप्तकर
के उसी दोषको बढ़ाताहै जैसे वात प्रकृति
वाले मनुष्यके वातस्थानमें जाकर वातज
तृष्णा, मूर्च्छा, अराचि, मोह, गलग्रह, छर्दि
और फेनादि उत्पन्न करताहै और उस सम-
य कफपित्तके लक्षण कम पाये जाते हैं ।
पित्त प्रकृति वालेके पित्ताशय में जाकर
पित्तज तृप्ता, खांसी, ज्वर, वमन क्लान्ति,
दाह, अन्धकार और अतिसारादि उत्पन्न
करता है तथा कफ वात के लक्षण कम
पाये जाते हैं । इसी तरह विषके कफ स्थान
में जाने से कफजन्य श्वास, गलग्रह, कण्डू
लालालाव और वमथु आदि होते हैं तथा
वातपित्तके लक्षण कम पाये जाते हैं ॥
तथा दूषीविष रक्तको दूषित करके किटिभ,

पित्ती आदि रक्तज उपद्रवोंको करताहै ।
इसतरह विष एक-एक दोष को दूषित
करके प्राणों को नष्ट करदेताहै ॥

विष से मरने के हेतु ॥

क्षरति विपते जसासृक् तत्त्वानि निरुद्ध च मा
रयति जन्तून् । पीतं मृतस्य हृदि तिष्ठति दष्ट
विद्ययोर्दश देशे स्यात् ॥

अर्थ—विषके तेजसे रक्त क्षरित होकर
अर्थात् झडकर रोमके छिद्रोंको रोककर
मनुष्योंको मार डालताहै । पान किया हु-
आ विष मृतकके हृदय में स्थित होजाताहै
और काटे हुए वा विषसे बुझे तीर आदि
से घायल हुए मनुष्य के विष दश स्थान
में स्थित होताहै ॥

विषद्वारा मृत्युलक्षण ।

नीलोष्णान्तशैथिल्यं कशपतनांगभंगविश्ले-
षाः । शिशिरैर्नलोमहर्षो नाभिहेतुदण्ड
राजीच ॥ क्षतजं क्षताच्च नायात्युक्तान्ये
तानि मरणलिंगानि ॥

अर्थ—ओष्ठोंपर नीलापन दातोंमें शिथि-
लता, बालोंका गिरना, अंग भंग, अंगाविक्षे-
प, शीतल वस्तु से रोमाञ्च न होना, लक-
डी से चोट मारनेपर शरीर पर दाग न प-
डना, तथा घाव से रुधिर न निकलना ये
सब विष द्वारा मरने के लक्षण हैं ॥

विष में चिकित्सा भेद ।

एभ्योऽन्यथा चिकित्स्यास्ते पांशोपक्रमा
नृशृणुमे ॥ मन्त्रारिष्टोत्कर्त्तनी नृष्पीडन
चूषणाग्निपरिपेकाः । अवगाहनरक्तमो-
क्षणवमनाविरेकोपधानानि हृदयावरणा-

अङ्गननस्यधूमलेहौपधमशमनानिप्रतिसा
रणंप्रतिविपसज्ञासंस्थापनलेपः ॥ मृतस
जीवनमेवचविंशतिरेतेचतुर्भिरभ्यधिकाः
स्युरूपक्रमायथायत्रयोज्याःशृणुतयातान्
अर्थ—ऊपर कहे हुए लक्षणों से विपरीत
लक्षण वाला चिकित्साके योग्य होता है
अथ हम उनकी चिकित्सा का वर्णन करते
हैं ॥ मन्त्र, अरिष्ट [दृष्ट स्थानका बाधना]
उत्कर्तन (दृष्टका किसी पैनी छुरी आदि
से कतरना वा खुरचना), निष्पीडन
(भींचकर मवाद निकालना), चूर्ण
[दंश स्थान का चूमकर धूक देना] अग्नि
कर्म [जलादेना], परिपेक, अवगाहन,
रक्तमोक्षण, वमन, विरेचन, उपधान, हृदया-
वरण, अंजन, नस्य, धूम, अवलेह, औषध
प्रशमन, प्रतिसारण, प्रतिविप, संज्ञा स्था-
पन, लेप और मृत संजीवन । ये चौबीस
प्रकारकी चिकित्सा हैं । जहां जहां ऊपर
कही हुई चिकित्साओं का प्रयोग किया
जाताहै उसका वर्णन करतेहैं ॥

विप में बन्धनादि विधि ।

दंशात्तुविपदष्टस्यानिमृतवेणिकाभिभपक्र
वद्धा । निष्पीडयेद्वशं दंशमुदरेन्मर्मवर्जम् ।
वातदंशवाचूपेन्मुखेनयवचूर्णपांशूपूर्णेन
प्रच्छन्नेवधजलौकःशृंगैःस्त्राव्यंततोरक्तम्

अर्थ—काठे हुये मनुष्य के दंश स्थान
से जो विप न निकलाहो और यदि वह
दंश हाथ वा पांव ऐसी जगह में हो जो
बंधने के योग्य होतो जहां तक विप
फैल गयाहो वहांतक ऊपर और नीचे वेणि

का नामक बंधन से बांधकर चारों ओर से
खूब भींचे और फिर दंशस्थानको किसी पै-
नी छुरीसे खुरच डाले परन्तु मर्मस्थान परऐसा
न करे । जो वह दंशस्थान बांधने वा काटने
योग्य नहो तौ मुख में जौ का चून वा धूल
भरकर दंशस्थान को चूसै, फिर उसे चीरकर
पछना लगाकर वा वेधकर वा सींगियाजोका
वा सींगी लगाकर रुधिर को निकालडालै ।

विपदूषितरक्तका परिणाम ।

रक्तेविपप्रदुष्टेदुष्येत्प्रकृतिःततस्त्यजेत्प्रा
णान् ॥ तस्मात्प्रघर्षणैरगृह्णवर्तमानं
प्रवर्त्येत्स्यात् ।

अर्थ—विपसे रक्तके दूषित होनेपर प्रकृ-
ति दूषित होजातीहै और प्रकृतिके दूषित
होनेपर प्राण जाते रहतेहैं, अतएव जो ऊपर
कहीहुई रीतोंसे भी रक्त न निकला होतौ
निम्नलिखित घर्षणों का प्रयोग करने से रक्त
प्रवृत्त होजाताहै अर्थात् निकलने लगताहै ॥

घर्षणप्रयोग ॥

त्रिकुट्टुहधूमरजनीपञ्चलवणाःसवार्ता-
काः ॥ घर्षणमातिप्रवृत्तेवटादिभिःशीत-
लैलेपः ॥

अर्थ—त्रिकुट्टा, घरकाधूमसा, हलदी,
पांचों नमक और बेंगन इनसबको पीसकर
काटने की जगहपर धीरे २ रिगडनेसे बन्द
हुआ रुधिर बहने लगताहै, जो रुधिर अत्यं-
न्त बहने लगे तौ बटादि शीतल घृशोंकी
छालको पीसकर लेप करदेवै ॥

विपके फैलने में रक्तको प्रधानता ॥
रक्तादिविपाधानंवायुरिवाग्नेःप्रदं हमैकैः

स्तत् ॥ शीतैःस्कन्दतितस्मिन्स्फुन्नेव्ययं
यातिविषवेगः॥

अर्थ—रक्तही विपका आधान है जैसे
पवनके लगनेसे अग्नि घटतीहै इसीतरह रु-
धिरके संसर्ग से विप बढ़ताहै । शीतल लेप
से रक्तके जमजानेपर विप फैल नहीं सकताहै।
कारण यहहै कि रुधिर दिन रात सब देहमें
धूमताहै तौ विप भी उसके साथमें फैलता
चलाजाता है और जब रुधिरही वहनेसे
बन्द होगया तौ विप कैसे फैलसक्ताहै ॥

विपवेगेकलक्षण ॥

विपवेगाःमदमूर्च्छाविपादहृदयद्रवाःप्रव-
र्तन्ते ॥ शीतैर्निर्वर्तयेचान्यूज्यथलोम
हर्षःस्यात्॥

अर्थ—विपके वेगसे मद, मूर्च्छा, विपाद
और हृदयमें कम्पन होती हैं, शीतल उपचार
से ये उपद्रव शान्त होजाते हैं तथा पंखेकी
दवा करनेसे रोमाञ्चभी खड़े होजातेहैं ॥
तक्षिरिवमूलच्छेदादंघ्रच्छेदान्नष्टाद्धिष्ठुपया
तिविषम् ॥ अचूणगमानयननञ्जलस्यसे
तुर्यधारिष्ठा । त्वद्मांसगतोदाहोदहति
विपर्रावणंहरतिरक्तात् ॥

अर्थ—जड़के काटनेसे जैसे वृक्ष नहीं
बढ़ता है, उसीतरह दंशस्थान के छेदन
करनेसे विप नहीं बढ़ने पाताहै । दंश-
स्थानके चूसनेसे विप निकलजाताहै
और जैसे जलपर पुल बांधनेसे जल का
वेग रुकजाता है उसीतरह दंशस्थान पर
रूपर नीचे जोर से बांधे देनेपर विपका वेग
रुकजाता है ॥ जब विप त्वचा और मांस

में पहुंच जाताहै उस समय अग्नि से दंश
स्थानको दग्ध करनाहितहै जब विप रुधिर
में पहुंच जाताहै उस समयरुधिरको निकाळ
देनेसे विप क्षीण होता है

प्रथमद्वितीयवेगमेंचिकित्सा
पीतंवमनैःसद्योहरंद्भिरेकैर्द्वितीयेतु ॥ आ
दौहृदयंरक्ष्यतस्यावरणंपिवेद्यथालाभम्
मज्जानंमधुघृतगैरिकमथगोमयरसंचा ॥
तद्वंसपक्षमथवाकाकानिष्पीड्यतद्रसंवमनं
छागादीनांवातुवभरममृदंवापिवेदाश्नु ॥

अर्थ—पिया हुआ विप वमन कराने
से तत्काल निकलजाताहै ॥ द्वितीय वेग में
पहुंचनेपर विरेचन कराना उत्तमहै ॥ पीत
विपमें सबसे पहिले हृदयकी रक्षा करना
उचित है ॥ विप द्वारा हृदयका आवरण
होनेपर मज्जा, शहत, घी, गेरू, गोबरका
रस, हंस वा फौए का मांसरस पान कराके
वमन करावै ॥ अथवा वंकरेका रुधिर अ-
थवा मिट्टी वा भस्म इनमें से जो जो मिल
सके शीघ्रपान करावै किसी २ पुस्तक में
तद्वंसपक्षादि, की जगह ' इक्षुसुपक्कनथ
वाकाकानिष्पीड्यतद्रसंवलदम्, पाठ भी है)

तृतीयादि वेगों में चिकित्सा
सारोगदस्तृवीयेशोफहैरैलखनंसमध्वम्बु ॥
गोमयरसदचतुर्येवेगेसकपित्थमधुसर्पिः ।
काकाण्डाशरीपाभ्यांस्वरसेनाश्च्योतन
मज्जनेनस्यम् ॥ स्यात्पञ्चमेऽथषष्ठेसं-
शयाःस्थापनंकार्यम् ॥ गोपित्तयुतारज
नीमज्जिगुग्गागिरचपिप्पलापानम् ॥

अर्थ—विपके तीसरे वेग में क्षार गद,

तकटमीकरझौरसोघ्नीसिन्धुकारिकार-
जनी ॥ सुरसरसाञ्जनैरिक्कमञ्जिष्ठानि
म्बुनिर्यासाः । वंशत्यगन्धगन्धाहिंशुदधि
त्याम्लवेतसंलाक्षा ॥ मधुमधुकसोमराजी
वचारुहारीचनाचगवाम् । अगदोऽयंवै
श्रवणायाख्यातः त्र्यम्बकेणपष्ट्यङ्गः ॥
अप्रतिहतप्रभावः ख्यातोमहागन्धहस्तीति
पित्तेनगवांपोष्येगुलिकाः कार्श्यास्तुपुष्पयो
गेन । पानाञ्जनमलेपैः प्रसाधयेत्सर्वकर्मा
णिपैल्लयंकण्डूतिमिरंरात्र्यन्धकाचमर्बुदं
पटलम् ॥ हन्ति सततं प्रयोगाद्वितमिषपथ्या
शिनांपुंसाम् । विषमज्जरानजीर्णदंष्ट्रं
विमूचिक्वांपामाम् ॥ कुण्टिकिटिभंश्चित्रं
चर्चिकांचोपहन्तिनृणाम् । विषंमूपिकल
तानांसर्वेषांपक्षगानाञ्च ॥ आशुविषं
शयतिसमूलमथकन्दजं सर्वम् । एतेनलि
प्तगात्रः सर्पाद्यृहणीतभक्षयेचविषम् ॥
कालातीतोऽपिनरोजीवतिकिञ्चनिरा
तङ्गः । आरुद्धेगुदलेपोयोनिलेपश्चमृद्ग
र्भाणाम् । मूर्द्धातिपुचललाटेमलेपमाहुः
प्रधानतमम् ॥ भेरीमृदङ्गपटहाशङ्खाण्य
शुनातथाध्वजपताकाः ॥ लिप्तानिविष
निस्त्यैमध्वनयेद्दर्शयेन्मतिमान् । यत्रच
सन्निहितोऽयं न तत्र बालग्रहानखाखेटाः
न च कार्पणवेतालाघहन्तिनाथर्वणामन्त्राः
सर्वग्रहानतत्रप्रभवन्तिनचाग्निशस्त्रपुचौ
राः ॥ लक्ष्मीश्चतत्रभजतेतत्रमहागन्धह
स्त्यस्ति । पिण्यमाण्डमञ्चात्रसिद्धमन्त्र
हृदीरधेत् ॥ यममाताजयानामविजयोना
मपेपिता । शोऽहंजयोजयापुत्रोविजयो

ऽथजयामिच ॥ नमःपुरुषसिंहायविष्णवे
विश्वकर्मेण । सनातनायकृष्णायभवाय
विभवायच ॥ तेजोऽष्टपाकपेः साक्षात्तेजो
ग्रहोन्द्रयोर्यमे । यथाहं नाभिजानामि वामु
देवपराजयम् ॥ मातुश्चपाणिग्रहणंसमुद्र
स्यचशोपणम् । अनेन सत्पचाक्येनसिद्ध
तामगदोद्वयम् ॥ हिलिमिलिसंस्पृष्टैरस
सर्वभेषजेतुमेस्वाहा ॥

अर्थ—तेजपात, अगर, मोथा, इलायची
पांच प्रकारके निर्यास [राठ, गूगळ, अ-
फीम सिलहक और छोवान] चन्दन, अस्-
वरग, दालचीनी, जटामांसी, नीलकमल,
नेत्रवाला, हरेणुका, खस, व्याघ्रनखी, देवदारु
नागकेसर, कुकुम, गंधतृण, कूठ, प्रियंगु,
तगर, सिरस के फल, झूल, पत्ते जड और
छाल, त्रिकुटा, हरिताल, मन्सिल, कालाजीरा,
सफेद कोयल, कटमी, दोप्रकार के कंज,
सरसों, सम्हाळ, हलदी, तुलसी, रसौत,
गेरू, मजीठ, नीमका निर्यास, वांस्काछाल,
असंगंध, हींग, कैथ अमलवेत, लाख, म-
हुआ, मुलहठी, सोंगराजी, वच, दूब, गोरो
चन । यह पष्ट्यंग औषध त्र्यम्बक ने
वैश्रवण से कही थी । इसका प्रभाव अ-
नित्य है । इसे महागंधहस्ती कहते हैं ।
इन साठ औषधियोंको इकट्ठी करके गौ
के पित्तके साथ पुष्प नक्षत्र में गोखिया
बनावै । इन गोखियोंका पान, अंजन और
लेप द्वारा प्रशोत करने से सम्पूर्ण कार्योंकी
सिद्धि होती है हितकारी अल्प और पथ्य
भोजन करनेवाले मनुष्य के निरन्तर सेवन

करने से इस औषधसे पैल, खुजली, तिमिर, रतौंध, काच, अर्बुद और पटलरोग दूर हो जाते हैं । तथा विषमज्वर, अजीर्ण, दाद, विसृचिका, पामा, कौढ, किटिभ, शिवत्रकुष्ठ और विचर्चिका जाते रहते हैं । मूषकविष, मकड़ी का विष, सब प्रकारके सर्पों का विष, मूलजविष और कन्दजविष सब शी-
घ्रही दूर होजातेहैं । इस औषध का शरीर पर लेप करके मनुष्य सर्प को पकडसक्ता है, विष खा सकता है । कालातीत मनुष्य भी इस औषधके धारण करने से निरातंक रहसक्ता है । इस औषध का आनाहरोग, गुदरोग, मूढगर्भा स्त्रीकी योनि, मूर्धा, तथा अर्तिरोगमें ललाट इन स्थानोंपर लेप करना अत्यन्त उत्तम है । जो रोगी विष से मूर्च्छित होगया हो उस के कानपर भेरी, मूढगर्भा और ढोलक पर इस औषध का लेप करके बंजावे । तथा इसी औषध का लेप कर्क के छत्र, ध्वजा, और पताका विपरीगी को दिखावे । जहां यह औषध होती है वहां बालग्रह, राक्षस, कर्मण, वेताल, और अ-
श्वर्षणोक्त मंत्र नहीं चल सकते हैं । सम्पूर्ण ग्रह, अग्नि शस्त्र, राजा और चोर अपनी दुश्चेष्टा नहीं करसकते हैं । जहां यह औ-
षध होती है वहां लक्ष्मी निवास करती है । इस औषध को पीसते समय इस मंत्रका पाठ करना चाहिये, यथा—“मम माता जया नाम विजयो नाम मे पिता । सोऽहं जयो जयापुत्रो विजयोऽथ जयामिच । नमः मुख्य सिंहाय विष्णवे विश्वरूपेणे । सनात-

नाय कृष्णाय भवाय विभवायच । तेजो वृ-
पाकपेः साक्षात् तेजो ब्रह्मेन्द्रयोर्यमे । यथाहं
नाभि जानामि वामुदेव पराजयम् । मातुश्च
पाणिग्रहणं समुद्रस्यच शोपणम् । अनेन
सत्यवाक्येन सिद्धतामगदोऽध्ययम् । हिल
मिलि संस्पृष्टेरक्ष सर्वभेषजतुमे स्वाहा, ॥
यह सिद्ध मंत्र है ॥

विपरीगनाशक अन्यप्रयोग ।

ऋषभकजीवकभार्गीमधुकोत्पलधान्यके
सगजाज्यः ॥ ससितगिरिकोलमध्याः
पेयाःश्वासज्वरादिहराः । हिंशुचकृष्णा
युक्तंकपित्थरसमग्नूलवणंच । समधुसि-
तेपातव्योज्वरहिकाश्वासकांसघ्नैः ॥
लेहःकोलास्थ्यज्जनलाजोत्पलमधुघृतैर्व-
म्याम् । घृहतीद्वयादकीपत्रधूमवर्चिस्तु
हिकाघ्नी ॥ शिखिर्वह्वलाकास्थीनिस
र्पपाश्वन्दनेचघृतयुक्तः । धूमोऽगृहशयना
सनयस्त्रादिपुशस्यतेविपनुत् ॥ घृतयुक्ते
नतकुण्डेभुजगपतिशिरःशिरीषपुष्पंच ।
धूमागदःस्मृतोऽयंसर्वविपन्नःश्वयधुहृच्च
जतुसेव्यपत्रगुग्गुलुभल्लातककुरुभपुष्पस-
र्जरसाः । श्वेताएवधूमउरगाखुकीटवस्त्र
कृगिनुदग्न्यः ।

अर्थ—ऋषभक, जीवक, भाडंगी, मुलहटी,
नीलकमल, धनिया, केसर, कालाजीरा, चीनी
गेरू, और वेरकी गुठली की मांगी इनको
पान करने से श्वास और ज्वरादिक दूर हो-
जाते हैं । हींग, पीपल, कैथका रस, संचल
नमक इनका शहत और चीनी मिलाकर
गटन करनेसे ज्वर, हिचकी, श्वास और खां-

भेद होता है । इसको मुख में धारण करने से मुख तालु और ओष्ठों में चिमचिमाहट, जिह्वा में शूल, जड़ता और विवर्णता, दन्त-दर्प, हनुस्तम्भ, मुखदाह लालास्राव और कंठ विकार होजाते हैं । विषयुक्त अन्नपान के आमाशयमें पहुँचने पर विवर्णता, पसीने धंगसाद और उत्फेद होता है, दृष्टिनाश तथा हृदयविरोध भी होता है और देह पर सैकड़ों विन्दुके समान फुत्सियां होजाती हैं । विषयुक्त अन्न के पकाशयमें पहुँचने पर मूर्च्छा, मद, मोह, दाह और वलनाश होता है । विषके उदरमें स्थित होजाने से तन्द्रा, कृशता और पांडुरोग होते हैं ।

दन्तपयनस्य कूचः विशीर्यते हि दन्तोष्ठमां सशोधश्च ॥ केशच्युतिः शिरोग्रन्थपश्च सविपेशिरोऽभ्यङ्गे । दुष्टेऽङ्गनेऽक्षिदाहः सात्राद्युपदेहशोधोरागाश्च ॥

अर्थ—विषयुक्त दन्तधावन की कूची को दांतोंपर फेरनेसे मसूडे और होठों पर सूजन होजाती है, दांतनकी कूची विशीर्ण होजाती है । विषयुक्त द्रव्यका शिर पर अभ्यंग करनेसे घाल गिर पड़ते हैं और शिर पर फुत्सियां होजाती हैं । अंजन में विष होनेसे आंखों में दाह, स्राव, उपदेह, सोध और ललाई होती है ।

आघिरादौकोष्ठः स्पृश्यैस्त्वग्दुप्यते दुष्टैः ॥ स्नानाभ्यङ्गेत्सादनवस्त्रालङ्कारकैर्दुष्टैः ॥ कङ्घाचिलोमहर्षाः कोष्ठपिडकाचिमिचि माशोधाः । एतेकरपरणदाहतोदकलम विकाराश्च ॥ भूपादुकाश्वगनकेतुर्पश

यनासनेर्दुष्टैः । माल्यमगन्धम्लायतिश्चिरसोऽस्कोयलोमहर्षकरम् ॥ स्तम्भयति खानिदर्शनमुपहान्तिचनासिकाधूमः ॥ कृपतडागादिजलदुर्गन्धसकलपञ्चिवर्णश्च ॥ पीतश्वयधुकोटान्पिडकाश्च करोति मरणं च आदावामाशयगेवमनस्त्वक्स्थप्रदेहसंकादि ॥ कुर्याद्विपक्वचित्सांदोषवलश्चैव हि स मीक्ष्य इति मूलविपविशेषाः प्रोक्ताः शृणु जङ्गमस्यातः ॥

अर्थ—विषयुक्त भोजनके करनेसे प्रथम ही कोष्ठ में दाह होता है । विषयुक्त छूने के द्रव्यसे प्रथमही त्वचा में दाह होता है । इसीतरह विषयुक्त स्नान, अभ्यंग, उत्सादन, वस्त्र, और अलंकार धारण करने से खुजली, अर्ति, रोमोद्गम, पित्ती, पिडका, चिमचिमाहट और सूजन होती है । पृथ्वी खडाम, हाथी घोंडों के जीन, शय्या और आसनोके विषसे दूषित होने पर हाथ और पांव में दाह, तोद, हान्ति और अन्य विकार उत्पन्न होजाते हैं । विषयुक्त पुष्प गंधहीन, मलीन, शिर पीडाकारक और रोमोद्गमकारक होते हैं विषयुक्त घूमां के नासिका में प्रवेश होने से नासिका के छिद्र रुकजाते हैं और नेत्रोंमें पीडा होती है ॥ कूर् वा तालाव आदि का जल विषके संसर्ग से दुर्गन्धित, कलुषित और विवर्ण होजाता है इस जलके पीनेसे सूजन पित्ती, फुत्सी तथा मृत्यु भी होजाती है ॥ विषके आमाशय में प्रवेश करतेही प्रथम वमन करावे तथा त्वचामें स्थित होने पर प्रदेह और परिवेक

कराये ॥ इसमें वैद्यको उचितहै कि रोगीके दोष और बलकी परीक्षा करके चिकित्सा करे इसनह मूलजघिपोंके भेद वर्णन किये गयेहै अब हम जंगमविपोंका वर्णन करते हैं ॥

सर्पों के भेदादि वर्णन ॥

इहर्द्वीकरःसर्पोंमण्डलीराजिमानिति ॥

त्रयोयथाक्रमंवातपित्तश्लेष्मप्रकोपणाः

अर्थ—यहां र्वीकर, मण्डली और राजिमान् तीन तरह के सर्प होतेहैं इन में से र्वीकर वातको, मण्डली पित्तको और राजमान् कफ को कुपित करनेवाले होते हैं ।

सर्पों की परीक्षा ।

र्द्वीकरःफणीज्ञेयामण्डलीमण्डलाफणः॥

विन्दुलेखोविचित्रांगःपन्नगःस्यात्तुराजिमान्॥

अर्थ—जिस सर्प का फण करछी के सदृश होता है उसे र्वीकर कहते हैं । जिसका फण गोल होताहै वह मण्डली होताहै और जिसके देह पर अनेक प्रकार के विन्दु और रेखा होतीहै वह राजिमान् कहाता है ।

उक्तसर्पों के विष के गुण ।

विशेषाद्रूक्षकटुकमम्लोष्णंस्वादुशीतलम्
विषंयथाक्रमंतेपातस्माद्वातादिकोपनम् ।

अर्थ—र्द्वीकर सर्पका विष विशेष करके रूक्ष और कटु है, मण्डलीका विष अम्ल और उष्ण है तथा राजिमान् का विष स्वादु और शीतल है और इसी हेतु से ये क्रम से वात, पित्त और कफके प्रकोपकर्त्ता हैं ॥

र्द्वीकरके दंशका लक्षण ।

र्द्वीकरकृतोदंशःसूक्ष्मदंष्ट्रपदोपितः॥

निरुद्धरक्तःकूर्मभावात्वाधिकाक्रमनः

अर्थ—र्द्वीकर सर्पका दंशस्थान अर्थात् काटने की जगह सूक्ष्म और काली होती है, उसमें से रुधिर नहीं बहता है, देखने में कछुएसी दिखाई होताहै तथा उन मनुष्यमें वातव्याधिके लक्षण दृष्टिगत होने लगतेहैं ॥

मण्डली के दंश का लक्षण ।

पृथ्वर्पितःसशोफश्चदंशोमण्डलिनाकृतः॥

पीताभःपीतरक्तश्चसर्वपित्तविकारकृत् ॥

अर्थ—मण्डली सर्पका दंशस्थान बड़ा मूजनयुक्त, पीतवर्ण और पीतरक्त से युक्त होता है इसमें सब तरहके पित्तविकार दिखाई देतेहैं ॥

राजिमान के दंशका लक्षण ।

कृतोराजिपतादंशःपिच्छिलःस्थिरशोफ

कृत् । स्निग्धःपाण्डुश्चसान्द्रासृक्श्लेष्म

व्याधिसमरिणः ॥

अर्थ—राजिमान् का दंश पिच्छिल, स्थिर, शोफकृत्, स्निग्ध, पाण्डुवर्ण होता है इस के घावका रुधिर जमजाता है और विशेष करके कफ लक्षण दिखाई देते हैं तथा कुछ वात के भी होते हैं ॥

सर्पोंकेलिङ्गभेद ।

वृत्तभोगोमहाकायःफणऊर्द्धक्षणःपुगान् ।

स्थूलमूर्धासमांगश्चस्त्रीततःस्याद्द्विपयं

यात्॥तलीविःसूस्तस्त्वधोदंष्ट्रिःस्वरहीनः

मकम्पते । स्त्रियादष्टोविषयस्तेरतःपुंसा

वृद्धावालास्त्वचोमुक्ताः सर्पामन्दविपाः

स्मृताः ॥

अर्थ—पानी का मारा हुआ, क्षीण, भीत ज्यौले से पराजय किया हुआ, वृद्ध, बालक जिसने अभी काचली छोड़ी हो ऐसे सर्प मन्द विप होते हैं ॥

विपको सर्व देहाश्रितत्व ।

सर्वदेहाश्रितकोधादिपसर्पोविमुञ्चति ।

तदेवाहारहेतोर्वाभयाद्दानप्रमुञ्चति ॥

अर्थ—सर्प क्रोधावेश में अपने सम्पूर्ण देह से विप को निकालता है परन्तु आहार हेतु वा मय से नहीं निकाल सकता है ।

अन्य विपाक्त काँडोंकी प्रकृति ।

वातोत्वणविपाः प्रायः उच्चिदिग्राः सञ्चिद्रिक्काः । वातपित्तोत्वणाः कीटाः श्लैष्मिकाः कणभादयः ॥ यस्यस्य हि दोषस्य लिङ्गा धिक्या निलक्ष्येत् तस्य तस्यौषधः कुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥

अर्थ—उच्चिदिग और बाँछू इन दोनों के विप प्रायः वातपित्ताधिक्य और कणम का विप कफाधिक्य होता है । जिस जिस दोष के विशेष लक्षण दिखाई पड़ें उसी दोष के विपरीत गुणवाली औषधों द्वारा चिकित्सा करना उचित है ॥

वातिकविपके लक्षण ॥

हृत्पीडोर्ध्वानिलस्तम्भः शिरायासोऽस्थि पर्वरूक् ॥ घूर्णनोद्वेष्टनं गात्रश्यावतावातिके विपे ॥

अर्थ—वातिक विपमें हृत्पीडा, ऊर्ध्ववात स्तम्भ, शिरायास, अस्थि और पर्व में

वेदना, घूर्णन, उद्वेष्टन [अंगडाई] और शरीर में कालापन ये लक्षण होते हैं ।

पैतिकविप के लक्षण ॥

संज्ञानाशोष्णनिश्वासोद्वाहः कटुकास्यता ॥ मांसावदारणशोफोरक्तपीतश्च पैतिके

अर्थ—पैतिक विप में बेहोशी, उष्णस्वास, हृदयमें दाह, मुखमें कड़वापन, मांसका विदारण होना और लाल पाली सृजन ये लक्षण होते हैं ॥

श्लैष्मिक विप के लक्षण ॥

वम्यरोचकदृल्लासप्रसेकोत्थेशगौरवैः ॥ सशैत्यमुखमाधुर्यैर्विधात् श्लेष्माधिकं विपम् ॥

अर्थ—वमन, अरुचि, दृल्लास, प्रसेक, उत्थेश, भारापन, शीतलता, मुखमें गीठापन ये श्लैष्मिक विपके लक्षण हैं ।

वातिकविपमें चिकित्सा ।

खण्डेन चन्नणालेपस्तैलाभ्यंगश्च वातिके स्वेदो नाडीपुलाकाद्यैर्वृंहणश्च विधिर्हितः ॥

अर्थ—वातिकविप में खांडकालेप, तैल मर्दन, नाडीस्वेद, पुलाकादिस्वेद और वृंहणविधि हित हैं ॥

पैतिकविपमें चिकित्सा ।

मुशीतैः स्तम्भयेत्सेकैः प्रदेहैश्चापि पैतिकम्

अर्थ—पैतिक विप में शीतल परिपेक और प्रदेहादि द्वारा स्तम्भन करें ॥

श्लैष्मिकविप में चिकित्सा ॥

लेखनच्छेदनस्वेदवमनैः श्लैष्मिकं जयेत् ॥

अर्थ—श्लैष्मिक विपको लेखन, छेदन, स्वेदन और वमनद्वारा दूर करना चाहिये ॥

शीतक्रियोपयोगीविष ।

विपेज्वपिचसर्वेषुसर्वस्थानगतेषुच । अष्ट
श्विकोच्चिट्टिगेषुप्रायःशीतोविधिर्हितः ॥

अर्थ—बीछू और उच्चिट्टिगको छोड़कर
सब प्रकारके सर्वस्थानगत विषोंमें शीत-
क्रिया हितहै ॥

बीछूके विष में चिकित्सा॥

दृष्टिचकेस्वेदमभ्यंगघृतेनलवणेनच॥से-
कांश्चोष्णान्प्रयुज्जीतभोज्यपानञ्चसर्पिषः

अर्थ—बीछू के विषमें घृत और नमक
से पसीनादेवै, मालिश करावै, उष्णपारिपेक
घृतमिश्रित भोजन और घृतपान हितहैं॥

उच्चिट्टिगके विषमें चिकित्सा॥

एतदेवोच्चिट्टिगेऽपिप्रतिलोमञ्चपांशुभिः ।
उद्धर्तनंमुखाम्बूष्णैस्तथावच्छादनंघनैः॥

अर्थ—उच्चिट्टिगके काटनेपर बीछूके
समानही चिकित्सा करनी चाहिये । जहां
डंक लगाहो वहां घूळि लगाकर प्रतिलोमन
करै, उद्धर्तन करै और मुहाते हुए गरमज-
लमें भीगेहुए कपड़े की कई तह करके
दंशस्थान पर रखदेवै ॥

त्रिदोषजविषकेलक्षण ॥

स्यात्त्रिदोषप्रकोपात्तुतथाधातुविपर्य-
यात्।शिरोऽभितापीलालास्राव्यधोवक्त्र-
स्तथाभवेत्॥

अर्थ—त्रिदोष के प्रकोप और धातुओं
के विपर्ययसे काटेहुए मनुष्यके सिर में
ताप, लारका गिरना और मुख का नीचा
होजाना ये लक्षण होते हैं ।

अन्यसर्पों के लक्षण ।

अन्येऽप्येवंविधाव्यालाःकफवातप्रकोप
नाः । दृच्छिरोरुग्ज्वरस्तम्भतृषामूर्च्छा
करामताः॥

अर्थ—इनसे अतिरिक्त और भी अनेक
प्रकार के व्याल हैं जो कफवातको प्रकुपित
करतेहैं इनके काटनेसे हृदय में वेदना, शि-
रःशूल, ज्वर, स्तम्भ, तृषा, और मूर्च्छा होतीहै।

सविषशरीरकेलक्षण ॥

कण्ठनिस्तोदवैवर्ण्यमुल्लिखितोऽशोषणम्
विदाहरागरूपाकाःशोफोऽग्रन्थिर्निकुञ्च-
नम् ॥ दंशावदरणस्फोटाःकाणिका
मण्डलानिच ॥ ज्वरश्चसविषेलिगंविष
रीतन्तुनिर्विषे ॥

अर्थ—खुजली, निस्तोद, विवर्णता, शू-
न्यता, छेद, उपशोषण, विदाह, राग, वेद-
ना, पाक, शोफ, ग्रन्थि, निकुञ्चन, दृष्टिस्था-
नका फटना, फोडे, काणिका, चकत्ते, और
ज्वर ये सविष शरीरके लक्षण हैं। इनसे विष
रीत निर्विष शरीरके लक्षण होतेहैं ।

तत्रसर्वेयथावस्थंप्रयोज्याःस्युरूपक्रमाः
पूर्वोक्तविधिमन्यञ्चयथावद्व्रुवतःशृणु॥

अर्थ—सविष शरीरमें अवस्थाके अनुसार-
र चिकित्सा करनी चाहिये इन चिकित्सा-
ओंमें से थोड़ीसी पहिले कहचुके हैं और
कुछ अब कहतेहैं ।

विषरोग में चिकित्सा ।

दृष्टिदाहेप्रसेकेवाविरैकवमनंभृशम् । य-
थावस्थंप्रयोक्तव्यंशुद्धेसंसर्जनक्रमः॥शि-
रोगतेविषेनस्तःकुर्यान्मूलानिबुद्धिमान् ।

बन्धुजीवश्चभार्याश्चसुरसस्यासितस्यच
दक्षकाकमयूराणांमांसासृक्मस्तकेक्षते ।
मूर्ध्निदेयमधोदष्टस्योर्द्धदष्टस्यपादयोः
पिप्पलीमरिचक्षारवचासैन्धवशिष्टाः ॥
पिप्पलीरहितपित्तेनघ्नन्त्यक्षिगतमजनात् ॥

अर्थ—विषके कारण जो हृदयमें विदाह
और लालास्राव होताहो तो अवस्था के
अनुसार तीक्ष्ण वमन विरेचनदेवै और शुद्ध
होनेके पछि संसर्जनक्रम का प्रयोग करें ।
जो विष शिरोगतहो तो बन्धूक, भाङ्गी
और कालीतुलसी इन तीनोंकी जड़ों को
पीसकर नस्य देवै । जो मस्तकमें काटा हो
तो उस जगह मुर्गा, मोर और कौए का
मांस और रुधिर लगावै और जो पांवों के
ऊपर काटाहो तो भी यही चिकित्सा करै ।
जो विष नेत्रोंमें पहुंचगया हो तो पीपल,
कालीमिरच, जवाखार, वच, सैधानमक और
संहजने के धीज इन सबको पीसकर रोहू-
मछली के पित्ते में मिलाकर आजें ॥

विषेकण्ठगतेमांसंक्रपित्थंससितामधु ।
आमाशयगतेलिहात्ताभ्यांचूर्णपलंनतात्
विषपकाशयप्राप्तेपिप्पलीरजनीद्वयम् ॥
मज्जिष्ठाचसमं पिप्पलीरजनीरसःपिबेत् ॥
मांसंरक्तश्चगोधायाःशुष्कंचूर्णीकृतंहित-
म् ॥ विषेरसगतेपानंकापित्थरससंयुतम् ॥
शैलमूलत्वग्ग्राणिवादरादुम्बराणिच ॥
फट्भ्याश्चपिबेद्रक्तगतेमांसगतेपिबेत् ॥
सप्तद्रव्यदिरारिष्टकीटजमूलमम्भसा ।
मूर्ध्वपुचवलेद्रेतुमधुकमधूकंनतम् ॥ पिप्प

भिगण्ठदीर्णेतुविदध्यात्प्रतिसारणम् ॥

अर्थ—जो विष कंठमें पहुंचा हो तो
कैथ का गूदा, मिर्चा और शहत मिलाकर
देवै । आमाशयगत विषमें तगर का एक
पल चूर्ण चीनी और शहत मिलाकर सेवन
करे विषके पकाशयमें पहुंचनेपर पीपल
दोनों हल्दी और मंजीठ ये सब समान
भाग लेकर गौके पित्ते के साथ पान करे ।
विषके रसमें पहुंचनेपर गोहके मांस और
रक्तको सुखाकर पीसकर कैथ के रस के
साथ पान करे । विषके रक्तमें पहुंचनेपर
शैल की जड़ छाल तथा वेर, गूगल और
कटुभी की डालियों का अग्रभाग पीसकर
जल के साथ पीवै । विष के मांसगत
होनेपर खैर के अरिष्टमें शहत डालकर पीवै
अथवा कुटकीकी जड़को पानीके साथ
पीसकर पीवै । विषके सर्व धातुगत होने-
पर बला, अतिबला, मुलहटी, महुआ
और तगर इनको जलमें पीसकर देवै
विषमें कफका प्रकोप होनेपर पीपल, सोंठ,
जवाखार, इन सबको मक्खनमें सानकर
प्रतिसारण करावै ॥

सर्वशोधनाशकयोगः ॥

मांसीकुंकुमपत्रत्वक्क्रजनीनतचन्दनैः ।
मनःशिलाव्याघ्रनखसुरसैरम्बुपेपितैः ॥
पाननस्याञ्जनालेपाःसर्वशोधविषापहा-
अर्थ—जटामांसी, कुंकुम, तेजपात, दाल-
चीनी, हल्दी, तगर, चन्दन, मनसिल, व्याघ्र-
नख और तुलसी इनको जलके साथमें
पीसकर पान, नस्य, अंजन और लेपन में

प्रयोग करें। इससे सब प्रकार की सूजन और विष नष्ट होजातेहैं।

अन्यप्रयोग ,

चन्दनंतगरकुण्डहरिद्रेस्त्वगेवच । मनः-
शिलातमालश्वरसःकेसरएवच ॥ शार्द-
लस्यनखश्वैवसुपिष्टं तण्डुलाम्बुना ॥ हन्ति
सर्वविषाण्येववज्जिवज्मिवासुरान् ॥

अर्थ—चन्दन, तगर, कूठ, दोनों हलदी,
दालचीनी, मनसिल, तमाल, रस, केसर,
व्याघ्रनख इन सबको चांचलके जलके
साथ अच्छी तरह पीस लें। इसका पान
करनेसे सम्पूर्ण विष ऐसे नष्ट होजातेहैं
जैसे इन्द्रका वज्र असुरों को नष्ट करताहै।

रसेसिरीषपुष्पस्यसप्ताहमरिचंसितम् ।

भायितसर्पदष्टानानस्यपानाञ्जनेहितम् ॥

गृहधूमहरिद्रेस्त्वमूलतण्डुलीयकम् ॥ अपि

वासुकिनादष्टःपिबेदधिघृतायुतम् ॥ द्वि

पलंनतकुष्टाभ्यांघृतक्षौद्रचतुष्पलम् । अ-

पितक्षकदष्टानापानमेतत्सुखप्रदम् ॥

सिन्धुवारस्यमूलश्चश्वेताचगिरिकर्णिका

पानंदर्वीकरैर्दष्टेनस्यमधुसपाकलम् ॥ म

ञ्जिष्टामधुयष्टचाढाजीयकर्मभकौसिता

काश्मर्यवटशृङ्गानिपानंमण्डलानांविषे ॥

व्योपंप्रतिविषांकुण्डं गृहधूमोहरेणुकां । त

गरकटुकाक्षौद्रहन्तिराजमिताविषम् ॥

क्षीरिवृक्षत्वगालेपःशुद्धेकीटाविषापहः ।

मुक्तालेपोवरःशोफदाहतोदज्वरापहः ॥

अर्थ—सहजने के बाजोंको सात दिवस

तक सिरसके छत्रोंके रसकी भावना दें।
इसका नस्य, पान और अंजनमें प्रयोग

करने से सर्पके काटने में गुणकारक है।

गृहधूम दोनों हलदी, चौलाई जड़ समेत

इन सबको पीसकर दही और घीमें सान

कर पीये तो वासुकी का काटा हुआ भी

अच्छा होजाता है। तगर और कूट दो

पल घृत दो पल, शहत दो पल, इन

सबको मिलाकर पीनेसे तक्षकका काटा

हुआ भी अच्छा होजाताहै। सभाळकी जड़,

सेफेद कोयलकी जड़ और गिरकर्णिका की

जड़का काथ करके पीये तथा शहत और

पाकलाकी नस्य लेवे। ये दर्वीकर सर्प के

काटने में हित है। मंडली सर्प के विष में

मजीठ, शहत मुलहटी, जीवक, ऋषभक,

चीनी, खंभारी और बडकी कौपल को घोट

कर पीना हित है। राजमान् सर्प के विष

में त्रिकुटा, अतीस, कूट, गृहधूम, हरेणु,

तगर, कुटकी इनको जल में पीसकर शहत

के साथ पान करें। वमन विरचन कराके

बड आदि दूध वाले वृक्षकी छाल का लेप

करने से कीट विष दूर होजाता है। तथा

इन्हांके देश पर जलमें पीसकर रास्ना का

लेप करने से शोफ, दाह तोद और

ज्वर दूर होजाते हैं।

लूताविष की चिकित्सा ।

चन्दनपट्टकोशीरपाटलिःसिन्धुवारिका।

क्षीरशुक्लानतंकुण्डशिरिपीदीच्यशारिवाः

शेळस्वरसापिष्टोऽथलूतानांसारिकार्मिकः॥

अर्थ—चन्दन, पन्नाख, उसीर, पाटला

संभाळ, विदारीकन्द का दूध, तगर कूट,

सिरस, नेत्रवाला और शारिवा इन सबको

शेळके रसमें पीसकर पीने और छेन करने

प्रयुक्त कौ तो मकड़ीका विष दूर
हो जाता है ।

मकटीकी अन्य चिकित्सा ॥
मधुकंमधुकुंठप्रशीरेवादिच्यपाटलैः ।

सनिम्बशारिवाक्षौद्रपानंलूताविपापहम् ।

अर्थ—मुलहठी, महुआ, कूट, शारिवा
नेत्रवाला, पाटला, नीम, और शारिवा, इनको
जलमें पीसकर शहत मिला कर पीने से
लूताविष दूर हो जाता है ।

कुसुम्भपुष्पगोदंतःस्वर्णक्षीरीकपोतविद
दन्तीतृवृत्सैन्धवैलाफणिकापातनंतयोः ॥

कटभ्यार्जुनकुण्टानिशेलुक्षीरीद्रुमत्वचम् ।

कपायकल्कचूर्णास्युःकीटलूताप्रलापहाःत्व-
चञ्चनागरञ्जैवसमांशद्वलक्ष्णपेपितोपेय
मुष्णाम्बुनासर्वभूषिकाणांविपापहम् ॥

अर्थ—कसूम के फूल, गोदन्ती हरिताल,
स्वर्णक्षीरी, कबूतरकी बीट, दन्ती, निसोथ,
संधानमक और बड़ी इलायची पीसकर
लेप करने से लूताविष और कीटविष नष्ट
हो जाते हैं । कटमी, अर्जुन, कूट, शेलु,
बटादिद्रुम वृक्षोंकी छाल इनका कपाय,
कल्क और चूर्ण द्वारा प्रयोग करनेसे कीट
विष का और लूताविष का प्रलाप नष्ट
हो जाता है । अथवा दालचीनी और सोंठ
समानभाग लेकर महीन पीस डालें और
फिर इसको गरम जल के साथ पानकरै तो
भूषकविष दूर हो जाता है ।

कुटजस्यफलं पिष्टं तगरं जालमालिनी ॥
तिक्तैश्चाकुकयोगेयपानं प्रथमनादिभिः ॥
वृश्चिकोन्दुरलूतानां सर्पाणाञ्च विपापहम् ॥

समानममृतेनेदगराजीर्णञ्चनाशयेत् ॥

अर्थ—इन्द्रजौ, तगर, घीयातोरई, कटु
तुम्बी इनको पीसकर पान और प्रथमनादि
द्वारा प्रयोग करै तो घीलू, चूहा मकड़ी और
सर्पोंका विष दूर हो जाता है यह योग अमृत
के समान है इसके सेवन से विषदोष और
अजीर्ण दूर हो जाते हैं ।

किरकटविषचिकित्सा ।

सर्वागदायथादोषप्रयोज्याः स्युः कृकण्ठके

अर्थ—रोगीकी अवस्थाके अनुसार सब
प्रकारकी औषधियों के करने से किरकटेका
विष दूर हो जाता है ।

वृश्चिकविषचिकित्सा ॥

कपोतविदमातुलुंगं शिरीषकुसुमाद्रसः ॥

शंखिन्याकिम्पयः शुण्ठीकरञ्जमधुवार्दिचके

अर्थ—कबूतरकी बीट, विजौरा, सिरस
के फूलका रस, शंखिनी, आककादूध, सोंठ
कंजा, शहत इन सबको समान भाग ले
पीसकर लेपकरै तो विष्कूका विष दूर हो जाता है

मैंडकविषचिकित्सा ।

शिरीषस्य फलं पिष्टं स्नुहीक्षीरेण दाडुरे ॥

अर्थ—सिरसके बीजोंका सेंडुड के दूध
में पीस कर लेप करने से मैंडक का
विष दूर हो जाता है ।

मत्स्यविषचिकित्सा ॥

मूलानि श्वेतभिण्डायाव्योपसर्पिश्च मत्स्यजे

अर्थ—सफेद अपराजिताकी जड़ और
त्रिफुलाको पीसकर लेप करने से मछलीका
विष दूर हो जाता है ।

जोकविपचिकित्सा ।

कीटदष्टक्रियासर्वासमानास्याज्जलौक
साम् ।

अर्थ—कीटदष्टकी जोर चिकित्साकही
गई है उनहीके समान जोककी चिकित्साहै ॥

वातपित्तहरीप्रायःक्रियाप्रायःप्रशस्यते ।

वाँचिकस्तूचिचिटिंगश्चकणभस्योन्दुरोगदः

अर्थ—बीछू, उच्चिटिंग, कणभ और
उन्दुर के विषमें प्रायःवातनाशिनी क्रियाहितहै
विश्वम्भरादि विष चिकित्सा ।

वचोवंशत्वचंपाठानंतमुरसमञ्जरीम् ॥

द्वेचलेनाकुलंकुण्डंशिरिपरंजनीद्वयम्गुहाम

तिगुहांश्वेतामजगन्धांशिलाजतु । कचृणं

कटभीक्षांगृहधूममनःशिलाम् ॥ रोही

तकस्थपित्तनपिप्पलातुपरमोगदः॥नस्या

ज्जनाद्यलेपेपुहितोविश्वम्भरादिषु ॥

अर्थ—वच, वांसकी छाल, पाठा, तगर,

तुलसीकी मंजरी, दोनों बला, रास्ना, कूठ,

सिरस, दोनों हलदी, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी,

श्वेत अपराजिता, अजगंध, शिलाजीत,

कचृण, कटभी, जयाखार, गृहधूम, मनसिल

इन सबको पीसकर रोहू मछली के पित्तेमें

सानकर नस्य, अंजन और प्रलेपादि द्वारा

प्रयोग करने से विश्वम्भरादि कीड़े का

विष दूर होजाता है ।

कांतर की चिकित्सा ।

स्वर्जिकाजशकुतुक्षारःमुरसायासर्पाङ्कः

मदिरामण्डसंयुक्तोहितःशतपदीविषे ॥

अर्थ—सर्जाखार, बकरीकी मँगनी का

खार इनको तुलसी के पत्ते के रसमें मिलाकर

आंखों पर लगावै और इन्हीं द्रव्यों को
सुरामण्डमें मिलाकर शतपदीके दंश पर लेप
करै तौ आराम होता है ।

छपकली विपकी चिकित्सा ।

कर्पित्यमक्षिपीडोऽर्कवीजंत्रिकदुकंतथा ।

करज्जोद्वेहस्त्रिद्वेचगलगोड्याविपंजेयत् ॥

अर्थ—कैथ का रस, आक के बीज और

त्रिकुटा इनको पीसकर रस निकालकर

आंखों पर लगावै अथवा कंजा और दोनों

हलदी इनका रस भी आंखपर लगाने से

छपकली का विष दूर होजाता है ।

काकाण्डरससंयुक्तोविपाणांतण्डुलीयकः

सर्वेषांविहोपत्तेनतद्व्यायसपीलुकः ॥ शि

रीपफलमूलत्वक्पुष्पपत्रैःसमैर्घृतैः । श्रेष्ठः

पञ्चशिरिपोऽयंविपाणांमवरोचधे ॥

अर्थ—कृष्णशिव्मी और चौलाई इन

दोनों का रस सब विषों में हितकर है ।

मकोय और पीछ भी मोरके पित्ते के साथ

में तद्रत् गुणकारक है ॥

सिरस के फल, मूठ, छाल, फूल और

पत्ते इनको समान भाग लेकर घी में पीस

कर लगावै यह औषध विपनाशक प्रयोगों

में हितकारी है । इसे पंचशिरिप कहते हैं ।

दंत और नखमें चिकित्सा ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वानखदन्तक्षतंतुयत् ।

शूयतेपच्यतेवापिस्रवातिज्वरयत्यपि ॥

सोमवल्कोऽश्वकर्णाचगोजिह्वाहंसपथपि

रजन्यागैरिकलेपोनखदन्तविपापटः ॥

अर्थ—चौपाये वा द्विपाये जीवोंके दांत

वा नख लगाने से जो घाय होजाते हैं उन

में सूजन, पाक, स्त्राव और ज्वर होआता है । इसमें सफेद खैर, अश्वकर्ण, गोभी, हंसपादी, दोनों हलदी और गेरू इनका लेप करने से नख और दांतों का विप दूर होजाता है ।

शंकाविप में उपाय ।

दुर्गन्धकारेविद्धस्यकेनचिदृष्टशङ्कया ॥
त्रिपद्मेगाज्ज्वरछीदिमूर्च्छादाहोऽपिवाभ
वेत् । ग्लानिर्मोहोऽतिसारोवाप्येतच्छ
ङ्काविपमत्तम् ॥ चिकित्सितमिदंतस्यकु-
र्यादाश्वासयन्बुधः । सितार्वागन्धिकां
द्राक्षापयस्यामधुकम्पधु ॥ पानंसमन्त्रपू-
ताम्बुप्रोक्षणंसान्त्वहर्पणम् ।

अर्थ—दुर्गन्ध अन्धकार में चींटी आदि
क्षुद्र जन्तुके काटने से सर्पकी शंका होकर
विपके वेगसे ज्वर, वमन, मूर्च्छा और दाह
भी होता है तथा ग्लानि, मोह और अ-
तिसार ये भी विपकी शंकासे होआते हैं ।
इनमें शान्तिप्रदायक वचनों द्वारा रोगीको
आश्वासन देवें और चीनी, गोंदी, दाख,
क्षीरकाकोली, मुलहठी, शहत, इनका पान
करावें । मंत्र पढ़े हुए जल से प्रोक्षण
करें और शान्ति प्रदायक वचनों से प्रसन्न
करता रहें ।

विपरोग में पथ्यविधान ।

शालयःपौष्टिकाश्चैवकोरुद्रपाःप्रियङ्गवः॥
भोजनार्थेप्रशस्यन्तेलवणार्थंचसैन्धवम् ।
तण्डुलीयकजीवन्तीवार्ताकुसुनिपण्णका
चुर्चुर्पण्णकपर्णाचशकश्चकुलकंहितम् ।
धार्वादाडिममम्लार्थेयूपामुहरेणुभिः ॥

रसाश्रैणशिशिश्चाविलायैतत्तारिपार्षताः
विपद्रोपधसंयुक्तारसायूपाश्चसंस्कृताः॥
अविदाहीनिचान्नानिविपार्तानांभिपग्नि

तमम्

अर्थ—शालीचांबल, साठाचांबल, कौंदी,
प्रियंगु, ये भोजन के लिये देवें, जमक में
संधानमक देवें । शक में चौलाई, जीवन्ती
वैगन, चौपतिया, चुचू, तंदूकपर्णी, और
परबल का साग हित है । खटाई में आंबला
और अनार, यूपमें मूंग और हरेणु, मांसरस
में मोर, मेंढा लवा, तीतर और पृषत हि-
रण, इन मांस और यूपों को विपनाशक
औषधियों में सिद्ध करके देवें तथा अवि-
दाही अन्नका सेवन भी विपरोगियों के
लिये हित है ।

विपमें वर्जितकर्म ।

विरुद्धाद्यशनक्रोधक्षुब्धभयायासमैथुनम् ।
वर्जयेद्विपमुक्तोऽपिदिवास्वर्माविशेषतः॥

अर्थ—विरुद्धादि भोजन, क्रोध, क्षुधाके
वेगको सहन करना, भय, परिश्रम, मैथुन
और दिन में सौना इन बातों को विप दूर
होनेपर भी त्यागदेवें ॥

चतुष्पददष्टके लक्षण ।

मुहुर्मुहुःशिरोन्यासःशोफःसस्तौष्ठकर्णता
ज्वरस्तब्धाक्षिगात्रत्वंहनुकम्पोऽङ्गमर्दन-
म् । रोमापर्णमनंग्लानिररतिर्वैपथ्यग्रहः॥
चतुष्पदांभवत्येतदृष्टानामिहलक्षणम् ।

अर्थ—चौपाये जीवके काटने से ये ल-
क्षण होते हैं कि दृष्ट व्यक्ति बार बार सिर
को फेंकता है, सूजन, ओष्ठों में शुष्कता,

कानों में स्तब्धता, ज्वर, आंखोंका पथराना
गात्रमें स्तब्धता, हनुकम्प, अंगमर्द, रोमो-
द्गम, ग्लानि, अरति, कम्पन और जकड़न
ये लक्षण भी होते हैं ।

चतुष्पददष्टमें उपाय ।

देवदारुहरिद्रेक्षरलंचन्दनाशु॥ रास्ना
गोरोचनाजाजीगुगुल्विकुरकोनताम् ।
चूर्णससैन्धवानन्तंगोपित्तमधुसंयुतम् ॥

चतुष्पदाहिदृष्टानामगदःसार्वकार्मिकः
अर्थ—देवदारु, दोनोंहल्दी, सरलकाष्ठ,

चन्दन, अगर, रास्ना, गोरोचन, काला-
जीरा, गुगुल, तालमखाना, तगर, सेंधानमक
और अनन्तमूल इन सबका चूर्ण घनाकर
शहत और गौ के पित्त के साथ खाने,
पीने, लगाने आदि सब कार्यों में देवै इससे
चोपायों का विष दूर होजाता है ।

गरविषके लक्षण ।

सौभाग्यार्थस्त्रियःस्वेदरजोनानाङ्गजान्म-

लान्शत्रुप्रशुक्तांश्चगरान्प्रयच्छन्त्यन्न

मिश्रितान् ॥ तैःस्यात्पाण्डुःकृशोऽल्पा

भिज्वरश्चास्योपजायते । मर्मप्रमथना

ध्मानहस्तपाच्छोफलक्षणाः ॥ जठरं

ग्रहणादोपयक्ष्माणंश्चयुंक्षयम् ॥ एवं

विषस्यचान्यस्यव्यापेर्लिङ्गानिदर्शयेत् ॥

अर्थ—बशीकरणादि प्रयोगों के लिये

स्त्री अपने भिन्न २ अंगोंके स्वेद, रजआदि

मलों को खाने पीने की वस्तु में देदेती हैं

इसीतरह शत्रु भी गरविष मिलाकर अन्न

या पानी दे देते हैं । इन से पांडुरोग, कृ-

शता, मन्दाग्नि, ज्वर, मर्मप्रपीडन, आ-

ध्मान्, हाथ पांव में सूजन, उदररोग
ग्रहणादोष, यक्ष्मा, श्वयथु और क्षयरोग
तथा ऐसेही और उपद्रव भी होते हैं॥

गरविष के अन्यलक्षण ॥

स्वप्नेमार्जारगोमायुष्यालान्सनकुलान्
कपीन् ॥ प्रायःपश्यातिनद्यादीन्शुष्कांश्च
सवनस्पतीन् ॥ कालश्चगौरमात्मानंस्व-
प्नेगौरश्चकालकृमाविकर्णनासिकंवापि
पश्येच्चद्विहतेन्द्रियः ॥

अर्थ—गरविष से पीडित स्वप्न में बिल्ली,
सिरकटा, सर्प, नकुल, बन्दर, नदी और
सूखी वनस्पतियों को देखता है । उसे अ-
पना कालाशरीर गौरा और गौरा शरीर
काला दिखाई देता है । उस के कान और
नाक विरूप दिखाई देते हैं और सम्पूर्ण
इन्द्रियों में विकलता होती है ।

गरविष में वैद्यकाकर्त्तव्य ।

तमवेक्ष्याभिपक्माज्ञःपृच्छेत्किङ्कैःकदासह

जग्धमित्यवगम्याशुप्रदद्याद्वमनंमिषक् ।

सूक्ष्मताम्ररजस्तस्मैसक्षौद्रंहृदिशोधनम् ॥

शुद्धेहृदिततःशाणंहेमचूर्णस्यदापयेत् ।

हेमसर्वविषाण्याशुगरांश्चविनियच्छति ।

हेमपस्यसजत्यङ्गेनाहिपञ्चेऽम्बुवाहिपम् ।

अर्थ—ऊपर कहे लक्षणों से युक्त देख

कर बुद्धिमान् वैद्य को पूछना चाहिये कि

तुमने किस के साथ कब क्या खाया है ।

यह पूछकर शीघ्रही तांबेकी भस्म में शहत

मिलाकर वमन करावे । ऐसा करने से हृ-

दय शुद्ध होजायगा । हृदय के शुद्धहोने पर

एक शाणशुद्ध हेमचूर्ण देवै । सुवर्ण सम्पूर्ण

मैथुन करने से बढी हुई अपानवायु अधोगा-
मी स्रोतों को बद्ध करके ऊपरको छँटती-
है और वस्ति में पहुंचकर घोर विडमरह, मू-
त्रमह और अधोवातमह रोगोंको उत्पन्न क-
रती है ('वायुर्विष्टब्धः' से 'करोत्यपानः' त-
क पाठान्तर भी है यथा "पकाशयेकुप्य-
तिचेदपानः स्रोतस्यधोगानिवलीसरुद्धा ।
करोतिविष्मरुतमूत्रसंगं क्रमादुदावर्चमतःसु-
घोरम्, ॥)

उदावर्त्तजन्यरोग ।

रुग्वस्तिहृत्कुक्ष्यदरेष्वभीक्ष्णं सपृष्ठा-
भ्रंष्वतिदारुणास्यात् ॥ आध्मानहृत्तास
विकर्तिकाश्च । तोदोविपाकश्चसवस्ति-
शोथः ॥ दोषाःप्रवृद्धाजठरेचगण्डान् ।
ऊर्ध्वञ्चवायुर्विहितोगुदस्यात् ॥ कृच्छ्रे
णगुप्फस्यचिरात्प्रवृत्तिः । स्यादातनुः
स्यात्खररुक्षशीताः ॥ ततश्चरोगाज्व-
रमूत्रकृच्छ्रं मयाहिकाहृद्ग्रहणीप्रदोषाः॥
चम्पान्ध्यवाधिर्यशिरोऽभिताप चातो-
दराष्टीलमनोविकाराः ॥ तृष्णास्रापित्ता-
चिगुल्मकासश्वासप्रतिश्यादितपार्श्व-
रोगाः ॥ अन्येचरोगावह्वोऽनिलोत्था ।
भवन्त्युदावर्त्तकताःसुघोराः ॥

अर्थ....उपर कहेहुए व्यतिक्रमसे उदावर्त्त
रोग के होनेपर वस्ति, हृदय, कुक्ष, और
उदर में निरन्तर बेदना होती है । पीठ और
पसलियों में दारुणशूल होने लगता है ।
तथा आध्मान, हृत्तास, विकर्तिका (ऐंठ)
तोद, विपाक, और वस्तिशोथ उपस्थित हो-
ते हैं और बढेहुए दोष, जठर में गण्ड और

र ऊर्ध्ववात को प्रवृत्त करते हैं जो दस्त
होता भी है तो पतला, सूखा, शीतल, क-
टिन्तासे, देरमें सूखाहुआ थोडा थोडा हो-
ता है । तदनन्तर ज्वर, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका
हृददोष, ग्रहणीदोष, यमन, अन्धता, बहरा-
पन शिर में जलन, वातोदर, वातष्टीला, म-
नोविकार तृष्णा, रक्तपित्त, अरुचि, गुल्म,
खांसी, श्वास, प्रतिश्याय, अर्दित, पार्श्वरां-
ग तथा और और भी बहुत से वातजरोग
उत्पन्न होते हैं ॥

वातजरोगोंमें चिकित्सा ।

तैलशीतज्वरनाशनोक्तं स्वेदैर्यथोक्तः
प्रविलीनदोषम् ॥ उपाचरेद्वाचित्तिनिरुहव-
स्ति स्नेहैर्विरेकैरनुलोमनाम्नैः ॥

अर्थ—ऐसे रोगी को प्रथमही शीतज्वर
नाशक तैल का अभ्यंग और यथोक्त पसी-
ने देकर दोषों को दूरकर देवै और फिर
वर्त्ति, निरुहणवस्ति, स्निग्धविरेचन और
अनुलोमनकर्त्ता औषधियों द्वारा उपचारकरे ।

उदावर्त्त में वर्त्ति विधि॥

श्यामात्रितृन्मागधिकाग्निचूर्णगोमूत्रपीतं
दशभागमापमसनीलिकंदिल्वणगुडेन
वाचित्तरांगुष्ठानिभाविदध्यात् ॥

अर्थ—कालीनिसोध, पीपल, चीता और
नीलका ये सब दस दस मासे छेवै और इ-
न से दूना नमक मिलाकर गौकेमूत्र में घोट
टाँके फिर गुट्ट मिलाकर अंगूठे के बराबर
वत्ती बनाकर गुदा में प्रवेश करके बांधदेवै
और थोड़ीदेर पीछे वत्ती निकालकर फेंक
देवै ऐसा करने से उदावर्त्त दूर होजाताहै ।

और अधोवायु के निकालने वाले अन्य
द्रव्यों के साथ भी यथान्न भक्षण करे ।
उपर से प्रसन्ना, और गौरीय शीघ्रका
अनुपान करे ॥ यदि इन उपायों के करने
पर मल मूत्रादि की विवन्धता एकवार दूर
होकर फिर उत्पन्न होती गौमूत्र, प्रसन्ना
और दधिमेढ के संयोग से फिर विरेचनदेवै ॥
गुल्मोदरग्रन्थार्शः प्लीहोदावर्तयोनिशुक्र
गदे । मेदः कफसंस्पृष्टे मांसरक्तेऽवगाढे
च । गृध्रसिपक्षवधादिषु विरेचनाह्येषु
वातरोगेषु ॥ वाते निबद्धमार्गमेदः कफपि
चरक्तेन । पयसामांसरसैर्वात्रिफलारस
यूपमूत्रमदिराभिः । दोषानुबन्धयोगात् प्रस
स्तमेरुण्डजतैलम् । तद्वातनुत्स्वभावात्
संयोगवशाद्विरेचनाच्चजयेत् ॥ मेदोऽष्ट
कपित्तकफान्मिश्रानिलवरांगजित्स्यात्
अर्थ—गुल्मरोग, उदररोग, ग्रन्थ, अर्श
रोग, प्लीहा, उदावर्त, योनिरोग, शुक्ररोग
मेदा से संस्पृष्ट वा कफसे संस्पृष्ट अवगाढ
वातरक्त, गृध्रसी, पक्षाघात, तथा अन्य
विरेचन के योग्य वातरोग, मेद वा कफवा
पित्तरक्त द्वारा निबद्ध मार्गवाला वातरोग इन
सब रोगों में दोष के अनुबन्ध के अनुसार
दूध, मांसरस, त्रिफला का काथ, यूप,
गौमूत्र वा मदिरा के साथ अंडी के तेल का
विरेचन देवै । यह अंडी का तेल स्वभाव से
घातनाशक है और औषधियों के संयोग
वश से विरेचन कर्ता भी है इससे यह मेदरोग
रक्तीपक्ष और कफवातरोगों को नष्ट कर देता है
अपनी के तेलकी मात्राका प्रमाण ।
बलकोष्ठान्धाधिबलादापञ्चपलाभवंमा

श्रा । मृदुकोष्ठावलानांसहभोज्यतंप्रयो
ज्यस्यात् ।

अर्थ—शरीर के बल, कोष्ठ और व्याधि
के प्रसंगसे अंडी के तेलकी मात्रा पांचपल
पर्यन्त है मृदुकोष्ठवाले और दुर्बलों के लि
ये यह भोजन में मिलाकर देना चाहिये ॥

विरेचनकापश्चात् कर्म ॥

स्वस्थन्तुपश्चादनुवासयेत्तमुरौक्ष्यादिस
क्षी निलवर्चसोश्चेत् ॥

अर्थ—स्वस्थ होने पर विरेचन के पीछे
रूक्षताके कारण यदि वातप्रकोपसे विष्टाको
विवन्ध होता अनुवासन वस्ति देवै ।

उदावर्तमेचिकित्साकर्मयोग

द्विरुत्तरंहिगुणवासिकुष्ठामुवर्चिकाचैववि
डङ्गूर्णम् । सुखाम्बुनानानाहविप्राचि
कार्तिहृद्रोगगुल्मोर्दसमीरणघ्नम् ॥ वचा
भयाचित्रकयावशूकान्सपिप्पलीकातिवि
पानसकुष्ठान् । उष्णाम्बुनानाहविमृदवा
तानुपीत्वाजयेदाधुरसौदनाशी ॥

अर्थ—हींग, वच, कूट, संचलनमक,
और वायविडंग इनको उत्तरोत्तर द्विगुणले
कर चूर्ण करले और गरम जल के साथ
पाके तौ इससे आनाह, विशचिका, आर्से
हृद्रोग, गुल्म और ऊर्ध्ववात दूर होजाते है
वच, हरड़, चीता, जवाखार, पीपल, अ-
तिस और कूठ इन के चूर्ण को गरम
जल के साथ पाके तौ आनाह और मृदु
वात दूर होजाते हैं । इसपर मांसरस और
चावल का पच्य होता है ।

स्तिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः शम्पाकपूती-

ककरञ्जयोश्च ॥ सिद्धः कषायेद्विपला-
शिकानां प्रस्थो घृतात् स्यात्प्रतिरुद्धवाते ।

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूल, सांठ, स्या-
माक, पूतिकंजा इनको दो दो पल लेकर
काथ करै, चौथाई शेष रहनेपर उतारकर
छानलेवै और इसमें एक प्रस्थ घृत डाल-
कर पकावै यह घृत रुद्धवात में हित है ॥

फलञ्चमूलञ्चविरेचनोक्तं हिं गवर्कमूलं दश
मूलमग्न्यम् । स्तुविचित्रकौचैव पुनर्नवाच
तुल्यानि सर्वैर्लवणानि पञ्च ॥ स्नेहैः स-
मूत्रैः सह जर्जराणि शरावसन्धौ विपचेत्सु-
लिप्ते ॥ पक्कं सुपिष्टं लवणं तद्वैः पानैस्त-
थानाहरुजघ्नमग्न्यम् ॥

अर्थ—विरेचनोक्त फलमूल, हींग, आक
की जड़, दशमूल, सेंहुड, चीता, सांठ ये
सब समानभाग लेवै और इन सब के
बराबर पांचों नमक मिलाकर कूटडाळे इस
में स्नेह और गोमूत्रादिक मिलाकर शराव
संपुट में रखकर कपडमिट्टी करके फूंकलेवै
पक होनेपर पीसकर इस नमक को अन्न-
पान के साथ सेवन करै । यह आनाह के
दूर करने में सर्वोत्कृष्ट है ॥

हृत्स्तम्भमूर्धाशयगौरवार्त्याचोद्गारसङ्गे-
न सपीनसेन । आनाहमामप्रभवञ्जयेत्
प्रच्छदनेर्लघनपाचनञ्च ॥

अर्थ—हृत्स्तम्भ, शिरोरोग, भारापन, ड-
कार का बन्द, होना, पीनस इन रोगों से
युक्त आमेसे उत्पन्न हुए आनाह रोगमें, य-
मन, लघन और पाचन प्रयोग करै ॥

हिं गृग्गन्धाविद्विष्टुष्यजानीहरातीकुपु-

ष्करमूलकुट्टम् । यथोत्तरभागविद्वद्वेते-
मृष्टीहोदराजीर्णविमूचिकासु ॥

अर्थ—हींग, वच, पिदननक, सांठ, का-
लाजीरा, हरड, पौहकरमूल, कूठ, इनसब
औषधोंको उत्तरोत्तर एक एक भाग बढ़ा-
कर चूर्ण बनाकर सेवन करै तौ मृहा,
उंदररोग, अजीर्ण, और विमूचिका नष्ट
होजाते हैं ॥

मूत्रकृच्छ्रका निदान ।

व्यायामतीक्ष्णोपधरुक्षमयमसङ्गनित्यः
दृढपृष्ठयानात् ॥ आनूपमत्स्याध्ययना
दजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि तृणामिहाद्या ॥

अर्थ—शारीरिक परिश्रम, तीक्ष्ण औषध
रुक्षसेवन, मयप्रसंग, स्त्री ससर्ग, शीघ्रगमन
उछल उछलकर चलने याटे उष्ट्रादि की
पीठ पर सवारी, आनूप और मत्स्यांस्त
का अतिशय सेवन, अध्ययन, अजीर्ण में
भोजन इत्यादि हेतुओं से मनुष्यों के आठ
प्रकारके मूत्रकृच्छ्र होते हैं ॥

कृच्छ्रतासे प्रस्ताव का कारण ।

पृथग्मलाः स्वैः कुपितानिदानैः सर्वेऽथवा
कोपमुपेत्यवर्ता । मूत्रस्य मार्गपरिपीड
यन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥

अर्थ—अपने अपने कारणोंसे एक एक
दोष अथवा सब एक साथ कुपित होकर
वस्तिमें पहुँचकर मूत्रमार्गको पीडित करते
हैं तब बहुत थोड़ा थोड़ा पड़ी फाटिततासे
प्रस्ताव होता है ॥

यातजमूत्र कृच्छ्र के लक्षण ।

तीव्रा हिं ग्वं सणवस्तिमेवे ।

स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह बातात् ॥

अर्थ—वातज मूत्रकृच्छ्रमें प्रस्राव करने के समय वंक्षण, वस्ति और मेदमें बड़ी तीव्र वेदना होती है और प्रस्राव थोड़ा २ बड़ी कठिनता से उतरता है ॥

पित्तजमूत्र कृच्छ्रके लक्षण ।

पीताम्रकृष्णहिसरुवसदाहं ।

कृच्छ्रान्मुहुर्मूत्रयतीहपित्तात् ॥

अर्थ—पित्तजमूत्रकृच्छ्र में पीला, लाल या काला प्रस्राव बड़ी वेदना और दाहके साथ बार बार होता है ॥

कफजमूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

वस्तेःसलिंगस्यगुरुत्वशोफौ ।

मूत्रंसपिच्छंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥

अर्थ—कफजमूत्रकृच्छ्र में वस्ति और लिंग में भारापन और सूजन होती है और मूत्र गिलगिला उतरता है ॥

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात् ।

भवान्तितत्कृच्छ्रतमन्तुकृच्छ्रम् ॥

अर्थ—सन्निपातजमूत्रकृच्छ्र में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं यह बहुतही कृच्छ्राप्य होता है ॥

अश्मरीनिदान ।

विशोषयेद्वस्तिगतन्तुशुक्रंमूत्रंसपित्तंपवनः
कफंवा । यदातदाश्मर्युपजायतेतुक्रमेण
पिपेप्पिवरोचनागौः ॥

अर्थ—जब वायु किसी कारणसे वस्ति में पहुँचे हुए शुक्रको मुखादेती है वा पित्त सहित कफको मुखा देती है तब क्रम २ से बर्द्धमान अश्मरी [पथरी] उत्पन्न

होती है जैसे गौके पित्त में गोरोचन उत्पन्न होता है ॥

अश्मरी की आकृति ॥

कदम्बपुष्पाकृतिरश्मतुल्या ॥

श्लक्ष्णात्रिपुल्याप्यथवापिमृद्री ॥

अर्थ—अश्मरी कदम्ब के फूल के सदृश वा पथर के तुल्य चिकनी, तिगुटी वा कोमल भी होती है ॥

अश्मरी के कर्म ।

मूत्रस्यचेन्मार्गमुपैतिरुंधामूत्रंरुजांतस्यक
रोतिवस्तौ । ससीवनीमेहनवस्तिशूलंवि
शीर्णधारश्चकरोतिमूत्रम् ॥ मृद्वातिमेदंस
तुवेदनार्तोमुहुःशकृन्मुञ्चतिमेहतेच । सो
भातुसतेमूत्रयतीहसामृक्कृतस्याःसुखमेह-
तिचव्यवायात् ॥

अर्थ—जब अश्मरी मूत्रमार्ग में पहुँच जाती है तब मूत्रमार्ग को रोकदेती है ॥ और वस्ति में अत्यन्त वेदना उत्पन्न करती है । सीवनी से लेकर मेद पर्यन्त वस्ति में बड़ा शूल होता है उस समय मूत्र की धार फटजाती है और वेदना के कारण रोगी मेद को पकड़कर मसल डालता है और बार २ रोगी पुरीषोत्सर्ग और मूत्र करता है ॥ मसलते २ मेदके भीतर धाव होजाता है तब उसमें से रुधिर आनेलगता है, तथा उसके व्यवाय से सुख पूर्वक प्रस्राव होने लगता है ।

शर्करा के लक्षण ।

एषाश्मरीमारुताभिन्नमूर्तिः ।

स्याच्छर्करामूत्रपयात्सरन्ती ॥

अर्थ—जब यह अश्मरी वायु के कारण छिन्न भिन्न होकर मूत्रमार्ग के द्वारा निकलती है तब इसे शर्करा कहते हैं । ÷ ॥ शुक्रं पलाशं च पृथक् पृथक्वा मूत्रायनस्याः प्रतिचारयन्ति । तद्व्याहतं पेह्नवस्तिशूलं मूत्रं स शुक्रं हि करोति वदम् ॥ स्तब्धश्च शूनो भृशवेदनश्च तु येतवस्तिर्दृषणौ च

तस्य ॥

अर्थ—जब दोष पृथक् २ वा सब मिल कर मूत्रमार्ग का अवलम्बन करके शुक्रको निकलने से रोक देते हैं और वीर्य के कारण मूत्र भी रुक जाता है उस समय मेट्ट और वस्ति में अत्यन्त शूल होता है । तथा वस्ति और मेट्ट में स्तब्धता, सूजन और अत्यन्त वेदना होती है और वस्ति तथा अंडकोशों में सुई छिद्रने की सी पीड़ा होती है ॥

÷ किमी २ पुस्तक में यह पाठ अधिक है यथा—रेतोऽभिघाताभिहतस्य पुंसः प्रवर्त्तयेत स्य तु मूत्रकृच्छ्रम् । स्वात्वेदनावक्षणावस्ति मेट्टे तस्यासि शूले कृपणातिवृत्ते ॥ शुक्रेण संरुद्ध गतिः प्रवाहो मूत्रं स कृच्छ्रेण विमुञ्चतीह । समाण्डयोः स्तब्धमिति ध्रुवन्ति रेतोऽभिघाते प्रवदन्ति कृच्छ्रम् ॥ अर्थात् मूत्र के अभिघात से जो अश्मरी होती है वह पुरुषों के ही होती है और वीर्य के अभाव से स्त्री और बालकों के नहीं होती ॥ इस में वक्षत्र, वस्ति और मेट्ट में अत्यन्त वेदना होती है ॥ वीर्य से मूत्र का मार्ग रुक जाने के कारण मूत्र का ठनता से होता है । इस रेतोऽभिघात मूत्रकृच्छ्र को अण्डस्तब्ध कहते हैं ॥

(१३९)

अन्य अश्मरी का कारण ।

क्षतादिघातात् क्षतजं क्षयादाप्रकोपितं वस्ति गतं चिद्वदम् । तीव्रार्ति मूत्रेण महाल्पमल्पमायातितस्मिन्नतिसञ्चिते च ॥ आध्मानं तत्तां विन्दति गौरवश्च वस्तेर्लघुत्वञ्च निःसृतेऽस्मिन् ॥

अर्थ—मेट्ट के भीतर घाव होने से वस्ति में चोट लगने से, अथवा रक्तादि धातुओं के क्षीण होने से रक्तादि द्रव्यों को कुपित करके वस्ति में लेजाकर रोक देते हैं और तब अत्यन्त वेदना से युक्त होकर मूत्र के साथ धीरे धीरे बाहर निकलती हैं, और जो यह भीतर बहुत संचित होजाय तो वस्ति में आध्मान और भारापन होता है और जो निकलजाय तो हलकापन रहता है (गंगाधर शास्त्री ने 'महास्मरीवनायाति, की जगह "महास्मरीवनायाति" ऐसा पाठ किया है परन्तु प्रसंग विरुद्ध मान्य पड़ता है ॥

बावज मूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरुद्धवान् स्नेहोपनाशो रवास्ति सैकान् । स्थिरादिभिर्वातैरैन्दसिद्धान् युज्यात्सञ्चानिष्ठ मूत्रकृच्छ्रे ॥ पुनर्नैवेदयन्तु वातैर्ममः पत्तूरुद्ध्वीरवलाभमिष्टिः । द्विपञ्चलेन कुल्लयकोले चर्वन्चर्वापादुक्षि तैकपाये ॥ तैलेवरादमवमावृण्व दे रेवककैलेवर्वावमावृण्व ! दन्मावृण्व मातैरन्विषीव शुक्रान्विन्दन्तु

कृच्छ्रम् ॥

अर्थ—वातजमूत्रकृच्छ्रमें अम्यंजन, स्नेह, निरूहणवस्ति, स्नेहोपनाह, उत्तरवस्ति, परिपेक तथा शालिपर्णीसे आदि लेकर वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए मांसरसों का प्रयोग करें ॥ पुनर्नवा, ऐरण्ड, शतावरी, पत्तूर, वृश्चो, खरैटी, पाखानभेद, दशमूल, कुलथी, घेर, जौ इन सब के क्वाथ में इन्हीं का कल्क और पांचों नमक डालकर तेल, वराह की चर्बी, रीछकी चर्बी और घीको सिद्ध करें। इसका मात्रावत् सेवन करने से शूलान्वित वातज मूत्रकृच्छ्र शीघ्रही दूर होजाता है ॥ यहां गंगाधर शास्त्री यह लिखतेहैं कि पुनर्नवादि पहिले तीन द्रव्यों में उनही का कल्क और पांचोंनमक डालकर घी, वसाआदि सिद्ध करें ॥ दूसरा घृत पत्तूरादि चार द्रव्यों से करें ॥ तीसरा दशमूल में सिद्ध करें और चौथा कुलथादि शेष द्रव्योंमें करें ॥

एतानिचान्यानिवरीपधानि । सर्वाणि शस्तान्यापिचोपनाहे ॥ स्थुर्लाभतस्तैलफलानिचैवस्नेहाम्लयुक्तानिसुखोष्णवन्ति ॥

अर्थ—उपर कही हुई औषधें तथा अन्य उत्तम उत्तम औषधों को तैलफल (तिल व अलसी) स्नेह और अम्लद्रव्योंके साथ पीसकर गरम २ उपनाहमें प्रयोग करें ॥

पित्तजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ॥

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मोविधिर्वस्तिपयोविरेकाः ॥ द्राक्षाविदारीधुरसेधृतैश्च कृच्छ्रेषुपित्तमभवेपुकार्याः ॥ शतावरीकाशकुशाश्वद्वेष्टा विदारिशा-

लीक्षुकशेरुकाणाम् ॥ काथं सुशीतं मधुशर्कराभ्यां युक्तं पिवेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्री ॥ विवेत्कपायंकमलोत्पलानां शृंगाटका नामथवाचिदार्याः ॥ दण्डोत्पलानामथवापिमूलं पूर्वेणकल्केनतथासुशीतम् ॥ पर्वाखीजंत्रपुषातुलुमुम्भानसकुंभंस्यादृपकश्चपेयः ॥ द्राक्षारसेनाश्मरिशर्करासर्वेषुकृच्छ्रेषुप्रशस्तपः ॥ पर्वाखीजं मधुकंसदार्वं पैत्तिपिवेत्तण्डुलधावनेन ॥ दार्वीतथैवामलकीरसेन समाक्षि-

कापित्तकृतेतुकृच्छ्रे ॥

अर्थ—पित्तजमूत्रकृच्छ्र में सेक, अवगाह, शीतल प्रदेह, ग्रैष्मिक क्रिया, तथा दाख, विदारीकन्द का रस, ईखकारस और घृत द्वारा वस्ति प्रयोग, दूध और विरेचन देय ॥

सितावर, कांस, कुशा, गोखरू, विदारीकन्द, ईख और कसेरू इन के क्वाथ को ठंडा करके शहत और शर्करा मिलाकर पीने से पैत्तिकमूत्रकृच्छ्र अच्छा होजाता है ।

कमल और नीलकमल का काथ अथवा सिंघाडे का क्वाथ अथवा विदारीकन्द का काथ अथवा दंडोत्पलकी जड़का कपाय ठंडा होने पर शहत और चीनी डालकर पान करें । ककड़ी के बीज, खीराके बीज कसूम के बीज, कुंकुम और अहूसा इनको पीसकर दाख के रस के साथ सेवन करें तौ अश्मरी शर्करा तथा सय प्रकार के मूत्रकृच्छ्र दूर होजाते हैं । ककड़ी के बीज, मुलहदी और दारुहलदी इनको पीसकर तण्डुल जल के साथ पान करें । दारुहलदीको

पीसकर आंवले के रस के साथ शहत मिलाकर पीवें तौ पित्तज मूत्रकृच्छ्र दूर होजाता है ।

कफजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ।

सारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानंस्वेदोयवान्नं वमनं निरूहः । तक्रसतिक्तौषधसिद्ध तैलमभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ व्योपंश्व दंष्ट्राशुटिसारसास्थिकोलप्रमाणो मधुमूत्रयुक्तम् । पिवेत्तुटिंशौद्रयुतां कदल्यारसेन कंडूर्यरसेन वापि ॥ तत्रेण युक्तं सितमारकं स्पृचीजं पिवेत्कृच्छ्रविनाशहेतोः । पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णकफमूत्रकृच्छ्रे ॥ सप्तच्छदारग्वधकेभ्युक्कैलाधवं करञ्जकुटजं गुडचीम् । पक्त्वा जले तेन पिबेद्यवागूसिद्धं कफार्थं मधुसंयुतं वा ॥

अर्थ—कफज मूत्रकृच्छ्र में क्षार उष्ण और तीक्ष्ण औषध, उष्ण और तीक्ष्ण अन्नपान, स्वेदन, जौ का अन्न, वमन, निरूहण, तक्र तथा तिक्त औषधियों से सिद्ध किये हुए तेल का अभ्यंग और पान हित है । त्रिकुटा गोखरू, छोटी इलायची, कमलगट्टाकी मिर्गी इनको एक एक तोले लेकर शहत और गोमूत्र के साथ पान करें । अथवा छोटी इलायची और शहत को केला के रस के साथ अथवा केवटी मोथा के रस के साथ पान करें । कथवा शालिचक्रेवीजों को तक्र के साथ पान करें अथवा तंडुल जल के साथ मूंगा की भस्म को पान करें । सप्तपर्ण, बमलतास का गूदा, केवुक, छोटी इलायची, धव, कंजा, कुड़ा की छाल और गिलोय इन सबके काथमें यवागू सि-

द्ध कर के सेवन करें अथवा इन के कपाय में शहत डालकर पीवें ।

सान्निपातिकमूत्रकृच्छ्रमें चिकित्सा । सर्वत्रिदोषप्रभवे तु वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्यम् । त्रिभ्योऽधिके प्राग् वमनं कफे तु पित्ते विरेकः पवने तु वास्ति ॥

अर्थ—सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्रमें जो तीनों दोष समान हों तौ वायु को प्रधान समझकर चिकित्सा करें । यदि तीनों दोषोंमें कफकी अधिकता हो तौ प्रथम वमन करावे । पित्त की अधिकतामें विरेचन और वातकी अधिकता में वास्ति देवे ॥

क्रियाहितात्वश्मरि शर्कराभ्यां कृच्छ्रे यथैवेह कफानिलाभ्याम् । कफांशप्रनाभेदानि पातनाय विशेषयुक्तं शृणु कर्मसिद्धम् ॥

अर्थ—कफवात के मूत्रकृच्छ्र में जो जो चिकित्सा कही गई है वेही अशमरी और शर्करा में हित होती है अब कफजन्य अशमरी के टुकड़े करके निकालने के लिये जो विशेष युक्तियाँ हैं उनको वर्णन करते हैं ।

अशमरी में चिकित्सा ।

पापाणभेदं वृषकं श्वदंष्ट्रापाठाभयाव्योपशटीनिकुम्भाः । हिंसी खराश्वासितिमारकाभ्यामेवास्त्रकाणां त्रिपुपस्य वीजम् ॥ उत्कुञ्चिका हिं गुसवंतसाम्लं स्यादद्देहृत्योहपुपायचाच । चूर्णपिवेदश्मभिदा विपकं सर्पिश्च गोमूत्रचतुर्गुणनैः ॥

अर्थ—पाखान भेद, अहसा, गोखरू, पाठा, हरड, त्रिकुटा, कचूर, दन्ती, हिंसी खुरासानी अजवायन, शालिचदीन, ककड़ी

के तैलकी वस्ति देवै । जो जो चिकित्सा
पित्तजमूत्रकृच्छ्र में वर्णन की गई है वेही सब
रक्तज मूत्रकृच्छ्र में भी हित हैं ॥

मूत्रकृच्छ्रमें वर्जितकर्म ।

व्यायामसन्धारणशुष्करूक्ष पिष्टान्नवां
तार्ककरव्यवायान् ॥ खर्जूरशाल्कक
पित्तजम्बु विपंकपायं च रसं भजेन्ना ॥

अर्थ—व्यायाम, मलमूत्रादि वेगधारण,
शुष्क, रूक्ष, पिष्टान्न, वातसेवन, घूप, व्य-
वाय, खिजूर, शाल्कक, वैथ, जामन, विप
और कपाय रस ये सब उक्त रोगों में निषेध
किये गये हैं ॥

हृद्रोगकी उत्पत्तिका कारण ।

व्यायामतीक्ष्णातिविरेकवस्तिछर्द्यामसं-
धारणकर्षणानि । हृद्रोगकारीणितथा
भिघातः चिन्ताभयत्रासमदाभिचाराः ॥

अर्थ—व्यायाम, तीक्ष्णविरेचन, तीक्ष्ण-
वस्ति, वमन, मलवेग का रोकना, उपवा-
सादि कर्षण, अभिघात, चिन्ता, भय, त्रास,
मत्तता और अभिचार ये सब हृद्रोगों की
उत्पत्ति के कारण हैं ॥

हृद्रोगके उपद्रव ।

वैवर्ण्यमूर्च्छाज्वरकासहिक्काश्वासास्यवैर-
स्यतृपाः प्रमोहाः ॥ छर्दिः कफोत्क्लेशश्चो-
रुचिश्च हृद्रोगजाः स्युर्विविधास्तथान्ये ॥

अर्थ—हृद्रोग से विवर्णता, मूर्च्छा, ज्वर,
खासी, हिचंकी, श्वास, मुखका जायका
भिगडना, तृपा, प्रमोह, वमन, कफोत्क्लेश
वेदना, अरुचि तथा और भी ऐसेही बहुत
से अन्य उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

वातज हृद्रोगके विशेष लक्षण ॥

हृच्छून्यभावद्रवशोषभेद ।

स्तम्भः समोहः पवनाद्विशेषः ॥

अर्थ—वातज हृद्रोगमें हृदयमें शून्यता
धक धक, शोष, भेद, स्तम्भता और मोह
ये विशेष लक्षण होते हैं ॥

पित्तज हृद्रोग के लक्षण ॥

पित्तात्तमोद्यनदाहमोह ।

सन्त्रासतापज्वरपीतभावाः ॥

अर्थ—पित्तज हृद्रोगमें अन्धकार दिखाई
देना, ग्लानि, दाह, मोह, त्रास, सन्त्रास,
ज्वर और वस्तुओंका पीला दिखाई देना
ये लक्षण होते हैं ॥

कफज हृद्रोगके लक्षण ।

स्तब्धगुरुस्यात्स्तिमितश्चर्मम् ।

कफात्प्रसेकज्वरकासतन्द्राः ॥

अर्थ—कफज हृद्रोगमें स्तब्धता, भार-
पन, मर्ममें स्तिमिता, छालासाव, ज्वर, खासी
और तन्द्रा ये लक्षण होते हैं ॥

सान्निपातिक हृद्रोग के लक्षण ।

विद्यात्त्रिदोषत्वपिसर्वैर्लिङ्गं ।

तीव्रार्तिभेदं कृमिजंसकण्डूम् ॥

अर्थ—सान्निपातिक हृद्रोगमें तीनों दोषों
के लक्षण होते हैं तथा कृमिज हृद्रोग में
तमि वेदना, भेद और खुजली होती है ।

वातज हृद्रोग में चिकित्सा ।

तैलसर्पवीरकमस्तुतक्रवातेप्रपेयं लवण-
सुखोष्णम् । मूत्राम्बुसिद्धं लवणैश्च तैल-
मानाहगुल्मार्तिहृदामयघ्नम् ॥ पुनर्नैर्वा-
दारुसपश्चमूलारस्नायवान्बिल्वकुलत्थ

कोलम् ॥ पक्त्वा जले तेनाविपाच्य तैलमभ्य-
ङ्गपानेऽनिलहृद्दघ्नम् ॥

अर्थ—सीधीर, दही का तोड़ और मठा
इनके साथ तेल पीवै अथवा गोमूत्र और
जल के साथ नमकको सिद्ध करके सुहाता
हुआ गरम पीवै अथवा पांचों नमकके साथ
सिद्ध किया हुआ तेल पीवै । इसके पीने से
वातज हृद्रोग, आनाह और गुल्म दूर हो-
जाते हैं । सांठ, देवदारु, पंचमूल, रास्ना,
जौ, बेल की छाल, कुलथी और बेर इनका
कांथ करै, चौथाई शेष रहनेपर उतारकर
छान लेवै और इसमें तेल को पकाकर अ-
भ्यंग और पानमें प्रयुक्त करै तौ वातज हृ-
द्रोग जाता रहता है ॥

हरीतकीनागरपुष्कराह्वैर्यः कयस्थालव-
णैश्च कल्कैः । सर्दिगुभिः साधितमग्न्यस-
र्पिर्गुल्मे सदृत्पार्थ्वगदेऽनिलोत्थे ॥ सपु-
ष्कराह्वफलपूरमूलमहौषधं शत्र्यभयाच-
कल्काः । क्षाराम्बुसर्पिः लवणैर्विमिश्राः
स्युर्वातहृद्रोगविकर्तिकाघ्नाः ॥

अर्थ—हरड, सोंठ, पौहकरमूल, काकोली,
छोटी इलायची, सेंधानमक और हींग इन
के कल्कके साथ चौगुना जल चढ़ाकर घृत
पकावै, इस घृतके सेवन करनेसे वातज गुल्म
हृद्रोग और पसलीका दर्द दूर होजाता है ।
पौहकरमूल, विजौरे की जड़, सोंठ, कचूर,
हरड, इन सब का कल्क, जवाखार का
जल, घी और सेंधानमक इन सबको पका-
कर सेवन करने से वातज हृद्रोग और वि-
कर्तिका का नाश होजाता है ॥

काथः कृतः पौष्करमातलुङ्गपलाशभृतीक-
शटीमुराह्वैः । सशुण्ठ्याज्जाजीद्विवचाय-
मानिः सक्षारउष्णोलवणश्च पेयः ॥ पथ्या
शटीपुष्करपञ्चकोलान्समाहृतुं क्षायमके-
न कल्कः ॥ गुडप्रसन्नालवणैश्च भृष्टो हृत्-
पार्थ्वगुल्मोदरयोनिशूले ॥

अर्थ—पुष्करमूल, विजौरा, पलास, अ-
जवायन, कचूर, देवदारु इनका क्याथ कर
के इसमें सोंठ, कालाजीरा, दोप्रकार की
वच, अजवायन, जवाखार और नमक डाल
कर गरम गरम पीने से वातज हृद्रोग दूर
होजाते हैं ॥ हरड, कचूर, पौहकरमूल,
पंचकोल और विजौरा इनका कल्क इसमें
गुड, प्रसन्ना और नमक डालकर घी और
तेलमें भूनकर सेवन करने से हृत्शूल, पार्-
थ्वशूल, गुल्म, उदररोग और योनिशूल दूर
होजाते हैं ॥

त्र्यूपणादि घृत ।

स्यात्त्र्यूपणं द्वे त्रिफले सपाठे निदिग्धिका
गोधुरकावलेद्रे । ऋद्धिस्तुटिस्तामलकी
स्वगुतामेदेगधूकं मधुकं स्थिराच ॥ शता-
चरीजीवकपृश्निपर्ण्या द्रव्यैरिमेरक्षसमैः
सुपिष्टैः ॥ प्रस्थं घृतस्येह पचेद्विधिः प्रस्थे
नदध्रस्त्वथमाहिपस्य ॥ मात्रां पलं चार्द्धं
पलं पिचुम्बाप्रयोजयेन्माक्षिकसंयुक्तम्-
श्वासे सकासे त्वयपाण्डुरोरोगे हलीमके हृद्ग्र-
हणीमदापे ॥

अर्थ—त्रिकुटा, दोनों प्रकारकी त्रिफला
(एकहरड बड़ेडा, आंवला) दूसरी (दाख
गंमारी और फालसा) पाठा, कटेरी, गोखरू
बला, अतिगला, ऋद्धि, छोटी इलायची,

भूय आंवला, कैंच, मेदा, महामेदा, मुलहटी
शालिपर्णी, सितावर, जीवक और पृष्णिपर्णी
इन सब द्रव्योंको दो दो तोले लेकर महीन
पाँसले इस में भेंस का घी एक प्रस्थ और
दही एक प्रस्थ डालकर पाक करें । इस
घृतकी मात्रा बलके अनुसार एकपल आधा
पल वा एक तोला प्रतिदिन सेवन करनेसे
श्वास, खाँसी, पांडुरोग, हर्लमिक, हृद्रोग
और ग्रहणीदोष दूर होजाते हैं ।

पित्तजहृद्रोगमंचिकित्सा ।

शीताःप्रदेहाःपरिपेचनञ्च । तथाविरे
कोहृदिपित्तदुष्टे ॥ द्राक्षासिताक्षौद्रपरुष
कैः स्यात्शुद्धेतुपित्तापहमन्नपानम् ॥
यष्ट्याद्विक्रान्तिककरोहिणीभ्यां । क-
ल्कंपिवेच्चापिसिताजलेन ॥ क्षतेपुसर्पी
पिचतद्गुडाश्च ॥ येतेचशस्ताहृदिपित्त
दुष्टे ॥ दद्यात्भिषग्वन्वरसांश्चगव्य
क्षीराशिनाञ्चप्रसमीक्ष्यसम्यक् ॥

अर्थ— पित्तज हृद्रोग में शीतल प्रदेह
परिपेचन और विरेचन देना हित है । इस
तरह शुद्ध होनेपर दाख, मिश्री, शहत औ-
र फालसे के साथ अन्नपान दें । मु-
लहटी और कुटकी को घोटकर मिश्री
के जल में छानकर पीने से भी पित्तज हृ-
द्रोग दूर होजाते हैं । क्षतरोग में जो
जो घृत और गुड़ वर्णन किये हैं वे
सब रोगकी परीक्षा करके पित्तज हृद्रोगमें
भी हित हैं परन्तु इनके साथमें रोगी को
भयम्न मांसरस और गौके दूध का से-
वन कराता रहे ॥

द्राक्षाबलाश्रेयासिशर्कराभिःखर्जूरवीरर्षभ
कोत्पलैश्च । काकोलिमेदोयुगजीवकै-
श्चक्षीरेचसिद्धमहिपीघृतस्यात् ॥ कश्च
रुकाशैवलमृद्भवेरप्रपुण्डरीकमधुकं विस-
स्य । ग्रन्थिश्चसर्पिःपयसापचेत्तैःक्षौद्रा-
न्वितपित्तहृदामयघ्नम् ॥ स्थिरादिक
लैःपयसाचसिद्धद्राक्षारसेनेक्षुरसेनवापि
सर्पिर्हितंस्वादुफलेक्षुजाश्वरसाःमुशीताः
हृदिपित्तदुष्टे ॥

अर्थ— दाख, खरेटी, गजपीपल और
शर्करा । अथवा खिजूर, क्षीरकाकोली, ऋप-
भक और नीलकमल अथवा काकोली,
मेदा, महामेदा और जीवक इन तीन प्र-
योगों में से किसी एकके कल्कके साथ
गौके दूध में भेंस का घी सिद्ध करकेदेवें ।
कसेरु, शैवल, अदरस, पुंडरिया, मुलहटी,
कमलनाल की गांठ इन के कल्कको चौगु-
ने दूध में चटाकर इसके साथ घृतपाककर
के शहत मिलाकर सेवन करनेसे पित्तज
हृदयरोग शान्त होजातेहैं शालिपर्ण्यादि
के कल्क के साथ दूध में घृतको पकाकर
अथवा दाख के रस वा ईखके रसके साथ
पकाकर सेवन करना पित्तज हृदयरोग में
हित है अथवा द्राक्षादि मिष्टफलों का क्वा-
थ भी शीतल करने पर हित होता है ।

कफजहृद्रोग में चिकित्सा ।

स्विन्नस्यवान्नस्यविलिंघितस्यक्रियाकफ
घ्नीकफमर्मरोगे । कौलत्थधान्यैश्चरसै-
र्यवाग्नैःपानानितीक्ष्णानिचशर्कराणि ॥
मूत्रैश्चिताःकट्फलमृद्भवेरपीतदुग्धयाति-

विपाःभेदाः। कृष्णाशटीपुष्करमूलरा-
स्नावचाभयानागरचूर्णकश्चउदुम्बराश्च
त्थवटार्जुनाख्ये ॥ पलाशरोहीतकखा-
दिरचाकाथेत्रिभुतत्र्युपचूर्णसिद्धोलेहः

कफघ्नोऽसिशिराम्बुयुक्तः॥

अर्थ—कफजहृदय के रोगमें स्वेदन, वम-
न, और लघन क्रिया हित होती है । कु-
छधी और धनियेके क्वाथ के साथ जो की
रोटियां वा शर्कराके साथ तीक्ष्ण अन्नपान
सेवन कराना हित है । कायफल, अदरक, स-
रलकाष्ठ, हरड़, और अतीस इनको गौमूत्रमें
काथ करके छानकर पीये अथवा पीपल, कचूर
पुहकरमूल, रास्ना, वच, हरड़ और सोंठ इन सब
का चूर्ण बनाकर सेवन करें । मूलर, पीपल,
वट, अर्जुन, पलास, रोहेडा और खैरकी
लकड़ी इनका काथ कर के उसमें निसोथ
और त्रिफला का चूर्ण डालकर पकावे ।
इस लेहको गरमजल के साथ सेवन करने
से कफज हृद्रोग जाता रहता है ॥

सान्निपातिकहृद्रोगमें चिकित्सा ।

त्रिदोषजलघनमादितः स्यादन्नञ्चस-
र्वत्रहितविधेयम् । हीनातिमध्यत्वमेवेक्ष्य
चैव कार्यत्रयाणामपिकर्मशस्तम् ॥ भु-
क्तऽधिकञ्जीर्यतिशूलमल्पं जीर्णस्थि-
तंचेतसुरदारुहृष्टम् ॥ सतिल्वफण्डेलवणोवि-
टंगं उष्णाम्बुनासातिविपंपिवत्तः ॥
जत्वश्मजंवाभिपगममत्तः ॥ प्रयोजयेत्
कल्पविधानदृष्टम् ॥ मादयंतथागस्त्यम-
थापिलेह्रसायनं ब्राह्ममथामलक्याः ॥

अर्थ—सान्निपातिक हृद्रोग में प्रथमही

लघन कराके तीनों दोषों में कहे द्रव्य हित
पदार्थों का सेवन करावे । दोषोंकी हीनता
अधिकता और मध्यता देखकर ऐसी चि-
कित्सा करे जो तीनों दोषों में हित हो ।
जो हृद्रोग भोजन करतेही अधिक और
पचने के समय कम होतौ देवदारु कूठ,
लोघ, सैधानमक, संचरनमक, वाय-
विडंग और अतीस इनके चूर्ण को गरम
जल के साथ पीये । अथवा बहुत सावधानी
से कल्पविधानोक्त शिलाजतु रसायन, अ-
गस्त्यावलेह, ब्राह्मरसायन वा आमलकी रसा-
यन का प्रयोग करना चाहिये ॥

जीर्णेऽधिकेस्नेहनिरेचनं स्यात् फलैर्वि-
रेच्यो यदि जीर्यमाणे । त्रिपेवकालेप्यधि-
केतुशूले तीक्ष्णं हितं मूलविरेचनं स्यात् ॥

अर्थ....जो भोजन के पचने पर हृदय में
शूल अधिक हो तौ स्नेह विरेचन देवे ।
भोजन के पचने के काल में जो शूल हो तौ
फल विरेचन देवे और जो तीनों समय में
ही अर्थात् भोजनके करते ही, वा भोजन
पचने पर वा पाचनकाल में शूल अधिक
हो तौ तीक्ष्ण मूलविरेचन हित है ॥

क्रिमिजन्य हृद्रोग में चिकित्सा ।

प्रायोऽनिलोरुद्धगतिः प्रकृप्यत्यागा-
शयेशोधनमेव तस्मात् ॥ कार्यतथालघन-
पाचनञ्च सर्वक्रिमिघ्नं कृमिहृद्गद्रेच ॥

अर्थ—प्रायः वायुका मार्ग रुकने पर वह
आमाशय में जाकर रुधिर होजाती है इस
लिये प्रथम शोधन कर्म करे पीछे क्रिमिना-
शक लघन पाचन क्रिया करे । यह क्रिमि-
जन्य हृदयरोग की चिकित्सा है ।

पीनसरोग का निदान ।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाप्य क्रोध
तुवैपम्यशिरोऽभितापैः ॥ प्रजागराति
स्वपनाम्बुशीतैरवश्यमैथुनवाप्यधूमैः ॥
संस्त्यानदोपेशिरसिमृद्धोवायुःप्रतिश्या
यमुदीरयेत्तु ॥

अर्थ—मलमूत्रादि वेग संधारण, अजी-
र्ण, रज, अतिभापण, क्रोध, क्रतुवैपम्य,
शिरोऽभिताप, जागरण, अतिनिद्रा, शीतल
जलविहार, ओस, मैथुन, वाप्य और धूआं
इन सब कारणोंसे सिरमें अत्यन्त आर्द्रता
होतीहै और इसी कारणसे वायु वृद्धि पा-
कर प्रतिश्याय उत्पन्न करतीहै ।

वातज पीनस के लक्षण ।

घ्राणार्तितोदौर्भ्यधुर्जलाभः ।

स्त्राघोऽनिलात्सस्वरमूर्द्धरोगः ॥

अर्थ—वातज प्रतिश्यायमें नासिकामें अ-
र्ति और सुई भेदन के समान पीड़ा, सूजन,
जलेक समान नाक टपकना, स्वरभंग और
शिरमें दर्द ये लक्षण होते हैं ।

पित्तजपीनसके लक्षण ॥

नासाग्रपाकज्वरवक्त्रशोष ।

तृष्णोष्णपीतस्रवणानिपित्तात् ॥

अर्थ—पित्तज प्रतिश्याय में नासिका के
अग्रभाग का पाक, ज्वर, मुखमें सूखापन,
तृषा, गरम और पीलेरंग का स्त्राव होताहै ।

कफज पीनस के लक्षण ।

कामारुचिस्रावघनप्रसेकात् ।

कफाद्गुरुःस्रोतसिचापिकण्डूः ॥

अर्थ—कफज प्रतिश्यायमें खांसी अरु-

चि, स्त्राव, गादामवाद निकलना, स्रोतोम
भारापन और खुजली होतीहै ।

सांनिपातिकर्पनिस के लक्षण

सर्वाणिरूपाणितुसांनिपातात्

स्युःपीनसेतीव्ररुजेऽतिदुःखे ॥

अर्थ—सांनिपातिक प्रतिश्याय में तीनों
दोषों के लक्षण पाये जातेहैं, इसमें तीव्रवेद-
ना और कष्ट होता है ॥

प्रतिश्याय के दूषितहोने का कारण ।

सर्वोऽतिवृद्धाऽहितभोजनात्तु ।

दुष्टप्रतिश्यायउपेक्षितःस्यात् ॥

अर्थ—तीनों दोषों के अत्यन्त बढ़जाने
से, अहित भोजन करने से वा उपेक्षा कर
ने से प्रतिश्याय विगड़जाता है ।

दूषितप्रतिश्याय के लक्षण ।

ततश्चरोगाःक्ष्वधुःमनासाशोपःप्रतीना-
हपस्त्रिषौच । घ्राणास्यपूतित्वमपीनस
श्चसपाकशोधावुदपूरक्ताः ॥ अहंपि
मूत्रश्रवणाक्षिरोगखालित्यर्ह्यर्जुनलोम-
भावाः ॥ तृट्श्वासकासज्वररक्तपित्तवैस्व
र्यशोपाश्चततोभवन्ति । रोधाभिघात
स्रवशोपपाकैर्ग्राण्युतंयश्चनवेत्तिगन्धम्
दुर्गन्धिचास्यंवहुशःप्रकोपिदुष्टप्रतिश्याय
मुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—प्रतिश्याय (जुकाम) के विगड़
ने पर छींक, नाक का सूखना, प्रतीनाह
[नाकका रुकजाना] पारित्वाव, नाक
और मुख में दुर्गन्धि, अपीनस, नासापाक,
सूजन, अर्बुद, पीव, रक्त, कुस्तियां, मूत्रत्वा-
व, कर्णरोग, नेत्ररोग, खालित्य, रोमोंका पीला

वा सफेदहोना, तृषा, श्वास, खांसी, ज्वर, रक्तापित्त, स्वरभंग और शोष ये उपद्रव होते हैं । जिस रोग में नाक रुकजाती है, जिस में अभिघात, स्नायु, शोष और पाक होता है जिस में गंध का ज्ञान नहीं होता है और मुख में दुर्गंध होजाती है, यह बार बार कुपित होनेवाला दुष्ट प्रतिश्याय होता है ।

छींकका कारण ।

संस्पृश्यमर्माण्यनिलस्तुमूर्ध्नि ।

विश्वक्पथस्थः क्षवधुं करोति ॥

अर्थ—संपूर्णमर्माँ का स्पर्श करके मस्तक के समस्त मार्गों में स्थितवायु क्षवधुनामक रोग को उत्पन्न करती है ।

शोषका कारण ।

बलीतुसंशोष्यकफन्तुनासा ।

गृह्णाटकेघ्राणविशोषणं च ।

अर्थ—प्रबलहुई वायु कफ को सुखाकर नासिका के पुट और घ्राणमार्ग में शोष उत्पन्न करती है ॥

प्रतीनाहलक्षण ।

उच्छासामार्गन्तुकफः सवातो ।

रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—कफवायु से मिलकर जब श्वास के मार्ग को रोकलेता है तब उसे प्रतीनाह कहते हैं ॥

स्नायुकालक्षण ।

घ्राणाद्धनः पीतसितस्तनुर्वा ।

दोषः स्रवेत्स्नायुमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—नासिकासे जो गाढा, पीला, सफेद, अथवा पतला बिगड़ा हुआ मल निकलता है उसे स्नायु कहते हैं ।

अपीनसकालक्षण ।

योमस्तुलुङ्गाद्धनपीतपक्वः कफः स्रवेद्गाढमपीनसः सः ॥

अर्थ—मस्तक से जो घना, पट्टा पक्व और गाढा कफ निकलता है उसे अपीनस कहते हैं ।

पूतिनासाके लक्षण ।

वैवर्ण्यदैर्गन्ध्यमुपेक्षयात्तु ।

स्यात्पूतिनासंश्चयधुर्मथ ॥

अर्थ—इस रोगकी उपेक्षा करने से जो विवर्णता, दुर्गन्धि, सूजन और भ्रम होता है उसे पूतिनासा कहते हैं ।

घ्राणपाकका लक्षण ।

सदाहरागः श्वयधुः सपाकः ।

स्याद्घ्राणपाकोऽपिचरक्तपिचात् ।

अर्थ—जिस में दाह, राग, सूजन और पाक होता है उसे घ्राणपाक कहते हैं यह रक्तपित्त से भी होता है ।

नासाशोथ का हेतु ।

घ्राणाश्रितास्रकप्रभृतीन्प्रदूष्य ।

कुर्वन्तिनस्तः श्वयधुमलाश्च ॥

अर्थ—जववातादि दोष नासिकामें स्थित रक्तादि को दूषित करते हैं तब नासिका में सूजन होती है ।

अर्बुदका कारण ।

घ्राणेतथोच्छ्वासगार्तिनिरुद्ध्य ।

मांसास्रदोषादपिचार्बुदानि ॥

अर्थ—श्वास के रुक जाने से मांस और रक्त के दूषित होने से नासिका में अर्बुदरोग होता है ॥

पूयरक्त का कारण ।

घ्राणात्सूवेद्वाश्रवणान्मुखाद्वा ।

पित्ताक्तमसन्त्वपिपूयरक्तम् ॥

अर्थ....जो नाक, कान वा मुखसे पित्तयुक्त रक्तका स्राव होता है उसे पूयरक्त कहते हैं ।

अरुःका कारण ।

कुर्यात्सपित्तःपवनस्त्वमादीन् ।

मन्दूष्यचारुपिसपाकवन्ति ॥

अर्थ—पित्त से मिली हुई वायु त्वचा आदि को दूषित करके जो कुन्तियों को उत्पन्न करती है उसे अरुः कहते हैं ।

शिरोरोग का निदान ।

भृशार्तिशूलंस्फुरतीहवातात् । पित्तात्स-
दाहार्तिकफाद्गुरुःस्यात् ॥ सर्वस्त्रिदोष-
क्रिमिभिस्तुकण्ड दौर्गन्ध्यतोदात्तियु-
तंशिरःस्यात् ॥

अर्थ—वातज सिरके रोग में अत्यन्त वेदना, शूल और फडफटाहट होती है । पित्तज सिरके रोग में दाह और अस्ति होती है । कफके सिररोग में भारापन होता है । सान्निपातिक शिरोरोग में तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण होते हैं और क्रिमिजन्य शिरोरोग में खुजली, दुर्गन्धि, तोद और अ-
र्ति होती है ।

वातज मुखरोग का लक्षण ।

सुखामयेमारुतजेतुशोष कार्कश्यरौक्ष्या
णिचलारुजश्च ॥ कृष्णारुगंनिष्पन्नंमु-
शीतंमसंसनस्पन्दनतोदभेदाः ॥

अर्थ—वातज मुखरोग में शोष, कार्कशता, रुग्णता चलायमान वेदना, काला, लाल और

शीतल स्राव, प्रस्रमन, स्पन्दन, तोद और भेद ये उपद्रव होते हैं ॥

पित्तजमुख रोग का लक्षण :

तृष्णाज्वरस्फोटकतालुदाहा धूमायनं-
चाप्यवदीर्णताच ॥ पित्तात्समूर्च्छावि-
विधारुजश्च वर्णश्चशुक्रारुणवर्णवर्ज्याः

अर्थ—पित्तज मुखरोग में तृष्णा, ज्वर, स्फोटक, तालुदाह, धूआं सां घुनडना, फटना, मूर्च्छा, अनेक प्रकार की वेदना, तथा सफेद और लाल के अतिरिक्त और रंग होजाना । ये उपद्रव होते हैं ॥

कफज मुख रोग का लक्षण ।

कण्डूर्गुरुत्वंसितविज्जलत्वं स्नेहोरुचिर्जा-
ड्यकफप्रसेका । उत्क्लेशमन्दानिलताथ-
तन्द्रा रुजश्चमन्दाःकफवक्त्ररोगे ॥

अर्थ—कफज मुखरोग में खुजली, भारापन, सफेदाई, गिलगिलापन, चिकनाई, अरुचि, जडता, कफप्रसेक, उत्क्लेश, मन्दा-
ग्निता, तन्द्रा और मन्दवेदना होती है ॥

सान्निपातिक मुखरोगके लक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुक्वक्त्ररोगे ।

भवन्तियस्मिन्सतसर्वजःस्यात् ॥

अर्थ—जिसमें तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण पाये जाते हैं उसे त्रिदोषज मुखरोग कहते हैं ॥

मुखरोग के अन्य भेद ॥

संस्थानदूष्याकृतिनामभेदा चैतेचतुः
षष्टिविधाभवन्ति ॥ शालाक्यतन्त्रेविहि-
तानितीपां निमित्तरूपाकृतिभेदजानि ॥
अशून्यतार्थतुचतुर्विधस्य ॥

क्रियांभवक्ष्यामिमुखामयस्य॥

अर्थ—संस्थान, दृश्य, आकृति और नामभेद से मुखरोग चोसठ प्रकार के होते हैं। इनके विशेष २ हेतुरूप, आकृति और चिकित्सा शालाक्यतंत्र में सविस्तर वर्णन की गई हैं। कुछ वर्णन किये जाने के निमित्त इस जगह वातजादि चार प्रकार के मुखरोगों की चिकित्सा वर्णन की जायगी (इस ग्रन्थ में शालाक्यतंत्र नहीं है हमारे छोपे हुए सुश्रुतग्रन्थ में इन रोगों का वर्णन है)।

अरुचि के भेदः

वातादिभिःशोकभयातिलोभः।

क्रोधाद्यहृद्याशनगन्धरूपैः॥

अर्थ—अरुचि रोग वात, पित्त, कफ और सान्निपात के कारण उत्पन्न होने से चार प्रकार का है तथा इसका एक प्रकार और भी है कि वह शोक, भय अत्यन्त लोभ, क्रोध, तथा अहृद्य भोजन, राध और रूपादि दर्शन से होता है।

वातजरुचिके लक्षणः।

अरोचकःकर्कशशीतदन्तः।

कषायवक्त्रस्यमतोऽनिलेन॥

अर्थ—वातजरुचि में कर्कशता, दांतों में शीतलता और मुखमें कसालापन होता है।

पित्तजरुचि के लक्षणः।

कट्वम्लमुष्णं त्रिरसंचपूति॥

पित्तनविद्याल्लवणञ्चवक्त्रम्॥

अर्थ—पित्तजरुचि में मुख कड़वा, बड़ा, उष्ण, त्रिरस, दुर्गन्धयुक्त और भस्मीन होजाता है।

कफजरुचिके लक्षणः।

माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्ये।

विवन्धसंस्तम्भयुतं कफेन॥

अर्थ—कफजरुचि में मुख मीठा, गिला-गिला, भारी और शीतल होता है तथा विवन्धता और स्तम्भता भी होती है।

शोकादिजन्य अरुचिके लक्षणः

अरोचकेशोकभयातिलोभ क्रोधाद्यहृद्याशनगन्धजे स्यात्॥ स्वाभाविकञ्चास्य रसोरुचिश्च त्रिदोषजैर्नकारसम्भवेत्तु॥

अर्थ—शोक, भय, लोभ, क्रोध, अहृद्य भोजन और गन्ध आदि से जो अरुचि होती है उसमें मुखका रस स्वाभाविक होता है और त्रिदोषजरुचि में मुख का रस एक प्रकार का नहीं रहता है।

वातजरुचिरोगके लक्षणः।

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्यशोषः।

श्रावस्तनुश्चास्त्रवणञ्चवातात्॥

अर्थ—वातजरुचिरोग में कानों में नाद, वेदना, मूत्र का सूखजाना, पतला स्त्राव वा स्त्राव न होना ये लक्षण होते हैं।

पित्तजरुचिरोगके लक्षणः।

शोफःसरागोदरणं विदाहः॥

सर्पातपूतिसूचणश्चपित्तात्॥

अर्थ—पित्तजरुचिरोग में लालवर्ण की सूजन, दारुण, दाह और पीले रंगकी दुर्गन्धित पीव निकलती है।

कफजरुचिरोगके लक्षणः।

वैधृत्यकण्डूस्थिरशोफशुक्लः।

१ अश्रवणमिति गंगाधरः॥

स्निग्धाश्रुतिः श्लेष्मभवेऽल्परुच्य ॥

अर्थ—कफजकर्णरोग में सुनाई न देना खुजली, कड़ी सूजन सफेद और चिकना खाव तथा अल्पवेदना होती है ।

सान्निपातिकर्णरोगकेलक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात् ।

आवश्चतत्राधिकदोषवर्णः ।

अर्थ—त्रिदोषज कर्णरोग में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं तथा इस में स्राव दोष और वर्णकी अधिकता होती है ।

वातजनेत्ररोगकालक्षण ॥

अल्पस्रावमृशानुपदेहता च ।

प्रस्पन्दतोदातिरुजश्चवातात् ।

अर्थ—वातजनेत्ररोग के होने से आँखों में आंसुओं का न आना, लड़ाई का कम होना, कम लिप्तावट होना, फडकन, चक्का और तीव्र वेदना होती है ।

पित्तजनेत्ररोगकेलक्षण ॥

पित्तात्तुदाहातिरुजोऽतिरागाः ।

पीतोपदेहः सृग्मशोष्णमक्षु ॥

अर्थ—पित्तज नेत्र रोग में दाह, यातना वेदना, अत्यन्त लड़ाई पीतोपलिप्ता, बहुत और गरम आंसू ये लक्षण होते हैं ।

कफजनेत्ररोगकेलक्षण ।

शुक्लोपदेहो बहुपिच्छिलाक्षु ।

नेत्रस्य खेटाद्गुरुता स कण्डूः ॥

अर्थ—कफज नेत्ररोग में शुक्लोपलिप्ता बहुत और गिलगिले आंसू, गुरुता और खुजली होती है ।

सान्निपातिकनेत्ररोगकेलक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुसान्निपातान्ने-

त्रामयापणवतिस्तुभेदात् ॥

अर्थ—त्रिदोषज नेत्ररोग में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं । नेत्ररोग सब मिलकर छियानवें प्रकार के होते हैं ।

तेषामभिव्यक्तिरभिप्रदिष्टाशालाक्यतन्त्रेपुचिकित्सितश्च । पराधिकारे तु न त्रिस्तरोक्तिः शस्तेतितेनात्र न नः प्रयासः ॥

अर्थ—इन रोगों का विस्तार पूर्वक वर्णन शालाक्यतंत्र में है और चिकित्सा पराधिकार में विस्तारपूर्वक ठीक नहीं कहा गई है, इससे हमारा यहां प्रयास नहीं है ।

खालित्यनिदान ॥

तेजोऽनिलाद्यैः सह केशभूमिदग्ध्वाथुकुर्यत्स्वलतिनरस्य । किञ्चित्तु दग्ध्वापलिता निकुर्याद्धरिभभत्वं च शिरोरुहाणाम् ॥

इत्यूर्ध्वजत्रुत्यगदैकदेशः प्रोक्तश्चिकित्सा न्तु परां निबोध । विस्तारतः संग्रहतश्च सम्यग्यथाक्रमं समाम्योपयोच्यमानाम् ॥

अर्थ—वातादिक दोषों से मिलित होकर तेज केशभूमिकोजलाकर खालित्य (बालों का गिरना) रोगको उत्पन्न करता है और जो पूर्णरूप से केशभूमि दग्ध नहीं होती है तो सफेद वा हरे होजाते हैं ॥ जत्रुसे ऊपर होने वाले रोगों का वर्णन इस प्रकार से किया गया है अब हम संक्षेप और विस्तार से उनकी चिकित्सा का वर्णन करते हैं ॥

वातजपीनसमं चिकित्सा ।

वातात्मकासौ वैस्वर्ये स क्षारपीनसे घृतम् ॥ पिवेद्रसं पयोवोष्णः स्नेहिकधूममेव वा ॥

शताह्वात्वम्बलामूलशयोनाकैरण्डविल्वजम्
सारग्वधापिषेदात्तमधूच्छिष्टवसाघृतैः ॥
अथवासघृतान्सक्तून्कृत्वामल्लकसंपुटे॥
नवप्रतिशयावतांधूमवैद्यः प्रकल्पयेत् ॥
शंखमूर्धललाटतैपाणिस्वेदोपनाहनम् ॥
स्वभ्यक्तैश्वधुसावरोधादौसङ्करादयः ॥

प्रेयाश्चरोहिपाजाजीवचातकारिचोरकाः
त्वक्पत्रमरिचैलानांचूर्णावासोपकुञ्चिकाः

अर्थ—वातज पीनसमें खांसी और स्वर-
रमंग होनेपर जवाखार मिलाहुआघी, मांस
रस, गरमदूध वा स्निग्ध धूमपान हित है॥
अथवा सोंफ, दाढचीनी खरैटीकी जड़,
श्यानाक, अरंडीकी जड़ और वेलकी छात्र
और अमलतास इनको पीस कर मोम
चर्बी और घी में सान कर वती बना कर
धूमपान करै ॥ अथवा नवीन प्रतिश्याय में
घी और जौका सत्तू इनको चिलम में धर
कर पीवै । कनपटी, मूर्द्धा और ललाट में
वेदनी होनेपर हाथोंको गरम करै और ग-
रम उपनाह अर्थात् पुलसट बांधै । जो
छींक वा नाकका बहना बन्द होजाय तौ
शरीर पर अच्छी तरह से तैलादि मर्दन
करके शंकरस्वेद देवै । अथवा रोहिपतृण,
कालाजीरा, वच, तर्कारी और चोरक इन
को पीसकर सूँधै अथवा दाढचीनी, तेज-
पात, कालीमिरच, छोटी इलायची और
जीरा इनके चूर्णको सूँधै ।

तैलप्रयोग ।

स्रोतःशृङ्गाटनासाक्षिशोषेतैलसनावनम्॥
प्रभाव्याजेतिलान्क्षीरेतेन पिष्टांस्तदूष्म-

णा । मन्दस्विन्नानसयप्याहचूर्णास्ते
नैवपीडयेत् ॥ दशमूलस्यनिष्काधेरास्ना
मधुककलकवत् । सिद्धंससैन्धवंतैलं दशकृ
त्याणुतत्स्मृतम् ॥ स्निग्धस्यास्थापनैर्दो-
पनिर्हरेद्वातपीनसे ।

अर्थ—स्रोत, नासापुट, नासिका और
आँखों में शोष होनेपर नाँचे लिखेहुए तैल
की नस्य देवै । यथा—तिलों को बकरी के
दूधकी भावना देकर बकरीके दूधमें ही
तिलोंको पीसलेवै और एक हांडी में दूध
भरकर उसपर एक कपडा ढककर उसपर
उस पिम्हीहुई लुगदीको रखदेवै और हाँटी
के नाँचे आग जलावै जिससे दूधकी गरमाई
से तिल सँज जायंगे । फिर उसमें मुल्ह-
टी का चूर्ण मिलाकर ऊपरवाले दूध मेंही
उसे निचोड़ लेवै । इसको दशमूल के
काथमें पकावै और इसमें रास्ना, मुल्हटी
और सेंधानमक डालकर पकावै । इसतरह
दशवार सिद्ध करने से अणुतैल सिद्ध हो-
ताहै रोगी को प्रथम आस्थापन देकर स्निग्ध
करै फिर वातज पीनस में उक्त तैल की
नस्य देवै ॥

स्निग्धाम्लोष्णैश्चलघ्वन्नग्राभ्यादीनां
सैर्हितम् ॥ उष्णाम्बुनास्नानपानश्चानिवा
तोष्णप्रतिश्रयः । चिन्ताव्यायामवाक्चे
ष्टाव्यवायविरतोभवेत् ॥ वातजेपीनसेधी
मानिच्छन्नेवात्मनोहितम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, अम्ल और उष्ण ग्राम्य
जीवोंके मांसरस के साथ लघु अन्न देवै ।
स्नान करने में और पीने में उष्ण जलना

मायूर घृत ।

दशमूलवलारास्नात्रिफलामधुकैः सह ।
मयूरपक्षपित्तान्नशकृत्तुण्डाग्निवर्जितम् ॥
जलेपकत्वाघृतप्रस्थतस्मिन्क्षीरसमं पचेत् ।
मधुरैः कार्पिकैः कल्कशिरोरोगार्दितः पिवेत् ॥
कर्णाक्षिनासिकाजिह्वातालवास्पगलरोगनु-
त् । मायूरमिति विख्यातमूर्ध्वजन्तुगदापहम् ।

अर्थ—दशमूल, खरंटी, रास्ना, त्रिफला और मुलहठी तथा मोर के (पंख, पित्ता, आंत, वीट, चोंच और उंगलियों को छोड़ कर) मांस, रक्तादि इन सबका काथ कर के एक प्रस्थ घी और उतनाही दूध तथा जीवनीय औषधियों का कल्क एक एक कर्प डालकर पकावै । इस घृतके पीनेसे सिर के रोग, कानके रोग, आंखके रोग नाक के रोग, जिह्वा के रोग, तालु के रोग, मुख के रोग और गले के रोग दूर होजातेहैं । यह ऊर्ध्वजन्तुगदनाशक मायूरनामक घृत है ।

महामायूर घृत ।

एतेनैवकपायेणघृतप्रस्थाविपाचयेत् । च-
तुर्गुणेनदुग्धेनकल्कैरेभिश्चकार्पिकैः ॥ जी-
वन्तीत्रिफलामेदामधुकाद्विपरुषकैः । स-
मंगाचविकाभार्गाकाश्मरीसुरदारुभिः ।
आत्मगुप्तामहामेदातालखर्जूरमस्तकैः ।
मृणालविसशालकम्बुजीवीकपद्मकैः ॥
शतावरीविदारीक्षुवृहतीशारिवायुगैः ॥
मूर्वाश्वदंष्ट्रपभक्षृङ्गाटककंदोरकैः ॥ रा-
स्नास्थिरातामलकीमूक्षैलाशटीपुष्करैः
पुनर्नवातुगीक्षीरीकाकोलीधन्वयांसकैः
मधूकाक्षोदवाताममुज्जाताभिपुकरपि ।

द्रव्यैरेभिर्वयात्ताभंपूर्वकल्केनसाधितम् ॥
तत्पक्वनावनेऽभ्यंगेपानेवस्तौप्रयोजयेत् ।
शिरोरोगेषुसर्वेषुकासेश्वासचदारुणे ॥
मन्यापृष्टग्रहेशोपेस्वरभेदेतथादिते ॥ यो-
न्यसृक्शुक्रदोषेषुशस्तेवन्ध्यामृतप्रदम् ॥
ऋतुस्नातातथानारीपीत्वापुत्रं प्रजायते ॥
महामायूरमित्येतद्घृतमात्रेयपूजितम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त कपाय के साथ एक प्रस्थ घी चारप्रस्थ दूध और नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क एक एक कर्प डाल कर पकावै, यथा जीवन्ती, त्रिफला, मेदा, ऋद्धि, फालसा, समंगा, चव्य, भाडंगी, खमारी, दे-
यदारु, कैचकेवीज, महामेदा, ताल, खजूर, मृणाल, कमलकीगांठ, शालक, काकडासींगी, जी-
वक, पद्माख, सितावर, विदारीकन्द, ईख, बड़ी कटेरी, दोनों शारिवा, मरोडफली, गोखरू, ऋपभक, सिंचाडा, कसेरू, रास्ना, शालिप-
णी, भूय आंवला, छोटी इलायची, शठी, पु-
ष्कर मूल, सांट बंशलोचन, काकोली ज-
वासा, मुलहठी, अखरोट, बादाम, मुंजात, पिस्ता इन द्रव्योंमें से जितने मिलसकें उ-
नको पूर्वोक्त कल्कके साथ पकावै। इसघृतको नस्य, अभ्यंग, पान और वस्तिद्वारा प्रयोग करे इसके प्रयोग से सम्पूर्ण प्रकारके शिरोरो-
ग-दारुण खांसी और श्वास, मन्यग्रह, पृ-
ष्टग्रह, शोष, स्वरभेद, अर्दितरोग, योनिरोग, रक्तदोष शुक्रदोष, दूर होजातेहैं । इसके से-
वन से बन्ध्या स्त्री के पुत्र होता है । ऋतु-
स्नान करके जो स्त्री इसे पीतीहै उसके पुत्र होता है । इसकी भगवान् आत्रेय ने

महामायूरघृत नामसे प्रशंसा की है ।

आखुभिःकुक्कुटैर्हंसैःशैश्यापिहिवृद्धिमान
कल्केनानेनविपचेत्सर्पिरुध्वगदापहम् ॥

अर्थ....पूर्वोक्त रीति के अनुसारही मयूर
मांस की जगह चूहे, हंस मुर्गे वा खगोश
का मांस इस कल्क के साथ घृत पकाकर
सेवन करना ऊर्ध्वजत्रुरोगों को दूर करताहै

पित्तजशिरोरोगमैचिकित्सा ।

पैत्तेघृतंपयःसेकाःशीतालेपाःसनावनाः।
जीवनीयानिसर्पापिपानान्नंचापिपित्तनु
त् ॥ चन्दनोशीरयष्ट्याहवलाव्याघ्रन
खोत्पलैः । क्षीरपिष्टैःप्रदेहःस्यात्शृतैर्वा
परिपेचनम् ॥ त्वक्पत्रशर्कराकल्कःसुपि
ष्टस्तंडुलाम्बुना । कायोंऽत्रपीडःसर्पिश्च
नस्यंतत्स्यात्तुपैत्तिके ॥ यष्ट्याहचन्द
नानन्नाक्षीरसिद्धंघृतंशुभम् । नावनंशर्क
राद्राक्षामधुकैर्वापिपित्तजे ॥

अर्थ—पित्तज शिरोरोगमें घृत, दूध, शी-
तल परिपेक, शीतल लेप, नस्य, जीवनीय
गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत तथा पित्तना-
शक अन्नपान को सेवन करना चाहिये ।
रक्त चन्दन, खस, मुलहठी, खैरटी, बघन-
रवा, नीलकमल इन सबको दूधके साथ पी-
सकर सिरपर लेपकरै अथवा इनका क्वाथ
करके सिरपर परिपेक करै । अथवा दालची-
नी, तेजपात और शर्करा इनको तडुंलज-
ल के साथ पीसकर नाकमें निचोड़ै ऊपर
से घृतकी नस्य लेवै । अथवा मुलहठी,
चन्दन, अनन्तमूल इनके कल्कको दूध और
घी में पाक करके इस घृत की नस्य देवै ।

इसी तरह से शर्करा, मुलहठी और दाख इन
में दूध के साथ घृत पकाकर नस्य देवै ।
इससे पित्तज शिरोरोग शान्त होजाते हैं ।

कफजशिरोरोगकीचिकित्सा ।

कफजेस्वेदितंधूमनस्यप्रथमनादिभिः ।
शुद्धंमलेपपानान्नैःकफघ्नैःसमुपाचरेत् ॥
पुराणसर्पिपःपानस्तीक्ष्णैर्वस्तिभिरंवचा
कफानिलोत्थितेदाहःशेषयोरक्तमोक्षणम्

अर्थ—कफज शिरोरोगमें स्वेदन करके
धूम, नस्य और प्रथमन आदिक प्रयोगों
से शुद्ध हुए मनुष्यको कफनाशक प्रलेप
तथा अन्नपानका सेवन करावै, कफवातज
शिर के रोगमें पुराने घृतका पान कराना
और तीक्ष्ण वस्तियोंका प्रयोग श्रेष्ठ है शेष-
दोनों अर्थात् सान्निपातिक और क्रिमिज हृ-
द्रोगों में फस्त खोलना हित है ।

उत्तररोगोंकीचिकित्सा ।

एरण्डनलदक्षौमगुगुल्वगुरुचन्दनैः ।
धूमवर्तिःपिवेद्दन्धैःसकुष्ठतगरैस्तथा ॥
सन्निपातभवेकार्यासन्निपातहिताक्रिया ।
क्रिमिजेचैवकर्त्तव्यंतीक्ष्णमूर्द्धविरेचनम् ।
त्वङ्मधूकोनखोदन्तीविडङ्गनवमालिका
अपामार्गफलंवीजंनक्तमालागिरीपयोः ।
क्षवयोश्मन्तकोविल्वंहरिद्राहिङ्गयूथिका
फणिज्झकयुतैस्तैलमाविमूत्रेचतुर्गुणे ।
सिद्धंस्यान्नावनंचूर्णैश्चैषांप्रथमनंभवेत् ॥
फलंशिशुकरज्जाभ्यांसव्योपंचावपीडक-
म् । कपायारुघराःक्षारचूर्णौकल्कोऽत्र
पीडकः ॥

अर्थ—भरंडकी जड़, खस, गुंगल, अमर,

होनेपर भोजन के पीछे घृतपान करें। इस में नस्य तथा मधुर स्निग्ध और शीतल मांसरस भी हित है। मुखपाक में शिराकर्म शिरोविरेचन और काय विरेचन देवै तथा गोमूत्र, तेल, घी, शहत और दूध के साथ कवलग्रह भी उत्तम है। मुखपाक में त्रिकला पाटा, दाख, चमेली के पत्ते इनके क्याध में शहत डालकर अथवा कपाय और तिक्त शीतल काथ भी मुखके धोने में उत्तम है॥

खदिरादिवटिका ।

तुलांखदिरसारस्याद्विगुणामरिमेदसः ॥
प्रक्षाल्यजर्जरीकृत्यचतुर्द्वेणैऽम्भसःपचेत्
द्रोणशेषकपायन्तंप्रत्वाभूयःपचेच्छनैः ॥
ततस्तस्मिन्वनीभूतेचूर्णीकृत्याक्षभागि-
कम् । चन्दनंपत्रकोशीरंमञ्जिष्ठाधातकी
घनम् ॥ प्रपुण्डरीकंप्प्याहृत्वगेलापत्रके-
शरमूलाक्षारसाञ्जनंमांसीत्रिकलालोघ्र
वालकम् ॥ रज्ज्याफलनीमेलोसमर्णाकटफ
लंबचाम् । यवासारुपत्तद्गैरिकाञ्जनमा
वपेत् । लवंगनखककोलजातिकोशान्पलो
न्मिताना कर्पूरकुडवंचापिपुनःशीतेऽवता
रिते ॥ ततस्तुगुलिकाःकार्याः शृङ्गाश्चा-
स्येनधारयेत् । तैलंचानेनकल्केनकपाये
णचसाधयेत् ॥ दन्तानांचलनंभ्रंशंशौपि
र्यक्रिमिरोगनुत् । मुखपाकास्यदौर्गन्ध्य
जाड्यारोचकनाशनम् ॥ स्रावोपलेप
पैच्छिल्ययैस्वर्यगलरोगनुत् ॥ दन्तास्य
गलरोगेषुसर्वेषां तत्परायणम् ।

अर्थ—सफेद खैरसार एक तुला, विट
खैर दो तुला इनको अच्छी तरह धोकर

कूट लेवें और फिर इस सबको चार द्रोण
जल में चढ़ाकर पकावें जब एक द्रोण जल
रहजाय तब इसे छानकर छने हुए को
फिर धीरे २ पकावै । इसतरह पकते पक-
ते जब गाढ़ा पड़जाय तब इसमें निम्न लि-
खित द्रव्यों को दो दो तोले लेकर चूर्ण
करके मिलादेवै । द्रव्य यथा—रक्तचन्दन,
पद्माख, खस, मजीठ, धायके फूल, मोथा,
पुंडरिया, मुलहठी, दालचीनी, इलायची,
तेजपात, केसर, लाख, रसौत, जटामांसी,
त्रिकला, लोध, नेत्रवाला, दोनों हल्दी,
प्रियंगु, बड़ी इलायची, लज्जालू, कायफल,
वच, जवासा, अगर, पतंग, गेरू, और अं-
जन ये द्रव्य डाले फिर शीतल होनेपर
अग्नि के ऊपर से उतारकर लोंग, नखी,
ककोल और जावित्री एक एक पल डाले
और एक कुडव कपूर गेरू । फिर इसकी
गोलियां बनाकर सुखालेवै । एक एक गोली
मुख में डालता रहे । अथवा इन्हीं द्रव्यों
के कल्क और कपाय में तेल को पकाकर
मुख में धारण करें । इन प्रयोगों से दांतों
का हिलना, टूटना, छिद्र होजाना, कीड़े
लगना, मुखपाक, मुखदुर्गन्ध, जड़ता, अ-
रुचि, स्राव, उपलेप, पिच्छिलता, विस्वरता
और गलरोग दूर होजाते हैं । दांत और
गले के जितने रोग हैं वे सब इस से दूर
होजाते हैं ।

अरोचकचिकित्सा ।

अरुचौकवलग्राहाधूमाःसमुखधावनाः ॥
मनोऽन्नपानान्बर्हर्षणाश्वासनानिच ।

अर्थ—अरुचिरोगमें कवलग्रह, धूमपान, मुखधावन, मनोज्ञ अन्नपान, हर्षण और आश्वासन कर्त्तव्य हैं ।

कवलग्रहके चारप्रयोग ।

कुट्सौवर्चलाजाजीशर्करामरिचंविडम् ॥
धात्र्येलापन्नकोशीरपिप्पल्युत्पलचन्दनम्
लोध्रंतेजोवतीपथ्यात्र्यूपणंसयवाग्रजम् ॥
आर्द्रादाडिमानिर्यासाश्चाजाजीशर्करायुतः
सतैलमाक्षिकास्त्वेतेचत्वारःकवलग्रहाः ॥
चतुरोरोचकामूहन्धुर्वाताद्येकजसर्वजान् ॥

अर्थ—(१) कूठ, संचरनमक, कालाजीरा, शर्करा, कालीमिरच, विडनमक । [२]

आंवला, छोटी इलायची, पन्नाख, खस, पीपल, नीलकमल और चन्दन [३] लोध, चव्य, हरड, त्रिकुटा और जवाखार [४] अदरख और अनारका रस, कालाजीरा और शर्करा ये चार प्रकार के कवलग्रह तेल और शहत मिलाकर सेवन करने से वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज अरुचिको क्रमसे दूर करते हैं ।

कारवीमरिचाजाजीद्राक्षाम्लदाडि-
मम् । सौवर्चलंगुडंक्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम्
वस्तिंसमीरणेपित्तेविरेकं वमनं कफे ॥
कुर्याद्दृष्ट्यानुकूलानि हर्षणं च मनोघ्नजे ।

अर्थ—कालाजीरा, कालीमिरच, दूसरा जीरा, दाख, वृक्षाम्ल दाडिम, संचलनमक गुड और शहत इन सब को समान समान भाग मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार की अरुचि दूर हो जाती है । वातज अरुचि में वस्तिप्रयोग, पित्तज में विरेचन और कफज में वमन करावे । एवं मन के विकार

से उत्पन्न हुई अरुचि में हृदय प्रिय और मनोनुकूल हर्षणादि किया करे ।

वातज स्वर भेदकी चिकित्सा ।

सर्पौप्युपरिभक्तानिस्वरभेदेऽनिलात्मके ॥
तैलैश्चतुष्प्रयोगश्चवलारास्नामृताह्वयैः ॥
वर्हिततिरिदक्षणाणां पञ्चमूलशृतानुरसान् ॥
मायूरक्षीरसर्पिर्वापिवेत्र्यूपणमेववा ॥

अर्थ—वातात्मक स्वर भेदमें भोजन के पीछे घृतपान करना चाहिये । इस में बला तैल, रास्ना तैल, गुरुचीतैल, तथा क्वाथ, चूर्ण, लेह और कवल ये चार प्रकार के प्रयोग करना उचित है । पंचमूल के क्वाथ के साथ सिद्ध किये हुए मोर, तीतर और मुर्गे का मांस रस पान करे अथवा मायूर क्षीर, मायूर सर्पि वा त्रिकुटादि घृत का सेवन हित है ।

पित्तज स्वर भेद की चिकित्सा ।

पैत्तिकैतुविरेकस्यात्पयस्तुमधुरैः शृतम् ॥
सर्पिर्गुडावृतांतिक्तजीवनीयं घृतपस्य च ।

अर्थ—पित्तात्मक स्वरभेद में विरेचन, मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ दुग्ध सर्पिर्गुड, तिक्त घृत, जीवनीय घृत, और वासावृत हित है ॥

कफज स्वर भेद में चिकित्सा ।

कफजस्वरभेदे तु तीक्ष्णमूर्द्धविरेचनम् ॥ वि-
रेको वमनं धूमपानं कटुसेवनम् । चव्य
भाग्यभयाव्योपक्षारमाक्षिकचित्रकान् ॥
लिह्याद्वापिप्पलीपथ्ये तीक्ष्णमथं पिवेच्च सः ॥

अर्थ—कफात्मक स्वरभेद में तीक्ष्णशिरो-
विरेचन, वमन, धूमपान, यवान्न, कटुद्रव्य

सेवन उचित है। चय्य भाङ्गी, हरड़, त्रिबु-
टा, जवाखार शहत और चांता इनको ले-
हन करे अथवा पीपल और हरड़ का शह-
त के साथ चांटे अथवा तोंकण मद्यपानकरे।

रक्तजस्वरभेदकीचिकित्सा ।

रक्तजस्वरभेदेतुसघृताजांगलारसाः ॥

द्राक्षाविदारीशुरसाःसघृतसौद्रशकराः ॥

**यच्चोक्तत्रयकासघ्नतत्त्वसर्वचिकित्सित-
म् ॥ पित्तजस्वरभेदग्रंशिरावेधश्चरक्तजे।**

अर्थ—रक्तजस्वर भेद में घृत सहित
जांगलमांसरस देवे। दाखविदारीकन्द और
ईख का रस घी, शहत और चीनी मिला-
कर दवे तथा क्षयकास में जो जो चिकित्सा
कही गई है वह भी सब हित हैं। इसरोग
में पित्तजस्वर भेद नाशक चिकित्सा और
गिरावेध कराना भी हित है ॥

सन्निपातजस्वरभेदकीचिकित्सा ॥

सन्निपातेहिताःसर्वाःक्रियाननुशिरोविधिः

अर्थ....सिराव्यधन, को छोड़कर और
सब चिकित्सा सन्निपातज स्वरभेद में उप-
योगी होती हैं ॥

कर्णरोग में चिकित्साविधि।

कर्णशूलेतुचातन्नीहितापीनसवत्क्रिया॥

**प्रदेहःपूरणंनस्यपाकसावेग्रणक्रियाःभोज्या
निचयथादोषंकुयान्निहन्तिचपूरणान् ॥**

अर्थ—कर्णशूल में पीनस के सदृश वात
नाशनी क्रिया हित होती है। इसमें प्रदेह
तेल से पूरण और नस्य भी देना उचित है
कर्णपाक अथवा कर्णक्षय में व्रण के स-
मान क्रिया की जाती है ॥ दोष के अनुसार

कर्णरोग में भोजन तथा कर्णपूरण और
स्नेह हितकर होते हैं।

कर्णपूरणप्रयोग ।

हिंमुतुम्युरुशुण्ठीभिस्तैस्तैलंसापंपचत् ॥

एतद्विपूरणंश्रेष्ठंकर्णशूलनिवारणम् ॥

अर्थ—होंग, धनियाँ और सोंठ डालकर
सरसोंका तेल पकाकर कान में डाले। यह
कर्णशूल के दूर करने में उत्तम है।

देवदारुचचाशुण्ठीशताहकुट्टसैन्धवः ॥

तैलंसिद्धवस्तमूत्रकर्णशूलनिवारणम् ॥

अर्थ—देवदारु, वच, सोंठ, सोंफ, कूट
सैधानमक और बकरे का मूत्र इन में सिद्ध
किया हुआ तेल कर्णशूलको दूर करता है।

चराटकानसमावृत्यदहतेपृश्नाजनेनवे ।

तद्भस्मच्योतयेत्तेनगन्धतैलंविपाचयेत् ॥

रसाब्जनस्यशुण्ठ्याश्चकल्काभ्यांकर्ण-

शूलनुत् ॥

अर्थ—पीली कौड़ी लाकर उन्हें मिट्टी के
एक नये पात्र में जला लेवे। इस भस्म को
चौगुने जल में साधित करे। इस जल में
सुगंधित तेल पकावे और इसमें रसोत और
सोंठ पीसकर डाल देवे। इस तेल को कान
में डालने से कर्णशूल जाता रहता है ॥

क्षार तैल ।

शुष्कमूलकशुण्ठीनांक्षारोहिंमुमहौपधम्।

शतपुष्पावचाकुट्टंदासशिमुस्ताब्जनम्।

सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम्।

भूर्जग्रन्थिविडमुस्तंमधुशुक्तचतुर्गुणम् ।

रसश्चमातुल्यस्यकदल्यारसएवच । र.

वैरैतैर्यथोद्भिष्टैःक्षारस्तैलंविपाचयेत् ॥ वा

धियर्कर्णनादश्चपूयस्तावश्चदारुणः॥ क्रि-
मयःकर्णशूलश्चपूरणादस्यनश्याति ॥ मु-
खकर्णाक्षिरोगेषुयथोक्तपीनसेविधिम् ॥
कुर्याद्विष्वक्समीक्ष्यादौदोषकालबलाव-
लम् ॥

अर्थ—सूखी मूली और सोंठ का खार,
हींग, सोंठ, सोंफ, वच, कूठ, दारुहलदी, स-
हजनेकी छाल, रसौत, संचल नमक, जवा-
खार सजीखार, उद्विद नमक, सेंधानमक,
भूर्जमन्थि, विडनमक और मोथा, इन सब
का समान भाग कल्क और उससे चौगुना
शहतका शुक्त*इतनाही विजौरे का रस, इत-
नाही कदली का रस और चौथाई तैल डा-
लकर पकावै । इस तेल को कान में डाल-
ने से बहरापन, कर्णनाद, दारुण पूयस्ताव,
क्रिमि, कर्णशूल दूर होजाते हैं । वैद्यकी
उचित है कि रोगी के दोष काल और ब-
लावल को देखकर मुखरोग, कर्णरोग और
नेत्र रोगों में भी इसका प्रयोग करै ॥

नेत्ररोग में चिकित्सा क्रम ।

नेत्ररोगेसमुत्पन्नेतरुणेतुविडालकः । का-
र्योदाहोपदेहास्तुशोफरागानिवारणः ॥

अर्थ—नेत्ररोग के उत्पन्न होने परही
विडालक नाम लेप करनेसे जलन उपलसित

*:—शहत का शुक्त अर्थात् सिर का
पनाने की यह रीति है कि विजौरे का रस
एक प्रस्थ, शहत एक कुडव, पीपल पिसी-
हुई एक पल इन सबको मिलाकर शहत के
वर्तन में भरकर एक महीने तक धान के
टेर में गाड़देवै ॥

ता, सूजन और ललाई दूर होजाती है ॥

दोपानुसारनेत्रचिकित्सा ॥

नागरसैन्धवसार्पमण्डेनचरसक्रिया । नि-
घृष्टवातिकेतद्वन्मुस्तसैन्धवगैरिकम् ॥ त-
थाशावरकरोर्ध्वतुक्ताविडालकः । का-
र्याहरीतकीतद्वत्तुष्टभृष्टारुजापहा । वै-
क्तिकेचन्दनानन्तामज्जिष्ठाभिषिडालकः
कार्यःपद्मकयष्ट्याहर्मासीकालीयकैस्त-
था गैरिकसैन्धवमुस्तरोचनासारसक्रि-
या । कफेकार्यस्तथाक्षौद्रप्रियंगुसमनःशि-
लम् ॥ सन्निपातेतुसर्वैःस्याद्द्विहरिक्षिपले
पनम्पक्ष्मण्यस्पृश्यताकार्यैस्तम्पकेत्वञ्ज-
नंन्यदात् ॥

अर्थ—सोंठ और सेंधानमक समानभाग
लेकर घी में सानले । और इसी तरह से
मोथा, सेंधानमक और गेरू इनको घी में
सानले । इन दोनों प्रयोगोंको वातज नेत्र
रोग में रसक्रिया के अनुसार उपयोग में
लावै । इसीतरह पठानी लोध को घी में
सानकर अथवा हरड के कल्क को घी में
तप्त करके विडालक देवै । पित्तज नेत्ररोग
में रक्तचन्दन, अनन्तमूल और मजीठ का
विडालक देवै अथवा पन्नाख, मुलहटी, ज-
टामासी और पीतचन्दन का विडालक दे-
वै । और गेरू, सेंधानमक, मोथा और गो-
रोचन इनकी रसक्रिया करै । कफजनेत्र रो-
ग में शहत, प्रियंगु और मनसिल का वि-
डालक देवै । सान्निपातिक नेत्ररोग में ती-
नों दोषों की कहींहुई औषधियों का आँखों
के बाहर बाहर लेप करै । रोग के पक्क हो-

मोजन इन सबको पीसकर आंखों में लगाने में नेत्रों को हित होता है । अथवा सेंधानमक, सूअरका दांत और निर्मली इनको पीसकर अंजन बनावे वा बत्ती बनाकर आंखों में आजै तौ तिमिरादिरोग दूर होजाते हैं । अथवा निर्मलीफल, शंख, सेंधानमक, त्रिकुटा, मिश्री, समुद्रफेन, रसौत, शहद, वायविडंग, मनसिल और मुँगे के अंडे के छिलके इन सबको पीसकर अंजन वा बत्ती बनाकर प्रयुक्त करै तौ तिमिर पटल, कांच और मल दूर होजाते हैं । इस का नाम सुखावती है ॥

दृष्टिप्रदावती ।

त्रिफलाकुवकुटाण्डत्वक्कासीसमयसोरजः ।
नीलोत्पलंविडंगानिफेनश्चसरितांपतेः ।
आजेनपयसापिष्ट्वाभावयेचाम्रभाजने ॥
सप्तरात्रंस्थितंभूयःपिष्ट्वाक्षीरेणवर्तयेत् ।
एषादृष्टिप्रदावतिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ।

अर्थ....त्रिकुटा, मुँगे के अंडों के छिलके कर्सास, लोहभस्म, नीलकमल, वायविडंग, समुद्रफेन, इन सबको बकरी के दूध में पीसकर ताँवे के बरतन में बकरी का दूध भरकर सात दिवस तक भावना देवे फिर बत्ती बना बनाकर नेत्रों में लगावे तौ वह आंख जो कूटी न होगी उसका अंधापन दूर होजायगा ॥

अन्यअंजन ।

वदनेकृष्णसर्पस्यनिहितंमासमञ्जनम् ॥
चनस्तस्मात्समुद्रधृत्यसभृष्कंचूर्णयेत्सह ।
सप्तःपारकैःशुष्कैरर्द्धांशैःसैन्धवेनच ॥

एतन्नित्याञ्जनकार्यंतिचिरघ्नमनुत्तमम् ।

अर्थ—कालेसांपके सिरको काटकर उस के मुख में रसांजन भरकर एक महीनेतक धरा रहने देवे । एक महीने पीछे उसे निकालकर सुखाकर पीसलेवे । इसमें मालती का खार और सेंधानमक आधा आधा मिलाकर नेत्रों में आजै यह अंजन तिमिर रोग के दूर करने में बहुत उत्तम है ॥

सुरसःकिंशुकस्यार्ध्वसाकृष्णस्यसैन्धवम्
जीर्णघृतश्चसर्वाक्षिरोगघ्नीस्यादुपाक्रिया
कृष्णसर्पवसाक्षौद्रंरसौधाज्यारसक्रिया ॥
शस्तावाताक्षिरोगेषुकाचारुदमलेषुच ।

धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिर्भिस्तुरसाक्रिया ॥

पित्तरक्ताक्षिरोगघ्नीतैर्भिर्यपटलापहा ।

धात्रीसैन्धवपिप्पल्यःस्युरल्पमरिचाःस-

माः ॥ क्षौद्रयुक्तानिहन्त्यन्ध्यपटलश्चर-

सक्रिया ॥

अर्थ—पलासकी जड़ का रस, कालेसर्प की चर्बी, सेंधानमक और पुरानाघी इन सबको मिलाकर पीसकर नेत्रों में लगावे । इस से सम्पूर्ण प्रकार के नेत्ररोग शान्त होजाते हैं । कालेसर्प की चर्बी, शहद, और आवले का रस इनको घोटकर आंखों में डालने से वज्र वातजनेत्ररोग तथा काच अर्बुद और मल दूर होजाते हैं । आवले का रस, रसौत, शहद और घी इसका रस क्रिया द्वारा प्रयोग करने से पित्तरक्तज नेत्ररोग, तिमिर और पटल दूर होजाते हैं आंवला, सेंधानमक, पीपल, और काळी-मिरच ये सब समान भाग लेकर शहद के

साथ घोटकर रसकिया द्वारा प्रयुक्त करै तो
अन्धता और पटलगोग दूर होजाते हैं ॥

खालित्यचिकित्सा ।

खालित्येपलितेवल्ल्यांहरिलोमिनच-
साधितम् ॥ नस्यैस्तैलैःशिरोवक्त्रप्रलेपै
श्चाप्युपाचेरत् । सिद्धविदारिगन्धाद्यैर्जावि
नीयैरथापिच ॥ नस्यस्यादणुतैलवाखा
लित्यपलितापहम् । क्षीरात्सहचराद्भृं
गरजसःसौरसाद्रसात् ॥ प्रस्थैस्तुकुडवस्ते
लाद्यप्याहुपलकलितः । सिद्धःशैलास्त-
नेभाण्डेमपशृगेचसंस्थितः ॥ नस्यस्यात्
क्षीरयुक्तंवादुग्धिकाकरवरिकौ । उत्पाद्य
पलितं देयाताबुभौपलितापहौ ॥ मार्कवस्व
रसात्क्षीराद्द्विप्रस्थमधुकात्पलम् । तैःप-
चेत्कुडवंतैलात्तन्नस्यपलितापहम् ॥

अर्थ—खालित्य [खल्याट] पालित्य
[श्वेतकेश होना] बली [झुरी पडना]
और रोमोंका हरा होना इन में नस्य, तैल,
शिरःप्रलेप, मुख प्रलेपादि द्वारा चिकित्सा
करै । विदारिगन्धादि गण वा जीवनीयादि
गण से सिद्ध किया हुआ तैल वा पूर्वोक्त
अणुतैल की नस्यका प्रयोग करने से खा-
लित्य और पालित्य दोनों रोग दूर होजाते
हैं । दूध, सहचरीका रस, भांगरे का रस,
तुलसी का रस प्रत्येक एक एक प्रस्थ ले
कर, तैल एक कुडव और मुलहठी एक पल
इन सबको एक साथ पका कर पत्थर वा
काच के बर्तन वा मेढा के सींग में रखलै
इसकी नस्य देखै ।

नस्येदं भागों को उग्राड कर दूध में टुट्टी

पीसकर वा केनर पिस कर सिर पर लेप
करै तो पालित्य दूर होजाता है । भांगरे
का रस दो प्रस्थ, दूध दो प्रस्थ, मुलहठी
एक पल, एक कुडव तैल । इन सब को
एक साथ पका कर नस्य दैने से पलितरोग
दूर होजाता है ।

महानीलाख्यघृत ।

आदित्यवल्ल्यामूलानिकृष्णशैरेयकस्यच
सुरसस्यचपत्राणिफलंकृष्णशणस्यच ॥
मार्कवः काकमाचीचमधुकंदेवदारुच ॥
पृथग्दशपलांशानिपिप्पल्यास्त्रिफलाञ्जनम्
प्रपुण्डरीकंमज्जिष्ठालोभ्रंकृष्णागुरुत्पलम्
आम्रास्थिकर्दमःकृष्णोमृणालीरक्तचन्दन
म् ॥ नीलंभल्लातकास्थीनिकासीसमद-
यन्तिका । सोमराज्यसनःशरत्रंकृष्णौपि
ण्डीतचित्रकौ ॥ पुष्पाप्यर्जुनकाश्मर्याण्या
म्रजम्बूफलानिच । पृथक्पञ्चपलांशा
नितैःपिट्टैराढकंपचेत् ॥ वैभीतकस्यतैल
स्यधात्रीरसचतुर्गुणम् । कुर्यादादित्यपा-
कंवायावच्छुष्कीभवेद्रसः ॥ लोहपात्रेततःपू-
तंसंशुद्धमुपयोजयेत् । पानेनस्तः क्रिया
याञ्चशिशोऽभ्यङ्गेचसंयतः एतच्चक्षुष्य
मायुष्यशिरसःसर्वरोगनुत् । महानीलमि-
तिरुयांतपलितधनमनुत्तमम् ॥

अर्थ—आदित्यवल्ली की जड़, कृष्ण शै-
रेयक, तुलसी के पत्ते, कालेसन के फल,
भांगरा, मकोय, मुलहठी, देवदारु, पृथक्
पृथक् दस पल । पीपल, त्रिफला, रसौत
पुण्डरिकाकाठ, मज्जीठ लोह, कृष्णागुरु,
नीलकमल, आमकीगुठनी, कर्दम, मृणाल,

रक्तचंदन, नील, भिलोयकी गुटली, हारा-
कसीस, मल्लिका, सोमराजी, अशन, लोह-
भस्म, पीपल, मेनफल, चीता, अर्जुनकेफूल
[किसी २ में पुहकरमूल अर्जुन] खंभारी
के फल, आम, जामन, इनमेंसे प्रत्येक पांच
पांच पल लेकर इन सबको पीस लेंगे इन
के साथ एक आठक बड़े का तेल, आं-
वले का रस चार आठक इनको अग्नि पर
चढ़ा कर वा सूर्यकी धूप में पका कर गाढ़े
होनेपर छानकर लोहे के पात्र में रखदेवै इस
तेलको पान नस्य और सिरपर मालिश करने
में प्रयुक्तकरें ॥ यह तेल नेत्रोंको हितकारी
आयुवर्द्धक, और सिरके सम्पूर्ण रोगोंकानाश
करनेवाला महानील नामक है ॥ यह तेल
पलित दूर करने में बहुत उत्तम है ॥

प्रपुण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः ।
कार्पिकैस्तैलकुडवःद्विगुणामलकारिसः ॥
सिद्धःसपारिमर्शःस्यात्सर्वमृद्गदपाहः ।
क्षीरपियालयप्याहजिवकायोगणस्तिलाः
कृष्णावकेत्रप्रलेपःस्याद्वरिल्लोमनिवारणः
यप्याहतिलाकिञ्जल्कक्षौद्रमामलकानिच
वृद्धयेद्रज्जयेच्चैतत्केशान्मूर्ध्प्रलेपनम् ॥
पचेत्सैन्धवशुक्ताम्लैरयश्चूर्णसतण्डुलम् ॥
तेनालिप्तशिरःशुद्धस्निग्धमुषितंनिशि ॥
तत्प्रातस्त्रिफलाद्यैस्तस्यात्कृष्णमृदुमूर्द्धजम्
अयश्चूर्णोऽम्लपिष्टधरागःसत्रिफलोवरः

अर्थ—पुण्डरियाकाठ, मुलहटी, पीपल,
चन्दन, नीलकमल, प्रत्येक एक एक कर्प,
तेल एक कुडव, आंवले का रस दो कुडव
इन सबको सिद्ध कर के प्रयोग करने से

सिर के सम्पूर्ण रोग दूर होजाते हैं । दूध
पियाल, मुलहटी, जीवनीय गणोक्त द्रव्य
और काले तिल इनको पीसकर लेपकरनेसे
रोमों का हरापन दूर होजाता है ।

मुलहटी, तिल, पद्मकेसर, शहत और आंव
ला इनका मस्तकपर लेप करने से केशदृढ
तथा काले होजाते हैं । सेंधानमक, शुक्र,
कांजी, लोहचूर्ण, तंडुल, इन सबको पीसकर
बिना चिकनाई डाले सिरको शुद्ध कर के
पहिले दिन रात में लेप करे । दूसरे दिन
प्रातःकाल त्रिफला के जल से धोवावै तौ
वालकोमल और काले पड़जाते हैं । लोहचूर्ण
और त्रिफला इनको कांजी के साथ पीसकर
लेप करने से बाल काले पड़जाते हैं ॥

कुर्याच्चेपेपुरोगेपुक्रियांस्वांस्वाच्चिकि
त्सिताम् ॥ शेषेष्वादौचनिर्दिष्टासिद्धा
चान्यामवक्ष्यते ।

अर्थ—जब से उपर होने वाले रोगों में
जो रोग है उसकी वैसीही चिकित्सा करे ॥
उन में से बहुत से रोगोंकी चिकित्सा पहिले
वर्णन करचुके हैं और शेषरोगोंकी चिकित्सा
सिद्धिस्थान में वर्णन कीजायगी ।

अध्यायकाउपसंहार ।

यातोपित्तकफान्दृष्ट्यांवास्तिहृन्मूर्द्धसंश्रयाः ॥
तस्मात्तुस्थानसामीप्याद्वर्तव्यावमनादि
भिः । अध्यात्मलोकवाताश्रितोकोवातर
वीन्दुभिः । पीडयतेधार्थतैचैवविकृताविकृतै
सच । विरुद्धैरपिगत्वेतैर्गुणैर्धनन्तिपरस्पर
म् ॥ दोषाःसहजसात्म्यत्वादिपेघोरम
हीनिव ।

अर्थ—वात, पित्त और कफ के प्रधान स्थान मनुष्यके वस्ति, हृदय और मूर्द्धा हैं इसलिये स्थानकी समीपताके कारण वमनादि द्वारा उनका संशोधन करै । जैसे विकृत वायु, सूर्य और चन्द्रमा संसार को पीडित करते हैं और अविकृत संसार को धारण करते हैं उसीतरह विकृत वात, पित्त, कफ, देहको पीडित करते हैं और अविकृत देहको धारण करते हैं ॥

वात पित्त और कफ ये तीनों दोष यद्यपि गुणों में परस्पर विरुद्ध हैं तथापि एक दूसरे को नष्ट नहीं करते हैं, क्योंकि ये साथ उत्पन्न हुए हैं और साम्य भी हैं । जैसे सर्पका विष सर्पको नष्ट नहीं करसक्ता है ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।
त्रिमर्षजानारोगाणां निदानाकृतिभेदजम् विस्तरेण पृथग्निर्दिष्टं त्रिमर्षचिकित्सितम् ।

अर्थ—इस त्रिमर्षीय चिकित्सित नामक अध्याय में रोगों के निदान आकृति और चिकित्सा पृथक् २ विस्तारपूर्वक वर्णन की गई हैं ॥

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थानेत्रिमर्षीयचिकित्सितं नाम पट्ट-
विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथात ऊरुस्तम्भचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माद्भगवान् आत्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले

कि अब हम ऊरुस्तम्भ चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

श्रिया परमया ब्राह्म्या परया च तपः श्रिया अहीनं चन्द्रसूर्याभ्यां सुमेरुमिव पर्वतम् ॥
धी धृति स्मृति विज्ञान ज्ञान कीर्ति क्षमालयम् अग्निवेशो गुरुं काले संशयं परिपृष्टवान् ॥
भगवन् ! पञ्चकर्माणि सप्तस्तानि पृथक्त्वा । निर्दिष्टान्यामयानान्तु सर्वेषामेव भेषजम् ॥ दोषजोऽस्त्याभयः कश्चिद्यस्यैता-
नि भिषगवर ! । न स्युः शक्तानि शमेन साध्यस्य क्रियया ततः ॥

अर्थ—जैसे सुमेरु पर्वत चन्द्रमा और सूर्य दोनों से सुशोभित है उसी तरह जो परा ब्राह्मी श्री और परा तपः श्री इन दोनों से युक्त है और जो धी धृति, स्मृति, विज्ञान ज्ञान, कीर्ति और क्षमा का स्थान है ऐसे गुरु आत्रेयसे अग्निवेशने उचित समय पर अपने संशयको दूर करने के हेतु प्रश्न किया कि हे भगवन् ! आपने वमन विरेचनादि पाँचों कर्मोंका पृथक् २ वर्णन किया है और सम्पूर्ण रोगोंकी औषधियाँ भी कही हैं । परन्तु हे वैद्यवर ! क्या कोई ऐसा भी दोषज रोग है जो साध्य होने पर भी उक्त सम्पूर्ण क्रियाओं द्वारा दूर करने में न आ सकता हो ।

अस्त्युरुस्तम्भ इत्युक्ते गुरुणा तस्य कारणम् सल्लिगभेषजं भूयः पृष्टस्तेना व्रीह्यगुरुः ॥

अर्थ—यह सुनकर आत्रेय बोले कि ऊरुस्तम्भ एक ऐसा रोग है जो वमन विरेचनादि पंचकर्मों से अच्छा नहीं होसकता

है तब अग्निवेदा के फिर पृश्न करने पर
आत्रेयेन ऊरुस्तम्भ का निदान, लक्षण और
चिकित्सा वर्णन की ॥

ऊरुस्तम्भका हेतु ।

स्निग्धोष्णलघुशीतानिजीर्णाजीर्णसम-
श्रुतः । द्रवशुष्कदधिसीरग्राभ्यान्पौद-
कामिषैः ॥ पिष्टव्यापन्नमद्यातिदिवास्व-
प्नप्रजागरैः । लघनपुवनाद्यैश्चभवेगावि-
धारणैः ॥ स्नेहाश्रामश्चिन्तकोष्ठेवातादी-
न्मेदसासह । रुद्धाशुगौरवादूरुस्रोतोभि-
र्यात्यधोगतैः ॥ पूरयन्सकृधिजंघोरुदो-
षोमेदोवलोक्यतः । अविधेयपरिस्पन्दं
जनयत्यल्पविक्रमम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, उष्ण, लघु और शीतल
अन्न के अत्यन्त सेवन से, विषम भोजन
अजीर्ण में भोजन वा संशमनसे, पतले वा
सूते दही, दूध, ग्राम्यमांस, आनूपमांस
और औदक मांसके अत्यन्त सेवनसे पिष्टी
के पदार्थों के अत्यन्त सेवन से, दूषित मद्य
से, दिनमें सौने से वा रात्रि में अत्यन्त
जागने से, लांघने से, कुंदने से, भयसे, वेग
संधारण से, और अत्यन्त स्नेह के सेवन
करने से कोष्ठ में संचित हुआ आम मेदा
के साथ वातादिक दोषोंको रोककर भारापन
के कारण शीघ्रही अधोगामी स्रोतों द्वारा
ऊरुमें जाता है तब दोष मेद के साथ मिलने
से बलोक्यत होकर सक्थि, जंघा और ऊरु
को भर देता है और ये चलने फिरने से र-
क्षित होकर अल्प बलयुक्त होजाती हैं ॥

ऊरुस्तम्भकी उत्पत्ति ।

महासरसिगम्भीरे पूर्णेऽभ्युस्तिमिते तथा ।
तिष्ठति स्थिरमक्षोभ्यंतद्वदूरुगतः कफः ॥
गौरवायाससङ्कोचदाहृक्पृष्ठसिकम्पनैः ।
भेदस्फुरणतोदैश्च युक्तो देहं निहन्त्यमूत्र ॥
ऊरुश्लेष्मासमेदस्कोदोषोद्वावभिभूयतु ।
स्तम्भयेत्स्यैर्यशैत्याभ्यामूरुस्तम्भस्ततस्तु
सः ॥ वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्य स्यात्
स्नेहनात्पुनः । पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छं
दुद्धरणं तथा ॥

अर्थ—जैसे बड़े सरोवर के पूर्ण भरजाने
पर उसमें जल ठहरजाता है उसी तरह से
कफ ऊरु में जाकर स्थिर और अभुम्भित
होकर ठहरजाता है । जिस ऊरुस्तम्भ में
भारापन, आयास, संकोच, दाह, वेदना, सुन्नता,
कम्पन, भेद, कडकन और तोड़ होता है
उसमें प्राण शीघ्रही निकलजाते हैं । मेद
से संयुक्तकफ वात और पित्तका पराभव
करके स्थिरता और शीतलता के कारण
ऊरुओंको स्ताम्भित करदेता है । तब यह
रोग ऊरुस्तम्भ कहाता है । इस रोग में
वात विकारकी शंका करके अज्ञानसे मनुष्य
वातनाशक तैलादि का मर्दन करते हैं, इस
से पांवों में शिथिलता और न्यूनता होती
है तथा पांव बड़ी कठिनता से उठता है ।

ऊरुस्तम्भ के लक्षण ।

जंघोरुलानिरत्यर्थशश्चच्चादाहवेदना ।
पदञ्चन्यथतेन्यस्तंशीतस्पर्शनवेत्ति च ॥
संस्थानेपीडनेगत्यांचलेन चाप्यनीधरः ।
अन्यप्रणेयः सम्भगनावूरुपादौ च मन्यते ॥

अर्थ—जंघा और ऊरु में अत्यन्त ग्लानि निरन्तर दाह और वेदना, पांव के धरने में व्यथा, शीतस्पर्श का मद्भाग न होना तथा पांव के एक जगह रक्खे रहने में, चलने में पीडा होती है तथा यह मद्भाग होता है कि ऊरु और पांव दोनों दूटेजाते हैं

ऊरुस्तम्भका पूर्वरूप ।

प्राग्रूपंध्याननिद्रातिस्तेमित्यारोचकज्वराः
लोमहर्षश्चर्द्धिश्चर्जयोर्वीःसदनंतथा ॥

अर्थ—ध्यान, निद्रा, अत्यन्त स्तिमिता, भस्त्रिच, ज्वर, लोमहर्ष, वमन, जंघाका सदन वा ऊरुसदन ये ऊरुस्तम्भ के पूर्व-रूप हैं ॥

साध्यासाध्यऊरुस्तम्भका लक्षण ।
यदादाहार्तितादातीविषनःपुरुषोभवेत् ।
ऊरुस्तम्भस्तदाहन्यात्साधयेदन्यथा
नवम् ॥

अर्थ—जब ऊरुस्तम्भके पुराने पड़नेपर रोगी दाह, यातना और तोद से पीडित हो और उसे कम्पन भी होता हो तो ऊरुस्तम्भ असाध्य और प्राणनाशक होता है । ऊपर कहेहुए लक्षणों से विपरीत और नवीन ऊरुस्तम्भ साध्य होता है ।

ऊरुस्तम्भमें अकर्तव्यकर्म ।
तस्यनस्नेहनंकार्यनवस्तिर्नविरेचनम् ॥
नचैववमनंयस्मात्तन्निबोधतकारणम् ॥

अर्थ—ऊरुस्तम्भ में स्नेहन, वस्ति, विरेचन वा वमन नहीं कराना चाहिये । जिन हेतुओं से ये कर्म नहीं कियेजाते हैं उसका कारण यह है कि—

अकर्तव्यकर्मोंकाहेतु ।

वृद्धयेदलेष्मणोनिर्त्यस्नेहनंवस्तिकर्मच ।
तत्स्यस्योद्धरणेचैव न समर्थविशोधनम् ।
कफंकफस्थानगतपित्तवायुमनात्सुखम् ॥
हन्तुमामाशयस्यौचसंसनाचायुभावेपि ।
पक्वाशयस्थाःसर्वेचवस्तिभिर्गुलनिर्जयात्
शक्यानत्वाममेशोभ्यांस्तब्धजंघोरुसं-

स्थिताः ॥

अर्थ....स्नेहनकर्म और वस्तिकर्म कफ को सदा बढ़ातेहैं । तथा वमन विरेचनादि संशोधन भी ऊरुमें स्थित कफको निकालने में समर्थ नहीं होते हैं कारण यह है कि वमन विरेचनका ऊरुमें कोई साक्षात् संबंध नहीं है ।

कफस्थानगत कफ और पित्तस्थानगत पित्त वमन द्वारा सुखपूर्वक दूर हो सकता है और आमामाशयस्थ पित्त और कफ दोनों खसन द्वारा दूर होसके है । पक्वाशय में स्थित वातपित्त कफ ये तीनों दोष वस्तिकर्म से सुखपूर्वक दूर होजाते हैं परन्तु आम और मेदा से स्तब्ध जंघा और ऊरु में स्थित दोष वस्तिकर्म से दूर नहीं होसकेंहैं । वातस्थानोहितेशैत्याद्वयोःस्तम्भाश्चतस्ताः ॥ नशक्याःसुखमुद्धर्तुंजलंनिम्ना
दिवस्थलात् ॥

अर्थ....ऊरु और जंघा यात के स्थान हैं और वायुकी शीतलता के कारणही ऊरुस्तम्भ और जंघास्तम्भ उत्पन्न होते हैं इस से इगको दूर करदेना सहजयात नहीं है । जै-से नाँचे स्थलों से जल निकालने में कठिन-

ता पडती है उसीतरह शरीर के नाचिके भाग में स्थित जंघा और ऊर से दोनों के दूर करने में कठिनता होती है ॥

ऊरुस्तम्भमैचिकित्साविधि ।

तस्यसंशमनंनित्यंक्षपणंशोपणंतथा ॥

युक्त्येपक्षीभिपक्कुर्यादधिकत्वारकफामयोः । सदारुक्षोपचारायवदयामाक कोद्रनान् ॥ शकैरलवर्णरद्याज्जलतलोपसाधितैः । सुनिपण्णकनिम्बार्कवेन्नारग्वधपल्लवैः ॥ वायसीवास्तुकैरन्यैस्तिक्तैश्चकुलकादिभिः । क्षारारिष्टप्रयोगाच्च हरीतक्यास्तथैवच ॥ मधूदकस्यपिप्पल्याऊरुस्तम्भाविनाशनाः ॥

अर्थ....कफ और आमकी अधिकता का विचार करके युक्तिपूर्वक ऊरुस्तम्भमें संशमन किया करना उचित है जिससे इस रोग का नाश और शोषहोवै । तथा सदा रुक्ष उपचार के निमित्त जौ, सोंखिया, कोदों का सेवन कराना हित है और विना नमकके जल और तेल के साथ पकायेहुए जौपतिया, नीम के पत्ते, आक के पत्ते, बेत के पत्ते, अमलतास के पत्ते, मकोय वधुआ और परवलआदि अन्य तिक्तशकों का सेवन करे । इसीतरह क्षार, अरिष्ट, हरड़, मधूदक और पीपल ऊरुस्तम्भ को दूर करदेते हैं ।

ऊरुस्तम्भमें अन्य औषध ।

समक्षांशाल्मलीविल्वमधुनासहनापिवेत् । तथाश्रीवेष्टकोदीच्यदेवदारुनतान्यपि । चन्दनंघातकीकुण्डंतालीशंनलदंतथा ॥

अर्थ—ऊज्जाड़, सैमरकी छाल और वेष्ट की छाल इन के क्वाथ में शहत ढालकर पान करे । तथा श्री वेष्टक, नेत्रवाला, देवदारु और तगर का काथ मधु के साथ पान करे अथवा रक्तचन्दन, धाय के शूल, कूठ, ताळीसपत्र और खस इनके क्वाथको मधु के साथ पान करे ।

ऊरुस्तम्भ पर पांच प्रयोग ।

मुस्तंहरतीर्कीरोध्रंपन्नकंतिक्तरोहिणीम् । देवदारुहरिद्रेखचांकडुकरोहिणीम् ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंसरलंदेवदारुचाचव्यचित्रफमूलानिदेवदारुहरीतकीम् । भल्लातकंसमूलाश्चपिप्पलीपञ्चतानपिवेत् । सक्षौद्रानर्द्धश्लोकोक्तान्कल्कानुरग्रहापहान् ॥

अर्थ—[१) मोथा, हरड़, लोध, पन्नाख और कुठकी । देवदारु, दोनों हलदी, वच और कुठकी । (३) पीपल, पीपलामूल सरलकाष्ठ, देवदारु (४) । चव्य, चीते की जड़, देवदारु और हरड़ [५] । भिलाया, पीपल, पीपलामूल । अधिरे श्लोकों में कहे हुए ये पांच प्रयोग हैं इन में से किसी एक का कल्क शहत ढालकर पीने से ऊरुस्तम्भ का नाश होता है ।

शार्ङ्गष्टामदनंदन्तीचित्सकस्यफलवचाम् । मूर्वामारग्वधांपाठांकरंजकुलकंतथा ॥ पिवेन्मधुयुतंतुल्यंचूर्णवावारिणाप्लुतम् । सक्षौद्रंदधिपण्डंवाप्यूरुस्तम्भाविनाशनम् ॥

अर्थ—शार्ङ्गष्टा, मेनफल, दन्ती, इन्द्रजौ, वच, मूर्वा, अमलतास, पाठा, कंजा, परवल,

इनके काथ में शहत डालकर पीवै अथवा इनके चूर्ण को जल में घोलकर शहत वा दाधिमंडके साथ पीवै । इससे ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ।

मूर्वाभितिविपाकुण्ठचित्रकंकडुरोहिणीम् ।
पूर्वचद्रापिवेतोयेरात्रिस्थितमथापिवा ॥
स्वर्णक्षीरीमतिविपांमुस्ततेजोवर्तीवचाम् ।
सुराहंचित्रकंकुण्डपाठांकडुरोहिणीम् ॥
लेहयेन्मधुनाचूर्णसत्तौद्रवाजलान्वितम् ।
फलीव्याघ्रनखहेमपिवेद्वामधुसंयुतम् ॥
त्रिफलापिप्पलीमुस्तंचव्यंकडुरोहिणी-
म् । लिङ्गाद्वामधुनाचूर्णमुस्तम्भादितो-
नरः ॥

अर्थ—मूर्वा, अतीस, कूठ, चीता, कुटकी इनके काथ वा चूर्ण को पहिले की तरह पीवै अथवा इन सब द्रव्यों को रात्रि के समय जल में भिगो देवै और प्रातःकाल इस जल को पीवै । अथवा स्वर्णक्षीरी, अतीस, मोथा, चव्य, यच, देवदारु, चीता, कूठ, पाठा और कुटकी, इनके चूर्ण को शहत के साथ अथवा शहत मिले हुए जल के साथ सेवन करै । अथवा प्रियंगु, व्याघ्रनख और नागकेशर इनके चूर्ण को शहत के साथ पीवै । अथवा त्रिफला, पीपल, मोथा चव्य, और कुटकी इनके चूर्ण को शहत के साथ चाटै ।

ऊरुस्तम्भके उपद्रवोंकी चिकित्सा ।
अपतर्पणश्चेत्स्याद्दोषः सन्तर्पयेद्विदितम् ।
युक्त्याजांगलजैर्मांसैः पुराणैश्चैवशालिभिः
रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशातिपूर्वकः ॥

स्नेहस्वेदक्रमस्तत्रकायौवातामयापहः ॥
पीलुपर्णीपयस्याचरास्नागोक्षुरकोवचा ।
सरलंगुरुपाठाश्चैतैलमेभिर्विपाचयेत् ॥
ससौद्रात्प्रसृतं तस्मादञ्जलिं वापिनापिवेत्
कुण्डं श्रीवेष्टकोदीच्यं सरलंदारुकेसरम् ।
अजगन्धाश्वगन्धाच्चैतलन्तैः सार्पपंचेत ॥
क्षौद्रमात्रयातच्चाप्यूरुस्तम्भादितः पिवेत्

अर्थ—जो ऊरुस्तम्भ अपतर्पण से उत्पन्न हुआ हो तो उस में सन्तर्पण हित है । इस में जांगल मांस और पुराने शालिचावल देना उचित है । रूक्ष व्याक्तिके यदि निद्रानाश और यातना पूर्वक वातका कोप होवै तो वातरोग नाशक स्नेहन और स्वेदन क्रिया का अवलंबन करै । मरोडफली, क्षीरकाकोली रास्ना, गोखरू, यच, सरल, अगर और पाठा इतको डालकर तेल पकावै । इस तेल में से एक प्रसृत वा एक अंजली शहत डाल कर पीना चाहिये । अथवा कूठ, श्रीवेष्टक, नेत्रवाला, सरलकाष्ठ, देवदारु, नागकेसर, अजगंध, असगंध इनको डालकर सरसोंका तेल पकावै । इस तेल में मात्रा के अनुसार शहत डालकर पीनेसे ऊरुस्तम्भ दूर हो जाता है ।

द्वेपलेसेन्धवात्पञ्चशुण्ठ्याग्रन्थिकचित्रका-
त् ॥ द्वेभल्लातकास्थीनिर्विशतिद्वैतथाढके ॥
आरनालात्पचेत्प्रस्थंतैलस्यैतैरपत्यदम् ॥
गृध्रस्यूरुग्रहार्शोति सर्ववातविकारनुत् ।
पलाभ्यापिप्पलीमूलनागरादष्टकद्वरः ॥
तैलप्रस्थः समोदघ्ना गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥
इत्याभ्यन्तरमुद्विष्टमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥
प्लेष्मणः क्षपणं त्वन्यद्वाहं शुणुचिकित्सितम् ॥

अर्थ—सैधानमक दो पल, सौंठ पांचपल वच और चीता दो दो पल, मिलायेकी गुठली बीस, कांजी दो आठक, इन सब के साथ एक प्रस्थ तेल पकावे । यह तेल संतानकारक होता है ॥ इसके सेवन करनेसे गृध्रसी ऊरुग्रह, अर्शयातना, तथा सब प्रकार के वातरोग दूर होजातेहैं ॥ पीपलामूल एकपल सौंठ एक पल, आठ प्रस्थकट्वर एक प्रस्थ तेल और एक प्रस्थ दही इन सबको पकाकर सेवन करने से गृध्रसी और ऊरुग्रह दूरहो जाते हैं ॥ इस तरह ऊरुस्तम्भकी आम्यन्तर चिकित्सा वर्णनकी गई है, अब हम यहां से श्लेष्मक्षपण बाह्य चिकित्साका वर्णनकरतेहैं ।

ऊरुस्तम्भ पर लेप ।

वल्मीकमृत्तिका मूलंकरञ्जस्यफलंत्वचम्
पिप्पलास सर्पपमूत्रेऽधुपितं स्यात्प्रलेपनम्
इष्टकानां ततश्चूर्णैः कुर्यादुत्सादनं शुभम् ॥

अर्थ—वांवी की मिट्टी, कंजाकी जड़, फल और छाल और रात भर गोमूत्र में भिगोई हुई सरसों इन सबको पीस कर लेप करे अथवा ऊपर से ईटका चूर्ण धीरे-धीरे मसलै ॥

अन्यलेप ।

मूलैर्वाप्यश्वगन्धायामूलैर्रस्यवाभिपक्व
पिचुमर्दस्यवामूलैरथ वा देवदारुणः ।
हौद्रसर्पवल्मीकमृत्तिकाद्वयुतौर्भिपक्व ॥
गाढमुत्सादनं कुर्यादूरुस्तम्भे प्रलेपनम् ॥
द्रवन्त्यासुरसैर्दन्त्यासर्पपैश्चापि बुद्धिमान्
तर्कारीविश्वशिभुमुरसवत्सकनिम्बजैः ॥
पत्रमूलफलैस्तोयं शृतमुष्णञ्च सेवनम् ।

वत्सकः सुरसंकुप्टगन्धास्तु न्बुरुंशिशुको ॥
हिंन्वार्कमूलवल्मीकमृत्तिकाः सकुठेरकाः ।
दधिसैन्धवसंयुक्तं कार्यमेतैः प्रलेपनम् ॥

अर्थ—असंगंध की जड़, अथवा आक की जड़, वां नीमकी जड़, अथवा देवदारु की जड़, इनके चूर्ण में शहत, सरसों, वां-वांकी मिट्टी मिलाकर ऊरुस्तम्भ पर गोढ़ा उत्सादन करे । अथवा द्रवन्ती, सुरसा, तुलसी, दन्ती और सफेद सरसोंका लेप करे अथवा जयन्ती, सौंठ, सहजना, कार्ळीतुलसी, इन्द्रजौ इनके पत्ते, जड़ और फलों को ओटाकर उष्णजल का ऊरुस्तम्भ पर तरे-डा देवे । अथवा इन्द्रजौ, तुलसी, कूठ, असंगंध, धनियां सहजना, हौसकी जड़, आककी जड़, वांवीकी मिट्टी और कुठेरक तुलसी इनमें दही और सैधानमक मिलाकर लेप करे ।

श्योनांकं खदिरं विल्वं वृहत्स्यौ सरलासनौ ।
अग्निमन्थाढकी शिशुश्च दंष्ट्रासुरसार्जकान्
तर्कारीनक्तमालञ्च जलेनोत्क्षाल्य सेचयेत्
प्रलेपो मूत्रपैर्वाप्यूरुस्तम्भनिवारणः ।
कफक्षयार्थं सहेषु न्यायामेव नु योजयेत् ॥
स्थलान्याक्रामयेत्कालशर्कराः सिकतास्तथा ॥
प्रतारयेत्प्रतिस्रोतां नदीं शीतजलां शिवाम् ।
सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोयं पुनः ॥
तथा कफे विशुष्के स्य शान्तिमूत्रं होत्रजेत् ॥
श्लेष्मणः क्षपणं यत्स्यात्तनच मारुतमावहेत् ।
तत्सर्वं सर्वदा कार्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥
शरीरं बलमग्निञ्च कार्यं पारसताक्रिया ॥

अर्थ—श्वीनाक, खैर, बेलछाल, दोनों फोटी सख, असन, अरनी, सहजना, गोखरू, तुलसी, अर्जक, तर्कारी, और कंजा इनका काय करके गरम २ कां तरङ्ग देवै अथवा इनसब औषधियों को मोमूत्र में पीसकर लेप करै तो भी ऊरुस्तम्भ दूर होजाता है। कफके क्षीण करने के लिये रोगी जितना परिश्रम सहन करसकै उतना उससे शारीरिक परिश्रम करावै। रोगीको बाह्य वा कंकरी के ढेरपर वा ऊंचे स्थान पर चढ़ावै। शीतलजलवाली, उपद्रव रहित नदियों के स्रोतकी तरफ तैराकर चढ़ावै। तथा निर्मल, शीतल और ठहरेहुए जलों के सरोवरों में तैरावै। इसतरह कफके सूखने पर ऊरुस्तम्भ शान्त होजाता है। जो जो औषध कफको दूर करे और वायुको प्रकुपित न करे वे सब ऊरुस्तम्भ के दूर करने में उपयोगी होती हैं। परन्तु इस चिकित्सामें शारीरिक बल और अग्निकी रक्षा का पूर्ण विचार रखै।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

हेतुः प्राग्रूपलिंगानिकर्मायोग्यत्वमेव च ।
द्विविधभेषजचोक्तऊरुस्तम्भचिकित्सिते ॥

अर्थ—इस ऊरुस्तम्भ चिकित्सित अध्यायमें ऊरुस्तम्भ के हेतु, पूर्वरूप, लक्षण और वमनादि पाँचों कर्मों की अयोग्यता और दो प्रकारकी चिकित्सा वर्णन की है। इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचिता-
यांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांचिकित्सितस्थाने ऊरुस्तम्भाचिकित्सितानाम-

सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथवातव्याधिचिकित्सितं व्याख्या-
स्याम इति हस्माद्भगवान्नात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अबहम वातव्याधि चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

वायु की उत्कृष्टता ।

वायुरायुर्वलं वायुर्वायुर्धाताशरीरिणाम् ।

वायुर्विश्वमिदं सर्वप्रभुर्वायुश्च कीर्तितः ॥

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः । वायुर्द्विषोऽधिकं जीवेत्तनीरोगः शर-
दांशतम् ॥

अर्थ—वायुही देहधारियोंकी आयु है, वायुही उनका बल है, वायुही उनका विधाता है, वायुही सम्पूर्ण विश्व है और वायुही प्रभु-
वर्णन किया गया है ॥

जिस मनुष्यके देह में वायुकी अव्याहत (अदूषित) गति है और अपने स्थान में स्थित और प्रकृतिस्थ है वह मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त निरोग रहकर जीतों है ।

वायुके भेद ॥

प्राणोदानसमानाख्यव्यातापानैः सपञ्च-
धा । देहमन्त्रयते सम्यक्स्थानेष्वव्याहत-
श्चरन् ॥

अर्थ—प्राणवायु, उदानवायु, समानवा-
यु, व्यानवायु, और अपानवायु, ये वायुके पाँच भेद हैं। ये पाँचों वायु अपने अपने स्थान में अव्याहत रीतिसे विचरण कर-
ती हुई शरीर को सम्यक् रूप से नियमित रखती हैं ॥

प्रायवायुके स्थान और कर्म ।

स्थानप्राणस्यशीर्षोरःकर्णाजिह्वाक्षिना-
सिकाः ॥ पृथ्वीवन्क्षयधूट्प्राणवासाहारा
दिकर्मैव च ॥

अर्थ—प्राणवायु के स्थान सिर, वक्षः-
स्थल, दोनों कान, जिह्वा, आंख और ना-
सिका हैं । धूकना, छींकलेना, डकार, श्वास
और आहारादि ग्रहण इसके कर्म हैं ॥

उदानवायुके स्थान और कर्म ॥

उदानस्यपुनःस्थानं नाभ्युरःकण्ठपृथ्वी-
वाकूमवृत्तिःप्रयत्नोर्जावलवर्णादिकर्मैव च ॥

अर्थ—उदानवायुके स्थान नाभि, हृदय
और कण्ठ हैं । धोलेना, शरीरसंचालन, ऊर्जा
बल और वर्णादि इसके कर्म हैं ॥

समानवायुके स्थान और कर्म ॥

स्वेददोषाम्बुवाहानिस्त्रोतांसिसमधिष्ठि-
तः । अन्तरप्रदेशपार्श्वस्थःसमानोऽग्नि
चलप्रदः ॥

अर्थ—समानवायुके स्थान स्वेदवाही,
दोषवाही और अम्बुवाही स्त्रोत हैं । यह ज-
ठराग्नि के पसवाडे में स्थित रहकर अग्निके
चलको बढ़ाती है ॥

व्यान वायुके स्थान और कर्म ॥

देहं व्याप्नोति सर्वतु व्यानः शीघ्रगतिवृणा
म् । गतिप्रसरणाक्षेपनिमेषादिक्रिया
सदा ॥

अर्थ—व्यान वायु मनुष्यके सम्पूर्ण देह
में रहती है, इसकी गति बड़ी शीघ्र है ।
गति, प्रसारण, आक्षेपण और निमेषादि
इसके कर्म हैं ॥

अपानवायुके स्थान और कर्म ॥

वृषणौ वस्तिमेद्राश्च श्रोण्युखं क्षणां गुदम् ॥
अपानस्थानयन्त्रस्थः शुक्रमूत्रशकृन्तिसा-
सृजत्यार्तवगर्भौ च युक्ताः स्थानस्थिताश्च
ते । स्वकर्मकुर्वते देहो धार्यते तैरनामयः ॥

अर्थ—अपानवायु के स्थान अंडकोश,
वस्ति, मेद्रा, श्रोणी, ऊख, वंक्षण और गुदा
हैं । इसका मुख्य स्थान आंत हैं । आंत
में स्थित होकर वीर्य, मूत्र, विष्टा, रजःस-
म्वधी रुधिर और गर्भका परित्याग करती है
ये पाँचों प्रकारकी वायु अपने २ स्थानों
में स्थित और नियुक्त रहकर अपना २
कर्म करती है और देह को स्वस्थान्वास्था
में रखती है ।

विमार्गस्थ पंचवायु के कर्म ॥

विमार्गस्था ह्युक्ता वारोगः स्वस्थानकर्म-
जः । शरीरं पीडयन्त्येते प्राणानाथुर
न्ति च ॥

अर्थ—जब ये वायु कुमार्गगामी होजाती
हैं और यथावत् नियुक्त नहीं रहती है
तब अपने २ स्थान और कर्मोंसे उत्पन्न
होने वाले रोगों द्वारा शरीरको पीडित क-
रती है और प्राणोंको भी शीघ्रही न-
ष्ट कर देती है ॥

संख्यामप्यतिवृत्तानां तज्जानां हि प्रधानतः
अशीतिर्नखभेदाद्यारोगाः सूत्रे निदर्शिताः
तानुच्यमानान्पर्यायैः सहेतूपक्रमान्शृणु ॥
केवलं वायुमुद्दिश्य स्थानभेदात्तथावृत्तम् ।

अर्थ—सूत्रस्थान में असंख्य वायुरोगों
में मुख्यकरके अस्ती प्रकार के नखादिरोग

वर्णन कियेगये है ॥ अब हम पर्यायक्रम से उनके हेतु और चिकित्साका वर्णन कर रहे हैं उसे सुनो ॥ स्थान भेदसे केवल वायु का तथा आवृत वायुको उद्देश्य करके उनको वर्णन किया जाता है ॥

सर्वाङ्गारिव्याधियों का हेतु ।

रुक्क्षशीतालपलघ्नव्ययवायातिप्रजागरैः॥
विषमादुपचाराच्चदोपासृक्त्वयणादति
लघनप्लवनात्यध्वव्यायामातिविषेष्टैः॥
धातूनांसंक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्ष-
णात् । दुःखशय्यासनात्क्रोधादिवास्व
प्नाद्भयादपि ॥ वेगसन्धारणादामाभी
घातादभोजनात् । मर्मावाधाद्रजोष्ठाश्च
शीघ्रयानावतंसनात् ॥ मेहेस्रोतांसिरिक्ता
निपूरयित्वाऽनिलोवली । करोतिविवि-
धान्व्याधीन्सर्वाङ्गैकांगसंश्रितान् ॥

अर्थ—रुक्क्ष, शीतल, अल्प और लघु
अन्नके सेवन से, स्त्रीसंगम से, अत्यन्त ज-
गनेसे, विषम उपचारोंसे, दोष और रक्तके
अत्यन्त स्रावसे, कूपादि गर्तोंके लघन से,
छलांग मारनेसे, मार्ग चलने से, शारीरिक
परिश्रम के करने से, अत्यन्त चेष्टा करने
से धातुओंके क्षीण होने से, चिन्ता, शोक
और रोग द्वारा अत्यन्त कर्षण से, दुःख दै
ने वाली शय्या वा आसन पर बैठनेसे, क्रो-
धसे, दिन में सौने से, भयसे, मलमूत्रादि
घेगों के रोकने से आम से, चोट खाने से,
भोजन न करने से, भयमें आघात होनेसे,
हाथी, ऊँट और घोड़े पर चढ़कर शीघ्र ग-
मन करने से वा हाथी घोड़ा आदि के ऊ-

पर से गिर पड़ने से देह के स्रोत खाली
होजाते हैं और इस अवकाश को पाकर वा-
यु प्रवह होकर उनमें भरजाती है और स-
र्वांग संश्रित वा एकांत संश्रित अनेक प्रकार
की व्याधियों को उत्पन्न करदेती है ॥

वायु के रूपादि ।

अव्यक्तलक्षणंतेषांपूर्वरूपमितिस्मृतम् ॥
आत्मरूपंतुतद्व्यक्तमपायोलघुतापुनः ।

अर्थ—वायुका अप्रकट लक्षण उसका
पूर्वरूप है व्यक्त लक्षण उसकारूप है और
वायुका लघु होजाना उसका नाश है (क्योंकि
वायु सर्वथा नष्ट नहीं हो सकती है, प्रकु-
पित का लघु होजानाही अपाय है)

व्यक्त वायु के लक्षण ।

सङ्कोचःपर्वणांस्तम्भोभंगोऽस्थनांपर्वणाम-
पि ॥ लोमहर्षःप्रलापश्चपाणिपृष्ठशिरो-
ग्रहः । स्वाब्ज्यपांगुल्यकुब्जत्वंशोपोऽङ्गा
नामनिद्रता ॥ गर्भशुक्ररजोनाशःस्पन्दनं
गात्रमुत्तता । शिरोनासाक्षिजत्राणां ग्रीवा
याश्चावहुंडनम् ॥ भेदस्तोदातिराक्षेपमो
हश्चापसएवचा एवंविधानिरूपाणि करो-
तिकुपितोऽनिलः ॥ हेतुस्थानविशेषाच्च
भवेद्रोगविशेषकृत् ।

अर्थ—जोड़ों का सुकड़ना और जकड़
जाना, हड्डी और पोरों में भंग होना, रो-
मोद्गम, प्रलाप, पाणिग्रह, पृष्ठग्रह, और शि-
रोग्रह, खंजता, पांगलापन, कुब्जपन, अ-
गशोप, निद्रानाश, गर्भनाश, वीर्यनाश, आ-
र्त्तनाश, अंगों का फड़कना, देह का शून्य
पड़जना, सिर नासिका आंख और ग्रीवा

का विकृत होजाना, भेद, तोद, यातना आ-
क्षेपण, मोह और आयास तथा ऐसेही अ-
न्यरूप वायु के कुपित होने से होते हैं ।
तथा हेतु भेद और स्थान भेद से इन रोगों
में विशेषता होती है ॥

कोष्ठाश्रित वायु के कर्म ।

तत्रकोष्ठाश्रितेदुष्टेनिग्रहेमूत्रवर्चसोः ॥

ग्रध्महृद्रोगगुल्मार्शःपार्श्वशूलंचमारुते ।

अर्थ—कोष्ठाश्रित वायुके कुपित होने पर
मलमूत्रका निग्रह, व्रण, हृद्रोग, गुल्म, अर्श
और पार्श्वशूल होताहै ॥

सर्वाङ्गगत वायु के कर्म ॥

सर्वाङ्गकुपितेवातेगात्रस्फुरणमञ्जनम् ॥

वेदनाभिःपरीतस्यस्फुटन्तीवास्यसन्धयः ।

अर्थ—वायुके सर्वाङ्ग में कुपित होनेपर
शरीर में वेदना और स्फुरण होता है वेदना
के कारण देह के जोड़ फटतेसे मादृम होने
लगते हैं ॥

गुदस्थ वायु के कर्म ॥

विण्मूत्रवातग्रहणंशूलाध्मानाश्मशर्कराः ।

जंघोरुत्रिकपातृपृष्ठरोगशोपागुदस्थिते ।

अर्थ—वायुके गुदामें स्थित होने पर
मलमूत्र और अधोवायु रुकजाते हैं, शूल,
अफरा, पथरी और शर्करा ये उपद्रव उत्प-
न्न हो आतेहैं जंघा, ऊरु, त्रिक, पांव और
पोंठमें वेदना और शोषये भी उत्पन्न होतेहैं

आमाशयस्थवायुकेकर्म ।

दृक्षाभिपाश्र्वोदररुक्त्वृणोद्धारविमूचि
काः ॥ कासःकण्ठास्पशोपश्चश्वासश्चा
माशयस्थिते ।

अर्थ—वायुके अमाशयमें स्थित होने
पर हृदय, नाभि, पसली और उदरमें वे-
दना होतीहै, तृषा, डकार विमूचिका,
खांसी, कंठशोष, मुखशोष और श्वास ये
उपद्रव भी होतेहैं ।

पकाशयस्थवायु के कर्म ।

पकाशयस्थोऽन्त्रकूजंशूलाटोर्पाकरोतिचा
कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहंत्रिकवेदनम् ॥

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवर्धकृदर्यादुष्टसमीरणः ।

अर्थ—वायु के पक्वाशय में स्थित होने
पर आंतोंका कूजना, शूल, आटोप, मलमूत्र
का कठिनता से होना, आनाह, त्रिकस्थान
में वेदना श्रोत्रादि इन्द्रियोंकी शक्ति का नष्ट
होना ये लक्षण होते हैं ।

त्वक्प्रास्फुटितासुप्ताकृशाकुण्णाचतुद्यते ।

आतन्यतेसदाहश्चपयैरुक्त्वकास्थितेऽनिले

अर्थ—वायु के त्वचामें स्थित होने पर
त्वचा में रूखापन, फटना, सुति, कृशता,
कालापन तथा मूर्चावेध के समान पीड़ा ये
लक्षण होतेहैं । त्वचा फैलासी होजातीहै उस
में दाह होताहै और पोरों में वेदनाभीहोतीहै

रक्तगतवायु के कर्म ।

रुजस्तीवाःससन्तापवैवर्ण्यकृशताऽरुचिः

गात्रेचारुपिभुक्तस्यस्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले

अर्थ—वायु के रधिर में कुपित होने से
तीव्रवेदना, संताप, विवर्णता, कृशता, अरु-
चि, देहमें फुन्तियां और भोजन करने के
पीछे शरीर में स्तब्धता ये लक्षण होते हैं ॥

मांसमेदोगतवायुकेकर्म ।

युर्वज्रतुद्यतेस्तब्धदण्डमुप्राहृतंयथा ॥ सरु-

क्षुश्रुसितमत्यर्थमांसमेदोगतेऽनिले ।

अर्थ—मांस और मेद में वायु के कुपित होने से शरीर में भारापन, तोद, स्तब्धता, लाठी वा मुक्कोंकी चोट के समान वेदना तथा अत्यन्त वेदना और श्रम मालूम होता है॥

मज्जास्थिगतवायुके कर्म ॥

भेदोऽस्थिपर्वणांसन्धिशूलमांसवलक्षयः।
अस्वप्नः सन्ततारुक्चमज्जास्थिकुपितेनिले

अर्थ—मज्जा और अस्थि में वायुके कुपित होने पर अस्थि और संधियों में भेद संधिशूल, मांस और वलकी क्षीणता, निद्रा नाश और निरन्तर वेदना ये लक्षण होते हैं

शुक्रस्थवायु के लक्षण ॥

क्षिप्रंमृत्तिवध्नातिशुक्रं गर्भमथापि वा ॥
विकृतिं जनयेच्चापिशुक्रस्थः कुपितोऽनिलः

अर्थ—शुक्रस्थ कुपितवायु वीर्य वा गर्भ का शीघ्रही मोक्षण कर देती है वा उन्हें बढ़ कर देती है अथवा वीर्य और गर्भ दोनों में विकृति उत्पन्न करती है ॥

स्नायुगत वायुके कर्म ॥

बाह्याभ्यन्तरमायामंखल्लिकुञ्जत्वमेव च ॥
सर्वाङ्गैकांगरोगांश्च कुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः

अर्थ—स्नायुगतवायु बाह्यायाम, अभ्यन्तरायाम, खल्ली और कुण्डापन उत्पन्न करती है और इसी से सर्वांगघात वा पक्षाघात उत्पन्न होते हैं ।

शिरागतवायुके कर्म ॥

शरीरं मन्दरुक्शोफं शुष्यति स्पन्दतेऽपि वा ॥
सुप्तास्तन्योमहत्यो वा शिरावाते शिरागते

अर्थ—शिरागत वायु के कुपित होने पर शरीर में मन्द वेदना सूजन शोष,

स्पन्दन होता है तथा सम्पूर्ण शिराओं में सुप्तता, पतलापन वा दीर्घता होती है ॥

संधिगत वायु के कर्म ॥

वातपूर्णवृत्तिस्पर्शः शोफः सन्धिगतेऽनिले ॥
प्रसारणाकुञ्चनयोस्त्वृत्तिः सवेदना ।

अर्थ—सन्धिगत वायु के कुपित होने पर हवा से भरी हुई मशकके समान स्पर्शवाली सूजन होती है, संधियों का प्रसारना वा सकोडना बन्द होजाता है और वेदना भी होने लगती है ।

अर्द्धांगगत वायु के कर्म ।

अतिवृद्धः शरीरार्धमेकं वायुः प्रपद्यते ॥ यदा
तदोपशोष्यामृगवाहुपादं च जानुच । त-

स्मिन्सङ्कोचयत्यर्द्धं मुखं जिह्वं करोति च ॥
वक्त्री करोति नासाग्रं ललाटाक्षि हनुन्तथा ।

ततो वक्त्रं जतयस्य भोजनं वक्त्रदर्शिनः ॥
स्तब्धेनैत्रं कथयतः क्षवथुश्च निशृण्वते । दी-

नाजिह्वा समुत्क्षिप्ता जिह्वा सज्जति चास्य
वाक् ॥ दन्ताश्च लन्ति याभ्येते श्रवणौ भि-

द्यते स्वरः । पार्श्वहस्ताक्षि जंघोरुं शंखश्रव
णगण्डरुक् ॥ अर्धे तस्मिन्मुखाध्वं वा केवा

ले स्यात्तद्वर्द्धितम् ।

अर्थ—जब वायु अत्यन्त कुपित होकर शरीर के दाक्षिण वा वाम अर्द्धभाग का आश्रय करती है तब उसी ओरके रुधिर, वाड्ड, पांव और जानु को शुष्क कर देती है और फिर वही भाग संकुचित होजाता है तथा उसी ओर का आधामुख टेढ़ा पड़जाता है । तथा नासिका का अग्रभाग, ललाट, आंख और ठोड़ी भी टेढ़ी पड़जाती

है । और इस रोगी के मुख में भोजन भी टूटा कर के प्रवेश करता है । घात कहने के समय नेत्र पधरा जाते हैं । छींक रुक जाती है, जिह्वा दीन, टेढ़ी होकर बाहर निकल आती है, वाणी रुकजाती है, दांत चलित होजाते हैं, कान बहरे होजाते हैं, स्वर क्षीण पड़जाता है, पसली, हाथ, आंख जंघा, ऊरु, कनपटी, कान और गंडस्थल में वेदना होती है । यह रोग आधे अंग में होता है वा केवल आधे मुखहीमें होता है । इसे अर्धितरोग कहते हैं ।

मन्याश्रित वायु के लक्षण ।
मन्येसंश्रित्यवातोऽन्तर्यदानाढीःप्रपद्यते ॥
मन्यास्तम्भतदाकुर्यादन्तरायामसंज्ञितम् ॥

अर्थ—जब वायु मन्या अर्थात् गले के भीतरकी नसों पर आक्रमण करती है तब अन्तरायाम नामक मन्यास्तंभ उत्पन्नहोता है

अन्तरायामके लक्षण ।

अन्तरायस्यतेग्रीवामन्याचस्तभ्यतेभृशम् ॥
दन्तानां दशनं लालापृष्ठाक्षेपः शिरोग्रहः ॥
जृम्भावदनसंगाश्चाप्यन्तरायामलक्षणम् ॥

अर्थ—जब ग्रीवाके भीतर अन्तरायाम होता है तब मन्या अत्यन्त स्तब्ध होजाती है । दंतदशन, लालालाव, पृष्ठाक्षेप और शिरोग्रह होता है तथा जंभाई और मुख में स्तब्धता भी होती है ये अन्तरायाम के लक्षण हैं ॥

पृष्ठमन्याश्रित वायु के लक्षण ।

पृष्ठमन्याश्रितावाह्याः शोषयित्वा शिरावलीः
श्रिताः कुर्यादनुस्तम्भं वहिरायामसंज्ञकम् ।

अर्थ....वायु पीठ और मन्याका आग्रह लेकर बाहरकी नसों को सुखाकर धनुस्तम्भ नामक वहिरायाम रोगको उत्पन्न करती है ॥

वहिरायाम के लक्षण ।

चापवन्नाम्यमानस्य पृष्ठतोऽधीयते शिरः ।
उरउत्क्षिप्यते मन्यास्तब्धा ग्रीवा च मृद्यते ॥
दन्तानां दशनं जृम्भालालाश्रावश्च वाग्रहः
जातवेगो निहन्त्येवैककल्यं वा प्रयच्छति ॥

अर्थ—इस रोगमें शरीर पीठकी ओर से धनुषकी तरह झुक जाता है । सिरटेढ़ा पड़जाता है । वक्षःस्थल ऊंचा होजाता है, मन्यास्तब्ध होजाती है, ग्रीवा मृदित होती है, दांत एक दूसरे से लगजाते हैं, जंभाई लालालाव, वाग्रह होता है । यह रोग अत्यन्त उग्र होने पर मारडालता है वा अत्यन्त विकलता उत्पन्न करता है ।

हनुग्रहके लक्षण ।

हन्वा या सोऽस्थितो वायुर्वन्धात्संसयते हन्
म् ॥ चिष्टतास्य त्वमथ वा कुर्यात्स्तब्धमवे-
पनम् ॥ हनुग्रहञ्च संस्तम्भ्य हनूंसंवृतव-
क्त्रताम् । हनुमूले स्थितो वायुः करोति वहु

कष्टदम् ॥

अर्थ—ठोड़ी के आयाससे उठी हुई वायु कुपित होकर हनुवन्धों को ढीलाकर देती है, इससे मुंह खुला रहजाता है वा कम्पन रहित स्तब्ध होजाता है । हनुके मूलमें स्थित वायु हनुको स्ताम्भित करके अत्यन्त कष्टकारक हनुग्रह वा संवृतवक्त्रता (जिसमें मुखबन्द रहजाता है) उत्पन्न करती है ।

आक्षेपक के लक्षण ।

मुहुराक्षिपतिकुदोगात्राप्याक्षेपकोऽनिलः॥

पाणिपादश्चसंशोप्यशिराःसस्नायुक-

ण्डराः ॥

अर्थ—जिसमें रोगी कुद्व होकर अंगोंको बारम्बार फेंकता है और हाथ, पांव, शिरा, स्नायु और कण्डरा झुकहो जाती हैं उसे आक्षेपक वायु कहते हैं ॥

दण्डापतानक के लक्षण ॥

पाणिपादशिरःपृष्ठश्रोणीःस्तम्भान्तिमारु-
तः ॥ दण्डवत्स्तब्धगात्रस्यदण्डकःसोऽ

नुपक्रमः ।

अर्थ—जिस रोग में लकड़ी के समान हाथ, पांव सिर, पीठ और श्रोणी अकड़ जाती हैं उसे दण्डक कहते हैं । यह रोग दुश्चिकित्स्य होता है ॥

अर्दितरोग के लक्षण ॥

स्वस्थःस्यादर्दिताद्यानामुद्वेगगतेगते ॥
पीड्यतेपीडनैस्तैर्भिपगैतान्विवर्जयेत् ।

अर्थ—अर्दितादि वातरोगों के वेगके शान्त होनेपर रोगी स्वस्थ होजाय और वेगके आने पर वेदना होने लगे ऐंसां रोगी त्याग्य होता है ।

पक्षाघातके लक्षण ॥

हृत्वैकमारुतःपक्षदक्षिणचाममेवच । कु-
र्याच्चेष्टानिर्गतिहिरुजंवाग्भङ्गमेवच ॥
गृहीत्वावाशरीरार्द्धशिराःस्नायुर्विशोप्य-
च । पादंसङ्कोचयत्येकहस्तंवातादशूल-
नुत् ॥ एकाङ्गरोगं तं विद्यात्सर्वाङ्गसर्वदेह
जम् ।

अर्थ—वायु कुपित होकर दाहिने वां बाये किसी अंग को मारकर क्रियाहीन कर देती है इससे देह में बड़ी वेदना होती है और वाणी रुकजाती है । अथवा शरीर के अर्द्ध भागपर आक्रमण करके शिरा और स्नायुको सुखा देती है यदि ऊपरके भाग पर आक्रमण करती है तो हाथको संकुचित करती है और यदि नीचेके भागपर आक्रमण करती है तो एक पांवको मार देती है । इसमें सूचीवेध के समान अत्यन्त वेदना और शूल होता है । इसे एकांगरोग वा पक्षाघात कहते हैं और सम्पूर्ण देह में व्याप्त रोग को सर्वांगघात कहते हैं ॥

गृध्रसीके लक्षण ॥

स्फिङ्गुर्दाकिटिपृष्ठोरुजानुगंधापदक्रमात्
गृध्रसीःस्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णातिस्तम्भतेमुहुः
वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचकान्वितः

अर्थ—गृध्रसी रोगमें वायु प्रथम नितम्ब स्थान पर आक्रमण करके क्रम से काटि, पीठ उरु जानु, जंघा और पांव पर आक्रमण करती है इन स्थानों में स्तम्भता, वेदना और तोड़ होता है । यह रोग केवल वातसे वा वातकफसे उत्पन्न होता है । इस में तन्द्रागौरव और अरुचि होती है ॥

खल्लीकालक्षण ।

खल्लीतुपादजंघोरुकरमूलवमोटनी ।

अर्थ—जिसरोग से पांव, जंघा, उरु, और करमूल में अवमोटन होता है उसे खल्लीरोग कहते हैं ॥

स्थानानामनुरूपैश्चलित्रैःशेषान्विनिर्दि-

येत् ॥ सर्वेष्वेतेषु संसर्गपित्ताद्यैरूपलक्ष
येत् । वायुधातुक्षयात्कोपोमागस्यावर
णेन च ॥

अर्थ—दोष वात रोगों के नाम उनके
स्थान और लक्षणों के अनुसार जाने जाते
हैं । इन सब वातरोगों में कफपित्त का
संसर्ग होता है ॥

धातु के क्षीण होने से अथवा मार्गों के
आवरणसे वायु कुपित होती है ॥

वातपित्तकफादेहे सर्वस्रोतोऽनुसारिणः ।
वायुरेवाहिसूक्ष्मत्वाद्वायोस्तत्राप्युदीरणः ॥
कुपितस्तौ समुद्धूयतत्र तत्राक्षिपन्गदान् ।
करोत्यावृतमार्गत्वाद्गतादींश्चोपशोप-
यन् ॥

अर्थ....वात, पित्त और कफ ये तीनों
दोष देह के सम्पूर्ण स्रोतों में जाते हैं ।
परन्तु वायु अत्यन्त सूक्ष्मताके कारण दि-
खाई नहीं पड़ती है और वह कफ और
पित्तको उदार्ण करदेती है । कुपित हुई वायु
कफपित्तको उत्तेजित करके भ्रूत मार्गों में
लेजाकर मार्गोंको रोक देती है और रसों
को सुखादेती है ॥

पित्तावृत वायुमार्ग के लक्षण ॥
लिङ्गं पित्तावृते दाहस्त्वृणां शूलभ्रमस्तमः ॥
कट्वम्ललघ्वणोष्णैश्च विदाहः शीतका-
मिता ॥

अर्थ—पित्तद्वारा वायुका अवरोध होने
से दाह, शूल, भ्रम और वृणान्ति होती
है । तथा कटु, अम्ल, लघ्वण और उष्ण
पदार्थों के सेवन से विदाह होता है और शी-
त वस्तुओं पर इच्छा होती है ॥

कफावृत वायुमार्ग के लक्षण ॥
शीतगौरवग्लानिकटावपुपशयोऽधिकम् ।
लघनायासरुक्षोष्णकामिता च कफावृते ॥

अर्थ—कफवाही स्रोतों में वायु कफ से
अवरुद्ध होकर शीत, भारापन, शूल कट्वा-
दि द्रव्यों के सेवनसे अत्यन्त उपशय उ-
त्पन्न करती है लघ्वण, परिश्रम तथा उष्ण
द्रव्योंपर इच्छा भी उत्पन्न होती है ॥

रक्तावृत वायुके लक्षण ॥

रक्तावृते सदाहार्तिस्त्वद्भ्यासान्तरजोभृशम्
भवेत्सरागः श्वयधुः जायन्ते मण्डलानि च ॥

अर्थ—रक्तवाही स्रोतों में रक्तद्वारा वायु
के रुकनेपर दाह, यातना, त्वचा और मांस
के बीच में अत्यन्त दारुण रक्तवर्ण युक्त सू-
जन और चकत्ते उत्पन्न होते हैं ॥

मांसावृत वायुके लक्षण ।

कठिनाश्च विवर्णाश्च पिडकाः श्वयधुस्तथा ।
हर्षः पिपीलिकानां च सञ्चार इव मांसगे ॥

अर्थ—मांसवाही स्रोतों में मांसद्वारा वायु
के रुकनेपर कठोर विवर्ण फुन्तियां और
सूजन उत्पन्न होती है तथा चींटी चलने
के समान देहमें सुरसुराहट होती है ॥

मेदसावृत वायुके लक्षण ।

चलः स्निग्धो मृदुः शीतः शोफोऽप्येष रुचि-
स्तथा । आढ्यवात इति ज्ञेयः सकृच्छ्रोमे-
दसावृतः ॥

अर्थ—मेदोवाही स्रोतों में मेदके द्वारा
वायुके रुकनेपर चंचलता, स्निग्धता,
मृदुता, शीतलता, अंगोंमें सूजन और अरु-
चि होती है । इसे आढ्यवात कहते हैं यह

गतवायु, अस्थिगतवायु, ये सब रोग अपने होने के स्थानकी गंभीरता से बहुत प्रयत्न करनेपर साध्य भी होजाते हैं और नहीं भी होते हैं । जो ये रोग बलवान् मनुष्य के नवीन उत्पन्न हुएहों और उपद्रव रहित भी हों तो उनकी चिकित्सा करना उचित है । अब हम वातरोगों के नाश करने वाली अत्यन्त अनुभव की हुई चिकित्सा लिखते हैं । उसे सुनो ॥

वातरोगमें चिकित्साक्रम ॥

केवलंनिरुपस्तम्भमादौस्नेहेरुपाचरेत् ॥
वायुं सर्पिर्वसातैलमज्जपानैर्नरंततः । स्ने
हेकान्तसमाश्वास्यपयोभिः स्नेहयेत्पुनः ॥
यूपग्राम्याम्युजानूपैः रसैर्वास्नेहसंयुतैः ।
पायसैः कृशैरैरम्ललवणैः सानुवासनैः ॥
नावनैस्तर्पणैश्चान्नैः सुस्निग्धस्वेदयेत्ततः ।
स्वभ्यक्तस्नेहसंयुक्तैर्नाडीप्रस्तरसंकरैः ॥
तथान्यैर्विविधैः स्वेदैर्यथायोगमुपाचरेत् ।

अर्थ—निरुपस्तम्भ अर्थात् पित्तादि द्वाग अनावृत वातरोग में प्रथम स्नेहन देवै फिर उसे घृत, वसा, तेल और मज्जाका पान करावै । स्नेहके अत्यन्त सेवन से रोगी के क्लान्त होने पर उसे आश्वासन देकर दुग्ध द्वारा स्नेहन देवै । अथवा स्नेहयुक्त ग्राम्य, जलज और आनूप पशुओं के मांस रस वा स्नेहयुक्त यूर वा पायस, वा अम्ल-लवण युक्त कृशरा द्वारा अनुवासन और नस्य दधे तथा अन्नद्वाग तर्पित करै । इस तरह अच्छी रीति से स्निग्ध होने पर शरीर पर स्नेहमर्दन करके स्नेहयुक्त नाडी स्वेद,

प्रस्तरस्वेद, वा संकर स्वेद देवै अथवा जैसा योग हो उसी के अनुसार अन्य स्वेदों द्वारा स्वेदित करै ॥

स्नेहार्द्रैः स्विन्नमद्गन्तुवक्रंस्तब्धमथापिवा
यथेष्टमानामयितुं शक्यते शुष्कदारुवत् ॥
हर्षतोदरुगायासशोषस्तम्भोग्रहादयः ॥
स्विन्नस्याशुप्रशाम्यान्तिमार्दवचोपजायते
स्नेहश्च धातुनसंशुष्कान्पुष्णात्याशुप्रयो
जितः । बलमग्निबलं पुष्टिप्राणचाप्यभिवर्धते
असकृत्तपुनः स्नेहैः स्वेदैश्चाप्युपपादेयत् ॥
तथा स्नेहमृदादेहेन तिष्ठन्त्यनिलामयाः ॥
यद्यनेन स दोषत्वात् कुर्मणानप्रशाम्याति ॥
मृदाभिः स्नेहसंयुक्ते रौपधेस्तं विशोधयेत् ॥
घृतैर्तिलैश्च कसिद्रं वा सातलासिद्धमेव वा ॥
पायसैरण्डतैलं वापि वेदोपहरं शिवम् ॥

अर्थ—जैसे सूखी लकड़ी पर तेल चुपड़ कर सेकने से इच्छानुकूल उसे नवा सकते हैं, इसी तरह स्नेहार्द्र मनुष्य को स्वेदन करनेके पदचात् वह चाहै जैसा वक्र वा स्तब्ध क्यों न हो सीधा कर लिया जा सकता है । स्नेहन करने से वातरोगी के हर्ष, तोद, वेदना, आयास, शोष, स्तम्भ और ग्रहादिरोग शीघ्र शान्त होजातेहैं और देह भी मृदु पड़जाती है । स्नेह का प्रयोग करने से सूखी हुई धातु शीघ्रही पुष्ट हो जाती है वल, अग्निबल, पुष्टि तथा प्राण भी बढ़ते हैं । इन्हीं हेतुओं से स्नेह और स्वेद का प्रयोग बार बार करना चाहिये क्योंकि स्नेह से मृदु हुई देह में वातरोग नहीं ठहर सकते हैं । दोनों की अधिकता

के कारण यदि इस कर्म से वातरोग शान्त न हो तो स्नेह संयुक्त मृदु औषधियों द्वारा विरेचन देवै । लोष वा सातला में सिद्ध किया हुआ घी देकर विरेचन करावै अथवा दूध में अंडी का तेल मिलाकर विरेचन देवै यह दोष नाशक और उत्तम होता है ।
स्निग्धाम्ललवणोष्णाधैराहारैर्हमलविच-
त्तः । स्रोतोवृद्धानिलंश्न्योत्तस्मात्तमनु-
लोमयेत् ॥ दुर्बलोपोविरेच्यः स्यात्तनिरु-
हैरुपाचरेत् । पाचनैर्दोषनीयैर्वाभोज्यै-
र्वातयुतं नरम् । शुद्धस्य चोत्थिते चाग्नौ-
स्नहस्वदौ पुनर्हितौ । स्वाद्वम्ललवणास्नि-
ग्धैराहारैः सततं पुनः । नाचनैर्धूमपानश्च
सर्वानेवोपपादयेत् ॥

अर्थ—स्निग्ध, अम्ल, लवण और उष्णा-
दि पदार्थों के अत्यन्त सेवन से दोष बढ़-
कर स्रोतों में बढ़ बात को रोक देते हैं इस
लिये वायु का अनुलोमन करावै । जो विरे-
चन देने पर दुर्बल होजाय उसे निरुहण
वस्तिदेवै । अथवा पाचनकर्त्ता वा दीपनकर्त्ता
औषध देवै । संशोधन देनेके पश्चात् यदि
अग्नि उटखड़ी होवै तो फिर स्नेहन स्वेदन
देवै । सम्पूर्ण प्रकार के वातरोगों में स्वादु
अम्ल, लवण और स्निग्ध आहार निरन्तर
देवै तथा नस्यकर्म और धूमपान का भी
प्रयोग करे ॥

विशेषतस्तु कोष्ठस्य वातेश्वरं पिवेश्वरः ॥
पाचनैर्दोषनीयैस्तैस्सर्वापाचयेन्मलान् ॥
शुद्धपकाशयस्येतु कर्पेदावर्तनुद्धितम् ॥ आ-
माशयस्येशुद्धस्य यथादोषहराः क्रियाः ॥

सर्वाङ्गकुपितेऽभ्यङ्गो वसयः सानुवासनाः ।
स्विदाभ्यङ्गानि वातानि हृद्यं चाभेत्तवाग्नि-
तोऽशीतालपस्तुरक्तस्ये विरेको रक्तमाक्षेण-
म् ॥ विरेको मांसमेदःस्थे निरुहाः वमनानि च
वाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरैस्थिमज्जगतं जयेत्
हर्षोऽनपानं शुक्रस्थे वलशुक्रकरं हितम् ॥
विविद्धमार्गदृष्ट्वा वा शुक्रदद्याद्विरेचनम् ॥
विरिक्तपतिशुक्तस्य पूर्वोक्तां कारयेत्क्रियाम्-
गर्भेशुष्के तु वातेन बालानां चापिशुष्यताम् ॥
सिताकाशमर्पमधुकैर्हितं मुस्यापनं पयः ॥

अर्थ—अब विशेष चिकित्सा का वर्णन
करते हैं । कोष्ठस्थ वात में विशेष कर के
क्षार का पान हित है तथा पाचक और
अग्निसंदीपन अन्न का प्रयोग कर के मल
को पचावै । गुदस्थ वा पक्वाशयस्थ वात में
उदावर्त्तनाशिनी क्रिया हित है । आमाशयस्थ
वात में संशोधन देने के पश्चात् यथा दोष
चिकित्सा करना उचित है । सर्वाङ्ग कु-
पित वायु में अभ्यङ्ग और अनुवासन प-
स्तियों का प्रयोग करे त्वगाग्नि वायु में
स्वेद, अभ्यङ्ग, निद्रास्थान सेवन और हृदय
त्रिय अन्न हित है ॥ रक्तस्थ वात में शीतल
प्रेष, विरेचन और रक्तमोक्षण करना उचित
है । मांसस्थ और मेदस्थ वात में विरेचन,
निरुहण वस्ति और वमन का प्रयोग करे ।
अस्थिमज्ज और मज्जागत वायुमें वायु और
आम्यन्तर स्नेह का प्रयोग करे । शुक्रस्थ
वातमें हर्ष तथा वल और शुक्र यथायोग्य
अन्न हित है । यदि शुक्र का मार्ग रुक गया
होती प्रथम विरेचन देवे और विरेचन के

क्षाराम्बुनाततःसिक्तं पुनश्चोपनाहितम् ॥ मुञ्चेद्वात्रादिवाक्चर्मभिश्चसु-
लोमभिः ।

अर्थ—उत्कारिका, वेशवार, दूध, उरद, चांवल, अंडीके बीज, गेहूं, जौ, बेर, शालि-
पर्ण्यादि पंचमूल इन सब को पीसकर स्नेह
मिलाकर शरीर पर गाढ़ा गाढ़ा लेप करे ।
रात्रिके समय इस लेप पर अंडीके पत्ते बांध
देवें और दूसरे दिन प्रातःकाल खोल डालें
और दूध तथा जल से उसे धोकर फिर लेप
करें इस दिन के लेप पर रोमयुक्त चमड़ा बां-
ध देवें । इस लेपको सायंकाल के समय दूर
कर देवें ॥

फालनात्तैलयोनीनामम्लपिष्टानशीत-
लान् ॥ प्रदेहानुपनाहांश्चगन्धैर्वातहरैर-
पि । पायसैः कृशरैश्चैवकारेपत्स्नेहसंयुतैः
रूक्षशुद्धानिलातार्तानामतः स्नेहान्प्रवक्ष्यते ।
विविधान्विविधव्याधिप्रशमायामृतोप-
मान् ॥

अर्थ—सरसों से आदि लेकर द्रव्यों
को जिनसे तेल निकलता है पीसकर गरम
करके लेप और उपनाह बनावें । तथा वात
नाशक गंधद्रव्य, पायस और कृशरा इन
को घृत के साथ सिद्ध करके लेप और
उपनाहन करे ।

अब हम रूक्ष और शुद्ध वातरोगियों के
निमित्त अनेक प्रकारकी व्याधियों को शा-
न्त करने वाले अनेक प्रकार के अमृत के
समान गुणकारक स्नेहों का वर्णन करते हैं ।
द्रोणेऽम्भसःपचेज्जागान्दशमूलांश्चतुष्प-

लान् । यवकोलकुलत्यानां भागैः प्रस्थो-
न्मितैः सह ॥ पादशेपेरसेपिष्टैर्जीवनीयैः
सशर्करैः । तथा खर्जूरकादमर्यद्रासावदेर
फलगुभिः ॥ सन्धीरः सर्पिषः प्रस्थः सिद्धः
केवलवातनुत् । निरत्ययः प्रयोक्तव्यः पा-
नाभ्यञ्जनवस्तिषु ॥

अर्थ—दशमूलके प्रत्येक द्रव्य चारचार
पल, जौ एक प्रस्थ, कुलधी एक प्रस्थ, बेर
एक प्रस्थ इन सबको एकद्रोण जलमें पका-
वै चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानलेवें
फिर जीवनीय गणके दश द्रव्य, शर्करा,
खर्जूर, खंभारी, दाख, बेर और गुलर सब
मिलाकर एकसेर, दूध एक प्रस्थ, घी एक
प्रस्थ इन सबको उस काथ में डालकर पकावै ।
यह घृत पान, अभ्यंग और वस्तिद्वारा प्र-
योग किया जाता है और वातरोगको जड़
से दूर कर देता है ।

चित्रकादि घृत ।

चित्रकनागरं रास्नां पौष्करं पिप्पली शटीम्
पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिर्वात रोगहरं परम् ॥

अर्थ—चीता, सोंठ, रास्ना, पुहकरमूल
पीपल, कथूर इन सबको पीसकर घृत प-
कावै यह घृत वातरोगको नाश करनेवाला है
बलाविल्वभृतेक्षीरे घृतमण्डविपाचयेत् ।
तस्य भुक्तिः प्रकुञ्चोर्वा नस्य मूर्ध्वगतेऽनिले

अर्थ—खोटी और बेलछाल डाल कर
अठगुने दूध और चौगुने जलमें पकावै जब
दूध शेष रहजाय तब उतार कर छानले
और उस दूधमें घृतमण्ड पकावै । इस घृत
में से चार या आठ तोलेको नस्यद्वारा प्रयोग
करने पर शिरोगत वात दूर होजाती है ॥

ग्राम्यानूपौदकानान्तुभित्वास्थीनिपचेज्ज
लातस्नेहं दशमूलस्य कपायेण पुनः पचेत् ॥
जीवकर्षभकास्फोताविदारीकापिकच्छुना
वातघ्नेदीपनीयैश्च कल्कैर्द्वितीयं भागिकम्
तत्सिद्धं नायनाभ्यङ्गात्तथापानानुवासनात्
शिरापर्वस्थिकोष्ठस्थं प्रणुदत्याशुमारुतम्
येस्युः प्रक्षीणमज्जानः क्षीणशुक्रौजसश्च ये
बलपुष्टिकरं ते पामेतस्यादमृतोपमम् ॥

अर्थ—ग्राम्य, आनूप और औदक जीवों
की हड्डियाँ कुटकर जल में पकावै - पका-
ने पर इसे उतार ले और धरा रहने देवै
इस जलके ऊपर धिकनी २ मलाई सी
जमजाती है उसे उतार कर उसमें दुगुना
दूध चौगुना दसमूल का काथ तथा चौथाई
वातनाशक और जीवनीय द्रव्य यथा जीवक
ऋषभक, आस्फोता, विदारी और केंच
इनका कल्क । इन सबको मिला कर पका-
वै । इस घृतका नस्य, अम्यंग, पान और
अनुवासन द्वारा प्रयोग करै । जिन मनुष्यों
की मज्जा, शुक्र और ओज क्षीण होगये
हैं उनकी पुष्टि तथा बल बढ़ानेके निमित्त
यह घृत अमृतके समान गुण कारक है ॥

तद्वत्सिद्धावसानक्रमस्य कूर्मचुल्लूकजाः ।
प्रत्यग्राविधिना नेन नस्यपानेषु शस्यते ॥

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिसे ही मगर,
मछली, कछुआ और सूँसकी चर्बी को प-
काकर नस्य और पीनेमें प्रयोग करने से
तद्वत् गुणकारक होता है ।

प्रस्यः स्यात्त्रिफलायास्तुकुलत्थकुडवद्वयम्
कुष्ठागन्धात्स्वगाढवयोः पृथक् पञ्चपलं भवे

त् । रास्नाचित्रकयोर्द्वे द्वे दशमूलं पलोन्मितम्
जलद्रोणे पचेत्पादशेषे प्रस्थोन्मितं पृथक् ॥
सुरारनालदध्यम्लसौवीरकतुपोदकम् ॥
कोलदाडिममृक्षाम्लरसांस्तैलवसांघृतम् ।
मज्जानञ्चपयश्चैव जीवनीयपलानि षट् ॥
कल्कीकृत्य महास्नेहं सम्यगेन विपाचयेत् ॥
शिरामज्जास्थिगेवाते सर्वाङ्गैर्कांगरीगिपुः ॥
वेपनाक्षेपशूलेषु तदभ्यङ्गे प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—त्रिफला एक प्रस्थ, कुलथी दो
कुडव, सहजनेकी छाल पांच पल, अड़हर
की छाल पांच पल, रास्ना दोपल, चीतादो
पल, दशमूलके प्रत्येक द्रव्य एक एक पल
इन सबको जो कुटकरके एक द्रोण जलमें
पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर
छानले, उस काथमें सुरा, कांजी, दही,
खटाई, सौवीरक, तुपोदक, वेरकारस, अ-
नारकारस, वृक्षाम्लकारस, तेल, चर्बी, घी,
मज्जा और दूध पृथक् पृथक् एक एक
प्रस्थ जीवनीय गणका कल्क छः पल ।
इन सबको पकावै । यह महास्नेह शिरोगत,
मज्जागत, अस्थिगत, सर्वांगगत, एकांगगत,
कम्पन, आक्षेपण और शूल इन रोगों में
अम्यंग द्वारा प्रयोग किया जाता है ।

निर्गुंडी तैल ॥

निर्गुण्ड्यामूलपत्राभ्यांगृहीत्यास्वरसंततः ॥
तेन सिद्धं समं तैलं नाडीकुष्ठानिलांतिपु ।
हितं पामापचीनांच पानाभ्यञ्जनपूरणम् ॥

अर्थ—निर्गुंडीकी जड़ और पत्रोंका रस
निकाशकर, उसके समान तेल मिटाकर
पकावै । इस तेल का अम्यंग और पान

अमृतादि तैल ॥

तुलाः पञ्चगुह्यंस्तुद्रोणेष्वष्टास्वपांपचे
त् । पादशेषेसमंक्षीरंतैलस्यद्वयाढकंपचे
त् । एलामांसीनतोक्षीरशारिवाकुष्ठचन्द
नैः । धलातामलकीमेदाशतपुष्पार्द्धिजी
वकैः ॥ काकोलीक्षीरकाकोलीश्रावण्य
तिवलानखैः । महाश्रावणिजीवन्तीवि
दारीकपिकच्छाभिः ॥ शतावरीमहामेदा
कैर्कटाख्याहरेणुभिः । वचागोक्षुरकैर
ण्डरास्नाकालासहाचरैः ॥ वीराशल्लकि
मुस्तत्वकूपत्रर्पभकवालकैः । महेलाकुंकु
मस्पृकात्रिदशाह्वैश्चकार्पिकैः ॥ मञ्जिष्ठा
यात्रिकपेणमधुकाष्ठपलेनच । कल्कैस्त
त्क्षीणवीर्याग्निबलसंमूढचेतसः ॥ उन्मा
दारत्यपस्मारैरार्तश्चप्रकृतिनयेत् । वात
व्याधिहरंश्रेष्ठतैलाग्न्यमृताद्वयम् ॥

अर्थ—गिलोय पांच तुलाको आठद्रोण
जलमें पकावै, चौथाई शेष रहने पर उ-
तारकर छानले । तब उस शेष क्वाथ के
समान दूध, दो आढक तेल और नीचे
लिखहुए द्रव्योंका कल्क डालदेवै । यथा
छोटी इलायची, जटामांसी, तगर, खस,
शारिवा, कूट, चन्दन, खैरटी, भूआंवला,
मेद, सोंफ, ऋद्धि, जीवक, काकोली, क्षी-
र काकोली, श्रावणी, अतिवला, नखी, महाश्रा-
वणी, जीवन्ती, विदारीकन्द, कैच, सिता-
वर, महामेदा, काकडासींगी, हरेणु, वच,
गोखरू, अरण्ड, रास्ना, असगन्ध, सहचर,
वीरा, शल्लकी, मोथा, दालचीनी, तेजपात
प्रपभक, नेत्रवाला, वटी इलायची, कुंकुम

स्पृका, देवदारु ये सब द्रव्य एक एक कर्ष
लेवै । मजीठ तनिकर्ष, मुलहठी आठपल
इम सबका कल्क डाल देवै । इस तेल के
सेवन करने से र्वाय की क्षीणता, अग्नि-
बल, मूढचित्तता, उन्माद, अरति, अपस्मार
ये दूर होकर मनुष्य अपनी प्रकृति पर आ-
जाता है यह तेल वात व्याधियोंको दूर करने
में अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥

रास्नातैल ॥

रास्नासहस्रानिगृह्यतलद्रोणांविपाचयेत् ।

गन्धैर्हमवर्तःपिष्टैरैलान्तैश्चानिलार्तिनुत् ॥

अर्थ.... एक सहस्र पल रास्ना को अठ-
गुने जल में पकाकर चौथाई शेष रहने पर
उतारकर छानले इसमें पूर्वोक्त एलादि चूर्ण
और एकद्रोण तेल डालकर पकावै । पकने
पर उतारकर शफेद वचका चूरा बुरक दे ।
यह तैल वातरोग को दूर करने वाला है ॥
कल्पोऽयमष्टगन्धायां प्रसारण्यां वलाद्वये ।
क्वाथकल्कपयोभिर्वा वलादीनां पचेत्पृ-
थक् ।

अर्थ—असगन्ध, प्रसारिणी, दोनोंवला
इनका तेल भी ऊपर कही हुई रीति से त-
यार किया जाया है । अथवा वलादि के पृ-
थक् २ क्वाथ, कल्क, और दूध के साथ
तेल पकाकर प्रयुक्त करें ॥

मूलकादितैल ॥

मूलकस्वरसंक्षीरंतैलं दध्यम्लकाञ्जिकम् ।

तुल्यां विपाचयेत् कल्कैर्वलाचित्रकसैन्धवैः ॥

पिप्पल्यतिविपारास्नाचविकागुरुशिशुमूकैः

भल्लातकवचाङ्गुश्वदंष्ट्राविश्वमेपजैः ॥

पुष्करादशटीविल्वशताद्वानतदारुभिः ।
तत्सिद्धं पीतमप्युग्रान्दन्तिवातात्मकान्-
गदान् ॥

अर्थ—मूलीकारस, दूध, तेल, दही,
और कांजी इन सबको समान भाग तथा
तेल से चौथाई खरौटी चीता, सेंधानमक,
पीपल, अर्त्तास, रास्ना, चव्य, अगर, सं-
हजना, भिलाया, वच, कूठ, गोखरू, सोंठ
पुहकरमूल, कचूर, बेलछाल, सोंफ, तगर
और देवदारु इनका कलक डालकर सबको
एक साथ पकावै । इस तेल के पान करने
से अस्यन्त उग्र वातरोग भी दूर होजातेहैं ॥

• टुपमूलादि तैल ।

टुपमूलगुहच्योश्चद्विशतस्यशतस्यच । अ-
श्वगन्धाचित्रकयोर्वर्वाथितैलाढकंपचेत् ॥
सक्षीरं वायुनाभ्येदध्याज्जर्जरितेतथा ॥
भाक्तैलाचापसिद्धञ्चस्पादेतद्विगुणो-
चरम् ॥

अर्थ—अडुसाकी जड़ सौपल, गिलोय-
सौपल, असगन्ध सौपल, चीता सौपल इन
का ब्याध करके चौथाई शेष रहने पर उसे
उतारकर उसमें एक आढक तेल पकावै, इसमें
ब्याधके समानही दूधभी मिलावै यह तेल
वायु से भग्न अथवा जर्जरित देह में प्रयोग
किया जाता है । पूर्वोक्त बटादि कलक डा-
लकर सिद्ध किया हुआ यह तेल दुगुना गु-
णदायक होता है ॥

रास्नातैल ।

रास्नाशिरीषपय्यादशुण्ठीसहजरामृताः
श्योनाकदारुसम्पाकाहयगन्धात्रिकण्ट-

काः ॥ एषां दशपलान् भागान् कृष्यायमु-
पकल्पयेत् । ततस्तेन कषायेण सर्वगन्धै-
श्चकार्षिकैः ॥ दध्यारनालमापाम्बुमूल
केशुरसैः शुभैः । पृथक्प्रस्थोन्मितैः सार्द्धं
तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ छीहमूत्रग्रहवास
कासमारुतरोगनुत् । एतन्मूलकतैलाग्यं
वर्णाशुर्वलवर्द्धनम् ।

अर्थ—रास्ना, शिरस, मुलहठी, सोंठ,
सहचर, गिलोय, श्योनाक, देवदारु, अम-
लतास, असगन्ध, गोखरू इन में से प्रत्येक
दस दस पल लेकर ब्याध करले । और इस
काथ में एकरकष सर्व गंधका कलक तथा
दही, कांजी, उरदका काथ, मूलीकाकाथ,
ईलका रस प्रत्येक एक एक प्रस्थ तथा तेल
एक प्रस्थ डालकर पकावै । इस तेल के
सेवन करने से छीहा, मूत्रग्रह, वास, खां-
सी, वात रोग दूर होजाते हैं, यह मूलक
तेल से भी उत्तम है, इस के सेवन से वर्ण
बढ और आयु बढती है ॥

यवकोलकुलत्थानां मत्स्यानां शिमुविल्व
योः ॥ रसेन मूलकानां च तैलं दधिपयोऽ-
न्वितम् ॥ साधयित्वा भिषग्दद्यात्सर्व
वाताभ्यापदम् । लघुनस्वरसे सिद्धं तैल
मेभिश्च वातनुत् ॥ तैलानेतावृत्स्नाताम-
श्रानां पाययेत्तच ॥ पीत्वान्यतममेपां हि व-
न्ध्यापि जनयेत्सुतम् ॥

अर्थ—जी, बेर, कुलधी, मछली, सहजना
बेल छाल और मूली, इनका काथ तथा
दही दूध और तेल इन को एकत्र सिद्ध
करके देवे तो सम्पूर्ण प्रकार के वातरोग.

दूर होजाते हैं । अथवा ऊपर कहे हुए द्रव्यों के साथ लहसन के रसमें सिद्ध किया हुआ तेल भी वात नाशक है ।

इन ऊपर कहे हुए तेलों में से कोई सा तेल ऋतु का स्नान करने के पाँछे स्त्रीको पान करावे तौ बन्ध्या के भी सन्तान की उत्पत्ति होती है ।

यच्चशीतज्वरैतैलमगुर्वाधमुदाहृतम् । अनेकशीतशस्तच्चसिद्धंस्याद्वातरोगनुत् ॥ वक्ष्यन्तेयानितैलानिवातशोणितकेऽपिच । तानिचानिलशान्त्यर्थसिद्धिकामप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—जो अगुर्वादि तैल से आदि लेकर शीत ज्वर में वर्णन किये गये हैं, वह अनेक बार सिद्ध किये जाने पर वातरोग को दूर करता है अथवा अनेक बार इस तैल का अनुभव किया गया है । इस से अतिरिक्त वातरक्त में जो तेल कहे जायेंगे वे भी आरोग्यता के निमित्त वातरोग के दूरकरने के लिये दिये जा सकते हैं ।

तैलकी उत्कृष्टता ।

नास्ति तैलात्परं किञ्चिदौषधं मास्तापहम् ।
व्यवायुष्णगुरुस्नेहात्संस्काराद्बलवत्तरम् ।
गुणैर्वातहैरस्तस्मात्शतशोऽथसहस्रशः सिद्धं ।
क्षिप्रतरुहन्ति सूक्ष्ममार्गस्थितान्गदान् ॥

अर्थ—तेल से अधिक वातनाशक और कोई औषध नहीं है क्योंकि यह व्याघ्री, उष्ण, गुरु और स्निग्ध है । तथा वातनाशक द्रव्यों के संस्कार से यह अत्यन्त मलान होजाता है । तथा वातनाशक द्रव्यों

के साथ शत सहस्र बार सिद्ध करने पर यह सूक्ष्म स्रोतों में स्थित रोगों को क्षीप्रही दूर करदेता है ।

क्रियासाधारणीसर्वासंस्पृष्टेचापिशस्यते ।
वातपित्तादिभिः स्रोतः स्वावृतेषु विशेषतः ॥

अर्थ—केवल वायु में जो साधारणी क्रिया कही गई है वह संस्पृष्ट दोषों में भी हितकारी होती है और विशेष करके जय स्रोतों का मार्ग वातापित्त, वा वातकफ वा पित्तकफसे रुका होता है तब वातनाशिनी क्रिया बहुत उपयोगी होती है ॥

पित्तावृतवायुमार्ग में चिकित्सा ।

पित्तावृतेविशेषेणशीतामुष्णांतयाक्रियाम् ।
व्यत्यासात्कास्येतसर्पिर्जीवनीयश्च शस्यते ॥
धन्वमांसंयवाशालिर्योपनाः क्षीरवस्तयः ।
विरेकः क्षीरपानञ्चपञ्चमूलबलाश्रितम् ॥
मधुयष्टिर्वलातैलघृतक्षीरैश्चसेचनम् ।
पञ्चमूलकपायेणकुर्याद्वाशीतचारिणा ॥

अर्थ—जब वायुका मार्ग पित्तसे आवृत होता है तब व्यत्यास क्रम से शीत क्रिया और उष्णक्रिया करना हित है । इस में जीवनीय गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घृत भी उपयोगी है । धन्वजमांस, जौ, शालीचावल, यापनकर्त्ता क्षीर वस्ति, विरेचन तथा पंचगूल वा बला डालकर औटाया हुआ दूध हित है । मुलहठी का क्वाथ, बलातैल घी, दूध, पंचमूल का क्वाथ वा ठंडा जल इन से सेचन करना भी हित है ॥

कफावृतवायु मार्ग में चिकित्सा ।

कफावृतेयवान्नानिजाङ्गलामृगपक्षिणः

स्वेदास्तीक्ष्णानिरूढाश्च वमनं स विरेचनम्
जीर्णसर्पिस्तथा तैलं तिष्ठसर्पपञ्चभम् ।

अर्थ—कफसे वायुके रुकने पर जौ, जंगल पशुपक्षियों का मांस, स्वेद, तीक्ष्ण निरूढण, वमन, विरेचन, पुराना घी, तिल का तेल और सरसों का तेल हित होता है ।

कफापित्तावृत वायुमार्ग में चिकित्सा ॥

संस्पृष्टे कफपित्ताभ्यां पित्तमादौ विनिर्जयेत्
आमाशयगतं हृद्वा कफं वमनमाचरेत् ॥

पक्वाशये विरेकन्तु पित्ते सर्वत्र गे तथा ॥

अर्थ—कफपित्त मिलकर दोषों से वायु का मार्ग रुकने पर प्रथम पित्तको जीतने का उपाय करे, जो कफ आमाशयमें स्थित दिखाई दे तो वमन देवे, पक्वाशयस्थ कफ में विरेचन देवे । तथा जो पित्त सर्व देहगत दिखाई दे तो भी विरेचनही देवे ।

स्वैदैर्विष्यन्दि तः श्लेष्मा यदा पक्वाशया
च्छ्रुतः । पित्तं वादर्शयेल्लिङ्गं वस्तिभिस्तं

विनिर्हरेत् ॥

अर्थ—स्वेदनकर्म से श्लेष्मा यदि पिघल कर पक्वाशय को छोड़ दे और यदि पित्तके चिह्न भी दिखाई दें तो वस्तिद्वारा उसके दूर करने का उपाय करे ॥

में क्षीरसंयुक्त निरूहण देवे तथा मधुर औषधियों से सिद्ध किये हुए तैल की अनुवासन वास्ति देवे ॥

शिरोगतवात में चिकित्सा ।

शिरोगते तु सकफे धूमनस्यादिकारयेत् ॥

अर्थ—कफयुक्त वात के सिर में प्रवेश करने पर धूमपान और नस्यादि कर्म करे ॥

उरःस्थवात में चिकित्सा ॥

हृते पित्ते कफे यः स्याद्दुःस्रोतोऽनुगोऽनिलः ।
सशेषः स्यात्क्रियातत्र कार्यं केवलं वातिकी ॥

अर्थ—पित्त और कफ के दूर होने पर जो वक्षःस्थल के स्रोतों में वात गमन करे तो इस में केवल वात के नाश करनेवाली चिकित्सा करे ॥

रक्तावृतवात में चिकित्सा ।

शोणितेनावृते कुर्याद्वातशोणितकीक्रियाम्

अर्थ—रक्तावृत वात में वातरक्तनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥

आढ्यवात में चिकित्सा ॥

प्रमेहवातमेदोघ्नीमाढ्यवाते प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—आढ्यवात में प्रमेह, वायु और देह को दूर करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥

मांसावृत वात में चिकित्सा

अर्थ—अस्थि और मज्जा में स्थितवात में महास्नेह का प्रयोग करे और शुक्रावृत वात में भी पूर्वोक्त शुक्रस्थ वातकासी चिकित्सा करे ॥

अन्नावृतवातमें चिकित्सा ।

अन्नावृततदुल्लेखःपाचनदीपनंलघु ॥

अर्थ—अन्नावृत वात में वमन, पाचन, दीपनकर्ता और लघु अन्न देना चाहिये ॥

मूत्रस्थवातमें चिकित्सा ।

मूत्रलानितुमूत्रेणस्वेदाःसोत्तरवस्तयः ॥

अर्थ—मूत्रस्थ वात में मूत्रकारक औषध स्वेदन और उत्तरवस्ति का प्रयोग करे ।

पुरीषस्थ वातकी चिकित्सा ।

शकृतातैलमैरण्डवस्तिस्नेहाश्चभेदिनः ।

अर्थ—पुरीषावृत वात में अंडी का तेल और स्नेहन वस्ति तथा भेदकर्ता औषध श्रेष्ठ हैं ॥

स्वस्थानस्थदोष की चिकित्सा ।

स्वस्थानस्थोवलीदोषःप्राक्तस्वैरौषधैर्जयेत्वायमनैर्वाधिरैर्वावस्तिभिःशमनेनया ॥

अर्थ—यदि दोष अपने ही स्थान में स्थित हो परन्तु कुपित होजाय तब उसी दोष के शमन करने वाली औषध का प्रयोग करे । अर्थात् अपने स्थान में स्थित कफ को वमन से, पित्त को विरेचन से और वातको वस्ति से शमन करे ॥

मास्तानांहिपञ्चानामन्योन्यावरणेशृणु ॥

अर्थ—पूर्वोक्त पांच प्रकार की वायु जब परस्पर एक दूसरे के मार्ग को आच्छादित

कर लेती हैं तब जो लक्षण उत्पन्न होते हैं उनका संक्षेपसे तथा सविस्तर वर्णन करते हैं

पंचवायु का परस्पर आवरण ॥

प्राणोद्युतोत्पानादीन्प्राणंवृण्वन्त्यथापिते उदानाद्यास्तथान्योऽन्यंसर्वेष्वयथाक्रमम् विंशतिर्वरणान्येतान्युल्वणानांपरस्परम् ॥ मास्तानांहिपञ्चानांतानिसम्यक्प्रतर्कयेत्

अर्थ—प्राणवायु अपानादि वायुओं का आवरण करती हैं और ये अपानादिक भी प्राणवायु का आवरण करती हैं, इसी तरह सम्पूर्ण उदानादिक वायु भी आपस में एक दूसरे का आवरण करती हैं । इसी तरह इन पांचों वायुओं के परस्पर आवरण करने के बीस आवरण हैं अब उनका सम्यक् वर्णन करते हैं ।

प्राणावृतव्यान वायु के लक्षण ।

सर्वेन्द्रियाणांशून्यस्वज्ञात्वास्मृतिचलक्षयम् व्यानेप्राणावृतेलिङ्गकर्मप्रतत्रोर्ध्वजनुकम् ॥

अर्थ—जब प्राणवायु व्यानवायुका आवरण करलेती हैं तब सम्पूर्ण इन्द्रियां शून्यहोजाती हैं, स्मरण शक्ति और बल घट जाताहै, इस में उर्ध्वजनु किया करना हित है ।

व्यानावृतप्राण वायु के लक्षण ।

स्वेदोऽन्यथैलोमहर्षस्त्वग्दोषःसुप्तगात्रता प्राणेव्यानावृततत्रस्नेहयुक्तविरेचनम् ॥

अर्थ—जब व्यानवायुप्राणवायुका आवरण करलेती हैं तब पसीने बहुत आतेहैं, रोमाञ्च लगे होजाते हैं, त्वचा विगड़ जाती है और देह सुन्न पड़ जाती है, इस में स्नेह युक्त विरेचन देवै ॥

प्राणावृत समानवायुके लक्षण ॥

प्राणावृतसमानस्याज्जडगद्गदमूकताः॥
चतुष्पयोगाःशस्यन्तेस्नेहास्तत्रसयापनाः॥

अर्थ—जब प्राणवायु समान वायु का आवरण करलेती है तब जडता, गद्गदता और मूकता होती है, इस में चार प्रकार के पान, अभ्यंग, अनुवासन और नस्य कर्म हित है तथा क्षीरवस्ति भी उपयोगी होती है।

समानावृत प्राणवायु के लक्षण ॥

समानेनाऽवृतेप्राणेग्रहणीपार्श्ववेदना ॥
शूलचामाशयेतत्रदीपनसंपिरेष्यते ॥

अर्थ—जब समानवायु प्राणवायु का आवरण कर लेती है तब ग्रहणी दोष और पार्श्ववेदना होती है, तथा आमाशय में शूल होने लगता है, इस में संदीपन घृत उपयोगी होता है।

प्राणावृतउदानवायु के लक्षण ॥

शिरोग्रहःप्रतिश्यायोनिःश्वासोच्छाससं
ग्रहः ॥ हृद्गोमुखशोषश्चाप्युदानेप्राण
संवृते । तत्रैर्धर्मागिकं कर्मकार्यमाश्वास
नंतथा ॥

अर्थ—जब प्राणवायु उदानवायु का आवरण करलेती है तब सिर में जकड़न, प्रतिश्याय, निःश्वास का रोष, उच्छ्वासका रोष, हृद्गो और मुखशोष ये उपद्रव होते हैं, इस में वमनादि ऊर्ध्वदेहिक चिकित्सा तथा आश्वासन हित है।

उदानावृत प्राणवायुके लक्षण ।

कर्माजोयज्वर्णानानाशोमृत्युरथापिवा ।
उदानेनावृतेप्राणेतश्नैःशीतवारिणा ॥

सिञ्चेदाश्वासयेच्चैवमुखंचैवोपपादेयत् ।

अर्थ—जब उदानवायु प्राण वायु का आवरण कर लेती है तब कर्म, ओज, बल और वर्ण का नाश होकर मृत्युभी होजाती है, इसमें धीरे २ शीतलजलके छींटे मारै, आश्वासन करै और सुखदायक कर्मों का उपयोग करे।

प्राणावृत अपान वायुके लक्षण ।

ऊर्ध्वगेनावृतेप्राणेच्छर्दिश्वासादयोगदाः॥
स्युर्वातेतत्रवस्त्यादिभोज्यंचैवानुलोमनम्

अर्थ—जब प्राण वायु अपान वायु का आवरण करलेती है तब वमन और श्वासादिक रोग उत्पन्न होते हैं। इसमें वस्ति कर्म और अनुलोमन कर्त्ता भोजन हित हैं ॥

अपानावृत प्राणवायुके लक्षण ॥

मोहाल्पोग्निरतीसारऊर्ध्वमेऽपानसंवृते ॥
वातेस्युर्ध्वमनंतत्रदीपनग्राहिचाशनम् ॥

अर्थ—जब अपानवायु प्राणवायु का आवरण करलेती है तब मोह, मन्दाग्नि और अतीसार होते हैं। इस में वमन तथा दीपन संप्राही भोजन हित हैं।

व्यानावृत अपान वायु के लक्षण।

वम्याध्मानमुदावर्तगुल्मार्तिपरिकर्तिकाः॥
लिंगव्यानावृतेपानेतस्निग्धैरनुलोमयेत् ॥

अर्थ जब व्यान वायु अपानवायु का आवरण कर लेती है तब वमन, आध्मान, उदावर्त गुल्म अति और परिकर्तिकादि उपद्रव होते हैं, इसमें स्निग्ध अनुलोमन करना चाहिये।

अपानावृतव्यान के लक्षण ।

अपानेनावृतेव्यानेभवेद्विभूचरेतसाम् ॥

अतिप्रवृत्तिस्तत्रापि सर्वसंग्रहणं मतम् ।

अर्थ—अपान वायु जब व्यान वायु का आवरण कर लेती है तब विष्ट, मूत्र और वीर्य की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है, इस में सब तरह की संप्राप्ति औषध हित होता है ॥

समानावृत व्यान वायु के लक्षण ।

मूर्च्छातन्द्रामलापोऽङ्गसादोऽन्योजोवलक्षयः ॥ समानेनावृतेव्यानेव्यायामो-

लघुदीपनम् ।

अर्थ—जब समान वायु व्यानवायु का आवरण करलेती है तब मूर्च्छा, तन्द्रा, प्रलाप, अंगसाद, अग्निक्षय, तेजक्षय, और बलक्षय होता है इसमें शारीरिक परिश्रम तथा लघु और दीपन भोजन हित है ॥

उदानावृत व्यान वायु के लक्षण ।

स्तब्धताल्पाभितास्वेदश्चेष्टाहानिर्निमीलनम् ॥ उदानेनावृतेव्यानेतत्रपथ्यमित-

लघु ।

अर्थ—जब उदानवायु व्यान वायु का आवरण कर लेती है तब स्तब्धता, मन्दगति पसीनों का बन्द होजाना, चेष्टा का नाश और निमीलन होता है, इस में थोडा और हलका भोजन हित होता है ॥

पञ्चान्योन्यावृतानेववातांल्लिङ्गैर्निशामयेत् । एषांस्वकर्मणां हानिर्दृष्टिर्वावरणं मतम् । यथास्थूलं समुद्दिष्टमेतदावरणाप्यकम् ॥ सल्लिङ्गमेपजं सम्पद्युधानां बुद्धिद्वये । स्थानान्यवेक्ष्यवातानां वृद्धिहानिश्चकर्मणाम् ॥ द्वादशावरणान्यन्यान्पभिलक्ष्याभिपग्निताम् । कुर्यादभ्यञ्ज-

नस्नेहपानेन वस्त्यादिसर्वशः ॥ क्रममुष्ण-

मनुष्णवाव्यत्यासादवधारयेत् ।

अर्थ—प्राणादिक पंचवायु जब आपस में एक दूसरे का आवरण करलेती है तब उनके ऊपर कहेहुए लक्षण होते हैं, इन पंच वायु के मित्र २ कर्मों की वृद्धि वा हानि का नाम आवरण है अथवा यों कहो कि आवरणही से इनके निज कर्मों की घटती बढती होती है स्थूल रीतिसे इन आठ प्रकार के आवरणों का वर्णन किया गया है तथा, पंडितों की बुद्धि की वृद्धि के लिये उनके लक्षण और चिकित्सा भी कही गई है ।

इनके अतिरिक्त बारह आवरण और भी हैं उन में वायु के पृथक् ३ स्थान और उनके कर्मों की वृद्धि वा हानि का अच्छी तरह विचार करके अभ्यंजन, स्नेहपान और वास्तिकर्म आदि सब प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये, तथा इसकी शान्ति के लिये व्यत्यासक्रम से उष्ण और शीतल क्रिया भी करनी चाहिये ॥

उदानादि वायु में चिकित्साक्रम ।

उदानं योजयेद्द्विमपानं चानुलोमयेत् ॥

समानं शमयेच्चैव त्रिधा व्यानन्तु योजयेत् ।

अर्थ—उदान वायुके आवृत होने पर वमन और नस्यादि ऊर्ध्व क्रिया कर्त्तव्य हैं अपान वायुके आवृत होने पर विरेचनादि अनुलोमन क्रिया करनी चाहिये । समान वायुकी संशमन चिकित्सा करे तथा व्यान वायुके आवृत होने पर उक्त तीनों प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये ॥

प्राणवायु में कर्त्तव्य ।

माणोरस्यश्चतुर्भ्योपिस्थानेष्वस्यस्थिति
धुर्वा ॥ स्वस्थानंगमयेदेवंवृत्तानेतान्नि
मार्गान् ।

अर्थ—चारों प्रकारकी वायुसे प्राणवायु
की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यकिय पहिला
काम है । इसकी निज स्थान में स्थिति हो-
ना भी अत्यन्तही आवश्यकिय है । प्राण
वायुकी इस तरह रक्षाकरके आवृत और
विमार्गगामी शेष चारों प्रकारकी वायु को
अपने अपने स्थान में लेजाने का यत्न क-
रना चाहिये ॥

पित्तावृत प्राणवायु के लक्षण ।

मूर्च्छादाहोतमःशूलविदाहःशीतकामिता॥
छर्दनश्चविदग्धस्यप्राणेपित्तसमावृते ।

अर्थ—जब पित्त प्राणवायु को आवृत
कर लेता है तब मूर्च्छा, दाह, अधकार द-
र्शन, शूल, विदाह और शीतल वस्तुओं पर
इच्छा होती है तथा विदग्ध भोजन की वम-
न भी होती है ॥

कफावृत प्राण के लक्षण ॥

घ्रीवनेक्षवधूद्वारनिःश्वासोच्छ्वासमग्रहः
प्राणकफावृतेरूपाण्यरुचिश्छर्दिरेवच ।

अर्थ—कफावृत प्राणवायु में थुकथुकी,
छींक, डकार, निःश्वासरोध, उच्छ्वासरोध,
अरुचि और वमन होते हैं ॥

पित्तावृत उदान के लक्षण ॥

मूर्च्छाद्यानिचरूपाणिदाहोनाभ्युरसोर्भ-
मः ॥ ऊर्जाभ्रंशश्चासादध्याप्युदानोपित्त
संघृते ।

अर्थ—पित्तावृत उदानवायु में मूर्च्छा-
दिक उक्त लक्षण तथा नाभि और वक्षः-
स्थल में दाह भ्रम, उर्जाभ्रंश और अंग-
साद होता है ॥

कफावृत उदान के लक्षण ॥

आवृतेऽप्येवमणोदानेवैवर्ण्यंवाक्स्वरग्रहः॥
दौर्बल्यंगुरुगात्रत्वमरुचिश्चोपजायते ।

अर्थ—कफावृत उदानवायु में विवर्णता
धाकूनिग्रह, स्वरभंग, दुर्बलता, गुरुगात्रता
और अरुचि होती है ॥

पित्तावृत समान वायु के लक्षण ॥

अतिस्वेदस्तृपादाहोमूर्च्छाचारुचिरेवच॥
पित्तावृतेसमानेस्युरूपघातस्तथोष्मणः ।

अर्थ—पित्तावृत समानवायु में पसीनोंका
अत्यन्त आना, तृपा, दाह, मूर्च्छा, अरुचि
और ऊष्माका उपघात होता है ॥

कफावृत समान वायु के लक्षण ॥

अस्वेदोवह्निमान्धश्चलोमहर्षस्तथैवच ॥
कफावृतेसमानेस्युर्गात्राणांचातिशीतता॥

अर्थ—कफावृत समानवायु में पसीनों
का बन्दहोना, मन्दाग्नि, रोमोद्गम तथा श-
रीरका अत्यन्त ठंडा होना ये लक्षण होते हैं ॥

पित्तावृतव्यान के लक्षण ॥

व्यानेपित्तावृतेतुस्यादाहःसर्वांगःकृमः
गात्रविक्षेपसंगश्चसन्तापःसवेदनः ॥

अर्थ—पित्तावृत व्यान वायु में सम्पूर्ण
देहमें दाह, क्लान्ति, गात्रविक्षेप, संग, सं-
ताप और वेदना होती है ॥

कफावृत व्यानके लक्षण ॥

गुरुतासर्वगात्राणांपर्वसन्ध्यस्थवग्रहः॥

व्यानेकफावृतेलिंगगतिसङ्गस्तथाधिकः।

अर्थ—कफावृत व्यान वायु में सम्पूर्ण अंगायवशों में गुरुता, पर्वीवरोध, संप्यवरोध, अस्थ्यवरोध तथा अत्यन्त गतिरोध होता है।

पित्तावृत अपानके लक्षण ।

हारिद्रमूत्रनचस्त्वन्तापश्चगुदमेहयोः॥ लिङ्गपित्तावृतेऽपानेरजसःसंभवर्त्तनम् ॥

अर्थ—पित्तावृत अपान वायुमें मूत्र और विष्टा हलदी के से रंगका होजाता है, गुदा और मेदू में ताप होता है, और रज की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है।

कफावृत अपानके लक्षण ।

भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् ।

श्लेष्मणासंवृतेऽपानेकफमेहस्यचागमः ॥

अर्थ—कफावृत अपान वायु में कफा हुआ और आम कफसे मिला हुआ भारी विष्टा निकलता है तथा कफमेह का आगम होता है।

कफपित्तावृत के लक्षण ।

लक्षणानांतुमिश्रत्वंपित्तस्यचकफस्यच ।

उपलभ्यभिपग्निद्वान्मिश्रमावरणंवदेत् ॥

यद्यस्यवायोर्निर्दिष्टस्थानंतत्रैतौस्मृतौ ।

दोषावहुविधान्वाग्वाधीनदर्शयेतांयथा-

निजान् ॥

अर्थ—जब वायु पित्त और कफ दोनों से आवृत होती है तब दोनों के मिले हुए लक्षण होते हैं। जब वायु कफ और पित्त से आवृत होकर जिस जिस स्थानमें विचरण करती है उसी उसी स्थान में कफ और पित्त अपने अपने लक्षणों वाली व्याधि उत्पन्न करते हैं।

प्राणोदान वायुको गुरुता ॥

आवृतंश्लेष्ममिच्छाभ्यांप्राणंचोदानमेवच।
गरीयस्त्वेनपश्यन्तिभिपजःशास्त्रचक्षुषः॥

विशेषाज्जीवितंप्राणेउदानेसंश्रितंवलयम् । स्यात्तयोःपीडनाद्भानिरायुपदचवलस्यच ॥

अर्थ—पित्त और कफसे आवृत प्राण और उदान वायु को शास्त्रज्ञ वैद्य बहुत भारी समझते हैं, कारण ये हैं कि जीवनप्राण वायुको आधीन है और बल उदानवायु के आधीन है। इसलिये इनके पीडित होने से आयु और बल दोनोंकी हानि होजाती है। सर्वेऽप्येतेपारिज्ञेयाःपरिसंवत्सरास्तथा । उपेक्षणादसाध्याःस्फुरयवादुरूपक्रमाः ॥

अर्थ—इन सब को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये, क्योंकि इनकी उपेक्षा करने से ये एक दरस पीछे असाध्य वा दुर्दिशकित्स्य होजाती हैं।

उपेक्षित वायुके उपद्रव ॥

हृद्गोविद्रधिःश्रीहागुल्मातीसारएवच ।

भयन्त्युपद्रवास्तेपागावृतानामुपेक्षणात् ॥

अर्थ—इन आवृत वायुकी उपेक्षा करने से हृद्दोग, विद्रधि, श्रीहा, गुल्मरोग, अतीसार आदि उपद्रव होते हैं ॥

वैद्यको उपदेश ॥

तस्मादावरणंवैद्यःपवनस्योपलक्षयेत् ।

पश्चात्पक्वस्यवातेनपित्तेनश्लेष्मणापिवा।

भिपग्निर्तैरतःसंयुगुपलक्ष्यसमाचरेत् ।

अनभिप्यन्दिभिःस्निग्धैस्तोतसांशुद्धि-

कारिभिः ॥

अर्थ—इसलिये वैद्यको उचित है कि वायु के आवरणों पर दृष्टि रखै कि ये पाँचों प्रकार की वायु वात, पित्त अथवा कफ से आवृत हैं, इसका अच्छी तरह विचार करके अनभिष्यन्दी, स्निग्ध और स्रोतों के शुद्ध करनेवाली औषधियोंसे चिकित्सा करै ॥

आवृत वायुमें चिकित्सा ॥

कफपित्ताधिरुद्धयश्चवातानुलोमनम् ॥
सर्वस्थानावृतेष्याशुतत्कार्यमारुतेशुभम् ॥
यापनावस्तपःप्रायोमधुराःसानुवासनाः
प्रसमीक्ष्यबलाधिक्यमृदुवासंसनंहितम् ॥
रसायनानांसर्वेषामुपयोगः प्रशस्यते ।
शैलस्पजतुनोऽत्यर्थपयसागुग्गुलोस्तथा ।
लेहवाभार्गवप्रोक्तमभ्यस्येत्क्षीरभुग्धुधम्
अभयामलकीयोक्तमेकादशसिताशतम् ।

अर्थ—सर्वस्थानावृत वायु में वह चिकित्सा करनी चाहिये जो कफपित्त के अ-
विरुद्ध हो और वात के अनुलोमन करने
वाली हो । इसमें क्षीरवस्ति (यापनवस्ति)
मधुरवस्ति और अनुवासन हित है तथा
बल के अनुसार मृदुविवेचन देवै । इस में
सम्पूर्ण रसायनिक प्रयोग भी उपयोगी होते
हैं, बहुत दूध के साथ शिलाजीत और गु-
गल का सेवन भी हित है । केवल दुग्ध
का आहार करके प्रथमाध्याय में कहे हुए
च्यवनप्राशका सेवन करै अथवा ग्यारह प्र-
कारकी अभयामलकीयोक्त रसायन भी हित हैं

अपानावृत प्राणवायुमें चिकित्सा ॥

अपानेनावृतेसर्वदीपनप्राहिभेषजम् । वा

तानुलोमनंयच्चपक्वाशयविशोधनम् ॥
इतिसंक्षेपतःप्रोक्तमावृतानांचिकित्सितम्
प्राणादीनांभिपक्कुर्याद्वितर्क्यस्वयमेवंतत्

अर्थ—अपानावृत प्राणवायु में, दीपन,
संप्रादी वातानुलोमनकर्त्ता और पक्वाशय
को शुद्ध करनेवाली चिकित्सा करनी
चाहिये ॥

इस तरह आवृतवायुकी चिकित्सा संक्षेप
रूप से वर्णन की गई है, इनमें वैद्य अपनी
बुद्धि से भी अन्य औषधों का प्रयोग करे।
पित्त और कफावृतवायुकी चिकित्सा ॥
पित्तावृतेतुपित्तघ्नैर्मारुतस्याविरोधिभिः
कफावृतेकफघ्नैस्तुमारुतस्यानुलोमनैः ॥

अर्थ—पित्तावृतवायु में पित्तनाशक और
वायुके अविरोधी चिकित्सा करे । कफावृत
वायु में कफनाशक और वायुका अनुलोमन
करनेवाली चिकित्सा करना चाहिये ॥

लोकेवाय्वर्कसोमानांदुर्विज्ञेयायथागतिः
तथाशरीरेवायस्पापित्तस्यचकफस्यच ॥
क्षयंवृद्धिसमत्वंवागत्यैवातरणंभिपक् ॥

विज्ञायपवनादीनामृद्धातिस्यकर्मसु ॥

अर्थ....संसार में जिस तरह पवन, सूर्य
और चन्द्रमा की गति समस्त में नहीं आती
है उसी तरह देह में वात, पित्त और कफ
की गति समस्त में नहीं आती है । जो वैद्य
वातादिककी क्षय, वृद्धि, समता और आव-
रण को जानकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त
होता है वह घबडाता नहीं है ॥

अध्यायकासंक्षेप वर्णन ।

पञ्चात्मनःस्थानवशाच्छरीरेस्थाना-

निकर्माणिचदेहधातोः ॥ प्रकोपेहतुः कुपित
श्चरोगान् ॥ स्थानेषुवान्येषुवृत्तश्च
प्राणेश्वरः प्राणभृतां करोति ॥ क्रियाचते
पामखिलानिरुक्ता ॥ तान्देशसात्म्यवर्तुव
लान्यवेक्ष्य प्रयोजयेच्छास्त्रमतानुसारि ॥

अर्थ—इस वातव्याधि चिकित्सित अ-
ध्याय में पंचात्मक वायु के शरीर में भिन्न
भिन्न स्थानादि, देह धातु के कर्म, प्रकोप
के हेतु, कुपित होकर अपने स्थान में वा
अन्य स्थानों में जिन २ रोगों को करती
हैं, पृथक् पृथक् वायु के आवरणों के लक्षण
और उनकी सब क्रिया वर्णन की गई हैं
वैद्यको उचित है कि इन सब बातों को देख
कर तथा देश, सात्म्य ऋतु, और बलको
देखकर औषध करने में प्रवृत्त होवै ॥

इति श्रीभाषाटीकावित्तायां अग्निवेश विरचि-
तायां चरकप्रतिस्संस्कृतायां संहितायां चिकि-

त्सितस्थानेषु वातव्यधिचिकित्सितानां

माष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

—॥—

एकोनविंशोऽध्यायः

अथातो वातशोणितचिकित्सितं व्याख्या-
स्याम इति हस्माद्भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले
किं अब हम वातरक्त नामक चिकित्सित
अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

हुताग्निहोत्रमासीनमृषिमध्ये पुनर्वसुम् ॥

पृष्ठवान् गुरोर्गोकार्ग्यमग्निवेशोऽग्निवर्चसम् ॥

अग्निमारुततुल्यस्य संसर्गस्यानिलासृजोः ॥

हेतुलक्षणभैषज्यान् यथास्मै गुरुरग्रवीत् ॥

अर्थ—अब गुरु पुनर्वसुजी अग्निहोत्र-
कर्म से निश्चिन्त होकर एकाम्रचित्त से
ऋषियों के बीच में अग्निकी शिखा के स-
मान विराजित हो रहे थे तबही अग्निवेश
ने पूछा कि हे गुरुदेव! अग्नि और वायुके
समान मिले हुए वातरक्त के हेतु, लक्षण
और चिकित्सा का उपदेश कीजिये, यह
सुनकर गुरुजीने उस से कहा ॥

वातरक्त के हेतु ।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णार्जीर्णभोज-
नैः । क्षिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्या
कमलकैः ॥ कुलत्थमापनिष्पावशाका
दिपललेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरशु-
क्रतक्रमुरासवैः ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोध
दिवास्वप्नमजागरैः ॥ प्रायशः सुकुमाराणां
पिष्टान्नरसभोजिनाम् ॥ अचक्रमणशी-
लानां कृप्यते वातशोणितम् ॥ अभिघाता
दशुद्ध्यां च मृदुशोणिते नृणाम् ॥ कपाय
कटुतिक्ताल्परूक्षाहारादभोजनात् । ह-
योप्रयानयानाम्बुक्कीडाप्लवनलघ्वनात् । उ-
ष्णे चात्यध्ववैषम्याद्वयवायाद्देगनिग्रहात्
वायुविष्वदो वृद्धेन रक्तेनावारितः पथि ।
ऊर्ध्वस्तद्वृष्येद्रक्तं तज्ज्ञेयं वातशोणितम् ।
खुडं वातबलासारूपमादचरोगं च नामभिः

अर्थ.... नमकीन, खट्टे, कड़वे, खारे, स्नि-

ग्ध, उष्ण और दुष्पाच्य द्रव्यों के अत्यन्त
सेवन से गीले वा सूखे औदकमांस और
आनूपमांस के अत्यन्त सेवन से, पिण्याक
वा मूली के अत्यन्त सेवन से, कुलधी,
उरद, चौलाआदि शाक तथा पल्ल और

ईश के अत्यन्त सेवन से; दही, कांजी, सौंधीर, शुक्र, तक्र, सुरा और आसव के अत्यन्त सेवन से; विरुद्धभोजन, अध्यशन, क्रोध, दिवास्वप्न और अत्यन्त जागरण से; प्रायःसुकुमार और पिष्टान्न रस भोजन करनेवालों के (प्रायशःसुकुमाराणामिध्याहारविहारिणाम्), तथा जो डोलेते फिरते नहीं है एकही जगह बैठे रहते हैं उन के वातरक्त कुपित होता है तथा चोट लगने से इकट्ठे हुए मल को न निकालने से रक्त दूषित होजाता है । कपाय, कटु, तिक्त, अल्प और रूखा आहार करने से वा विना भोजन करने से, अथवा घोड़े वा ऊंटकी सवारीपर चढ़कर जाने से, वा जलक्रीड़ा, प्लवन और लघन करने से वा गरमी के समय अत्यन्त विषम मार्ग पर चलने से, व्यवाय से, वेगनिग्रह से बढी हुई वायुमार्ग में बढेहुए रक्त से रुककर कुपित होजाती है और रक्तको दूषित करदेती है इसेही वातरक्त कहते हैं । इसके पर्यावाची नाम खुडवात, वातवलास और आख्यवात भीहैं ॥

वातरक्त के स्थान ॥

स्थानंकरौपादावंगुल्यःपर्वसन्धयः॥
कृत्वादौहस्तपोदतुमूलंदेहोविधात्राति ॥

अर्थ—वातरक्त के स्थान दोनों हाथ दोनोंपांव, अंगुलियां और पर्वसंधियां हैं ॥ यह प्रथम हाथ और पांव में उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण देह में फैलजाता है ॥

सौक्ष्म्यात्सर्वसरत्वाच्चदेहंगच्छन्निरायनैः । पर्वस्वभिहतंशुब्धवक्रत्वादवतिष्ठते ॥

(१४३)

स्थितं पिप्तादि संसृष्टं तास्ताः सृजति वेदनाः ।
करोति दुःखं ते प्वेव तत्प्राप्तो यणसन्धिषु ॥

अर्थ—वायुकी सूक्ष्मता और रक्तकी सर्वत्र गमन करनेवाली शक्ति से कुपित हुए वातरक्त सम्पूर्ण देह में गमन करते हैं, पन्तु जत्र पोरुओं में जाते हैं तब उनकी टेढाई के कारण वहीं रुक कर ठहर जाते हैं, तब पिप्तादि दोषों से मिलकर वैसी ही वेदना उत्पन्न करते हैं और इसीलिये उनही संधियों में अत्यन्त पीडा होती है ।

वातरक्त के पूर्वरूप ।

स्वेदोऽत्यर्थनवाकाशैर्यस्पर्शान्नं वक्षतेऽतिरुक् । सन्धिशैथिल्यमालस्यं सदनां पिडकोद्भयः ॥ जानुजंघोरुक्थ्यं सहस्तपादाङ्गसन्धिषु । निस्तोदःस्फुरणं भेदो गुस्तं मुस्तिरेव च ॥ कण्ठःसंधिषु रूग्भूत्वा भूत्वा नश्यति चासकृत् । वैवर्ण्यमण्डलोत्पत्तिर्वात्ता मृकृपूर्वलक्षणम् ॥

अर्थ—अत्यन्त पसीने आना वा सर्वथा न आना, कृशता, स्पर्श का ज्ञान न होना क्षत में अत्यन्त वेदना होना, संधियों में शिथिलता, आलस्य, अंगसाद, पुन्सियोंका होना, जानु, जंघा, ऊरु, कटि, कंधा, हाथ, पांव तथा देहकी संधियों में सूचभेदन के समान पीडा होना, स्फुरण, भेद, भारापन, सुप्ति, खुजली संधियों में वेदना हो होकर मिटजाना विवर्णता चकत्तों का होना । ये सब वातरक्त के पूर्वरूप हैं ॥

वातरक्त के भेद ॥

उत्तानमथगम्भीरं द्विविधं तत्र च क्षते ॥

त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरं त्वन्तराश्रयम् ।
 अर्थ—वात रक्त दो प्रकार का होता है,
 यथा—उत्तान और गम्भीर । जो त्वचा और
 मांस में आश्रित होता है वह उत्तान है
 और जो मांससे भी भीतर का आश्रय ले-
 कर उत्पन्न होता है, वह गम्भीर है ॥

उत्तान वातरक्तके लक्षण ।

कण्डूदाहर्गुगायासतोदस्फुरणधूपनैः ॥
 अन्विताश्यावरक्तात्वग्वाह्येताम्रातेथेष्पते ।

अर्थ—जिसमें खुजली, दाह, वेदना, तोद
 स्फुरण और जलन हो और चमड़ा श्याव-
 वर्ण वाताम्वर्ण होजाय उसे उत्तान वात-
 रक्त कहते हैं ।

गम्भीर वातरक्तके लक्षण ।

गम्भीरः श्वयथुः स्तब्धः कठिनोऽन्तर्भृश-
 तीमान् । श्यामस्ताम्रोऽथवादाह तोदस्फु-
 रणपाकवान् ॥

अर्थ—जिसमें सूजन, स्तब्धता, कठोरता
 हो, जिसमें भीतर अत्यन्त वेदना हो, जिस
 में त्वचा श्यामवर्ण वा ताम्रवर्ण होजाय,
 जिसमें दाह तोद, स्फुरण होता हो और
 जो पाकाभि मुख हो वह गम्भीर वातरक्त है ।
 रुग्निदाहान्वितोऽभीक्ष्णं वायुः सन्ध्यस्थि-
 मज्जमु । छिन्दन्निव चरत्यन्तर्वक्त्रिकुर्व-
 थवेगवान् ॥ करोति खञ्जं पंगुं वा शरीरे स-
 र्यतश्चरन् ।

अर्थ—वेदना और दाहसे मिली हुई वा-
 यु संधि, अस्थि और मज्जा में छेदनवत्
 पीडा करती हुई विचरती है और अपने
 वेग से उंगली आदि अंगों को टेढ़ा करदेती

है और सम्पूर्ण शरीर में विचरती हुई
 खञ्जता और पांगलापन भी करदेती है ।

उभयाश्रित वातरक्त के लक्षण ।

सर्वैर्लिङ्गैश्च विज्ञेयं वातासृगुभयाश्रयम् ॥
 तत्र वातेऽधिके वास्याद्रक्तेऽपि तक्तेऽपि वा-
 संस्पृष्टेऽप्यसमस्तेऽप्युच्चतच्छृणुलक्षणम् ॥

अर्थ—जिसमें उक्त दोनों प्रकार के वात
 रक्त के मिले हुए लक्षण देख पड़ते हैं वह
 उभयाश्रित वातरक्त है । इनमें से दोनों
 प्रकार का वातरक्त वाताधिक, रक्ताधिक,
 पित्ताधिक वा कफाधिक होता है । अथवा
 दो दो दोषों से मिला हुआ वा सब दोषों से
 मिला हुआ भी होता है अब इसके पृथक्
 पृथक् लक्षण सुनो ।

वाताधिक वातरक्त के लक्षण ।

विशेषतः शिरायास शूलस्फुरण तोदनम् ।
 शोथस्य कार्श्यरूक्षत्वश्यावता वृद्धिहानयः
 धमन्यंगुलिसन्धीनां सङ्कोचोऽग्न्यहोऽतिरु-
 क्कुञ्चनस्तम्भने शीतप्रद्वेषचानिलेऽधिके ॥

अर्थ—वाताधिक्य वातरक्त में विशेष
 करके शिरा में यातना, शूल, स्फुरण, तोद,
 शोथ में कालापन, रूक्षता, श्यावता, कभी
 बढाव, कभी घटाव, धमनी, उंगली और
 संधियों में संकोच, अंगप्रद, अत्यन्त वेदना,
 कुंचन, स्तम्भन और शीतल वस्तु में अनि-
 च्छा ये लक्षण होते हैं ।

रक्ताधिक वातरक्त के लक्षण ॥

श्वयथुर्भृशरुकोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते ।
 स्निग्धरुक्षैः शर्मनैति कण्डूक्लेदान्विताऽ-
 मृजि ॥

अर्थ....रक्ताधिक वातरक्त में सूजना, अत्यन्त वेदना, त्वचा का ताम्रवर्ण और त्रिमिचिमापन होता है । किसी प्रकार की स्निग्ध वा रूक्ष औषधियों से शान्ति नहीं होती, इस में खुजली और छेदभी होताहै।

पित्ताधिक वातरक्त के लक्षण ।

विदाहोवेदनामूर्च्छास्वेदस्तृणामदोभ्रमः । रागः पाकश्चभेदश्चशोफश्चोक्तानपैक्तिके ॥

अर्थ....पित्ताधिक वातरक्त में दाह, वेदना, मूर्च्छा स्वेद, तृषा, मद और भ्रम होता है इस में राग, पाक, शोफ और भेद भी होता है ।

कफाधिकवातरक्तके लक्षण ।

स्तैमित्यगौरवस्नेहःसुप्तिमन्दारुक्फे ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में स्तिमिता, भारापन, स्निग्धता, सुन्नता, अरीच और मन्द वेदना होती है ॥

संस्पृष्टवातरक्तके लक्षण ॥

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विधाद्वन्द्वत्रिदोषजम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त हेतु और लक्षणों के संसर्ग से द्विदोषज वा त्रिदोषज वातरक्त होता है अर्थात् जिस में दो दोषों के हेतु और लक्षण मिलेहुए पाये जाते हैं उसे द्विदोषज कहते हैं और जिसमें सब दोषों के मिलित लक्षण होते हैं वह सर्व दोषज होता है ॥

वातरक्तकोसाध्यासाध्यत्व ।

एकदोषानुगंसाध्यनवंपाप्यद्विदोषजम् ॥

त्रिदोषजमसाध्यवायस्यचस्युरूपद्रवः ॥

अर्थ—जो वातरक्त एकदोषसे युक्त और

नवीन होता है वह साध्य है, जो दो दोषों से उत्पन्न है वह याप्य है जो तीन दोषों से उत्पन्न है अथवा उपद्रवों से युक्त है वह असाध्य होता है ॥

सोपद्रववातरक्त के लक्षण ॥

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः मूर्च्छाचमदरूछर्दिज्वरमोहमवेपकाः ॥ हिकापांडुत्ववीसर्पपाकतोदभ्रमवलमाः ।

अंगुलीवक्रतास्फोटादाहमर्मग्रहार्बुदाः ॥ एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यमोहेनैकेनवापियत् । संप्रस्राविविवर्णञ्चस्तब्धमर्बुदकञ्चयत् ॥ वर्जयेद्यःसंसर्गोचकरभिन्द्रियतापनम् ।

अर्थ—नांद न आना, अरुचि, श्वास, मांस में गलावट, शिरोग्रह, मूर्च्छा, मद, वेदना, घमन, ज्वर, मोह, कम्पन, हिचकी पाण्डुरोग (पांगुल्यमपिपाठः), विसर्प, पाक, तोद भ्रम, क्लान्ति अंगुलियों में टेढ़ापन, फोड़े, दाह, मर्मग्रह, अर्बुद, इनसब उपद्रवों के होने पर वातरक्त वर्जनीय होता है अथवा इन में से कोई उपद्रव न हो और केवल एक मोहही हो तो भी वर्जनीय है । जिस वातरक्त में स्राव होता हो, विवर्णता हो, स्तब्धता हो, जिसमें अर्बुद संकोचता और इन्द्रियताप हो वह भी वर्जनीय है ॥

सुचिकित्स्य वातरक्त के लक्षण ।

अकृत्स्नोपद्रवंयाप्यंसाध्यस्यानिरुपद्रवम् ॥

अर्थ....जिस में उक्त सम्पूर्ण उपद्रव एक साथ नहीं होते हैं वह याप्य है और जिस

में एक भी उपद्रव नहीं होता वह साध्य होता है ॥

वायुप्रकोप में चिकित्सा ।

रक्तमार्गनिर्हत्याशुशाखासन्धिषुमारुतः
निवेश्यान्योन्यभावार्यवेदनाभिर्हरेदम्-
न ॥ तत्रमुञ्चेदसृक्मृज्जलौकःमूच्यला-
बुभिः । प्रच्छन्नैर्वाशिराभिर्वायथादोपं-
यथावलम् ॥ रुदाहशूलतोदात्तदसृक्-
स्ताव्यंजलौकसा । शृङ्गैःस्तम्भैर्हरेत्सृप्ति-
कण्डूचिमिचिमायनात् ॥ देशदेशेत्रज-
नस्ताव्यंशिराभिःप्रच्छनेनवा । अङ्गेम्ला-
नेनतुस्ताव्यंरुक्षेवातोत्तरञ्चयत् ॥

अर्थ—वायु हाथ पांवों की संधियों में प्रवेश करके रक्तवाही मार्गों को रोक देती है, तब रक्त और वायु परस्पर एक दूसरे को रोकते हुए प्राणों को क्षीघ्र हरलें-
ते हैं, ऐसे स्थल में सींग, जोक, सूची, अ-
लाबू, पछना वा शिराव्यध (फस्त) का
यथावल प्रयोग कर के रुधिरको निकलवा
डाले । वातरक्त में जो वेदना, दाह, शूल
और तोद हो तौ जोक लगाकर रुधिर नि-
काल डाले । जो मुत्ति, कण्डूपन और चि-
मचिमाहट हो तौ सींगी लगाकर रुधिर नि-
काळे । जो वातरक्त एकस्थान से दूसरे स्था-
नपर सरकजाता हो तौ शिराव्यध वा
पछना द्वारा रुधिर निकाले परन्तु जो देह
में किसी प्रकार का क्लेश और म्लानता हो
वां रुक्ष पुरुष के वाताधिक्य वातरक्त में
रुधिर निकालने का निषेध है ॥

गम्भीरंश्चयथुंस्तम्भंरुक्पंस्नायुशिरामया-
न । म्लानिवास्पत्तसंक्षोचांकुर्याद्वायुर-

सृक्क्षयात् ॥ खज्जादीन्वातरोगांश्च-
मृत्युवात्यपसेचितम् । कुर्यात्तस्मात्प्रमा-

णेनस्निग्धाद्रक्तंविनिर्हरेत् ॥

अर्थ—रक्तके अत्यन्त क्षीण होजाने से
गंभीर सूजन, स्तम्भता, कम्पन, स्नायुरोग
शिरारोग, म्लानि और संकोच उत्पन्न होते
हैं तथा अत्यन्त रक्तमोक्षण से खज्जादिक
वातरोग उत्पन्न होकर मृत्यु भी होजाती है
इसी हेतु से प्रथम स्नेहन करके प्रमाण से
रक्तमोक्षण करे ॥

वातरक्त में चिकित्साक्रम ।

विरेच्यःस्नेहयित्वादौस्नेहयुक्तैर्विरेचनैः
रुक्षैर्वामृदुभिःशस्तंसकृद्वास्तिकर्मच ॥
सेकाभ्यङ्गप्रदेहान्नस्नेहाःप्रायोऽविदाहि-
नःवातरक्तेप्रशस्यन्तेविशेषंतुनिबोधये ॥

अर्थ....वातरक्त में प्रथम स्नेहन कराके
स्नेहयुक्त विरेचन देवै अथवा रुक्ष वा मृदु
विरेचन देवै और वास्तिकर्म भी बार बार
करता रहै । वातरक्त मे प्रथम प्रायःअविदाही
परिपेक, अभ्यंग प्रलेप, अन्न और स्नेहका
प्रयोग करना चाहिये । अब जो विशेषता
है उसका वर्णन किया जाता है ।

वाह्यवात रक्त में कर्म ।

वाह्यमालेपनाभ्यङ्गपरिपेकोपनाहनैः ॥

अर्थ—वाह्यवात रक्तमें आलेपन, अभ्यंग
परिपेक और उपनाहन करना चाहिये ।

गंभीर वातरक्त में कर्त्तव्यकर्म ।

विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥

अर्थ—गंभीर वातरक्त में विरेचन, आस्था-
पन और स्नेहपान करना चाहिये ।

वातोत्तर वातरक्त की चिकित्सा ।
सर्पिस्तैलवसामज्जापानाभ्यञ्जनवस्ति-
भिः । सुखोष्णैरुपनाहश्चवातोत्तरमु-

पाचरेत् ॥

अर्थ....वातोत्तर वातरक्त में घृत, तैल,
वसा, मज्जा, पान, अभ्यञ्जन, वस्ति और सु-
खोष्ण उपनाह का प्रयोग करना चाहिये ।

रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में चिकित्सा ।
विरेचनैर्घृतक्षीरपानैःसकैःसवास्तिभिः ।
शीतैर्निर्वापनैश्चापिरक्तपित्तोत्तरंजयेत् ॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में विरेचन
घृतपान, क्षीरपान परिपेक, वस्तिकर्म और
शीतल निर्वापण करना उचित है ॥

कफोत्तर वातरक्त में चिकित्सा ।
वमनमृदुनात्यर्थस्नेहमेकादिलंघनम् । को-
ष्णलेपाश्चशस्यन्तेवातरक्तेकफोत्तरे ॥

अर्थ—कफोत्तर वातरक्त में अत्यन्त मृदु
वमन, स्नेहसेक, लंघन और सुहाता हुआ
गरम लेप हित है ।

कफवातोत्तर वातरक्तमें चिकित्सा ।
कफवातोत्तरेशीतैःप्रलिप्तेवातशोणिते ।
विदाहशोफरूक्णहृद्यष्टाद्विःस्तम्भनाद्भ-
वेत् ॥

अर्थ—कफवातोत्तर वातरक्त में शीतल
लेप करनेसे स्तम्भन होने के कारण विदाह,
सूजन, वेदना और खुजली की शक्ति होती है ।

रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में कर्म ।
पित्तरक्तोत्तरेदाहःश्लेदोऽवशरणंभवेत् ।
उष्णैस्तस्माद्विपग्नापवर्लंबुद्ध्याचरेत्कि-
याम् ॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में उष्ण
उपचार करने से दाह, क्लेद और अवदरणा
होता है इस से इस में दोष का बल देख
कर चिकित्सा करनी चाहिये ॥

वातरक्त में वर्जितकर्म ।

दिवास्वप्नससन्तापं व्यायामंमैथुनं तथा ।
कटुपुष्पगुर्वभिष्यन्दिलवणाम्लचवर्जयेत् ॥

अर्थ—दिवानिद्रा, संताप, व्यायाम, मैथुन
तथा कटु, उष्ण, भारी, अभिष्यन्दी, नमकीन
और खड़े पदार्थों का सेवन उचित नहीं है ॥

वातरक्तमें सेवनीयद्रव्य ।

पुराणयवगोधूमनीवारःशालिपट्टिकाः ।
भोजनार्थैरसार्थैवाचिकिरप्रतुदाहिताः ।

आढक्याश्चणकामुद्गामसूराःसमकुष्ठकाः
गुपार्थैर्वहुसर्पिकाःप्रशस्तावातशोणिते ॥

अर्थ—पुराने जौ, गेहूँ, नीवार, शाली-
चावल, साठीचावल भोजन में हित हैं ।
विधिकर और प्रतुद पक्षियोंका मांसरस हि-
त है । अड़हर, चना, मूँग, मसूर, मोंठ
इनका बहुत धी डालाहुआ यूप वातरक्त
में हित है ।

सुनिपण्णकवेद्याप्रकाकमाचीशतावरीः ।
वास्तुकोपोदकाशाकंशाकंसौवर्चलंतयां

घृतमांसरसैर्धृष्टंशाकसात्म्यायदापयेत् ॥
व्यञ्जनार्थतयागव्यमादिपानंयोजिनम्

अर्थ—जो वातरक्तवाला शाकको अ-
धिक चाहता हो और वह उसके अनुकूल
भी हो तो चौरतिया, बैनकी कोंपल, मसोद,
सितावर, बंधुआ, पोई, हृष्टुल इनके मांस
को धी में भूनकर मांसरस के साथ लेवन

करै तथा इस रोगमें गौ, भैंस और बकरी का दूध हित है ।

इतिसंक्षेपतः भोक्तृवातरक्तचिकित्सितम् ।
एतदेव पुनः सर्वव्यासतः संप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—यह वातरक्त की संक्षेपसे चिकित्सा कह्यो गई है, अब फिर इस सबको विस्तारपूर्वक कहते हैं ।

श्रावण्यादि घृत ।

श्रावणीक्षीरकाकोलीक्षीरिकाजीवकैः समैः
सिद्धं सर्पभक्षैः सर्पिः सक्षीरं वातरक्तनुत् ।

अर्थ—श्रावणी, क्षीरकाकोली, क्षीरिका, जीवक और ऋक्षभक्ष इन सब को समान भाग लेकर कल्क बनावे, इस से चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध डालकर पाक करै यह घृत वातरक्त नाशक है ।

बलादि घृत ।

बलामतिबलामेदां आत्मगुह्यां शतावरीम् ॥
काकोलीक्षीरकाकोलीं रास्नामृद्धिञ्च-
पेपयेत् । घृतञ्च तु गुणक्षीरतैः सिद्धं वात-
रक्तनुत् ॥ हृत्पाण्डुरोगविसर्पकामलादा-
हनाशनम् ।

अर्थ—बला, अतिबला, मेदा, केंच के बीज, सितावर, काकोली, क्षीरकाकोली, रास्ना और ऋद्धि इनके समान भाग कल्क में पूर्वोक्त क्रम से घी दूध डालकर पकावै । यह घृत वातरक्त, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विसर्प, कामला और दाह इन रोगों को दूर करदेता है ।

तामलव्यादि घृत ।

तामलव्यादिकाकोल्याः पिप्पलीत्रायमा

गयोः । कशेरुका कपायेण कल्कैरेभिः प-
चेदघृतम् ।

अर्थ—भूम्यां बला, काकोली, क्षीरकाकोली, पीपल, त्रायमाण और कशेरु इन सब के कपाय और कल्क में घृत पाक करके सेवन करने से वातरक्त दूर होजाता है ।

पारूपकघृत ।

दत्त्वा पारूपकद्राक्षाकाशमर्यैश्चुरसान्समान् ॥
पृथग्विदार्याश्च रसं तथा क्षीरञ्च तु-
र्गुणम् । एतत्प्रायोगिकं सर्पिः पारूपकमि-
ति स्मृतम् ॥ वातरक्ते क्षते क्षीणे वीसर्पे पैत्ति-
के ज्वरे ।

अर्थ—कालसा, दाख, खंभागी, और ईख इन चारों का रस समान भाग विदारी का रस इन चारों के समान, इनसे चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध इन सब को पकाने से पारूपक नाम घृत बनता है इसके सेवन करने से वातरक्त, क्षतरोग, क्षीणरोग, विसर्प और पैतिक ज्वर दूर होजाते हैं ।

द्विपञ्चमूलादिघृत ।

द्वेपञ्चमूले यर्पाजमैरण्डं स पुनर्नवम् ॥ सु-
दृगपणीमहामेदां मापपणीं शतावरीं । शं-
खपुष्पीमवाकपुष्पीं रास्नामतिबलाबलाम्
पृथग्विद्वपलिकं कृत्वा जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे समक्षीरं धात्रीक्षुलागलानुरसान् ॥
घृताढकेन संयेज्य शनैर्मद्यक्षिना पचेत् ।
कल्कानावाप्यमेदेद्वेकाशमर्यैः फलमुत्पलम् ॥
त्वक्क्षीरीं पिप्पलीं द्राक्षां पञ्चबीजं पुनर्नवाम्
नागरं क्षीरकाकोलीं पिप्पलिकं गृहीद्वयम् ॥

वीरांशृङ्गाटकं भव्यमुखमाणं निकोचकम् ।
वदरोक्षोटवाताममुञ्जाताभिपुकांस्तथा ॥
एतैर्वृताढकेसिद्धेत्तौद्रंशतेप्रदापयेत् । स-
म्यक्सिद्धश्चिज्ञापस्वनुगुप्तनिधापयेत् ॥
रक्षाकर्मकृतयोक्षःसेवेताक्षमतःसदा । पा-
ण्डुरोगंज्वरं ह्रिक्कांस्वरभेदं भगन्दरम् ॥
पार्श्वशूलक्षयं कासं ग्रीहानं वातशोणितम् ।
क्षतशोषमपस्मारमश्मरीं शर्करान्तथा ॥
सर्वाङ्गैकांगरोगांश्च मूत्रसङ्गांश्च नाशयेत् ।
घलवर्णकरं धन्यं वलीपलितनाशनम् ॥
जीवनीपमिदं सर्पिर्दृष्ट्यं बन्ध्यासुतप्रदम् ।

अर्थ—दशमूल, सफेद सांठ, अरंडकी जड़, लालसांठ, मुद्गपर्णी, महामेदा, माप-
पर्णी, क्षतमूली, शखपुष्पी, सोंफ, रास्ना, अतिवला और वला इन सबको दो दो पल लेकर कूट डाले और एक द्रोण जल में भरकर पकावै, जब जले २ चौथाई रह जाय तब उतारकर छान लैवै । फिर उस काथ के समानही दूध, आंवले का रस, ईखका रस और बकरे का मांसरस तथा एक आठक घृत इन सबको मिलाकर मन्दी मन्दी आग से पकावै । पक्ते समय इसमें नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क डाल देवै, यथा—मेदा, महामेदा, गम्भारीफल, नीलो-
फर, बंशलोचन, पीपल, दाख कमलगट्टा की मिमी, सांठ, सोंठ, क्षीरकाकोली, पकाख दोनों कोटगी, काकोली, सिंघाड़ा, भव्य, उरुमाण, निकोचक, बेर, अखरोट, वादाम, मुंजात और पिस्ता, इन सबका कल्क डाल द्रव्यै, जब पकजाय तब घृत के टंडा होने

पर उस में शहत डालकर किसी घड़े में भरकर छिपाकर रखदेवै । रक्षाकर्म करने के पश्चात् इस घृत में से प्रतिदिन दो तोले सेवन करै तौ पांडुरोग, ज्वर, हिचकी, स्वरभंग, भगन्दर, पार्श्वशूल, क्षयी, खांसी ग्रीहा, वातरक्त, क्षतशोष, अपस्मार, अश्मरी, शर्करा, सर्वांगरोग, एकांगरोग और मूत्रसंग दूर होजाते हैं । इसके सेवनसे वल और वर्ण बढ़ता है । वली और पलित दूर होजाते हैं । यह जीवनीय, वृष्य और धन्य है, इसके सेवन करने से बन्ध्या स्त्री के भी पुत्रोत्पत्ति होजाती है ॥

द्राक्षादिघृत ।

द्राक्षामधूकतोषाभ्यांसिद्धं वाससितोप-
लम् ॥

अर्थ—दाख और मुलहटी के क्वाथ में सिद्ध किया हुआ घृत मिश्री मिलाकर सेवन करने से वातरक्त को दूर करता है ।

गुडूच्यादिघृत ॥

पिबेवृत्तंतथाक्षीरं गुडूचीस्वरसेशृतम् ॥

अर्थ—गिलोयके रसमें दूध और घी पकाकर के सेवन करने से वातरक्त दूर होजाता है ॥

जीवकादिघृत ।

जीवकर्मभकौमेदामृष्यप्रोक्षांशतावरीम् ।
मधुकंमधुपर्णीश्च काकोलीद्वयमेव च । मुद्ग-
मापाख्यपर्णिन्यौ दशमूलं पुनर्नवे ॥ वली
मृताविदार्याश्च साश्वगन्धाश्च भेदकाः ।
एपां कपायकल्काभ्यां सर्पिस्तैलञ्च साध-
येत् ॥

अर्थ—जीवक, शृपभक्त, मेदा, बेंच के

भीरानुपानं त्रिवृताचूर्णद्राक्षारसेन वा ।
काश्मर्यत्रिवृतां द्राक्षां चूर्णद्राक्षारसेन वा ।
काश्मर्यत्रिवृतां द्राक्षां त्रिफलां सपरुषकाम्
शृणां पिपेहिरकायलवणचौद्रसंयुताम् ॥
त्रिफलायाः कपायं वापिवेत्सौत्रेण संयुतम्
धात्रीहरिद्रामुस्तानां कपायं वा कफाधिके ॥

अर्थ—हरड़ के काथको घी में छोंककर
विरेचन के लिये पीवे, ऊपर से दुग्धपान
करे अथवा दाख के रस के साथ निसोथ
का चूर्ण पान करे। अथवा खंभारी, निसोथ
और दाख के चूर्ण को दाख के रसके साथ
पीवे अथवा खंभारी, निसोथ, दाख, त्रिफला
और फाटसा इन के काथ में संधानमक
और शहत मिलाकर विरेचन के लिये पीवे।
अथवा त्रिफला के क्वाथ में शहत मिलाकर
पीवे । तथा कफाधिक वातरक्त में आंवला,
हलदी और मोथा इनका क्वाथ पीवे ।
योगेश्वकल्पविहितैरसकृच्चंविशोधयेत् ।
मृदुभिः स्नेहसंयुक्तैर्ज्ञात्वा वातं मलादृतम् ॥
निर्हरेद्दामलंतस्पसृष्टैः क्षीरवस्तिभिः ।
निर्हिवस्ति समं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥

अर्थ—जो वात मल से आवृत हो तो
कल्पस्थानोक्त मृदु योगों में स्नेह मिलाकर
देवे अथवा घृत मिलाकर क्षीर वस्ति द्वारा
मल को निकाले । वातरक्त में वस्तिके समान
न और कोई चिकित्सा नहीं है ।

वस्तिवंक्षणपाश्वर्यारुपवास्थिजठरादिषु ।
उदावर्तचक्षस्यन्ते निरुद्धाः सानुवासनाः ॥
दद्यात्तैलानि चेमानि वस्तिकर्माणि बुद्धि-
मान् । न स्याभ्यञ्जनसंकेचदाहशूलोप-
शान्तय ॥

अर्थ—वातरक्त में रोगी की वस्ति,
वंक्षण, पसली, ऊरु, पर्व, अस्थि और जठर
के शूलोंमें वा उदावर्त में निरुद्ध वस्ति
देकर अनुवासन वस्ति देवे ।

बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि वातरक्त
के दाह और शूल की शान्ति के निमित्त
वस्तिकर्म, नस्य, अभ्यञ्जन और परिपेक में
नीचे लिखे हुए तेल देवे ॥

यष्ट्यादि तैल ।

मधुयष्ट्यास्तुलायास्तुकपायपादशेषिते ।
तैलाढकंसमक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ।
शतपुष्पावरीं मूर्वापयस्यागुरुचन्दनैः ॥
स्थिराहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिभिः ॥
काकोलीक्षीरकाकोलीतामलकवृद्धिपत्र-
कैः । जीवन्तीजीवकर्पभत्वक्पत्रनखवा-
लकैः ॥ मपुण्डरीकमञ्जिष्ठाशारिवेन्द्रीवि-
तुन्नकैः । चतुःप्रयोगाच्चदन्तितैलमारुत-
शोणितम् । सोपद्रवंसाहशूलंसर्वगात्रा-
नुगंतथा ॥ वातामृक्पित्तदाहार्तिज्वर-
घ्नं यलवर्द्धनम् ॥

अर्थ—एक तुला मुलहठी को अठगुने
जलमें चढ़ाकर क्वाथ करे, जब चौथाई शेष
रहजाय तब उतारकर छान लेवे, फिर उ-
स में एक आड़क तेल और उतना दुध
मिलावे और एक एक पल नीचे लिखे हुए
द्रव्यों का कल्क मिलाकर पाककरे । द्रव्य,
यथा—सोंक, सितार, मरोड़फली, बिदारी-
कन्द, अगर, चन्दन, शालिपर्णी, हंसपदी,
जठामांसी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकोली-
क्षीरकाकोली, भूआंवला, ऋद्धि, पत्राख,

जीवन्ती, जीवक, ऋषभक, दालचीनी, तेज-
पात, नखी, नेत्रवाला, पुंडरिया, मजीठ, सा-
रिवा, इन्द्रायण की जड़ और धनियां । ये
द्रव्य डालें । इस तेल का नस्य, अभ्यंग,
वस्ति और पान इन चार रीति से प्रयोग
करने पर सर्व देहानुमामी सोपद्रव वातरक्त
अंगशूल, पित्त, दाह, और यातना दूर हो-
जाती है, ज्वर भी जाता रहता है । यह
बल को बढ़ानेवाला है ॥

सुकुमारकतैल ॥

मधुकस्यशतद्राक्षाखर्जूरान्पिपरूपकम् ॥
मधुकौदनपाकयौचमस्थंमुष्णातकस्यच ॥
काशमर्यादकमित्येतच्चतुर्द्रोणैःपचेदयम्
शेषेऽष्टभागेपूतेचतस्मिन्तैलादकंपचेत् ॥
तथामलककाशमर्याविदारीक्षुरसैःसमैः ।
चतुर्द्रोणेनपयसाकलंकदत्वापलोन्मितम् ॥
कदम्बामलकाक्षोटापक्षबीजकशेरुकम् ॥
शृङ्गातकंशृङ्गेवरंलवणंविष्पलींसिताम् ॥
जीवनीयैश्चसंसिद्धंक्षौद्रप्रस्थेनसंसृजेत् ॥
नस्याभ्यञ्जनपानेपुवस्तौचापिनियोज-
येत् ॥ वातव्याधिपुसर्वेषुमन्यास्तम्बेहनुग्रहे
सर्वाङ्गीकांगवातेचक्षतक्षीणेक्षतज्वरे ॥
सुकुमारकमित्येतत्वातास्तामयनाशनम् ॥
स्थिरवर्णकरंतैलमारोग्यबलपुष्टिदम् ॥

अर्थ—मुहलटी सौ पल, दाख एक प्रस्थ
खजूर एक प्रस्थ, फालसे एक प्रस्थ, महुआ
एक प्रस्थ, खरैटी एक प्रस्थ, मूज एक
प्रस्थ और खंभारी एक आठक इन सबको
चार द्रोण जल में पकावें, जब जलते जलते
आठवां भाग रह जाय तब उतार कर छान

ले फिर उस घाथ में आंवलेका रस, खंभारी
का रस विदारीकन्द का रस, ईख का रस
समान भाग मिलावें और चार द्रोण दूध
मिलाकर एक आठक तेल को इन सब के
साथ पकावें और गाँचे लिखे हुए द्रव्यों का
एक एक पल कल्क भी इस में डाल दें,
यथा कदंबकी छाल, आंवला, अखरोट,
कमलगद्दा के बीज, कसेरू, सिंघाडा, अदरक,
नमक, पीपल और चीनी तथा जीवनीय
गणकी औषध इन सबका कल्क उस में
डाल दें और पकने पर उतारकर रखलेवै
जब ठंडा होजाय तब उस में एक प्रस्थ
शहत मिलावें । इसका नस्य अभ्यंजन पान
और वस्ति चार प्रकार से प्रयोग करें ॥
इसके सेवन से सब प्रकारकी वातव्याधि
मन्यास्तम्भ, हनुग्रह, सर्वांगवात, एकांग-
वात, क्षतक्षीण, क्षतज्वर, तथा वातरक्त सं-
बंधी अन्य उपद्रव दूर होजाते हैं । इसका
नाम सुकुमारक तैल है ॥ यह तैल स्थिर-
कर्त्ता, वर्णोत्तेजक, आरोग्यदायक, बलवर्द्धक
और पुष्टिकारक होता है ।

अमृताख्य तैल ॥

गुडूचीमधुकंक्ष्वपञ्चमूलंपुनर्नवाम् । रा-
स्नामैरण्डमूलञ्चजीवनीयानिलाभतः ॥
पलानांशतर्कैर्भागैर्वलापञ्चशतंतथा ॥
कोलंबिलव्यंयवान्मापान्कुलत्थांश्चादको-
न्मितान् ॥ काशमर्याणांसुशुष्काणांद्रोणं
द्रोणशतेऽम्भसः । साधयेज्जर्जरंधौतंच
तुर्द्रोणञ्चशेषयेत् ॥ तैलद्रोणंपचेत्तेनद-
त्वापञ्चगुणंपयः ॥ पिष्ट्वात्रिपलिकञ्चै-

वचन्दनोशीरकेसरम् ॥ पत्रैलागुरुकुष्ठा
नितगरंमधुयाष्टिकाम् । मज्जिष्ठाष्टपलञ्चै
वतत्सिद्धं सार्धयोगिकम् ॥ वातरक्तेश
तेर्क्षणीभारात्तक्षीणरेतसि । वेदनाश्चि
सभग्नानां सर्वाङ्गिकांगरोगिणाम् । योनि
दोषमपस्मारमुन्मादं खज्जपंगुताम् । हन्या
त्पुंसवनं चैतच्चैलाग्न्यममृताह्वयम् ॥

अर्थ—गिलोय, मुलहटी, लघुपंचमूल, साठ,
रास्ता, एरंडकी जड़ और जीवनीय गणकी
जो जो औषध मिल सकें उनको पृथक्
पृथक् सौ पल छेवै खैरेटी पांच सौ पल,
सूखा बेर, कच्चा बिल्व, जौ, उरद और
कुलथी प्रत्येक एक एक आठक, खंमारी
के फल सूखे हुए एक द्रोण, इन सब को
अच्छी तरह से कूटकर धोकर सौ द्रोण
जल में पकावै जब चार द्रोण शेष रहजाय
तब उतारकर छान ले । इस क्वाथ में एक
द्रोण तेल और पचगुना दूध डालकर पका-
वै और नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क तीन
तीन पल उस में डाल देवै, द्रव्य, यथा:-
चन्दन, खस, केसर तेजपात, इलायची,
अगर, कूठ, तगर, मुलहटी ये सब तीन तीन
पल, मजीठ आठ पल । इस तरह इस तेल
को सिद्ध करके सेवन करने से वातरक्त
क्षत, क्षीण, अत्यन्त बोज़ ढोने से उत्पन्न
हुए रोग, क्षीणवीर्यता, वेदना, आक्षेपक,
भग्नता, सर्वांग रोग, एकांगरोग, योनिदोष
अपस्मार, उन्माद, खजता और पंगुता दूर
होजते हैं । यह अमृताह्वय तेल, पुंसवन
उत्कृष्ट और अमृतके समान गुणकर्त्ता है ॥

महापद्म तैल ।

पद्मवेतसयष्ट्याहफेनिलापद्मकोत्पलैः ।
पृथक्पञ्चपलैर्दध्मलाचन्दनार्कशुक्रैः ॥
जलेशृतैः पचेत्तैलप्रस्थं सौवीरसम्मितम् ।
लोध्रपद्मोत्तरोशीरजीवकर्पभकेसरैः ॥
मदयन्तीलतापत्रपद्मकेसरपत्रकैः । प्रपु-
ण्डरीककालीयमांसीमेदाम्रियंगुभिः ॥
कुंकुमद्रिगुणैः कर्पूरमज्जिष्ठायाः पलेन च ॥
महापद्ममिदं तैलं वातासृग्ज्वरनाशनम् ।

अर्थ—पद्म, के झूल, वेत, मुलहटी, फेनिला
(बेर) पद्माख, नांलोफर, दाभ, खैरेटी,
चन्दन और ढाकके झूल प्रत्येक पांचपल
लेकर अठगुने जल में चढ़ादे, चौथाई शेष
रहने पर उतार कर छानले फिर इस क्वाथ
में एक प्रस्थ तैल, एक प्रस्थ सौवीर तथा
नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क डालकर
पाक करले । द्रव्य, यथा—लोध्र, पद्माख,
उसीर, जीवक, कर्पभक, केसर, मल्लिका
की छाल और पत्ते, कमल केसर, तेजपात,
पुंडरिया काठ, कालीयक, जटामांसी, मेदा
और म्रियंगु ये सब एक एक कर्प, कुंकुम
दो कर्प और मजीठ एक पल डालकर तेल
पकावै । इस तेल का नाम महापद्म तैल है
इसके सेवन से वातरक्त और ज्वर दूर
होजता है ॥

खुड्ढाकपद्म तैल ।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीकाथसाधितम् ।
स्यात्पिष्टैः सर्जमज्जिष्ठावीराकाकोलिच-
न्दनैः । खुड्ढाकपद्ममिदं तैलं रुग्दाह-
नाशनम् ॥

अर्थ—पन्नाख, उसीर, मुलहठी और हलदी के काथ में राख, मजीठ, काकोली, क्षीर काकोली और चन्दन का कल्क ढाल कर तैल को पकावै यह तैल खुद्वाकपत्र कहाता है । इसका प्रयोग करने से वातरक्त में वेदना और दाह शान्त होजाती है ।

बलादितैल ।

बलाकपायकल्काभ्यातैलक्षीरसमन्तथा ।

अर्थ—खरेटी के काथ में उसीका कल्क और समान भाग तैल और दूध चढाकर पाक करै यह पूर्ववत् गुणकर्ता है ॥

सहस्रपाक तैल ।

सहस्रशतपाकंवावातासृग्वातरोगनुत् ॥

रसायनश्रेष्ठतममिन्द्रियाणांप्रसादनम् ।
जीवनवृंहणंस्वर्यशक्रासृग्दोपनाशनम् ॥

अर्थ—इस ऊपरकहे हुए तैलको सहस्र बार वा सौ बार पाककरै यह वातरक्त और वातरोगों को दूर करने वाला है । यह उत्तम रसायन और इन्द्रियों को प्रकुल्लित करने वाला है । यह जीवन, वृहण, स्वरवर्द्धक, धीर्घदोपनाशक और रक्तदोपनाशक है ॥

आरनालादितैल ।

आरनालादकैतैलंपादसर्जरसामृतम् ।

प्रभूतेमथितंतोयेज्वरदाहार्तिनुत्परम् ॥

अर्थ—एक आढक कांजी, कांजी से चौपाई तैल, तैल से चौथाई राख इन में बहुत सा पानी ढालकर पकावै फिर रई से मथकर शरीर पर लगावै तो ज्वर, यातना और दाह दूर होजाता है ॥

पिंड तैल ।

समधूच्छिष्टमाज्जिष्टंसर्जरसशारिवम् ।

पिण्डतैलतदभ्यंगाद्वातरक्तखजापहम् ॥

अर्थ—मोम, मजीठ, राख और शारिवा इनसे चौगुना तैल और सोलह गुना जल मिलाकर पाककरै । इस पिंड तैल के लगाने में वातरक्त की वेदना दूर होजाती है ॥

शतपाकमधुपर्णी तैल ॥

शतेनयष्टिमधुकांसाध्यंदशगुणंपयः । तैलेचतुर्द्वेणेतरिमन्मधुकस्यपलेनतु ॥ सिद्धंमधुरकाश्मर्यरसैर्वावातरक्तनुत् । मधुपर्ण्यापलंपिष्ट्वातैलप्रस्थंचतुर्गुणे ॥ क्षीरेसाध्यंशतकृत्वस्तदेवमधुकाच्छृतः । सिद्धं देयंत्रिदोपेस्याद्वातासृग्वासाकासनत् । हत्पाण्डुरोगवीसर्पकामलादाहनाशनम् ॥

अर्थ—सौ पल मुलहठी को अठगुने जल में काथ करके चौथाई दोष रहनेपर छान ले फिर इसमें दसगुना दूध ढालकर एक प्रस्थ तैलके साथ पकावै अथवा मुलहठी और खमारी के रसके साथ पकावै यह वातरक्त नाशक है ।

एकपल गिलोयको एक प्रस्थ तैल और चौगुने दूधके साथ सिद्ध करै फिर उस तैलको सौबार मुलहठी के क्वाथ में सिद्ध करै । यह तैल त्रिदोष, वातरक्त, श्वास, खांसी, हृद्रोग, पांडुरोग, विसर्प, कामला, और दाहको दूर करता है ॥

गुहृच्यादितैल ॥

गुहृचीरसदुग्धाभ्यातैलद्राक्षारसेनवा । सिद्धंमधुककाश्मर्यरसैर्वावातरक्तनुत् ॥

अर्थ—गिलोय के काथ और दूध के साथ, अथवा दाख के रसके साथ अथवा

मुलहठी और खंभारी के रस के साथ सिद्ध
कियाहुआ तेल वातरक्त को दूरकरता है ।
दशमूलशृत्क्षीरसद्यःशूलनिवारणम् ।
परिपेकोऽनिलमायेतद्वत्कोष्णेनसर्पिषा ।
स्नेहमधुरसिद्धैर्वाचतुभिःपरिपेचयेत् ।
स्तम्भाक्षेपकशूलार्तकोष्णैर्दाहेतुशीतलैः॥
तद्वद्व्याविकच्छागैःक्षीरैस्तैलविमिश्रि-
तैः । निष्कवाथैर्जीविनीयानांपञ्चमूलस्य
वाभिषक् ॥ द्राक्षेश्वरसमद्यानिदधिमस्त्व
म्लकाञ्जिकम् । सेकार्थेतण्डुलक्षार्द्रश-
कराम्बुचनस्यते ॥

अर्थ—दशमूलके साथ औटायानुवा दूध
तत्काल शूल नाश करनेवाला है, इसी तरह
मुहातेहुए गरम घृतसे वाताधिक वातरक्त
में परिपेक हित है । मधुर द्रव्यों के साथ
सिद्ध कियेहुए ईपदुष्ण घृत तैल, वसा
और मज्जा इन चार प्रकार के रसों में
परिपेक करने पर स्तम्भ, आक्षेपक, और
शूलार्तता दूर होजाती है और दाह हो
तो शीतल परिपेक हित है । इसी तरह
से गौ भेड़ और बकरी के दूध के साथ
सिद्ध कियाहुआ तेल अथवा जीविनीय
औषधियों के काथ के साथ अथवा पंच-
मूल के काथ के साथ औटायानुवा तेल
हित है । वातरक्त में परिपेक के लिये
दाख का रस, ईख का रस, मय, दहीका
तोड़, कांजी, तंडुलजल शहनका जठ और
खांडका जठ हित है ॥

कुमुदोत्पलपद्मोद्यमिणहरैःसचन्दनैः ॥
शीततोयानुगैर्दहिमोक्षेणस्पर्शानंदितम् ॥

चन्द्रपादाम्बुसंसिक्तैःशामपद्मदलच्छदे ।
शयनेषुलिनस्पृशेन्शीतमाह्नयोजिते ॥
चन्दनाद्रकराद्रग्यप्रियानार्यैःमिथैवदाः॥
स्पर्शान्शीतमुखस्पर्शान्निदाहंरजंक-
मम् ॥

अर्थ—दाहकी शान्तिके लिये कमोदनी,
नालकमण्ड, पद्म से आदि लेकर अन्यकमण्ड
मणियों के हार, चन्दन इनको शीतल जल
में भिगोकर दाहवालेके छाँटे माता रहे वा
इनका उसे स्पर्श करवै ।

चन्द्रमाक्षी किरण और शीतल जल से
संसिक्त, रेशमीवस्त्र और कमण्डपत्र में आ-
च्छादित पुत्तियों के बीच में ठंडी ठंडी दशा
चर्छा आती हो, शय्यागुहपर चंद्रमसी भी-
गोहुई देहवाली प्रियभाषिणी स्त्रियोंके शीत-
ल मुखदायक स्पर्श से वातरक्त की दाह
वेदना और शान्ति दूर होजाते हैं ॥

सरागमरुजेशोहरक्तंमुक्त्वाभलेपयेन् ।
मधुकायस्थसमासीचीरोदुम्बरनालकैः॥
जलजैवैर्वर्णैर्वीमुयष्ट्याहपयोधृतैः ।
सर्पिषाजीविनीयैर्वापिष्टलोपांर्जितदाहनु-
निलाःपियालंगधुकंविंसमूलंचयेतामाम् ।
सधृतःपयसापिष्टमदेहोदाहरामनु ॥
प्रपुण्डरीकमणिष्ठादायीमधुकचन्दनैः ।
सितोत्पलैरकासधनुमधुरोन्नीरपार्कैः ॥
संपांगदाह्यीसंपरागशोफनिवर्णैः ।
पिचरक्तोचरेत्स्वनेत्संपावानोचरेनृणु ॥

अर्थ—वातरक्त में जो छलाई, दाह और
वेदना हो तो रक्ता निकाल कर मुगहठी,
पीपल की छाल, जटामासी, क्षीरकाकोली

गूलरकी छाठ, और हरी दूध का लेप करें
अथवा कमल और जौकाचून अथवा मुल-
हटी, दूध और घी का लेपकरना चाहिये ।
अथवा जीवनी गणकी औषधियों को घीके
साथ पीसकर लेप करनेसे भी दाह दूर हो
जाता है । तिल, पिप्पल, मुलहटी, कमलनाल
और बेतकी जड़ इनको दूध और घी के
साथ पीसकर लेप करें तो दाह और लड़ाई
दूर हो जाती है । पुण्डरिया काठ, मजीठ,
दारुहलदी, मुलहटी और चन्दन तथा चीनी
नीलकमल, सरकंडे की जड़ सकतू, मसूर,
उशीर, और पद्माक्ष इनका लेप करने से
दाह विसर्प, लड़ाई और शोक दूर हो जाते हैं ।

अब उन लेपोंका वर्णन किया जाता है जो
वातप्रधान पित्तरक्त में हित हैं ।

वातघ्नैःसाधितःस्निग्धःकृसरामुदगपायसः
तिलसर्पपिष्टाश्चाप्युपनाहारुजापहाः ॥

औदकप्रसहानूपवेपवाराःसुसंस्कृताः ।

जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताःस्युरुपनाहनैः ।

स्तम्भतोदरुमायासशोथार्द्रग्रहनाशनाः ।

जीवनीयौषधैःसिद्धाःसपयस्कावसापि-

चा ॥ घृतसहचरान्मूलजीवन्तीछाग

लंपयः । लेपाःपिष्टास्तिलास्तद्वद्भष्टाः प

यसिनिवृताः ॥ क्षीरपिष्टमुगालेपमण्ड-

स्यफलानिवा । कुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थं

तावहामनिवेऽधिके ॥

अर्थ—वातनाशक औषधियों के साथ सि-
द्ध किया हुआ कृसर, मुंग, पायस अथवा
तिल और सरसोंके पिष्टकका उपनाह वेदना
को दूर करता है अथवा, जलज, प्रसह और

आनूप इन के मांस का वेशवार अच्छी तरह
मसाले डालकर तयार किया हुआ तथा जी-
वनीय गणोक्त औषध और स्नेह से संस्कार
किया हुआ उपनाह स्तम्भ, तोद वेदना, या-
तना, शोथ और अंगप्रह को दूरकरता है
अथवा जीवनीय औषधों के साथ सिद्ध की
हुई दूध और चर्बी भी हित है । घृत, स-
हचरी की जड़ जीवन्ती और बकरी का दूध
इनका लेप भी हितकारी है । इसी तरह घी
में भुनेहुए तिलों को दूध के साथ पीसकर
लेप करने पर दाह शान्त होता है । इसी
तरह वाताधिक वातरक्त में शूलकी शान्ति
के लिये दूध में पिसीहुई अलसी, दूध में
पिसेहुए अंडी के बीज अथवा दूध में पि-
सीहुई सोंफका लेप हितकर है ॥

दसमूलाग्रच्छदैरण्डकाथेद्विप्रस्थिकंमधक् ।

घृततैलंनसामज्जासानूपंमृगपाक्षिणाम् ॥

कल्काथेजीवनीयानिगन्धंक्षीरमथाजकम्

हरिद्रोत्पलकुण्डलाशताव्हावरुणच्छदान्-

विल्वमात्राप्रथरूपुष्पंकाकुम्भंचापिसाध-

येत् । मधूच्छिष्टपलान्यष्टौदद्यात्सिद्धे-

ष्वतारिते ॥ शूलनैपोऽर्द्रिताङ्गानालेपः

सन्धिगतोऽनिले । वातरक्तेक्षुतेभग्नेखड्गे

कुब्जेचक्षस्यते ॥

अर्थ—अण्ड की जड़, डाली और पत्तों

का क्वाथ दो प्रस्थ, घृत, तेल और आनूप

पशुपक्षियों की वसा और मज्जा, गौ और

बकरी का दूध तथा कल्क के लिये जीव-

नीयगणकी औषध और हलदी, नीलोत्तर

कूठ, इलायची, सोंफ, बरनाके पत्ते, और

अर्जुनके फूल पृथक् पृथक् एक एक पल डालकर पकावै, जब पकजाय तब उतार कर उसमें आठ पल मोम डाल देवै । यह शूलार्द्रित अंग, संधिगत वायु, स्रावयुक्त वात-रक्त, भग्न, खंज और कुब्जरोगमें हित होता है

कफप्रधान वातरक्त में चिकित्सा । शोफगौरवकण्डवाद्यैर्युक्तेत्वस्मिन्कफोत्तरे । मूत्रक्षारसुरापकृतमभ्यञ्जनेहितम् सिद्धंसमधुशुकंस्यात्सेकाभ्यङ्गःकफोत्तरे क्षीरस्तैलङ्गवांमूत्रजलञ्चकटुकैःशृतम् । परिपेकाःप्रशस्यन्तेवातरक्तेकफोत्तरे ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में जिसमें सूजन, भारापन और खुजली आदि उपद्रव भी हों उसमें गोमूत्र क्षार और सुराके साथ सिद्ध कियेहुए घृतका परिपेक और अभ्यंग हित है । इसरोगमें पन्नाख, दालचीनी मुलहठी, और शारिधा तथा मधुशुक के साथ सिद्ध किया हुआ घृत परिपेक और अभ्यंगमें हित है । दूध, तेल, गोमूत्र, और त्रिकुटा इन से औटायामुआ जल कफप्रधान वातरक्त में परिपेक के लिये हित है ॥

लेपःसर्पपनिम्बार्कहिंसाक्षीरतिलैर्हितः । श्रेष्ठःसिद्धःकपित्थत्वग्घृतक्षीरैःसश्वतुभिः ॥ द्वेहरिद्वेवचागारधूमकुण्डशताब्दिकाः ॥ प्रलेपःशूलनुद्वातरक्तेवातकफोत्तरे तगरत्त्वक्षताब्देलाकुण्डमुस्तंहरणुकाः ॥ दारुव्याघ्रनखशाम्भारपिष्टवातकफार्तिनुत मधुशिग्रोर्हितं तद्व्रीजधान्याम्लसंयुतम् मुहूर्तलिप्तमम्लैश्चसिञ्चेद्वातकफोत्तरम् ॥ त्रिफलाव्योषपत्रैलास्त्वक्षीरंचित्रकं

वचाम् । विदङ्गपिप्पलीमूलंलोमशंरूपकं चवधम् । ऋद्धिंतामलकञ्चिव्यंसमभागानिपेपयेत् ॥ कल्कंलिप्तमयस्पात्रेमध्यान्देभक्षयेत्ततः ॥

अर्थ—सफेद सरसों, नीमकी छाल, आक, हसि, दूध और तिल इनका लेप हित है, अथवा कैथ, दालचीनी और जौ का सजू इन के साथ में घी और दूध मिलाकर लेप करे । अथवा दोनों हलदी, वच, धूमसा, कूठ और सोंफ इन का लेप भी वातकफोत्तर वातरक्त में शूल को दूर करता है । अथवा तगर, दालचीनी, सोंफ इलायची, कूठ, मोथा, हरेणु, देवदारु, और व्याघ्रनख इन को कांजी में पीसकर लेप करनेसेवात कफकी अधिकातावाले वातरक्त का शूल दूर होता है । अथवा लाल सहजनेके बाजों को धान्याम्ल के साथ पीसकर दो घड़ी तक लेप लगा रहने देवै पीछे कांजी से धो डाले । अथवा त्रिफला, त्रिकुटा, तेजपात, इलायची, वंशलोचन, चीता, वच, त्रायविडंग, पीपलामूल, जटामांसी, अडूमेकी छाल, ऋद्धि, भूयभांवला, और चव्य इस को समान भाग लेकर पीस डाले फिर इस कल्क को एक लेहेके पात्र पर लेपकर देवै और दुपहर के समय इसको खा लेवै

वातरक्त में पथ्य विधि । वर्जयेद्दधिभृवलानिक्षारंवैरोधकानिच ॥ वातासेसर्वदोषंऽपिमंतशूलार्दितेपरम् ॥ बुद्ध्वास्थानविशेषांश्चदोषाणाञ्चबलावलम् ॥ चिकित्सितमिदंकुर्याद्वापोहं विकल्पवित् ॥

गूलरकी छाछ, और हरी दूध का लेप करें
अथवा कमल और जौकाचून अथवा मुल-
हटी, दूध और घी का लेपकरना चाहिये ।
अथवा जीवनी गणकी औषधियों को घीके
साथ पीसकर लेप करनेसे भी दाह दूर हो
जाता है । तिल, पियाळ, मुलहटी, कमलनाळ
और बेतकी जड़ इनको दूध और घी के
साथ पीसकर लेप करें तो दाह और लड़ाई
दूर होजाती है । पुण्डरिया काठ, मजीठ,
दारुहलदी, मुलहटी और चन्दन तथा चीनी
नीलकमल, सरकंडे की जड़ सक्तू, मसूर,
उशीर, और पखाख इनका लेप करने से
दाह विसर्प, लड़ाई और शोफ दूर होजाते हैं ।

अब उन लेपोंका वर्णन कियाजाता है जो
वातप्रधान पित्तरक्त में हित हैं ।

वातघ्नैःसाधितःस्निग्धःकृसरासुदग्गायसः
तिलसर्पपपिष्टाश्चाप्युपनाहारुजापहाः ॥
औदकप्रसहानूपवेपवाराःसुसंस्कृताः ।
जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताःस्युरूपनाहनैः ।
स्तम्भतांदरुगायासशोथान्नग्रहनांशनाः ।
जीवनीयौषधैःसिद्धाःसपयस्कावसापि-
वा ॥ घृतसहचरान्मूलंजीवन्तीछाम
लंपयः । लेपाःपिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाः प
यसिनिर्वृताः ॥ क्षीरपिष्टमुगालेपमरण्ड
स्वफलानिवा । कुर्याच्छूलनिष्टमर्थश
तावहामनिश्रेयधिके ॥

अर्थ—वातनाशक औषधियों के साथ सि-
द्ध कियाहुआ कृसरा, मूंग, गायस अथवा
तिल औरसरसोंके पिष्टकका उपनाह वेदना
को दूर करताहै अथवा, जलज, प्रसह और

आनूप इन के मांस का वेशचार अच्छीतरह-
मसाले डालकर तयार किया हुआ तथा जी
वनीय गणोक्त औषध और स्नेह से संस्कार
कियाहुया उपनाह स्तम्भ, तोद वेदना, या-
तना, शोथ और अंगप्रह को दूरकरता है
अथवा जीवनीय औषधों के साथ सिद्ध की
हुई दूध और चर्बी भी हित है । घृत, स-
हचरी की जड़ जीवन्ती और बकरी का दूध
इनका लेप भी हितकारी है । इसीतरह घी
में भुनेहुए तिलों को दूध के साथ पीसकर
लेप करने पर दाह शान्त होता है । इसी
तरह वाताधिक वातरक्त में शूलकी शान्ति
के लिये दूध में पिंसीहुई अलसी, दूध में
पिंसेहुए अंडी के बीज अथवा दूध में पि-
सीहुई सोंफका लेप हितकर है ॥

दसमूलाग्रच्छदैरण्डकाथेक्षिप्रस्थिकंमथक् ।
घृततैलंनसामज्जासानूपंमृगपाक्षिणाम् ॥
कल्काथेजीवनीयानिगव्यंक्षीरमधाजकम्
हरिद्रोत्पलकुण्डलाशताब्हावरुणच्छदान्-
विल्वमात्राप्रथक्पुष्पंकाकुम्भंचापिसाध-
येत् । मधुच्छिष्टपलान्यष्टौदद्यात्सिद्धे-
ऽवतारिते ॥ शूलनैपोऽर्दिताहानालेपः
सन्धिगतेऽनिले । वातरक्तेभूतेभग्नेखञ्जे
कुञ्जेचशस्यते ॥

अर्थ—अरंड की जड़, टांडी और पत्तों
का क्वाथ दो प्रस्थ, घृत, तेल और आनूप
पशुपक्षियों की बसा और मज्जा, गौ और
बकरी का दूध तथा कल्क के लिये जीव-
नीयगणकी औषध और हलदी, नीलोत्तर
कूठ, इलायची, सोंफ, बरनाके पत्ते, और

अर्जुनके फल पृथक् पृथक् एक एक पल
डालकर पकावै, जब पकजाय तब उतार
कर उसमें आठ पल मोम डाल देवै । यह
शूलादित अंग, संधिगत वायु, स्वायुक्त वात-
रक्त, भग्न, खंज और कुञ्जरोगमें हित होताहै

कफप्रधान वातरक्त में चिकित्सा ।
शोफगौरवकण्डूवायैयुक्तेत्वस्मिन्कफो-
त्तरे । मूत्रक्षारमुरापकृतमभ्यञ्जनेहितम्
सिद्धं समधुशुक्तं स्यात्सेकाभ्यङ्गः कफोत्तरे
क्षीरस्तैलङ्गवांमूत्रं जलश्च कटुकैः शृतम् ।
परिपेकाः प्रशस्यन्ते वातरक्ते कफोत्तरे ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में जिसमें सू-
जन, भारापन और खुजली आदि उपद्रव
भी हों उसमें गोमूत्र क्षार और मुराके सा-
थ सिद्ध किये हुए घृतका परिपेक और अ-
भ्यंग हित है । इसरोगमें पद्माख, दालचीनी
मुल्हठी, और शारिवा तथा मधुशुक्त केसा-
थ सिद्ध किया हुआ घृत परिपेक और अ-
भ्यंगमें हित है । दूध, तेल, गोमूत्र, और त्रि-
कुटा इन से औटाया हुआ जल कफप्रधान
वातरक्त में परिपेक के लिये हित है ॥

लेपः सर्पपनिम्बार्कहिंसाक्षीरतिलैर्हितः ।
श्रेष्ठः सिद्धः कपित्थत्वशृत्क्षीरैः सशक्तु
मिः ॥ द्वेहरिद्रेवचागरधूमकुण्डशताब्धि
काः ॥ प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते वातकफोत्तरे
तगरत्वक्शताब्देलाकुण्डमुस्तं हरेणुकाः ॥
दारुव्याघ्रनखशाम्भलापिष्टं वातकफार्तिनुत्
मधुशिग्रोहितं तद्वद्वीजधान्याम्लसंयुतम्
मुहूर्तलिप्तमम्लैश्चासिञ्चेद्वातकफोत्तरम् ॥
त्रिफलाव्योषपत्रैलास्त्वक्षीरंचित्रकं

वचाम् । विडङ्गपिप्पलीमूलं लोमशं वृषक
स्वचम् । ऋद्धिं तामलकश्चिच्यं समभा-
गानि पेपयेत् ॥ कल्कं लिप्तमयस्पात्रे मध्या
न्हे भक्षयेत्ततः ॥

अर्थ—सफेद सरसों, नीमकी छाल, आक,
हंसि, दूध और तिल इनका लेप हित है,
अथवा कैथ, दालचीनी और जौ का सच्चू
इन के साथ में घी और दूध मिलाकर लेप
करै । अथवा दोनों हल्दी, वच, धूमसा,
कूठ और सोंफ इन का लेप भी वातकफो-
त्तर वातरक्त में शूल को दूर करता है ।
अथवा तगर, दालचीनी, सोंफ इलायची,
कूठ, मोथा, हरेणु, देवदारु, और व्याघ्रनख
इन को कांजी में पीसकर लेप करनेसे वात
कफकी अधिकतावाले वातरक्त का शूल
दूर होता है । अथवा लाल सहजनेके बाजों
को धान्याम्ल के साथ पीसकर दो घड़ी
तक लेप लगा रहने देवै पीछे कांजी से धो
डाले । अथवा त्रिफला, त्रिकुटा, तेजपात,
इलायची, वशलोचन, चीता, वच, त्राय-
विडंग, पीपलामूल, जटामांसी, अडूमेकी
छाल, ऋद्धि, भूयभावला, और चच्यं
इस को समान भाग लेकर पीस डाले फिर
इस कल्क को एक लेहेके पात्र पर लेपकर
देवै और दुपहर के समय इसको खा लेवै

वातरक्त में पथ्य विधि ।
वर्जयेद्दधि शुक्लानि क्षारं वैरोधकानि च ॥
वातासे सर्वदोषेऽपि मन्तं शूलादिते परम् ॥
बुद्ध्वा स्थानविशेषांश्च दोषाणाञ्च चलाव
लम् ॥ चिकित्सितमिदं कुर्याद्वापोहं
विकल्पवित् ॥

अर्थ—वातरक्त में दही, शुक्र, क्षार और विरोधकर्त्ता द्रव्यों का परित्याग कर देना चाहिये । संपूर्ण दोषों से युक्त वातरक्त और शूल में स्थान और दोषों के बलाबल की अच्छी तरह परीक्षा करके उक्तगणों में प्रयोजन के अनुसार औषधियां को घटा बढ़ाकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त हों।

कुपितमार्गसंरोधान्मेदसोवाकफस्यवा ॥
अतिवृद्ध्याऽनिलेनादौशस्तेस्नेहनवृंहणम्
व्यायामशोधनारिष्टमूत्रपाननिर्विशोधितैः ॥
तक्राभवापयोगैश्चक्षपयेत्कफमेदसी ॥
घोधिवृक्षकपायस्तुपिवेत्तमधुनासह । वा
तरक्तंजयत्याशुत्रिदोषमपिदारुणम् ॥
पुराणयवगोधूमशीध्वरिष्टासवैस्तथा ॥
शिलाजतुमयोगैश्चगुग्गुलोर्माक्षिकस्यचा
पश्चादातेक्रियांकुर्याच्चरक्तप्रसाधनीम् ॥

अर्थ—मेद और कफ के मार्ग के रुक-जाने से जब वायु अत्यन्त कुपित होकर अत्यन्त बढ़जाय तब स्नेहन वा वृंहणक्रिया हित होती है । व्यायाम, शोधन, अरिष्ट गोमूत्रपान, विरेचन तथा मठा और हरड के प्रयोगों से कफ और मेदा को दूर करने का उपाय करें । शद्वक्थ की छाल के काष्ठ में शहत डालकर पाने से त्रिदोषजन्य दारुण वातरक्त भी दूर होजाता है ।

पुराने जौ, गेहूं, शीधु, अरिष्ट और आसव का प्रयोग करें अथवा शिलाजीत, गुग्गुलु या शहत का प्रयोग करके कफ और मेद को शान्त करें पीछे वातरक्त को दूर करने वाली क्रिया करें ।

गम्भीरेरक्तमाक्रान्तंस्याच्चेतद्वातवर्जयेत्
रक्तपित्तातिवृद्ध्यातुपाकमाशुनियच्छति
भिन्नंस्त्वतिवारकंविदग्धंपूयमेववा ॥
तयोःक्रियाविधातव्याव्यधशोधनरोपणौ
कुयोदुपद्रवाणांचक्रियास्वात्स्वाच्चिकि-
रिततात् ।

अर्थ—गंभीर वातरक्त में जो रक्त वायु से आक्रान्त होंतौ उस में चिकित्सा न करें रक्तपित्त के अधिक बढ़जाने से वातरक्त में तत्काल पाक होता है तब उस के भिन्न होने पर विदग्धरक्त और पीव निकलने लगता है । ऐसे समय में पके हुए को वेधन करके भिन्न में शोधन और रोपणकर्त्ता क्रिया करनी चाहिये । और इस में जो कोई उपद्रव खड़े होंतौ उनकी चिकित्सा रोग रोग के अनुसार करनी चाहिये ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुस्थानानिगूलञ्चयस्मात्प्रायश्चसन्धि-
पु । कुप्यतिमाक्चयैरुपद्रवविधस्यचलक्ष-
णम् ॥ पृथग्भिन्नस्यलिङ्गञ्चदोषाधिक्य
मुपद्रवाः ॥ साध्यंयाप्यमसाध्यञ्चाक्रियासा-
ध्यस्यचाखिला ॥ वातरक्तस्यनिर्दिष्टा
समासव्यासतस्तथा । महर्पिणामिवेशा-
यतथैवावस्थिकीक्रिया ॥

अर्थ—इस वातरक्त चिकित्सित नामक अध्याय में वातरक्त के हेतु, उत्पत्ति के स्थान, मूल, प्रायः संधियों में उत्पत्ति होने का कारण, प्राप्नूय, गंभीर और आभ्यन्तर दो प्रकार के मेद, भिन्न वातरक्तके लक्षण दोषों की अधिकता, उपद्रव, साध्यता,

यायता और असाध्यता के लक्षण, साध्य वातरोग की सब तरह की चिकित्सा तथा अवस्थानुसार चिकित्सा आदि सब बातें संक्षेप और विस्तार दोनों प्रकार से वर्णन की गई हैं ॥ इन सब बातों का उपदेश महर्षि आत्रेयने अग्निवेश को किया है ।

इति श्रीभाषाटीकांवितायां अग्निवेशात्रेयचि-

तायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थानेवातरक्तचिकित्सितं-

मैकोनत्रिशोऽध्यायः ॥२९॥

—:—

त्रिशोऽध्यायः

अथातो योनिव्यापच्चिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम योनिव्यापच्चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

दिव्यौपधिजलस्वादुधातुचित्रशिलावतिपुण्ये हिमवतः पार्श्वे सुरसिद्धार्पिसेविते ॥ विहरन्तं तपोयोगात्तत्त्वज्ञानार्थं दर्शनम् ।

कृष्णात्रेयं जितात्मानं अग्निवेशोऽनुपृष्ठवान् भगवन् ! रत्यपत्यानां मूलनायः परं नृणाम् । तद्विधातो गदैश्चासां क्रियते योनिमाश्रितैः ॥ तासां तपोसमुत्पत्तिमुत्पन्नानां श्रलक्षणम् । औपधंश्रोतुमिच्छामि प्रजा नुग्रहकाम्यया ॥ इति शिष्येण पृष्टस्तु प्रोवाचर्षि वरोऽत्रिजः ।

अर्थ—पुण्यवान् हिमालयके उच्चशिखर पर जहां अनेक प्रकारकी दिव्य औपधियां उगी हुई थी, मिष्टजल वह रहा था,

जहां अनेक प्रकारकी धातुमय शिला सुशोभित थी और जहां अनेक देवता, सिद्ध और श्रापिमुनि निवास करते थे वहां विचरे-ते हुए तपोयोग सम्पन्न और तत्त्वज्ञानार्थदर्शी, जितेंद्रिय कृष्णात्रेयसे अग्निवेशने प्रश्न किया कि हे भगवन् ! मनुष्यों के लिये स्त्रियां विषयभोग और संतानोत्पत्ति का मूल कारण हैं, परन्तु जब उनकी योनियों में रोग हो जाता है, तब दोनों बातों का नाश हो जाता है अतएव हे प्रभो ! मैं प्रजाकी भलाईके हेतु स्त्रियोंके योनिरोगोंकी उत्पत्तिके कारण, उत्पन्न हुए रोगोंके लक्षण और उनकी औपध श्रवण करनेकी इच्छा करता हूं ॥

शिष्यके इस प्रश्नको सुनकर महर्षि आत्रेय ने व्याख्या करनेका प्रारम्भ किया ।

योनि रोगोंकी संख्या ।

विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टारोगसंग्रहे ॥ मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तयेन च । जायन्ते बीजदोषाश्च देवाश्च शृणुताः पृथक् ॥

अर्थ—रोगसंग्रहाध्याय में यह बात वर्णन कर चुके हैं कि योनिरोग बीस प्रकारके होते हैं । इन सब रोगोंकी उत्पत्ति स्त्रियों के मिथ्या आहार विहार दुष्ट आर्तव, बीज दोष और देयप्रकोप इन चार कारणों से होते हैं ।

वातल योनिरोगों के लक्षण ।

वातलाहारचेष्टाया वातलायासमीरणः । विट्क्षोयो निमाश्रित्य येनेस्तोदं सवेदनम् ॥ स्तम्भपिपीलकामृत्तिमिव कर्कशता तथा ॥

करोतिमुष्णिमायामंवातजांश्चापरान्गदान्
सास्यात्सशब्दस्त्वेनंतनुरुक्षार्तवानिलात्

अर्थ—वातल प्रकृतिवाली स्त्रीके वातो-
त्पादक आहार, विहार और चेष्टा करने
के कारण वायु अत्यन्त कुपित होकर यो-
निका आश्रय लेकर योनि में वेदनायुक्त मुई
छेदनेके समान पीडा उत्पन्न करती है तथा
स्तम्भता, चींटी चलने का सा अनुभव,
कर्कशता, सुति, आयाम, और अन्य वातज
रोग भी उत्पन्न होते हैं। तथा वात के
कारण उस स्त्रीकी योनिमेंसे पतला, रूखा
शब्द करता हुआ झागदार रक्तनिकलता है

पित्तल योनिरोगोंके लक्षण।

व्यापत्तधाम्ललवणक्षाराद्यैः पित्तजाभवेत् ॥
दाहपाकज्वरोष्णार्तानीलपीतासितार्तवा।
भृशोष्णकुणपप्सावायोनिस्यात्पित्तदूषिता

अर्थ—खट्टे, नमकीन और क्षारादि मि-
श्रित पदार्थों के अत्यन्त सेवन से पित्तज यो-
निरोग होते हैं, उनरोगोंके होने से योनिमें
दाह, पाक, ज्वर, उष्णता, और यातना
होती है तथा योनि में से नीला, पीला, काला
आर्तव निकलता है और अत्यन्त उष्ण
मुईकीसी गंधका स्त्राव होता रहता है।

श्लैष्मिक योनिरोगों के लक्षण।

कफोऽभिप्यन्दिभिर्बृद्धोयोनिंचेदूपयोस्त्रि
याः। सशीतापिच्छलां कुर्यात्कण्डूग्रस्तां
सवेदनाम् ॥ पाण्डुवर्णतथापाण्डुपिच्छि
लार्तववाहिनीम्।

अर्थ—अभिप्यन्दी आहार के सेवन से
कफ बढ़कर स्त्रीकी योनि में कफज रोगोंको

उत्पन्न करता है, इन रोगों के कारण योनि
में शीतलता, पिच्छिलता, खुजली, वेदना
और पाण्डुता होती है और योनि मेंसे पीला
पीला गिलगिला आर्तव निकलता है ॥

सान्निपातिक योनिरोगोंके लक्षण
समश्नत्यारसान् सर्वान्दूषयित्वात्रयोम-
लाः ॥ योनिगर्भाशयस्थैः स्वयोनियुञ्ज
न्तिलक्षणैः। साभवेद्दाहशूलार्ताश्वेतपिच्छि
लवाहिनी ॥

अर्थ—त्रिदोषकारक आहार के सेवन
से सम्पूर्ण रसों को दूषित करके योनि और
गर्भाशयका आश्रय लेकर अपने २ लक्षणों
को प्रकट करते हैं, इन रोगों के होने से
दाह, शूल और यातना अधिक होती है
तथा योनि में से सफेद और गिलगिला
आर्तव निकलता है।

रक्तपित्तजन्य योनिरोग।

रक्तपित्तकैरनार्यारक्तपित्तेनदूषितम्।

अतिप्रवर्ततेयोन्यालव्येबीजेऽपिसाप्रजाः ॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्पादक आहारादि सेवन
करने से रक्त पित्त के कारण दूषित होकर
योनिमें से अत्यन्त रक्त निकलने लगता है
बीजके ग्रहणकरने परभी स्त्रीके संतान न-
हीं होती है ॥

अरजस्का योनिलक्षण।

योनिगर्भाशयस्थंचेत्पित्तंसंदूषयेत्तदसृक्।
सारजस्कामताकाशयैवैवर्ण्यजननीभृशम् ॥

अर्थ—योनि और गर्भाशय में स्थित
पित्त जब रक्त को दूषित करदेता है तब
रजोवर्ध होना बन्द होजाता है और स्त्री

अत्यन्त दुर्बल और विवर्ण होजांती है, ऐसी योनि को अरजस्का कहते हैं ।

अचरणा योनि के लक्षण ।

योन्यामधावनात्कण्डूजाताः कुर्वन्ति जन्तवः । स्नास्यादचरणाकण्डूवातयातिनरकांक्षिणी ॥

अर्थ—योनि को न धोने से उसमें एक प्रकार के अदृश्य छोटे कीड़े पड़कर खुजली उत्पन्न करते हैं, उस खुजली के कारण योनि पुरुषकी अत्यन्त इच्छा करती है, ऐसी योनि को अचरणा कहते हैं ॥

अतिचरणा योनि के लक्षण ।

पवनोऽतिव्यवायेन शोफमुत्तिरुजःस्त्रियाः करोति कुपितो योनौ सा चातिचरणामता

अर्थ—अत्यन्त मैथुन करने के कारण वायु कुपित होकर योनि में सूजन, सुति और वेदना करदेती है ऐसी योनि को अतिचरणा कहते हैं ।

प्राक्चरणा योनि के लक्षण ।

मैथुनादतिवालायाः पृष्ठजंघोरुवक्षणम् ! रुजयन् दूषयेद्योनिं वायुः प्राकरणा तु सा ॥

अर्थ—अत्यन्त वाला स्त्री के साथ मैथुन करने से उसकी पीठ, जांघ, ऊरु और वक्षण में वेदना उत्पन्न करके वायु योनि को दूषित कर देती है, ऐसी योनि को प्राक्चरणा कहते हैं (प्राक्चरणा निग्रमित समय से पूर्व संगम की हुई) ।

उपप्लुता योनि के लक्षण ।

गर्भिण्याः श्लेष्मलाभ्यासाच्छर्दिः श्वासविनिग्रहात् । वायुः कुदः कफं योनिमुपनी

यमदूषयेत् ॥ पाण्डुसतोदतमास्त्रावंश्वेतं स्रवति वाकफम् । कफवातामयव्यासा स्याद्यो निरुपप्लुता ॥

अर्थ—कफजन्य आहार के अत्यन्त सेवन करने से, तथा वमन, श्वास आदिवेगों के रोकने से गर्भिणी स्त्री के वायु दूषित होकर कफको योनि में लकर योनि को दूषित करदेती है तब योनिमें से सुई छिदने के समान वेदना से युक्त पाण्डुवर्ण का स्राव होता है अथवा सफेदर कफ निकलता है । कफवात रोगों से युक्त ऐसी योनि को उपप्लुता कहते हैं ।

परिप्लुता योनि के लक्षण ।

पित्तलायानृसंवासे क्षवधृद्धारणात् । पित्तसंमूर्च्छितो वायुर्योनिं दूषयति स्त्रियाः शूनास्पर्शक्षमासार्तिर्नालपीतमसृक्स्वेत् श्रोणीवक्षणपृष्ठातिज्वरार्तायाः परिप्लुता

अर्थ—पित्तप्रकृतिवाली स्त्री के मैथुन के समय हाँक वा डकार आवै और यदि वह उनको रोकले तो पित्तयुक्त वायु कुपित होकर स्त्रीकी योनि को दूषित करदेती है उस समय योनि ऐसी सूजजाती है कि हाथ नहीं लगाया जासکتा है और उस में से वेदनायुक्त नीला पीला स्राव होने लगता है। तथा स्त्री की कमर, वक्षण, और पीठ में वेदना और ज्वर होता है । ऐसी योनि को परिप्लुता कहते हैं ।

उदावृता योनि के लक्षण ।

वेगोदावर्तनाद्योनिमुदावर्तयतेऽनिलः । सारुगार्ताग्जः कच्छेणोदावृत्ता विमुञ्चति

अर्थ—अधोवेगों के रोकने से वायु के कारण योनि का वेग ऊपरको होता है, इस से बड़े कष्ट के साथ रजःसंबंधी आर्त्तव निकलता है इसे उदावृत्ता योनि कहते हैं।

उदावृत्तिनी योनि के लक्षण।

आर्त्तवेयाविमुक्तेतुतत्क्षणलभतेमुखम् ।
रजस्रोगमनादृद्धेयोदावृत्तिनीयुधैः ॥

अर्थ—आर्त्तवके निकलने से जिसमें तत्काल चैन पड़जाता है, उस योनि को रजके ऊपर जाने के कारण उदावृत्तिनी कहते हैं।

कर्णिनीयोनि के लक्षण।

अकालेवाहमानायागर्भेणपिहितोऽनिलः
कर्णिकाञ्जनयेयोर्नाश्लेष्मरक्तेनमूर्च्छितः
रक्तमार्गावरोधिन्यासातयाकर्णिनीमता ॥

अर्थ—छोटी अवस्था में गर्भ धारण करने से गर्भ के कारण आच्छादित वायु कफ और रक्त से मिलीहुई एक प्रकार की कर्णिका योनि के मुखमें उत्पन्न करदेती है, यह रक्त के मार्गको रोकदेती है इससे इस योनि को कर्णिनी कहते हैं ॥

पुत्रघ्नी के लक्षण।

रौक्ष्याद्वायुर्यदागर्भजातंजातंविनाशयेत्
दुष्टशोणितजंनार्याःपुत्रघ्नीनामसामता ॥

अर्थ—जो गर्भ स्त्री के दूषित रक्त से उत्पन्न होता है उसको जब जब वह उत्पन्न होता है तब तबही वायु रूक्षता के कारण नष्ट करदेती है। ऐसी योनि को पुत्रघ्नी कहते हैं ॥

अन्तर्मुखी योनि के लक्षण।

व्यवायमतिवृत्तायाभजन्यास्त्वत्तपीडितः

वायुर्भिध्यमस्थिताद्वायायोनिस्तोतसिसं-
स्थितः । वक्रपत्याननंयोण्याःसास्थिमां-
सानिलार्तिभिः ॥ भृशातिर्मेथुनासक्ता
योनिरन्तर्मुखीमता ।

अर्थ—जब स्त्री अत्यन्त पेट भरकर खाने के पीछे अन्याय रीति से पुरुष संगम में प्रवृत्त होती है तब वायु उसकी योनि के छोट में स्थित होकर योनि के मुखको टेढ़ा करदेती है उसको हड्डी और मांस में अत्यन्त वेदना होती है, ऐसी स्त्री मेथुन में असमर्थ होजाती है, इसे अन्तर्मुखी योनि कहते हैं ॥

सूचीमुखी के लक्षण।

गर्भस्थायाःरित्रयारौक्ष्याद्वायुर्गोनिप्रदूष-
यन् ॥ मातृदोषादणुद्वारात्कुर्यादसूची-
मुखीतुसा ।

अर्थ—माताके दोष के कारण वायु रूक्ष होकर गर्भस्थ कन्याकी योनि को दूषित कर के उसके योनिद्वारको छोटा करदेती है। ऐसी योनि को सूचीमुखी कहते हैं।

शुष्का योनि के लक्षण।

व्यवायकालेरुन्धन्त्यावेगात्प्रकुपितोऽ-
निलः ॥ कुर्याद्विण्मूत्रमद्भ्यतिशोपयोनि-
मुखस्यतु ।

अर्थ—मेथुन के समय जब स्त्री मलमूत्र के वेगों को रोक लेती है तब वायु कुपित होकर विष्टा और मूत्र को रोककर योनि को शुष्क करदेती है, ऐसी योनि को शुष्का कहते हैं ॥

चामिनी के लक्षण।

पटहात्सप्तरात्राद्वायुर्कंगर्भाशयंगतम् ॥

सरुजनीरुजंवापियासवेत्साचवामिनी ।

अर्थ—जिस स्त्री की योनिमें से गर्भाशय में पहुंचा हुआ वीर्य वेदना से या बिनाही वेदना छः सात दिन के भीतर निकल पड़ता है उसे वामिनी कहते हैं ॥

पण्डी के लक्षण ।

वीजदोषात्तुगर्भस्थामारुतोपहताशया ॥

तृद्वेपिण्यस्तनीचैवपण्डीस्यादनुपक्रमा ।

अर्थ—वीज दोष के कारण जिस गर्भस्थ फण्याका गर्भाशय नष्ट होजाता है वह पुरुष की इच्छा नहीं करती है, न उसके कुच निकलतेहैं, ऐसी स्त्री पण्डी वा हीजडी कहातीहै । इसकी चिकित्सा हीं नही होती है।

महायोनि के लक्षण ।

त्रिपमंदुःखशय्यायामैथुनात्कुपितोऽनिलः ॥

गर्भाशयस्ययोन्याश्चमुखविष्टम्भये

त्स्त्रियाः । असंवृतमुखासातिरूक्षफेना

स्रवाहिनी ॥ मांसोत्सन्नामहायोनिःपर्व

वंक्षणशूलिनी । इत्येतेलक्षणैः प्रोक्ताविं-

शतिर्योनिजागदाः ॥

अर्थ—टूटे हुए कण्ठोत्पादक पलंग पर विपरीति से सोकर जो पुरुष संगम में प्रवृत्त होती है, उसकी वायु कुपित होकर गर्भाशय और योनिमुख को स्तंभित कर देती है, इसकारण से योनि असंवृत मुख-वेदनायुक्त, रूखा और झागदार आर्चय निकालने वाली और मांसोपचिता होजाती है, इस स्त्री के संधि और वंक्षण में शूल होने लगता है, यह महायोनि होती है । बीस प्रकार के योनिरोग और उन के लक्षण इस प्रकार से वर्णन किये गये हैं ॥

नशुक्रधारयत्येभिर्दोषैर्योनिरुपद्रता । त

स्माद्गर्भनप्रवृत्तिस्त्रीगच्छत्यामयान्व-

हन् ॥ गुल्मार्शःप्रवरादींश्वाताथैश्चाति

पीडनम् ।

अर्थ—इन दोषों से उपद्रुत योनि वीर्य धारण नहीं कर सकती है, न गर्भ को ग्रहण कर सकती है तथा गुल्म, अर्श और प्रदरादिक अनेक प्रकार के उपद्रव हो आते हैं और वह वातरोगों से सदाही पीडित रहती है ।

योनिरोगों में दोषपरत्व ।

आसांपोडशयास्तासांमध्येद्वेपित्तदोषजे ॥

परिप्लुतावमिनीचवातपित्तात्मकेमते ।

कर्णिन्धुपप्लुतेवातकफात्शेषास्तुवातजाः

देहंवातादयस्तासांस्वैल्लैःपीडयन्तिहि ।

अर्थ—इन बीस प्रकार के योनि दोषों में पहिले चार वातज, पित्तज, कफज और

सान्निपातिक हैं । शेष सोलह में से पहिले दो (रक्तपित्तजा और अरजस्का) पित्तसे

उत्पन्न हैं । परिप्लुता और वामिनी वात-

पित्तसे उत्पन्न हैं, कर्णिनी और उपप्लुता

वातकफ से उत्पन्न हैं और शेष आठ केवल

वात से उत्पन्न है । इन में से वातादिक

दोष अपने अपने लक्षणों से देह को पीडित

करते हैं ॥

वातजरोगों में चिकित्सा ।

स्नेहनस्वेदवस्त्यादिवातलाघ्वनिलापहम् ।

अर्थ—वातज योनि रोगोंमें स्नेहन स्वे-

दन और वस्त्यादि उपचारों से वात शान्त होजाती है ।

पित्तजरोगों में किया ।

फारयेद्रक्तपित्तघ्नंशीतपित्तकृतामुच ।

अर्थ—पित्तजनित योनिरोगों में रक्तपित्त नाशिनी शीतक्रिया हित है ॥

कफजयोनिरोगों में किया ।

श्लेष्मलामुचरुक्षोष्णकर्मकुर्याद्विचक्षणः॥

अर्थ—कफजयोनि रोगों में रूक्ष और उष्णकर्म करना हित है ।

सान्निपातिक योनिरोग में चिकित्सा ।

सन्निपातेविमिश्रन्तुसंस्पृष्टामुचकारयेत् ।

अर्थ—त्रिदोषज और द्विदोषज योनि रोगों में तीनों प्रकार की मिलीहुई चिकित्सा करनी चाहिये ।

वायुजन्ययोनिरोग में चिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नातथायोनिंदुःस्थितांस्थाप-

येत्पुनः । पाणिनानामयेज्जिह्वांनिःसृ-

तांसंप्रवेशयेत् । वर्धयेत्संस्पृष्टाञ्चैवविष्टां

परिवर्तयेत् । योनिःस्थानापट्टत्ताद्दिश्य

भूतास्त्रियामता ॥

अर्थ—वायुजन्य योनिरोगों में योनिको स्निग्ध और स्वेदित करके जो योनि अपने ठीक स्थान में न हो उसे ठीक स्थान पर लाये । जो योनि टेढ़ी हो उसे हाथ से नचाये, जो बाहर निकल आई हो उसे भीतर को फिर प्रवेश करे, सुकड़ी हुई योनिको चौड़ी करे और चौड़ी हुई को सुकड़ी करे । जो योनि अपने निज स्थान से हटजाती है वह स्त्रियों के शल्यस्वरूप है ॥

सर्वाव्यापन्नयोनित्तुकर्माभिर्वगनादिभिः । मृदुभिःपञ्चभिर्नारींस्निग्धस्विन्ना

मुपाचरेत् ॥ सर्वतःमुविशुद्धायाःशेषक-
र्मविधीयते । वातव्याधिदरं कर्मवाता-
र्तानांसदाहितम् ॥ औदकानूपजैर्मांसैः
क्षीरैःसतिलतण्डुलैः । सवातघ्नौषधैर्नाडी
कुम्भीस्वेदैरुपाचरेत् ॥ युक्तांलवणतैलेन
साश्मप्रस्तरशङ्करैः । स्विन्नांकोष्णांवायुसि
क्तांगींवातघ्नैर्भोजयेद्द्रवैः ।

अर्थ—सब प्रकार के योनिरोगों में स्त्री को प्रथम स्नेहन और स्वेदन कर्म कराके मृदु वमन विरेचनादि पांचों कर्मोंका प्रयोग करे, इस तरह जब योनि सब तरहसे शुद्ध होजाय तब शेष कर्मों का विधान करे ।

वायु से उत्पन्न योनि रोगों में सदैव वात व्याधिनाशक कर्म हित होते हैं । वातज योनि रोगमें औदक और अनूपमांस, दूध, तिल, चावल और वातनाशक औषधियाँ इन सब का पाक करके नाडी स्वेद कुम्भी स्वेद द्वारा उपचार करे । अथवा लवण और तैल का योग करके अश्मघन प्रस्तर स्वेद और संकर स्वेद द्वारा स्वेदित करके गरम जल का परिपेक करे पीछे वातनाशक मांस रसों का भोजन करावे ॥

अन्य प्रयोग ।

वलाद्रोणद्वयकाथेघृततैलादकद्वयमास्थि-
रापयस्याजीवन्तीवीर्यभक्तजीवकैः ॥
श्रावणीपिप्पलीमूलपीलुमापाख्यपाणि-
भिः । शर्कराक्षीरकाकोलीकाकनासाभि
रेवच ॥ पिष्टैश्चतुर्गुणक्षीरंतथैवचयथाव
लम् । वातापित्तकृतान् रोगानहत्वागर्भेद
धातितत् ॥

अर्थ—बलाके दो द्रोण काथ में घी और तेल प्रत्येक एक एक आठक डाले, तथा सालपर्णी, क्षीर विदारी, जीवन्ती, क्षीरकाकोली, कपभक, जीवक, श्रावणी पीपलामूख, पीपल, मांसपर्णी, शर्करा, क्षीरकाकोली, कौआटोटी इन सबका कल्प चार सेर, और सोलह सेर दूध इन सब को पकावै । इस घृत तैल का यथावत् सेवन करने से वात पित्तरोगों के दूर होने पर स्त्री गर्भधारण कर लेती है ॥

काश्मर्यादि घृत ॥

काश्मर्यात्रिफलाद्राक्षाकासमर्दपरूपकैः ।
पुनर्नवाहरिद्राभ्यांकाकनासासहाचरैः ॥
शतावर्षागुड्गुच्याश्चमस्थमक्षसमैर्घृतान् ।
साधितपोनिवातघ्नगर्भदपरमांपिबेत् ॥

अर्थ....खंभारी, त्रिफला, द्राक्षा, कसौदी, फालसा, सांठ, दोनों हलदी, कौआटोटी, सहचर, सितावर और गिलोय इन सब में से प्रत्येक का कल्क दो दो तोले इन सब के समान घृत मिलाकर चौगुने जल के साथ पाककरै । यह घृत सब प्रकार वात जन्य रोगोंको दूर करके गर्भधारण करानेवाला है

अन्यप्रयोग ।

पिप्पल्यःकुञ्चिकाजाजीवृषकंसैन्धवंवचाम् । यवत्ताराजमोदौचशर्करांचित्रकं तथा ॥ पिष्ट्वासर्पापिष्टृणानिपाययेत्तप्त सन्नया । योनिपाश्चात्तिहृद्रोगगुल्मार्शो विनिवृत्तये ॥

अर्थ—पीपल, कालाजीरा, सफेद जीरा, अडूसा, सैधानमक, वच, जवाखार, अज-

मोदशर्करा, चीता, इन सब का कल्क कर के घीमें भूनकर प्रसन्ना के साथ सेवन करै तौ योनिशूल, पार्श्वशूल, यातना, हृद्रोग गुल्मरोग और अर्श दूर होजते हैं ।

वृषकंमातुलुङ्गस्यमूला निमदयान्तिकाम् ।
पिबेत्सलवर्णैर्मधैःपिप्पल्यौकुञ्चिकेतथा ॥
श्वदंष्ट्रां वृषकरास्नांपिबेच्छलेपयःशृतम् ।
गुडुचीत्रिफलादन्तीव्रायैश्चपरिपेचयेत् ।
सैन्धवंतगरंकुण्डवृहतीदेवदारुणः ॥ समांशैःसाधितकल्कैस्तैलधार्यरुजापहम् ॥

अर्थ—अडूसे की जड़, विजैरै की जड़, मल्लिका की जड़, इन को पीसकर सेंधे नमक और मद्य के साथ पान करै, इसी तरह से पीपल और जीरा पीस कर सेंधे नमक और मद्य के साथ पीवै । जो योनि में शूल होता होतौ गोखरू, अडूसा और रास्ना पीसकर दूध के साथ पाक कर के पान करै अथवा गिलोय, त्रिफला और दन्ती के काथ से योनि का प्रक्षालन करै । अथवा सैधानमक, तगर, कूठ, फटेरी, देवदारु, इनको समान भाग लेकर इनके कल्क के साथ तेल पकावै फिर इस तेल में रुईका फोआ भिगो कर योनि में रख देवै इस से वेदना जाती रहती है ।

अन्य पिष्टु ॥

गुडुचीमालतीव्याघ्रीश्रयसीसुरदारुभिः ॥
बलाचित्रकयष्ट्यान्हयूथिकाभिश्चकार्ष्णैः ॥
तैलप्रस्थंगवाम्पूत्रेक्षीरेणाद्रिगुणंपचेत् ॥
वातातार्थापिचुंतस्माद्योनौचप्रणयेत्सदा ॥
अर्थ—गिलोय, मालती, फटेरी रास्ना,

देवदारु, खरैटी, चीता मुलहटी और चमेली की जड़ इनको एक एक कर्प लें। इन के कल्क के साथ एक प्रस्थ तेल, दो प्रस्थ गोमूत्र और इतनाही दूध मिलाकर पाक करें इस तेल में एक फोआ भिजो कर वातरोग से पीड़ित स्त्री की योनि में रख दें। इस से योनि सदा प्रणिहित रहती है ।

अन्यप्रयोग ॥

हिंसाकल्कन्तुवातार्ताकोष्णमभ्यज्यधा रयेत् ॥

अर्थ—हिंसा को पीस कर घीमें सानकर उसकी लुगदी को वातार्ता योनि में थोड़ा गरम करके रख दें ॥

कफपित्तरोगों में क्रिया ॥

पञ्चवल्कस्यपित्तार्ताश्यामादीनांकफातुरा । पित्तलानान्तुयोनीनांसेकाभ्यङ्गपिचुक्रिया ॥ शीताःपित्तहराःकार्याःस्नेह नानिघृतानिच ।

अर्थ—पित्तजयोनिरोगों में पंचवल्कलका कल्क तथा कफजन्य योनिरोगों में अनंत-मूल का कल्क योनि में रखें। पित्तलायोनि वाली स्त्रियों की योनि में परिपेक, अभ्यंग पिचुक्रिया, पित्तनाशिनी शीतलंक्रिया, तथा स्नेहनकर्ता घृतों का प्रयोग हित है ।

शतावरी घृत ।

शतावरीमूलतुलाःचतस्रःसंप्रीडयेत् ॥

रसेनक्षीरतुल्येनपचेत्तेनघृताढकम् ॥

जीवनीयैःशतावरीमृद्धीकाभिःपरुषकैः॥

पियालेथाक्षकैःपिष्टैद्विघटीमधुकैःपचेत् ॥

सिद्धेशीतेचमधुनःपिप्पल्याश्चपलाष्टकम् ॥

सितादक्षपलोन्मिश्राद्विद्वान्पाणितलंततः
योन्पसृक्षुक्षुदोषघ्नंघृत्यं पुंसवनश्चतत् ॥
क्षतंक्षयरक्तपित्तकांसंश्वासं हलीमकम् ।
कामलांवातरक्तञ्चवीसर्पटृच्छिरोग्रहम् ॥
उन्मादायामसंन्यासंवातपित्तात्मकंजयेत्

अर्थ—सितावरकी जड़ को चार तुला लेकर कूट डालें और उसे कपड़े में निचोड़ कर रस निकाल लें । फिर इस रस में इतनाही दूध और एक आढक घृत डाल कर पकावें तथा जीवनीय गणोक्त द्रव्यों का कल्क, सितावर, किसमिस, फालसा, पियाल, दोनों प्रकार की मुलहटी सब दो दो तोले डालकर पकावें । पकने के पीछे ठंडा होने पर इस घृत में शहत आठ पल, पीपल आठ पल और मिश्री दस पल इन सबको मिलाकर प्रति दिन दो तोले सेवन करें तौ योनिदोष, रक्तदोष, वीर्यदोष, क्षत, क्षय, रक्तापित्त, खांसी, श्वास, हलमिक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्दोग, शिरोग्रह, उन्माद, आयास, संन्यास और अन्य वातपित्तात्मक रोग दूर होजाते हैं । यह घृत पुष्टिकारक और पुंसवन है ।

अन्यउपाय ॥

एवमेवक्षीरसार्पेर्जीवनीयोपसाधितम् ॥
गर्भदं पित्तलानांचयोनीनांस्याद्भिपग्नि तम् ॥

अर्थ—इसीतरह से जीवनीय गणके साथ सिद्ध किया हुआ दूध का घी गर्भकारक और पित्तलयोनिरोगोंको दूर करानेवाला है ।

कफजयोनिरोगों में चिकित्सा ।
योन्याःश्लेष्ममदुष्टायावर्तिःसंशोधनीहि

ता ॥ वाराहेवदुःपित्तभाविर्नैर्नक्तकैः कृ-
ता ॥ भावितं पयमाकस्यमापचूर्णससैन्ध-
वम् ॥ वर्तिः कृतामुहुर्भार्याततः सेव्यामुखा-
भुना । पिप्पल्यामारिचैर्मपैः शताद्वा-
कृष्टसैन्धवैः ॥ वर्तिस्तुल्याप्रदेशिन्याधा-
र्यायोनिविशोधनी ॥

अर्थ—कफदूषित योनियों में संशोधनी-
वत्ती का प्रवेश करना हित है । पुराने
कपड़ेकी वत्ती बनाकर उसे शकर के पत्ते
की कई भावना देकर योनि में रखदेवै ॥
उरद का चून और उस के समान सैधा-
नमक पीसकर एक वत्ती बनावै इसको
आक के दूधकी भावना देकर योनिमें धोड़ी
देर रखवै फिर उसे गरमजल से धोडालै ।
अथवा पीपल, कालीमिरच, उरंद, सोंफ,
कूठ, सैधानमक इन सबकी तर्जनी उंगली
के समान वत्ती बनाकर योनि में रखने से
योनि शुद्ध होजाती है ।

योनिशोधक तैल ।

उदुम्बरशलाटूनाद्रोणमन्द्रोणसंयुतम् ॥
सपञ्चवल्ककुलकनिम्बमालतिपल्लवम् ।
निशांस्थाप्यंजलेतस्मिस्तैलप्रस्थं विपाच-
येत् ॥ लाक्षाधवपलाशत्वङ्निर्यासैः शा-
ल्मलेन च । पिष्टैः सिद्धञ्चतत्तलंपिचुयो-
नौनिधापयेत् ॥ सशर्करैः कषायैश्चशीतैः
कुर्वीतसेचनम् । पिच्छिलाविट्ताकाल-
न्दुष्टयोन्यथदारुणा ॥ सप्ताहात्थुङ्गति-
क्षिप्रमपत्यञ्चापिविन्दति ।

अर्थ—कच्चे गूलर के एकद्रोण छिलके
तथा इतनेही पञ्चवल्क, परवल्के पत्ते, नीम

के पत्ते, मालती के पत्ते इनसब को दूने
जल में रात्रिके समय भिगोदेवै । प्रातःकाल
इसे मसलकर रस छानले, इस रसमें एक
प्रस्थ तैल पकावै, पकते समय इसमें लाख,
धौकानिर्यास, पलासका निर्यास, सेमर का
गोंद पीसकर डालदे । जब पकजाय तब
इसमें रुईका एकफोआ भिगोकर योनि में
रखदेवै, तदनंतर, पूर्वोक्त उदुम्बरादि द्रव्यों
के शीतल काथ में शर्करा मिलाकर योनि
को धांवै । इस प्रयोग से पिच्छिला, विट्ता
दूषिता, दारुणा, कैसीही योनि क्यों न हो
सातदिन में शुद्ध होजाती है और शीघ्र उस
के सन्तान भी होती है ।

अन्यप्रयोग ।

उदुम्बरस्यदुग्धेनपट्कृत्वोभावितंस्ति-
लान् ॥ तैलकाथेचतस्यैवसिद्धं धार्यञ्च
पूर्ववत् ।

अर्थ—गूलरके दूधमें तिलोंको छः भाव-
ना देकर उनका तेल निकाले । इस तेल
को गूलरकी छालके काथमें पकावै, इसमें
रुईका फोआ भिगोकर योनिमें भीतर रखने
से पूर्वोक्त गुण होते हैं ।

धातक्यादि तैल ।

धातक्यामलकीपत्रस्रोतो जमधुकोत्पलैः ॥
जम्बवात्रमध्यकासीसलोध्रकद्रुफलतिन्दु-
कैः ॥ सौराष्ट्रिकाडिमत्वग्दुग्धेनशला-
टुभिः ॥ अक्षपात्रैरजामूत्रेक्षीरेचद्विगुणे-
पचेत् । तैलमस्थं पिचुंतस्माद्योनौचमण-
येत्ततः ॥ कटीपृष्ठत्रिकाभ्यङ्गस्नेहोवस्ति-
चदापयेत् । पिच्छिलस्राविणीयोनिर्वि-

प्लुतोपप्लुतातथा ॥ उत्तानाचोन्नता
शुनासिन्द्वस्तस्फोटशूलिनी ॥

अर्थ—घायके पत्ते, आंवलेके पत्ते, शंख
नाभि, मुलहठी, गोलकमल, जामनकीमिंगी,
छाँमेकीमिंगी, हीराकसांस, लोध, कायफल,
तेंदू, सौराष्ट्रमृत्तिका, अनार के छिलके क-
द्यामूडर ये सब दो २ तोले लेकर पीसले,
इनमें एक प्रस्थ तेल, बकरीका मूत्र दो
प्रस्थ और चार प्रस्थ दूध डालकर पकावै।
इस तेलमें एक रुईका फोआ भिगोकर योनि
में रखै, तथा, कमर पीठ और त्रिक मे
इस तेलकी मालिश करावै। स्नेहन वस्ति
में इसका प्रयोग करै। इस तेल से पि-
च्छिलस्त्राविणी, विप्लुता, उपप्लुता, उत्ताना
उन्नता, शोथयुक्ता, स्फोटयुक्ता, और शूल
युक्तायोनि अच्छी होजाती है।

अन्यप्रयोग।

करीरधवनिम्बार्कवेणुकोशाम्रजाम्बवैः॥
जिद्विणीष्टपमूलानांकाथःमार्द्वीकशीधुभिः
सशुक्तैर्धावनंभिश्चैर्योन्यासावविनाशनम्॥
कुर्यात्सतक्रगोमूत्रशुक्तैर्वात्रिफलारसैः।

अर्थ—करील, धौकी लकड़ी, नीमकी
छाल, आमकी जड़, वेणु, कोशाघ्न, जामन
की गुठली, मजीठ और अडूसे की जड़,
इन सब का काथ, दाखका मद्य और शुक्त
इनको मिलाकर योनिको धोने से उस
का स्वाध मिटजाता है, इसी तरह से तक्र,
गोमूत्र और शुक्त मिलाकर अथवा केवल
त्रिफला के रससे योनि को धोवै।

योनिरोग में अवलेह।

पिप्पल्ययोरजःपथ्याप्रयोगामधुनाहिताः

अर्थ—योनिरोग में पीपल, छेहचूर्ण,
हरद इनका चूर्ण शहत-के साथ चाटने से
बहुत उपयोगी होता है ॥

योनिरोग में वस्ति कर्म।

श्लेष्मलायांकटुमायाःसमूत्रावस्तयोहिताः
पित्तसमधुरक्षीरावाततैलाम्लसंयुताः ॥

सन्निपातसमुत्थायाःकर्मसाधारणमतम्।

अर्थ—श्लेष्मला योनि में कटुद्रव्यों से
युक्त गोमूत्रकी वस्ति हितहै। पित्तल योनि
में मधुर क्षीर युक्त वस्ति तथा वातलायोनि
में तेल और खटाई की वस्ति उपयोगी
होती है। इसी तरह त्रिदोषज योनि रोगों
में तीनों दोषोंकी मिली हुई चिकित्सा हित
कर होती है ॥

रक्त प्रदर में चिकित्सा।

रक्तयोन्याप्रसृग्वर्णरनुवर्द्धसमीक्ष्यच ॥

वतःकुर्याद्यथादोपरक्तस्थापनमौपधम्।

अर्थ—जिस योनि में से रक्त बहता हो
उस में रक्तका रंग देखकर दोषके अनुसार
रक्तको रोकने की औपध देवै।

वातज रक्तप्रदरमें चिकित्सा।

तिलचूर्णदधिघृतंफाणितंशौकरीषसा ॥

क्षौद्रेणसंयुतंपेयंवातासृग्दरनाशनम्। व-
राहस्यरसोमेध्यःसकौलत्थोऽनिलाधिकै-
शर्करातैलयष्ट्याहनागैर्वायुतंदधि ॥

अर्थ—तिलका चूर्ण, दही, घी, राव, और
शर्कराकी चर्बी इनको शहतके साथ सेवन
करने से वातज रक्तप्रदर दूर होजाता है।
अथवा कुलधाके काथमें सिद्ध किया हुआ
शर्करा मांसरस देवै अथवा चीनी, तेल,

मुलहठी और सोंठ इनके साथमें दही देवै
पैत्तिक रक्तप्रदरमें चिकित्सा ।

पयस्योत्पलशालूकाविसकालीयकाम्बु-
जान् ॥ सपयःशर्कराक्षौद्रपैत्तिकेऽमृगदरे-
पिवेत् ।

अर्थ—पैत्तिक रक्तप्रदरमें क्षीरकाकोली,
नीलकमल, शालूक, कमलनाल, कार्णायक
और पद्मकमल इनके कल्क को दूध, चीनी
और शहत के साथ सेवन करने से पैत्तिक
रक्तप्रदर दूर होजाता है ॥

पुण्यानुगचूर्ण ।

पाठाजम्बवाभ्रयोर्मध्यांशिलाभेदंरसाञ्जनं
अम्बुपर्णीमोचरसंसमझावत्सकत्वचम् ।
वाहीकातिविपेविल्वमुस्तलोभ्रसगैरिकम्
कट्फलमरिचंशुण्ठीमृद्रीकांरक्तचन्दनम् ।
कट्जवत्सकानन्तांघातकीमधुकाजुनम् ।
पुष्पेणोद्धृत्यतुल्यानिमूक्ष्मचूर्णानिकार-
येत् ॥ तानिषौद्रिणसंयोज्यपिवेन्नातण्डु-
लाम्बुना । अर्शःसुचातिसारेपुरक्तंयक्षो-
मवेश्यते ॥ दोषागन्तुकृतायेचवाला-
नांतांश्चनाशयेत् ॥ योनिदोषरजोदृष्ट्वेतं
नीलंसपीतकम् ॥ स्त्रीणांश्यावारुणं
यच्चप्रसह्यविनियर्तयेत् । चूर्णपुण्यानु-
गंनामहितमात्रेणपूजितम् ॥

अर्थ—पाठा, जामन की गुठली, आमकी
गुठली, पाखानभेद, रसांजन, पाठा, मोच-
रस लज्जालू, कुडाकी छाल, हींग, अतीस,
बेलगिरी, मोथा, लोध, गेरू, कायफल, काली
मिरच, सोंठ, दाख, रक्तचन्दन, श्यानाक,
इन्द्र जी, अनन्तमूख घायके फूल, मुलहठी

और अर्जुन इन सबको पुष्प नक्षत्रमें
इकट्ठे करके समान समान भाग मिलाकर
चूर्ण बनालेवै । चूर्ण में शहत मिलाकर
तंडुल जल के साथ सेवन करै । इसके
सेवन से अर्श, अतिसार, जमाहुआ रुधिर,
वालकोंके आगन्तुकदोष, योनिदोष, रजोदोष
सफेद नीला पीला श्याव और अरुणप्रदरतौ
अवश्यही दूर होजाते हैं । महर्षि आत्रेयसे
प्रशंसित इस चूर्ण का नाम पुण्यानुग हैं ।

प्रदरमें अन्यचिकित्सा ।

तण्डुलीयकमूलञ्चससौद्रंतण्डुलाम्बुना ॥
सरसाञ्जनंलाक्षवाल्मीकेनपयसापिवेत् ॥
पत्रकल्कोघृतेभृष्टौराजादनकपित्थयोः ॥
पित्तानिलहरौपैत्तेसर्वचैवास्त्रपित्तजित् ॥
मधुकत्रिफलांलोभ्रमुस्तंसौराष्ट्रिकामधु ।
मथैनिम्बगुडच्यौतुकफजेऽमृगदरोपिवेत्
विरेचनंमहातिक्तंपित्तजऽमृगदरोपिवेत् ॥
शुभंगर्भपरिस्त्रावचोक्तसर्वेषुकारयेत् ॥

अर्थ—चौलाईकी जड़को घोटकर शहत
और तंडुलजलके साथ पान करै, अथवा
रसांजन और लाखको बकरी के दूधके साथ
पीवै । अमलतास और कैथ के पत्तों को
पीसकर घीमें भूनकर सेवन करै तौ पैत्तिक
प्रदर में वात पित्त और सब प्रकार के रक्त
पित्त दूर होजाते हैं । कफज प्रदरमें मुलहठी
त्रिफला, लोध, मोथा, सौराष्ट्रमृत्तिका,
इनके कल्क को शहत के साथ सेवन करै
अथवा नीमकी छाल और गिलोय के करक
को मद्य के साथ पान करै । पित्तज प्रदर
में कुशाभ्यायोक्त महातिक्तक घृतसे विरेचन

देवै तथा गर्भस्राव के रोकने के लिये जो जो औषधें वर्णनकी गई हैं वेभी इसमें हित हैं।

रक्तयोन्यादि की चिकित्सा ।

काशमर्षकुटजकाथंसिद्धमुत्तरवस्तिना ।

रक्तयोन्यरजस्कानांपुत्रघ्न्याश्चाहितेष्टृतम्
मृगजाविचराहासृग्दध्यम्लफलसर्पिषा।

अरजस्कापिवेत्तिसद्विजीवनीयैःपयोऽपिवा

अर्थ—कुडाकी छाल और खंभारी इनके

काथ में चौथाई घृत पकाकर उत्तर वस्ति

द्वारा प्रयोग करने से रक्तयोनि, अरजस्का

और पुत्रघ्नी के दोष दूर होजाते हैं। हिरण

वकरा, भेड और सूअर इन के रुधिर में

दही, खटाई और घी डालकर सेवन करें

अथवा जीवनीय गणकी औषधियां डालकर

सिद्ध किया हुआ दूध पान करने से अरज

स्का योनि का दोष दूर होजाता है ।

कर्णिन्यचरणाशुष्कयोनिप्राक्चरणामुतु

कफवातेचयोक्तव्यतैलमुत्तरवस्तिना ॥

अर्थ—कर्णिनी, अचरणा, शुष्कयोनि,

प्राक्चरणा और कफवात से दूषित योनि

में वातनाशक औषधियों से सिद्ध किये हुए

तेल की उत्तर वस्ति देवै ।

गोपित्तमत्स्यपिचवाक्षीमंत्रिःसप्तभावितम्।

मधुनाकिष्कचूर्णवाद्दद्यादचरणापहम् ॥

स्रोतसांशोधनकण्डूक्लेदशोफहरञ्चतत्।

अर्थ—गौका पित्ता मछरी का पित्ता इन

में रक्षामीश्र के टुकड़े को इक्कीस भावना

देकर योनि में रख देवै अथवा मुरावीज के

चूर्ण में शहत मिलाकर योनि में रखवै। शत

से अचरणा दोष दूर होजाता है, स्रोत शुद्ध

होजातेहैं तथा खुजली, कटुद और शोध दूर होजाता है ॥

वातघ्नैःशतपाकैस्तुतैलःप्रागभिचारणैः॥

आस्थान्येचानुयास्येचस्वेद्येचानिलम्

दनैः । स्नेहद्रव्यैस्तथाहारैरुपनाहश्चयु

क्तितः ॥ शताहापवगोधूमकिष्ककुष्ठ

प्रियंगुभिः । बलासुपर्णिकाश्वाहःसं

यावोधारणःस्मृतः ।

अर्थ—प्राक्चरणाऔर अचरणा इनदोनों

योनिओं में वातनाशक शतपाक तैलों द्वारा

आस्थापन और अनुयासन वस्तिदेवै और

वात नाशक द्रव्यों द्वारा स्वेदन करावै। वायु

नाशक द्रव्यों का आहार तथा वायुनाशक

उपनाह करना चाहिये । सोंफ, जौ, मेहं,

मुरावीज, कूठ, प्रियंगु, खैरटी, मूषिकपर्णी

और असंगंध इनका कल्क योनि में धरे ॥

वागिनीऔरआप्लुतायोनिमेंचिकित्सा

वामिन्याप्लुतयोन्याश्चकर्तव्यःस्वेदनोऽ

पिवा । क्रमःकार्यस्ततःस्नेहःपिचुभिस्त

र्पणंभवेत् ॥ शल्लकीजिगिनीजम्बूवत्त्व

कूपश्चवस्कलैः । कपायैःसाधितःस्नेहः

पिचुःस्याद्विप्लुतापहः॥

अर्थ—वामिनी और आप्लुता योनि में

प्रथम स्वेदन करके पीछे संस्कार किये हुए

स्नेह का फोआ रखकर संतर्पण करें शल्ल-

की, मजीठ, जामनकी छाल धौकी, छाल

और पंचवत्काल इन के काथ में सिद्ध किये

हुए तेल को फोआ विप्लुता योनि में रखने

से रोग की शान्ति होती है॥

कर्णिनीयोनिर्मेचिकित्सा ।

कर्णिन्यांवर्तिकाकुष्ठपिप्पल्याकार्गसैन्यवैः
वस्तिमूत्रकृताधार्यासर्वचश्लेष्मनुद्धितम् ॥

अर्थ—कर्णिनीयोनिर्मे कूठ, पीपल, आक
की डाली का अग्रभाग और संधानमक इन
को बकरे के मूत्र के साथ पीसकर कल्क
करलेवै, फिर इसकी बत्तीसी बनाकर योनि
में रखै तथा इस में कफनाशक सब प्रकार
की क्रिया भी हित है ।

उदावृत्तायोनि की चिकित्सा ।

त्रैवृत्तस्नेहन्स्वेदोग्राभ्यान्पूर्वादकारसाः ।
दशमूलपपोवस्तिश्चोदावर्त्तानिलातिपु ॥
त्रैवृत्तेनानुवास्याचवस्तिश्चोत्तरसंज्ञितः ।
तदेवचमहायोन्यांस्तस्याश्चाविधीयते ॥
वसाक्कृश्वराहाणांघृतञ्चमधुरैःशृतम् ।
पूरयित्वामहायोनिवध्नीयात्क्षामनक्तकैः ॥

अर्थ—वाताधिक्य उदावृत्तायोनि में नि
सोथ का विरेचन, स्नेहन, स्वेदन, ग्राम्य आ
नूप और जलज पशुपक्षियों का मांसरस
और दशमूल के क्वाथ में सिद्ध किये हुए
दूध की वस्ति देवै । इसमें निसोथके साथ
सिद्ध किये स्नेह की वस्ति और उत्तर वस्ति
भी हित होती है । शिथिल हुई महायोनि
में भीयही क्रिया हित होती है । रंछ और
सूअर की चर्बी और घृत मधुर गणके क्वाथ
के साथ सिद्ध करके योनि में भरकर ऊपर
से रेशमीबस्त्रकी पट्टी बांधदेवै ।

यहिःनिष्क्रान्तयोनिर्कीचिकित्सा ।
प्रस्थस्तांसर्पिषाभ्यज्यक्षीरस्विन्नांप्रवेक्ष्य-
चावध्नीयाद्देशवारस्यपिण्डेनामूत्रकालतः

अर्थ—जो योनिबाहर निकलआई हो उ
सपर घृत चुपडकर दूध से स्वेदित करके
भीतर को प्रवेश करदेवै । और देशवारका
पिण्डा उस के मुखपर रखकर बांधदेवै जि-
स से फिर बाहर न निकलने पावै, और
मूत्र की आशंका होने पर उसे खोलदेवै ॥
यद्यवातविकाराणां कर्मोक्तं तच्च कारयेत् ।
सर्वव्यापत्स्मृतिमान्महायोनिं विशेषतः

अर्थ—वातविकारों में जो जो चिकित्सा
शुभ फलदायक हैं वे सब भी इस जगह
सब प्रकार के योनिरोगों में करनी चाहिये
परन्तु महायोनि में वातनाशक चिकित्साका
विशेष ध्यान उचित है ।

नहिवातादृतेयोनिर्नारीणांसंप्रदुष्यति ।
शमयित्वा तमन्यस्यक्षुर्यादौपस्यभेषजम् ॥

अर्थ—वातके अतिरिक्त और किसी का
रण से योनिरोग नहीं हुआ करते हैं, इस
से प्रथम वातको शमन करके और दोषोंकी
चिकित्सा करनी चाहिये ।

पांडुप्रदरमें चिकित्सा ।

मूलकल्कंतुरोहीतात्पाण्डुरप्रदरेपिबेत् ।
जलेनामलकाद्रीजकल्कं वाससितामधु ॥
मधुनामलकाच्चूर्णं रसंवालेह्येत्सिते ।
न्यग्रोधत्वक्पायेणलोघ्रकल्केनवापिबेत् ॥

अर्थ—पांडुप्रदर में रोहेडे की जड़का कल्क
करके जल के साथ पीवै, अथवा आंवले के
बीजों को पीसकर चीनी और शहत के साथ
पीवै, अथवा आंवले का चूर्ण या रस शहत
के साथ पीवै । अथवा बड़की छाल के
क्वाथ में लोघ का कल्क मिलाकर पीवै ॥

योनिस्त्राय में चिकित्सा ।

आस्तावेसौमपट्टंवाभावितंनेऽनुधारयेत् ।
प्लुत्त्वक्चूर्णपिण्डंवाधारयेन्मधुनोक्षतम् ।
योन्यास्तेहाक्तयालोभ्रमियंशुमधुकस्यच ।
धार्यामधुयुतावर्तिःकपायाणाञ्चसर्वशः॥
स्त्रावच्छेदार्थमभ्यक्तांधूपयेद्वाघृताप्लुतैः॥
सरलागुग्गुलुयवैःसतैलकटुमत्स्यकैः ॥

अर्थ—योनिस्त्राय में वडकी छाल के का
थ अथवा लोध की छालके क्वाथ में रेशमी
वस्त्र के एक टुकड़ेको भावना देकर योनि
में रखकर वांछदेवै अथवा पाकडकी छाल
का चूर्ण वा कल्क का पिंडा शहत के साथ
बनाकर योनि में रखदेवै । अथवा योनिमें
सोह लगाकर लोध, प्रियंगु, मुलहटी इनके
कल्क को शहत में सानकर बत्ती बना-
कर योनि में रखदेवै अथवा सब प्रकार के
कपाय रस वाले द्रव्यों के कल्क में शहत
मिलाकर योनि में रख देवै । अथवा स्त्राय
को दूर करने के लिये सरलकाष्ठ, गुग्गुल,
जौ, कटु तेल और मछली इन के कल्क
को घी में सानकर योनि में घूप देवै ॥

पिच्छिलायोनिकी चिकित्सा ।

फासीशत्रिफलाकाच्छीसाम्रजम्बस्थि-
धातकी । पैच्छिल्येक्षौद्रसंयुक्तःचूर्णोवि-
शद्यकारकः ॥ पलाशसर्जजम्बूत्वक्समं
गामोचधातकीः । सपिच्छिलपरिकिञ्चा
स्तम्भनःकल्कइष्यते ॥

अर्थ—पिच्छिल योनिमें कसीस, त्रिफला,
अडहरकी जड़, आमकी, गुठली, जामनकी
गुठली, धायके फ़ड़ इन के चूर्ण को शहत

में सानकर रखने से विंशदत्ता होती है ।
ढाककीछाल, राठ, जामनकी छाल, लज्जा-
मोच और धाय के फ़ड़ पीसकर योनि में
रखने से गिलगिलापन और शिथिलता दूर
होजाती है ॥

योनिके अन्यदोषों की चिकित्सा ।
स्तब्धानां कर्कशानाञ्च पिण्डोमाद्वकार-
कः । धारयेद्देशवारंवापायसंकुम्भरं तथा ॥
दुर्गन्धानां कपायः स्यात्तलं वा कल्क एव वा
चूर्णवासर्वगन्धानां पूतिगन्धापकर्षणम् ॥

अर्थ—योनि की स्तब्धता और कर्कश-
ता दूर करने के निमित्त वेशवार, पायस वा
कुशरा का गोला बनाकर योनि में रखे
योनि की दुर्गन्धि दूर करनेके लिये सुगंधित
द्रव्यों का तेल, वा कल्क वा सर्वगंध का
चूर्ण लगाने से दुर्गन्धि जाती रहती है ॥

योनि चिकित्साका उपसंहार ।

एवं योनिपुमुद्धासु गर्भं विन्दन्ति योपितः ॥
अदुष्टे प्राकृते बीजे जीवोपक्रमणे सति ॥

पञ्चकर्म्या विशुद्धस्य पुरुषस्यापि चेन्द्रिय
म् । परीक्ष्य वर्णैर्दोषाणां दुष्टं तद्ग्रेष्वाचरे
त् । स लिङ्गाव्यापदो योनिः स निदानचि
कित्सिताः ॥ उक्ताविस्तरतः सम्यक्वमुनि

नातत्त्वदर्शना ।

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए प्रयोगों से
योनियों के शुद्ध होने पर तथा प्राकृतकर्म
और बीज के निर्दोष होने से गर्भ में जीव
का संचार होने पर स्त्रियों के गर्भ रहजा-
ता है । इसी तरह जो पुरुषोंका धीर्य दू-
षित हो तो उसे यमन विरेचनादि पंचक-

मौसे शुद्ध करके विगडे हुए वीर्यके वर्णकी परीक्षा करके उस दोषके दूर करने वाली चिकित्सा करें ॥

तत्त्वदर्शी भगवान् पुनर्वसुने योनिके भिन्न भिन्न रोग, उनके लक्षण, निदान और चिकित्सा विस्तार पूर्वक वर्णन की हैं ।

शुक्रदोष का प्रकरण ।

पुनरेवाग्निवेशस्तुपमच्छभिपजावरम् ॥

आत्रेयमुपसङ्गम्यशुक्रदोपास्त्वयानघ ॥

रोगाध्यायेसमुद्दिष्टाष्टष्टौपुंसामशेषतः ॥

तेपाहेतुंभिपक्ष्रेष्ठदुष्टदुष्टास्यचाकृतिम् ।

चिकित्सितश्चकारत्स्नैर्नवलैर्बन्धयच्चतु

र्विधम् ॥ उपद्रवेपुयोनीनांप्रदरोयश्चकी

र्तितः । तेषांनिदानंलिङ्गञ्चचिकित्सां

चैवतत्त्वतः ॥ समासव्यासयोगेनप्रवृहि

भिपजावरम् । तस्मैशुश्रूषमाणायमोवा

चमुनिपुङ्गवः ॥ वीजंयस्माद्वयवायाचह

र्पयोनिसमुत्थितम् । शुक्रंपौरुषमित्युक्तं

तस्माद्वक्ष्यामितच्छृणु ॥

अर्थ—अग्निवेश ने भिपग्वर पुनर्वसुसे फिर पूछा कि हे भगवान्! आपने अष्टोदरीय रोगाध्याय में पुरुषों के आठ प्रकार के शुक्र दोष वर्णन किये थे, सो हे प्रभो! वीर्य के दूषित होने के हेतु, दूषित और निर्दूषित वीर्यकी आकृति, दूषित वीर्य की चिकित्सा, चार प्रकार के छैबरोग, तथा योनिरोगों में वर्णन किये हुए प्रदररोग का निदान, लक्षण और चिकित्सा संक्षेप और विस्तार दोनों रीति से वर्णन कर दीजिये । यह सुनकर मुनिपुंगव आत्रेयबोले कि पुरुष

का बीज अर्थात् शुक्र मैथुन में हर्ष और योनि के स्पर्श से उठता है यह बात प्रथम वर्णन करदी गई है, अब जिस तरह उस वीर्यमें दोष उत्पन्न होतेहैं, उसकावर्णनकरताहूँ बीजके विगडने में दृष्टान्त ।

यथागीजमकालाम्युकुमिकीटाग्निदूषितम् नावरोहतिसन्दुष्टंथाशुक्रंशरीरिणाम् ॥

अर्थ—जैसे कुसमयकी वर्षा, कीड़े, कीट वा अग्नि के कारण बिगडा हुआ बीज अंकुरित नहीं होता है इसी तरह मनुष्यों का बिगडा हुआ वीर्य भी संतान के उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहता है।

वीर्यके दूषित होनेका कारण

अतिव्यवायाद्व्यायामादसात्मानाश्चसेवनात् । अकालेचाप्ययोनौवामैथुनंनचगच्छतःरुक्षतिककपायातिलवणाम्लोष्णसेवनात् । मधुरस्निग्धगुर्वन्नसेवनाज्जरायातया । चिन्ताशोकाद्विसम्भाच्छस्त्रसाराग्निभिस्तथा ॥ भयात्क्रोधादभीचाराद्व्याधिभिःकपितस्यच ॥ वेगाघातात्क्षयाच्चापिधातूनांसंप्रदूषणात् ॥ दोषाःपृथक्समस्तावाम्राप्यरेतोवहाःशिराःशुक्रंसंदूषयन्त्याशुतद्वक्ष्यामिविभागशः॥

अर्थ—अत्यन्त मैथुन, अत्यन्त शारीरिक परिश्रम, अत्यन्त असात्म्य द्रव्यों का सेवन, कुसमय मैथुन वा अयोनि से मैथुन अगम्य योनि में मैथुन, रुक्ष तिक कपाय द्रव्यों का अत्यन्त सेवन, अत्यन्त नमकील, खट्टे और उष्ण पदार्थों का सेवन अत्यन्त मीठे, चिकने और मारी अन्न का

सेवन (नारीणामरसज्ञानांतरणादित्यपिपाठः)
 सुष्णपा, चिन्ता, शोक, प्रकाश स्थान में
 स्त्रीगमन, शस्त्रकर्म, अग्नि कर्म और
 क्षार कर्मका अयोग्य प्रयोग, भय, क्रोध
 अभिचार, रोगादि द्वारा कर्षण, मलमूत्रादि
 वेगों का अवरोध, धातुकी क्षीणता, तथा
 धातुओं का दूषित होना इन कारणों से
 सम्पूर्ण दोष पृथक् २ वा मिलकर वीर्यवाही
 शिराओं में पहुंचकर शुक्र को शीघ्रहीनदूषित
 कर देते हैं, अब उनके पृथक् २ लक्षण कहते हैं
 दूषित शुक्रके भेद ।

फेनिलंतनुरुक्षञ्चविवर्णपूतिपिच्छिलम् ॥
 अन्यधातूपंससृष्टव्यसादितथाष्टमम् ॥

अर्थ—दूषित वीर्य आठ प्रकारका होता
 है यथा—झागदार, पतला, रुखा, विवर्ण,
 दुर्गन्धित, गिलागिला, अन्यधातु से मिला
 हुआ और अवसादी ।

वातदूषित शुक्र के लक्षण ।

वातेनफेनिलंशुष्कं कृच्छ्रेणपिच्छिलंतनु ॥

भवत्युपहतंशुक्रं नतद्गर्भायकल्पते ॥

अर्थ—वातके कारण शुक्र झागदार,
 शुष्क, पिच्छिल, पतला और कठिनता से
 बाहर निकलने वाला होजाता है, वात से
 बिगड़ा हुआ शुक्र गर्भ उत्पन्न करने के
 योग्य नहीं होता है ।

पित्तदूषित शुक्र के लक्षण ।

सनीलमथवापीतमत्युष्णं पूतिगन्धिच ॥

ददेच्छिंघ्रिनिर्वातिशुक्रं पित्तेन दूषितम् ।

अर्थ....पित्त से बिगड़ा हुआ शुक्र कुछ
 नीला, पीछा, अत्यन्त उष्ण और दुर्गन्धित

होता है तथा बाहर निकलने के समय बड़ा
 दाह होता है ।

कफदूषित शुक्रके लक्षण ।

श्लेष्मणावद्धमार्गंतुभवत्यत्यर्थपिच्छिलम्

अर्थ—कफदूषित वीर्य का कफके कारण
 मार्ग रुकजाता है और वह अत्यन्त गिल-
 गिला होजाता है ॥

अन्य हेतुओं से दूषित शुक्र के लक्षण
 स्त्रीणामत्यर्थगमनादभीघातात्क्षयादपि
 शुक्रं प्रवर्तते जन्तोः प्रायेण रुधिरान्वयम् ॥

अर्थ....अत्यन्त स्त्री गमनसे, अभिघात
 से वा क्षीण होने से जो शुक्र निकलता है
 उस में रुधिर मिलारहता है ॥

अवसादी शुक्रके लक्षण ।

वेगसन्धारणात्शुक्रं वायुनाविहितं पथि ।

कृच्छ्रेण याति प्रथितमवसादितथाष्टमम्

इति दोषाः समाख्याताः शुक्रस्याष्टौ सल

क्षणाः ।

अर्थ—मल मूत्रादि के उपस्थित वेगोंके
 रोकने से शुक्र मार्ग में विवृत होकर बड़ी
 कठिनता से गांठदार होकर निकलता है, इसे
 ही अवसादी शुक्र कहते हैं ॥

इस तरह शुक्र के सलक्षण आठों दोषों
 की व्याख्या की गई है ।

शुद्ध शुक्र के लक्षण ।

स्निग्धघनं पिच्छिलञ्च मधुरञ्चाविदाहिच
 रेतः शुद्धं विजानीयाच्छ्वेतस्फटिकसन्नि-

भम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, घन, पिच्छिल, मधुर,
 अविदाही और स्फटिकके समानश्वेत शुक्र
 शुद्ध होता है ॥

वाजीकरणयोगोक्तैरुपयोगैःसुखैर्हितैः ॥
रक्तपित्तहरैर्योगैर्योनिव्यापादिकैस्तथा ।
दुष्टं यथा भवेद्रेतः ततस्तत्समुपाचरेत् ॥

अर्थ—वाजीकरण योगोक्त सुखदाई प्र-
योग, रक्तपित्तनाशक योग, योनिरोगनाशक
योग, इनसे जो शुक्र विगड़ जाता है उसकी
चिकित्सा निम्नलिखित रीति से करे ।
घृतञ्चजीवनीयंयच्छ्यावनःप्राशएवच ॥

गिरिजश्चप्रयोगश्चरेतोदोषानपोहति ॥

वातान्वितेहिताःशुक्रैरनिरूहाःसानुवासनाः
ब्राह्ममामलकीयश्चपित्तेशस्तरसायनम् ॥

मागध्यमृतलोहानांत्रिफलायारसायनैः ॥

कफोत्थितंशुक्रदोषंहन्याद्भल्लातकस्यच ॥

अन्यधातूपसंसृष्टंशुक्रवीक्ष्यभिपक्तमैः ॥

यथादोषंप्रयोज्यंस्यादोषधातुभिपग्निनम्

अर्थ—जीवनीय घृत, च्यवनप्राश और
शिलाजतु-प्रयोग वीर्य दोषों का दूर करते
हैं । वातान्वित शुक्र में निरूहण और
अनुवासन वस्ति हित है । पित्तान्वित शुक्र
में ब्राह्मरसायन और अभयामलकीय रसाय-
न हित है । कफान्वित शुक्र में पिप्पली
रसायन, गुडूचीलौह, त्रिफला रसायन और
भल्लातक प्रयोग हित हैं । यदि शुक्रमें अन्य
धातुका संसर्ग हो तो उसकी परीक्षा कर-
के यथादोष उसकी चिकित्सा करने में
प्रवृत्त होना चाहिये ।

शुक्रदोष में साधारण प्रयोग ।
सर्पिःपयोरस्ताः शालिर्यवगोधूमपट्टिकम्
प्रशस्तंशुक्रदोषेषुवस्तिकर्मविशेषतः ॥

अर्थ—शुक्र दोषों में घी, दूध, मांसरस,

शालीचावल, जौ, गेहूँ और साठी चावल
हित हैं और वस्तिकर्म विशेष करके उप-
योगी होता है ॥

क्लीवता के अन्यकारण ।

रेतोदोषोद्भवैर्व्ययस्माच्छुद्धैर्वसिद्धय-
ति । अतोवक्ष्यामि ते सम्यग्ग्निवेशं । य-
थातथम् ॥ वीजश्चजोपधाताभ्यांजरया
शुक्रसंक्षयात् । वैकुण्ठसम्भवस्तस्यमृणु
सामान्यलक्षणम् ॥

अर्थ—हे अग्निवेश ! शुक्रके दोषसे जो
क्लीवता होती है वह शुक्रके शुद्ध होने ही
पर मिट जाती है । अब मैं यथा रीति से
तेरे साम्हने कहता हूँ । क्लीवता के चार
कारण हैं, यथा वीर्यदोष, पञ्चभंग, वृद्धावस्था
और वीर्यकी क्षीणता । अब मैं इन के
सामान्य लक्षणों का वर्णन करता हूँ ।

क्लीवताके साधारण लक्षण ।

सङ्कल्पप्रणवानित्यंभियां वक्ष्यामपिस्त्रिय
म् । नयातिलिङ्गशैथिल्यात्कदाचिद्याति
वापुमान् । श्वासारतःस्विन्नगात्रांसोमोघ
संकल्पचेष्टितः । म्लानश्चिश्चानिर्वीजः
स्यादेतत्कैवलयलक्षणम् । सामान्यलक्षणं
हेतद्विस्तरेणप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—यदि मनुष्य इच्छा उत्पन्न होने
पर भी लिंगकी शिथिलताके कारण अपनी
प्रिया और वशीभूना स्त्रिके पास भी नहीं
जा सकता है और जो जाता भी है तो
श्वास चलने लगता है पसीने आजाते हैं,
उसका संकल्प व्यर्थ होजाता है, चेष्टाव्यर्थ
होजाती है, शिश्नेन्द्रिय शिथिल पड़जाती है

निर्विज होजाती है, तब इसी को क्लीवता या नामर्दी कहते हैं, क्लीवताके ये सामान्य लक्षण हैं अब विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं।

बीजोपघातज क्लीवता के लक्षण।

शीतरुक्षाल्पसंक्षिष्टविरुद्धार्जीर्णभोजनात् शोकचिन्ताभयत्रासात्स्त्रीणां चात्यर्थसेवनात् । अभीचारादविसम्भाद्रसादीनां च संक्षयात् ॥ घातदीनामोजसश्वतथैवानशनाच्छ्रमात् । नारीणामरसज्ञत्वात्पञ्चकर्मपचारतः । बीजोपघातोभवतिपाण्डुवर्णः सुदुर्बलः ॥ अल्पप्राणोल्पहर्षश्चप्रमदासुभवेन्नरः । हृत्पाण्डुरोगतमककामलाश्रमपीडितः । छर्द्यतीसारशूलार्तःकासज्वरानिपीडितः । बीजोपघातजं ह्येक्यं ध्वजभग्नकृतं गृणु ॥

अर्थ—शीतल, रुखा, अल्प, गृष्ट, विरुद्ध और दुष्पाच्यभोजन, शोक, चिन्ता, भय, त्रास, त्रिव्योका अत्यन्त सेवन, अभिचार, आविर्लम्भ, रसादि धातुओं की क्षीणता, वातादिक धातुओं की विषमता, भोज की क्षीणता, उपवास, श्रम, अरसज्ञस्त्रीगमन वमनादि पंचकर्मों का योगातियोग, इन कारणों से शुक्र का नाश होता है, इससे पुरुष पाण्डुवर्ण और अत्यन्त दुर्बल होजाता है, उसकी प्रमदा स्त्रियों में अनिच्छा और निश्चेष्टिता होती है, इससे पछे हृद्दोग, पाण्डुरोग, तमकदवास कामला और श्रम होता है । उसके वमन, आतिसार, शूल और कासज्वर की उत्पत्ति होती है । ये बीजोपघातज क्लीवता के लक्षण हैं । अब ध्वजभंग से हुई क्षीवता के लक्षण कहते हैं

ध्वजभंग के हेतु ।

अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धार्जीर्णभोजनात् । अत्यमुषानाद्विषमपिष्टान्नगुरुभोजनात् दधिक्षीरानूपमांससेवनाद्व्याधिकर्षणात् कन्यानाञ्चैवगमनादयोनिगमनादपि ॥ दीर्घरोम्नीचिरात्सृष्टांतैथवचरजस्वलाष्टुर्गन्धादुष्टयोनिचतथैवचपीरसुताम् ॥ ईदृशीममदामोहादतिहर्षात्प्रगच्छतः ॥ चतुष्पदाभिगमनाच्छेफसश्चाभिघाततः ॥ अधावनाद्गोमहस्यशस्त्रदन्तनखक्षतात् । काष्ठप्रहारनिष्पेषशूकानां चातिसेवनात् ॥ रेतसश्चमतीघातावध्वजभङ्गः प्रवर्तते ॥

अर्थ—अत्यन्त खट्टे, नमकीन, क्षारयुक्त विरुद्ध और दुष्पाच्य भोजन, अत्यन्त जलपान, विषम भोजन, पिष्टान्न भोजन, गुरु भोजन, दही दूध और मांस का अत्यन्त सेवन, व्याधिद्वारा कर्षण, कम उमरकी स्त्री से गमन, अयोनिगमन, दीर्घरोमवाली स्त्री से गमन, बहुत दिनसे जिसने पुरुषसंसर्ग त्यागदियाहो ऐसी स्त्रीसे गमन, रजस्वला से गमन, दुर्गन्धयोनि गमन, दुष्टयोनि गमन, स्वावयुक्त योनि गमन, ऐसी स्त्री में मोह वा हर्ष से गमन करना, गौ भेंस आदि चौपायों से गमन करना, लिंग में चोट लगना, लिंग का प्रक्षालन न करना, उस्तरा, दांत वा नख से घाव होना, लकड़ीकी चोटलगना निष्पेषण, (हस्त मैथुन) शूकप्रयोगों का अत्यन्त सेवन और धीर्यका नाश । इन सब कारणों से ध्वजभंग होता है ।

ध्वजभंगके लक्षण ।

भयभुर्वेदनामंदेरागधैवोपलक्ष्यते ॥ रफो

दाश्चतीव्राजायन्तेलिङ्गपाकोभवत्यपि ।
मांसवृद्धिर्भवेच्चास्यव्रणाःक्षिप्रंभवन्त्यपि ।
पुलाकोदकसङ्क्रामःस्त्रावःश्यावारुणममः ।
पलयाकुस्तेचापिकठिनश्चरिग्रहम् ॥
ज्वरस्तृष्णाभ्रमोमूर्च्छाच्छर्दिश्चास्योप-
जायते ॥ रक्तं कृष्णं च वेच्चापिनीलमा-
विलोहितम् । अग्निनेत्रचदग्धस्यतीव्रो-
दाहःसवेदनः ॥ वस्तौवृषणयोर्वापिसी-
वन्पात्रंक्षणेपुच । कदाचित्पिच्छिलोवा-
पिपाण्डुस्त्रावश्चजायते ॥ श्वयथुश्चभवे-
न्मन्दस्त्रिमितोऽल्पपरिस्रवः । चिरात्स-
पाकंनजतिशीघ्रंवाधप्रपद्यते ॥ जायन्ते-
क्रिमयश्चापिविलयतेपूतिगन्धश्च । प्रशी-
र्यतेमणिश्चास्यमेदुमुष्कावथापिच ॥ ध्व-
जमङ्गकृतंलैव्यंइत्येतत्समुदाहृतम् । ए-
वंप्रविधंकेचित्ध्वजभंगवदन्त्यपि ॥
अर्थ—मेदू में सूजन, वेदना और लड़ाई
उत्पन्न होआती है । बड़े तीव्र फोड़े और
लिङ्गपाक भी होता है, लिङ्गका मांस बद-
जाताहै, घाव जल्दी २ होजाते हैं, पुलाक
के नलके सदृश श्याव और अरुणरंग का
स्त्राव होने लगता है, लिङ्ग में टेढ़ापन,
कठिनता और स्तब्धता होती है, ज्वर,
तृष्णा, भ्रम, मूर्च्छा, और वमन ये उपद्रव
होभाते हैं । नांछा, लाल, काला, मैला
और लोहितवर्ण का स्त्राव होता है, अग्नि-
द्वारा जलने के समान तीव्र दाह और वे-
दना बसित, वंक्षण, अंडकोप और सीवनी
में होने लगती है, कभी कभी पिच्छिल
और पाण्डुवर्ण का स्त्राव भी होता है, मन्द

स्तिमित और अल्पस्राववाली सूजन होती
है, पाक देर में होताहै और कभी २ शीघ्र
भी होजाता है, फोड़े पड़जाते हैं, सड़ीहुई
गंध आनेलगती है, मणि, मेदू और मुष्क
विशीर्ण होजाते हैं । यह ध्वजभंग की क्षी-
यता के लक्षण हैं । कोई कोई ध्वजभंग के
पांचभेद कहते हैं ।

जरासंभवहृवताके लक्षण ।

हृव्यंजरासम्भवंहिमवक्ष्याम्यथतच्छृणु ।
जघन्यमध्यमवरं वयस्त्रिविधमुच्यते ॥
अथप्रवयसांशुक्रं प्रायशःक्षीयतेनृणाम् ।
रसादीनांसंक्षयाच्चतथैवावृष्यसेवनात् ॥
पलवर्णेन्द्रियाणांचक्रमेणैवपरिक्षयात् ।
परिक्षयादायुषश्चाप्यनाहाराच्छ्रमात्क्र-
मात् ॥ जरासम्भवजंलैव्यंइत्येतैर्हेतुभि-
र्नृणाम् । जायतेतेनसोऽत्यर्थंक्षीणधातुःसु-
दुर्वलः ॥ विवर्णोविह्वलोदीनःक्षिप्रंव्या-
धिमयाश्नुते । एतजरासम्भवंहिचतुर्थ-
क्षयजंशृणु ॥

अर्थ—अवहम वृद्धावस्था से उत्पन्नहुई
हृवता के लक्षण कहते हैं । मनुष्य की
तीन प्रकारकी अवस्था होतीहै, यथा जघन्य
(बालापन), मध्य (यौवन) और प्रवर
(बुढ़ापा) । बढ़ी हुई अवस्था वाले मनु-
ष्यों का शुक प्रायःक्षीण होजाता है क्योंकि
रसादि धातु क्षीण होती चलीजाती है और
पुष्टिकारक द्रव्यों का सेवन नहीं करतेहैं इस
से वल वर्ण और इन्द्रियों का पराक्रम क्रम
से क्षीण होता चलाजाता है । आयु के
क्षीण होने से, आहारकी शक्ति न रहने से

और श्रम से जरासंभव क्लीवता होती है, इससे मनुष्य की धातु अत्यन्त क्षीण पड़ जाती है और वह दुर्बल होजाताहै, वह वि-वर्ण, विह्वल हीन और शीघ्रही व्याधिग्रस्त होजाताहै, यह जरासंभव क्लीवता है अब चौथी क्षयज क्षीणता को सुनो ।

क्षयज क्लीवता ।

अतिप्रचिन्तनाच्चैवशोकात्क्रोधाद्भयादपि ईर्ष्यात्कण्ठादथोद्वेगात्समाविशतियो-
नरः ॥ कृशोवासेवतेरुन्ममन्नपानमथौ-
पधम् । दुर्बलप्रकृतिश्चैवनिराहारोभवेद्य-
दि ॥ अथाल्पभोजनाच्चापिहृदयेयोव्य-
वस्थितः ॥ रसःप्रधानधातुर्हिंसीयेताशु-
नरस्ततः । रक्तादयश्चक्षीयन्तेधातवस्त-
स्यदेहिनः ॥ शुक्रावसानास्तेभ्योहिशु-
क्रंधामपरंमतम् । चेतसोवातिहर्षणव्य-
घायसेवतेतुयः ॥ शुक्रंतुक्षीयतेतस्यततः
मामोतिसंक्षयम् । घोरांव्याधिमवामोति
मरणंवासमृच्छति ॥ शुक्रंतस्माद्विशेषेण
रक्ष्यमारोग्यमिच्छता । एतन्निदानंलिङ्गा

भ्यामुक्तं क्लैव्यंचतुर्विधम् ।

अर्थ—जो मनुष्य अत्यन्त चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, ईर्ष्या, उत्कांठा और उद्वेग से सदा ध्यानावस्थित रहताहै, जो कृश मनुष्य सदा रूक्ष अन्नपान और औषध सेवन करता रहता है, जो मनुष्य दुर्बल प्रकृ-
तिका है, उपवास बहुत करताहै, वा अल्प
[वा असाध्य] भोजन करता है उसका हृदयस्थ प्रधान धातुरस शीघ्रही क्षीण हो-
जाताहै, उस मनुष्यके रक्तादिक शुक्र पर्य-

न्त सब धातु क्षीण होजाते हैं । और शुक्र ही सब धातुओंका तेजस्वरूप है अथवा जो मनुष्य चित्तकी अत्यन्त हर्षता से मैथुन में प्रवृत्त होता है, उसका शुक्र क्षीण हो-
जाता है और क्षयरोग उपस्थित होता है, अथवा घोर व्याधियोंके होने के कारण वह मृत्युका प्राप्त होजाता है ।

इसी हेतुसे जो मनुष्य आरोग्यता की इच्छा करता है उसे शुक्र की अत्यन्त सावधानी से रक्षा करनी चाहिये ।

इस तरह चारों प्रकारकी क्लीवता के निदान और लक्षण वर्णन किये गये हैं ।

असाध्य क्लीवता ।

केचित्क्लैव्येत्सवाध्यैद्वेषजभङ्गक्षयोद्वेग-
वदन्तिशेफमश्छेदावृषणोत्पाटनेनवा ॥

अर्थ—कोई २ यह कहते हैं कि ध्वज भंगज और क्षयज क्लीवता असाध्य होती हैं और कोई यह कहते हैं कि शेफ में छिद्र होने वा अंडकोशों के फटने से जो क्लीवता होती है वह भी असाध्य होती है ।

अन्य क्लीवताओं को असाध्यत्व ।

मातापित्रोर्वीजदोषादशुभैश्चकृतात्मनः॥
गर्भस्थस्ययदादोषाःप्राप्यरेतोवहाःशिराः
शोपयन्त्याशुतन्नाशाद्रेतश्चाप्युपहन्यते ।
तत्रसम्पूर्णसर्वाङ्गःसभवत्यपुमान्पुमान् ॥
एतेत्वसाध्याव्याख्याताःसन्निपातसमु-
च्छयात् ॥ चिकित्सितमतस्तुर्ध्वसमास-
व्यासतःमृणु ॥

अर्थ—मातापिता के बीज दोष से, अपने पूर्व जन्म के किये हुए अशुभकर्मों से जब

गर्भस्थ दोष शुक्रवाही स्त्रोतों में पहुँच कर उन्हें शुष्क कर देते हैं और उनके शुष्क होने से शुक्र भी नष्ट होजाता है । ऐसा पुरुष सम्पूर्ण अंगोपांग समेत जन्म लेने पर भी क्लीब होता है ।

यह क्लीबता सन्निपातकी उदीर्णताके कारण दुश्चिकित्स्य असाध्य होती है ।

अब यहाँ से संक्षेप और विस्तार दोनों रीतिसे क्लीबताकी चिकित्साका वर्णन करते हैं

क्लैव्य की संक्षिप्त चिकित्सा ।

शुक्रदोषपुनिर्दिष्टभेषजं न्ययानय !

क्लैव्योपशान्तयेकुर्यात्सीणक्षताहितञ्च यत् ।

वस्तयः क्षीरसर्पापिष्टप्ययोगाश्च येष-

ताः ॥ रसायनप्रयोगाश्च सर्वानेतान् प्र-

योजयेत् । समीक्ष्य देहदोषाग्निबलभे-

पजकालवित् ॥ व्यवायहेतुजं क्लैव्यं य-

स्याद्धेतुविपर्ययात् । दैवव्यपश्रयश्चै-

वभेषजश्चाभिचारजम् । समासैनन्दुहि-

ष्टं भेषजं क्लैव्यशान्तये । विस्तरेण प्रवक्ष्या-

मिक्लैव्यानां भेषजं पुनः ॥

अर्थ—हे अनघा! शुक्रदोष के दूर करने

के लिये जो जो चिकित्सा मने कही हैं

तथा क्षीणक्षत में जो जो चिकित्सा उपयो-

गी हैं वे सब क्लीबताको दूर करनेमें उप-

योगी हैं । देह, दोष, अग्नि, बल, औषध

और काल का विचार करके वस्ति, दूध,

घृत, वृष्ययोग और रसायन के प्रयोग

करने चाहिये ॥ व्यवायहेतुज विपरीतहेतुसे उ-

पन्न और अभिशापज क्लीबताको दैवव्य-

पश्रय औषधियोंसे दूर करनेका प्रयत्न करै

क्लीबता दूर करने के ये संक्षिप्त उपाय वर्णन कियेगये हैं अब इसकी चिकित्सा का विस्तार वर्णन कियाजाता है ॥

बीजोपघातकी चिकित्सा ।

सुस्विन्नस्निग्धगात्रस्य स्नेहयुक्तं विरेचनं

प्रदद्यान्मतिमान्वैद्यस्ततस्तमनुवासयेत् ।

पलाशैरण्डमुस्ताद्यैः पश्चादास्थापयेत्ततः ॥

वाजीकरणयोगाश्च पूर्वये समुदाहृताः ।

भिपजाते प्रयोज्याः स्युः क्लैव्ये बीजोप-

घातजे ॥

अर्थ—क्लीवरोगी को अच्छी तरह अ-

भ्यक्त करके पसीने देवै फिर स्नेहयुक्त

विरेचन देवै, तत्पश्चात् अनुवासन वस्ति

देवै ॥ पीछे ढाक, अरंड और मोथा के काथ

आदि से आस्थापन देवै और पहिले जो

वाजीकरण प्रयोग वर्णन करदिये गये हैं

वे सब इस बीजोपघातज क्लीबता में हितहै।

ध्वजभंग में चिकित्सा ।

ध्वजभंगकृतं क्लैव्यं ज्ञात्वा तस्याचरोत्कि-

याम् । प्रदेहान्परिपेकांश्च कुर्याद्वा रक्त-

मोक्षणम् ॥ स्नेहपानञ्च कुर्वीत स्नेहं वा

विशोधनम् । अनुवासनं ततः कुर्यादथ

वास्थापनं पुनः ॥ व्रणवच्चक्रियाः सर्वास्त

त्रकुर्याद्विचक्षणः ॥

अर्थ—ध्वजभंगज क्लीबता में प्रदेह,

परिपेक, रक्तमोक्षण, स्नेहपान और स्नेह-

युक्त विरेचन हित है । पीछे अनुवासन

और आस्थापन करके व्रणवत् क्रियाकरै ।

जरासंभवक्लैव्यकी चिकित्सा ।

जरासम्भवजे क्लैव्ये क्षयजे चैव कारयेत् ।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्यसस्नेहशोधनंहितम् ॥
क्षीरसर्पिर्दृष्ययोगावस्तयश्चैवयापनाः ।
रसायनप्रयोगाश्चतयोर्भेदजमुच्यते ॥
विस्तरेणैतदुद्दिष्टं बलैर्व्यानाभिपजम्बया ॥

अर्थ—जरासंभव और क्षयज कटीव्रतामें स्नेहन स्वेदन करके स्नेहयुक्त विरेचन देवै । दूध, घी, दृष्ययोग, क्षीरवस्ति और रसायन प्रयोग इन रोगों में हित हैं ।

यह कटीव्ररोगोंकी विस्तारपूर्वक चिकि-
त्सा वर्णन कीगई है ।

प्रदरवर्णन ।

यःपूर्वमुक्तःप्रदरःशृणुहेत्वादिभिस्तुतम् ॥
यात्यर्थेसवतेनारीलवणाम्लगुरुणिच ॥
कटुन्ध्रविदाहीनिस्निग्धानिपिशितानिच
ग्राम्यौदकानिसेव्यानिहृसरंपायसंदधि
शुक्तमस्तुसुरादीनिभजन्त्याःकुपितोऽनिलः
रक्तप्रमाणमुत्कम्प्यगर्भाशयगताःशिराः ।
रजोवहाःसमाश्रित्यरक्तमादायतद्रजः ॥
यस्माद्विबर्ज्यन्त्याशुरक्तीपत्तंसमारुतम् ॥
तस्मादसृग्दरंमाहुरेतत्तन्त्रविशारदाः ॥
रजःप्रदीर्यतेतस्मात्प्रदरस्तेनसमृतः ॥

अर्थ—जो प्रथम प्रदररोग वर्णन किया गयाहै अब उसके हेतु आदिका वर्णन करतेहैं जो स्त्री अत्यन्त खदे, नमकीन और भारी पदार्थों का सेवन करती हैं, जो कटु विदाही स्निग्ध तथा ग्राम्य और औदक पशुओं का मांस सेवन करती है, जो शिचडी, खीर, दही, शुक्त और सुरा आदिका अत्यन्त सेवन करती हैं, उनकी वायु कुपित होकर रक्तको प्रमाण से अधिक निकालने लगतीहै

उस समय रजोवाही शिराओं में वायु रक्तके साथ पहुंचकर रजको बढ़ा देती है । शाक-
लोग इस वायुसंसृष्ट रक्तपित्तको रक्तप्रदर कहतेहैं । रजके प्रदार्ण होनेसे इसे प्रदर कहतेहैं

प्रदरके भेद ।

सामान्यतःसमुद्दिष्टकारणलक्षणमेवच ॥
चतुर्विधं व्यासतस्तुवाताद्यैःसन्निपाततः ।
अतःपरंप्रवक्ष्यामिहेत्वाकृतिभिर्गणितं ॥

अर्थ—प्रदर के कारण और लक्षण संक्षेप से कहेंगे हैं । यह वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातक चार प्रकार का होता है, अब इन के हेतु, लक्षण और चिकित्साका विस्तारपूर्वक वर्णन कियाजाता है ॥

वातजप्रदर के हेतु ।

रूक्षादिभिर्मारुतस्तुरक्तमादायपूर्ववत् ।
कुपितःप्रदरंकुर्याद्विद्रुतस्यावधारयेत् ॥

अर्थ—पूर्वोक्तरूक्षादि द्रव्योंके अत्यन्त सेवन से कुपित हुई वायु रक्त को ग्रहण करके प्रदर उत्पन्न करती है अब इसके लक्षणों को सुनो ॥

वातजप्रदर के लक्षण ।

फेनिलंतनुरुक्षञ्चश्यावंचारुणमेवच ।
किंशुकोदकसङ्काशंसरुजंवाथनीरुजम् ॥
कटीबंधणहृत्पादर्वपृष्ठश्रोणिपुमारुतः ।
करोतिवेदनांतीव्रामेतद्वातात्मकंविद्रुः ॥

अर्थ....वातज प्रदर में रक्त शागदार, पतला, रूखा, श्याववर्ण, अरुण और टेसूके फूलों के जल के समान होता है इसमें वेदना होती भी है और नहीं भी होती । इस रोग में वायु के कारण कमर, वक्षण हृदय

पसली, पीठ और श्रोणी में तीव्र वेदना होने लगती है ।

पित्तजमदर के हेतु ।

अम्लोष्णलवणसारैः पित्तप्रकुपितं यदा ।
पूर्ववत्प्रदरं कुर्यात् लक्षणं तत्कृतं शृणु ॥

अर्थ—खट्टे, गरम, नमकीन और क्षार पदार्थों के सेवन से पित्त प्रकुपित होकर जब पूर्ववत् प्रदररोग को उत्पन्न करता है तब उस के लक्षणों को सुनो ॥

पित्तजमदर के लक्षण ।

सनीलमथवापीतमत्युष्णमासितं तथा ।
नितान्तरक्तं सवतिष्ठदुर्गुहुरथार्तिमत् ॥
विदाहरागवृण्मोहज्वरभ्रमसमायुतम् ।
असृग्दर्पैर्चितं कतुश्चैष्मिकं तु प्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—पित्तजमदर में नीला, पीला, अत्यन्त उष्ण काला और वेदनायुक्त बार बार बहुतसा रक्त निकलता है इसमें दाह, राग, तृषा, मोह, ज्वर और भ्रम ये उपद्रव होते हैं ये पित्तज प्रदर के लक्षण हैं अब कफज प्रदरका वर्णन किया जाता है ।

कफज प्रदर के हेतु ।

गुर्वादिभिर्हेतुभिश्च पूर्ववत् कुपितः कफः ।
प्रदरं कुरुते तस्य लक्षणं तच्च तः शृणु ॥

अर्थ—गुरु आदि पदार्थों के सेवन करने से कुपित हुआ कफ प्रदररोग को उत्पन्न करता है अब इसके लक्षणोंका वर्णन करते हैं

कफज प्रदर के लक्षण ।

पिच्छिलपाण्डुवर्णचक्षुःश्लिग्धचशीतलम् ।
स्रवत्यसृक्फेनेद्भूतधामर्मरुजाकरम् ॥
उर्ध्वरोचकङ्कालास्रवासकाससमन्वितम् ।

अर्थ—कफज प्रदर में गिलगिला, पाण्डुवर्ण, भारी, श्लिग्ध, शीतल और आस्रदाय रक्त निकलता है, इस से मर्म स्थानों में वेदना होती है । तथा वमन, अरुचि, झुझास, श्वास और खांसी ये भी उस में होते हैं ।

सान्निपातिक प्रदरका हेतु ।

वक्ष्यते क्षीरदोषाणां सामान्यमिह कारणम् ।
यस्य दोषत्रिदोषस्वकारणं प्रदरस्य तु ।

अर्थ—स्तन्यदोष के जो सामान्य कारण कहे जायेंगे वेही सान्निपातिक प्रदर के हैं

सान्निपातिक प्रदर के लक्षण ।

त्रिलिङ्गसंयुतं विद्वान् नैकावस्थमसृग्दर्मम् ॥

अर्थ—सान्निपातिक प्रदर में तीनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं, इसकी एकसी अवस्था नहीं रहती है ॥

दुश्चिकित्स्यस्त्री ।

नारीत्वतिपरिविलिष्टाय दाप्रक्षीणलोहिता ।
सर्वहेतुसमाचारादतिष्ठद्भस्तयानिलः ॥

रक्तमार्गेण सृजति प्रत्यनीकगुणं कफम् ।
दुर्गन्धपिच्छिलं पीतं विदग्धं पित्ततेजसा ॥

वसामेदश्च यावद्विसृज्यादाय वेगवान् ॥
सृजत्यपत्यमार्गेण सर्पिमज्जावसोपमम् ।

शश्पत्स्रवत्यथास्रायं वृष्णादाहज्वरान्विता ।
सृजति रक्तादुर्बलाश्च तामसाध्यां वि-

वर्जयेत् ॥

अर्थ—जब स्त्री अत्यन्तरक्तलावक कारण परिलिष्ट और अत्यन्त क्षीणरक्त होजाती है तब तीनों दोष अपना प्रभाव जमाछेते हैं इन में से वायु अत्यन्त कुपित होकर उक्त मार्ग द्वारा विपरीत गुण कफकी निकालती

है, उस समय पित्त के तेजके कारण रक्त दुर्गन्धित, पिच्छिल, पीला और विदग्ध हो जाता है । तब वल्लवान् वायु शरीर की सम्पूर्ण शक्ती और मेद को ग्रहण करके योनि द्वारा घी, मज्जा और चर्बी के सदृश निरन्तर निकालती रहती है । इस रोग में स्त्री तृषा, दाह और ज्वर से भी पीडित रहती है । ऐसीक्षीणरक्ता और दुर्बला स्त्री चिकित्साके योग्य नहीं होती है ॥

विशुद्धऋतुके लक्षण ।

मासाभिप्पन्नवाहातिपश्चरात्रानुबन्धिच नैवातिबहुनात्यल्पमार्तवशुद्धमादिशेत् ॥

अर्थ—जो स्त्री महीने के महीने ऋतुवती होती है और ऋतुकाल में दाह वा यतना कुछ नही होता और रजोदर्शन पांचरात तक रहता है और रुधिर भी न बहुत अधिक न बहुत थोड़ा निकलता है, उसे शुद्ध कहते हैं ॥

विशुद्धआर्तव के लक्षण ।

गुञ्जाफलसमानञ्चपद्मालक्तकसन्निभम् इन्द्रोपकसङ्काशमार्तवशुद्धमेवतत् ॥

अर्थ—जो रुधिर चिरमिठी, लालकमल, महाज्वर वा चौरसहुट्टी के रंग के समान लाल लाल होता है वह शुद्ध आर्तव है ॥

योनीनांवातलाघ्यानांयदुक्तंइहभेषजम् ॥
चतुर्णामदराणाञ्चैतत्सर्वकारयेद्भिषक् ॥
रक्तातिसारिणाञ्चैवतथालोहितपित्तिनाम् ॥
रक्तार्शसाञ्चतत्प्रोक्तंभेषजंतचकारयेत् ॥

अर्थ—वातलादि योनियों की जो जो

चिकित्सा कहीगई है वेही चारों प्रकार के प्रदरों में करना श्रेष्ठ है । रक्तातिसार, रक्त पित्त और मूनी ववासीरमें जोजो चिकित्सा कहीगई है वे भी सब यहां करनी चाहिये । धात्रीस्तनस्तन्यसम्पदुक्ताविस्तरतःपुरा ॥
स्तन्यसञ्जननञ्चैवस्तन्यस्यचविशोधनम् ॥
वातादिदृष्टलिङ्गञ्चक्षीणस्यचचिकित्सितम् ॥
तत्सर्वमुक्तयेत्त्वर्णक्षीरदोषाभ्यकीर्तिताः ।
वातादिप्वेवतानविद्याच्छास्त्रचक्षुभिपक्तम् ॥
त्रिविधास्तुयतःशिष्यास्ततोवक्ष्यामि विस्तरम् ।

अर्थ—जातिसूत्रीय अध्याय में धात्री के स्तनसंबंधी दूध के गुण विस्तारपूर्वक वर्णन करदिये गये हैं तथा उसीस्थलमें दूध के उत्पन्न करनेवाले और शुद्ध करनेवाले उपायभी वर्णन कियेगये हैं । वातादिदोषों से दूषित स्तन्य के लक्षण और चिकित्सा भी वर्णन कीगई है । तथा अष्टोदरीय अध्याय में दूर्धक दोषोंका वर्णन भी किया गया है । विद्वान् वैद्य स्तन्यमें वातादि दोषों को देखकर उसके अनुसारही चिकित्सा करे । परन्तु शिष्य तीन प्रकार के होते हैं, उत्तम, मध्यम और निकृष्ट अतएव इसका विस्तारपूर्वक वर्णन कियाजाता है जिससे प्रत्येक प्रकार के शिष्य को उपयोगी होवे ॥

अजीर्णासात्म्यविषमविरुद्धात्यर्थभोजनात् ॥
लवणाम्लकटुक्षारमलिकानाञ्च सेवनात् ।
मनःशरीरसन्तापादस्वप्नाभि शिचिन्तनात् ।
मातृवैगमतीघातादमा-

सोदीरणेनच । परमान्नगुडकृतंकुसरंद
धिमतस्यकम् ॥ अभिष्यन्दीनिमांसानि
ग्राम्पानूपौदकानिच । भुक्त्वाभुक्त्वा
दिवास्वप्नान्मद्यस्यातिनिपेवणात् ॥ अ-
नायासादभीघातात्क्रोधाच्चातङ्ककर्पणैः
दोषाःक्षीराशयाःप्राप्यशिराःस्तन्यमप्रदप्य
तत् ॥ कुर्युरष्टविधंभूयोदोपास्तत्तान्नि
बोधत ।

अर्थ—दुग्ध्याध्य, असात्म्य, विषम, वि-
रुद्ध और अत्यन्त भोजन करने से, नम-
कीन, खोटे, खार, प्रक्षिन्न अन्न के अत्यन्त
सेवन से, मानसिक ताप, शारीरिक संताप,
रात्रिजागरण, चिन्ता, मलमूत्र के उपस्थित
वेगों का अवरोध, अप्राप्तवेगों के जोर
मारकर करने का प्रयत्न, गुडका अन्न
[घानी आदि] खिचड़ी, दही, मछली,
अभिष्यन्दी ग्राम्य, आनूप, और औदकजीवों
का मांस, भोजन करतेही दिन में सो रहना,
अत्यन्त मद्यपान, शारीरिक परिश्रम का
अवरोध, चोट, क्रोध और व्याधियोंसे कुश,
होना, इन संपूर्ण कारणों से दोष क्षीराशय
में पड़चकर, क्षीरवाहिनी शिराओंको दूधित
करके स्तन्य को दूधित करदेते हैं । इस
से आठ प्रकार के स्तन्यदोष उत्पन्न होते
हैं । अब उन सबका वर्णन करते हैं ।

स्तन्यदोष के लक्षण ।

वैरस्यफेनसंघातेरौक्ष्यंचेत्यनिलात्मकम् ॥
पित्ताद्वैषण्यदौर्गन्ध्येस्तेहपैच्छिल्यगौरवम्
कफाद्भवतिरूक्षाधैरनिलैःस्वैःप्रकोपणैः ॥
कुट्टःक्षीराशयप्राप्यरसस्तन्यस्यदूषयेत् ।

विरसंवातसंसृष्टंक्षीभ्रवतितात्पिवन् ॥
नचास्यस्वदेतक्षीरंकृच्छ्रेणचविवर्द्धते ।

अर्थ—वात से दूधित स्तन्य विरस,
झागदार, रूखा होता है । पित्त से दूधित
स्तन्य विषर्ण, दुर्गन्धयुक्त होता है, तथा
कफदूधित स्तन्य चिकना, गिलगिला और
भारा होता है ।

इस तरह रूक्षादि हेतुओं से वायु कुपित
होकर क्षीराशय में अपना अधिकार जमा-
कर स्तन्यरस को दूधित करदेती है । ऐसे
विरस और वात दूधित दुग्धको पीनेवाला
बालक कुश होजाता है । इस बालक को
दूध अच्छा नहीं लगता है और वह बड़ी
काठिनता से बढ़ता है ।

वातदूधित दुग्धके अवगुण ।

तथैववायुःकुपितःस्तन्यमन्तर्विलोडयन्
करोतिफेनसङ्घातंतुक्कृच्छ्रात्प्रवर्तते ।
तेनक्षामस्वरोवालोवद्धविण्मूत्रमारुतः ॥
वातिकंशीर्षरोगंवापीनसंवाधिगच्छति ।
पूर्ववत्कुपितःस्तन्येस्तेहंशोपयतेऽनिलः ॥
रूक्षंतत्पिवतोर्दौक्ष्याद्बलह्रासश्चजायते ।

अर्थ—इसी तरह से वायु कुपित होकर
दूध को भीतरही भीतर विलोडित करकेदूध
को झागदार करदेती हैऔर यह दूध बहुत
थोडा २ बाहर निकलता है । इस दूध के
पीने से बालक का शब्द क्षीण पडजाताहै,
विष्टा, मूत्र और अधोवायु रुकजाते हैं,
फिर वातज सिर के रोग, और पीनस रोग
उत्पन्न होते हैं ॥ पूर्ववत् कुपित ईई
वायु स्तन्य की चिकनाई को सोखदेती है

इस रूक्ष दूध के पीने वाले बालकका दूध की रूक्षता के कारण बल क्षीण होजाताहै

पित्तदूषित दुग्धके अवगुण ।

पित्तमुष्णादिभिःकुद्धंस्तन्याशयमभिप्लु-
तम् ॥ करोतिस्तन्यववर्णनीलपीतासि-
तादिकम् । विवर्णगात्रःस्विन्नःस्यात्तृष्णा
लुभिन्नविद्विशिशुः ॥ नित्यमुष्णशरीरश्च
नाभिनन्दतितत्स्वयम् । पूर्ववत्कुपितेपि
त्तदौर्गन्ध्यक्षीरमृच्छति ॥ पांड्वामयस्त-
द्भवतःकामलाचभवेच्छिशोः ॥

अर्थ—उष्णादि पदार्थों के सेवन से पित्त कुपित होकर दुग्धाशय में उत्पात कर के दूध में नीलापन, पीलापन और कालापन आदि विवर्णताओंको करताहै ॥

ऐसे दूधको पीने वाले बालकका देह वि-
वर्ण, पसीनों से युक्त होताहै उसेतृपा बहुत
लगती है, उसका मल फटजाताहै और श-
रीर सदा गरम रहता है और उस दूध में
बालक की रुचि नहीं होती है इसी तरह
पित्तके कुपित होने पर दूध में दुर्गन्ध आ-
ने लगती है और पीछे उस बालक के पांडु
रोग और कामला रोग होजाते हैं ॥

कफदूषित दुग्ध के अवगुण ।

स्निग्धगुर्वादिभिः श्लेष्माक्षीराशयगतः
स्त्रियाः ॥ स्नेहान्वितत्वात्तत्क्षीरमिति
स्निग्धं करोति तु । छर्दनःकुंथनस्तेनला-
लालुर्जायते शिशुः ॥ नित्योपादिग्धैःस्रो-
ताभिर्निद्रालस्यसमन्वितः ॥ श्वासकास-
परीतस्तुप्रसेकतमकान्वितः ॥ अभिभूय
कफःस्तन्यपिच्छिलकुंस्तेयदा । लाला

लुःशीनवक्राक्षिर्जडःस्यात्तुपिवन् शिशुः ॥
कफःक्षीराशयगतोऽगुस्त्वात्क्षीरगौरवम् ।
अतिस्नेहान्वितं पीत्वा बालो हृद्रोगमृच्छति
अन्यांश्च विविधान् रोगान् कुर्यात्क्षीरस-
माश्रितान् । क्षीरेवातादिभिर्दुष्टैः सम्भव-
न्ति तदात्मकाः ॥

अर्थ—स्निग्ध और भारी पदार्थों के से-
वन करने से कफ-दुग्धाशय में जाकर स्व-
यं स्नेहान्वित होनेके कारण दूध को अत्य-
न्त चिकना करदेता है । इस दूध के पीने
से बालक वमन करने लगता है, किंचता है
और उसकी लार टपकने लगती है । कफ
के कारण बालक के स्रोतों के अत्यन्त रुद्ध
सजाने से निद्रा, आलस्य, श्वास, खांसी,
प्रसेक और तमककी अधिकता होती है ।
जब कफ दूध को बिगाड़ कर गिलगिला
कर देता है तब उस दूध के पीने वाले बा-
लक के लार पड़ती है, उस के मुखपर सू-
जन होती है और आँखें पथराईसी होजा-
ती हैं । दुग्धाशय में कफ जाकर भारी हो-
ने के कारण दूध को भारी कर देता है, उस
अति स्निग्ध दूध के पीने से बालक के हृ-
द्राग होजाता है । तथा क्षीरसंबन्धी और
भी अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते
हैं । तथा वातादि दोषों से दूषित दुग्ध में
वात से उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के
उपद्रव होते हैं ॥

स्तन्यशोधनमवमन ।

तदादौस्तन्यशुद्धयर्थं धात्रीस्नेहोपपादिता
म् । संस्वेद्यचघृताभ्यक्तावमनेनोपपाद-

येत् ॥ वचाभिप्रेतगुणदृष्ट्याद्विफलवत्सकस-
र्पणैः । कल्कैर्निम्बपटोलानां कषायैर्बाल्व
णैर्वमेत् ॥ सम्यग्वान्तां यथान्याय्यं कृतं सं-
सर्जनां पुनः ।

अर्थ—दूध के शुद्ध करने के निमित्त प्र-
थमही धात्री को स्निघ करै और फिर घृत
की मालिश कराके पसीने देकर नाँचे लि-
खी वमनकारक औषध देवै यथा वच, प्रियं-
गु, मुलहठी, इन्द्रजौ, संरसों, इनका कल्क
अथवा नीम और परवल के क्वाय में नम-
क मिलाकर गरम २ देवे । जब अच्छीतर-
ह वमन हो चुके तब पेयादि क्रमका पालन करै
विरेचनविधि ।

दोषकालबलापेक्षी स्नेहं पीत्वा विरेचयेत् ।
त्रिवृतामभयां वापित्रिफलारससंयुताम् ॥
पाययेत् मधुसंयुक्तामभयाञ्चापिकेदलाम् ।
पाययेन्मूत्रसंयुक्तं विरेकञ्चापि शास्त्रवित् ॥
अथ सम्यग्विरिक्तां च कृतं संसर्जनां ततः ।

अर्थ—फिर दोष, काल और बल का
विचार कर के स्नेहन कराके विरेचन देवै ।
निसोथ अथवा हरड के कल्कको त्रिफला
के रस के साथ देवै अथवा केवल त्रिफला
के काथ में शहत मिलाकर पान करावै,
अथवा केवल हरड को गोमूत्र के साथ देवै
जब अच्छीतरह विरेचन होजाय तब पेयादि
क्रमका पालन करावै ।

स्तन्यदोषमें पथ्य ।

ततो दोषावशेषे घनैस्नपानैरुपाचरेत् ॥
शालयः पट्टिकावास्युः श्यामाको भोजने
हिताः । प्रियङ्गवः कोरुपायवावेणुयवा

स्तथा । वंशवेत्रकडायाम्बुसस्नेहायूपसं-
स्कृताः । मुद्गान् मसूरान् यूपायैः कुलुत्थांश्च
प्रकल्पयेत् ॥ निम्बवेत्राग्रकुलकवार्ताका
मलकैः शृतान् । सव्योपसैन्धवान्यूपान्
कारयेत्स्तन्यशोधनान् ॥ शशात्कपिञ्ज-
लानिणान्संस्कृतांश्च प्रकल्पयेत् । शार्ङ्ग-

प्रासप्तपर्णत्वग्द्वगन्धाश्च तजलम् ॥

अर्थ—तदनन्तर शेष दोषोंके दूर करने
के लिये दोषनाशक अन्नपान देवै । शाली-
चांवळ, साठी चांवळ, सोंखिया इनका भो-
जन हितहै । प्रियंगु कोदों, जौ, वेणुयव, वां-
सकी कोंपल, वेतकी कोंपल इनका घी में
छोंकाहुआ शाक, मूंग, मसूर और कुलथी
का यूप देवै । नीम के पत्ते, वेत की कों-
पल, परवल, बेंगन और चांवळा इन के
साथ सिद्ध किये हुए यूगोंमें सोंठ, मिरच,
पीपल, और सेंधानमक ढाळकर सेवन कर-
ने से स्तन्य शुद्ध होता है ॥

खर्गोश, तीतर और हिरण के अच्छीतरह
सिद्ध कियेहुए मांसरस देवै ॥

शार्ङ्गपट्टा, सप्तपर्णकी छाल और असगंध
ढाळकर औटाया हुआ जल पानेको देवै ॥

स्तन्यशोधक अन्यप्रयोग ।

पापयेताथवा स्तन्यशुद्धयेकदुरोहिणीम् ।
अमृतासप्तपर्णत्वक्कषायैश्चैव सनागरम् ॥
किराततिक्तकषायैश्चैव कृपादेरितान्पिबे-
त् । त्रीनेतान् स्तन्यशुद्धये चर्यमिति सामान्य
भेषजम् ॥ कीर्तितं स्तन्यदोषाणां पृथग-
न्यं निबोधत ।

अर्थ—स्तन्य की शुद्धि के निमित्त कु-

टकी का क्वाथ भी हित है। अथवा गिलो-
य और ससपणी की छाल के क्वाथको सों-
ठ डालकर पान करावै अथवा चिरायते का
क्वाथ पान करावै। इसतरह आवे २ श्लो-
क में लिखेहुए तीन प्रयोगों मेंसे किसीको
दूध के शुद्ध करने के निमित्त देवै। ये सं-
क्षिप्त योग कहे गये हैं अब विस्तृत योगों
को कहते हैं ॥

स्तन्यदोषमैविशेष चिकित्सा ।

प्रपिबेद्विरसक्षीराद्राक्षामधुकशारिवाः ॥

**श्लक्ष्णपिष्टोपयस्याञ्चसमालोच्यमुखा-
म्युना ॥**

अर्थ—जिस स्त्री का दूध विरस हो वह
दाख, मुलहठी, शारिवा अथवा क्षीरकाकोली
को महीन पीसकर गरम गरम जल में मि-
खाकर पीवै ॥

स्तन्यशोधक लेप ।

पञ्चकोलकुलत्थैश्चपिष्टैरालेपयेत्स्तनौ ॥

शुष्कीप्रक्षालयनिर्दुह्यात्तथास्तन्येविशुद्धयति ॥

अर्थ—पंचकोल और कुलथी को पीस
कर स्तनों पर लेप करै, सूखने पर खूब
धोकर साफ कर देवै ॥

फेनिल स्तन्यका उपाय ।

फेनसंघातवत्क्षीरं यस्यास्तां पाययेत्तच्च ॥

पाठानां गरशार्द्रा मूर्वाः पिष्टा सुखाम्युना ॥

अञ्जनं तगरं दासु बिल्वमूलं म्रियं गवः ॥

स्तनयोः पूर्ववत्कार्ये लेपनं क्षीरशोधनम् ॥

अर्थ—झागदार दूध होवै तो पाठा, सोंठ,

शार्ङ्गघटा, मरोडकली इनको पीसकर सुहाते

हुए गरम जलके साथ पान करावै। अथवा

अंजन, तगर, देयदार, बिल्वमूल और प्रि-
यंगु इनको पीसकर स्तनों पर लेप करै।

**किराततित्तकं शुंठीममृताकाथयेद्विपक्वा
तत्काथं पाययेत्तथा स्तन्यदोषनिवर्णनम्
स्तनौ चालेपयेत्पिष्टैर्यवगोधूमसर्पपैः ।**

अर्थ—चिरायता, सोंठ और, गिलोयका
काथ करके स्तन्य शोधन के निमित्त धात्री
को पान करावै, तथा जौ, गेहूं और सरसों
को पीसकर स्तनों पर लेप करै।

रूक्षतानाशक प्रयोग ।

पट्विरेकाश्रितोपधैः स्तन्यशोधनैः

रूक्षक्षीरापिबेत्क्षीरं तैर्वा सिद्धं घृतं पिबेत् ।

पूर्ववज्जीवकाद्यश्च पञ्चमूलं प्रलेपनम् ॥

**स्तनयोः संविधातव्यं सुखोष्णं स्तन्यशोध-
नम् ।**

अर्थ—जो दूध रूखा पड़जाय तो सूत्र
स्थानके पट्विरेकाश्रितोपधैः अर्थात् में कही
हुई स्तन्यशोधक औषधके साथ सिद्ध किया
हुआ दूध वा घी पान करावै। तथा जी-
वकादि गणोक्त द्रव्य वा लघु पंचमूल को
पीसकर सुहातेहुए गरम जल के साथ स्तनों
पर लेप करै।

विनर्णतानाशक प्रयोग ।

यष्टीमधुकमट्ठीकापयस्यासिन्धुवारिका ॥

शीताम्युना पिबेत्कल्कं क्षीरवैवर्णनाशन-

म् । द्राक्षामधुकल्केन स्तनौ वास्याः प्रले-

पयेत् ॥ प्रक्षाल्य शारिणा चैव निर्दिह्यात्

तौ पुनः पुनः ।

अर्थ—मुलहठी, दाख, क्षीरकाकोली और

संभल इनके कल्क को सुहाते हुए गरम

जलके साथ पान करे तौ दूधकी विवर्णता दूर होती है । इसमें दाख और मुलहटी के फलक का लेप स्तनों पर करे और मूखने पर खूब धो डाले ।

दुर्गन्धिनाशक प्रयोग ।

चिपाणिकाजशृंगयौचत्रिफलारजनीवचाम् । पिवेत्क्षीराम्बुनापश्चाक्षीरदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ लिङ्गाद्वाप्यभयाचूर्णसंयुतो पमाक्षिकाप्लुतम् । क्षीरदौर्गन्धनाशा धिधात्रीपथ्याशिनीतथा ॥ शारिवोक्षीरमंजिष्टाश्लेष्पान्तकसचन्दनैः । पत्राम्बुचन्दनोक्षीरैः स्तनौचास्याः प्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में दुर्गन्ध आती हो तो मेंढासिंगी, अजशंगी, त्रिफला, हलदी, वच इनको दुग्ध और जलके साथ पीसकर पीवे अथवा हरड त्रिकुटा इनके चूर्ण को शहत में मिलाकर चाटे, इसमें खीको पय्य से रहना उचित है । तथा शारिका, खस, मजीठ, लिहोडे की जड़ और रक्तचन्दन अथवा तेजपात, नेत्रवाला, रक्तचन्दन और खस इनका लेप स्तनों पर करे ।

दूधकी स्निग्धताका उपाय ।

स्निग्धक्षीरादारुमुस्तपाठाभिपश्चासुखा म्बुना । पीत्वाससैन्यवाग्निप्रक्षीरशुद्धि मवाप्नुयात् ॥

अर्थ—जो दूधमें चिकनाई हो तौ देवदारु, मोथा, पाठा, इनको सेंधे नमकके साथ पीसकर सुहाते हुए गरम जलके साथपीवै ॥

दूधकी पिच्छिलता का उपाय
प्रपिवेत्पिच्छिलक्षीराशार्ङ्गष्टामभयांच-

चाम् । मुस्तनागरपाठाश्चपीताः स्तन्यविशोधनम् ॥ तत्कारिष्ठात्पिवेदक्षसांयानि दर्शिताः । विदारीचिल्वमधुकैः स्तनौचा-

स्याः प्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में पिच्छिलता हो तौ शार्ङ्गष्टा, हरड, वच, मोथा, सोंठ और पाठा इनको चोटकर पीवै । अर्शरोग में कहे हुए तत्कारिष्ठ भी इस रोग में हित हैं । विदारीकंद, बेल और मुलहटी का स्तनोंपर लेप करना चाहिये ।

दूधकी गुरुताका उपाय ।

त्रायमाणामृतानिम्बपटोलत्रिफलाशृतम् गुरुक्षीरापिवेदेतत्स्तन्यदोषविशुद्धये ॥ पिवेद्वापिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् । वलानागरशार्ङ्गष्टामूर्वाभिर्लेपयेत्स्तनौ । पृष्णिपर्णीपयस्याभ्यांस्तनौचास्याः

प्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में भारापन हो तौ त्राय-माणा, गिलोय, नीमकी छाल, परवल और त्रिफला का काथ पीवै । अथवा पीपलामूल चव्य, चीता, सोंठका काथ पानकरे अथवा खैरेटी, सोंठ, शार्ङ्गष्टा और मूर्वा अथवा पृष्णि पर्णी और क्षीरकाकोली का लेप करे ॥

अष्टावेतेक्षीरदोषाहेतुलक्षणभेदजैः ।

निर्दिष्टाः क्षीरदोषोत्थास्तथोक्ताः केचि-
दामयाः ॥

अर्थ—ये आठ प्रकारके क्षीर दोष हेतु, लक्षण और चिकित्सा के साथ वर्णन किये गये हैं, यथा दूषित दूध के पीने से जो बालकों के उपद्रव होते हैं, उनका वर्णन भी किशानया है ॥

बालकों की मात्रा का विचार ।
 दोषदूष्यमलाश्चैवमहतां व्याधयश्च ये ।
 तएव सर्वे बालानां मात्रास्त्वल्पतरामता ।
 निवृत्तिर्वमनादीनां मृदुतां परतंत्रताम् ॥
 वाक्चेष्टयोरसामर्थ्यवीक्ष्य बालेषु शास्त्र-
 विद् । भेषजं चाल्पमात्रन्तु यथा व्याधिप्र-
 योजयेत् ॥ मधुराणिकपायाणि क्षीरवन्ति
 मृदूनि च । प्रयोजयेद्भिषग्वाले मतिमानप्र-
 मादतः ॥

अर्थ—दोष, दूष्य, मल और बड़े मनु-
 ष्यों के होनेवाली सम्पूर्ण व्याधियां बालकों
 के भी होती हैं परन्तु बालकको औषधकी
 मात्रा बहुत कम दी जाती है, क्योंकि ये
 कोमल और परतंत्र होते हैं । और बोल-
 कर अपने मनका हाल प्रगट नहीं कर सकते
 हैं और न किसी प्रकार की चेष्टा कर सकते
 हैं इससे बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि
 व्याधि के अनुसार अल्पमात्रा का प्रयोग
 करें । चिकित्सक को उचित है कि बालकों
 को मधुर, कपाय और मृदु औषध दूध के
 साथ में अत्यन्त सावधानी से देवें ।

शिशुपक्ष में गृहितकर्म ॥

अत्यर्थस्निग्धरुक्षोष्णमम्लं कटुविपाकि च
 गुरुचौषधपानान्नमेतद्वालेषु गृहितम् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्निग्ध, अत्यन्त रुक्ष, उष्ण,
 अम्ल, कटुविपाकी और भारी औषध
 तथा अन्नपान बालकों को देना ठीक
 नहीं है ।

भवति चात्र ।

समासात् सर्वरोगाणामेतद्वालेषु भेषजम् ।

निर्दिष्टं शास्त्रबुद्ध्या तत्प्रविभज्य प्रयोजयेत्
 सलिङ्गं व्यापदो योनेः सनिदानचिकित्सिता
 उक्ता विस्तरतः भक्ष्यकृणुनिना तत्त्वदर्शना ॥

अर्थ—इस तरह बालकों के रोगों की
 सम्पूर्ण प्रकार की चिकित्सा वर्णन की गई
 है । इनका शास्त्र के अनुकूल विचार कर
 के प्रयोग करें ॥

इस तरह भगवान् पुनर्वसुने योनिरोगों
 के लक्षण निदान और चिकित्सा का सवि-
 स्तर वर्णन किया है ।

इति सर्वविकाराणामुक्तमेतच्चिकित्सितम्
 स्थानमेतद्धितन्त्रस्य रहस्यं सारमुत्तमम् ॥

अर्थ—इस तरह सम्पूर्ण विकारों की चि-
 कित्सा वर्णन की गई है, यह चिकित्सितस्थान
 इस ग्रन्थ का सारभाग और परम रहस्य
 स्वरूप है ॥

अस्मिन् सप्तदशाध्यायाः कल्पाः सिद्धय ए-
 व च । नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्य तन्त्रे चरक-
 संस्कृते ॥ तानेतान्कापिलबलिः शेषान्
 दृढबलोऽकरोत् । तन्त्रस्यास्य महार्थस्य
 पूरणार्थं यथा तथम् ॥

अर्थ—चरकप्रतिः संस्कृत अग्निवेश के
 रचे हुए ग्रन्थ में शेष सत्रह अध्याय और
 कल्पस्थान तथा सिद्धिस्थान इन दोनों
 के बारह बारह अध्याय नहीं हैं । इन शेषों
 को दृढबल ने इकट्ठे कर के इस ग्रन्थकी
 पूर्ति के लिये लगा दिये हैं ॥

रोगायेऽप्यत्र नो हि प्यायदुत्त्वान्नामरूपतः
 तेषामप्येतदेव स्यादोपादीन्वीक्ष्य भेषजम्
 दोषदूष्यनिदानानां विपरीतं हितं ध्रुवम् ॥

उक्तानुक्तानुगदान्सर्वान्सम्यग्युक्तानि
यच्छति ॥

अर्थ—रोगों के नाम और रूप असंख्य हैं; इससे जिन रोगोंका यहाँ वर्णन नहीं कियागया है उनके भी दोषादिकों को देख कर तदनुसार उनकी चिकित्सा करनी चाहिये सम्पूर्ण प्रकार के उक्त और अनुक्त रोगों में दोष दृश्य, और निदान के विपरीत औषध करना हित है ॥

पथ्यापथ्यकालक्षण ॥

देशकालप्रमाणानां सात्त्व्यासात्त्व्यस्य चैव
हि ॥ सम्यग्योगोऽन्यथान्येषां पथ्यमपथ्य-
न्यथा भवेत् ॥

अर्थ—देश, काल, प्रमाण, सात्त्व्य और अ-
सात्त्व्य का विचार करके जो अन्नपान का
सेवन किया जाता है वह पथ्य है । इस से
विपरीत अपथ्य होता है ।

आस्यादामाशयस्थानाहिरोगान्नस्तः शिरो
गतान् ॥ गुदात्पक्वाशयस्थांश्च हन्त्याशु
तरमौषधम् ॥

अर्थ—मुख से आमाशय तक, नासिका
से मस्तक तक और गुदा से पक्वाशय तक
के रोग औषध के आभ्यन्तर प्रयोगों से
शीघ्र दूर होजाते हैं ।

प्रलेपादिजन्यरोग ।

शरीरावयवोत्थेषु विसर्पपिडकादिषु ॥

यथादेशं प्रदेहादिशमनं स्याद्विशेषतः ॥

अर्थ—शरीर के बाहर के अंगों में जो
विसर्प और पिडकादिक उत्पन्न होते हैं उन
पर उन के उत्पन्न होने के स्थान के अनु-

सार छेप आदिका प्रयोग करने से वे शीघ्र
अच्छे होजाते हैं ।

चिकित्सा विचार ।

दिनातुरौषधव्याधिजीर्णलिंगत्वपेक्षणम् ॥

अर्थ—दिन, रोगी, औषध, व्याधि जीर्ण
लक्षण और ऋतु इन सबका विचार कर के
चिकित्सा करना उचित है ।

दिन विचार ।

कालं विद्यादिनां पेक्षः पूर्वाहणे व मनं यथा ॥

अर्थ—काल का विचार दिनोपेक्ष है,
जैसे पूर्वाह्न में बमनकारक औषधों का प्र-
योग करना चाहिये ॥

रोगी विचार ।

रोग्यपेक्षो यथा प्रातर्नरन्नो बलवान्पिचेत्
भेषजं लघुपथ्यन्नैर्युक्तमद्यात्तु दुर्बलः ॥

अर्थ—बलवान् रोगी प्रातःकाल बिना
कुछ खाये ही औषधों का सेवन करे और
दुर्बल मनुष्य थोड़ा पथ्य अन्न सेवन कर के
औषध का सेवन करे ।

औषध विचार ॥

भेषज्यकालाद्भुक्त्वादौ मध्ये पथ्यान्मुहुर्मुहुः
सामुद्रमुक्तसंयुक्तग्रासग्रासान्तरदेश ॥

अर्थ—औषध सेवन के दस समय हैं,
यथा—भोजन के पहिले, भोजन के बीच में
भोजन के पीछे, बार बार थोड़ी देर ठहर
के, सामुद्र, भुक्तसंयुक्त [आहार के साथ
मिलाकर] ग्रासग्रास में, ग्रासान्तर में बिना
कुछ खाये वा पथ्य में मिलाकर ।

पंचवायु में औषध सेवन ।

अपाने विद्युने पूर्वसमाने पथ्यभोजनम् ॥

व्यानेतुप्रातराशान्ते उदाने भोजनोत्तरम् ।
वायौ प्राणप्रदुष्टे त्वासे ग्रासान्तरि प्यते ॥
श्वासकामपिपासासुत्वं वधार्य मुहुर्मुहुः ॥
सामुद्रहिकेन भुक्तं लघुना न्नेन संयुतम् ॥
सम्भोज्यं त्वौषधं भोज्यैर्विचित्रैररुचौ मतम्

अर्थ—अपान वायु के दूषित होने पर भोजन से पहिले, समान वायु के दूषित होने पर भोजन के बीच में, व्यान वायु के दूषित होने पर प्रातःकाल, उदानवायु के दूषित होने पर भोजन के पीछे और प्राण वायु के दूषित होने पर प्रासप्रास में अथवा प्रासान्तर में औषध सेवन करे। श्वास खांसा और पिपासा रोग में औषध को बार बार मुख में धारण करे, हिकी रोग में हल के भोजन के साथ सामुद्र औषध देवे। तथा अरुचि में अनेक प्रकार के भोजनों के साथ औषध मिलाकर देवे ॥

व्याधि विचार ।

ज्वरे पेयाः कपायाश्च क्षीरसर्पिर्विरेचनम् ।
षडहेपडे हेदयं कालं वीक्ष्याम यस्य तु ॥

अर्थ—ज्वर में प्रति छठे दिन पेया, कपाय दध, सर्पि (घी) और विरेचन देवे। जैसे प्रथम दिन लघन करा के सातवें दिन तक पेया, आठवें दिन से चौदहवें दिन तक दूध आदिका प्रयोग करे, इसी तरह व्याधि के अनुसार चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिये

जर्ण लक्षण ।

भुद्गेगमोक्षौ लघुता विशुद्धिर्जीर्णलक्षणम् ।
तदा भेदजमादेयस्याजिदोषवदन्यथा ॥

अर्थ—भूख लगना, मलमूत्र का स्वच्छ

होना, शरीर में हलकापन, डकार, अधो वायु आदि का शुद्ध होना ये जीर्ण के लक्षण है। ऐसे समय में औषध देना चाहिये, इससे अन्यथा दोषोत्पादक होता है ॥

ऋतु विचार ।

चयादयश्च दोषाणां वर्ज्यं सेव्यञ्च तत्र यत् ।
ऋतावपेक्ष्यं यत्कर्म पूर्वैः सर्वमुदाहृतम् ।

अर्थ—प्रथम सूत्रस्थान में जहां ऋतुचर्या वर्णन की गई है वहां दोषों का संचय और प्रकोप तथा उनकी शांति का वर्णन हो चुका है। तथा सेवनीय और असेवनीय कर्मों का वर्णन भी हो चुका है।

उपक्रमाणां करणं प्रतिपेक्षे च कारणम् ।
व्याख्यातमवलानासविकल्पानामवेक्षणं
मुहुर्मुहुश्च रोगाणामवस्थामातुरस्य च ।
अवेक्ष्यमाणस्तु भिषक् चिकित्सायां नुम-
हति ॥

अर्थ—सुचिकित्स्य व्याधियों का कारण वर्जनीय व्याधियों का कारण, और दुर्बल रोगियों के लिये औषधों का विकल्प ये सब बातें भी प्रथम वर्णन कर दी गई हैं। जो वैद्य रोग और रोगी की अवस्था को देखकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त होता है, वह मोह को प्राप्त नहीं होता है ॥

इत्येव षड्विधं कालमनपेक्ष्य भिषग्विजितम् ।
प्रयुक्तमहिताय स्याच्छस्यस्य कालवर्षवत् ।

अर्थ—इस तरह रोगों के विषय में इन छः कालों पर विचार किये जो औषध प्रयोग करता है उसकी औषध खेती में सुस्तमयकी वर्षाकी तरह हानिकारक होती है

कालविचार ।

व्याधीनामृत्वहोरात्रयसांभोजनस्यतु ।
विशेषोभिद्यतेयस्तुकालापेक्षःसमुच्यते ॥
वसन्तेश्लेष्मजारोगाःशरत्कालेतुपित्तजाः
वर्षासुवातजाश्चैवप्रायःप्रादुर्भवन्तिहि ॥
निशादौदिवसान्तेचवयोऽन्तेवातजागदाः
प्रायः क्षपान्तेकफजास्तयोर्मध्येतुपित्त-
जाः ॥ जीर्णान्तेवातजारोगाजीर्यमा-
णेतुपित्तजाः ॥ श्लेष्मजाभुक्तमात्रेतुल-
भन्तेप्रायशोवलम् ॥

अर्थ—सब व्याधियों ऋतु, दिन, रात,
अवस्था और भोजन कालकी अपेक्षा भिन्न
भिन्न दोषों से उत्पन्न होती है। यथा वसन्त
ऋतु में कफजरोग, शरत्काल में पित्तजरोग
और वर्षा में प्रायः वातजरोग होते हैं ।

रात्रिके प्रथम प्रहर में, दिनके पिछले प्रहर
में और सुहापमें वातजरोग होते हैं । रात्रि
के अन्तमें और प्रातः काल कफजरोग होते
हैं, तथा पित्तज रोग दुपहर और आधिरात
के समय होते हैं । भोजन पचने पर वात-
जरोग, पचनकाल में पित्तजरोग तथा भो-
जन करते ही कफजरोगों की वृद्धिहोती है।

औषधकी मात्राका प्रमाण ।

नाल्पहन्त्यौषधं व्याधियथापोऽल्पमहा-
नलम् ॥ दोषवद्वातिमात्रं स्याच्छस्यस्या-
त्युदकं यथा । संप्रभार्यवलंतस्मादामय-
स्यौषधस्यच । वैवातिबहुल्यात्यल्पं भैष-
ज्यमवधारयेत् ॥

अर्थ—अल्पमात्रा रोग को ऐसे दूर नहीं
कर सकती है जैसे थोड़ासा जल बड़ी अग्नि

को नहीं बुझा संकता है और दार्ढ्यमात्रा
दोषोंको उद्दीर्ण करदेती है जैसे बहुत जल
के बरसने से खेती नष्ट होजाती है । इस
लिये औषध और रोगों के बलका विचार
करके न बहुत थोड़ी और न बहुत अधिक
औषध देनी चाहिये ।

औचित्याद्यस्ययत्सात्म्यदेशस्यपुरुषस्य
च ॥ अपथ्यमपिनैकान्तात्तत्त्वाज्यलभ-
तेसुखम् ॥

अर्थ—जिस देश में औषध प्रचलित
है, वा जिस देशके मनुष्यों को जो वस्तु
सात्म्य है ॥ और यदि वह शास्त्रसे वि-
रुद्ध भी है, उसको एक दमसे छोड़ देने
से सुख नहीं मिलता है किन्तु स्वास्थ्य वि-
गड़ जाता है ।

देशानुकूलसात्म्यद्रव्य ।

पाहीकाःपल्लवाश्चीनाःसूलीकायवनाः
शकाः । मांसगोधूममाध्वीकशस्त्रवैश्वा-
नरोचिताः ॥ क्षीरसात्म्यास्तथाप्राच्या
मत्स्यसात्म्याश्चसैन्धवाः । अश्मकाश्च
न्तिकानां तु तैलाम्लं सात्म्यमुच्यते ॥ शा-
कमूलफलं सात्म्यं विद्यान्मलयवासिनाम्
सात्म्यं दाक्षिणतः पेयामन्धश्चौत्तरपश्चि-
मे ॥ मध्यदेशे भवेत्सात्म्यं पद्मगोधूमगोर-
साः । तेषां तत्सात्म्ययुक्तानि भैषज्यान्वय-
चारयेत् । सात्त्विकं वा शुषकं च तेनातिदोषं
च बद्धपि ॥ योगैरेतच्चिकित्सन्नुद्देशाय
ज्ञोऽपराध्यति ॥

अर्थ—वाल्हीक [बल्लव देशवासी],
पल्लव, चीनी, सूलीक, यवन, शक (तातारी)

इन लोगोंको मांस, गेहूँ, मद्य, शास्त्रकर्म और अग्निकर्म सात्म्य हैं । पूर्वदेशवासियों को दूध और सिंधियों को मत्स्य सात्म्य है (यहां पाठ में गडबड़ मादूम होती है हमारी समझ में पूर्वदेश वासियों को मछली और सिंधियों को दूध सात्म्य है) पहाड़ी तथा अवान्तिका देशियों को तेल और ख-टाई सात्म्य है ॥ मलयवासियों को शाक फल और मूल सात्म्य है ॥ दक्षिणीयों को पेया और उत्तर पश्चिम के लोगोंकोमन्थ सात्म्य है । मध्यदेश वासियोंको जौ, गेहूँ, और दुग्धादि सात्म्य हैं ॥ इन भिन्न भिन्न देशवासियों के भिन्न २ सात्म्योंको देखकर चिकित्सा करे । सात्म्यद्रव्य शीघ्रही बल को बढ़ाते हैं और दैवात् सात्म्य द्रव्यका मात्रा से अधिक सेवन करलेना भी विशेष हानिकारक नहीं है । बिना देशके विचार के जो शास्त्रलिखित औषधों से चिकित्सा करता है वह दोषों का अपराधी है ।

वयोवलशरीरादिभेदादिवह्वोमताः ॥
तथान्तःसन्धिमार्गाणां दोषाणां गूढचारिणाम् !

अर्थ—रोगियों के वय, बल और शरीर के भेद नानाप्रकार के हैं, इसी तरह भीतर संधियों में, स्रोतों में तथा गुप्त रहने वाले दोषों में अनेक प्रकार के रोग हैं ।

शास्त्रविरुद्धक्रियाकानिर्देश ।

भवेत्कदाचित्कार्यापिविरुद्धाभिमताक्रिया ॥ अन्तर्गतपित्तपातुंस्वेदसेकोपनाह नैः । नयन्तोवहिरूपैर्हितोष्णशम-

यन्तितम् ॥ चाहेदचशीतःसकार्थरूप्मा
न्तर्यातिपीडितः । सोऽन्तर्गूढकफं हन्ति
शीतः शीतं तथा जयेत् । श्लक्ष्णः पिष्टघ्नो
लेपश्चन्दनस्यापि दाहकृत् ॥ त्वग्गतस्यो
ष्मणो रोधाच्छीतकृच्चान्यथागुरुः ॥
छर्दिघ्नीमक्षिकाविष्टामक्षिकैव तु वामयेत् ॥
द्रव्ये पुरिस्विन्नदग्धे पुष्पैर्वन्तेष्वेव विक्रिया ।
तस्मादोषौषधादीनि परीक्ष्य दशतत्त्वतः ।
कुर्याच्चिकित्सितं प्राज्ञो न योगैरेव कवलैः ॥

अर्थ—कभी २ शाराविरुद्ध क्रिया भी हित होती है । जैसे जब पित्तकी उष्मा देह के भीतर बढजाती है तब उष्णसेक, स्वेद और उपनाह द्वारा भीतरकी ऊष्मा को बाहर लाकर शान्त करते हैं, यहां ऊष्मासे उष्मा दूर होती है । यदि यहां शीतल सेक, स्वेद और उपनाह करें तो उष्मा शरीरके भीतर घुसकर पीडा को और भी बढादेवै । दूसरी बात यह है कि व्रण के भीतर जब कफ पीव का रूप धारण कर के गुप्त रहता है तब ऊपर शीतल लेप करने से ऊष्मा भीतरको प्रवेश कर के उसे सुखादेती है यहां शीत द्वारा शीतकी शान्ति है । यदि शरीरपर चन्दन को बारीक पीसकर गाढा गाढा लेप करदे तो उस से दाह बढता है, क्योंकि वह त्वचाकी ऊष्मा को रोकलेता है । और अगर यद्यपि उष्ण है तो भी इसे बारीक पीसकर पतला लेप करने से दाह की शान्ति होजाती है । जैसे मक्खी का विष्टा वमन को रोकता है परन्तु मक्षिका के प्रयोग करने से वमन होताहै ।

इसतरह सम्पूर्णद्रव्य स्थिर और दग्ध होनेपर अन्यगुणों का अवलम्बन करलेते हैं । अत एव उक्त दस रीति से औषवादिककी परीक्षा करके चिकित्सा करै, केवल शास्त्रालिखितप्रयोगों परही भरोसा करना ठीक नहीं है (यहां चरकने 'विषयविप्रमोषधं, इस चिकित्सा की संक्षिप्त सूचनादी है । डाक्ट

र हैनीमान् ने इस विद्या को बहुत उन्नति दी है, यह चिकित्सा होमियोपैथी के नाम से सब भूमंडल पर अपना प्रभाव घटाती जाती है ।

निवृत्तरोगमें औषधसेवन ।

निवृत्तोऽपि पुनर्व्याधिः स्वल्पेनायाति हेतुना । क्षीणमार्गोऽकृते देहशेषः सूक्ष्मश्चानलः तस्मात्तमनुवर्त्तनीयात्प्रयोगेणानपायिना

अर्थ—निवृत्तहुई व्याधि थोड़ेही कारण से फिर उदय होआती है, दोष क्षीणहोने और अपने मार्गपर चलने पर भी अग्नि के पतंगकी तरह सूक्ष्मरूप में शेष रहजाते हैं । अतएव रोग के निवृत्त होने पर भी दोषों की शमन करने वाली औषधोंका कुछ कालतक प्रयोग करता रहै ॥

पथ्यान्तरनिधि ।

सिद्ध्यर्थं प्राकृत्युक्तस्य सिद्धस्याप्यौषधस्य तु । काठिन्याद्गन्धभावाद्वा दोषोन्तःकुपितो महान् ॥ पथ्यैर्मृदुलपतान्तीतो मृदुदोषकरो भवेत् ॥ पथ्यमप्यश्रुततस्माद्योग्याभिरुपजायते ॥ शात्वैर्वृद्धिमभ्यासमथवान्यस्य कारयेत् ।

अर्थ—तिद्धि के लिये जो प्रथम औषध

का प्रयोग कियागया है उस के सिद्धहोने पर भी उसकी कठिनता वा स्वल्पता के कारण अन्तःकुपित महान् दोष पथ्यसेवन द्वारा मृदु और अल्प होकर मृदु दोषका रक होता है । पथ्य सेवन करने पर भी जो व्याधि की वृद्धि हो तो अन्यपथ्य का सेवन करावै ॥

सातत्यात्स्याद्गन्धभावाद्वा पथ्यद्वैत्वमागतम् कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत् पुनः मनसोऽर्थानुकूल्यादितुष्टिर्जराचिर्वलम् सुखोपभोगता च स्याद्व्याधेश्चातो वलक्षयः

अर्थ—एकही वस्तु के निरन्तर सेवन करने से वा स्वादु के अभाव से जो पथ्य दोषकारक होजाय तो विविधि प्रकारकी कल्पनाओं से पथ्यका सेवन करावै जिससे रोगी को प्रिय लगे । विषयों में मनकी अनुकूलताही से तुष्टि, ऊर्जा रुचि, बल, और सुखोपभोगता की वृद्धि होती है तथा व्याधि का वलक्षीण होता है ॥

अरुचिर्मेपथ्याविधि ।

लौल्यादौषध्याद्वा धौर्वैधर्म्याच्चापि यारुचिः । तामुपथ्योपचारः स्याद्योगेनाद्यविकल्पयेत् ॥

अर्थ—जिह्वा की लालता से, वातादिदोषों के क्षयहोने से व्याधिके विधर्म से जो अरुचि होती है उस में पथ्य वस्तुका सेवन करै । तथा उस पथ्य को योगान्तर से संस्तुत करलेवै ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकाः दिशतिव्यापदोयोने निदानं

लिङ्गमेव च । चिकित्साचापिनिर्दिष्टाशि
ष्याणांहितकाम्यया ॥ शुक्रदोषास्तथा
चाष्टौनिदानाकृतिसाधनैः । क्लृप्यान्युक्ता
निचत्वारिचत्वारःप्रदरास्तथा ॥ तेषां
निदानलिङ्गश्च भैषज्यञ्चैवकीर्तितम् ।
क्षीरदोषास्तथाचाष्टौहेतुलिङ्गाभिप्राजितैः ॥
तेषांचिकित्सानिर्दिष्टासमासव्यासतोम
या ॥ रेतसोरजसश्चैवकीर्तितंशुद्धिलक्ष-
णम् । उक्तानुक्तचिकित्साचसम्यग्यो
गोयथैवहि ॥ देशादिगुणशंसाचकालः
पहविधएवच । देशदेशेचयत्सात्स्ययथा
वैद्योऽपराध्यति ॥ चिकित्साचापिनिर्दि-
ष्टादोषाणांगूढचारिणाम् ।

अर्थ—इस योनिव्यापचिकित्सित ना-
मक अध्याय में बीस प्रकार के योनिरोग,
उन के निदान, लक्षण और चिकित्सा शि-
ष्यों के हित की इच्छा से वर्णन की हैं ।
आठ प्रकार के शुक्रदोष, उन के निदान,
लक्षण और चिकित्सा, चार प्रकार के
क्रीमरोग, चार प्रकार के प्रदररोग तथा इन
के निदान, लक्षण और चिकित्सा वर्णन की
गई हैं । आठ प्रकार के स्तन्यदोष, इनके
निदान, लक्षण, औषध और चिकित्सा
संक्षेप से और विस्तार से वर्णन की गई हैं ।

धीर्य और रज की शुद्धि के लक्षण भी
वर्णन किये गये हैं । इसीतरह उक्त अनुक्त
रोगोंकी चिकित्सा, सम्यक्योग, देशविशेष
के गुण, छः प्रकार का काल, भिन्न भिन्न
देशवासियों के सात्स्यद्रव्य, वैद्य के अप-
राधी होने के कारण तथा गूढचारी रोगों
की चिकित्सा भी वर्णन की गई है ।

अध्यायका उपसंहार ।

योहि सम्यक् न जानाति दोषं दोषार्थमेव च ।
न कुर्यात्सत्क्रियांचित्रमचक्षुरिति चित्रकृत् ॥

अर्थ—जो वैद्य अच्छी रीतिसे दोष
और दोषोंके विषयोंको (पाठान्तर "शास्त्र-
शास्त्रार्थमेवच) अथवा शास्त्र या शास्त्र
के विषयों को नहीं जानता है, वह अच्छी
रीति से चिकित्सा करने में ऐसा असमर्थ
होता है, जैसा नेत्रहीन चित्रकार अच्छे
चित्रको नहीं खींचसक्ता है ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश त्रिरचि-
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-
त्सितस्थाने योनिव्यापचिकित्सितं ना-

मत्रिशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इति चिकित्सितस्थानं पठं समाप्तम् ॥

॥ ओ३म् ॥

॥ श्रीहरिस्मन्दे ॥

॥ श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः ॥

॥ अथ कल्पस्थानम् ॥

— — ○ * ○ — —

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथातोमदनकल्पंव्याख्यास्याम

इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम मदनकल्पनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

अथखलुवमनविरेचनार्थमदनफलादितृ-
ष्टतादीनांवमनविरेचनद्रव्याणांसुखोपभो-
ज्यतमैःसहान्यैर्द्रव्यैर्विविधैःप्रकल्पनार्थं
तद्योगानांचक्रियाविधेःसुखोपायस्यस-
म्पगुणकल्पनार्थंकल्पस्थानमुपदेक्ष्यामोऽ-
ग्निवेश ! ॥

अर्थ—हे अग्निवेश ! वमन विरेचन कराने वाले जो मेनफल और निसोथ से आदि ले-
कर द्रव्य हैं उनका दिग्दर्शनमात्र वर्णन सू-
त्रस्थान में हो चुका है परन्तु अब इस क-
ल्पस्थान में उन बातों का वर्णन किया
जायगा कि जिन सुखोपसेवनीय द्रव्यों के
इन में मिलाने से अनेक भेद होजाते हैं,
और अनेक प्रकार के योग और सुखकारी
चिकित्साविधि यहां वर्णन की जायगी ॥

वमनादिकी निरुक्ति ।

तत्रदोषहरणमूर्ध्वभागंवमनसंज्ञमधोभागं

विरेचनसंज्ञमुभयंवाशरीरमलरेचनाद्विरे-
चनशब्दंलभते ॥

अर्थ—जो दोष मुखकी ओर से निकाले
जाते हैं उस क्रिया का नाम वमन है ।
अधोमार्ग द्वारा दोषों के निकालने का नाम
विरेचन है, अथवा शरीरस्थ मल के रेचन
अथवा निकालने के कारण वमन विरेचन
दोनों को विरेचन कहते हैं ।

तत्रोष्णतीक्ष्णसूक्ष्मव्यवायिविकाशीन्यौ
पधानिस्ववीर्येणहृदयमुपेत्यधमनीरजुस-
त्यस्थूलाणुस्रोतोभ्यःकेवलंशरीरगतंदो-
पसंघातमानेयत्वाद्विष्यन्दर्याततैर्क्षण्यादि
च्छिन्दन्ति । सविच्छन्नःपरिप्लवःस्नेहभा-
वितेकायेस्नेहाक्तभाजनस्थमिवधौद्रमस-
जदनुप्रवणभावादामाशयमगत्योदानप्र-
णुन्नोग्निवाय्वात्मकत्वाद्ध्वभागप्रभावा-
दौपधस्योर्द्धमुत्तिष्ठत्यते ॥ सलिलपृथिव्या-
त्मकत्वादधोभाग प्रभावाच्चौपधस्याधः-
प्रवर्तते ॥ उभयतश्चोभयगुणत्वादिति
लक्षणोद्देशः ॥

अर्थ—इनमें से उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायि
और विकाशी औपध अपने वीर्य के प्रभाव
से सेवन करतेही हृदय में पहुंचकर वहां से
धमनियों का अनुसरण करके आग्नेयत्व
होने के कारण स्थूल और सूक्ष्म स्रोतों से
शरीरगत केवल दोष समूहको विष्यन्दिता
अर्थात् पतला कर देती हैं और तीक्ष्णताके
कारण उन को अपने अपने स्थानों से अ-
लग कर देती है यदि स्नेहन कर्म करने
के पश्चात् वमन विरेचन का प्रयोग किया

जाय तत्र वह औषध शरीरस्थ दोषों को विच्छिन्न और द्रवीभूत करनेके पश्चात् शरीरमें इस तरह नहीं लगती है, जैसे चिकने पात्र में शहत नहीं चिपक सकता है । फिर अनुप्रवण भावसे आमाशय में पहुँचकर वमनकारक द्रव्यों के अग्निवाय्वात्मक तथा ऊर्ध्वगामी प्रभावयुक्त होने के कारण उदानवायु से प्रेरित होकर आमाशयस्थ दोषों को ऊपरके मार्गसे वमन द्वारा निकालती है । इसीतरहसे विरेचनिक द्रव्य जल और पृथिव्यात्मक होने के कारण अधोगामी प्रभाव रखने के कारण दोषोंको अधोमार्ग से विरेचन द्वारा निकालते हैं । इसी तरहसे उभयगुण विशिष्ट वमन विरेचन द्रव्यों के संयोगसे वमन विरेचनदोनों होते हैं । तत्रफलं जीमूतकेश्वाकुधामार्गवकुटजकृत वेधनानां, श्यामाग्निष्टुतुरंगुलतिल्वक महावृक्षसप्तलाशंखिनीदन्तीद्रव्यन्तीनाञ्च नानाविधदेशकालसम्भवास्वादुरसवीर्य विपाकप्रभावग्रहणाद्देहदोषप्रकृतिवयोवलाग्निभुक्तिसात्म्यरोगावस्थादीनां नात्मकत्वाच्चविधित्रगन्धवर्णरसस्पर्शानामुपयोगसुखार्थमसंख्येयसंयोगानामपिसतांद्रव्याणां विवल्पमार्गदर्शनार्थपह विरेचनयोगशतानिव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—इन में से मैनफल, जीमूत, कटु-तुर्ही, धामार्गव, कुटज और कृतवेधन, तथा श्यामनिस्तोष, अमलतास, लोष, सेहूँड, सातला, शंखिनी, दन्ती और द्रव्यंती । ये औषध अनेक तरह के देशों में उत्पन्न

होती हैं और अनेक, प्रकार के स्वादु, रस, वीर्य, विपाक और प्रभावको धारण करती हैं तथा मनुष्यों के देह, दोष, प्रकृति, वय, बल, अग्नि, भोजन, सात्म्य रोग और अवस्था अनेक प्रकार की है, इन सब के मुख पूर्वक उपयोग में लाने के निमित्त छः सौ प्रकार के भिन्न भिन्न विरेचनों की कल्पना का वर्णन करेंगे, यद्यपि इनकेगन्ध, वर्ण, रस और स्पर्श तथा संयोग वे गिनती हैं तानितुद्रव्याणिदेशकालगुणभाजनसम्पदीर्यवलाधानात्क्रियासमर्थतमानिभवन्ति अर्थ—ये संपूर्ण द्रव्य देश, काल, गुण और पात्रकी उत्कर्षिता और वीर्य बल के यथावत् होने से चिकित्सा में अपना प्रभाव दिखाने को समर्थ होते हैं ।

देशभेद ।

त्रिविधिः खलु देशो जांगलोऽनूपः साधारणश्चेत्ते ।

अर्थ—देश तीन प्रकारके होते हैं, यथा जांगल, आनूप और साधारण ।

जांगलदेशकेलक्षण ।

तत्र जांगलः पर्याकाशभूयिष्ठः । तरुभरपिकदरखादि राशनायवर्णध्वतिनिशशल्लकीसालसोमवल्कवदरीतिन्दुकाश्वत्थवटागलकीवनगहनः । अनेकशमीककुभशिशपाप्रायः स्थिरशुष्कपवनबलविधूयमानमृत्पुत्तरुणवितपः । प्रततमृगतृष्णाकूपोगृहस्तनुखरपरुषिकताशर्कराबहुलः । लावतिचिरचकोरानुप्रचितभूमिभागोवातपित्तबहुलस्थिरकठिनमनुष्पमायोजांगलोक्षेयः ।

अर्थ—इन में से जांगलदेश के चारों ओर भूमि विस्तृत और स्वच्छ आकाश से युक्त होता है। इस में कदर, खैर, अशन, पीतसाल, धव, तिनिश शल्लकी, साल, सोमवल्क बेर, तेंदू, पीपल, बड, आंवला इन के गहनवन होते हैं। जगह जगह शमी, अर्जुन और शिंशपा वृक्षों की बहुतायत होती है। वृक्षों की शाखा बड़ी दृढ़ होती हैं और पवन के बल से हिलती रहती हैं, सूर्यकी तांक्ष्ण किरणोंसे शुष्कस्थल में जल दिखाई देता है, कूप बड़े गहरे गहरे होते हैं, पतली, खरदरी और कर्करी वाळ की अधिकता होती है, लवा ततितर, चकोर आदि पक्षी बहुत होते हैं, यहां वातपित्त की अधिकता होती है और यहां के मनुष्य दृढ़ और कठोर होते हैं। ये जांगल देश के लक्षण होते हैं।

आनूपदेशकेलक्षण।

अथानूपोद्दिन्तालतमालनारिकेलकदली घनगहनः। सरित्समुद्रपर्यन्तप्रायः॥ शिशिरपवनबहुलोवज्जुजवानारोपशोभिततीराभिःसरिद्रिरुपगतभूमिभागःअक्षि तिधरोनकुञ्जोपशोभितोमन्दपवनानुवीजितः। क्षितिरुहगहनोऽनेकवनराजीपुष्पितवनगहनोभूमिभागः॥ स्निग्धतरुमत्तानोपगूढहंसचक्रवाकबलाकानन्दीमुख पुण्डरीककादम्बमद्गुभृङ्गराजशतपत्रमत्त कोकिलमुदिततरुणचिदपःसुकुमारपुरुषः पवनकफमायेक्षेयः॥

अर्थ—आनूपदेश में हिन्ताल, तमाल

नारियल और केले के गहनवन होते हैं। इसके चारों ओर समुद्र और बीच २ में बहुतसी नदियां होती हैं, शीतल पवन अधिक चलती है, बंजल और वानीर के वनों और नदियों से उपशोभित होते हैं। इस में पर्वत और कुंज नहीं होती है परंतु मन्द मन्द पवन से चलायमान वृक्षों के समूह बहुत होते हैं। अनेक प्रकार के फलों से यह देश सुशोभित होता है, तरह तरहकी सचिककण लताओं से यह भूमि आकीर्ण होती है, यहां चकवे, बलाका, नन्दीमुख, पुंडरीक, कादम्ब, मद्गु, भृङ्गराज और शतपत्र पक्षियों के समूह वृक्षों की शाखाओं में बैठे हुए आनन्द से कुहकते हैं, मतवाली कोयल नवीन वृक्षों की शाखाओं में बैठकर मुदितमन से अपने राग आलापती है। यहां के मनुष्यों के देह कोमल होते हैं। और उनकी प्रकृति वातकफप्राय होती है॥

साधारणदेशके लक्षण।

अनयोरेवद्वयोर्देशयोर्धीरुद्धनस्पतिवानस्पत्यशकुनिमृगगणयुतःस्थिरसुकुमारवर्णसंघननोपपन्नसाधारणगुणमुक्तपुरुषःसाधारणोक्षेयः॥

अर्थ—जिस भूमि में जांगल और आनूप दोनों देशों के लक्षण मिलते हैं उसे साधारण देश कहते हैं। इस देश में दोनों देशों के लता, वनस्पति, वानस्पत्य, पशु और पक्षी होते हैं॥ यहां के मनुष्य दृढ़, सुकुमार, वर्ण और संहननयुक्त होते हैं।

उत्कृष्ट देशजात औषध ।

तत्रदेशोजाङ्गलसाधारणवायथांकांलंशि-
शिरातपवनसलिलसेकसेधितेसमेष्टुचौप्र-
दक्षिणेश्मशानचैत्यदेवयजनागारंश्वभ्रा-
रामवल्मीकोपरविरहितेकुशरोहिषास्तीर्णे
स्निग्धकृष्णसुवर्णवर्णमधुरमृत्तिकेमृदावफा-
लकृष्टेऽनुपहतेऽन्यैर्वलवत्तदुमैरौषधानि

जातानिप्रशस्यन्ते ।

अर्थ—इन में से नीचे लिखे हुए गणों से विशिष्ट जांगल वा साधारण देशमें उत्पन्न हुई तथा ठीक समय में लाई हुई औषधियां उत्तम होती हैं । स्थान के गुण यथा- जहां अपने अपने समय पर सर्दी गमी हवा और जल आते रहते हैं ॥ जहां की भूमि समान पवित्र और ठीक होती है जहां श्मशान, चैत्य देवालय, यज्ञशाला, खाई, बगीचा, बांधी और ऊसर भूमि नहीं होती है । जहां कुशा और गंध तृण बहुतायत से होते हैं । जहां की मृत्तिकी चिकनी काली, पीली और मिष्ट होती है । जहां बड़े बड़े जंगली वृक्ष नहीं होते हैं, जहां की भूमि कीड़ों से खाई हुई नहीं है ऐसे स्थान की औषधियां उत्तम होती हैं ।

औषध संग्रह विधि ।

तत्रयानिकालजातान्युपगतसम्पूर्णप्रमा-
णरसवीर्यगन्धादिकालातपाग्निसलि-
लपवनजन्तुभिरनुपहतगन्धवर्णरसस्पर्श-
प्रभावाणिमत्स्याणिजडीच्यांदिशिस्थि-
तानितेगानारापलाशमचिरमरुद्वर्षा-
वसन्तयोगार्द्राह्रीष्मेमूळानिशिशिरेवाशी

र्णमरुद्वर्षानांशरदित्वककन्दक्षीराणि
हेमन्तसारानियथर्तुपुष्पफलमितिमङ्गला-
चारःकल्याणवृत्तःशुचिःशुक्लवासाःसं-
पूज्यदेवताअश्विनोगोब्राह्मणांश्रकृतोप-
वासःप्राङ्मुखउदङ्मुखोवागृहणीयात् ।

अर्थ—इन में से जो औषध अपने ठीक समय पर उत्पन्न हुई है, जो सम्पूर्ण प्रमाण, सम्पूर्ण रस, सम्पूर्ण, वीर्य और सम्पूर्ण गन्धादियुक्त हैं । काल, आतप, अग्नि, सलिल, वायु और कीड़ों से जिनके गंध, वर्ण, रस, स्पर्श और प्रभाव नहीं बिगड़े है, जो उत्तम और उत्तर दिशा में उत्पन्न हुई हैं। ऐसी थोड़े काल की उत्पन्न हुई औषधों के शाखा और पत्ते बर्षा और वसन्त ऋतु में ग्रहण किये जाते हैं, प्राप्तिऋतु वा शिशिर ऋतु में औषधियों की जड़ लावे जब उन के पत्ते पककर गिर पड़ें । शरद ऋतु में छाल, कन्द और दूध लावे तथा हेमन्त में निर्यास, पुष्प और फल इकट्ठे करने चाहिये । जिस दिन औषध लाने का विचार करे उसे दिन स्नानादि द्वारा पवित्र होकर मंगलाचार करके श्वेतवस्त्र धारण करे देवता अश्विनी कुमार और गौ ब्राह्मण का पूजन करके उस दिन उपवास करे, फिर पूर्व वा उत्तर की ओर मुखकरके औषधी का ग्रहण करे ।

औषधियों की रक्षाविधि ।

गृहीत्वाचानुरूपगुणगन्धाजनेसंस्थाप्या-
गारेषुप्रागुदम्हारेषुनिवातमवातैकदेशेषु
नित्यपुष्पोपहारवलिर्कर्मवत्स्वग्निसालि-

लोपस्वेदधूमरजोमूषिकचतुष्पदामनभि-
गमनीयानिस्वच्छिन्नानिशिक्येष्वास
ज्यास्वापयेत्तानिचयथादोषप्रयुज्जति ।

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिसे औषधियां
लाकर उन्हें अपने अपने गुणके अनुरूप
पात्रों में रखकर ऐसे स्थानमें जिसका मुख
पूर्व वा उत्तरकी ओर हो, जिसमें वायु प्र-
वेश न करती हो और एक स्थान उसमें
ऐसा हो जहां हवा आती हो और जिसमें
नित्यप्रति पुष्प उपहार, बलि और कर्न
होता हो ऊंचे छोंकों पर टंकका देवें और
उन पात्रों को ऐसी रीति से ढकदेवें जिसमें
अग्नि, जल, ताप, धूआं और रज, तथा
मूत्र और चोपाये आदि न पड़चस्कें ।

इन औषधियों का दोष के अनुसार प्र-
योग करना उचित है ।

दोषानुसारप्रयोगविधि ।

सुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकधान्य
फलदध्यम्लोदिभिर्वाते । मृद्रीकामलक
मधुमधुकपर्षकफाणितक्षीरादिभिःपि
चे । श्लेष्माणितुमधुमूत्रकपायेभाविता
न्यालोदितानिचेत्सुदेशस्तंविस्तारेणद्रव्य
देहदोषसात्त्वादीनिप्रविभज्यव्याख्या
स्यामः ।

अर्थ—वातरोग में इन औषधोंको सुरा
सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, धान्याम्बु,
फलाम्बु, दही और खटाई के साथ में देवें
पित्तजरोर में दाख, आवला, शहत, मुल-
हठी, फालसा, फाणित और दूध आदि
के साथ देवें, तथा कफ रोगों में शहत,

गोमूत्र और काथों में मिलाकर देवें । अब
इन्हीं का द्रव्य, देह, दोष और सात्त्वा-
दिक के अनुसार विभाग करके विस्तार
पूर्वक वर्णन करते हैं ।

मेनफलकावर्णन ।

वमनद्रव्याणामदनफलानिश्रेष्ठानिआच-
क्षतेऽनपायेत्त्वात्तानिवसन्तग्रीष्मयोर-
न्तरेपुष्पावश्चपुग्भ्यामृगशिरसावायुह्री
यात्मैत्रेमुहूर्तयानिपकानिप्रहरितानिपा-
ण्डन्यत्रिभीष्यकुशान्यह्रस्वानिअजग्धा
नितानिप्रमृज्यकुशपुटेवध्वागोमयेनालि
प्ययवतुपमापशालिग्रीहिकुलत्थमुद्रप-
णानामन्यतमेनिदध्यादष्टरात्रमतजर्द्धमृ-
दुभूतानिमाध्विष्टगन्धान्युद्रुष्ट्यशोपयेत् ।
सुशुष्कंतुफलपिप्पलीरुद्धरेत्तासांदधिम
धुपललविमृदितानांपुनःशुष्काणानंवक
लशंसुप्रमृष्ट्वालुकमरजस्कमाकण्ठंपूरयि
त्वास्वावच्छन्नमनुमुसंशिक्येऽवसज्यस्था
पयेत् ।

अर्थ—वमनकारक द्रव्यों में, मेनफल
सब से उत्तम होता है क्योंकि यह किसी
प्रकार की हानि नहीं पहुंचाता है । इसको
वसन्त और ग्रीष्मऋतुओं के सांधिकाल में
पुष्प, अश्विनी, मृगशिरा नक्षत्र में मैत्री
मुहूर्त में लाना चाहिये । इन में से जो
जो फल पककर हरे वा पांडुरवर्ण के होगये
हों, जिस में कीड़े ने लगे हों, जो पिचके
हुए वा छोटें ने हों वा किसी पक्षी ने न
बिगाड़े हों उनको लाकर कुशा में लपेट
कर बांध देवें ऊपरसे गोबर लपेटदेवें फिर

उसे जौ का मुस, उरद का ढेर, शाली
वा ब्रीहि चावल का ढेर कुल्फी वा मूंगके
पत्तोंके ढेर में से किसी एक में आठ दिव
स तक गढ़ा रहने दें। फिर यह जब मु-
लायम पड़जाय वा इस में मीठीर उत्तमगंध-
धानेलगे तब निकालकर सुखें। अच्छी
तरह सूखने पर फलों के बीज बाहर नि-
काळ दें और दही, मधु वा तिल कल्क
के साथ फिर मर्दन करके फिर सुखाकर
वाल्वा रेतसे अच्छीतरह मजे हुए स्वच्छ
नदीन कलसे में कंठ तक भर दें और अच्छी
तरह ढक दाबकर छीके पर लटका दें ॥

वमनकरानेकीविधि ।

अयच्छर्दनीमातुरंद्रघृहंघ्न्यहंवास्नेहस्वेदोप-
पन्नश्चछर्दयितव्यइति । ग्राम्यानूपोदक-
भृतमांसरसक्षीरदधिमाषतिलशकादि-
भिः समुत्कलेशितश्लेष्माण्ड्युपितंजीर्णा
हारंपूष्पाह्णेकृतवलिहोममङ्गलप्रायश्चित्तं
निरन्वमनतिस्तिग्धंयवाग्वाघृतमात्रापीत-
वन्तमातासांफलपिप्पलीनामन्तर्नखमुष्टि-
यावद्वासाधुमन्यतेजर्जरीकृत्ययष्टीमधुक-
पायेणकोविदारकर्बुदारनीपविदुलचिम्बी
शणपुष्पीसदापुष्पीमत्स्यकुपुष्पीकपायाणा
मन्यतमेनवारान्निमुपितंविमृष्टपूतंमधुसै-
न्धवयुक्तंमुखोष्णंकृत्वापूर्णशरावमन्त्रेणा
नेनाभिमन्त्रयेत् ।

अर्थ—वमन कराने के योग्य रोगी कोवमन
करानेसे दो तीन दिन पहिले स्नेहन स्वेदन
कराके वमन करावै । वमन करानेकी विधि
यह है कि ग्राम्य, आनूप और औदक जन्तु-

ओं का मांसरस, दूध, दही, उरद तिल
आदिके भक्षण से कफ को उत्केशित करवै
दूसरे दिन आहार पचने पर द्रुपहरसे पहिले
बलि होम, मंगलाचार और प्रायश्चित्त करा-
के बिना भोजन करायही अनतिस्निग्ध पु-
रुषको यवागू के साथ घृत की मात्रा का
सेवन करावै । वमन करानेकी रात्रिको अ-
न्तर्नखमुष्टि मेनफल्के बीजोंको मर्हान पीस-
कर मुलहटी के काथ के साथ अथवा को-
विदार (लालकचनार) कर्बुदार (स्वेतक-
चनार) कदम्ब, वेत, कंदूरी, शणपुष्पी
आक, वा ओंगा में से किसी के क्वाथ में
भिगोदेवै । प्रातःकाल होतेही सबको मसल
कर छानलेवै फिर इसमें शहत और संधा
नमक मिलाकर गुनागुना कर के प्याले
में भरकर नीचे लिखे हुए मंत्र से अभि-
मंत्रित करै ॥

वमन कराने के मंत्र ।

ब्रह्मदत्ताश्विस्त्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः
ऋषयःसौषधिग्रामाभूतसंघाश्चपान्तुते ॥
रसायनामिवर्षाणां देवानाममृतंयथा । सु-
धेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तुते ॥
अर्थ.... ब्रह्मदेव, दक्ष, अश्विनीकुमार रुद्र
इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य अग्नि, वायु, ऋ-
षिगण, औषध समूह और भूत समूह तेरी
रक्षाकरें । जैसे ऋषियोंको रसायन, देवता-
ओंको अमृत और नागों को सुधा गुणका-
रक है इसी तरह यह औषध तुझ को
फलप्रद होवै ।

इत्येवमभिमन्त्र्योदह्युखमातुरं पाययेत् ।

श्लेष्मज्वरगुल्मप्रतिश्यायान्तविशेषणे पु-
नरापिप्तागमनात्तेनसाधुवमति ।

अर्थ—इस तरह मंत्र पढ़कर रांगी का
मुख उत्तर की ओर कराके औषध पान
करावै । विशेष करके कफज्वर, गुल्मरोग
और प्रतिश्याय में यह वमन कराई जाती
है । इस में पित्तका आगमन होवै तौ सम-
झना चाहिये अच्छी होती है ।

हीनवेगंतुपिप्पल्यामलकसर्पकलकलव
णोष्णोदकैः पुनः पुनः प्रवर्तयेदित्येष सर्व
छर्दनयोगविधिः । सर्वेषु पुनः पुनः सन्धवंक
फविलायनच्छेदार्थं वमने पुन विदध्यात् ॥

न चोष्णविरोधो मधुन छर्दनयोगयुक्त
स्याविपक्वप्रत्यागमनाद्दोषहरणाच्च ।

अर्थ—जो वमन का हीनवेग हो तौ पी-
पल, आंवला और सरसों इन के कल्क में
संधानमक डालकर गरम जल के साथ बार
बार पान करावै । इस से वमन का वेग बढ
जायगा । यह काम हर प्रकारकी वमन में
करना ठीक है । कफके पतले करने और
दूर करनेके निमित्त सब प्रकारकी वमनों
में शहत और संधानमक देना चाहिये ।
इस स्थल में शहत को उष्ण द्रव्य के साथ
देने में कोई दोषापत्ति नहीं है, क्योंकि
शहत पाकको पात होने से पहिलेही दोषों
को निकालता हुआ आप भी निकलजाता है
फलपिप्पलीनांद्वौ भागौ कोविदारादिक
पापेण त्रिःसप्तकृत्वः भावयेत्तेन रसेन तृती
यं भागं पिष्ट्वा मात्रा हरितकीभिर्विभक्तिकै
रामलकैर्वा तुल्यावर्त्तयेत्तासामेकाद्वेवापू

वोक्तानां कपायाणामन्यतमस्याञ्जलिमा
त्रेण प्रमृद्य बलवत् श्लेष्मप्रसेकग्रन्थिज्वरो
दरा रुचिपुपाययेतेति समानं पूर्वेण ।

अर्थ—मेनफल के बीज दो भाग, इनको
पीसकर कोविदारादि आठ द्रव्योंमेंसे किसी
एक के क्वाथकी इक्कीस भावना देवै । फिर
एक भाग और लेकर उसी क्वाथमें पीसकर
उस को पूर्वोक्त चूर्ण से मिलावै । फिर इस
में से हरड वहेडे और आंवले की बराबर
गोली बना कर तयार करले फिर इस में
एक वा दो गोलियों को पूर्वोक्त कोविदारादि
के क्वाथों में से किसी एक के आध सेर
क्वाथ के साथ सेवन करे । इस के द्वारा
वमन करानेसे कफप्रसेक, ग्रन्थि, ज्वर, उद-
ररोग और अरुचि ये रोग दूर होजातेहैं ।
शेष किया पूर्व के समान हैं ॥

फलपिप्पलीक्षीरं तेन वा क्षीरयवागूमधोभा
गेरक्तपित्ते हृद्वाहेतज्जस्य वा दध्न उत्तरकं
कफछर्दिस्तमकप्रसेके पुतस्यैव पयसः शी
तः ससन्तानिकाञ्जलिपित्ते प्रकुपिते उरः
कण्ठहृदये तनुकफोपदिग्ध इति समानं पूर्वेण

अर्थ—मेनफलके बीज डालकर औटया
हुआ दूध अथवा उस दूधकी यवागू अधो
गामी रक्तपित्त और हृद्वाह में देवै । और
उसी दूध को दही पर से मलाई उतारकर
कफकी वमन, तमकश्वास और कफप्रसेक
में देना चाहिये । उसी दूध को ठंडाकरके
उसकी मलाई उतार कर एक अंजली भर
प्रकुपित पित्तमें देवै । तथा जो वक्षःस्थल,
कंठ और हृदय में पतला कफ लिस होरहा
हो तौ उक्त संतानिका पान कराके वमन
करावै । शेष किया पूर्व के समान है ॥

मेनफल का घृत ।

फलपिप्पलीक्षीराक्षयनीतमुत्पन्नफलानि
कल्ककपायसिद्धकफाभिभूताग्निविशु-
ष्कदेहश्चात्रयापाययेतेतिसमानपूर्वेण ।

अर्थ—मेनफल के बीज के साथ सिद्ध
किये हुए दूध का मक्खन निकालकर मेन
फलादिके कल्कके साथ सिद्ध करके मात्रा-
नुसार पान करावै । इस विरेचनसे कफाभि-
भूत अग्नि और विशुष्क देह शुद्ध होजाते
हैं । शेषक्रिया पूर्व के समान है ।

फलपिप्पलीनां फलादिकपायेण त्रिसप्तक
त्वःपरिभाषितेन पुष्परजःप्रकाशेन चूर्णे
न सरसि दृढतसरोरुहं सायाहनेऽवचूर्णयेत्
द्रात्रिमुपितं प्रभाते पुनरवचूर्णितमुद्धृत्य
हरिद्राकुसरक्षीरयथागूनामन्यतमसैन्ध
वगुडफाणितयुक्तमाकण्ठपीतवन्तपात्रा
पयेत् । सुकुमारमुत्किष्टपित्तकफमौषध
द्विपमितिसमानपूर्वेण ॥

अर्थ—मेनफलके बीजों को मेनफलादि द्रव्यों
के काथकी इक्कीस भावना देकर फलकी रजके
समान महीन चूर्ण करले, फिर इस चूर्णको सा-
यंकालके समय तलावमें एक बड़े से कमलके
फूलमें रखदेवै । प्रातःकाल इस चूर्णको लाकर
हलदी, कृशारा, दूध और यवागू इनमेंसे
किसी एक के साथ संधानमक, गुड और राव
मिलाकर कंठ पर्यन्त पान करै और उस फूल
को सूँघे । इस रीतिसे वमन करना सुकुमार,
उत्किष्ट कफ और पित्तवाले और औषध
सेवन से द्वेष रखनेवाले को हित है । शेष
क्रिया पूर्वके समान है ।

फलपिप्पलीनां भल्लातकविधिपरिस्तम्ब
रसपयत्वाफाणितमावर्तलीभावाल्लेहये
दातपशुष्कवाचूर्णाकृतं जीमूतादिकपाये
ण पित्तकफस्थानगते पाययेतेतिसमानं पू-
र्वेण । फलपिप्पलीचूर्णानि पूर्ववत् फला-
दीनां पण्णामन्यतमकपायस्तुतानि चर्तितक्रि-
याः फलकपायोपसर्जनाः पेया इति समानं
पूर्वेण ॥

अर्थ—भिल्लायकी तरह मेनफल के बीजों
का रस निकालकर राव के सदृश पकाकर
चाँटे । अथवा इन बीजों को धूप में सुखाकर
जीमूतादिके काथके साथ पान कराके उस
समय वमन करावै जब पित्त कफके स्थान
में चलागया हो । अथवा मेनफलके बीजों
को मेनफलादि छः द्रव्यों में से किसी एक
के काथ के साथ परिस्तुत कर के बटिका
बनावै, इन बटिकाओं को पूर्वोक्त कपायों
के साथ पान करै ।

फलाद्यबलेह ।

फलपिप्पलीप्वारग्वधृक्षकत्वादुकण्टक
पाठापाटलीशार्ङ्गशाम्बुर्वाक्षपपर्णनक्तमाल
पिचुमर्दपटोलसुपवीगुडूचीसोमत्रलकदी-
पिकानां पिप्पलीमूलइस्तिपिप्पलीचित्रक
शृङ्गवेराणां चान्यतमकपायेण सिद्धोलेहः
तिसमानपूर्वेण ।

अर्थ—अमलतास, इन्द्रजी, स्वादुकण्टक
पाठा, पाटला, शार्ङ्गगुहा मरोडकली, सप्त-
पर्णी, कंजा, नीम, परवल, सुपवी, भिल्लोय
सफेदखैर, अजवायन की जड़, पीपल, पीप-
लामूल, गजपीपल, चीता और सोठ इन

बीस द्रव्यों में से किसी एक के काथ के साथ मेनफल के बीजों को सिद्ध करके लेह बनावै । शेष किया पूर्वके समान है ॥

फलपिप्पली, त्वेला, हरेणु, काशतपुष्पाकुस्तु, म्बुरुतगरकुष्ठत्वक्चोरकमखकागुग्गुलुवालकश्रीवेष्टकपरिपेलवमांसीशैलेयकस्थौण्यकसरलपारावतपद्मशोकरोहिणीनांविंशतेरन्यतगस्यकपायेणसाधितोत्कारिकाकल्पेनयथामोदकोवामोदककल्पेनयथादोषरोगविभक्तिप्रयोज्यइतिसमानपूर्वेण । फलपिप्पलीस्वरसकपायपरिभावितानितिलशालितण्डुलपिट्टानितत्कपायोपसर्जजनानिपङ्कुलीकल्पेनवापूपा इतिसमानपूर्वेण ॥

अर्थ—छोटी इलायची, हरेणु, सोंफ, धनियाँ, तगर, कूठ, दालचीनी, चोरक, मरुआ, अंगर, गूगल, नेत्रवाला, श्रीवेष्टक मोथा, जटामांसी, शैलेय, थूनेर सरलकाष्ठ, पारावतपदी, अशोक और कुटकी इन बीस द्रव्यों में से किसी एक के काथ के साथ मेनफल के दानों की उत्कारिका या मोदक बनावै । इनको रोग के अनुसार वमन कराने में देवै शेष किया पूर्व के समान है ।

मेनफल के रस और उस के बीजों के क्वाथ में तिल और शाली चावल के चूर्ण की भावना देकर मेनफल के क्वाथ के साथ पूरी वा पूर बनावै । शेष किया पूर्व के समान है ।

एतैनैवचकल्पेनसुमुखसुरसकुठेरकगण्डीरकालमालकपर्णामकषवक्कफणिज्जक

शृङ्गवेरगृञ्जनभूस्तृणककासमर्दभृङ्गराजानामिधुवालिफाक्तक्रेष्णकाण्डेक्षूणांचान्यतमस्यकपायेणकारयेत् । तथावदस्पाडवरागलेहमोदकोत्कारिकातर्पणपानकमांसरसयूपमद्यानामदनफलान्यन्यतमेनोपसर्ज्यतथादोषरोगदोषभक्तिदद्यात्तैःसाधु वमतीति ।

अर्थ—इसीतरह सुमुख, सुरस, कुठेरक, गंडार, कालमालक, पर्णास, फणिज्जक [ये सब तुलसी के भेद हैं] गाजर, सोंठ, गंधतृण, कसौंदी, भांगरा, इधुवालिफा, ईख और काण्डेक्षु इन सत्रह द्रव्यों में से किसी एक के क्वाथ के साथ मेनफल के बीजों की पूरी वा पूर बनावै ॥

इसीतरह से पाडव, राग, लेह, मोदक, उत्कारिका, तर्पण, पानक, मांसरस, यूप और मद्य मेनफल के साथ पाक करके उसीके क्वाथके साथ दोषके अनुसार पान करावै । तो अच्छी तरहसे वमन होतीहै ॥

मेनफल के नामान्तर ।
मदनःकरहाटश्चराठःपिण्डीतकःफलम् ।
वसनश्चेतिपर्यायैरुच्यतेतस्यकल्पना ॥

अर्थ—मदन, करहाट, राठ, पिण्डीतक, फल और वसन ये मेनफल के नामान्तर हैं ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।
नवयोगाःकपायेपुवर्तिस्वाष्टौपयोघृताप
अफाणितचूर्णेर्द्वाग्नेयोवस्ति कियापुपट् ॥
विंशतिविंशतिलेहमोदकोत्कारिकामुच
पङ्कुलीयूपयोश्चोक्तायोगाःषोडशपोडश ॥
दशान्येपाडवान्येपुत्रयस्त्रिंशदिमंशतम् ॥

योगानां विधिवद्दृष्टं फलप्रेमहर्षिणेति ॥

अर्थ—इस अध्याय में द्वाध के नौ बर्तित आठ, दूध के पांच, फाणित का एक चूर्ण का एक, सूंघने का एक, बर्तिकाया के छः, लेहवीस, मोदक बीस, उत्कारिका बीस, पूरी के सोलह, पूये के सोलह, और पाड़वादि में दस । इस तरह सब मिलकर मेनफल के एकसौ तेतीस कल्प हैं ।

इति श्रीभाषार्ठाकान्वितायां अग्निवेश विर-

चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां

कल्पस्थाने मदनकल्पो नाम

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

। द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो जीमूतकल्पं व्याख्यास्याम

इति हस्मा भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम जीमूतकल्पकी व्याख्या करेंगे।

जीमूत के पर्याय शब्द ।

कल्पं जीमूतकस्यैव फलपुष्पाश्रयं शृणु ॥

स्वरागरीचवेणीच तथास्याद्देवतालकः

अर्थ—जीमूतके पुष्प और फल दोनों वमन कराने में प्रयुक्त किये जाते हैं ॥ खरा, गरी, वेणी और देवतालक ये इसके पर्यायवाची नाम हैं ।

जीमूत के गुण ।

जीमूतकं त्रिदोषघ्नं यथासौ पथकाल्पितम् ।
प्रयोक्तव्यं ज्वरश्वासद्विधाघ्नेष्वामयेषु च ॥

अर्थ—यथानुरूप औषधों के साथ कल्पना किया हुआ जीमूत त्रिदोषनाशक तथा ज्वर, श्वास और द्विचकी रोगों में हित है।

जीमूत के प्रयोग ।

यथोक्तगुणयुक्तानां देशानां यथाविधि
पयःपुष्पेभ्यो निर्वृत्तफलेषु पापयश्रताः । लो
मनेक्षीरसन्तानंदधुत्तरमलोमने । शृते
पयसि दध्यम्लं जाते हरितपाण्डुके ॥

अर्थ—(१) यथोक्त गुण वाले देशों में उत्पन्न हुए जीमूत के पुष्पों को दूध में औटाकर पान करें । [२] इसके फलों को दूध में औटाकर पीये । ३ । दोषों के अनुलोम में जीमूत डालकर औटोयहूए दूध की मलाई देवे (४) दोषों का प्रति-लोम होने पर जीमूत द्वारा सिद्ध दूध का दही देवे । (५) हरितपाण्डु में जीमूत डालकर औटोये हुए दूधका अम्ल दही देवे ।

अन्य प्रयोग ।

जीर्णानां च सुशुष्काणामन्यस्तानां भाजने
शुचौ । चूर्णस्य पयसा शुक्तिव्रतपित्तादि
तः पिवेत् ॥ आसृत्य च सुरामण्डे मृदित्वा
प्रक्षतं पिवेत् । कफजेऽरोचके कासे पाण्डु
रोगे स यक्ष्मणि ॥ द्वेषापोऽध्याथवात्रीणि
गृह्णत्यामलकस्य च । कोविदारादिका
नां वानिम्बस्य कुटजस्य च । कपायमा
सुतं पूत्वा तेनैव विधिना पिवेत् ॥ अथ वार
ग्वधादीनां सस्तानां पूर्ववत् पिवेत् ॥ एकैक
शः कपायेण पित्तश्लेष्मज्वरादितः ॥

अर्थ—(६) अच्छी तरह पके हुए और सूखे हुए जीमूत के फलों को एक स्वच्छ पात्र में रखे । इनका आधे पल चूर्ण दूध के साथ फांकने से वातापित्तरोग दूर हो जाता है । [७] जीमूत के फलों

को सुरामण्ड में भिगोकर उन्हें सुरा में मर्दन कर के छान कर पाँले तौ इससे कफज अरुचि, खाँसी, पाण्डुरोग और यक्ष्मा दूर होजाते हैं । [८] जीमूत के दो वा तीन फलों को कूटकर गिलोय, आंवला, कोविदारादिगण, नीम वा कुडा इन द्रव्यों में से किसी के काथ में भिगोकर मर्दन करे और फिर छानकर पीवे तो पूर्वोक्त गुण करने वाला है । [९] अथवा आरग्वधादि सात द्रव्यों में से किसी एक के काथ में पूर्ववत् फलों को भिगोकर और छानकर पीवे इस से पित्तकफ ज्वर दूर होजाता है ।

अन्यप्रयोग ।

वर्चयः फलवच्चाटौ कोलमात्रास्तुतामताः
जीमूतकस्य वा कल्कं चूर्णवा शिशिराम्बुना ॥
ज्वरे पित्तभेव वा तदुष्टश्लेष्माणि चानुगे ॥
जीवकर्पभके धूणां शतावर्यारसेन वा ॥
पित्तश्लेष्मज्वरे दद्याद्वा तपित्तज्वरेऽथ वा ॥
तथा जीमूतकक्षीरासमुत्पन्नं पचैद्घृतम् ॥
फलादीनां कपायेण श्रेष्ठं तद्वपनमतम् ।

अर्थ—(१०) मेनफला के सदृश कोवि-
दारादि गण के क्वाथ के साथ आठ प्रकार
की वसितियां प्रस्तुत करे । (११) जीमूत
के कल्क वा चूर्ण को ठंडे जल के साथ
घृत पित्त, घात मध्यम और हीन कफ के
ज्वर में पान करे । [१२] जीमूतके कल्क
को जीवक, कपभक, ईख वा सितावर के
रस में सेवन करने से पित्तकफज्वर वा
घात पित्तज्वर दूर होजाता है । [१३]
जीमूत डाल कर औटाये हुए दूधको जमा

कर घी निकाड़े । इस घीको मेनफलादि के
कपाय के साथ पान करे तौ बहुत उत्तम
वमन होती है ।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

पट्क्षीरे मदिरायोग एकद्विदशचापरे ॥
सप्तचारग्वधादीनां कपायेऽष्टौ च वसितपु ।
जीवकादिपुचत्वारो घृतञ्चैकं प्रकीर्तितम् ॥
कल्पे जीमूतकानां योगास्त्रिंशन्नवाधिकाः

अर्थ—जीमूत के उन्तालीस कल्प इस
तरह वर्णन किये गये हैं, यथा—दूध के छः
मदिरा का एक, आसुत के बारह, आर-
ग्वधादि के सात, बत्ती आठ जीवकादि के
चार और जीमूत का घृत एक प्रकार का ।

इति श्रीभापाटीकान्वितायां अग्निवेशविर-

चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहिता

यां कल्पस्थाने जीमूतकल्पों नाम

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

—४—

तृतीयोऽध्यायः ।

अथात इक्ष्वाकु कल्पं व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम इक्ष्वाकु कल्पकी व्याख्या करेंगे ॥
सिद्धं वक्ष्याम्येक्ष्वाकु कल्पं पेपांशस्य-
ते । पञ्चचत्वारिंशदुक्तायोगा अस्मिन्म
हर्षिणा ॥

अर्थ—कटुतुष्यी के कल्प सिद्ध हैं इन
में महर्षि आत्रेय ने उत्तम उत्तम पैंतालीस
योगों का वर्णन किया है ॥

इक्ष्वाकुपेय्ययिशब्द ।

लम्बापिण्डफलातुम्बीकटुकालावुनीचतत्
इक्ष्वाकुः फलिनी चैव प्रोच्यते तस्य कल्पना

अर्थ—इक्ष्वाकुके प्रप्ययिवाची शब्द ये
हैं, यथा—लम्बा, पिण्डफला, तुम्बी, कटुका
आलावू, इक्ष्वाकु और फलिनी ।

इक्ष्वाकुके गुण ॥

कासश्वासविपच्छादिज्वरार्तकफकाशिते
प्रताम्यति नरे चैव वमनार्थतदिष्यते ।

अर्थ—खांसी, श्वास, विष, वमन, ज्वर
और कफ में तथा पित्तज मूर्च्छा में इस
की वमन हित है ।

इक्ष्वाकुके कल्प ।

अपुष्पस्य मवालानामृष्टिना देशसंमिताम् ।

क्षीरमस्येभृतं दद्यात्पित्तोद्विक्ते कफज्वरे ।

पुष्पादिपुचचत्वारः क्षीरे जीमूतके यथा ॥

योगाहरितपाण्डूनामुरामण्डेन पञ्चमः ।

फलस्वरसभागश्च त्रिगुणक्षीरसाधितम् ॥

उरःस्थिते कफे दद्यात्स्वरभेदे सपीनसे ।

जीर्णे मध्याद्भृते क्षीरं माक्षिपेत्तद्यदादाधि ॥

जातं स्यात्कफजेकासे श्वासे वम्पाश्च तत्

स्तिपेत् ।

अर्थ—कटुतुम्बी की छताकी जिस में फूल
न आये हों नवीन बारह बारह अंगुल
की टहनी एक पल लेकर एक प्रस्थ दूध
में ओटावे । इस दुग्ध के पान करने से
पित्तोत्पन्न कफज्वर दूर होजाता है । जिस
तरह जीमूत के फल पुष्प संवंधी दूध
के चार प्रयोग हैं । उसी तरह इस के
भी चार प्रयोग हैं इन चार प्रयोगों से हरितपांडू

आदि रोग अच्छे होजाते हैं । जिस तरह मुरा-
मंड में जीमूत भिगोकर एककल्प बनता है इसी
तरह एक प्रयोग इसका भी है । इक्ष्वाकु
के फल का रस निकालकर तिगुने दूध के
साथ ओटाकर पीने से हृदय में स्थित कफ
स्वर भेद और पीनस दूर होजाती है । एक
कटुतुम्बी के बीज का गूदा निकालकर
पोली करले और उसमें दूध भर दें, जब
उसका दही जमजाय तब कफजे खांसी श्वास
और वमन में इस दही के द्वारा वमन करावें
अजाक्षीरेण बीजानि भावयेत्पाययेत्तच्च ॥
विपगुल्मोदरग्रन्थिगण्डपुष्टीपदेषु च ।

दधिमण्डैः फलान्मध्यपाण्डुकुष्ठज्वरादितः ॥

तेन तक्रं विपकं वासक्षौद्रलघणं पिबेत् ।

तुम्ब्याः फलरसैः गुप्कैः सपुष्पैरवचूर्णितम्

उदयेन्माल्यमाप्रायगन्धसम्पत्सुखोचितम् ॥

भक्षयेत्फलमध्यपागुहेन पललेन च ॥

इक्ष्वाकुफलतैलं वासिष्ठं वा पूर्ववद्भृतम् ।

अर्थ—कटुतुम्बी के बीजों को बकरी के दूध
की भावना देकर चूर्ण बनालेवे । इस चूर्ण का
सेवन कराने से विषरोग, गुल्मरोग, उदर-
रोग, ग्रन्थि, गंडमाला और श्लीपद दूर
होजाते हैं । कटुतुम्बीकी गिरिका दही के
तोड़के साथ पकाकर पान करनेसे पांडुरोग,
कुष्ठ और विष दूरहोजाते हैं । अथवा उसी
के साथ तक्र को पकाकर संधानमक और
शहत डालकर पीना चाहिये । कटुतुम्बी के
पुष्पों को तुरी ही के रसकी भावना देकर
सुखाकर चूर्णकर लेवे । फिर इस चूर्ण को
सुगंधित पुष्प में छपेट कर सूघने से सुख-

पूर्वक वमन होती है । कटुतुषी के गूदे को गुड अथवा तिलके कल्क के साथसेवन करे अथवा कटुतुषी डालकर सिद्ध किया हुआ तेल अथवा जीमूत की तरह सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करने से वमन होती है ।

पञ्चाशदशष्टद्वानिफलादीनांयथोत्तरम् ॥
पिवेद्विमृशवीजानिकपायेष्वाप्तुतपृथक् ।
यज्याहकोविदाराद्यैर्मृष्टिमन्तर्नखंपिवे
त् ॥ कपायैःकोविदाराद्यैर्मात्राश्रफलव
त्स्मृताः ॥

अर्थ—मेनफलादिक वमनकारक द्रव्यों के व्वाथ में कटुतुषी के बीजों को मर्दन करके और छानकर नाँचे लिखे क्रम से पान करे, यथा—पहिले दिन दस बीज, दूसरे दिन बाँस, तीसरे दिन तीस, चौथे दिन चा लीस और पाँचवें दिन पचास बीज लेवै । कटुतुषी के अन्तर्नख मुष्टि [अंगूठे का नख भीतर करके भरी हुई मुट्ठी । बीज लेकर मुलहटी और कोविदारादि आठ द्र. व्यों के व्वाथ में पीसकर मेनफल के सदृश मात्रा का प्रयोग करे ॥

विल्वमूलरूपायेणतुम्बीबीजाञ्जलिपचेत्
पूतस्यास्यत्रयोभागाःचतुर्थःफाणितस्यतु
सप्ततुंवीजभागश्चपिष्टमर्धाशिकांस्तथा ॥
महाजालिनिजीमूतकृतवधेनयत्सकान् ।
लेहयेत्साधयेद्द्वर्षाद्यष्टयन्मृदुनाधिना ॥
यावत्स्यात्तन्तुमचोयेपतितंचनशीर्यते ॥
तंलिह्यान्मात्रपालेहंमन्थंचापिपिवेदनु ॥

अर्थ—वेलकी जड़ के व्वाथ में एक अंजली भर तुम्बी के बीजों को पकावै ।

फिर इस को छानकर तीन भागलेवै, एक भाग फाणित, एक भाग घृत तथा अर्द्धभाग तोरई जीमूत, धीयातोरई और इन्द्रजौ इनके बीजों की पीसकर डालदे और मन्दी मन्दी अग्निसे पकावै और करछीसे चलाता रहै, जब इस में तार से छूटने लगे और पानी में डालने से यह शीणनहो तब तक पकाता रहै पीछे उतार कर मात्राके अनु-सार इसका पान करे ऊपरसे मन्थ पीवै । कल्पएषोऽग्निमन्थादौचतुष्केपृथगुच्यते। शक्तुभिर्वापिवेन्मथतुम्बीस्वरसभावितैः कफजेऽथज्वरेकासेकण्ठरोगेष्वरोचके । गुल्मेमेहमेसेकचकल्कमांसरसैःपिवेत् ॥ नरःसाधुवमत्येधनचदैर्विलपमश्नुते ।

अर्थ—इसी तरह अग्निमन्थादि अवलेह की चार कल्पना हैं । अथवा तुम्बी के रस की भावना देकर जौ के सत्तू का मन्थपान करे । कफज ज्वर, खाँसी, कंठरोग, अरुचि, गुल्म, प्रमेह, लालास्राव आदि रोगोंमें इस के कल्क को मांसरस के साथ पान करे । इससे वमन बहुत अच्छी होती है और दुर्बलता भी नहीं होने पाती है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

पयस्यष्टौसुरामण्डेमस्तुतक्रेचतेत्रयः ॥
घ्न्यंसपललंतैलैर्बर्जमानाःफलेपुपद् ॥
घृतमेकं कपायेपुनवान्येमधुकादिषु ।
अष्टौवर्तिक्रियालेहाःपञ्चमन्थोरसस्तथा
योगाश्स्वाकुकल्पेतेचत्वारिंशच्चपञ्चच ।
उक्तमहर्षिणासम्यक्प्रजानांहितकाम्यया
अर्थ—इस अध्याय में महर्षि पुनर्वसुने

प्रजा की भलाईकेलिये इक्ष्वाकु के पैंतालीस प्रयोग वर्णन किये हैं ॥ यथा दूध के आठ सुरामंड, दही के तोड़ और तक्र के एक एक, सूंघने का एक, गुड, तिलकल्का, तेल और घी के एक एक, वर्द्धमान् छः मुलहटी आदि के वषाध के नौ, आठ प्रकार की वार्ति, पांच प्रकार के अत्रलेह, मन्थानुपान का एक और मांसरस का एक ।

इति श्री भापाटीकान्वितायां अग्निवेशविराचि-

तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां

कल्पस्थाने इक्ष्वाकुकलो नाम

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३॥

—*—

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो धामार्गवकल्पं व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम धामार्गव कल्पकी व्याख्या करेंगे ।

धामार्गव के पर्यायवाची शब्द ।

ककोटकीकटुकलामहाजालिनिरेवच ।

धामार्गवस्य पर्यायाराजकोशातकी तथा ॥

अर्थ—ककोटकी, कटुकला, महाजालिनी, धामार्गव और राजकोशातकी ये धामार्गव के पर्यायवाची शब्द हैं । इसे भाषा में घीयातोरई कहते हैं ।

धामार्गव के गुण ।

गरेगुल्मोदरेकासेवातेऽलेप्पामपस्थिते ।

कफेचकण्ठवक्रस्थेकफसञ्चयजेपुच ॥

रोगेभेत्तमयोज्यं स्यात् शिराःस्युर्गुरुवश्चये

अर्थ—गारोप, गुल्मरोग, उदररोग, खासी, वातरोग, कफरोग, कंठस्थ वा मुख स्थकफ तथा अन्य कफसंचय कारकरोगों में एवं वद्धगूल और गुरुरोगों में धामार्गव के प्रयोगों से धमन करना हित है ।

धामार्गवकी कल्पना ।

फलं पुष्पं मवालञ्चविधिना तस्य संहरेत् ॥

मवालस्वरसंशुष्कं कृताश्च गुलिकाः पृथक्

कोविदारादिभिः पेया कपायैर्मधुकस्य च ।

पुष्पादिपुपयोयोगाः चत्वारः पञ्चमीसुरा

पूर्ववर्जानि शुष्काणामतः कल्पः प्रवक्ष्यते ॥

मधुकस्य कपायेण बीजकण्ठोद्भूतं फलम् ॥

सगुडव्युपितं रात्रिकोविदारादिभिस्तथा

दद्याद्गुल्मोदरातं भ्योये चाऽप्यन्येकफा

मयाः ॥ दद्याद्गुल्मोदरातं भ्योये चाऽप्यन्येकफा

शान्तये ।

अर्थ—धामार्गव के फूल, फल और पत्तों को विधि पूर्वक लावे । धामार्गव के पत्तों के रस को सुखा कर गोली बना लेवे, इस गोली को विदारादि आठ द्रव्यों से पृथक् और मुलहटी इन के काथ के साथ पान करें । पूर्वोक्त विधि से धामार्गव के पुष्पादि फों के दूध के साथ चार प्रयोग हैं । पांचवां सुरा में भिगोकर मसलकर उसको पान करना है । इन प्रयोगों में पकेहुये फल सुखा कर काम में लाये जाते हैं । धामार्गव के बीज, छिलके आदि दूर कर के मुलहटी के काथ में अथवा कोविदारादि आठ द्रव्यों के काथ में से किसी एक में भिगो दें । प्रातःकाल इसको छान कर धाड़ा सा गुड

डालकर पीवै, इस से गुल्मरोग, उदररोग, या अन्य कफरोग दूर होजाते हैं । अथवा इस में खटाई मिलाकर दैने से वमन और हृद्रोग शान्त होजाते हैं ॥

चूर्णैर्वाप्युत्पलादीनि भावितानि प्रभूतशः रसक्षरियवाग्वादि तृप्ताघ्रात्वावमेत्सुखम् चूर्णाकृतस्य चार्तिवाकृत्वावदरसम्भिताम् विनीयाञ्जलिमात्रे तु पिबेद्दोशकृतोरसे ।

पृपतर्तकुरङ्गाश्वगजोष्टश्वतराविके ॥ श्वदंष्ट्रीखरखड्गानांचैवंपेयाशकृद्रसे ॥ जीवकर्पभकाक्षीरात्मगुप्ताशतावरीम् काकोलीश्रावणीमेदांमहामेदांमधूलिका म् । एकैकशोऽभिसंचूर्ण्यसहधामार्गवेण तु ॥ शर्करामधुसंयुक्तालेढ्वाष्टृद्वादकासिनाम्

अर्थ—धामार्गव के चूर्ण में नीलकमल आदि के पुष्पों को खूब धरा रहने देंवै । मांसरस, दूध और यवागू आदि को तुल्य पथ्यन्त भोजन करके इन पुष्पों के सूँघने से बहुत सुख से वमन होती है । अथवा सोले भर धामार्गव के फूल के चूर्णको गौ के गोबर के एक अंजली रसके साथ पान करै । इसी तरह चितकवरा हिरन, रीछ, कालाहिरन, घोडा, हाथी, ऊँट, खिच्चर, भेडा, श्वदंष्ट्रा, गधा और गेंडा इन में से किसी के विष्टा के रस के साथ धामार्गव का चूर्ण पान करै । अथवा जीवक, कपभक क्षीरकाकोली, आत्मगुप्ता, सितावर, काकोली श्रावणी, मेदा, महामेदा और मुलहर्टी इन में से किसी एक के चूर्ण को धामार्गव के चूर्ण के साथ मिलाकर शहत और मिश्री

के साथ चाटने पर हृदय का दाह और खाँसी दूर होजाती है ।

मुखोदकानुपानाः स्युः पित्तोष्मसहितकफे धान्यतुम्बुरुयूपेण कल्कः सर्वविपापहः । जात्यासौमनसायिन्यारजन्पाश्चोरकस्य वा ॥ पुनर्नवाकासमर्दविम्बीहैमवतस्य च महासहाभुद्रसहाष्टचीराणां पृथक् पृथक् ॥ एकंधामार्गवदेवाकपायेपरिमृद्यतु ॥ पूतं मनोत्रिकारे पुपिवद्वमनमुत्तमम् ॥ तच्छृत्तं क्षीरजंसर्पिः साधितं वा फलादिभिः ॥

अर्थ—पित्तकी ऊर्ष्मायुक्त कफमें धामार्गव का चूर्ण फाँककर ऊपरसे गरम जल पीवै । धनियाँ, तुम्बरू धनियाँ और यूपके साथ पान करे तो सब प्रकार के विप दूर होजाते हैं । मालती के फूल, हलदी, चोरक, पुनर्नवा कसौदी, कंदूरी, वच, महासहा, भुद्रसहा और रक्त पुनर्नवा इन के पृथक् पृथक् कपाय में एक वा दो धामार्गव को मसल कर छानकर पीवै । अथवा उस के साथ औटाये हुए दूध के घी को मैनफलादि के कल्कके साथ सिद्ध करके सेवन करने से उत्तम वमन होती है ।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।
पल्लवेन च चत्वारः क्षीर एकः सुरासवे ।
कपायाः विंशतिः कल्कौ दशद्वौ च शकृद्रसे ।
अन्न एकस्तथा प्रयेदशलेहास्तथा घृतम् ।
कल्पे धामार्गवस्योक्ताः पष्टि योगा महर्षिणा
अर्थ—इस अध्यायमें धामार्गव पत्तोंके चार प्रयोग, दूध का एक प्रयोग, सुरासवका एक, ववाध के बीस, गौ आदिके पुरीपरस

के वारह, अन्न का एक, सूपने का एक
अवलेह दस तथा घृत के दस । इस तरह
धामार्गवके साठ प्रयोग वर्णन किये गये हैं ।

इति श्री भाषाटीकांवितायां अग्निवेश विर-

चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां

कल्पस्थाने धामार्गवकल्पोनाम -

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

— — — — —

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथातो वत्सकं कल्पं व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माद्भगवन्नात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम वत्सककल्प की व्याख्या करेंगे ।

अथ वत्सकनामानि भेदं स्त्रीपुंसयोस्तथा ।

कल्पश्चास्य मवक्ष्यामि विस्तरेण यथा तथम् ।

अर्थ—अब हम वत्सक के नाम तथा
उस के स्त्रीजाति और पुरुषजाति के भेद
तथा इस के कल्पों की व्याख्या करेंगे ॥

वत्सक के नाम ।

वत्सकः कुटजश्चैव वृक्षको गिरिमल्लिका ।

वीजानीन्द्रयवास्तस्य तथा च्यन्ते कालि-

द्रकाः ॥

अर्थ—वत्सक, कुटज, वृक्षक, गिरिम-
ल्लिका इस के पर्यायवाची नाम हैं । इस
के बीजों को इन्द्रजो और कालिंग भी
कहते हैं ॥

वत्सक के भेद ।

वृहत्फलः श्वेतपुष्पः स्निग्धपत्रः पुमान् भ-
वेत् । श्यावारुणा च पुष्पी स्त्रीफलवृन्तै-
स्तथा पुंभिः ॥

अर्थ—जिस वत्सक के बड़े फल, सफेद
फूल और चिकने पत्ते होते हैं वह पुरुष
जाति है जिस के फल काले या लाल और
जिस के फल और वृन्त छोटे होते हैं वह
स्त्री जाति है ॥

वत्सकके गुण ।

रक्तपित्तकफघ्नस्तु मुकुमारेष्वनल्ययः ।

हृद्रोगज्वरवातासृग्विसर्पादिपुण्यते ॥

अर्थ—वत्सक रक्तपित्त नाशक, कफना-
शक, मुकुमारों को अनुपद्रवकर्त्ता, हृद्रोग,
ज्वर, वातरक्त और विसर्प आदि रोगों में हित
होता है ॥

वत्सक के कल्प ।

कालेफलानि संगृह्यतयोर्वैष्मनि निक्षिपेत् ।

तेषामन्तर्नखं मुष्टिजर्जरीकृत्य वामयेत् ॥

मधुकस्य कपायेण कोविदारादिभिस्तथा ।

निशि स्थितं तृणमृदालवणसौद्रसंयुतम् ॥

पित्तोद्वमनं श्रेष्ठं पित्तश्लेष्मनिवर्हणम् ।

अष्टाहं पसां कर्णेन तेषां चूर्णानि भावयेत् ॥

जीवकस्य कपायेण ततः पाणितलं पिबेत् ।

फलजीमूतकेशवाकुजीवन्तीनां पृथक्तथा ॥

सर्पपाणां मधूकानां लवणस्याथ वाम्बुना ।

कृशरेणाथ वायुक्तं विदध्या दमनं भिषक् ॥

अर्थ—ठोक समय पर दोनों प्रकार के

वृक्षों के फल लाकर सुखाकर घर में रख

लेवै । इनमें से अन्तर्नख मुष्टि लेकर चूर्ण

करले । इस चूर्णको मुलहटी अथवा कोवि-

दारादि आठ द्रव्यों के दवाध में से किसी

एक के साथ रात्रि में भिगो देवै, प्रातःकाल

इसे मसलकर छानले और इसमें सैधानमक

और शहत मिलाकर पाँच पित्तरोग में इस की वमन बहुत अच्छी होती है और यह पित्त कफको नष्ट भी करता है । अथवा इन के चूर्ण को आठ दिनतक आकके दूध की भावनादेवै और फिर इसमेंसे दो तोले जीवक के कपाय के साथ पीवै । अथवा आक के दूध में भावना किया हुआ उक्त-चूर्ण मेनफल, जीमूत, इक्ष्वाकु वा जीवन्ती के क्वाथ के साथ पानकरै अथवा सरसोंका क्वाथ, वा मुलहठी का क्वाथ, वा लवणका जल, वा कुशरा के साथ इन्द्रजों के कल्क का पान करै तौ वमन होवै ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।
तत्रश्लोकः । कपायैर्नवचूर्णैश्चपञ्चोक्ताः
सलिलैस्त्रयः । कुशराष्टादशयोगवत्स
कस्यानिदाशैताः ॥

अर्थ—इस अध्याय में क्वाथ के नौ, चूर्ण के पाँच, जल के तीन वा कुशरा का एक इस तरह वत्सक के अठारह कल्प वर्णन किये गये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकाश्रितार्याग्निवेशविरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां
कल्पस्थाने वत्सक कल्पो नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

—:~*~:—

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातःकृतवेधनकल्पव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम कृतवेधन कल्प की व्याख्या करेंगे ॥

कृतवेधन के पर्यायवाचीनाम ।
कृतवेधननामानिकल्पञ्चास्यनिबोधत ।
क्ष्वेदःकोशातकीचोक्तंमृदङ्गफलमेवच ॥
अर्थ—अब हम कृतवेधन के नाम और उस के कल्पों की व्याख्या करते हैं । नाम यथा, क्ष्वेद, कोशातकी और मृदङ्गफल ये कृतवेधन के नाम हैं, भाषा में इसे तोरई कहते हैं ॥

कृतवेधनके गुण ॥

अत्यन्तकटुतीक्ष्णोष्णगाढेप्विष्टम्भदेपुतु ।
कुष्ठपाण्ड्वामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु ॥

अर्थ—तोरई अत्यन्त कटु, तीक्ष्ण और उष्ण होती है, । यह मादरोगों में उप-योगी होती है, कुष्ठ, पाण्डुरोग, प्लीहा, शोफ, गुल्मरोग और विषरोग इस के सेवन से दूर होजाते हैं ॥

कृतवेधन के कल्प ॥

क्षीरादिकुसुमादीनिमुराचंतेपुपूर्ववत् ।
सुधुष्काणान्तुजीर्णानामेकद्वेवायथावलम्
कपायैर्मधुकादीनानवाभिःफलवत्पिबेत् ।
काथयित्वाफलंतस्यपूत्वालेहनिधापयेत् ।
कृतवेधनकल्काक्षफलाद्यर्द्धांशसंयुतम् ॥
पृथक्चारुवधादीनांत्रयोदशभिरासुतम् ॥
शाल्मलीमूलवृन्तानांपिच्छाभिर्दशभिस्तथा ।
वर्तिक्रियापटुफलवत्फलादीनांष्ट्र
तंतथा ॥

अर्थ—कृतवेधन के पत्ते, फूल और फल आदि के साथ दूध पकाकर वमन के लिये दिया जाता है, इसके पुष्प फलादिकों को रात्रि में सुरा में भिगोकर प्रातःकाल

छानकर पीने से वमन होती है । कृत-
वेधनके एकत्रा दो पकेहुए सूखेबीज मुलहटी
और कोविदारादि आठ द्रव्यों के काथ में
किमी के साथ मेनफल की तरह लेवें ।
कृतवेधन का क्वाथ करके छान लेवें और
फिर उसे लेह की तरह पकाकर सेवन करें
कृतवेधन का कल्क दो तोले इस में मेनफल
का कल्क एक तोले मिलाकर सेवन करें ।
आम्रवधादि तेरह द्रव्यों के भिन्न भिन्न
क्वाथ में कृतवेधन को भिगोकर और छान
कर सेवन करें । सेमर की जड़ और डंठल
का पिच्छा आदि दस द्रव्यों के साथ पृथक्
पृथक् सिद्ध करके सेवन करें । इसी तरह
कोविदारादि भिन्न २ छः द्रव्यों के साथ
कृतवेधन की छः प्रकार की बत्ती बनाई
जाती है ॥ तथा मेनफल के सदृश ही कृत-
वेधन का घृत भी तैयार किया जाता है ।
कोशातफानिपञ्चाशत्कोविदाररसेपचेत् ।
तद्भायंफलादीनांकल्कैर्लेहं हि साधयेत् ॥
क्ष्वेदस्य तत्र भागः स्याच्छेषाण्यर्द्धांशिक-
स्य च ॥ कपायैः कर्षुदाराद्यैरेवन्तत्कल्प-
येत्पृथक् ॥ कपायेषु फलादीनां मानूपं पि-
शिते पृथक् ॥ कोशातकीफलं पक्त्वा तद्र-
संलवणं पिबेत् ॥ फलादिपिप्पलीतुल्य-
न्तद्रत्नैर्वेदरसं पिबेत् । क्ष्वेदं काये भवेत्सि-
द्धं मिश्रमिभुरसेन च ॥

अर्थ—पचास कृतवेधन फलोंको को-
विदारके रसमें पकावें । इसकाथमें मदन
फलादि द्रव्यों का कल्क डालकर लेह ब-
नावें । जितनी कृतवेधन डाली जाय उस

से आधे अन्य द्रव्य डालने चाहिये । फिर
इन सबको कोविदारादि द्रव्योंके पृथक् २
क्वाथमें पकाकर सेवन करें । मेनफलादि
के क्वाथमें आनूपमांस और कोशातकीको
पकाकर उस रसको नमकके साथ पीना
चाहिये । उक्त कोशातकी और आनूपमांस
इनके पकेहुए रसको मेनफलादि पीपल प-
र्यन्त द्रव्यों के क्वाथ में पकाकर सेवन
करें अथवा मेनफलादि के क्वाथ में सिद्ध
कीहुई कोशातकी को ईखके रसके साथ
पीना चाहिये ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

क्षीरेद्वौ द्वांसुराचैकाकाथाद्वाविंशतिस्तथा
दशपिच्छाघृतंचैकंपट्चवर्तिक्रियाः शुभाः ।
लेहेऽष्टौ मसृमांसच योगेश्वरसेऽपरः ॥ कृत
वेधनकल्पेऽस्मिन्पट्टियोगाः प्रकीर्तिताः

अर्थ—इस अध्याय में दूध के चार
सुरा का एक, क्वाथके बाईस, पिच्छाके दस,
घी का एक, वर्तित छः, लेह आठ, मांस के
सात और ईख के रस का एक इस तरह
कोशातकीके साठ प्रयोग वर्णन किये गये हैं ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विर-
चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहिता

यांकल्पस्थाने कृतवेधनकल्पो नीम

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः श्यामात्रिवृत्कल्पं व्याख्यास्यामः ।
इति ह्यमाह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अवहम श्यामात्रिवृतकल्पकी व्याख्या करेंगे विरेचनेत्रिवृत्तमूलश्रेष्ठमाधुर्मनीषिणः ॥

तस्याःसंज्ञागुणःकर्मभेदाःकल्पश्चवक्ष्यते

अर्थ—पण्डितोंने विरेचनके लिये निसोथ की जड़ बहुत उत्तम कही है इसी से अब हम उस के नाम, गुण, क्रियाभेद और कल्पों की व्याख्या करते हैं ॥

त्रिवृताकेनामा

त्रिभाण्डात्रिवृताश्यामासुवहाकोटारातथा त्रिवृत्सर्वाभूतिश्चशङ्खःपर्यायवाचकैः॥

अर्थ—त्रिभंडी, त्रिवृता, श्यामा, सुवहा कोटारा [कुटुणा] और सर्वानुभूति ये इस के पर्यायवाची शब्द हैं, इसे भाषामें निसोथ कहते हैं ।

निसोथकेगुण ।

कपायामधुरारुक्षाविपाकेकटुकाचसा ।

कफपित्तप्रशमनीरौक्ष्याच्चानिलकोपनी॥

सेदानीमौपैथ्यक्तावातपित्तकफापहैः ॥

कल्पावशेष्यमासाद्यसर्वरोगहराभवेत् ।

अर्थ—निसोथ कसीली, मिष्ट, रुक्ष और कटुपाकी होती है यह कफपित्तको दूर करती है, रुखी होनेके कारण वात को प्रकुपित करती है । परन्तु वात, पित्त तथा कफनाशक औषधियोंके योगसे अनेक कल्पनाओं के द्वारा सम्पूर्ण प्रकार के रोगोंको दूर करती है ।

निसोथकेभेद ।

मूलन्तुद्विविधंतस्याःश्यामंचारुणमेवच ॥

तयोर्मुह्यतरंविद्धिमूलंयद्वरुणप्रभम् ॥

अर्थ—निसोथ की जड़ लाल और काली दो तरह की होती है, इनमें से लाल जड़ वाली निसोथ बहुत उत्तम होती है । यह सुकुमार, बालक, वृद्ध और मृदु कोष्ठ वालोंके लिये उत्तम होती है ।

श्यामात्रिवृतकेगुण ॥

सुकुमारेणिशौवृद्धेमृदुकोष्टेचतच्छुभम् ।

मोहयेदाशुकारित्वाच्छयापाकण्डक्षिणो

त्यपि । तैक्ष्ण्यात्कर्पतिदृक्कण्डमाशुदो

पंहस्तपि ॥ शस्पतेवहुदोषाणांक्रूरको

ष्टाश्चयेनराः॥

अर्थ—श्यामानिसोथ आशुकारी होनेसे मोह और कंठमें क्षोणता करती है तैक्षण होनेसे हृदय और कंठको कर्पित करती है, तथा दोषको शीघ्रही दूर करदेती है । यह निसोथ बहुत दोषवाले और कड़े कोष्ठे वालों के पक्ष में हित है ।

गुणवत्यन्तयोर्भूमौजातमूलंसमुदरेत् ॥

उपोष्यप्रयतःशुक्लेशुक्लवासाःसमाहितः॥

गम्भीरानुगतंश्लक्ष्णंअतिर्यग्विसृतश्चयत्

गृहीत्वाविसृजेत्काष्ठंत्वंचंशुष्कानिधा

पयेत् ॥

अर्थ—श्रेष्ठ गुणवाली भूमिमें उत्पन्न हुई दोनों प्रकारकी निसोथकी जड़ लाई, लानेके दिन उपवास करें और पवित्रता से स्वच्छ वस्त्र धारण कर के शुद्धपक्ष में लाने का प्रयत्न करें । निसोथकीजड़ जो सीधी और फैलती हुई बहुत नीचे को चली गई हो और धिकनी हो उसे निकाल कर छालको सुखाकर रखलेवें और काटको त्याग देवें

निसोथकी मात्रा ।

स्निग्धास्विन्नोविरेच्यस्तुपेयामात्राशितः
सुखम् । अक्षमात्रन्तयोःपिण्डविनीया
म्लेननापिवेत् ॥ गोव्यजामहिषीमूत्रसौ
वीरकतुपोदकैः । प्रसन्नयात्रिफलयाशृत
याचपृथक्पिवेत् ॥ एकैकसैन्धवादीनां
द्वादशानांसनागरम् । त्रिवृद्विगुणसंयु
क्तचूर्णमुष्णाभ्युनापिवेत् ॥

अर्थ—जिसको विरेचन देना हो उसे
स्निग्ध और स्वेदित करके दोनों प्रकारकी
निसोथ में से किसी को तोले भर कांजी में
मिलाकर पीवै विरेचन के पीछे पेया आदि
का सेवन करे । इसी तरह से तोले भर
निसोथ की जड़ को गौ, भेड़, बकरी भेस
का मूत्र, सौवीर, तुपोदक, प्रसन्ना वा त्रिफला
के काथ के साथ पीवै । अथवा चार सैधवा
दिक और आठ प्रकार के मूत्र इन में से
किसी के साथ, निसोथ से दुगुनी सोंठ
ढालकर पीवै ऊपर से गरमजल पीलेवै ॥
मरिचंपिप्पलीमूलमगधागजपिप्पली ॥
सरञ्जःकलिमंदिहृद्गभार्गतेजोवतीतथा
मुस्तैहैमवतीपथ्याचित्रकोरजनविचा ॥
स्वर्णक्षीर्यजमोदाचशृङ्गवेरञ्चतैःपृथक् ॥
एकैकाधौशसंयुक्तपिवेद्गोमूत्रसंयुजम् ॥
मधुकाद्रीशसंयुक्तशर्कराम्बुयुतापिवेत् ॥
अर्थ—कालीमिरच, पीपलामूल, पीपल,
गजपीपल, सरलकाष्ठ, देवदारु, हिंग, भा-
लंगी, चव्य, मोथा, वच, हरड़, चीता, हलदी,
पच, स्वर्णक्षीरी, अजमोद, और सोंठ इन
सब द्रव्यों से दूनी निसोथ मिलाकर गोमू-

त्र के साथ पान करे । अथवा एक भाग
मुल्हठी और दो भाग निसोथ मिला कर
शर्करा के जल के साथ पीवै ॥
कर्कटाश्रावणीचमेदपभकजीवकौ ॥
मुद्गमापाख्यपर्णीचमहतीश्रावणीतथा ॥
काकोलीक्षीरकाकोलीछत्राछिन्नरुहांतथा
क्षीरशुक्लांपयस्याश्रयष्ट्याहंविधिना
पिवेत् ॥ वातपित्तहितान्येतान्यन्यानि
तुक्फानिले ।

अर्थ—काकड़ा सींगी, श्रावणी, मेदा,
ऋषभक, जीवक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, म-
हाश्रावणी, काकोली, क्षीरकाकोली, छत्रा,
गिलेय, क्षीरशुक्ला, विदारीकन्द और मुल्ह-
ठी इन के समान निसोथ मिलाकर पीवै ।
ये प्रयोग वातपित्त में हित हैं तथा अन्य
प्रयोग वातकफ में हित हैं ।

क्षीरमासेशुकाश्मर्याद्राक्षापीलुरसैःपृथक्
सर्पिषावातयोश्चूर्णमभयार्धाशिकंपिवेत्
लिह्याद्दामधुसर्पिर्भ्यांसंयुक्तंससितोपलम्
अजगन्धातुगाक्षीरीविदारीशर्करात्रिवृत्
चूर्णितंक्षौद्रसर्पिर्भ्यालीद्वासाधुविरच्यते
सन्निपातज्वरस्तम्भदाहवृण्णादितोनरः

अर्थ—दूध, मांसरस, ईख का रस, खं-
भारी, दाख, पीछ का रस वा घी के साथ
आधा भाग हरड़ का मिलाकर दोनों प्रकार
की निसोथ में से कोई सी पीवै । अथवा
निसोथ के चूर्ण में शहत, घी और चीनी
मिलाकर चाटै । अजगन्ध, वंशलोचन, वि-
दारीकन्द, चीनी और निसोथ इन के चूर्ण
को शहत और घी में सानकर चाटने से

अच्छी तरह विरेचन होता है । सन्निपातज
ज्वर, स्तम्भ, दाह और तृष्णा में यह विरे
चन हित होता है ।

श्यामात्रिष्टक्तपाथेणकल्केनचमशर्करम् ॥
साधयेद्विधिवलेहंलिङ्गात्पाणितलंततः ।
सक्षौद्रांशर्करांपक्त्वाकुर्यान्मृच्छाजनेनवे ॥
क्षिपेच्छीतंत्रिवृच्चूर्णत्वरूपत्रमारिचैःसह ।
मात्रयालेहयेदेतदीश्वराणांविरेचनम् ।
कुडवांशान्तरसानिधुद्राक्षापीलंपरूपाकात्
सितोपलापलेक्षौद्रात्कुडवार्द्धञ्चसाधये-
त् । तलेहंयोजयेच्छीतंत्रिवृच्चूर्णेनशा
स्त्रवित् । एतदुत्सन्नपित्तानामीश्वराणां
विरेचनम् ॥

अर्थ—श्यामा निसोध का काथ, कल्क
और चीनी मिलाकर लेह की तरह पकावें
और इस में से दो तोले चाँटें । शर्करा को
पकाकर ठंडा होने पर शहत मिलाकर
मिष्टी के नये पात्र में रखदेवें इसी में
निसोधका चूर्ण, दाहचीनी, तेजपात, काली
मिरच इनका चूर्ण भी उस में डाल देवें
इसको मात्रावत् सेवन करें । यह विरेचन
सेठसाहूकार राजा महाराजाओंको उपयोगी
है । अथवा ईख का रस, दाख का रस,
पीछूका रस और फालसे का रस एक एक
कुडव और चीनी दो पल इन सबको प-
का कर ठंडा करले ठंडा होने पर आधा
कुडव शहत मिलाकर भर लेंवें इस लेह में
निसोध का चूर्ण मिलाकर सेवन करें । यह
विरेचन धनंजान् उदीर्ण पित्तवालों के लिये
हितकर है ।

पैत्तिक प्रकृति वालों का विरेचन ॥
शर्करामोदकान्वर्तिगुलिकापांसूपकान् ॥
अनेनविधिनाकुर्यात्पैत्तिकानांविरेचनम् ॥

अर्थ—पित्तप्रकृति वालों के लिये निसोध
के दूरे के लड्डू, वर्ति, गुलगुला, मांसके
पूआ आदि बनाकर विरेचन के लिये देवें ।
कफप्रकृति के लिये विरेचन ।
पिप्पलीनागरंक्षारंश्यामात्रिष्टक्तपासह ।
लेहयेन्मधुनासार्द्धंश्लेष्मलानांविरेचनम् ॥

अर्थ—कफप्रकृति वालों के लिये पीपल
सोंठ, क्षार और श्यामात्रिष्टत इनको शहत
के साथ चटाने से विरेचन होता है ॥
कफाधिक्य में राजाओंके योग्य विरेचन
मातुलुङ्गाभयाधार्त्रीश्रीपर्णीकोलदाडिमा
त् ॥ सुभृष्टान्स्वरसांस्तैलेसाधयेत्तत्रचा
वपेत् ॥ सहकारान्कपित्यांश्रसाध्यमम्ल
श्रयत्फलम् । पूर्ववद्दहलीभूतेत्रिवृच्चूर्णे
समावपेत् ॥ त्वक्पत्रकेसरैलानांचूर्णश्च
मधुमात्रया । लेहोऽयंकफमूलानामीश्व
राणांविरेचनम् ॥

अर्थ—विजौरा, हरद, आमला, श्रीपर्णी,
वेर और अनार इन सबका समान भाग
रस और इतनीही शर्करा लेकर मिला देवें
और पाक करें । पाँछे इसे तेलमें भूनलेवें ।
और फिर इस में निसोध डाल देवें । इसी
तरह से आम, कैथ, तथा अन्य खट्टे फलों
के क्वाथ को पकाकर गाढ़ा करले और
फिर उस में निसोधका चूर्ण डाले और
दाहचीनी, तेजपात, केसर और इलायची
इम में डालदेवें, फिर इस को शहत के

साथ चाटे । यह विरेचन कफप्रधान राजा
महाराजाओं के लिये बहुत हित है ।

पानकानिरसान्पूपांमोदकान् रागपाड
वान् । अनेन विधिना कुर्याद्विरेकायैकफा
धिके ॥ त्वगैलाभ्यां सप्तमीतैस्त्रिवृत्तै
श्चर्करा । चूर्णफलरससौद्रश्वतुभिस्तर्प
णं पिवेत् ॥ वातपित्तकफोत्प्रेषणोपयोग्यवल्पा
नलेपुच । नरोपसुकुमारोपुनिरपायं विरेच
नम् ॥ शर्करात्रिफलाश्यामात्रिवृन्माग
धिकेमधु । मोदकः सन्निपातो ध्वरक्तपि
तज्वरापहः ॥

अर्थ—इसी तरह से पानक, रस, यूप
मोदक और रागपाडव बनाकर कफाधिक
व्यक्तियों के लिये विरेचन के निमित्त देवै
एक भाग दालचीनी, एन भाग इलायची
दो भाग निसोथ और चार भाग चीनीको
मिलाकर अम्लफल के रस, शहत और
जौ के सत्तू के साथ तर्पण पान करै । यह
विरेचन वात, पित्त और कफके रोगों में,
मन्दाग्नि में और सुकुमार मनुष्यों के लिये
हित है । अथवा चीनी, त्रिफला, दोनों
प्रकार की निसोथ, पीपल और शहत इन
सबके मोदक बनावै । ये मोदक सन्निपात
ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त और ज्वर को दूर करता है
त्रिवृच्छाणामृतास्तिस्त्रिस्तश्चात्रिफला
त्वचः ॥ विडङ्गपिप्पलीक्षारशाणास्तिस्त्र
श्चूर्णिताः । लिङ्गात्सर्पिमधुभ्याश्चमो
दकं वा गुडेन च ॥ भक्षयेन्निपरीहारमेत
च्छोधनमुत्तमम् ॥ गुल्मं ग्रीहोदरं वासं ह
लीमकमोचकम् ॥ कफवातकृतांश्चान्या
न्याधीने तद्व्यपोहति ॥

अर्थ—निसोथ तीन शाण, गिलोय तीन
शाण, त्रिफलाकी छाल तीन शाण, वायविडंग
एक शाण, पीपल एक शाण और जवाखार
एक शाण इनका चूर्ण करके घी और शहत
के साथ चाटे अथवा इसमें गुड मिलाकर
मोदक बनालेवै । इन मोदकोंके सेवनमें
आहारादि के त्यागने की कुछ आवश्यकता
नहीं है, यह विरेचन बहुत उत्तम है इस
से गुल्म, ग्रीहा, उदररोग, श्वास, हलीमक,
अरुचि, तथा कफवातकृत अन्य व्याधियां
दूर हो जाती हैं ।

कल्याणक गुटिका ।

विडङ्गपिप्पलीमूलत्रिफलाधान्याचित्रकम् ॥
मरिचैन्द्रयवाजानीपिप्पलीहस्तिपिप्पली ॥
लवणान्यजमोदाच्चूर्णितं कार्पिकं पृथक् ॥
तिलतैलत्रिष्टूचूर्णभागौ चाष्टपलोन्मितौ ॥
धात्रीफण्डरसप्रस्यांस्त्रीनगुडार्द्धतुलान्तथा
पक्त्वा मृदाग्निना स्वादे द्वादशोदुम्बरोपमाना
गुडानकृत्वानचास्यस्याद्विहाराहारयन्त्रणा
कुष्ठार्शः कामलामेहगुल्मोदरभगन्दरम् ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगाश्च हन्त्युः पुंसवनाश्च ते ॥
कल्याणका इति ख्याताः सर्वेष्वेतुषु यौगिका

अर्थ—वायविडंग, पीपलामूल, त्रिफला,
धनियां, चीता, कालीमिरच, इद्रजौ, जीरा,
पीपल, गजपीपल, सेंधानमक, अजमोद,
इन में से प्रत्येक एक एक पल लेकर चूर्ण
कर लेवै तथा तिलका तेल आठ पल, निसोथ
का चूर्ण आठ पल, आंवले का रस तीन
प्रस्थ और पुराना गुड आधी तुला, इक्केकरै ।
प्रथम आंवले के रस में गुडकी चासनी करै

फिर इस में उक्त द्रव्योंका चूर्ण और सुपक तैल डालदेवै फिर इसमें से घेर वा गूलर की बराबर गोलियां बनावै । इन गोलियों के सेवन करने में किसी प्रकार के आहार बिहार का निषेध नहीं है । इसके सेवन से कुष्ठ, अर्श, कामला, प्रमेह, गुल्म, उदररोग, भगन्दर, गृहणी रोग, पाण्डुरोग दूर होजातेहैं । यह पुंसवनभी है । इसका नाम कल्याणक गुटिका है । यह सम्पूर्ण ऋतुओंमें उपयोगी होती है ।

व्योपादि विरेचन ॥

व्योपत्वक्पत्रमुस्तैलाविडङ्गामलकाभयाः
समभागाभिपद्मद्यादद्विगुणञ्चमुकूलक
म् ॥ त्रिवृतोऽष्टगुणं भागं शर्करायाश्च पद्मगु
णम् ॥ चूर्णितं गुलिकान्कृत्वा क्षौद्रेण प
लसम्मितान् । भक्षयेत्कल्पमुत्थाप्यशीतं
चानुपिवेज्जलम् ॥ मूत्रकृच्छ्रे ज्वरे च म्यां
कासे श्वासे भ्रमे क्षये । तापे पाण्डवामयेऽ
ल्पेऽग्नौ शस्तानिर्यन्त्रिताग्निः ॥ योगः
सर्वविपाणाश्च मतः श्रेष्ठविरेचनम् ।

अर्थ—त्रिकुटा, दालचीनी, तेजपात, मोथा, इलायची, वायविडंग, आंबला, हरड़, इन सबका चूर्ण समान भागलेवै, दंतीदोभाग लेवै, निसोध आठ भाग और शर्करालः भाग । इन सबका चूर्ण करके शहतमें सानकर एक २ पल की गोली बनावै । इन में से प्रातः काल एक गोली को खाकर ऊपरसे ठंडा जल पीलेवै । इसके सेवनसे मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, वमन खांसी, श्वास, भूम, क्षयरोग, ताप, पाण्डुरोग और मन्दाग्नि दूर होजाते हैं, इसमें आहार

बिहार की कुछ यंत्रणा नहीं है । यह सब प्रकार के विषरोग में भी श्रेष्ठ है ।

दशमोदकोका प्रयोग ।

त्रिवृतपलं द्विप्रसृतं पथ्याधान्यरवूकयोः ।
दशैतान्मोदकान्कुर्यादीश्वराणां विरेचनम् ॥

अर्थ—निसोध एक पल, हरड़, धनियां और अरंड की जड़ दो प्रसृत इन सबका चूर्ण बनाकर शहत वा गुड के साथ दस मोदक बनावै । यह विरेचन राजा वा धनी लोगों के पक्ष में बहुत हित है ।

त्रिवृद्धै मवती श्यामानीलिनी हस्तिपिप्पली
समूलापिप्पली मुस्तमजमोददुरालभा ।
अर्द्धांशिकं पलं शुण्ठ्यागुडस्य पलं विंशतिम्
चूर्णितं मोदकान्कुर्यादुदुम्बरफलोपमानं ।
हिगुसौवर्चलव्योपयवानीविडजीरकैः ॥
यचाजगन्धात्रिफलाचव्यचित्रकधान्यकैः
मोदकान्वेष्टयेच्चूर्णैस्तान्सुतुम्बुरुदादिभैः
त्रिक्वंशणहृद्वास्तिकोष्टांशैः श्लिष्टा लीनाम् ।
हिकाकासारुचिश्चासफोदावर्तिनां शुभाः

अर्थ—लाल निसोध, सफेदवच, श्याम-निसोध, नीलिनी, गजपीपल, पीपल, पीपला-मूल, मोथा, अजमोद, जवासा, ये सब आधे आधे पल लेवै । सोंठ एक पल और गुड बीस पल इन सबका चूर्ण करके गूलर के बराबर मोदक बनालेवै । पीछे हींग, संचर-नमक, त्रिकुटा, अजवायन, वाय विडंग, जीरा, वच, अजगंध, त्रिफला, चव्य, चीता, धनियां इन सब का चूर्ण करके ऊपरके मोदकोको इस चूर्ण में लपेट देवै, अथवा

तुम्बरु और अनार के छिलके के चूर्ण में
लेपेटें देवें । इसके सेवन करने से त्रिक,
वक्षण, हृदय, वस्ति, कोष्ठ, अर्श और
ग्रीवा इनका शूल दूर होजाता है । हिचकी
खांसी, अरुचि, श्वास, कफ और उदावर्त
वालों के लिये भी ये हित है ।

शुण्ठीमरिचपिप्पल्यःकार्पिकाःस्युःपृथक्
पृथक् ॥ द्विगुणेशर्करैलेचसातलास्याच्च
सुर्गुणा । नीलिनीमष्टगुणितांद्विगुणितानि
तथा ॥ दन्तीद्रवन्तीत्वक्छाणमेकंचात्र
प्रदापयेत् । अस्मादर्द्धपलंचूर्णाद्विद्यात्मा
शिक्षसंयुतम् ॥ शीतोदकानुपानान्तुनिर
पायंविरचनम् ।

अर्थ—सोंठ, कालीमिरच, पीपल, ये
तीनों एक २ कर्प लेवें, शर्करा दो कर्प
इलायची दोकर्प, सातला चार कर्प, नीलिनी
आठ कर्प, दन्ती वत्तीसकर्प, द्रवन्ती और
दालचीनी एक एक शाण लेकर सब का
चूर्ण बनालेवें, इस चूर्ण में से आधापल
शहत के साथ सेवन करें, ऊपर से ठंडा
पानी पीले तौ उपद्रव रहित विरेचन होताहै

भिन्न भिन्न क्रतु के विरेचन ।
त्रिवृतांकोटजंबीजंपिप्पलीविश्वभेषजम्
समाद्धीकरमशौद्रवर्षास्वेतद्विरेचनम् ॥
त्रिवृद्दुरालभासुस्ताशर्करोदीच्यचन्दनम्
द्राक्षाम्बुनासयप्याहशीतलंजलदात्य
ये । त्रिवृतांचित्रकंपाठांअजाजीसरलंवचा
म् ॥ स्वर्णदुग्धीचहेमन्तेपिप्पलातूष्णाम्बुना
पिवेत् । शर्करात्रिवृतातुल्याग्नीष्मकाले
विरेचनम् । हृषुपांसप्तशंश्यामांद्रवन्तीक

दुरोहिणीम् । स्वर्णक्षीरीश्वसंचूर्णयोगोम्
त्रेभावयेज्यहम् ॥ एपसर्वतुकोयोगःस्नि
ग्धानांमलदोषहृत् ॥

अर्थ—निसोथ, इन्द्रजौ, पीपल, सोंठ
इनके चूर्ण को दाख के रस और शहतके
साथ लेवें यह विरेचन वर्षा ऋतु में हित है
निसोथ, जवासा, मोथा, शर्करा, नेत्रवाला,
रक्तचन्दन, और मुलहटी इनके चूर्ण को
द्राक्षा के शीतल कपाय के साथ पानकरें
तौ शरदऋतु में अच्छा विरेचन होता है ।
हेमन्तऋतु में निसोथ, चीता, पाठा, जीरा,
सरलकाष्ठ, वच और स्वर्णक्षीरी इनके चूर्ण
को गरमजल के साथ पानकरें । ग्रीष्मऋतु
में विरेचन के लिये निसोथ और चीनीको
समानभाग मिलाकर देवें । हाउवेर, सात-
ला, श्यामनिसोथ, द्रवन्ती, कुटकी और
स्वर्णक्षीरी इन सब का चूर्ण कर के तीन
दिनतक गोमूत्र में भिगो देवें । इस का से-
वन सब ऋतुओं में होसक्ता है, स्निग्ध-
कर के इस विरेचन को देने से मलके दोष
दूर होजाते हैं ॥

त्रिवृच्छ्यामेदुरालम्भावत्सकंहस्तिपिप्प
ली । नीलिनीत्रिफलामुस्तंकडुकाचसुचू
णितम् ॥ सर्पिर्मांसरसोष्णाम्बुयुक्तंपा
णितलंततः । पिवेत्सुखतमंश्वेतद्रक्षानाम
पिशस्यते ॥ त्र्युपणंत्रिफलांहिगुकार्पि
कंत्रिवृतापलम् । सौवर्चलार्द्धकर्पदचप
लार्धचाम्लवेतसात् ॥ तच्चूर्णशर्करातु
ल्यंमयेनाम्लेननापिवेत् ॥ गुल्मपाश्वर्ति
तुत्तिदंजीर्णेषांघ्रादसौदनम् ॥

अर्थ—दोनों प्रकारकी निसोथ, जवासा, इन्द्रजौ, गजपीपल, नीलिनी, त्रिकला मोथा और कुटकी इन सब का चूर्ण करके, घृत मांसरस वा उष्णजलके साथ दो ताले सेवन करें। यह विरेचन रूक्ष व्यक्तियों को भी सुखपूर्वक होता है। त्रिकला, त्रिकुटा और हींग एक २ कर्ष निसोथ एक पल, संचल नमक आधा कर्ष, अम्लवेत आधा पल, इस सबके बराबर चीनी मिलाकर मद्य वा अम्ल के साथ पान करें। इस के सेवन से गुल्म, रोग और पार्श्ववेदना दूर हो जाती है। ओषध के पचनेपर मांसरस और भातका भोजन करें ॥

सप्तलात्रिकलादन्तीत्रिवृतांव्योषसैन्धवे।
कृत्वाचूर्णितुसप्ताहंभाव्यमामलकीरसे ॥
तथोज्यंतर्पणेषुपेपिशितेरागयुक्तिषु ॥
तुल्यमलं त्रिवृताफलकंसिद्धं गुल्महरं घृतम्
मूल्यं शमात्रिवृतयोः पचेदामलकैः सह ॥
जले तेन कृपायेण पक्त्वा सर्पिः पिबेन्नरः ।
निर्गुणं तथोयुक्त्वासिद्धसर्पिः पिबेत्तथा ।
साधितं वापयस्ताभ्यां मुखे तेन विरिच्यते ॥

अर्थ—सातला, त्रिकुटा, दन्ती निसोथ त्रिकुटा, सैन्धानमक इनका चूर्ण करके सात दिवस तक आंवले के रस में भिगोवै। इसका तर्पण, यूप, गोसं और रागपाडवादि द्वारा प्रयोग करें। कांजी और घृत समान भाग तथा चतुर्थीश निसोथ मिलाकर पाक करें यह घृत गुल्मनाशक है। दोनों प्रकार की निसोथ को आंवलों के साथ अठगुने जल में पाक करें चौथाई

शेष रहने पर छान कर उस क्वाथ में घृत पकावै। अथवा इन दोनों के निर्यूह में केवल दूध वा घी पकाकर सेवन करने से सुखपूर्वक विरेचन होता है।

जलद्रोणेपचेदष्टैत्रिवृन्मुष्टीतसन्नखात् ॥
पादशेषं कृपायंतं शीतं गुडतुलायुतम् ॥ स्निग्धं
स्थायं घटैः सौद्रापिपलीफलचित्रकैः ॥
प्रलिंभे विधिना मासज्जातं तन्मात्रयापिवेत् ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं गुल्मं श्वयधुनाशनम् ॥

अर्थ—नखसहित आठ मुट्ठी निसोथ को एक द्रोण जल में पकावै, जब चौथाई शेष रह जाय तब छानले। जब वह क्वाथ ठंडा होजाय तब उस में एक तुला गुड मिलावै। फिर एक चिकने घडे के भीतर शहत, पीपल, मेनफल और चीते का लेप करके उस में इसे भर दे एक महीने पीछे मात्राके अनुसार इसका सेवन करें तो ग्रहणी पाण्डुरोग, गुल्म और सूजन दूर होजाती है। सुरांवात्रिवृतां पादकिष्वांतकापसंयुताम् यवैः श्यामात्रिवृकाथे स्निग्धैः कुल्मापमन्मसा ॥ आसुतं पट्टहं गले जातं सौवीरकं पिबेत् ॥ भृष्टान्वासुतुपान् शुद्धान् श्वांस्तच्छूर्णसंयुतान् ॥ आसुतान्मसातद्रूपेज्जातं तु पोदकम् ॥ तयामदनकृत्वा त्र्यान्पाडवादीन् पृथग्दश ॥ त्रिवृच्छूर्णेन संयुज्य विरेकार्थं प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—सुरा, त्रिवृता और चतुर्थाश सुगंधीज इनको पकाकर सेवन करें। अथवा दोनों प्रकार की निगोधके क्वाथमें जीर्ण को अच्छी तरह सिजाकर छानले फिर

इस क्वाथमें कुल्माष मिलाकर छःरात तक जौके ढेर में गाढ़ देवै। यह सौर्वीर विरेचन से हित होता है। अथवा छिडकों समेत जौ को भुनवाकर इतनीही निसोथ मिलाकर जल में भरकर जौ के ढेरमें गाढ़ देवै। छः दिन पीछे ये तुषोदक तयार होता है। इसी तरह मदन कल्पोक्त दस प्रकार के पाडवादि निसोथ के चूर्ण में मिलाकर विरेचन के लिये देवै। ये ये हैं यथा पाडव राग, अवलेह, मोदक, उत्कारिका, तर्पण, पानक, मांसरस, यूप और मय।

उपसंहार।

त्यक्तेसराभ्रातकदाडिमलासितोपलामा
क्षिकमातुलूः। मयैस्तथान्यैश्चमनोऽनु
कूलैर्युक्तानिदेयानिविरेचनानि॥शीताम्बु
नापीनवतश्चतस्यसिञ्चन्मुखंछर्दिविधात
हेतोः॥ दद्यांश्चमृत्पुष्पफलप्रबालादम्लं

चदद्यादुपजिघ्रणार्थम्॥

अर्थ.....दालचीनी, नागकेशर, आमडा, अनार, इलायची, चीनी, शहत, विजौरा और मय अथवा अन्य मनोऽनुकूल द्रव्यों में मिलाकर विरेचन देना चाहिये। विरेचन-कारक द्रव्य को पान करने से पीछे वमन न होने पाने, इसलिये ठंडे जलसे मुख को धोता रहै। तथा सूघनेके लिये हृदय प्रिय मिठी फूल, फल और पत्ते देता रहै॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

एकोम्लादिभिरष्टौचदशद्वौसैन्यवादिभिः
मृत्रेऽष्टादशमष्टौद्वौजीवकादौचतुर्दश॥
क्षीरादौसप्तलेश्चैष्टौचत्वारःसितयापिच।

पानकादिपुष्पैश्चैवपट्टौपंचमोदकाः॥
चत्वारश्चघृतक्षीरेद्वौचूर्णेतर्पणातथा॥
द्वौमद्येकाञ्जिकेद्वौचदशान्यपाडवादिषु॥
श्यामायासिचृतायाश्चकल्पेऽस्मिन्समुदा
हृतम्। शतदशोत्तरसिद्धयोगानांपरम
पिप्पा॥

अर्थ....इस अध्याय में निसोथ के एक सौ दस कल्पवर्णन किये हैं। अम्लादि के नौ, सैधवादिके वारह, मूत्र के अठारह, मुलहठी के दो, जीवकादि के चौदह, क्षीरादि के सात, लेह आठ, शर्करा के चार, पानकादि के पांच, ऋतुओं के छः, मोदक पांच, घृत और दूध चार, चूर्ण और तर्पण दो, मय के दो और काजी के दो और पाडवादि के दस॥ इस तरह एक सौ दस प्रयोग वर्णन किये गये हैं॥

इतिश्री भापाटीकान्वितायां अग्निवेशविराचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने श्यामात्रिचृतकल्पो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः।

अथातश्चतुरंगुलकल्पं व्याख्यास्यामः।

इतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम चतुरंगुल कल्पकी व्याख्या करेंगे।

चतुरंगुलके अन्यनामः।

आरग्वधोराजवृक्षःशम्पाकश्चतुरंगुलः

मग्नहःकृतमालश्चकर्णिकारोऽवघातकः॥

अर्थ—आरम्भ, राजवृक्ष, शम्पाक चतुरंगुल, मग्नहः कृतमाल, कर्णिकार और अविघातक ये अमलतास के संस्कृत नाम हैं

अमलतास के गुण ॥

ज्वरहृद्रोगवातासृग्गुदावर्तादिरोगिषु ॥

राजवृक्षोऽधिकपथ्योमृदुर्मधुरशीतलः ।

बालेवृद्धेक्षतेक्षीणेषुकुमारैश्चमानवे ॥ यो

ज्योमृद्वनपायित्वाद्विशेषाचतुरंगुलः ।

अर्थ....ज्वर, हृदयरोग वातरक्त और उदावर्तादि रोगों में राजवृक्ष अधिकपथ्य है, यह मृदु, मधुर और शीतल है । यह मृदु और अनपायी (निरुपद्रवकर्ता) है इस से इसका विरेचन बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण और सुकुमारों के लिये बहुत हित है ॥

अमलतासके रखनेकी विधि

फलकालेफलंतस्पग्राह्यपारिणतश्चपत्ता-

पांगुणवतांभारंसिक्तामुनिधापयेत् ।

सप्तरात्रात्समुद्भृत्यशोषयेदातपेभिपक्व ।

ततोमज्जानमुद्भृत्यशुभोभाण्डेनिधापयेत्

अर्थ—जिस ऋतु में इसके फल लगते हों उस में पके हुए फलों को लाकर बाल में गाढ़ दें । सात दिन पीछे निकाल कर धूपमें सुखालेंवे तदनन्तर इनका गूदा निकाल कर एक झुड़ पात्र में भर दें ॥

अमलतासके कल्प ॥

द्राक्षारसयुतांदयोदाहोदावर्चपीडिते ॥

चतुर्दशमुखेबालेपात्रद्वादशवार्षिके ।

चतुरंगुलमज्जस्तुमरुतंवायवाज्जलिम् ॥

सुरामण्डेनसंयुक्तमधवाकोलशीघुना ॥

दधिमण्डेनवायुक्तरसेनामलकस्यवा ॥

कृत्वाशीतकपायंतपिवेत्सौवीरकेणवा ।

त्रिवृन्मज्जस्तथाकलंकतत्कपायेणवापिवेत्

तथाविरुक्कपायेणलवणक्षौद्रसंयुतम् ॥

अर्थ—दाह और उदार्चत्त से पीडित चार वर्ष के बालकसे लेकर बारह वर्ष के बालक तक द्राक्षारस के साथ सिद्ध किया हुआ अमलतास का गूदा बहुत हित है । अमलतासके दो पल वा आधसेर गूदे को सुरामण्ड, वा कोलशीघु, वा दधिमण्ड वा आंवले के रसके साथ पान करें । अथवा इस के शीतकपाय को सौवीरक के साथ पान करें । अथवा अमलतास के गूदे को घोटकर उस के काथ के साथ पीवें । अथवा बेलके काथ के साथ संधानमक और शहत मिलाकर पीवें ॥

कपायेणाथवातस्यत्रिवृच्चूर्णगुडान्वितम् ॥

साधयित्वाशनैलेहंलेहेयन्मात्रयानरम् ॥

चतुरंगुलसिद्धाद्विद्धीराघदुधियाद्घृतम्

मज्जःकलकेनधात्रीणारसंतत्साधितंपिवेत्

तदेवदशमूलस्यकुलत्थानांयवस्यच ॥

कपायेसाधितंककैःसर्पिःश्यामादिभिः

पिवेत् ॥ दन्तीकाथोज्जिलमज्जःशम्पाक

स्यगुलस्यच ॥ कृत्वासाधार्पमासंयमरि

ष्टंपाययंतच ॥ यस्ययत्पानगन्धचूदृक्षया

द्रविवाकटु ॥ लवणवाभवेत्तनयुक्तं दशा

विरेचनम् ॥

अर्थ—अमलतास के काथ में निसीय का

चूर्ण और गुड डालकर देहधत्त धीरे धीरे

पाक करके चटावें । अमलतास से अठगुना दूध और चौगुना जल मिलाकर पाक करे जब पानी जलजाय तब उतरकर छान लेंगे और इस दूध को जमादेवें फिर इसका घी निकाल कर अमलतास के गूदे और आंगले के रस के साथ सिद्ध कर के पान करे ॥
अथवा उसी घृतको दशमूल, कुलर्था और जौ के काथ में श्यामादि निसोध का कल्क ढालकर सिद्ध करके पान करे । अथवा दन्ती का काथ एक अंजली, अमलतासका गूदा और गुड इनको मिलाकर पन्द्रह दिन तक एक पात्र में भरा रहने दे फिर इस औरिष्ठ को पान करावें । जिस मनुष्य को जैसा अन्नपान मधुर, कटु या नमकीन अच्छा लगता हो, उसका उसी में मिला कर विरेचन देना चाहिये ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकाः ॥

द्राक्षारसेसुराशीर्ध्वार्दीधनचामलकीरसे।
सौवीरकृकपायाभ्यां विल्वशम्पाकयोस्त
था ॥ लेहोऽरिष्टोघृतेद्वयोगाद्वादशकी
र्तिनाः चतुरंगुलकल्पेऽस्मिन्मुकुमाराः

प्रकीर्त्तिताः

अर्थ—इस अध्याय में अमलतास के या रह कोमल प्रयोग वर्णन किये गये हैं, यथा दाख के रस, सुरा, कोलशाधु, दही आंगले का रस, सौवीरक, निसोध, विल्व और शम्पाक इनके एक एक कल्प, लेह एक औरिष्ठ एक और घृत दो । इस तरह ये चारह कल्प हैं ॥

इति श्री भाषाटीकाश्रितायां अग्निवेशविराचि-
तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां
कल्पस्थाने चतुरंगुलकालो नामा
ष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

—*—

नवमोऽध्यायः ।

अथातस्तित्वककल्पव्याख्यास्यामः ।

इति हस्माद्भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर्गत भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम तित्वक कल्पकी व्याख्या करेंगे।
लोधके नाम ।

पित्तकस्तुमत्तारोघ्नो वृहत्प्रस्तिरीटकः ॥

अर्थ—तित्वक लोघ्न या रोघ्न, वृहत्प्र
और तिरीटक ये लोध के संस्कृतनाम हैं।

लोधकेकल्पः ।

तस्यमूलत्वचंशुष्कामन्तर्वल्कलवर्जिताम्।

चूर्णयेत्तुत्रिधाकृत्वाद्वाभागौश्च्योतयेत्ततः

लोघ्नस्यैवकपायेणतृतीयंतेनभावयेत् ।

भागंतदशगूलस्यपुनःकाथेनभावयेत् ।

शुष्कंचूर्णपुनःकृत्वाततजर्दं प्रयोजयेत् ॥

दधितकसुरामण्डमूर्त्रैर्वदरशीधुना ॥ रसे

नामलकानांवाततःपाणितलेपिवेत् ॥

अर्थ—लोधकी जड़में से काठ को छोड़

कर केवल छाल निकालकर उसके तीन

भाग करे । एक भाग को सुखाकर चूर्ण

करलेवे, और शेष दो भागों का क्वाथकरे

फिर इस काथ की उक्त चूर्ण में भावना

देवे । फिर दशगूल के क्वाथ की भावना

देवे । फिर इसको सुखाकर चूर्ण बनाकर

खछोड़े इसमें से दो तोले दही, मठा, सुरा-

सुरामन्द, गोमूत्र, कोलशीधु वा आंवले के रस के साथ पानकरै ॥

मेपशृंग्यभयाकृष्णाचित्रकैःसलिलेशृते॥

मरुजानसुनुयात्तच्चजातंसौवीरकंपदा॥

भवेदञ्जलिनातस्यलोध्रकल्कंपिवेत्तदा॥

सुरालोध्रकपायेणजातांपक्षस्थितांपिवेत्

दन्तीचित्रकयोर्द्रोणिसलिलस्याढकंपृथक्

समुत्काथ्यगुडस्यैकांतुलारोश्रस्यचाञ्जलि

म्॥आवपेत्तत्परंपक्षान्मद्यपानाद्विरेचनम्॥

अर्थ—मेंढासिंगी, हरड, पीपल और चीता

इन के क्वाथ में जौ को उवालकर टपका

ले इससे सौवीरक बनता है । यह सौवीरक

आधसेर तथा इसमें मात्राके अनुसार लोध

मिलाकर पानकरै अथवा सुरा और लोध

का क्वाथ मिलाकर पन्द्रह दिनतक धरा

रहने देवै । पीछे इसका सेवन करै । अथवा

एक एक आढक दन्ती और चीतेको अलग

अलग एक एक द्रोण जल में क्वाथ करै,

फिर इस क्वाथ में एक तुला गुड और

आधसेर लोध मिलाकर धरा रहने दे इस

मद्य के पान करनेसे विरेचन होता है ।

तिल्वकस्यकपायेणदशकृत्वःसुभाविताम्

मात्रांकम्पिल्लकस्यैकपायेणपुनःपिवेत्॥

चतुरंगुलकल्पेनलेहोऽन्यःकार्यएवच ।

त्रिफलायाःकपायेणससर्पिर्मधुफणितः॥

लोध्रचूर्णयुतःसिद्धोलेहःश्रेष्ठविरेचनम् ।

अष्टाष्टात्रित्वादीनांपृथङ्मुष्टीस्तुसन्नखान्

द्रोणेऽपांसाधयेत्पादशेषमस्थंघृतात्पचेद्

पिष्टैस्तैरेवविल्वांशैःसमुत्रलवणैरथ ॥

ततोमात्रांपिवेत्कालेश्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ।

लोध्रकल्केनमूत्राम्ललवणैश्चपचेद्घृतम्॥

चतुरंगुलकल्पेनसर्पिपीद्वेचसाधयेत् ॥

अर्थ—लोध्र के क्वाथ में लोध्र के चूर्ण

को दस भावनादेवै फिर इसी चूर्ण में कबीले

के क्वाथ की दस भावना देवै फिर इसे

पान करै । अथवा अमलतास के लेह की

तरह इस का भी लेह बनाकर चाटै । अथवा

त्रिफला के क्वाथ में घी, शहत, राव और

लोध्र का चूर्ण डालकर लेह बनालेवै । यह

विरेचन बहुत अच्छा है । तृट्ठादि द्रव्यों

की सनख आठ आठ मुडी लेकर एक

द्रोण जल में पकावै चौथाई शेष रहने पर

इस क्वाथ में घृत पकावै । अथवा उनही

तृट्ठादि द्रव्यों को एक एक तोले पी-

सकर गोमूत्र और सेंधे नमकके साथ सिद्ध

करके पान करै । अथवा चतुरंगुलकी तरह

लोध्रका कल्क, गोमूत्र, खटाई और नमकके

साथ दो रीति से पाक करै [अमलतास के

कल्कका पिछला प्रकरण देखो] ।

तिल्वकस्यकपायेणकल्केनचसर्करः॥

सघृतःसाधितोलेहःसचश्रेष्ठविरेचनम्॥

अर्थ—लोध्रका कल्क और क्वाथ, मिश्री

और घी इनको एकत्र पकाकर लेह बनावै

यह सर्वोत्तम विरेचन है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

पञ्चदध्यादिभिस्त्वेकःसुरासौवीरकेणच

एकोऽरिष्टस्तथायोगएकःकम्पिल्लकेनच

लेहस्त्रयोघृतेनापिचत्वारःसम्पदर्शिताः।

योगास्तेलोध्रमूलानांकल्पेपादशसंमताः

अर्थ—इस अध्याय में लोध्र के सोलह

कल्प वर्णन किये गये है, यथा दही तक सुरामण्ड, गोमूत्र, कोलशीधु और आंवलेके रस का एक एक, सुराका एक सौवीर का एक, अरिष्ट का एक, कर्वाले का एक, लेह के तीन और घी के चार ।

इतिश्रीमापाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचि

तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां

कल्पस्थाने छोध्र कल्पो नाम

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

—○*○—

दशमोऽध्यायः ।

अथातोमहावृक्षकल्पव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोल कि-
अथ हम महावृक्ष कल्प की व्याख्या करेंगे ॥

विरचनानांसर्वेषांमुधातीक्ष्णतमामता ॥

संघातंतुभिनत्याधुदोपाणांकष्टविभ्रमा ॥

तस्मान्नपामृदौकोष्ठेप्रयोक्तव्याकदाचन

नदोपनिचयेचाल्पेसतिवान्यपरिभ्रमे ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार के विरेचनकर्त्ता द्रव्योंमें सेहृड अत्यन्त तीक्ष्ण है । यह दोषों के संघात को शीघ्रही नष्ट करदेता है यह अत्यन्त कष्टकारक विभ्रम उत्पन्न करता है, इस लिये इसे मृदु कोष्ठ वाले को कभी न देना चाहिये, अल्पदोषों में भी इसका देना ठीक नहीं है जो रोग अन्य विरेचन से साध्य हैं उनमें भी इसका देना ठीकनहीं है

सेहृड साध्य रोग ॥

पाण्डुरोगोदरेगुल्मकुष्ठेद्वीविपार्दिते ॥

श्वयथौमधुमेहचदोषविभ्रान्तचेतसि ॥

रोगैरेवम्बिर्धग्रस्तंज्ञात्वासमाणमातुरम् ॥

प्रयोजयेन्महावृक्षसम्पक्वसह्यचारितः ॥

सद्योनुदतिदोषाणामहान्तमपिसञ्चयम् ॥

अर्थ—पांडुरोग, उदररोग, गुल्म, कुष्ठ, दूषीविपरोग, सूजन, मधुमेह, उन्माद, तथा ऐसेही अन्यरोगों से पीडित मनुष्य यदि बलवान् होतौ सेहृड का प्रयोग करे ॥ सेहृड के अच्छी तरह प्रयोग किये जाने पर दोषों का बड़ा संचय भी शीघ्रही दूर हो जाता है ।

सेहृड के भेद ।

द्विविधःसमतोयेश्चवहुभिश्चैवकण्टकैः ॥

सुतीक्ष्णैःकण्टकरल्पैःप्रबरोबहुकण्टकः ॥

अर्थ—सेहृड दो तरह का होता है एक प्रकार का बहुत कांटों से युक्त होता है, दूसरी तरह के में बहुत प्रेने थोड़े कांटे होते हैं, परन्तु इन दोनों में बहुत से कांटों से युक्त अच्छा होता है ।

सेहृडकेनाम ॥ -

सनामास्तुगुडानन्दामुधानिस्त्रिशपत्रक

अर्थ—स्तुक, गुडा, नन्दा, मुधा और निस्त्रिशपत्र ये सेहृड के संस्कृत नाम हैं ॥

सेहृडकेलानेकीविधि ।

तंविपाट्याहरेत्सीरंशस्त्रेणमतिमान्भिपक्

द्विवर्षवात्रिवर्षवाशिशिरान्तेविशेषतः

विलंबादीनांवृहत्स्यावाकण्टकार्यापिचकशः

कपायंतंममांशेनकृत्वाद्वापुशोपयेत् ॥

ततःकोलसमांमात्रांपिबेत्सौवीरकेणवा

तुपोदकेनकोलानारसेनामलकस्पवा ॥

सुरयादिभण्डेनमातुल्यारसेनवा ।

अर्थ—दो वा तीन वर्ष के पुराने सेहुंड को शस्त्र से चीरकर उसमें से दूध निकाले । दूध निकालने का समय विशेष करके शिशिरऋतु का अन्त है । दूध को निकाल कर बेल, वृहती और कटेरी क्रम से इन के व्वाथ में उसका समानभाग मिलाकर अंगारों पर सुखावै । पीछेसे इसमें से झाड़ीवेर की बराबर सौवीरकके साथ पानकरै, अथवा तुषेदक, वा बेर के रस वा आंवले के रस के साथ पान करै, अथवा सुरा दधिमंड वा विजैरे के रस के साथ पान करै ।

सातलांकाञ्चनक्षीरीश्यामादीनिकटुत्रिकम् ॥ यथोपपत्तिसप्ताहसुधाक्षीरेणभावयेत् । कालमात्रघृतेनातःपिवन्मांसरसेनवा ॥ त्र्युपणंत्रिकलादन्तीचित्रकान्त्रिघृतांतथा । स्नुक्क्षीरभावितंसम्यग्विदद्यांशुडपानके ॥ त्रिवृतारग्वधदन्तीशङ्खिनीसप्तलंसमाम् । गोमूत्ररजनीकृत्वाशोपयेदातपेततः ॥ सप्ताहंभावयित्वैवंस्नुक्क्षीरेणापरंपुनः । सप्ताहंभावयेत्शुष्कं ततस्तेनापिभावितम् ॥ गन्धमालयंतदाघ्रायभावृतपटमेवच । सुखमाशुविरिच्यन्तेमृदुकोष्ठानराधिपाः॥

अर्थ—सातला, स्वर्णक्षीरी, श्यामादि द्रव्य और त्रिकुटा इनको विधिपूर्वक सात दिनतक सेहुंड के दूध की भावनादेवै । फिर बेर की बराबर उस में से गोली बनाकर घी वा मांसरस के साथ पानकरै । अथवा त्रिकुटा, त्रिकला, दन्ती, चीता, निसेध इनको सेहुंड के दूध की भावना

देकर गुड़ के शरबत के साथ पान करावै । अथवा निसोध, अमलतास, दंती, शंखिनी और सातला इन सबको समानभाग लेकर रात्रिके समय गोमूत्र में भिगो देवै । प्रातः काल घूप में सुखालेवै । इस तरह सातदिन तक भावना देकर पीछे सात दिवस तक सेहुंड के दूधकी भावना देवै इस चूर्ण को सुगंधित फूल में रखकर सूधै, सूधते समय शरीर पर मोटा वस्त्र धारण करले । इस के सेवन से कोमल कोष्ठवाले राजालोगों को भी सुखपूर्वक विरेचन होता है ।

श्यामात्रिवृत्कपायेणस्नुक्क्षीरघृतफाणितैः । लेहपक्त्वाविरेकार्यलेहेयन्मात्रयानरम् ॥ पाययेत्सुधाक्षीरंयूपैर्मांसरसैर्घृतैर्भाषितान्शुष्कमत्स्यान्वामासंवाभक्षयेन्नरः ॥ क्षीरेणामलकैःसर्पिश्चतुरंगुलवत्पचेत् । सुरांवाकारयेत्क्षीरंघृतंवापूर्ववत्पचोदिति ॥

अर्थ—श्यामानिसोध के व्वाथ में सेहुंड का दूध, घी और राव पकाकर मात्राके अनुसार लेहन करै तौ विरेचन होता है । सेहुंड के दूध को घी, मांसरस वा यूप के साथ पान करै अथवा सेहुंड के दूधकी सूखी मछली वा मांस में भावना देकर सेवन करै । अथवा अमलतास की तरह सेहुंड के साथ पकायेहुए दूध का घी निकालकर उस में चौथाई सेहुंड का दूध, और चौगुना आंवले का रस मिलाकर पकावे । अथवा सेहुंडका दूध और सुरा समान भाग मिलाकर रखवै अथवा पूर्वकी तरह घृत पकाकर सेवन करे ॥

कल्प वर्णन किये गये हैं, यथा दही तक्र
सुरामण्ड, गोमूत्र, कोलशीधु और आंवलेके
रस का एक-एक, मुराका एक सौवीर का
एक, अरिष्ट का एक, कबीले का एक, डेह
के तीन और घी के चार ।

इति श्रीभाषाटीकाश्रितायां अग्निवेश विरचि
तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां
कल्पस्थाने लोघ्र कल्पो नाम
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

—○*○—
दशमोऽध्यायः ।

अथातो महावृक्षकल्पव्याख्यास्यामः ।

इति हस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोलें कि-
अब हम महावृक्षकल्प की व्याख्या करेंगे ॥
विवेचनानां सर्वेषां सुधातीक्ष्णतमामता ॥
संघातं तु भिनत्याधुदोपाणां कष्टविभ्रमा ॥
तस्मान्नैवापमृदां कोष्ठे प्रयोक्तव्या कदाचन
न दोषनिचये चाल्पे सति वान्यपरिक्लमे ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार के विवेचनकर्त्ता
द्रव्योंमें सेहंड़ अत्यन्त तीक्ष्ण हैं । यह
दोषों के संघात को शीघ्र ही नष्ट कर देता है
यह अत्यन्त कष्टकारक विभ्रम उत्पन्न करता
है, इस लिये इसे मृदु कोष्ठ वाले को कभी
न देना चाहिये, अल्पदोषों में भी इसका
देना ठीक नहीं है जो रोग अन्य विवेचन
क्षेत्र साध्य हैं उनमें भी इसका देना ठीक नहीं है

सेहंड़ साध्य रोग ॥

पाण्डुरोगोदरे गुल्मकुष्ठे दूषी विपादिते ॥

श्वयथो मधुमेहचक्षुषि विभ्रान्तचेतसि ॥

रोगैरेवम्बिधैस्तज्ञात्वासमाजमातुरम् ॥
प्रयोजयेन्महावृक्षसम्यक्संज्ञवचारितः ॥
सद्यो नुदति दोषाणां महान्तमपि सञ्चयम् ॥
अर्थ—पाण्डुरोग, उदररोग, गुल्म, कुष्ठ,
दूषी विप्ररोग, सूजन, मधुमेह, उन्माद, तथा
ऐसे ही अन्य रोगों से पांडित मनुष्य यदि
बलवान् होता है सेहंड़ का प्रयोग करे ॥
सेहंड़ के अच्छी तरह प्रयोग किये जाने
पर दोषों का बड़ा संचय भी शीघ्र ही दूर
हो जाता है ।

सेहंड़ के भेद ।

द्विविधः समतौ ये श्वबहुभिश्चैव कण्टकैः ॥

सुतीक्ष्णैः कण्टकरूपैः प्रवरो बहुकण्टकः ॥

अर्थ—सेहंड़ दो तरह का होता है
एक प्रकार का बहुत कांटों से युक्त होता
है, दूसरी तरह के में बहुत पैसे छोटे कांटे
होते हैं, परन्तु इन दोनों में बहुत से कांटों
से युक्त अच्छा होता है ।

सेहंड़ के नाम ॥

सनामा स्नुग्गुडानन्दा सुधानिस्त्रिशपत्रक

अर्थ—स्नुक, गुडा, नन्दा, सुधा और
निस्त्रिशपत्र ये सेहंड़ के संस्कृत नाम हैं ॥

सेहंड़ के लाने की विधि ।

तं विपाट्याहरेत्सीरंशस्त्रेण मतिमान् अभिपक्व

द्विचर्पवात्रिचर्पवाशिशिरान्ते विशेषतः

बिल्वादीनां वृहत्यावा कण्टकार्यापि चैकशः

कपायंतं समांशेन कृत्वा श्लोरेणुशोषयेत् ॥

ततः कोलसमांशान् पिबेत्सौवीरकेण वा

तुषोदकेन कोलानां रसेनामलकस्य वा ॥

सुरयादिमण्डेन मातुलङ्गरेण वा ।

अर्थ—दो वा तीन वर्ष के पुराने सेहूँड को शस्त्र से चीरकर उसमें से दूध निकालें । दूध-निकालने का समय-विशेष करके शिशिरऋतु का अन्त है । दूध को निकाल कर बेल, बृहती और कटेरी क्रमसे इन के बराबर में उसका समानभाग मिलाकर अंगारों पर सुखावें । पीछेसे इसमें से झाड़ोवर की बराबर सौवीरकके साथ पानकरे, अथवा तुषोदक, या वेर के रस या आंवले के रस के साथ पान करे, अथवा सुरा दधिमंड वा विजैरे के रस के साथ पान करे ।

सातलांकाञ्चनक्षीरीश्यामादीनिकटुत्रिकम् ॥ यथोपपत्तिसप्ताहमुधाक्षीरेण भावयेत् ॥ कालमात्रं घृतेनातः पिबेन्मांसरसे नवा ॥ द्यूपणां त्रिफलां दन्तीं चित्रकं त्रिघृतांतथा । स्नुक्षीरभावि तं सम्यग्विदद्याद्गुडपानके ॥ त्रिवृतास्त्र्यधं दन्तीं शङ्खिनीसत्सलांसमाम् । गोमूत्ररजनीकृत्वा शोषयेदातपेततः ॥ सप्ताहं भावयित्वा स्नुक्षीरेणापरंपुनः । सप्ताहं भावयेत् शुष्कं ततस्तेनापि भावितम् ॥ गन्धमाल्यंतदाघ्रायमावृत्य पटमेव च । सुखमाशु विरिच्यन्ते मृदुकोष्ठानराधिपाः ॥

अर्थ—सातला, स्वर्णक्षीरी, श्यामादि द्रव्य और त्रिकुटा इनको विधिपूर्वक सात दिन तक सेहूँड के दूध की भावना देवे । फिर वेर की बराबर उस में से गोली बनाकर घी वा मांसरस के साथ पान करे । अथवा त्रिकुटा, त्रिफला, दन्ती, चीता, निःसोय इनको सेहूँड के दूध की भावना

देकर गुड के शरबत के साथ पान करावे । अथवा निसोय, अमलतास, दंती, शंखिनी और सातला इन सबको समानभाग लेकर रात्रिके समय गोमूत्र में भिगो देवे । प्रातः काल घूप में सुखावें । इस तरह सातदिन तक भावना देकर पीछे सात दिवस तक सेहूँड के दूधकी भावना देवे इस चूर्ण को सुगंधित फूल में रखकर सूंधें, सूंधते समय शरीर पर मोटा वस्त्र धारण करले । इस के सेवन से कोमल कोष्ठवाले राजा लोगों को भी सुवर्णवर्णक विरेचन होता है ।

श्यामात्रिवृत्कपायेण स्नुक्षीरघृतफाणि तैः । लेहं पयत्वा विरेकार्थं लेहयेन्मात्रया नरम् ॥ पाययेत् सुधाक्षीरं यूपैर्मांसरसं घृतैः भावितान् शुष्कमस्त्यान्वा मांसं वा भक्षयेन्नरः ॥ क्षीरेणामलकैः सर्पिश्चतुरंगुलवत्पचेत् । सुरांवाकारयेत् क्षीरं घृतं वा पूर्ववत्पचेदिति ॥

अर्थ—श्यामानिमोथ के बराबर में सेहूँड का दूध, घी और राव पकाकर मात्राके अनुसार लेहन करे तौ विरेचन होता है । सेहूँड के दूध को घी, मांसरस वा यूप के साथ पान करे अथवा सेहूँड के दूधकी सूखी मछली वा मांस में भावना देकर सेवन करे । अथवा अमलतास की तरह सेहूँड के साथ पकाये हुए दूध का घी निकालकर उस में चीथाई सेहूँड का दूध, और चीगुना आंवले का रस मिलाकर पकावे । अथवा सेहूँडका दूध और सुरा समान भाग मिलाकर रखे अथवा पूर्वकी तरह घृत पकाकर सेवन करे ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ॥

सौवीरकादिभिःसप्तसर्पिपाचरसेनच ।
पानकंघ्रेयलेहौचयोगायुपादिभिःस्त्रयः
द्वौशुष्कमत्स्यमांसानांसुरैकद्विचसर्पिर्पी ।
महावृक्षस्ययोगास्तेविंशतिःसमुदाहृताः॥

अर्थ—इस अध्याय में सेहण्डके बीस प्र-
योग वर्णन किये गये हैं । सौवीरक के सात,
घाँकाएक, मांसरका एक, गुडपानकका
एक, सूँघने का एक, लेहका एक, यूप के
तीन, सूखी मछली और मांस के दो तथा
घी के दो, इस तरह सब मिलकर बीस
कल्प हैं ॥

इतिश्रीभापाटीकान्वितायांअग्निवेशविर-

चितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहिता

यांकल्पस्थानेमहावृक्षकल्पोनाम

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातःसप्तलाशंखीनिकल्पंव्याख्यास्यामः॥

इतिहस्माद्भगवानाग्नेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आग्नेय बोले
कि अब हम सप्तलाशंखनी कल्पकी व्याख्या
करेंगे ॥

सप्तलाशंखनी के नामान्तर ॥

शंखीनित्तिलाचैवयवतिक्ताक्षिपीडकः
सप्तलाचर्मसाद्वैचवहुफेनरसाचसा ॥

अर्थ—शंखनी, तित्कला, यवतिक्ता, अक्ष-
पीडिक ये शंखनीके नाम हैं । तथा सप्तला
चर्मसाह्वा और बहुफेनसा ये सप्तला के
नाम हैं ॥

तेगुल्मगरहृद्रोगकुष्ठशोफोदरादिषु । वि-
कासितीक्ष्णरूक्षत्वाद्योज्येश्लेष्माधिके
पुनः ।

अर्थ—सातला और शंखनी विकाशी,
तीक्ष्ण और रूक्ष होने के कारण गुल्मरोग
गरदोष, हृद्रोग, कुष्ठ, शोफ और उदर
रोगोंको नष्ट करती हैं तथा कफाधिक रोगों में
ये बहुत गुणकारी होती हैं ॥

उक्तदोनोंकीकल्पना ।

नातिशुष्कफलंघ्राह्यंशंखिन्यानिस्तुपीकृ-
तम् ॥ सप्तलायाश्चमूल्यानिगृहीत्वाभाज-
नेक्षिपेत् । अक्षमात्रंतयोःपिण्डंप्रसन्नां
लवणायुतम् ॥ हृद्रोगेकफवातोत्थेगुल्मे
चैवमयोजयेत् । पियालपीलुकर्कन्धुको
लाम्रातकदाडिमैः ॥ द्राक्षापनसखर्जूर-
वदराम्लपरूपकैः । मेरेयदधिमण्डेऽम्ले
सौवीरकतुपोदके ॥ शीघौचाप्येपकल्पः

स्यात्सुखंशीघ्राविरेचनः ।

अर्थ....शंखीनी फलोंके छिलके दूर करके
ऐसे फल लेंवें जो बहुत सूखेहुए नहों और
सातलाकी जड़ लाकर दोनों को एक पात्र
में रखदेवें । फिर इनमें से दो तोले प्रसन्ना
वा सेंधे नमकके साथ हृद्रोग तथा कफवात
जनित गुल्मरोगमें सेवन करें अथवा पियाल-
पीलू, बेरकारस, अंबाडा, खंडाअनार, दाख,
पनस, खजूर, बेरकाकाथ, फालसा, मेरेय,
दधिमंड, कांजी, सौवीरक, तुपोदक वा शी-
घूके साथ सेवन करें । इससे सुखपूर्वक शीघ्र
विरेचन होता है ।

तैलविदारिगन्धादिपयसापीडितं पचेत् ॥
सप्तलाशंखिनीकल्के त्रिवृत्तश्यामार्द्धभा-
गिके । दधिमण्डेन सन्नीय सिद्धन्तम्पाय-
येत च ॥ शंखिनीचूर्णभागौ द्वौ नीलीचूर्णस्य
चापरः । हरितकीकपायेण तैलं तत्पीडि-
तं पिबेत् ॥ अतसीसर्पपैरण्डकरञ्जेष्वेव स-
न्विधिः । शंखिनीसप्तलासिद्धाक्षीरात्
यदुदियां घृतम् । कल्कभागंतयोरेव त्रिवृ-
त्तश्यामार्द्धसंयुतम् । क्षीरेणालोढ्य सन्प-
क्कं पिबेत्तच्च विरेचनम् ॥

अर्थ—तेल चार सेर, शालिपर्ण्यादि पंच
मूल के साथ सिद्ध किया हुआ दूध सोलह
सेर, इसी तरह सातला, शंखिनी और
दोनों प्रकार की निसोथ का कल्क एकत्र
पाक करके तेल तयार करे इस तेलको द-
धिमंडमें मिलाकर पान करे । अथवा शंखि-
नी का चूर्ण दो भाग, नीलिनी का चूर्ण
एक भाग इनको मिलाकर कोल्हू में पिलवा
कर तेल निकलवा लें । इस तेलको हरड
के क्वाथके साथ पान करे । इसी तरह से
अलसी, सरसों, अरण्ड और कंजा की मींगी
मिलाकर तेल निकलवाकर हरडके क्वाथ
के साथ पीते हैं । शंखनी और सप्तला डा-
लकर सिद्ध किये हुए दूध में से घी निका-
लकर उन्हीं दोनों का कल्क दोनों प्रकार
की निसोथका कल्क और जौगुना दूध मि-
लाकर पाक करे यह घृत विरेचक होता है ।
तथा दन्तीद्रवन्तोः स्यादजगन्मयजगन्मयोः
क्षीरिण्यानीलिकायाश्च तथैव च करञ्जयोः
मसूरविदलायाश्च तस्यैव च तथैव च ॥

विडङ्गाद्धाशकल्केन तद्वत्साध्यं घृतं पुनः ।
शंखिनीसप्तलाधात्रीकपायेसाधयेद्घृतम् ॥
त्रिवृत्कल्केन सापिथत्रयोलेहाश्च लोधवत् ॥
सुराकम्पिलयोयोगः कार्यो लोधवदेव च ॥
दन्तीद्रवन्तोः कल्केन सौवीरकतुपोदके ।
अजगन्धाजगन्मयोश्च न द्वत्स्यातां विरेचने ॥

अर्थ—इसी रीति से दन्ती द्रवन्ती के
साथ औटाये हुए दूधका घी निकाल कर
दन्ती, द्रवन्ती और दोनों प्रकार की नि-
सोथ का कल्क और दूध मिलाकर पाक
करे । इसी तरह से शंखनी और सातला
के साथ सिद्ध किये हुए दूध का घी निकाल
कर इन्हीं दोनों का कल्क दो भाग, तथा
मेढासिंगी और अजगंध का कल्क एक भाग
मिलाकर तथा दूध डालकर घी पकावै,
इसी तरह उक्त दुग्धोद्भूत घृतमें क्षीरिणी
और नीलिनी का कल्क मिलाकर अथवा
दोनों प्रकारके कंजोंका कल्क मिलाकर
घी सिद्ध करे । इसी तरहसे मसूर की दाल
प्रत्यक् श्रेणी वा वायविडंग का कल्क डाल
कर घृत सिद्ध करे । अथवा शंखनी, सातला
और आंवलेके रसमें घृत पाक करे ।
सप्तला और शंखनीके साथ तीन प्रकार
के घी निसोथ की तरह तयार करे और
लोधकी तरह लेह बनावै । तथा लोध की
ही तरह सुरा और कर्वाले के कल्क तयार
करे । यथा दन्ती, द्रवन्ती के कल्पकी तरह
अजगंध और मेढासिंगी के सौवीर और
तुपोदक बनाकर सेवन करे ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।
कपायादशपट्टचैव पट्टतैलेऽष्टौ च सर्पिणि ।

पञ्चमद्येत्रयोल्लेहायोगःकम्पिल्लकेतया॥
सप्तलाशंखिनीभ्यांतेत्रिंशदुक्तानयाधिका
योगाःसिद्धाःसप्तस्ताभ्यामेकशोऽपिच
तेहिताः ।

अर्थ—इस अध्यायमें सप्तला और
शंखनी के उन्तालीस योग वर्णन किये गये
हैं । यथा, क्याध के सोलह, तेल के छः,
घी के आठ, मद्य के पांच, लेह तीन और
कन्निलेका एकाग्र सप्त योग सिद्ध किये हुए हैं।
इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विर-
चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां
कल्पस्थाने सप्तला शंखनी कल्पो नाम
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

—*—

द्वादशोऽध्यायः ॥

अथातो दन्ती द्रवन्ती कल्पं व्याख्यास्याम
इति हस्माद् भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम दन्ती, द्रवन्ती के कल्प की
व्याख्या करेंगे ।

दन्ती द्रवन्ती के नामान्तर ।

दन्त्युदुम्बरपर्णी स्यान्निकुम्भोऽथ मुकु-
लः । द्रवन्ती नाम तश्चित्रान्यग्रोधामूपिका
ह्युया ॥

अर्थ—उदुम्बरपर्णी, निकुम्भ और मुकु-
ल ये दन्ती के नामान्तर हैं। चित्रा न्यग्रोधा
और मूपिका ह्युया द्रवन्ती के नाम हैं ।

उक्त द्रव्यों के कल्प ।

तयोर्मूलानि मंशूयस्थिराणि बहलानि च ।
हस्तिदन्तप्रकाराणि श्यावताम्राणि बुद्धि-

मान् । पिप्पलीमधुलिप्तानि स्वेदयेत्तप्तम्
कुशान्तरे ॥ शोषयेदातपेऽग्न्यर्कौ हते
ह्यपां विकापिताम् । तीक्ष्णोष्णान्यामुका
रीणि विकाशीनि गुरुणि च ॥ विलापय
न्ति दोषौ द्वौ मारुतं कोपयन्ति च ।

अर्थ—दन्ती द्रवन्ती की जड़ जो दृढ़,
पुष्ट, हाथी के दांत के सदृश हो तथा श्याव-
वर्ण वा ताम्रवर्ण हो उसे लाकर शहत
और पीपल में लपेट देवें और उस के ऊपर
कुशा बांधकर कपडमिट्टी करदे इसको धूप
में सुखाकर अग्नि में स्वेदित करें। ऐसा करने
से इसकी तीव्रता दूर हो जावेगी । दन्ती
और द्रवन्ती तीक्ष्ण, उष्ण, आशुकारी,
विकाशी और भारी होती हैं ये दोनों कफ
और पित्त को विलीन करती हैं और वायु
को प्रकुपित करती हैं (वायुकारक होने
से पेट में ऐंठा उत्पन्न करती हैं इससे निम्न
लिखित द्रव्यों के साथ में इनका सेवन हित है)

दधितक्रसुरामण्डैः पिण्डमक्षसमन्तयोः ॥

पियालकोलददरीपीलुशीधुभिरेव च ॥

पिबेद्गुल्मोदरीदोषैराभिव्यन्दश्च योनरः

गोमूगाजरसः पाण्डुः क्रिमिकुष्टी भगन्दरी ।

तथोक्त्वा कफपाये च दशमूलरसायुते ॥ क-

क्ष्यालजीवि सर्पपुद्गलैश्च विपचेद्घृतम् ॥

तैलं मेहचगुल्मे च सोदावर्तकफानिले ॥ च-

तुः र्नेहं शकृच्छुक्रवातसङ्घानिलान्तिपु ॥

रसोदन्त्यजशृंग्योश्च गुडक्षौद्रघृतान्वितः ॥

लेहः सिद्धो विरेकार्थदाहसन्तापमेहनुत् ॥

वाततपेज्वरेपित्ते स्यात्सर्पवाजगन्धया ॥

अर्थ—दन्ती द्रवन्तीका कल्क दो तोले दही, तक्र, मुरामण्ड, पियाल, बेर, झाडी बेर, पीलू, शीघ्र, इनके साथमें पीनेसे गुस्मरोग, उदररोग, अभिष्यन्दरोग दूर होजाते हैं, तथा गौ, हिरन और बकरे के मांसरस के साथ पीने से पांडुरोग, किमि-रोग, कुष्ठ और भगन्दर जाते रहते हैं। दन्ती द्रवन्ती का कल्क एक सेर, क्वाथ आठ सेर, दशमूलका क्वाथ आठ सेर और घृत चार सेर इनको पकाकर घृत तैयार करे। यह घृत कलराई, विसर्प और दाहमें हित होता है। अथवा घृत की जगह तेल चार सेर पकानेसे यह तेल गु-ल्म, उदावर्त और वातकफ में हित है अथ-वा घृत वा तेल दोनों के बदले में चार प्रकारके स्नेह पकाकर सेवन करनेसे मल-वद्धता, वीर्यवद्धता, वायुविबन्ध और वायु-रोग दूर होजाते हैं। अथवा दन्ती और में-ढासिंगी की जड़ समानभाग लेकर आठ गुने जलमें पकावे जब चौथाई शेष रहजा-य तब गुड और घृत के साथ पकाकर ले-ह करेले फिर ठंडा होनेपर शहत मिलाकर पास रखछोड़े। इसके सेवनसे विरेचन द्वा-रा दाह, संताप और प्रमेह दूर होजाते हैं। इसीरीतिसे अजगंध और दन्तिकाजड़ समा-न भाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ करे चौथाई शेष रहनेपर छानकर चतुर्थांश घी, गुडके साथ पकाकर लेह करे। उस में श-हत मिलाकर रख छोड़े, इसकासेवन करने से तृप्ता और पित्तज्वर शान्त होजाते है।

मूलदन्तीद्रवन्त्योश्चपचदामलकीरसे । त्रिस्तस्यचकपायेऽस्यभागान्द्वौफाणित स्यच ॥ तप्तसर्पिर्पितलेवाभजयेत्तत्रचाव पेत् । कल्कंदन्तीद्रवन्त्योश्चश्चामादीनाञ्चभागशः ॥ तात्सिद्धमाशयलेहंमुखं तेनविरिच्यते । रसेचदशमूलस्यतथावै भीतकेरसे ॥ हरीतकीरसेचैवलेहानेव पचेत्पृथक् । तयोर्विल्यसमंचूर्णतद्रसेनैव भावितम् ॥ अष्टपृथिव्यातोत्थेगुल्मेचा म्लयुतंशुभम् ।

अर्थ—दन्ती द्रवन्तीकी जड़को आंवले के रसमें पकावे चौथाई शेष रहनेपर यह क्वाथ तीन भाग, फाणित दोभाग मिलाकर तप्त घी वा तेलमें छोक देवे। पीछे इसमें दन्ती द्रवन्ती और अपामार्ग तंडुलीय अ-ध्यायोक्त त्रिवृतादि पन्द्रह द्रव्योंका कल्क पूर्वोक्त कपाय और फाणितसे चतुर्थांश डाले। इस लेहको पान करनेसे मुखपूर्वक विरेचन होता है। अथवा इसी तरह से आंवलेके रसकी जगह दशमूल का क्वाथ, बरेडे का क्वाथ वा हरड का क्वाथ इनमें दन्ती द्रवन्तीकी जड़ को पकाकर पूर्वोक्त तृ-वृतादि द्रव्यों को डालकर लेह तैयार करे। दन्ती द्रवन्तीकी जड़ का एक पल चूर्ण में इनहीके क्वाथ की भावना देकर कांजीके साथ सेवन करे तब मलका विबन्ध और वातजगुल्म दूर होजाते हैं।

पाटयित्वेक्षुकाण्डंवाकल्केनालिप्यचान्तरा ॥ स्वेदयित्वाततःखादेत्तुल्यंतेनविरिच्यते । मूलदन्तीद्रवन्त्योश्चतसृष्टैर्विपा

चयेत् । लाववर्तीरकाणांचितेरसाःस्युर्वि
रेचनम् । तयोर्वापिकपायेणयवागूजांग
लंसम् ॥ माषयूपांश्चसंस्कृत्यदद्यात्ते
नविरिच्यते । तत्कपायान्त्रयोभागाद्वौ
सितायास्तथैवच ॥ एकोगोधूमचूर्णा
नांकोथिचात्कारिकाशुभा । मोदकोवा
स्वकल्केनकार्यस्तच्चविरेचनम् ॥ तयो
र्वापिकपायेणमद्यान्यस्यविकल्पयेत् ॥

• दन्तीकवाथेनचालोड्यदन्तीतैलेनसाधि
तम् ॥ गुडलावणिकानभक्ष्यान्विविधा
न्भक्षयेन्नरः ।

अर्थ—ईश्वरी एक पोईको वाँच में से
चीर कर उसमें दन्ती द्रवन्तीके कल्क को
भरदे फिर उसका मुँह बन्द करके डोर से
बांध देवे । फिर उस पोईको आग्नि में
गरम करके चूसले तौ सुखपूर्वक विरेचन
होता है दन्ती और द्रवन्ती की जड़ समान
भाग गूंग के साथ वा बटेर के मांसरस के
साथ पाक करके पीये तो विरेचन होता है
अथवा दन्ती द्रवन्ती की जड़के कवाथ के
साथ यवागू, वा जांगल मांसरस वा उरद
के यूप के साथ संस्कार करके दैने से वि-
रेचन होता है । अथवा दन्ती द्रवन्तीकी
जड़ का काथ तनि भाग चिनी दो भाग
और गेहूँ का चून एक भाग मिलाकर
मोहनभोग वा मोदक बनाये । इनके सेवन
से विरेचन होता है । अथवा इनही दोनों
के काथ से मद्य बनाकर सेवन करें । दन्ती
के काथ में सानकर गुड और सेंधानमक
डालकर बनाये हुए भक्ष्य पदार्थ दन्ती के

तेलही में सेक कर सेवन करने से सुख
पूर्वक विरेचन होता है ॥

वैरेचानिकचूर्ण ।

द्रवन्तीमरिचदन्तीयवानामुपकृञ्चिकाम्
नागरंहेमदुग्धीचचित्रकंचेतिचूर्णितम् ।
सप्ताहंभावयेन्मूत्रगवांपाणितलंततः ॥
पिबेद्घृतेनजीर्णेणुविरिक्तश्चापितर्पणम्
सर्वरोगहरंमुख्यं सर्वेष्टृतुशोभनम् ॥
चूर्णतदनप्रापित्वाद्वालवृद्धेऽपुपूजितम् ॥
दुर्मुक्ताजीर्णपार्श्वीतिगुल्मप्लीहाहरेषुच ।
गण्डमालासुवातेचपाण्डुरोगेचशस्येत ॥

अर्थ—द्रवन्ती, कालीमिरिच, दन्ती, अ-
जवायनकी जड़, कालाजीरा, सोंठ, स्व-
र्णक्षीरी और चीता इनका चूर्ण करके सात
दिन तक गोमूत्रकी भावना देवे । फिर
इसका चूर्ण करके दो तोले घी में मिलाकर
चाटै, विरेचन के पीछे तर्पण सेवन करें ।
यह योग सम्पूर्ण रोगों को दूर करनेवाला
और सम्पूर्ण ऋतुओं में हित है ॥ यह चूर्ण
किसी प्रकार का उपद्रव नहीं करता है इस
से वृद्ध और बालकों कोभी उपयोगी है इस
के सेवन से विपरीत भोजन के कारण
उत्पन्न हुआ अजीर्ण, पार्श्वशूल, गुल्मरोग
प्लीहा, उदररोग, गण्डमाला वातरोग और
पांडुरोग दूर होजाते हैं ॥
पेलंचित्रकदन्त्योश्चहरीतक्याश्चविंशतिः
पिप्पलीत्रिवृताक्षौद्रगुडस्याप्रपलेनतत् ॥
विनीयमोदकानकुर्पादशैकंभक्षयेत्ततः ॥
उष्णांबुचपिबेच्चाजुदशमेदशमेऽन्हिच
एतेनिप्परीहाराःस्युःसर्वरोगनिवर्हणाः ॥

ग्रहणीपाण्डुरोगार्शः कण्डूकोटानिलापहाः

अर्थ—चीता एक पल, दन्ती एक पल, हरड नग बीस, पीपल दो तोला, निसोथ दो तोला, और गुड आठ पल इन सबको पाककर दशमोदक बनावै। इन मोदकों को उष्ण जल के साथ दसवें २ दिन एक एक खाय। इन मोदकोंके सेवन करते समय आहार विहारकी विशेष यंत्रणा नहीं है। यह सर्व रोगोंका दूर करने वाला है और विशेष करके इसके सेवन से ग्रहणी, पाण्डुरोग, अर्श, खुजली, कोठ और वायुरोग नष्ट होजाते हैं ॥

दन्तीद्विपलनिर्यूहोद्राक्षार्द्रमस्थसाधितः ॥

शोथनपित्तकासेचपाण्डुरोगेचशस्यते ।

दन्तीकल्कंसमगुडंशीतवारियुतंपिवेत् ॥

विरेचनंमुखपतमं कामलाहरमुत्तमम् ।

अर्थ—दन्तीकी जड़को अठगुने जल में काथ करके चौथाई शेष रहने पर इस मिले हुए द्रव्यको लेह की तरह पाक करके सेवन करै तो पित्तज कास और पाण्डुरोग दूर होजाते हैं। अथवा दन्तीके कल्कमें बराबर का गुड मिलाकर शीतल जलके साथ पान करै तो उत्तम विरेचन होता है। इससे कामलारोग दूर होजाता है।

श्यामादन्तीरसेगौडः पिप्पलीफलाचेत्रकैः ॥ लिप्तेऽरिष्टोऽनिलकफप्लीहपाण्डुरापहः । तथादन्तीद्रवन्त्योदचकपायेणाजगन्धया ॥ गौडः कार्योऽजशृंगयावारसैः मुखविरेचनः । तच्चूर्णकवाधिमापाम्बुकिण्वतोयतुरोद्धवा ॥ मदिराकफगुल्मास्पचन्दिपाश्वर्कटिग्रहे । अजगन्धाकपा

(१५४)

येणसौवीरकतुपोदके ॥ सुराकम्पिष्ठक्योगालोध्रवच्चतयोः स्मृताः ॥

अर्थ—एक पात्रके भीतर पीपल, मैनफल और चीते का छेप करके कालीनिसोथ और दन्ती का क्वाथ तथा गुड भरकर रखदे। एक महीन पीछे अरिष्ट वनमें पर सेवन करने से वात कफ, प्लीहा, पाण्डुरोग, और उदररोग दूर होजाते हैं। इसी तरह से दन्ती द्रवन्तीकी जड़ और अजगन्धके काथ में गुड डालकर अरिष्ट तयार करै। इसी तरह से मेढादिगौ और दन्ती द्रवन्ती के क्वाथमें गुड डालकर सुखपूर्वक विरेचन देवै। दन्ती द्रवन्ती का चूर्ण और क्वाथ, उरद का क्वाथ, सुरावाज और जल इनको एक पात्र में भरदेवै। यह मद्य कफज गुल्मरोग मन्दाग्नि, पार्श्वग्रह और कटि रोग दूर करता है। अजगन्ध के क्वाथके साथ दन्ती द्रवन्ती के सौवीरक और तुपोदक तथा लोध के समान सुरा और कम्पिष्ठक योग प्रस्तुत करके सेवन करै। (सौवीरक और तुपोदक बनाने की यह रीति है कि अजगन्ध का क्वाथ, विना छिलके के जौ और इतनी ही दन्ती द्रवन्ती का कल्क और काजी एक पात्र में छः दिनतक धरे रखने से सौवीरक बनता है। तथा छिलके समेत जौ और भुनेहुए जौ ओं को शूट कर उक्त रीति से मिश्रित करने पर तुपोदक होता है)। दन्ती द्रवन्ती के क्वाथ और समान भाग सुरा को मिलाकर पन्द्रह दिवस तक धरा रखने से सुरा बनती,

हे । दन्ती द्रवन्तीके फलक में दन्ती द्रवन्ती के चूर्ण को दस बार भावना देकर फिर दस बार कबीले के क्वाथ की भावना देने से कम्पिष्टक योग बनता है ॥

दन्तीद्रवन्तीकल्पका संक्षिप्तवर्णन ।
 दध्यादिपुत्रयःपञ्चपियालाघ्रस्त्रयोरसे ।
 स्नेहेषुवैत्रयोलेहाःपञ्चूर्णत्वकएवच ॥
 ईक्षावेकस्तथामुद्रगमांसानाञ्चरसास्त्रयः ।
 यवाग्वाद्रौत्रयश्चैवउक्तउत्कारिकाविधौ
 एकश्चमोदकेमध्येचैकतत्कायतैलिके । चूर्णमेकं पुनश्चैकमोदकःपञ्चचासवे । ए
 कःसौवीरकेऽथैकयोगःस्यात्तुतुपोदके ॥
 एकासुराकम्पिष्टकचैकःपञ्चघृतस्मृताः॥
 दन्तीद्रवन्तीकल्पेऽस्मिन्मोक्ताःषोडशका
 स्त्रयः । नानाविधानांयोगानांभुक्तिदोषा
 मयान्प्रति ॥

अर्थ—इस अध्याय में दहीके तीन पि-
 याल के पांच, क्वाथके तीन, स्नेहके तीन
 लेह छः, चूर्ण एक, ईख का एक, मुद्रमांस
 रस के तीन, यवागू के तीन, उत्कारिका
 का एक, मोदक एक, मद्य का एक, क्वाथ
 और तेल का एक, चूर्ण का फिर मोदक
 एक, आसव पांच, सौवीरक एक, सुरा एक
 कम्पिष्टक एक, और घृत पांच । इस तरह
 सब अडतालीस योग है । इन प्रयोगों से
 अनेक प्रकार के भोजन के दोष और रोग
 शान्त होजाते हैं ॥

त्रिशतपञ्चपञ्चाशत्योगानांमनेस्मृतम् ॥

द्वेस्तेनवक्ताःपञ्चयोगानान्तुविरेचने ।

ऊर्दानुलोमेभागानामित्युक्तानिशतानि

पट् ॥ प्राधान्यतःसमाश्रित्यद्रव्याणिदश
 पञ्चच । यद्वियेनप्रधानेनद्रव्यंसमृप
 सृज्यते ॥ तत्संज्ञकःसंयोगोभवतीति
 विनिश्चितम् । फलादीनांप्रधानानांगु-
 णभूताःसुरादयः ॥ तेहितान्यनुवर्तन्तेम
 नुजेन्द्रमिवेत्तरे ॥

अर्थ—इस कल्पस्थान में तीनसौ पञ्च-
 पन वमनयोग और दोसौ पैतालीस विरेचन
 के योग वर्णितहैं । इसतरह त्रितृतादि पन्द्र-
 ह द्रव्यों का आश्रय लेकर वमन और विरे-
 चन के सब मिलकर छःसौ प्रयोग हैं ।
 जो द्रव्य जिस प्रधान द्रव्य से संयोजित
 कियाजाता है उस प्रयोगमें उसी के गुण
 प्रधान होते हैं जैसे मेनफलादि प्रधान द्रव्य
 के गुण से युक्त सुरादिक मेनफलादि के
 गुणोंकाही अनुवर्तन करती हैं जैसे प्रजा
 राजा की अनुगामिनी होती है ॥

विरुद्धवीर्यमप्येषांप्रधानानामवाधकम् ॥
 अधिकेतुल्यवीर्येऽपिक्रियासामान्यमिष्य
 ते । इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धार्थप्रतिचामय
 म् ॥ अतोविरुद्धवीर्याणांप्रयोगइतिनि-
 श्चितम् ॥

अर्थ—अप्रधान द्रव्य वीर्य विरुद्ध होने
 पर भी प्रधान द्रव्यके गुण का वाधक नहीं
 होसکتाहै । तथा समान वीर्यवाला अप्रधान
 द्रव्य भी प्रधान द्रव्य के वीर्यको बढ़ाताहै
 क्योंकि उनकी क्रिया समान है । मनोऽनु-
 कूल वर्ण, रस स्पर्श और गंध के कारणही
 विरुद्ध वीर्य द्रव्यों का संयोग कियाजाताहै
 तथा रोग के अनुसार भी विरुद्धवीर्य द्रव्य
 मिलायेजाते हैं ॥

स्वरससेभावितकरनेकाकारण ।

भूयद्दैर्घ्यावाधानकार्यस्वरसभावनात् ॥
सुभावितं ह्यल्पमपि द्रव्यं स्याद्बहुकर्मकृत् ।
स्वरसैतुल्यचार्यैर्वा तस्माद्द्रव्याणि भावयेत्

अर्थ—एक द्रव्य को उसी के रस की भावना देने का कारण यह है कि उस द्रव्य का बल अधिक बढ़ जाता है । अल्पवर्ण्य वाला वा अल्प द्रव्य भी अच्छी तरह भावना दिये जाने पर बहुत से कर्मों का करने वाला हो जाता है । इसलिये उसी द्रव्य के रस से अथवा समान वर्ण्यवाले अन्य द्रव्य के रस से भावना देनी चाहिये ॥

अल्पस्यापि महार्थत्वं प्रभूतस्यापि कर्मताम् ।
कुर्यात्संयोगविश्लेषकालसंस्कारयुक्तिभिः ॥

अर्थ—संयोग, वियोग, काल और संस्कार द्वारा अल्पद्रव्य का महार्थत्व और प्रभूतद्रव्य का अल्पार्थत्व हो जाता है ॥

प्रदेशमात्रमेतावद्द्रव्यमिह पट्टशतम् ।
सुबुद्धयैः सहस्राणि कोटिर्वापि प्रकल्पयेत् ॥
बहुद्रव्यविकल्पत्वाद्योगसंख्यानाविद्यते ।
तीक्ष्णमध्यमृद्नान्तु तेषां शृणुतलक्षणम् ॥

अर्थ—इस जगह छः सौ प्रकार के वमन विरेचनों का आंशिक वर्णन किया गया है । अच्छी बुद्धियाला वैद्य इन को सहस्र क्या करोड प्रकार से देसक्ता है । बहुत द्रव्यों से विकल्प होने के कारण इनकी संख्या नहीं हो सकती है ।

अब हम तीक्ष्ण, मध्यम और मृदु भेद से वमन विरेचनों के लक्षण कहते हैं ।

तीक्ष्ण विरेचन के लक्षण ।

मुखं क्षिप्तं महावेगमसक्तं यत्प्रवर्तते । नातिग्लानिकरं पायौ हृदयेन च रुक्करम् ॥
अन्तराशयमक्षिण्वन्कृत्स्नं दोषं निरस्यति
विरेचनं निरुहो वा तत्तीक्ष्णमिति निर्दिशेत् ॥

अर्थ—जिसके प्रयोग करने से मल असक्त होकर बड़े वेग से निकलने लगता है जो ग्लानि बहुत नहीं करता है परन्तु मल के निकलने के समय गुदा और हृदय में वेदना करने लगता है और आमाशय को क्षीण करके सम्पूर्ण दोष को दूर कर देता है उस विरेचन वा निरुहको तीक्ष्ण कहते हैं ।

औषध की तीक्ष्णता का कारण ।

जलाग्निकीटैरस्पृष्टं देशकालगुणान्वितम् ।
ईप्समात्राधिकं पुक्तं तल्यवीर्यैः सुभावितम् ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नस्य तीक्ष्णत्वं याति भेषजम् ॥

अर्थ—जो औषध जल, अग्नि वा कीड़े से दूषित नहीं हुई है, जो देश और काल के गुण से युक्त है । जो समान वीर्य वाली औषधों से भावना दी गई है और मात्रा से कुछ अधिक दी भी गई है तथा स्नेहन और स्वेदन कर्मों के पश्चात् प्रयुक्त हुई है वह औषध तीक्ष्ण हो जाती है

मध्य औषध के लक्षण ।

किञ्चिद्भिर्गुणैर्हीनं पूर्वोक्तैर्मात्रवातथा ।
स्निग्धस्विन्नस्य चासम्यग्मध्यं भवति भेषजम् ॥

अर्थ—जो औषध ऊपर कहे हुए गुणों से कुछ कम गुणवाली होती है वा उक्त मात्रा से कम स्नेहन स्वेदन के पश्चात् दी जाती है वह मध्यम बल वाली होती है ।

हीन औषध का लक्षण ॥

मन्दवीर्यविरुक्षस्यहीनमात्रन्तुभेषजम् ॥

अतुल्यवीर्यैःसंयुक्तमृदुस्यान्मन्दवेगवत् ।

अकृत्स्नदोषहरणादशुभंतद्वलीयसाम् ॥

मध्यावरणानान्तुप्रयोज्यसिद्धिमिच्छता

अर्थ—रुक्षरोगी को मन्दवीर्यवाली औषध अतुल्य औषधों के संयोगमें हीन मात्रासे प्रयोग की जाती है वह मृदु और मन्द वेग वाली होती है । ऐसी औषध दोषों को अच्छी तरह दूर नहीं कर सकती है इस से अगर इसका प्रयोग बलवान् मनुष्य के साथ किया जाय तो अशुद्धि को बढ़ाती है । इस हेतु से जो इस औषध को सिद्ध किया चाहै उन्हें उचित है कि मध्यबल और हीनबल वालों को यह औषध देवै ।

तीक्ष्णोमध्यामृदुर्व्याधिःसर्वमध्यालपलक्षणः ॥ तीक्ष्णार्दानिवलापेक्षीभेषजा न्येपुयोजयेत् ॥

अर्थ—सर्वलक्षणयुक्त व्याधि तीक्ष्ण, मध्यलक्षणवाली मध्य और अल्पलक्षण वाली मृदु होती है । इन सब का विचार कर तीक्ष्णादि औषधादि का प्रयोग करै । देयन्त्वनिर्हृतेपूर्वपूतेपश्चात्पुनःपुनः । भेषजं वमनार्थमाय आपित्तदर्शनात् ॥ बलवैविध्यमालम्ब्यदोषाणामातुरस्यच पुनःप्रयोज्यभेषज्यंसर्वशोहिविजयेत् ॥

अर्थ—यदि वमनकारक औषध के सेवन करने परभी दोष न निकलें तो जब तक पित्त न निकलें तब तक बार बार औषध पान कराता रहे । रोग और रोगी के तीनों

प्रकार के बलों की विवेचना करके बार बार औषध का प्रयोग करै और जो समय न रहा हो तो सर्वथा औषध न देवै ।

निर्हृतेवापिजीर्णवादोपनिर्हरेण्युधः ॥

भेषजेऽन्यत्प्रयुञ्जीतत्तमार्थयन्सिद्धिमुत्तमम् ॥

अपक्वमनंदोपात्पच्यमानं विरेचनम् । निर्हरेद्वमनस्यातःपाकंनमंतिपालयेत् पीतेभक्षंसनेदोषान्निर्हरेत्यजराद्भवे । वामि तेचौषधधीरःपातयेदातुरगुणः ॥

अर्थ—जो वमनकारक औषध निकल गई हो, वा पचगई हो वा दोष को न निकालसकी हो तो सिद्धि की इच्छा करने वाला वैद्य फिर औषधदेवै । वमन औषध पचने से पहिले दोषों को निकालदेती है और विरेचक औषध पचनावस्था तक दोषों को निकालती है । इस से वमन औषध के पाक की प्रतीक्षा न करै । विरेचक औषध के पीने पर वह दोषों को बिना निकाले हुएही पचगई हो वा उसकी वमन होगई हो तो फिर औषध पान करावै ॥

सुखामुखसाध्यरोगी ॥

दीप्ताग्निबहुदोषश्चहृदरनेहगुणंनरम् ।

दुःशोध्यंतदहर्शुक्तंस्वोभूयःपाययेत्तत् ॥

दुर्बलोबहुदोषश्चदोषपाकेनयोनरः । विरिच्यतेसर्वैर्भोज्यैर्भूयस्तमेनुसारयेत् ॥ वमनैश्चविरिक्तैश्चविशुद्धस्याप्रमाणतः । भोजनान्तरपानाभ्यांदोषशेषंशमनयेत्

अर्थ—दीप्ताग्निवाला, बहुत दोषों से युक्त और आतिशय स्निग्ध मनुष्य का

शोधन कठिनता से होता है, क्योंकि दीप्ता

ग्निके कारण औषध को वह शीघ्र ही पचा लेता है बहुदोष युक्त होने के कारण अल्प औषध कुछ काम नहीं कर सकती है तथा वमन द्रव्य रुक्ष होने के कारण अति-स्निग्ध मनुष्य पर कुछ काम नहीं कर सकती है । इससे जो वमनकारक औषध के पान कराने पर उसे वमन न हुई हो तो उस दिन भोजनादि करा के दूसरे दिन फिर वमनकारक औषध पान करावे ॥

बहुत दोषों से युक्त दुर्बल मनुष्य का मल सहज ही में नहीं निकल सकता है । किन्तु दोष के पचने पीछे मल निकलता है । ऐसे रोग को विरेचन औषध देने पर भी विरेचन न हो तो फिर विरेचन न देवे परन्तु दस्तावर आहार देकर मल को निकाल जो रोगी वमन विरेचन द्वारा यथा प्रमाण शुद्ध न हुआ हो तो फिर वमन विरेचन न देकर पान भोजन के किसी प्रकारान्तर से शेष दोषों का निवारण करे ।

मृदु औषधका विधान ।

दुर्बलशोभितपूर्वमल्पदोषश्च मानयम् ।
अपरिज्ञातकोष्ठश्चापययेत् औषधं मृदु ॥
श्रेयो मृदुसकृत्पीतमल्पवाधं विरेचनम् ।
न चातितीक्ष्णं वृत्तिप्रजनयेत् प्राणसंश्रयम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य दुर्बल हो, वा पूर्व में शुद्ध किया हुआ हो, वा अल्प दोष युक्त हो वा जिस के कोष्ठ का हाल माध्यम न हो उसे मृदु औषध पान करावे । थोड़ी थोड़ी औषध का बार २ पीना अच्छा है जिससे किसी प्रकार की वाधा या अपकार

न हो अत्यन्त तीक्ष्ण औषध का पान कराना ठीक नहीं है जो शीघ्र ही प्राणों को हरण कर लेवे ।
दुर्बलोऽपि महादोषो विरेच्यो बहुशोऽल्पशः ।
मृदुभिर्भेषजैर्दोषान् न्युद्धेन मनो हृताः ॥
यस्योद्ध्वक्फमं संप्रपीतं याल्यनुलोमिकम् ।
वधितं कवलैः शुद्धैर्लङ्घितं पाययेत्तम् ॥
निबद्धेऽल्पे चिरादोपे सवत्सु पुणं पित्तज्जलम् ।
तेनाध्मानं सत्तृच्छदि विबन्धयैव शाम्यति ॥
भेषजं दोषरुद्धं च नो र्दनाधः प्रवर्तत ।
सोद्गारं सांगशूलवास्वे दंतत्रावचारयेत् ॥
सुविरिक्तस्तु सोद्गारमाश्वेयौषधमल्लिखेत् ।
अतिप्रवर्तनजीर्णमुशतैस्तम्भयेद्भिषक् ॥

अर्थ.... महा दोष वाले दुर्बल रोगी को थोड़ा २ विरेचन कई बार करके पान करावे । क्योंकि औषध की मृदुता के कारण दोष न निकल कर प्राणों को नष्ट कर देते हैं ॥ ऊर्ध्व मार्ग के कफाहत होने से वेग ऊपरको न जाय और अनुलोमगती को प्राप्त हो तो कवल द्वारा वमन की इच्छा को रोककर लंघन करा के कफ के क्षीण होने पर वमन करावे । जो दोष थोड़ा २ विवदता से वा देर में निकलें तो उष्ण जल का पान करावे । इससे अफरा, तृप्ता, वमन और विबन्ध सब दूर हो जाते हैं । दोषों से रुकी हुई औषध जो न ऊपरको जा सके न नीचे को जा सके तथा डकार और अंगशूल होने लगे तो पसीने देवे । अच्छी तरह विरेचन होने के पीछे जो डकार में औषध की गंध आती हो तो शीघ्र

ही आमाशयस्थ औषधको घमन द्वारा निकाले जो औषध के पचने पर अधिक दस्त आने लगे तो शीतल क्रिया से शान्त करे कदाचित्श्लेष्मणारुद्धेतिप्रत्युरसिभेषजम् । क्षीणश्लेष्मणिमायाहनेरात्रौवातप्रवर्तते ॥ रूक्षानाहारयोर्जीर्णविष्टभ्यो र्जगतेऽपिवा । वायुनाभेषजेत्वन्यत्सस्नेहलवणंशृतम् ॥ तृणमोहमृच्छाद्याःस्युर्जीर्यतिहिभेषजे । पित्तघ्नस्वादुशीतञ्च भेषजंतत्रशस्यते ॥

अर्थ—यदि औषध कफसे रुककर वक्षःस्थलमें ठहर जाय और सन्ध्या के समय वा रात्रि में कफके क्षीण होने पर निकले रूक्षता के कारण वा भोजन न करने के कारण, औषध के जीर्ण होने पर वा बिना जीर्ण हुएही गुडगुडाहट करके वायुके कारण ऊपर को जाय तो फिर उसी औषध को स्नेह और लवण के साथ पान करावे । औषध के पचने पर यदि तृण, मोह, भूम और मृच्छादिक हों तो स्वादु शीतल और पित्तनाशक औषध पान करावे ।

लालादृक्ललासत्रिष्टम्भशीतहर्षाःकफावृते भेषजंतत्रतीक्ष्णोष्णकट्वादिक्फनुद्धितम् गुस्तिगन्धकूरकोष्ठञ्चलंघयेद्विरेचितम् । तेनास्यस्नेहजःश्लेष्मासंगश्चैवोपशाम्यति

अर्थ—कफावृत रोग में लालास्राव, दृक्ललास, विष्टब्धता, रोमहर्षण और शीतहो तो तीक्ष्ण, उष्ण और कफनाशककट्वादि औषध देवे । अच्छी तरह से स्निग्ध हुए मनुष्य को विरेचन न देकर लघन करावे

इस से उसका स्नेहजन्य कफ और मल की विवन्धता दूर होजायगी ।

वस्तिकर्मके योग्यरोगी ॥

रूक्षवद्वनिलकूरकोष्ठव्यायामशूलिनाम् दीप्ताग्नीनाश्चभषज्यमविरेच्यवजीर्यात् ॥ तेभ्योवस्तिपुगदत्वापश्चादद्याद्विरेचनं वस्तिप्रवर्तितंदोषंहरेच्छीघ्रंविरेचनम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य रूक्ष, अत्यन्त वात प्रकृतिवाला, कूरकोष्ठ, व्यायामशील [कसरत कुस्ती करनेवाला] शूलरोगी और दीप्ताग्निवालाहो तो विरेचनकर्त्ता औषध उस को बिना विरेचन कराये ही पचजाती है इसलिये उसे पहिले वस्तिकर्म करा के पाँछे विरेचन देवे । वस्तिसे प्रवृत्त हुएदोषों को विरेचन शीघ्रही निकाल देता है ॥

स्नेहन के योग्य रोगी ॥

रूक्षाशनाःकर्मनित्यायेनरादीप्नपावकाः तेषांदोषा क्षययान्तिकर्मवातातपाग्निभिः । विरुद्धाध्यशनाजीर्णदोषानपि स हन्ति ते ॥ स्नेहास्तेमारुताद्रूक्ष्यानाव्याधौतान्विशोधयेत् ॥

अर्थ—रूक्षभोजी, नित्यप्रति परिश्रम करने वाले, दीप्ताग्नि वाले मनुष्यों के दोष, परिश्रम, वायु, धूप और अग्निसे क्षय हो जाते हैं । तथा इन्हीं कारणों से विरुद्ध भोजन, अध्यशन और अजीर्ण भोजनादि से उत्पन्न हुए दोष भी मिटजाते हैं । ऐसे मनुष्यों को स्नेहन देना उचित है क्योंकि वायु से इनकी रक्षा कर्त्तव्य है । तथा किसी विशेष रोग के बिना हुए विरेचन देना भी ठीक नहीं है ॥

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम् ।

स्नेहोत्कृष्टशरीरायरूक्षदद्याद्विरेचनम् ।

अर्थ—जिसका शरीर अति स्निग्ध नहो
अर्थात् रूक्षहो उसे स्नेह विरेचन देवै अथवा
यों कहौ कि अति स्निग्ध देह वाले का स्ने-
ह विरेचन न देवै । जो स्नेह से उल्लिष्ट
हो उसे रूक्ष विरेचन देवै ॥

एवंज्ञात्वाविधिधीरोदेशकालप्रमाणवित् ॥

विरेचनंविरेच्येभ्यःप्रयच्छन्नापराध्याति

विभ्रंशोविपवयस्यसम्यग्योगोयधामृतम्

कालेष्ववश्यंपेयञ्चतस्माद्यन्नात्प्रयोजयेत्

अर्थ—इन सब ऊपर लिखी हुई बातों

को अच्छी तरह समझकर देश काल और

प्रमाण के अनुसार जो वैद्य विरेचन के योग्य

मनुष्य को विरेचन देता है वह अपराध का

भागी नहीं होता है ।

जो औषध अन्यथा प्रयुक्त किये जाने

पर विपके समान और सम्यक् प्रयोग किये

जाने पर अमृत के समान फल दिखाती है

ऐसी औषध को ठीक समय पर बहुत सोच

विचार के साथ पान करना चाहिये ।

उपसंहार ।

द्रव्यप्रमाणान्तुयदुक्तमास्मिन्मध्येपुतत्को

ष्ठवयोवलेषु तन्मूलमालम्ब्यभवेद्विकल्पं

तेषां विकल्पोऽभ्यधिको न भावः ॥

अर्थ—इस ग्रन्थ में जिस द्रव्य का जो

प्रमाण कहा गया है । कोष्ठ, वय और

वल के अनुसार उसका प्रयोग करना चाहिये

इसी कोष्ठ, वय और वल के भेद से मात्रा

में घटा बढ़ी होती है ।

मान परिभाषा ॥

पहचंयस्तुमरीचिःस्यात्पण्मरीच्यस्तुस-

र्पणः॥ अष्टौतैसर्पपारत्तिस्तण्डुलश्चापितद्द्व-

यम् । धान्यामापो भवेदेको धान्यमापद्वयं यवः

अण्डिकास्तेतुचत्वारस्ताश्चतस्रस्तुमापकः

हेमश्च धानकश्चोक्तो भवेच्छाणस्तुतेत्रयः ।

शाणौ द्वौ द्रक्ष्णं विद्यात्कोलं वदरेमेव च ।

विद्यात्द्वौ द्रक्ष्णं कर्पसुवर्णश्चाक्षमेव च ॥

विडालपदकन्तश्चपिचुम्पाणितलन्तथा ।

तिन्दुकञ्चविजानीयात्कवलग्रहमेव च ॥

द्वेसुवर्णेपलार्धस्याच्छुक्तिरष्टमिका तथा ।

द्वेपलार्धेपलमुष्टिः प्रकुञ्चेऽथचतुर्थिका ॥

विल्वं पोडशिकश्चाभ्रद्वेपलेप्रसृतम्बिदुः ।

अष्टमानन्तु विज्ञेयं कुडवौ द्वौ तु मानिका ॥

पलञ्चचतुर्गुणं विद्यादञ्जलिकुडवन्तथा

चत्वारः कुडवाः प्रस्यश्चतुष्पस्थमथाढकम्

पात्रं तदेव विज्ञेयं कंसः प्रस्थाष्टकन्तथा ॥

कंसश्चतुर्गुणोऽद्रोणः चामर्णलवनञ्चतत् ।

स एव कलशः ख्यातो घटश्चान्मानमेव च ॥

घटन्तु द्विगुणं सूपो विज्ञेयः कुम्भ एव च ॥

गोणी शूर्पक्षयं विद्यात् खारो भागीन्तथैव च

द्वात्रिंशत् विजानीयाद्वाहं शूर्पाणि बुद्धिमान्

तुलां शतपलं विद्यात्परिमाणविशारदः ।

शुष्कद्रव्येष्विदं मानमेवमादिप्रकीर्तितम्

द्विगुणं तद्द्रव्येष्विष्टं तथा सद्यो कृतं पुच ॥

यद्धिमानन्तु लामोक्तापलं वा तत्प्रयोजयेत्

अनुक्ते परिमाणे तु तुल्यमानं प्रकीर्तितम् ॥

अर्थ—छः धंसी की एक मारीचि होती

है (घर के जाली झरोखों में जो धूप

आती है उस धूप में जो रज के कण से

उडते दिखाई देते हैं उसे बंशी वा त्रसरेणु कहते हैं, तीस परिमाणु की एक बंशी वा त्रसरेणु होता है) छः मरीची की एक सरसों होती है । आठ सरसों की एकरत्ती वा तण्डुल । दो तण्डुल का एक धान्य मापक, दो धान्य मापक का एक जौ, चार जौ का एक अण्डका, चार अण्डका का एक मामा वा हेम, वा धानक होता है ॥ तीन मापक का एक शण, दो शण का एक द्रक्षण, वा कोल वा बदर होता है । दो द्रक्षण का एक कर्प वा सुवर्ण, वा अक्ष, वा विडालपदक वा पिचु वा पाणितल, वा तिंदुक, वा कवलग्रह होता है ॥ दो सुवर्ण का एक पलार्द्र, वा शुक्ति वा अष्टमिका होता है । दो पलार्द्र का एक पल वा मुष्टि, वा प्रकुञ्च, वा चतुर्थिका, वा विल्व, वा पोडशिका, वा आग्र होता है । दो पलका एक प्रसृत, दो प्रसृत का एक अष्टमान वा कुडव, दो कुडव का एक मानिका, चार प्रलका एक अञ्जली वा कुडव, चार कुडवका एक प्रस्थ चारप्रस्थका एक आढक, वा पात्र, आठ प्रस्थ का एक कंस चार कंस का एक द्रोण, वा अर्मण, वा लवण, वा घट वा कलश, वा उन्मान होता है । दो घटका एक सर्प वा कुम्भ होता है । दो सर्प का एक गोणी, वा खारी, वा भारी होता है । बत्तीस सर्प का एक चाह और सौपट की एक तुला होती है ॥

यह शुष्क द्रव्यों का मान वर्णन किया गया है द्रव अथवा ताजी लिये हुए द्रव्य

इस तोल से दुगुने लिये जाते हैं । परन्तु जिनकी तोल पल से तुला पर्यन्त लिखी है वे उतनीही ली जाती है जहां द्रव्यों का परिमाण नहीं लिखा गया है वहां औषध समान भाग लेनी चाहिये । [एक कुडव अर्थात् आधेतर तक गीले द्रव्योंका द्विगुण ग्रहण न करे । कुडव से ऊपर गाले द्रव्य दूने लेने चाहिये । घी, खांड, गुड, शहत, दूध, तैल, और मद्य आदि के पक्षमें कुडव आठ पलका ग्रहण किया जाता है ना-रियल के सम्बन्ध में भी यह बात है)

द्रव्यवाधेऽपि चानुक्ते मर्वत्रसलिलं स्मृतम् ।
यतश्च पादनिर्देशश्चतुर्भागस्ततश्च सः ॥

जलस्नेहौ पधानान्तु प्रमाणं तत्र न रितम् ॥

तत्र स्यादापधात् स्नेहः स्नेहात्तोपंचतुर्गु-

णम् ॥

अर्थ—पाचनादि स्थल में जो द्रव्य द्रव्यों का नाम न लिखा गया हो तो जल ग्रहण करना चाहिये । पादनिर्देश से चौथाई ग्रहण किया जाता है । जिस स्थान पर जल, औषध और स्नेह का प्रमाण न दिया गया हो वहां औषध से चौगुना स्नेह और स्नेह से चौगुना जल डाले ॥

स्नेहपाक के भेद ॥

स्नेहपाकस्त्रिधाप्ते यो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ।
तुल्ये कल्केन निर्यसि स भेषजानामृदुः स्मृतः ॥
सम्पाक इव निर्यसि स मध्योदवी विगुञ्चति
शीर्यमाणे तु निर्यसि स यत्तमाने खरस्तथा ॥

अर्थ—स्नेह पाक तीन प्रकारका होता है, यथा—मृदु, मध्य और खर । जहां

स्नेह की गाद कलककी तरह पतली होती है, वह मृदुपाक होता है । जहां स्नेह की गाद अमलतास के गूदे के सदृश गाढी होती है वह मध्यपाक है । जो गाद कलछी से दूर होजाय परन्तु कुछ चिप चि पाहट सा रहे वह खरपाक है ।

स्नेहपाकोंकी प्रयोग विधि ।

खरोऽभ्यङ्गेस्पृतः पाकोमृदुर्नस्तः क्रियासु च ॥ मध्यपाकान्तुपानार्थे वस्तौ च विनियोजयेत् ।

अर्थ—स्नेह का खरपाक अभ्यङ्गमें, मृदुपाकनस्याक्रियामें और मध्यपाक पीने और वस्तिकर्म में प्रयुक्त किया जाता है ॥

मान के भेद ।

मानञ्च द्विविधं प्राहुः कालिङ्गमागधं तथा कालिङ्गान्म गधं श्रेष्ठमेवंमानविदो विदुः ॥

अर्थ....मान दो प्रकारका होता है । यथा-कालिङ्ग और मागध । परन्तु इन दोनों में मागध मान श्रेष्ठ है ॥

इस ग्रन्थमें कालिङ्गमान नहीं लिखा है इसे हम भावप्रकाश से उद्धृत करते हैं ॥

कालिङ्ग मान ।

यवोद्वादशभिर्गौरसरपैः प्रोच्यते बुधैः ।
यवद्वयेन गुंजा स्यात् त्रिगुजो वल्य उच्यते ॥
मापो गुंजाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत् क्वचिद् ।
चतुर्भिर्मापकैः शणः सनिष्कपृष्क एव च ।
गद्याणो मापकैः पद्भिः कर्पः स्याद्दशमापकः ।
चतुःकर्पपलं मोक्तं दशशानमि तं बुधैः ॥
चतुःपलं च कुडवः प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः ।

अर्थ—चारह सफेद सरसों का एक जौ होता है । दो जौ की एक गुंजा वा रत्ती होती है । तीन रत्ती की एक बल्ली, आठरत्तीका एक मापा, तथा कोई २ सातरत्ती का भी मापा मानते हैं । चार मासेका एक शण होता है उसी को निष्क वा टंक भी कहते हैं । छः मासेका एक गद्याणक होता है । दस मासे का एक कर्प, चार कर्प का एक पल अर्थात् दस शण होते हैं । तथा चार पलका एक कुडव होता है । प्रस्थ से ऊपर की तोल मागध परिभाषा के सदृश होती है ॥

कल्पस्थान का संक्षिप्तवर्णन ।

कल्पार्थः शोधनसंज्ञा पृथग् हेतु भवतर्तने ।
देशादीनां कलादीनां गुणायोगशतानि पद-
विकल्पहेतुर्नामानितीक्ष्णमध्याल्लक्षण-
म् ।
विधिश्चावस्थिको मानस्नेहपाकञ्च दार्शितम् ॥

अर्थ—इस कल्पस्थान में कल्प के विषय, शोधनकी संज्ञा, शोधन के पृथक् २ हेतु, देशादि के गुण, मेनफलादि द्रव्यों के गुण, विरेचन के छःसौ योग, विकल्प के हेतु, नाम, तीक्ष्ण, मध्य और अल्प विरेचन के लक्षण, आवस्थिक विधि, द्रव्योंका मान तथा स्नेहपाक का वर्णन किया गया है ॥
इति श्री भाषाटीका चित्तायां अग्निवेश विर-
चित्तायां चरकप्रति संस्कृतोपासंहितायां
कल्पस्थाने दन्ती द्रवन्ती कल्पानाम
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥
इति कल्पस्थानं समाप्तम् ॥

॥ श्रीहरिम्नन्दे ॥

॥ श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः ॥

॥ अथसिद्धिस्थानम् ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः

अथातः कल्पनासिद्धिव्याख्यास्यामं
इतिहस्माद्भगवान् आत्रेयः ।अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम कल्पनासिद्धिनामक अध्याय की
व्याख्या करेंगे ।

अग्निवेश का प्रश्न ।

काकल्पनापञ्चसुकर्मसूक्ता क्रमश्चकः कि
ञ्चकृताकृतेषु ॥ लिङ्गतथैवातिकृतेषु सं
ख्याकार्किगुणाः केषु चकाचवस्तिः ॥ किं
वर्जनीयं प्रतिकर्मकाले कृते कियान्वाप-
रिहारकालः । प्रणीयमानश्चनयातिव-
स्तिः केनेति शीघ्रं मुचिराच्चकोन ॥ साध्या
गदाः द्यैः शमनैश्चकोचित् कस्मात्प्रयुक्तं
नैशमं व्रजन्ति ॥ प्रचोदितः शिष्यवरेण स
म्यक् इत्यग्निवेशेन भिषग्वरिष्ठः ॥ पुनर्व
सुस्तन्त्रविदाहृतस्मै सर्वप्रजानां हितका
म्ययेदं ॥अर्थ....आग्निवेशने नीचे लिखे हुए चारह
प्रश्न आत्रेय भगवान् से किये, यथा—(१)
वमन, विरेचन, स्वेदन, नस्य और वास्ति इन
पाँचकर्मोंकी प्रक्रियाक्याहै? (२) इन सब
कर्मोंमें आहारआदिका नियम क्या है? (३)
सम्पक् प्रयुक्त असम्पक् प्रयुक्त अतिप्रयुक्तपंचकर्मों के लक्षण क्या हैं? (४) संख्या
क्या है? (५) गुण, क्या हैं? (६)
वस्ति क्या है? (७) प्रतिकर्म काल में
वर्जनीय, क्या है? (८) वमन विरेचन
के पीछे स्वाभाविक आहार विहारका कितने
दिन तक परित्याग करना चाहिये? (९)
वास्ति किस तरह से प्रवेश नहीं कर सकती-
है? (१०) वास्तिकिसतरह शीघ्र प्रत्याग-
मन करती है? (११) विसतरह देर में
प्रत्यागमनकरती है? (१२) कौन कौन से
साध्यरोग उनके नष्ट करने वाली औषधियों
से भी शान्त नहीं होते हैं? ॥अग्निवेश के इन प्रश्नों को सुनकर महर्षि
आत्रेय ने संसारके हितकी कामना से नीचे
लिखा हुआ उत्तर दिया ।

स्वेदनकालका निर्णय ।

व्यह्वारसप्तदिनपरन्तुस्निग्धोनरः स्वेदायि
तव्यउक्तः ॥ नातः परं स्नेहनमादिशन्ति
सात्स्योभवेत्सप्तदिनात्परन्तु ॥अर्थ—यह बात सूत्रस्थान के स्नेहाध्याय
में वर्णन करदी गई है कि मृदु कोष्ठवाला
मनुष्य थोडासाही स्नेह सेवन करने से
तीन दिन में स्निग्ध होजाता है, यह स्नेह
मात्रा अधम है । तथा क्रूर कोष्ठवाला मनुष्य
सात दिन तक स्नेह सेवन करने से स्निग्ध
होता है यह स्नेह की उत्तम मात्रा है । सात
दिवस से पीछे रोगी को स्वेदन देना चाहिये
इससे पीछे स्नेहन कर्म करना ठीक नहीं
है क्योंकि सात दिन पीछे स्नेह सात्स्य होजाता है

स्नेहनं स्वेदनं का फल ॥

स्नेहोऽनिलं हन्ति मृदुं करोति देहं मला
नां विनिहन्ति सङ्गम् ॥ स्निग्धस्य सूक्ष्मेष्ण्य
नेपुलीनं स्वेदस्तु दोषं नयति द्रवत्वम् ॥

अर्थ—स्नेह वातको नष्ट करता है, देह
को मृदु करता है, और मलकी विवदता
को दूर करता है। स्वेदन स्निग्ध व्यक्ति
के सूक्ष्म स्रोतःसमूहों में लीन दोषों को
द्रव कर देता है ॥

ग्राम्पोदकानूपरसैः समां सैस्तु क्लेशनीयः
पयसा च वम्यः ॥ रसैस्तथा जाङ्गलजैः सयु
पैः स्निग्धः कफादृद्धि करैर्विरेच्यः ॥ श्लेष्मो
त्तरश्छर्दयति हृदः खं विरिच्यते मन्दकफ
स्तु सम्यक् ॥ अपः कफेऽल्पे वमनं निर्यच्छे

द्विरेचनं वृद्धकफे तथाऽर्ध्वम्

अर्थ—जिसको वमन करानी हो उसे
पहिले ग्राम्य, औदक, और आनूप मांस
और मांसरस तथा दूध का सेवन करा
के कफको उत्क्रोशित करना चाहिये जि-
ससे अपने आप वमन होजाय। इसी
तरह जिस विरेचन देना हो उसे कफको
न बढ़ानेवाले जांगल मांसरस और यूपद्वारा
स्निग्ध करना चाहिये। क्योंकि ग्राम्या-
दिके मांस सेवन से कफ-के बढ़ जाने के
कारण वमन सहज में होजाती है और
मन्द कफवाले को विरेचन सहज में हो-
जाता है कफके थोड़े होने पर वमन कारक
औषध नाँचे की जाती है इसी तरह से कफ
के अधिक होने पर विरेचनकर्ता औषध
ऊपर की जाती है ॥

स्निग्धाय देयं वमनं यथोक्तं बान्तरश्च पेयादि
रनुक्रमश्च । स्निग्धस्य च स्निग्धवतश्च का
यैर्विरेचनं योग्यतमं ततश्च ॥

अर्थ—जिस मनुष्य को वमन देना होय
उसको प्रथम स्निग्ध करले। पीछे अच्छी
तरह वमन होने पर पेयादि क्रम का पालन
करावे। इसी तरह जिसको विरेचन देना
होय उसे प्रथम स्नेहन और पीछे स्वेदन
देकर योग्यतम विरेचन देवे ॥

पेयां विलेपी मकृतं कृतचयुपरसं त्रिद्विर्यैक-
शश्च । क्रमेण सेवेत विशुद्धकायः प्रधान
मध्यावरं शुद्धिशुद्धः ॥

अर्थ—उत्तम, मध्यम, और अधम
तीन प्रकार का शोधन होता है। इन
तीनों प्रकार से शुद्ध शरीर वाला मनुष्य
क्रम से पेया, विलेपी, कृताकृत यूप और
मांसरस का तीन बार, दोबार, वा एकबार
करके सेवन करे ॥

पेयादि से अन्तराग्नि की ॥

वृद्धि का दृष्टान्त ॥

यथाग्निरग्निस्तृणगोमयाद्यैः सन्धुक्षमाणो
भवति क्रमेण महान् स्थिरः सर्वसहस्तयैव
शुद्धस्य पेयादिभिरन्तराग्निः ।

अर्थ—जैसे अणुमात्र अग्नि प्रथम ति-
नुके, फिर उपले और फिर काठ में लग
कर महान् दृढ़ और सर्वसह होजाती है
उसी तरह शुद्ध मनुष्य की अन्तराग्नि
क्रम से पेयादि द्वारा बढ़ाई हुई महान्
दृढ़ और सबको पचाने वाली होजाती है
(' सर्वसहः, और ' सर्वपचः ' दोनों पाठ हैं)

वमन विरेचन के वेग ॥

जघन्यमध्यप्रवरतुवेगाः चत्वार इष्टावमने
पड्यै । दशैवतेद्वित्रिगुणाविरेकेप्रस्थस्त-
थाद्वित्रिचतुर्गुणश्च ।

अर्थ—वमन के अधम वेग चार, म-
ध्यम छः और उत्तम वेग आठ होते हैं,
इसी तरह विरेचन के अधम वेग दस,
मध्यम बीस और उत्तम तीस वेग होते
हैं, वात द्रव्य का प्रमाण एक प्रस्थ हो-
ने से उत्तम, पौन प्रस्थ होने से मध्यम
और आधा प्रस्थ होने से अधम मात्रा
होती है । इसी तरह विरेचन द्वारा
निकले हुए मलका प्रमाण दो प्रस्थ हो तो
अधम, तीन हो तो मध्यम और चार प्रस्थ
हो तो उत्तम होता है [शिवदास लिखते
हैं कि प्रस्थ साढ़े तेरह पल का होता है]

वमनविरेचनकी अवधि ॥

पित्तान्तमिष्टवमनंतथोर्ध्व

मधःकफान्तंचविरेकमाहुः ॥

अर्थ—जबतक वमन में पित्त न आने
लगे तबतक वमन कराना ठीक है और
जबतक मल में कफ का दर्शन न हो तब
तक विरेचन कराना उचित है ।

वमनविरेचनमेंप्रथमवेगोंका निपेध ।

द्वित्रीनसविट्कानपनीयवेगान् ॥

पेयविरेकेवमनेतुपीतम् ॥

अर्थ—विरेचन के वेगोंको उक्त संख्या
में औषध के पीतेही जो दो तीन वेग होते
हैं वे गिनेनही जाते हैं इसीतरह वमनवेगों
में भी पहिले दो तीन वेग नहीं गिनेजाते

हैं जिन में पीढ़ई औषध निकलती है ।

सम्यग्वापितके लक्षण ।

क्रमात्कफःपित्तमथानिलश्च यस्येति स-
म्यग्वापितः स तु स्यात् ॥ दृत्पाद्वर्धमूर्ध्निन्द्रि-
यमार्गशुद्धी तथा लघुत्वेऽपि च लक्ष्य-

माणे ॥

अर्थ—क्रम से कफ, पित्त और डकार
आये तौ समझना चाहिये कि वमन ठीक
हुई है । तथा वमन के ठीक होनेपर हृदय
पसली, मूर्दा, इन्द्रियगण और स्नेहः सप्त
शुद्ध होजातेहैं और देहभी हलकी होजातीहै ।

असम्यग्वापनके लक्षण ।

दुश्छादितेस्फोटककोठकण्डू ।

हृत्त्वाविशुद्धिर्गुणात्रताच्च ॥

अर्थ—जो वमन ठीक नहीं हुई हो तौ
फोडे, पित्ती, खुजली, हृदय की अशुद्धि,
इन्द्रियों की अशुद्धि और देहमें भारापन होताहै

अतिवमन के लक्षण ।

तृणमोहमूर्च्छानिलकोपनिद्रा ॥

बलादिहानिर्वमनेऽतिचस्यात् ॥

अर्थ—वमन के अत्यन्त होने से तृण
मोह, मूर्च्छा, वातकोप, निद्रा हानि, और
बलहानि ये लक्षण होते हैं ॥

सम्यग्विरिक्त के लक्षण ॥

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसंप्रसादोलघुत्वम्

जोऽग्निरनामयत्वम् ॥ प्राप्तिश्च विट्पित्त

कफानिलानाम् । सम्यग्विरिक्तस्य भवे

त्क्रमेण ॥

अर्थ—सम्यग्विरेचन होने पर स्रोतः स-
प्त की विशुद्धि, इन्द्रियों में प्रफुल्लता, देह

में हलकापन, बलवृद्धि, अग्निकी तीक्ष्णता, अनारोग्यत्व, तथा विष्टा, पित्त, कफ और अधोवायु का अच्छी तरह निःसरण होता है

असम्पत्तिविरक्तके लक्षण ।

स्यात्श्लेष्मापित्तानिलसंप्रकोपः सादस्तथाग्नेर्गुरुताप्रतिशया । तन्द्रातथाछर्दि ररोचकश्च वातानुलोम्यनचदुर्विरिक्ते ।

अर्थ—सम्पत्तिविरचन होने पर कफ पित्त और वात का प्रकोप होता है। अग्नि की मन्दता, देह का भारापन, प्रातःश्याय तन्द्रा, वमन अरुचि, और वात का प्रति-लोम होता है ।

अतिविरक्तके लक्षण ।

कफास्रपित्तक्षयजाऽनिलोत्थाः सुप्त्यङ्गमर्दचलप्रवेपनाद्याः ॥ निद्राबलाभावतमः प्रलापः मोन्मादहेकादविविरोचितेऽति ॥

अर्थ—अत्यन्त विरेचन होने पर कफ, रक्तपित्त, क्षय और वात से उत्पन्न होने वाले रोग होते हैं । तथा सुप्ति, अंगमर्द, क्लान्ति, कम्पन, निद्राभाव, बलाभाव, तमः प्रवेश, उन्माद और हिचकी ये उपद्रव होते हैं।

संसृष्टभक्तनवमेऽहनि सपिस्तं पाययेताप्यनुवा मयेद्रा । द्याव्यहान्नातिबुभुक्षिताय तैलाक्तगात्रापततो निरुहम् ॥ प्रत्यागते मांसरसेन भोज्यः समीक्ष्यवादोपबलं यथा र्हम् ॥ ततस्ततो निश्यनुवासनाहोनात्याशि तः स्यादनुवासनीयः ॥

अर्थ—सम्पत्ति वमन विरेचन के पीछे क्रम से पेयादि का सेवन कराके नवें दिन

भात का भोजन कराके घृत पान करावे अथवा अनुवासन देवे । तदनन्तर तनि दिन पीछे शरीर को अच्छी तरह से तैल से सिक्त करके कुछ खवाकर निरुहण वस्ति देवे । निरुहण के प्रत्यागमन करने पर दोप और बलकी परीक्षा करके जांगल मांसरस का भोजन करावे । और अनुवासन के योग्य होने पर उसीदिन रात्रि के समय थोड़ा भोजन कराके अनुवासन वस्ति देवे ॥

शीते वसन्ते च दिवानुवा स्योरात्रौ शरत्तृती पमघनागमे पुताने वदोपान्परिरक्षितायो स्नेहस्पपाने परिकीर्तिताः प्राक् ॥

अर्थ—शीत और वसन्त ऋतु में दिन के समय और शरद, ग्रीष्म और वर्षा में रात्रि के समय अनुवासन देनी चाहिये । स्नेहपान में जो २ दोप निरूपण किये गये हैं वेही सब अनुवासन में भी लागने चाहिये ॥

प्रत्यागतचाप्यनुवासनीये दिवा प्रदेयं य विताय भोज्यम् । सायञ्च भोज्यं परतस्तस्य देवाय हेऽनुवा स्योऽहनि पञ्चमे वा ॥

अर्थ—अनुवासनीय तैल के प्रत्यागमन करने पर रात्रि में उपवास कराके प्रातः काल भोजन करावे । और अनुवासनीय तैल के दिन में प्रत्यागमन करने पर रात्रि में भोजन करावे, पश्चात् तीन दिन पीछे वा पांच दिन पीछे अनुवासन देवे ॥

व्यहेद्व्यहेदाप्यथ पञ्चमे वा दद्यान्निरुहदनु वासनं वा । एकं तथा त्रीन कफजं शिकारेपि चात्मके पञ्चतुसप्तवारिपि ॥ वातेन चैकाद शवापुनर्वावस्तीनयुग्मानकुशलो विदध्यान्

अर्थ—इस तरह दोषों के अनुसार निरुहण से दो दिन पीछे, तीन दिन पीछे अथवा पांच दिन पीछे, अनुवासन वरित देवे। कफज विकार में एक वा तीन वरित, पित्तज विकार में पांच वा सात, वातज विकार में नौ वा ग्यारह वरित देवे। इस तरह ऊना वरित देवे जैसे एक, तीन, पांच, सात। परन्तु दो चार, छः आठ आदि न देवे।

नरो विरिक्तस्तु निरुहदानम् । विवर्जयेत् सप्तदिनान्यवश्यम् ॥ शुद्धो विरेकेन निरुहदानम् । तद्ध्यस्तशून्यं विकृपेच्छरीरम्

अर्थ—विरेचन कराने के पीछे सात दिन तक निरुहण वरित देना ठीक नहीं है क्योंकि विरेचन द्वारा शुद्ध हुए मनुष्य को निरुहण का देना उस के शून्य शरीर का आकर्षण कर लेता है।

वस्ति के गुण ॥

वस्तिर्वयस्यापि तासु खायु बलाग्निमेधा स्वरवर्णकृच्च । सर्वार्थकारी शिशुवृद्धयु नाम् । निरत्ययः सर्वगदापहश्च । विट श्लेष्ममूत्रानिलपित्तकर्पी स्थिरत्वकृत् शुक्रमुतप्रदश्च ॥

अर्थ—वस्ति वय को स्थापित करती है सुख, आयु, बल, अग्नि, मेधा, स्वर और वर्ण को बढ़ाती है। बालक, वृद्ध और युवा पुरुषों के सम्पूर्ण कार्य करनेवाली है। इसमें कोई उपद्रव नहीं होता है, यह सम्पूर्ण रोगों के नाश करनेवाली है। विष्टा पित्त, मूत्र, वायु और कफ को निकालती

है दृढ़ता बढ़ाती है, वीर्य और सन्तान देनेवाली होती है ॥

निरुहणवस्ति के गुण ।

विश्वकृष्यितंदोपचर्यन्ति रस्याः

सर्वान्विकारान्शमयेन्निरुहः ॥

देहो निरुहेण विशुद्धमार्गं स्नेहेन वर्णवल्प्रदश्च
अर्थ—निरुहवास्ति सम्पूर्ण देह के दोषों को निकालकर सम्पूर्ण विकारों को शान्त कर देती है। निरुहण द्वारा स्नेहः समूह के शुद्ध होने पर स्नेहन कर्म किये जाने पर वर्ण और बल बढ़ता है।

अनुवासन के गुण ।

नान्वासनात्किञ्चिदिहास्तिकर्मपरं विशेपेण समीरणान्ते । स्नेहेन रौक्ष्यं लघुबां गुरुत्वा दौर्ण्याच्च शैत्यं पवनस्य हृत्वा ॥ तैलं ददत्वा शुभ्रमनः प्रसादं दीर्घबलं वर्णमथाग्निपृष्टम् । मूले निषिक्तो हि यथाद्रुमः स्यात् श्रीलच्छदः कोमलपल्लवाग्रः काष्ठमहान् पुष्पफलप्रदश्च तथा नरः स्यादनुवा-

सनेन ॥

अर्थ—वायु के दूर करने के लिये अनुवासन से अधिक और कोई उत्तम कर्म नहीं है। क्योंकि तेल की चिकनाई से वायु की रुक्षता, भ्रंशपन से लघुता और उष्णता से शीतलता दूर हो जाते हैं ॥ तेल शीघ्र ही मन को प्रसन्न करता है और वीर्य बल, अग्नि पुष्टि को बढ़ाता है। जैसे वृक्ष की जड़ में जल सींचने से उसके प्रते हरे, शोभायुक्त और पत्तों के अग्रभाग

कोमल होजाते हैं और समय पाकर बड़ी होकर बहुत से फल पुष्प देने लगता है इसीतरह मनुष्यों के लिये अनुवांसन क्रिया है स्तब्धाश्चयेसंकुचिताश्चयेऽपि येषां च येऽपि चरुणभग्नः ॥ येषां च शाखासु चरन्ति वाताः शस्तो विशेषेण चते पुवस्तिः ॥ आध्यापने विग्रथिते पुरीषे शूले च भक्ता न भिनन्दने च । एवं प्रकाराश्च भवन्ति कुक्षौ ये चामयास्ते पुचवीस्तरिष्ठः ।

अर्थ—जो मनुष्य वायु से स्तब्ध, संकुचित पंगु तथा रोगों से भग्न हैं, जिनके हाथ पावों में वायु चिरती है, उन के लिये वस्ति बहुत हितकारी होती है । जिसको अपरा हो, जिसके विष्टा में गुठले पड गये हों, जिसके शूल हो, जिसकी भाजन में अरुचि हो, तथा जिसकी कुक्षि में अन्यवातज रोग हों, उन सब के लिये वस्ति अत्यन्त हित है । याश्च स्त्रियां वातकृतोपसर्गाद्भर्भनशृङ्गान्तिनृभिः समेताः ॥ क्षीणेन्द्रियाय च नराः कुशाश्च वस्तिः प्रशस्तः परमश्च ते पु । उष्णा भिभूते पुवदन्ति शीतान् शीताभिभूते पुतथा सुखोष्णान् ॥ तत्प्रत्यनीकौ पथसं प्रयुक्तान् सर्वत्र वस्तीनामविभज्य युञ्ज्यात् ॥

अर्थ....जिन स्त्रियों के वातज रोगों के कारण पुरुष के सहवास से गर्भ नहीं रह सकता है और जो पुरुष क्षीणेन्द्रिय और रुश हैं, उन के लिये वस्ति बहुत ही हित है । उष्ण प्रवाण रोगों में शीत वीर्य वाली औषधों के योग से और शीताभिभूत रोगों में उष्ण औषधों के योग से वस्ति देवै ।

अर्थात् जैसा रोग हो उसके प्रतिकूल औषधों के संयोग से वस्ति देवै ।

वृंहणवस्ति के अयोग्यव्यक्ति ॥ न वृंहणीयान्विदधीतवस्नी न्विशोधनी ये पुगेदपुवद्यः ॥ कुष्ठप्रमेहादिपुमदुरेषु नरेषु ये चापि विशोधनीयाः ॥

अर्थ....वेद्य को उचित है कि जो रोग संशोधन के योग्य हैं उन में वृंहण वस्ति न देवै ॥ कुष्ठ और प्रमेहादि रोगों में मंद संसृष्ट रोग में तथा अन्य संशोधनीय रोगों में वृंहण वस्ति न देवै ॥

संशोधन वस्ति का निषेध । क्षीणक्षतानाश्च विशोधनीया न शोषिणानो भ्रशुर्दुर्वलानाम् ॥ न मूर्च्छितानान् विशोधितानाम् येषां च दोषे पुनिवद्धवायु अर्थ....क्षीणक्षत रोगी, शोषरोगी अत्यन्त दुर्बल, मूर्च्छाप्रस्तरोगी, तथा संशोधित मनुष्य को संशोधन वस्ति न देवै ॥ तथा जिनके दोषों में वायु निवद्ध हो, उन्हें भी संशोधन वस्ति न देवै ॥

वायुजन्य रोगों में वस्ति को प्रधानता । शाखागताः कोष्ठगताश्च रोगा । मर्मोर्ध्व सर्वात्रयवांगजाश्च । ये सन्ति ते पांनतुक् शिचदन्यो । वायोः परं जन्मानि हेतुरस्ति ॥

विष्मूत्रापित्तादिमलाचयानाम् । विशेषसंहारकरः स यस्मात् । तस्यातिवृद्ध स्य शमायनान्य द्वस्तेनृते भेषजमस्ति किञ्चित्तस्माच्चिकित्सा र्द्धमिति श्रुवन्ति ॥ सर्वोचित्सायापितस्तिमेके ।

अर्थ—जो रोग हाथ पांवों में होते हैं जो रोग कोष्ठ में है, जो मर्म स्थान में है, जो ऊर्ध्वगामी है, जो संपूर्ण अंगों में होते हैं वा अवयवों में होते हैं, ऐसे सब रोगों की उत्पत्ति का कारण वायु ही है । वायुही विष्टा, मूत्र और पित्तादि दोषों का संचय और विक्षेप करती है । इस बड़ी हुई वायु के शमन करने के लिये वस्तिके अतिरिक्त और कोई औषध ही नहीं है, इस लिये वस्ति को चिकित्सार्थ कहते हैं किसी किसी के मत में वस्ति को संपूर्ण चिकित्साही कहते हैं ।

सम्यक् प्रयुक्त वस्ति के लक्षण ।
नाभिप्रदेशे कटिपार्श्वकुक्षिगत्वाश्चक्षुदोष
त्रयं विपोत्थ्य । संस्नेहकायं सपुरीषदोषः

सम्यक्मुखेनेति चयः स वस्ति ॥

अर्थ—नाभि प्रदेश में कमर, पसली और कूख में जाकर मलदोषके समूह को मथित करके तथा शरीर को स्निग्ध करके पुरीष दोष को साथ लेकर लौटती है उसे असम्यक् प्रयुक्त वस्ति कहते हैं । (यहां पाठान्तर भी है) नाभिप्रदेशं च कटीश्च गत्वा कुक्षिं समालोच्य पुनश्च पार्श्वम् । संस्नेहकायं दिथिलांश्च कृत्वा दोषान्पुरीषं प्रथितं विमथ्य ॥ स्वसक्तवेगः सपुरीष दोषः प्रत्यागतो यस्तिरतिप्रशस्तः ।)

सम्यक्प्रयुक्तनिरुहके लक्षण ।

प्रसृष्टविण्मूत्रसमीरणत्वं । रुच्यप्रिवृद्धया
पायलाघवानि रोगोपशान्तिः प्रकृतिस्थता
च वलञ्चतत्स्पासुनिरुहलक्षणम् ॥

अर्थ—निरुहणवस्ति के सम्यक् प्रयोग होनेपर मल, मूत्र और अधोवायु का परित्याग होता है रुचि और अग्नि की वृद्धि होती है । आमाशय, ग्रहणी, मलाशय और मूत्राशय में हलकापन होता है । रोगों की शान्ति होती है, दोष प्रकृतिस्थ होजाते हैं और बल भी बढ़ता है ॥

असम्यक्निरुहितके लक्षण ।

स्याद्गुच्छिरो हृद्गुदकुक्षिलिङ्गेशोफः प्र
तिश्यायविकर्त्तिका च । हृल्लासिका मा
रुतमूत्रसंगः ॥ श्वासो न सम्यक्चनिरु
हितस्य ॥

अर्थ—निरुहणवस्तिका सम्यक् प्रयोग न होनेपर शिर, हृदय, गुदा, कूख और लिंग में शूल होता है । सूजन, प्रतिश्याय और विकर्त्तिका होती है । तथा हृल्लास, यातविवन्ध, मूत्रविवन्ध, और श्वास भी उत्पन्न होते हैं ।

अतिनिरुहितके लक्षण ।

लिंगयदेवाभि विरेचितस्य

भवेत्तदेवातिनिरुहितस्य ॥

अर्थ—जो लक्षण विरेचन के अतियोग के होते हैं, वेही अत्यन्त निरुहित के होते हैं ॥

सम्यक् अनुवासितके लक्षण ।

प्रत्येत्य सक्तं सशक्चतैलं रक्तादिशुद्धी
न्द्रियसंभसादः । स्वप्नानुवृत्तिर्लघुता च
लञ्चसप्राशवेगाः स्वनुवासिते स्युः ।

अर्थ—सम्यक् अनुवासन होनेपर तेल विना रुकावट के विष्टा को लेकर बाह

आजाता है । रक्तादिधातु और पाँचों बुद्धीन्द्रिय प्रकुलित होजाती है, निद्रा आजाती है । देह में हलकापन और बल बढ़ता है और मलमूत्रादिकी प्रवृत्ति अच्छी रीति से होती है ॥

असम्पक् अनुवासितकेलक्षण ।

अथःशरीरोदरबाहुपृष्ठपार्श्वेष्वरूक्षस्वरश्च गात्रमाग्रहाश्चविण्मूत्रसमीरणानाम् असम्पक्तेतान्यनुवासितस्य ॥

अर्थ—अनुवासनवस्ति के ठीक न होने पर शरीर के नीचे के भाग में, उदर में बाहु में, पीठ में, और पसलियों में दर्द होता है । शरीर रूखा और खरदरा होजाता है । विष्टा, मूत्र और वायु का विबन्ध होता है ॥

अत्यनुवासितकेलक्षण ॥

हृष्टाममोहकमसादमूर्च्छा

विकर्तिकाचात्यनुवासितस्य ।

अर्थ—अनुवासन वस्ति का अतियोग होने से हृष्टास, मोह, क्लान्ति, अवसाद, मूर्च्छा और पेट में मरोड़ा होता है ॥

यस्येहयापाननुवर्ततेत्रीनस्नेहावरःस्यात्सविशुद्धदेहः॥आश्वागतोऽन्यस्तुपुनर्विधेयःस्नेहानसस्नेहयतेत्यतिष्ठन् ॥

अर्थ—अनुवासन का तेल शरीरमें तीन पहर तक रहने से देह शुद्ध होताहै । तेल के शीघ्र निकल आने पर फिर अनुवासन देना चाहिये, जो तेल शरीर में नहीं ठहरता है वह स्निग्ध नहीं करसक्ता है ।

वस्तियों की संख्या ॥

त्रिंशत्स्पृताःकर्मसुवस्तयोहिकालस्ततोऽर्द्धेनततश्चयोगः । सान्नासनाद्वादशैव निरूहाःप्राक्स्नेहएकःपरतश्चपञ्च ॥ कालेत्रयोन्तःपुरतस्तथैकःस्नेहानिरूहान्तरिताश्चपट्स्थुःयोगेनिरूहात्रयएवदेयाःस्नेहाश्चपञ्चैवपरादिमध्याः ॥

अर्थ—कर्मवस्ति तीस हैं कालवस्ति पन्द्रह हैं । अनुवासन और निरूहण बारह २ हैं इनवस्तियों के देने का क्रम यह है कि ये वस्तियां स्वेदन, वमन, विरेचन और नरय कर्म के भीतरही इस रीति से दी जाती हैं कि स्नेहन और स्वेदन के पीछे एक स्नेह वस्ति देकर वमन करावै, फिर एक स्नेहन वस्ति देकर विरेचन करावै पीछे एक बार स्नेह वस्ति और एक बार निरूहवस्ति देकर इस क्रम से बारह निरूह वरित और बारह स्नेह वरित देकर नस्यकर्म करावै । पीछे पाँच स्नेहन वस्ति देवै तथा एक स्नेहन वस्ति पहिलेदी गई थी इसतरहसब मिलकर तीसवस्ति हुई इनको कर्मवस्ति कहतेहैंवस्ति के ऊपर वस्ति न दैनी चाहिये, एक २ वस्ति के पीछे पेयादि क्रम का पालन कराता रहे । काल वस्ति पन्द्रह होती हैं, ये बर्षा ऋतु में वायु की शान्ति के लिये दी जातीहैं।कालवस्तिके प्रयोगकी यह रीति है कि प्रथमही एक स्नेह वस्ति देवै, फिर एक निरूह इसी क्रम से बारह वस्ति देवै, अन्त में तीन स्नेहन वस्ति एक के ऊपर एक देवै । योग वस्ति आठ

होती है, ये वाजी कारण के लिये दी जाती हैं। इस में पहिले और पीछे एक एक अनुवासन वस्ति देवै वाच में तीन निरूहण और तीन अनुवासन देवै ॥

त्रीनपञ्चराहुश्चतुरोऽथपद्वावाताधिके
भ्यस्त्वनुवासनीयान् । स्नेहानुप्रदाया
शुभिपग्विदध्यात्स्रोतोविशुद्ध्यर्थमतो
निरूहम् ॥

अर्थ—वाताधिक्य रोगों में तीन, पांच, चार वा छः अनुवासन वस्ति देकर स्रोतों के शुद्ध करने के लिये निरूहण वस्तिदेवै ।

शिरोविरेचन की विधि ॥

विशुद्धकायस्यततःक्रमेणास्निग्धं ततैस्वेदि
तपुत्तमांगम् । विरेचयेत्त्रिद्विरथैकशो वा
लंसमीक्ष्यत्रिविधं मलानां ॥

अर्थ—धमन विरेचनादि से शरीर के शुद्ध होने पर शिरोविरेचन के लिये पूर्वोक्त तेल से मस्तक को स्निग्ध और स्निग्ध करे, इस तरह रोगी का घल और तीनों दोषों को देखकर तीन, दो वा एक बार शिरोविरेचन देवै ॥

सम्यक् प्रयुक्त शिरोविरेचन के लक्षण ॥

उरःशिरोलाघवमिन्द्रियाणाम् ।

स्रोतोविशुद्धिश्च भवेद्दिशुद्धे ॥

अर्थ—सम्यक् रीतिसे शिरोविरेचन होने पर वक्षःस्थल, सिर और इन्द्रियों में हल कांपन होता है और सब स्रोत शुद्ध होजाते हैं

असम्यक् शिरोविरेचन के लक्षण ॥

गलोपलेपः शिरसो गुरुत्वं ।

निष्ठीवनं चाप्यथ दुर्विरिक्ते ॥

अर्थ—अच्छी तरह शिरोविरेचन होने पर कंठ में कफकी लिहसावट, सिर में भारापन और मुख में थूक भरना यह लक्षण होते हैं ॥

शिरोविरेचन का अति योग ॥

शिरोऽक्षिशंखश्रवणाक्षितोदा ।

दत्यर्थशुद्धस्तिमिरेचपश्येत् ॥

अर्थ—शिरोविरेचन का अतियोग होने पर माथा, आंख, कनपटी और कान में सुई छिदने की सी पीड़ा होती है और रोगी की आंखों के साम्हने अंधेरा सा छाजाता है ॥

वस्तिप्रयोग के अन्य नियम ।

स्यात्तर्पणंतत्र मृदुद्रवश्च स्निग्धस्य तीक्ष्णान्तु
पुनर्नयोगे । इत्यातुरस्य स्थमुत्तमयोगे
वलायुपोष्टिद्विकृदामयघ्नः ॥ कालस्तु व
स्त्यादिपुयातियावां स्तावान् भवेद्द्विः

परिहारकालः ॥

अर्थ—शिरोविरेचनके अतियोगादि में रोगी को स्निग्ध करके मृदु और द्रव तर्पण देवै । इस में तीक्ष्ण द्रव्योंका संयोग न करे रोगी और स्वस्थ पुरुष को ऐसे प्रयोग होने से बल और आयुकी वृद्धि होती है और रोग का नाश होजाता है । वस्त्यादि कर्मों में जितना समय लगता है उस से दुगुना काल पेयादि कर्मके पालन में लगना चाहिये ॥

पंचकर्म के पीछे वाजित कर्म ।

अत्याशनं स्थानवचांसियानम् स्वमेदि
वामैशुनवेगरोधान् । शीतोपचारात्तपशो-

करोषां स्तयजेदकालाहितभोजनञ्च ॥

अर्थ—पंचकर्मसे पीछे अति भोजन, अत्यन्त बैठना अत्यन्त घोलना, अत्यन्त चलना दिनमें सोना, मैथुन, मलमूत्रादिके उपस्थित वेगों का अवरोध, शीतोपचार, धूप, शोक, रोग अकाल भोजन और अहित भोजन ये सब त्याग देने चाहिये ॥

वद्वेप्रणीतोविपमेचनेत्रे ।

मार्गेतथार्शःकफविद्विविन्धे ॥

नयातिवस्तिनसुखंनिरेति ।

दोषावृत्तोऽल्पोयदिवाल्पर्ययः ॥

अर्थ—वस्तिके नल का मुख बद्ध वा विपम प्रणीत हो अथवा अर्शका मार्ग कफ घों घिटा से बन्द हो, उस में वस्ति न सहज में प्रवेशही कर सकती है और न आही संकती है । वस्ति का मार्ग यदि दोनों से आवृत हो वा वस्ति का द्रव्य अल्प वा निर्यय तैलादि से बना हो तौ भी ऊपर कही हुई दशा होती है ॥

मासेतुयर्चोऽनिलमूत्रवेगे वातेविद्वेऽल्प वलेगुदेवा । अत्युष्णतीक्ष्णश्चमृदौपकोष्ठे प्रणीतमात्रः पुनरेतिवस्तिः ॥ मेदः कफाभ्यामनिलोनिरुद्धः शूलांगसुप्ति श्रयधून्करोति ॥ स्नेहन्तुयुञ्जन्ननुपस्तु तस्मै सम्बर्धयत्प्रेवहितान् विकारान् ॥

अर्थ—घिटा, अधोवायु और मूत्रका वेग उपस्थित हो, वायुकी वृद्धि हो, गुदा अल्प यत्पुक्त हो कोष्ठ मृदु हो और वस्तिद्रव्य अत्यन्त उष्ण और तीक्ष्ण हो तौ वस्ति प्रवेश करते ही लोट आती है । मेद और

कफसे रुकी हुई वायु शूल 'अंगसुप्ति (सन्नता)] और सूजन उत्पन्न करती है । इस को अबुध वैद्य वात विकार समझ कर अनुवासनादि प्रयोग करता है । तौ इससे रोगों की वृद्धिही होती है ॥

रोगास्तथान्येऽप्यवितर्क्यमाणाः

परस्परेणावगृहीतमार्गाः ॥ सन्दूषिताधातुभि रेवचान्यैः ॥ स्वैर्भेषजैर्नोपशमंवृजन्ति ॥

सर्वश्चरोगप्रशमायकर्म हीनातिमात्रं विपरीतकालम् । मिथ्यापचारश्चनतं वि कारं । शान्तिनयेतुपथ्यमपिप्रयुक्तमिति

अर्थ इस तरह एक दोष द्वारा दूसरे दोष का मार्ग रुक जाने पर अन्य २ रोग प्रकट होजाते हैं । अन्य धातुओं से दूषित दोष रुद्ध मार्ग होकर अपनी २ औषधों से शान्त नहीं होते हैं । रोगी के पथ्य मेव न करने पर भी यदि रोग की औषध अच्छी तरह से प्रयुक्त न हुई हो, हीन, या अधिक वा मिथ्या प्रयुक्त हुई हो वा विपरीत कालमें प्रयुक्त हुई हो तौ रोगकी शान्ति नहीं होती है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

प्रश्नानिमान्द्रादशपञ्चकर्माण्युद्दिश्यसिद्धाविद्वकल्पनायाम् । प्रजादिदार्थभगवान् महार्थान् मम्यकृजगादपिबरोऽत्रिपुत्रः ।

अर्थ—इस कल्पना सिद्धि नामक अध्याय में भगवान् आश्रय ने प्रजा के हित के लिये वमन विरेचनादि पंच कर्म सम्बन्धी बारह गूढ प्रश्नों का उत्तर दिया है ॥

इतिश्री चरकसंहितायां सिद्धिस्थाने

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथानःपञ्चकर्म्यासिद्धिव्याख्यास्यामः

इतिहस्तादभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम पञ्चकर्म्या सिद्धिकी व्याख्या करेंगे ।

येपांयस्मात्पञ्चकर्मण्यभिवेशनकारयेत्
येपांचकारयेद्यानितस्सर्वसंप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—हे अभिवेश ! जिन के विषयमें पंचकर्म करने के योग्य नहीं है और जिन के विषय में पंचकर्म करने के योग्य हैं अब हम उनकी व्याख्या करेंगे ।

पंचकर्मकेअयोग्यव्याक्ति ॥

चण्डःसाहसिकोभीरु कृतघ्नोव्यग्रएवच
सद्वैद्यनृपतिद्वेषातद्विष्टःशोकपीडितः ॥

यादृच्छिकोमुमुर्षुश्चविहीनःकरुणैश्चयः
वैरीवैद्यविदग्धश्चश्रद्धाहीनःसुशङ्कितः ॥

भिषजामाविषेयश्चनक्रम्याहिभिषग्विदा
एतानुपाचरन्वैद्योबहून्दोषानवाप्नुयात् ॥

एभ्योऽन्येसमुपक्रम्यान्तराःसर्वैरुपक्रमः॥
अवस्थांभाविविषयैर्पांचज्यैकार्यंचवक्ष्यते॥

अर्थ—चण्ड, साहसी, भीरु, कृतघ्न, व्यग्र, सदैवद्रोही, राजद्रोही, विद्विष्ट, शोकपीडित, यदृच्छाचारी, मुमुर्षु, करुणहीन, वैरी, वैद्याभिमानी, श्रद्धाहीन, शंकाकेचित्त, वैद्य की वताई हुई बात का न करनेवाला ये सब पंचकर्मके योग्य नहीं हैं । ऐसी की चिकित्सा करनेसे वैद्य अत्यन्त पापका भागी होता है । इनको छोड़कर अन्य मनुष्य सम्पूर्ण चि-

कित्साओं के योग्य होते हैं । इनमें अवस्था भेद से जो जो कार्य वर्जनीय हैं उनकी व्याख्या करते हैं ।

वमनकेअयोग्यव्याक्ति ।

अच्छर्दनीयास्तावत्तत्तक्षीणातिस्थूलकृ
शवालघृद्धर्बलश्रान्तपिपासितक्षुषितक
र्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्याया
मचिन्तामशक्तक्षामगर्भिणीसुकुमारसंवृत
कोष्ठदुःखर्दनीयोर्ध्वरक्तपित्तप्रसक्तछर्दिनू
र्ध्ववातास्थापित्तानुवासितहृद्रोगोदावर्त
मूत्राघातप्लीहगुल्मोदराप्लीहास्वरोपधा
ततिमिरशिरःशंखकर्णाक्षिपाश्वशूलार्ताः

अर्थ—क्षतक्षीण, अतिस्थूल, कृश, वा-

लक, वृद्ध, दुर्बल, श्रान्त, व्यायाम, क्षाम, गर्भिणी, सुकुमार, संवृत-कोष्ठ (जिसको सहज में वमन न होसकी हो, दुःखर्दनीय, ऊर्ध्वगामी, रक्तपित्त से पीडित, वमनरोगी, ऊर्ध्ववातरोगी, आस्था-पित्त [जिसको आस्थापन वास्तव दीर्घ हो] अलुप्यस्तित्त, हृद्रोगी, उद्वारतरोगी, मूत्र-घातप्रसक्त, प्लीहारोगी, गुल्मरोगी, उदररोगी, अष्टालरोगी, स्वरभंगरोगी, तिमिर-रोगी, शिरोरोगी, कनपटी के रोगवाला, कर्णरोगी नेत्ररोगी और पसली के दर्दवाला । ये सब वमन करने के अयोग्य होते हैं ।

उत्तररोगियोंकेअवम्यहोनेकाहेतु ॥

तत्रक्षतस्यचभूयःक्षणनात्रक्वातिमृत्तिः
स्यात् । क्षीणातिस्थूलकृपवालघृद्धर्बल

लानामौषधवलासहत्वाप्राणोपरोधः ॥
 श्रान्तपिपासितक्षुधितानांचतद्वत् । कर्म
 भाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्याया
 मचिन्ताप्रसक्तक्षामाणारौक्ष्याद्वातरकच्छे
 दक्षतक्षयभयंस्यात् । गर्भिण्यागर्भव्या
 पदामगर्भभ्रंशाच्चदारुणरोगप्राप्तिः ।
 सुकुमारस्यहृदयविकर्षणादूर्ध्वधोवारु
 धिरातिप्रवृत्तिः । संवृतकोष्ठदुश्छर्दनयो
 रतिमात्रप्रवाहनादोषाःसमुत्क्रिष्टाःकोष्ठे
 जनयन्त्यन्तर्विसर्पस्तम्भजाड्यवैचिंत्यम
 रणंवा । ऊर्ध्वरक्तपित्तनमुदानमुत्तिष्ठ
 प्यमाणानहरेद्रेक्तंचातिप्रवर्तयेत् । प्रसक्त
 छर्दिपस्तद्वर्द्धवातास्थापितानुवासिता
 नामूर्ध्ववातातिप्रवृत्तिः । हृद्रोगिणेहृदयो
 परोधः । उदावर्तिनांघोरतरउदावर्तः
 स्याच्छीघ्रतरहन्ता । मूत्रघातादिभिरा
 र्त्तानांतीव्रतरःशूलमादुर्भावः तिमिराणां
 तिमिरातिवृद्धिः । शिराःशूलादिपुगूला
 तिबृद्धिः । तस्मादेतेनवम्याः ।

अर्थ....क्षतरोगी को वमन कराने से
 उरःश्रत और भी अधिक बढ़जाता है जिस
 से रक्त अधिक निकलने लगता है शीण,
 अतिस्थूल, कृश, बालक, वृद्ध और दुर्बल
 वमन के वेगको सहनहीं सकते हैं, इस से
 इनको वमन कराने से प्राणों का अवरोध
 होता है । श्रान्त, पिपासित और क्षुधितको
 भी इनहीं कारणोंसे वमन नहीं कराईजाती
 है । परिश्रमसे व्यथित, भारबहन से थकित,
 मार्ग से थकित, उपवासहत, मैथुन शौल,
 अध्ययनशौल, व्यायामशौल, चिन्ता प्रसक्त,

और क्षामरोगियों को वमन करानेसे रूक्षता
 के कारण वात और रक्त प्रकुपित होते हैं ।
 कण्ठनाली आदिमें छिद्र होना और उरःक्ष-
 त होना इनका भय रहता है । गर्भिणी
 को वमन कराने से गर्भव्यापत् गर्भस्त्राव तथा
 गर्भसंबंधी अन्य अन्य रोगभी होते हैं ।
 सुकुमार को वमन करानेसे उसका हृदय
 विकर्षित होजाता है इससे ऊर्ध्वमार्ग वा
 अधोमार्गसे रुधिर अत्यन्त निकलने लगता
 है । संवृत कोष्ठ और दुश्छर्दनीय मनुष्यको
 वमन करानेसे वमन तो ठीक होती नहीहै
 और वह जोर मारकर वमन करनेकी चेष्टा
 करता है इससे दोष कोष्ठ को उत्क्रेशित कर
 के विसर्प, स्तम्भता, जडता, वैचिन्ति
 [मन में उद्वेग] और मृत्यु आदि रोग
 उत्पन्न करते हैं । ऊर्ध्वगामी रक्त पित्तवाले
 को वमन करानेसे उदानवायु ऊपरको उठ-
 ती है और उससे प्राणों का नाश और
 रक्तकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है ।
 जिसको वमनरोग हो उसको वमन करानेसे
 भी उक्त दशा होती है । ऊर्ध्व वात रोगी,
 अनुवासित और आस्थापितको वमन कराने
 से ऊर्ध्ववात की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है ।
 हृद्रोगी को वमन कराने से हृदय का उध-
 रोध होता है ॥

उदावर्त रोगी को वमन कराने से घोर
 तर उदावर्त होता है जिससे रोगी शी-
 घ्रही मरजाता है । मूत्राघात, प्लीहा, गुल्म,
 उदर, अग्रांठ और स्पर्श भंग वाले को व-
 मन कराने से अत्यन्त तीव्र शूल उत्पन्न

होता है । तिमिर रोगीको वमन कराने से तिमिर की वृद्धि होती है ॥ शिरःशूल शंखशूल, और पार्श्वशूलवालेको वमन कराने से शूल की अत्यन्त वृद्धि होती है इससे ऊपर लिखे सब रोगों में वमन कराने का निषेध है

वमनका अप्रतिषेधः ॥

सर्वेष्वपि खल्येतेष्वपि विषगरो विरुद्धाभ्य
वहारामकृतेष्वप्रतिसिद्धं क्षीघ्रतरकारि
त्वादेवाम् ॥

अर्थ—ऊपर लिखे हुए सम्पूर्ण रोगों के होने पर भी यदि विषजनित, विरुद्ध भोजन जनित, गर जनित या आमदोषजनित उपद्रव का प्रादुर्भाव होता वमन करानेका निषेध नहीं है । कारण ये हैं कि ये रोग आशुकारी होते हैं ॥

वमनीय व्यक्तिः ॥

शोषास्तु वम्याः पीनसकुष्ठनवज्वरराज्य-
क्ष्मकासश्वासगलगण्डश्लीपदमेहम-
न्दाग्निविरुद्धजीर्णाक्षि विशूचिकालसक
विषगरोपीतदष्टदिग्धविद्धाधः शोणितपि
क्षप्रसेकहृल्लासारोचकाविपाकापच्यप-
स्मारोन्मादातिसारशोफपाण्डुरोगमुख-
पाकदुष्टस्तन्यादयः श्लेष्मव्याधयो विशेषे-
ण रोगाद्यायोक्ताश्चैते पुडियमनंप्रधा-
नतममित्युक्तं केदारसेतुभेदेशाल्यादि
शोषदोषविनाशवत् ।

अर्थ—ऊपर कहे हुए रोगियों से अन्य वमनके योग्य होते हैं । पीनस, कोढ, मथीन ज्वर, राज्यक्ष्मा, खांसी, श्वास, गलगण्ड, श्लीपद, मेह, मन्दाग्नि

विरुद्ध भोजन, दुष्पाच्यभोजन, विस्फु-
का, अलसक, विषपान, गरपान, काठने
का विष, दिग्ध शिराआदि का व्यथ, अ-
धोगत रक्तपित्त, कफप्रसेक, अर्श, हृ-
ल्लास, अरुचि, अविपाक, अपची, अपस्मार,
उन्माद, अतिसार, सूजन, पाण्डुरोग, मुख-
पाक, दुष्टस्तन्यादि धात्रीरोग, और वि-
शेष करके महारोगाध्याय में कहे हुए बीस
प्रकार के कफविकार । ये सब वमन सा-
ध्य हैं । जैसे खेत की मेंढ तोड़ देने से
जल के निकल जाने के कारण खेती सू-
ख जाती है, इसी तरह से वमन द्वारा
दोषों के निकल जाने के कारण सब रोग
नष्ट हो जाते हैं ॥

अचिरेच्य रोगी ॥

अचिरेच्यास्तु भगक्षतगुदमुक्तनालाधो
भागरक्तपित्ताविलंघितदुर्वलेन्द्रियालपाग्निं
निरुद्धकामादिव्यग्राजीर्णनवज्वरमदा-
त्ययिताध्मानशल्याद्रित्याभिहतातीसिन्
ग्वरुक्षदारुणकोष्ठाः क्षतादयश्च गर्भि-

ण्यन्ताः ॥

अर्थ—नीचे लिखे हुए रोगी विरेचन
के योग्य नहीं होते हैं । यथा—सुकुमार,
क्षतगुद [जिनकी गुदा में घाव हो], मु-
क्तनाल [जिनका मलद्वार शिथिल हो-
गया हो], अधोगामी रक्तपित्त रोगी,
उपवास कर्षित, दुर्वलेन्द्रिय, मन्दाग्नि, नि-
रुहित [जिसे निरुद्धवृत्ति दी गई हो],
जो कामादि हेतुओं से व्यग्रमन हो, जो
अजीर्ण रोग से पीडित हों, जिसको न-

वीन ऊपर हो, जिसको मदात्यय रोग हो जिसको अफरा हो, जो शय्य से पीडित हो जिसके चोट लगहो, जो अतिस्निग्ध वा अतिरूक्ष हो, जिसका कोष्ठ दारुण हो तथा वमन प्रकरणमें कृहे हुए क्षतसे गर्भिणी पर्यन्त अर्थात् क्षतरोगी, क्षीणरोगी, अतिस्थूल, अतिरूक्ष, बालक, वृद्ध, दुर्बल, धकित, पिपासित, क्षुधित, श्रमकान्त, भाराकान्त, मार्गकान्त उपवास कर्षित, मैथुनरत, अध्ययनरत, व्यायामशील, चिन्ताप्रस्त, श्वास और गर्भिणी इन सबको विरेचन न देना चाहिये । उक्तव्यक्तियोंके अविरेच्य होने का कारण तत्रमुभगस्य सुकुमारोक्तोदोषः स्यात् ॥ क्षतगुदस्य क्षते गुदे वायुः प्राणोपरोधकरीं परारुजां जनयेत् । मुक्तनालमतिप्रवृत्त्या हन्यात् । अथो भागरक्तपित्तिनां तद्वदेव ॥ विलिंघितदुर्बलेन्द्रियाऽल्पाग्निनिरूढा औपधेगं न सहेरन् । कामादि व्यग्रमनसो न प्रवर्तते कृच्छ्रेण वा प्रवर्तमानमधोगदोषान् कुर्यात् । अजीर्णिन आमदोषः स्यात् नवज्वरस्यापि पक्वान् दोषान्न निहेरत्वा तमेव च कोपयेत् । मदात्ययितस्य मद्यक्षीणे देहवायुः प्राणोपरोधं कुर्यात् ॥ आध्मातस्यः प्रायमानस्य वा पुरीषकोष्ठे निचितो वायुर्विसर्पनसहसानां हंती घ्नतं रमणं वा जनयेत् ॥ सशल्यादिताभिहतयोः क्षते वायुराश्रितो जीवितं हि स्यात् ॥ अतिस्निग्धस्यातियोगभयं भवेत् ॥ रूक्षस्य वायुरंगग्रहं कुर्यात् ॥ दारुणकोष्ठस्य विरेचनोद्धतादोषाहच्छूलपर्वभेदानाहा

ज्वमर्दछर्दमूर्च्छाक्लमान् जनयित्वा प्राणा न हन्युः ॥ क्षतादीनां गभिष्यन्तानां छर्दोक्तोदोषः स्यात् ॥ तस्मादेतेन विरेच्याः अर्थ—सुकुमार मनुष्य को विरेचन देने से हृदय कर्षित होता है । गुदा में घाव वाले को विरेचन देनेसे प्राणोपरोधकारी अत्यन्त तीव्र वेदना होती है मुक्तनाल मनुष्यको अत्यन्त विरेचन देनेसे प्राणों की हानि होती है । अधोगामी रक्तपित्त वाले को विरेचन देने से रक्तकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है । उपवास कर्षित, दुर्बलेन्द्रिय मन्दाग्नियुक्त और निरूहित औषध के वेग को नहीं सह सकते हैं । जो मनुष्य कामादि वेगों से दुश्चित हो रहे हैं उनको विरेचन से दस्त नहीं आते हैं और जो काठिनता से दस्त आते हैं । तौ अधोमार्ग में संपूर्ण दोष कुपित होजाते हैं अजीर्ण वाले को विरेचन देने से आमदोष की उत्पत्ति होती है ॥ नवीन ऊपर में विरेचन देने से आमदोष नहीं निकलते हैं किन्तु वात कुपित होजाती है मदात्ययरोगी को मद्य से क्षीण देह में विरेचन देने से वायु प्राणों को रोक देती है जिसके अफरा हो वा जो आध्माय मानहो उसे विरेचन देने से मलाशय में संचित वायु फैलकर शीव्रही अत्यन्त तीव्र आनाह वा मृत्यु को उपस्थित करती है शल्यादि ता और आहत व्यक्ति के घावमें वायु रहती है उस दशा में यदि विरेचन दिया जाय तो प्राणनष्ट होजाते हैं । अत्यन्त स्निग्ध मनुष्य को विरेचन देने से उसका

अति योग होता है। रुक्ष व्यक्ति को विरेचन देने से वायु अंग को पकड़ लेती है। कड़े कोठेवाले को विरेचन देने से दोष उदीर्ण होकर हृदय में शूल, पर्वभेद आनाह, अंगमर्द, वमन मूर्च्छा और क्लान्ति उत्पन्न करके प्राणों को नष्ट कर देते हैं। क्षत्ररोगी से लेकर गर्भिणी पर्यन्त को विरेचन देने से वमन प्रकरण में कड़े हुए रोग होते हैं। इससे ये सब विरेचनके अयोग्य हैं।

विरेचन के योग्य व्यक्ति ।

शेषास्तुविरेच्याः । कुष्ठज्वरमेहोर्ध्वरक्तपित्तभगन्दरोदराशोर्वर्ध्नीहृगुल्माबुदगलगण्डग्रन्थिविसृचिकालसकमूत्राघातकिमिकोष्ठविसर्पपाण्डुरोगशिरपार्श्वशूलोदावर्तनेत्रास्यदाहहृद्दोगव्यङ्गनीलीकानेत्रनासिकास्यश्रवणरोगहलीमकश्वासकासकामलापस्मारोन्मादवातरक्तयोनिरेतोदोपतमिर्यारोचकाविपाकच्छार्दिश्वयध्वपचीविस्फोटकादयःपित्तव्याधयोविशेषरोगाध्यायोक्ताश्चापेतुहि विरेचनं प्रधानतममित्युक्तमनुपशमेऽग्निग्रहवत् ।

अर्थ....ऊपर कहे हुए रोगियों को छोड़कर शेष सब रोगी विरेचन के योग्य होते हैं। कोष्ठ, ज्वर, प्रमेह, ऊर्ध्वरक्तपित्त, भगन्दर, उदररोग, अर्श, मूत्र, शीहा, गुल्मरोग, शूल, गलगण्ड, ग्रन्थि, विसृचिका, अलसक, मूत्राघात, किमिकोष्ठ, विसर्प, पाण्डुरोग, शिरो वेदना, पार्श्वशूल, उदावर्त, नेत्रदाह, मुखदाह, हृद्दोग, व्यंग, नीलीका, भोरोग, नासिका रोग, मुत्ररोग, कर्णरोग

हलीमक, श्वास, खांसी, कामला, मृगीरोग, उन्माद, वातरक्त, योनियोप, शुक्रदेप, तिमिर, अरुचि, अधिपाक, वमन, सूजन, उदररोग, विस्फोटकादिरोग, तथा महारोगाध्याय में कही हुई चालीस प्रकार की पित्तव्याधियां विशेष करके विरेचन से दूर हो जाती हैं। इन सब रोगों में विरेचन ही प्रधान है। जैसे आग्ने के बुझने से घर अपने आप शान्त होजाता है इसी तरह विरेचन द्वारा दोषों के निकलने से शरीर के रोग अपने आप शान्त होजाते हैं ॥

अनास्थाप्यरोग ।

अनास्थाप्यस्तु अजीर्ण्यतिस्निग्धपीतस्नेहोत्क्रिष्टदोषाल्पाग्निमानक्लान्तातिदुर्बलक्षुत्तृष्णाथमार्तातिकृशभुक्तभक्तपीतोदकवमितधिरिक्तक्षतकृतनस्तःकर्मकुजर्भीतमत्तमूर्च्छितप्रसक्तछार्दिनिष्टीविकाश्वासकासहिक्कावद्धिद्रोदकोदराध्मातालमकविसृचिकामप्रनामातिसारमधुमेह
कुष्ठाः ॥

अर्थ—नीचे लिखे हुए रोगी आस्थापन के योग्य नहीं होते हैं। यथा—अजीर्ण रोगी, अतिस्निग्ध, पीतस्नेह, उत्क्रिष्टदोष, मन्दग्नि, यान्क्लान्त, (संपारीसे थकहुआ) अतिदुर्बल, क्षुभार्त्त, तृणार्त्त, श्रमार्त्त, अत्यन्तकृश, सुकभक्त (जिसने भोजन खायाहो) पीतोदक, वमित, विरिक्त, क्षत, कृतनस्तः कर्मा [जिसने नस्यकर्मका सेवन कियाहो] कुद्ध, डराहुआ, मत्तवाला, मूर्छित, वमनरोगी, जिसके मुँहमें धूक भरताहो, आ-

सरोगी, कासरोगी, हिक्कारोगी, वद्धोदरी, छिद्रोदरी, दकोदरी, अलसकरोगी, विसूचिका रोगी, आमगर्भा [जिसका गर्भ सातमहीने के भीतरहो) अतिसारी, मधुमेही और कुष्ठरोगी, ये सब आस्थापन के योग्य नहीं हैं

अनास्थापनका कारण ।

तत्राजीर्ण्यतिस्निग्धपीतस्नेहानां दूष्योदरं मूर्च्छाश्च यथुर्वा स्यात् । उत्क्रिष्टदोषमन्दान्ग्योरो रोचकस्तीव्रः । यान् क्लान्तस्य क्षोभमापन्नो वस्तिराशुदेहं शोषयेत् ॥ अतिदुर्बलक्षुत्तृष्णाश्रमार्तानां पूर्वोक्तो दोषः स्यात् । अतिकृशस्य काश्चिदपुनर्जनयेत् । पीतोदकभुक्तभक्तेभ्यो त्वले श्योद्धमधोवावायुर्वस्तिमुत्क्षिप्य क्षिप्रं वस्तौ घोरां विकारान् जनयेत् ॥ वमितविरिक्तयोस्तुरुक्षशरीरानिरूहः क्षतक्षारइव दहेत् । कृतनस्तः कर्मणो विभ्रंशं शंसं रुद्धस्रोतसः कुर्यात् । क्रुद्धभीतयोर्वस्तिरुद्धमुपश्रुयेत् । मत्तमूर्च्छितयोर्भृशं विचलितयां संज्ञायां चित्तोपघाताद्व्यापत्स्यात् । प्रसक्तछर्दिनिष्ठीविकाश्वासकासहिकार्तानामूर्द्धाक्रान्तावायुरुद्धं वस्तिं नयेत् । वद्धछिद्रोदकोदराध्मातानां भृशतरमाध्मावस्तिः प्राणानर्हिस्यात् । अलसकविसूचिका ममजातिसारिणामामकृतो दोषः स्यात् । मधुमेहकुष्ठिनो व्याधेः पुनर्दृष्टिः तस्मादेते

नास्थाप्याः ॥

अर्थ इनमें से अजीर्णरोगी, अति स्निग्ध और पीतस्नेह वाले रोगियों को आस्थापन देनेसे उदररोग मूर्च्छा और सूजन उत्पन्न

होती है उक्लिष्ट दोष और मन्दान्गि वालों को आस्थापन देनेसे तीव्र अरुचि होती है । सवारीसे थके हुए को आस्थापन देनेसे क्षोभ को प्राप्त हुई वस्ति शांतिही उसके देहको सुखा देती है । अति दुर्बल, क्षुधार्त, तृपास और श्रमार्त को आस्थापन वस्ति देने से पूर्वोक्त दोष होते हैं । अत्यन्त कृशको वस्ति देनेसे और भी कृशता हो जाती है । जल पीने और भोजन करने के पीछे वस्ति देने से उसका वायु ऊपर वा नीचे उत्कलित होकर और वस्ति को उत्क्षिप्त कर के शीघ्रही वस्ति में घोर विकारों को उत्पन्न कर देती है । वमित और विरिक्त का शरीर पहिलेही रुक्ष होता है, इस पर भी यदि निरूह दी जाय तो क्षतक्षार की तरह दग्ध कर देता है जिस मनुष्य ने नस्यकर्म किया है उसको आस्थापन देने से स्रोतः समूह रुककर नस्यकर्मके फलको नष्ट कर देते हैं । क्रुद्ध और भीत को आस्थापन वस्ति देने से वस्ति ऊपरको चली जाती है । मत्त और मूर्च्छित को अत्यन्त विगड़ी हुई दशा में देने से चित्तोपघात होता है । वमनरोग, श्वास, खांसी और हिचकी वाले को आस्थापन देने से आस्थापन को वायु ऊपरको लेजाती है । वद्धोदर, छिद्रोदर, दकोदर और आध्मान में वस्ति देने से उदर में बहुत अफरा उत्पन्न होता है और प्राण जाते रहते हैं । अलसक, विसूचिका, आमगर्भा और अतिसारमें आ-

स्थापन देने से आमकृत दोष होते हैं । मधुमेह और कुष्ठ में आस्थापन देनेसे रोग की वृद्धि होती है, इस से ऊपर लिखे हुए रोगों में आस्थापन वस्ति न देनी चाहिये ।

आस्थाप्यरोग ।

शोषास्त्रास्थाप्याः सर्वाङ्गैर्काङ्क्षिरोगवा-
तवर्चोमूत्रशुक्रसंगवलवर्णमांसरेतःक्षयदा-
पाध्मानाङ्गमुत्तिक्त्रिमिकोष्ठोदावर्ततिसा-
रपर्वाभितापप्लीहगुल्महृद्गोभगन्दरोन्मा-
दज्वरवर्ध्मशिरःकर्णशूलहृदयपार्श्वपृष्ठक-
टीग्रह्वेपनाक्षेपकगौरवातिलाघवरजःक्ष-
यानातयविपमामिनिस्त्रिगजानुजंघोरु-
ल्फवाटिगमपदयोनिवाहवाङ्गुलितलांस-
दन्तपार्श्वस्थिशूलशोपस्तम्भान्त्रकृजन-
नपरिकर्तिकादयः वातव्याधयोविशेषेण
रोगाध्यायोक्ताश्चाप्येत्वास्थापनं प्रधा-
नतममित्युक्तं वनस्पतिमूलच्छेदवत् ।

अर्थ—ऊपर कहे हुए रोगों से अन्यरोग आस्थापन के योग्य होते हैं । यथा—सर्वाङ्ग वात, एकाङ्ग वात, कुक्षिरोग, अधोवायु, मूत्र और वीर्य के विवन्ध, वलक्षय, वर्णक्षय, मांसक्षय, वीर्यक्षय, आध्मान, अङ्गमुत्ति, क्रिमिकोष्ठ, उदावर्त, अतिसार, हृडफूटन, प्लीहा, गुल्म, हृद्गो, भगन्दर, उन्माद, ज्वर, मन्त्र, शिरःशूल, कर्णशूल, हृदयग्रह, पार्श्व-ग्रह, पृष्ठग्रह, काटिग्रह, कम्पन, आक्षेप, अङ्गमोर्ष, देह का अत्यन्त हलकापन, रज-क्षय, रजस्वला होने का अभाव, विपमामि, नितम्बशूल, जानुशूल, जेघाशूल, ऊरुशूल, टकने का दर्द, ऐड़ी का दर्द, पंजे का दर्द,

योनिशूल, बाहुशूल, अङ्गुलिशूल, पार्श्वशूल, अस्थिशूल, शोप, स्तम्भ, अत्रकृजन, परि-
कर्तिका, तथा वक्षिप करके महारोगाध्याय में कही हुई अस्ती प्रकार की बात व्याधियां आस्थापन से दूर होजाती हैं । इन रोगों में आस्थापन प्रधान है, जैसे जब काट डाल ने से वनस्पति एक साथ ही नष्ट होजाती है उसी तरह आस्थापन देने से भी सम्पूर्ण रोग जब से मिटजाते हैं ।

अनुवासन के अयोग्य रोगी ॥

यएवानास्थाप्यास्तएवाननुवास्याः । वि-
शेषतस्त्वभुक्तभक्तनवज्वरपाण्डुरोगका-
सकामलाममेहार्शःप्रतिश्यापारोचकमंदा-
मिदुर्वलप्लीहकफोदरोरुक्कम्भवर्चोभिद-
विपगरपीतकफाभिप्यन्दगुरुकोष्ठप्ली-
पदगलगण्डापचिक्रिमिकोष्ठनः ।

अर्थ—जो जो रोग आस्थापन योग्य वर्णन नहीं किये हैं उनहीं में अनुवासन भी न दें । विशेष करके अभुक्तभक्त, नवज्वर, पाण्डुरोग, खांसी, कामला, प्रमेह, अर्श, प्रतिश्याय, अरुचि, मन्दाग्नि, दुर्वलता, प्लीहा, कफोदर, उरुस्तम्भ, मूलमेद, पीत विप, पीतगर, कफाभिप्यन्द, भारी कोष्ठ, रलीपदरोग, गलगण्डरोग, अपची और क्रिमि-कोष्ठ । इन सब रोगों में अनुवासन न देनी चाहिये ।

उक्तरोगों में अनुवासन के न देने का कारण तत्राभुक्तभक्तस्यानावृतमार्गत्वाद्भूमाति-
वर्ततेस्नेहो ॥ नवज्वरपाण्डुरोगकाम-
लामेहिणादोषानुत्क्रेश्योदरजनमेद

शस्यशस्यभिष्यन्त्याध्मानमरोचकार्त
स्यान्त्रवृद्धिपुनर्हन्त्यात् । मन्दाग्निदुर्बल
योर्मन्दतरमग्निंकुर्यात् ॥ प्रतिश्यायप्ली
हादिमताभ्रशंचोत्किलष्टदापाणाभूयए
वदोपवर्द्धयेत्तस्मादेतेनानुवास्याः ॥

अर्थ—बिना भोजन कराये अनुवासन
देने से वास्तिका मार्ग खुला रहनेसे तेल
ऊपरको चला जाता है । नवज्वर, पांडु-
रोग, कामला और प्रमेह में अनुवासन देने
से दोष उत्केशित होकर उदररोग उत्पन्न
करते हैं । अशरोग में अनुवासन देने से
स्नेहन अर्श को अभिष्यन्दी करके आध्मान
उत्पन्न करता है । अरुचि में अनुवासन
देने से अन्त्रवृद्धि होकर प्राणों को नष्ट
कर देती है (अन्न में अनिच्छा होती है
ऐसा पाठभी है) मन्दाग्नि और दुर्बल को
अनुवासन देने से अग्नि अत्यन्त मन्द हो-
जाती है । प्रतिश्याय और प्लीहा में अनु-
वासन देने से सम्पूर्ण दोष और भी बढ
जाते हैं । इसलिये इन सम्पूर्ण रोगों में
अनुवासन न देना चाहिये ।

अनुवासन के योग्य व्यक्ति ।
यएवास्याप्यास्तएवानुवास्याः । विशेष
पतस्तुरुक्षतीक्ष्णाग्नयःकेवलवातरोगा
त्तीक्ष्ण । एतेपुनरनुवासनप्रधानतममित्यु
क्तवनस्पतिमूलच्छेदनवत्तमूलेशुभ्रमसि
क्तवच्च ॥

अर्थ—जिन जिन रोगों में आस्था-
पन दी जाती है उन्हीं में अनुवासन भी
दी जाती है । विशेष करके रूक्ष, तीक्ष्णाग्नि

और केवल वातरोग पीडितको तो अवश्य
ही अनुवासन देना चाहिये । इन सब रोगों
में अनुवासन ही प्रधान औषध है । जैसे
जड़ के काटने से वनस्पति नष्ट होजाती है
वैसेही अनुवासन से सब रोग जड़से मिट
जाते हैं और जैसे वृक्षकी जड़ में जड़ देने
से वह उपरसे नीचे तक हटा होजाता है
उसी तरह अनुवासन देने से उसकी सब
धातु पुष्ट होजाती हैं ।

शिरोविरेचन के अयोग्यरोगी ।
अशिरोविरेचनार्हाःअजीर्णभुक्तभक्तपी
तस्नेहमद्यतोयपातुकामःस्नातशिरःस्नातु
कामःभुतृष्णाश्रमातमत्तमूर्च्छितशस्त्रदंढा
हतव्यवायव्यायामपानकान्तवलांतनव
ज्वरशोकाभितप्तविरपतानुवासितगर्भि
णीनवप्रतिश्यायार्ताःअवृतुदुर्दिनेच ।

अर्थ—नीचे लिखेरोगी शिरोविरेचन के
योग्य नहीं होते हैं । यथा— अजीर्ण रोगी
भुक्तभक्त, पित्तस्नेह, मद्यपान वा जलपान
की इच्छारखने वाला, स्नातशिरः (सिरस
मेतनहनेवाला,) स्नातुकाम [स्नानकी
इच्छारखनेवाला], क्षुधार्त, तृषार्त, श्रमार्त
मूर्च्छित, शस्त्राहत, दंढाहत, मैथुनक्रान्त,
व्यायामक्रान्त, मद्यपान से थका हुआ, नव
ज्वर पीडित, शोकाभितप्त, विरिक्त, अनुवा-
सित, गर्भिणी, और नवीन-प्रतिश्यायसे
पीडित । इन को शिरोविरेचन न देवे ।
इसके अतिरिक्त कुक्कुट और जिस दिन
बादल हो रहे हों उस दिन भी शिरोविरे
चन न देवे ॥

शिरोविरेचन न देने का कारण ।

तत्रार्जीर्णभुक्तभक्तयोर्दोषऊर्ध्वाहा-
निस्रोतांस्यावृत्त्यकासश्वासछर्दिमति
श्यायान्जनयेत् । पीतस्नेहमद्यतोय
पातुकामानांकृतेचपिवतांमुखनासास्त्रावा
क्षुपदेहतिमिरशिरोरोगान्जनयेत् । स्ना-
तशिरसःकृतेचस्नानाच्छिरसःप्रतिश्यायः ।
क्षुधार्तस्यवातप्रकोपः । तृणार्तस्यपुनस्तृ-
ण्णाभिदृष्टिमुखशोषञ्च । श्रमार्तमत्त
मूर्छितानामास्थापनोवतंदोषः । शस्त्रद-
ण्डहतस्यतीव्रतरारुजंजनयेत् । व्यवाय
ग्लानव्यायामवलान्तानांशिरःस्कन्धने-
त्रोरःपीडनं । नवज्वरशोकाभितप्तयो-
रूपमानेत्रनालीभिरनुसृत्यतिमिरज्वरवृ-
द्धिचकुर्यात् । विरिक्तस्यवायुरिन्द्रियो-
पघातमनुवासितस्यकफःशिरोगुरुत्वक-
ण्डकिमिदोषान् । अन्तर्वन्त्यागर्भस्तम्भ-
येत्स्रकाणःकुण्ठिःपक्षहतःपीठसर्पिर्वाजा-
येत । नवप्रतिश्यायस्यस्रोतांसिव्यापाद-
येदन्तदुर्दिनेशीतदोषात्पूतिर्नासिकाशिरो-
दोषश्चस्यात्तस्मादेतेनशिरोविरेचनार्हाः ।

अर्थ—इन में अजीर्ण रोगी को और मु-
क्तभक्त को शिरो विरेचन देने से दोष ऊर्ध्व-
वाही स्रोतो को रोककर खांसी, श्वास, वम-
न और प्रतिश्याय उत्पन्न करते हैं । पीत
स्नेह, जलपातुकामी और मद्यपातुकामीको
शिरोविरेचन देने से मुखस्त्राव, नासिकास्त्राव
आँखों में लहिसावट, तिमिर और शिरोरोग
उत्पन्न होते हैं । शिरःस्नात या न्हाये हुए
मनुष्य को शिरोविरेचन देने से प्रतिश्याय

होता है । क्षुधार्त को देने से वायुकोप
तृणार्त को देने से तृणकी वृद्धि और मुख
शोष, श्रमार्त को देने से तथा मत्त और
मूर्च्छित को देने से आस्थापन में कहे हुए
दोष होते हैं । शस्त्राहत और दण्डाहत को
देने से वेदना तीव्र होती है । व्यवाय और
व्यायामसे थके हुए को देनेसे सिर, कंधा
नेत्र और वक्षःस्थल में पीडा होती है ।
नव ज्वर वाले को देने से ज्वर की वृद्धि
होती है । शोकपीडित को देने से दोष
नेत्रकी नालियों में प्रवेश करके तिमिर रोग
को उत्पन्न करते हैं । विरिक्त को देने से
वायु कुपित होकर इन्द्रियों को चेष्टाहीन कर-
ती है । अनुवासितको देने से कफ बढ़कर
सिर में भारापन, खुजली और क्लिमिरोग
उत्पन्न करता है । गर्भिणी को देने से गर्भ
बढ़नेसे रुकजाता है और काना, कुनख, प-
क्षाघाती और पांगला होजाता है । नवीन
प्रतिश्यायवाले को देने से स्रोत निष्काम
होजाते हैं । कुसमय वा दुर्दिन देनेसे शीत
पूतिनासिका और शिरोरोग होते हैं । इस
से इन रोगियों को शिरोविरेचन न देवे ॥

शिरोविरेचन के योग्य रोगी ।

शेषार्हाः । शिरोदन्तमन्यागलहनुग्रह-
पीनसगलशुण्डिकाशालूकशुकृतिमिरव-
र्ध्मरोगव्यंगोपजिह्विकार्धावभेदकग्रीवा-
स्कन्धासास्यनासिकाकर्णाक्षिर्मुखकपाल-
रोगादितापतन्त्रकापतानकर्मलगण्डदन्त-
शूलहर्षचालाशिरागार्बुदस्वरभेदवाग्गू-
गहदकयनादयऊर्ध्वजङ्गतावातादिविका

राः परिपक्वाश्चेतेपुशिरोगिरेचनंमथा
नतममित्युक्तं तस्युत्तमांगमनुमविश्य
मञ्जुपपीकासपतंदोषं विकारकरमपकर्षति
अर्थ—इन से अन्यरोगों में शिरोविरेचन
देनाहित है। यथा शिरोरोग, दन्तरोग, मन्था
स्तम्भ, गलग्रह, हनुग्रह पीनस, गलशुण्डिका
शाङ्गु, शुक्र, तिमिर, वर्मरोग, ज्वर, उपजि-
ह्वा, अक्षार्धभेदक, मोथा रोग, स्कंधरोग
श्रास्यरोग, नासिकारोग, कर्णरोग, नेत्ररोग
भूदांरोग, कपालरोग, मस्तकरोग आदित,
अपतंत्रक, अपतानक, गलगंड, दंतशूल,
दन्तहर्ष, दंतवज्र, अक्षिरोग, अर्बुद, स्वरभेद,
घान्ग्रह, गद्गदता, ऊर्ध्वजत्रुगत रोग, और
घातादिरोग इन सब रोगों में शिरोविरेचन
प्रधान है। इसकारण से शिरोविरेचन शिर
में प्रवेश करके मज्जा और पेशी में स्थित
विकार करने वाले दोषोंको निकाल देता है।

नस्यकर्म विधि ।

मातृशरद्वसन्तेष्वितरेषु आत्ययिकेपुरोगेषु
नावनंकुर्याद्ग्रहीष्मेषूर्वाह्णेशीतेमध्याह्नेव
प्रास्वदुर्दिनेचेति ।

अर्थ....वर्षा, शरद और वसन्त ऋतु में
नस्यदेवै। यदि कोई आत्ययिक रोग उत्पन्न
होजाय तो ग्रीष्म ऋतु में दुपहरसे पहिले
शीतऋतु में दुपहरके समय, और वर्षा में
जिस दिन बादल न हो उसदिन नस्य देवै।

अध्यायका उपसंहार ।

इतिपंचविधकर्मविस्तरणनिदर्शितम् ।
येभ्योयन्नहितं यस्मात्कर्मयेभ्यश्चयद्धितं
म् । नचैकान्तेनानेदिष्टेत्त्राभिनिवेशेत्

बुधः ॥ स्वयमप्यत्रयैधेनतवर्षव्युद्धिमता
भवेत् । उत्पद्येतहिंसावस्यादेशकालच
लम्पनि ॥ यस्यांकार्यमकार्यस्यात्कर्म
कार्यञ्चवर्जयेत् । छर्दिहृद्रोगगुल्मार्तेवम
नंस्वेचिकित्सिते ॥ अवस्थांप्राप्यनिर्दि
ष्टं कुष्ठिनाम्बस्तिकर्मच । तस्मात्सत्यापि
निर्दिष्टेकुर्यादयंस्वयन्धिया ॥ विनावि
तर्काद्यासिर्दिष्टश्छासिद्धिरेवसा ।

अर्थ—इसतरह वमन विरेचनादि पंच-
कर्म को विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है ।
जिस कारण से जिसके लिये जो हितकारी
और जो अहितकारी है उसका भी वर्णन
किया गया है जो ये संपूर्ण नियम वर्णन
किये गये हैं वेय को केवल इन्हींपर भरोसा
न रखना चाहिये, उसे अपनी बुद्धि भी
लगानी चाहिये, यदि किसी नियममें परि-
वर्तन की आवश्यकता दिखाई दे तो परि-
वर्तन भी करदेवै देश, काल और बलके
विषयमें कभी कभी ऐसी दशा होजाती है
कि उसमें करने योग्य कामअकार्य होजाता
है और न करने के योग्य काम अच्छा
और करने के योग्यहो जाता है। वमनरोग
हृद्रोग और गुल्मरोग में वमन नहीं कराई
जाती है पर कभी २ ऐसा होता है कि व-
मन कराना ही पड़ती है। कुष्ठरोग में वृ-
स्ति नहीं दीजाती है परन्तु विशेष अवस्था
में इस में भी वस्ति दीजाती है अतएव य-
द्यपि सम्पूर्ण नियम वर्णन किये भी गये हैं
तो भी अपनी बुद्धि को काम में लाना
आवश्यक है। अपनी बुद्धि को विना

काममें लाये जो कार्य सिद्ध होजाता है। वह यदृच्छा सिद्ध होता है ॥

इति श्रीभाषाटीकाश्रितायां अग्निवेशविर-
चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां
सिद्धिस्थाने पञ्चकर्मोपासिद्धिर्नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

— + × + —

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो यस्ति सूत्रीयां सिद्धिं व्याख्यास्याम
इति हस्माह भगवानात्रेयः

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम वस्तिसूत्रीयसिद्धि की व्याख्या
करेंगे ॥

कृतक्षणं शैलवरस्य रम्ये स्थितं धने शायतनस्य
पार्श्वे । महर्षिर्संघैर्वृतमग्निवेशः पुनर्वसु
म्प्राञ्जलि रन्वपृच्छत् ॥ वस्तिर्नरेभ्यः
किमपेक्ष्य दत्तः स्यात्सिद्धिमान् किमप्यम-
स्यनेत्रम् ॥ कीदृक्प्रमाणां कृतिर्किं गुणश्च
केषाञ्च किं योनिगुणञ्च वस्तिः निरुहक-
र्मप्रणिधानमात्राः स्नेहस्य वाकाः शमने वि-
धिः कः ॥ केवंस्तयः के पुमता इतीदं श्रुत्वो-
त्तरं प्राह वचो महर्षिः ॥

अर्थ—हिमालय के कैलाशनामक रमणीक
शिखर पर कुवेर के घरके पास ही ऋषियों
के समूहसे परिषेष्टित पुनर्वसु अवकाश
पाकर बैठे हुए थे उस समय आग्निवेशने
प्राथम्य जोड़कर पूछा कि हे भगवन् ! किस
अवस्था में किस तरह से वस्ति का प्रयोग
करने पर सफलता हो सकती है । वस्ति
नेत्र का प्रमाण क्या है । वस्ति किस द्रव्य

से बनाई जाती है, इसका प्रमाण, आग्नि
और गुण क्यों हैं ? किस को किस द्रव्य
की बनी हुई वस्ति क्या गुण करती है ?
निरुहण कर्म की कल्पना क्या है ? अनु-
वासन की मात्रा कितनी है ? रोगों के शमन
करने के निमित्त वस्ति देने के समय कौन-
सी विधि ग्रहण करनी चाहिये ? किस के
लिये कौनसी वस्ति हितकर है ? भगवान्
आत्रेय अग्निवेशके इन प्रश्नोंको मुनकर
कहने लगे ।

समीक्ष्य दोषौ पधदेशकालसात्म्याग्निं स-
च्यौ जवयो वलानि ॥ वस्तिः प्रयुक्तो नियतं
गुणाय स्यात् सर्वकर्माणि च सिद्धिमन्ति ॥
सुवर्णरूप्यव्रणुताम्ररीतिकां स्यात्स्थिशस्त्र-
द्रुमवेषु दन्तैः नेत्राणि शृङ्गैर्मणिभिर्नैलैश्च
सुकर्णिकानि प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥

अर्थ—दोष, औषध, देश, काल, सात्म्य,
अग्नि, सत्व, ओज, वय और बल की
विशेष रूप से परीक्षा करके वस्ति प्रयोग
करने से निश्चयही फलदायक होती है
और इस तरह प्रयोग करने से सम्पूर्ण कर्मों
की सिद्धि होती है । वस्ति का नेत्र सोना,
चांदी, सीसा, तांबा, पीतल, कांसी, हड्डी,
लोहा, काठ, बांस, दांत, सींग और मणि
या नल इनमें से किसी एक द्रव्यसे बनसकता
है । वस्ति के मुखपर एक कर्णिका होनी चाहिये ।

वस्ति का प्रमाण ॥

पट्टद्वादशाष्टांगुलसंमिता निषर्हं विंशति
द्विदशवर्षजानाम् ॥ स्युर्मुद्रकैर्न्युसर्तानिव
हि छिद्राणि वर्त्यापि हि तानि चापि ॥

अर्थ—छः, बीस और बारह वर्ष की अवस्था वाले, के लिये वस्ति क्रम से छः बारह और आठ अंगुल लम्बी होनी चाहिये और नल के भीतर का छिद्र मूंग, मटर और छोटे झाड़ी वर के सदृश क्रम से होना चाहिये । वस्ति के छिद्र में कुछ घुसने न पावे इसलिये उस के मुखमें बत्ती लगी रहनी चाहिये ।

वस्ति की परिधि का प्रमाण ॥

मथावयोंऽगुष्ठकनिष्ठिकाभ्यामूलाग्रयोःस्य परिणाहवन्तिऽङ्गुलीनिगोपुच्छसमाकृतानि श्लक्ष्णानि च स्फुर्गुलिकामुखानि ॥ स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्भागेमूलाश्रितेवस्ति निबन्धनेद्दे । जरद्वरोमाहिपहारिणो वास्यात्सौकरोवस्तिरजस्यवापि ॥ दृढस्तनुर्नष्टशिरोविगन्धः कपायरक्तः सुमृदुः सुशुद्धः ॥ नृणां ययोर्वाक्ष्ययथानुरूपनेत्रे पुयोज्यस्तु सुवद्वमूत्रः ।

अर्थ—जितनी अवस्था के मनुष्य को वस्ति देना होय, उतनीही अवस्था के मनुष्य के अंगुठे का मुटार्ई के समान वस्ति की नली के नाँचे की परिधि होनी चाहिये और मुखकी परिधि कनिष्ठिका उगली की मुटार्ई के समान होनी चाहिये वस्ति की नली सीधी, गौ की पूँछके समान आकृति वाली, चिकनी और, गोलमुखकी होनी चाहिये । उसी नल के चौथे भागमें मुखकी और एक कर्णिका और नाँचे की और दो कर्णिका होनी चाहिये । वृद्ध बैल, भैंसा, हरिण, अथवा बकरे की वस्ति (गुत्रा-

शय) लाकर एक चौंगा बनवावे । यह बहुत दृढ, शिराहीन, गन्धराहित, कपाय वर्ण से रंगा हुआ, मृदु और शुद्ध होना चाहिये । रोगी की अवस्था का विचार करके वस्ति पुट छोटा वा बड़ा होना चाहिये और यह पुटक वल के साथ डोर से अच्छी तरह बांध देना चाहिये ।

वस्तेरभावेष्ववजोगोवास्यादं कपादः सुघनः पटोवा ॥

अर्थ—यदि वृषादिक की वस्ति उपलब्ध न हो तो भेंडकआदि के चमड़े की वस्ति बनावे अथवा चौपाये पशुओं के भीतर का चमड़ा ग्रहण करके बनावे और जो कुछ भी न हो सके तो गाँड़ के पड़े सेही काम चलावे ॥

आस्थापनार्हपुरुषं विधित्समीक्ष्य पुण्येऽहनि शुक्लपक्षे । प्रशस्तनक्षत्रमुहूर्तयोगे जातिभ्रमेकाग्रमुपक्रमेत ॥

अर्थ—आस्थापन के योग्य रोगी को अन्न पचने के पछि शुक्लपक्ष में शुभदिन नक्षत्र, मुहूर्त और योग देखकर सावधानी से आस्थापन देवे ।

यलांगुर्वात्रिफलांसरास्नाद्विपञ्चमूले च पलोन्मितानि ॥ अष्टौ पलान्यर्द्धतुलां च मांसाच्छागानपचेदप्सु चतुर्थशेषम् ॥ पूतयवानीफलविल्वकुण्टवचाशताहवापन पिप्पलीनाम् ॥ कल्कैर्गुडसोदघृतैः सतैलैर्घृतं मुखोष्णं तु पिबु प्रमाणः ॥ गुडात्पलं द्विप्रसृतान्तु मात्रां स्नेहस्य युवत्यामधुसन्धवादि ॥ प्राक्षिप्य च स्तोमधितं खजेन सुवद्वमु-

निरुहपादांशसमेनतैलेनाम्लानिलंघ्यौ
पथसाधितेन । दत्त्वास्फिजापाणितलेन
हृन्पात्स्नेहस्यशीघ्रागमरक्षणार्थं ॥ ईप
त्पदांगुष्ठयुगञ्चकर्पेदुत्तानेदहस्यतली
प्रमृज्यात्स्नेहेनपाण्यंगुलिपिण्डिकाश्चये
चास्पगात्रावयवारुगार्ताः ॥ तांश्चाव
मृज्यान्सुखंततश्चनिद्रामुपासीतकृतो-
पधानः ॥

अर्थ—निरुहकी मात्रा में चौथाई तेल
अनुवासन में दिया जाता है, यह तेल कांजी
और लवु औषध द्वारा सिद्ध किया जाता
है । तेल शीघ्र ही बाहर न आजाय इस लिये
हथेलियों से चूतड़ों को धीरे धीरे कूटता
रहै । दोनों पांशों के दोनों अंगुठों को कुछ
खाँचे । तथा चित्तशयन कराके पगलियों
को धीरे धीरे मलता रहै । एढी, उंगली
दोनों पिंडली और पीडित अंगावयवों को
तेल से मसलता रहै, जब उसको कुछ चैन
सा होने लगे तब सिरके नीचे तकिया
लगा दे जिस से मुखपूर्वक निद्रा आजाय ॥

निरुहण द्रव्यका प्रमाण ।

भागाः कपायस्यतुपञ्चपिचस्नेहस्यपण्डः
प्रकृतौ स्थिते च ॥ वातेविबृद्धे तु चतुर्थभा-
गो तथा निरुहेषु कफेऽष्टभागः ॥

अर्थ—पैत्तिकरोग में यदि वायु-प्रकृ-
तिस्थ होती पांचभाग काथ और छटाभाग
स्नेहका लेंवै । यदि वायु बढी हुई हो तो
कपायसे चौथाई तेल देंवै और कफमें नि-
रुहण देनी होय तो आठवां भाग तेल
ढालना चाहिये ।

निरुहमात्राप्रसूताद्धमायेवर्षंततोऽर्द्धप्रमृ-
ताभिवृद्धिः । आद्वादशात्स्यात्प्रमृताभि-
वृद्धिरष्टादशाद्वादशतः परं स्युः ॥ आस-
प्तैस्तद्विहितं प्रमाणं बाले च वृद्धे च मृदु विशेषः ॥

अर्थ—एकवर्षके बालकेके लिये निरुहकी
मात्रा एक पल है, उससे आगे प्रतिवर्ष एक
एक पलमात्रा अधिक बढ़ानी चाहिये ।
इसतरह बारहवर्षकी अवस्थातक यही कम
रखै । बारहवर्ष की अवस्थासे अठारहवर्ष
की अवस्थातक प्रतिवर्ष दो २ पल बढ़ावै ।
फिर अठारह वर्ष से सत्तरवर्ष की अवस्था
तक यही प्रमाण होना चाहिये । बालक
और वृद्ध के पक्ष में मृदु वस्ति का ध्यान
रखना चाहिये । [किसी २ पुस्तक में
ऐसा पाठ भी है कि “अतः परंपोडशवर्द्धिर्धे-
यम्,, यहां से आगे सोलह वर्षकी अवस्था
तक जो प्रमाण होता है वह होना चाहिये
अर्थात् २० पलकी वस्ति सत्तर से ऊपर
की अवस्था में देंवै ।

शयन का नियम ।

नात्युच्छ्रितं नात्यतिनचिपादंसपादपीठंश्च
यनं मशस्तं ॥ प्रधानमृदास्तरणापपन्नं मा-
कूटैरसंभृतरुपटोत्तरीयम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्य को वस्ति दीगई
हो उस के पलंग के पाये न बहुत ऊँचे
और न बहुत नीचे होने चाहिये । पांव रख
ने के लिये उन के नीचेभी तकिये होने
चाहिये । पलंग पर बहुत कोमल बिछौने
बिछावै, खाट का सिरहाना पूर्वकी ओर
रखै । ओठने बिछाने के कपड़े सफेद होवै

भोजनादि नियम ।

भोज्यं पुनर्व्याधि मपेक्ष्य तत्तत्पक्वकल्पयेद्यु-
षपयोरसाद्यैः ॥ सर्वेषु विद्यादावाधिमेत-
दांश्च वक्ष्यामि वस्तीनत उत्तरीयान् ॥

अर्थ—वस्ति देने के पीछे व्याधि के अनु-
सार दूध, यूप और मांसरसादिक द्वारा भोजन
बनाकर देवै । सब प्रकारकी वस्तियों में
प्रथम नियम भोजन का यही है । अब
अन्य वस्तियों का वर्णन करते हैं ।

वातनाशक निरूहण प्रयोग ॥

द्विपञ्चमूलस्य रसोऽम्लयुक्तः स छागमां-
सस्य स पूर्वपेयः ॥ त्रिस्नेहयुक्तः प्रवरो
निरूहः सर्वाङ्गानि व्याधिहरः प्रदिष्टः ॥

अर्थ—वक्रे का मांस और दशमूल इन
को अठगुने जल में सिद्ध करके चौथाई शेष
रहने पर छानले तीनभाग यह काथ और
एक भाग तेल मिलाकर कुछ कांजी डाल
कर मिलाए । यह निरूहण प्रयोग सब
प्रकार के वातरोगों के दूर करने में बहुत
उत्तम है ॥

स्थिराय वग्नस्य वलापटोल त्रायान्तिकैरन्ध-
यवैर्युतस्य ॥ प्रस्थोरसश्चागरसार्धयुक्तः
साध्यः परः प्रस्थोरसश्च यावत् । मियंगु
कृष्णो घनकल्कयुक्तः स तैलसर्पिमधुसै-
न्धवश्च ॥ स्याद्दीपनो मांसवलयप्रदश्च
चक्षुर्वलं चापि ददाति वस्तिः ॥

अर्थ—शालिपर्णादि पंचमूल, खरैटी, पर-
पल, त्रायमाणा, अरंडकी जड़ और जी इन
को अठगुने जल में सिद्ध कर के चौथाई
शेष रहने पर छानले । यह काथ चारसेर

वक्रे का मांसरस दो सेर मिलाकर पाक
करै जब दो सेर बच रहै, तब मियंगु, पी-
पल और मोथा इनका कल्क तथा तेल घी
शहत और संधानमक मिलाकर अच्छी त-
रह से मथडाले । यह निरूहण वस्ति दी-
पन मांसवर्द्धक बलकाकरक और नेत्रों में
बल की बढ़ानेवाली है ॥

एरण्डमूलात् त्रिपलं पलानि दृश्वानि मूला-
नि च यानि पञ्च ॥ रास्ना श्वगन्धाथ वला-
गुहूची पुनर्नवारग्वधदेवदारु ॥

भागाः पलांशामदनाष्टयुक्ता जलद्विकंस-
कथितेऽष्टशेषे । पेय्यं शताहाह पुषामियंगु-
सपिप्पलीकं मधुकम्बचाच ॥ रसाज्जनं
वत्सकबीजमुस्तं भागाक्षमात्रं तद्वर्णांश-
युक्तम् ॥ समाश्लिक्तं तैलयुतः समूत्रो-
वस्तिर्नृणां दीपनलेखनीयः ॥

अर्थ—अरंडकी जड़ तीन पल, लघु पं-
चमूल एक पल, रास्ना, असगंध, खरैटी
गिलोय, पुनर्नवा, अमलतास, देवदारु, ये
सब एक एक पल मेनफल आठ पल, इन
सब को दो कंस जल में सिद्ध करके आठवां
भाग रहने पर काथ को छान लेवे फिर
इस में सौंफ, हाज्जेर, मियंगु, पीपल, गुलहटी,
बच, रसोत, इन्द्र जी और मोथा दो दो
तांले संधानमक दो तांले तथा शहत, तेल
और गोमूत्र मिलाकर वस्ति देवे । यह वस्ति
दीपनीय और लेखनीय होती है ।

अरंडतेल की वस्ति के गुण ।

जंघोरुपादत्रिकृपृष्ठशूलं कफावृत्तिमारुत-
निग्रहं च ॥ विष्णुश्चातग्रहणं सशूल-

माध्माततामरमरिशकरं च आनाहमर्शोऽग्र
हणीमदोषा नेरुण्डवस्तिः शमयेत्युक्तः ॥

अर्थ—भरुंड के तेल की वस्ति देने से
जंघा, ऊरु, पांव, त्रिक और पांठ का दर्द
मिट जाता है। यह कफावृत्त वायु को नष्ट
कर देती है। मल, मूत्र और अधोवायु का
शूलयुक्त विबन्ध दूर हो जाता है। आध्मान
अमरी और शर्करा दूर हो जाती है। इसी
तरह आनाह, अर्श और ग्रहणी दोष दूर
हो जाते हैं।

चतुष्पलैतैलघृतस्य भृष्टश्लागाच्छताधो
दधिद्रादिमाम्लः ॥ रसः सपेण्यो वलवर्ण

मांस रेतोऽग्निर्तैमिर्यसिरोत्तिशस्तः ॥

अर्थ—बकरे का मांस पचास पल अठगुने
जल में पकाकर चौथाई शेष रहने पर रस
को छान ले। इस मांसरस को दही और
अनार रसकी खटाई डालकर दो पल तेल
और दो पल घी में तलकर इस में संधानम-
क और मेनफल डालकर निरुहण देवे।
इससे वलवर्ण और मांसकी वृद्धि होती है।
धीर्य और अग्नि की वृद्धि होती है। तिमिर
रोग और शिःपीडा भी दूर हो जाती है।

जलद्विकंसेष्टपलं पलाशान् पक्ववारसो
ऽर्धादकमात्रशेषः ॥ कल्कैर्वचामागधि
कांपलाभ्यां युक्तः शताह्वा द्विपलेन चा-
पि ॥ ससंघवत्सौद्रयुतः सतैलो देयोनि-
रूहो वलवर्णकारी आनाहपाद्वर्षामपयोनि-
दोषान् गुल्मानुदावर्तकं च हन्यात् ॥

अर्थ—आठ पल डालकी छाल दो फस
जल में पाक करके आधा शेष रहने पर

छान लेवे पांछे वच और पीपल एक एक
पल सौंफ दो पल, संधानमक शहत और
तेल मिलाकर निरुहण वस्तिदेवे। इस से
वल वर्ण बढ़ता है। आनाह, पार्श्वशूल,
योनिदोष, गुल्म, उदावर्त्त और वेदना ये
सब शान्त हो जाते हैं।

यष्ट्याह्वयस्याष्टलेन सिद्धं पयः शताह-
वाफलपिप्पलीभिः ॥ युक्तं ससर्पिर्मधुवा-
तरक्त वैस्वर्यवीसर्पहतो निरुहः ॥

अर्थ—आठ पल मुलहटी, अठगुना दूध
और दूधसे चौगुना जल डालकर पकावे।
जब दूध शेष रह जाय तब इस में सौंफ,
मेनफल, पीपल, शहत और घी मिलाकर
निरुहवस्ति देवे। यह वस्ति वातरक्त, स्व-
रभंगता और विसर्प को दूर कर देती है।

पित्तरोगनाशक निरुहवस्तिः ।

यष्ट्याहलोधाभयचन्दनैश्च शृतं पयो
ग्रेकमलोत्पलैश्च ॥ सशर्करासौद्रयुतैः
सुशीतः पित्तामयान् हन्ति सजीवनीयः ।

अर्थ—मुलहटी, लोध, हरड, रक्तचन्दन
कमल और नीलोफर इनको डालकर दूध
पकावे ठंडा होने पर जीवनीय गण का
कल्क, चीनी और शहत डालकर पानकर
तो पित्तरोग दूर हो जाते हैं ॥

पित्तरोगनाशक अन्यविधिः ।

द्विकापिकांश्चन्दनपत्रकादौ यष्ट्याह्व-
रास्नाष्टपशारिवाश्च ॥ सलोध्रमज्जिष्टव-
लायवाशाः स्थिराशरादिद्वयपञ्चमूलम् ॥
निःक्लाध्यतोयेन रसेन तेन शृतं पयोर्द्धादक-
ममृहीनम् ॥ जीवन्ति मेदं दिशता वरीभिः

वीराहिकाकोलिशतावरीभिःसितोप-
लाजीवकपद्मरेणुपुण्डरीकैःकमलोत्पलै-
श्च ॥ लोधात्मगुप्तामधुर्कैर्विदारीमुञ्जा-
तकैःकेशरचन्दनैश्चपिष्टैर्घृतक्षौद्रयुतैर्निरुहं
ससन्धवंशीतलमवदधात् ॥ गत्यागतेषु
न्वरसेनशालीन्क्षीरेणवाघातपरिपिक्त-
गात्रः ॥ दाहातिसारमदरासपित्तहृत्पा-
ण्डुरोगान्विषमज्वरंच ॥ सगुल्ममूत्रग्रहका-
मलादीन्सर्वामयान्पित्तकृताग्निहन्ति ॥

अर्थ—रक्तचन्दन, पद्माक्ष, ऋद्धी, मु-
लहठी, रास्ना, अडुसा, अनन्तमूल, लोध,
मञ्जीठ, खैरटी, जवासा, शालिपर्ण्यादि प-
चमूल, तृणपचमूल इनसब द्रव्योंको दो दोकरप
लेकर अठगुने जलमें काथकरे, चौथाई शेष
रहने पर छान ले, फिर इस काथके साथ
आधा आठक दूध पकावे जब जलते जलते
दूध शेष रहजाय तब नीचे लिखे हुए
जीवन्त्यादि द्रव्योंका कल्क, घी, शहत, और
सेधानमक डालकर ठंडा करके निरुहण
वास्ति देवे। जीवन्त्यादिद्रव्य यथा जीवन्ती,
मेदा, ऋद्धि, शतावर, बृहत्सतावर, का-
फोली, क्षीरकाकोठी, सितावर, मिश्री,
जीवक, पद्मरेणु, पुण्डरिकाक, कमल,
नीलोफर, लोध, कैचकेबीज, मुलहठी, वि-
दारीकन्द, मूज, केशर, चन्दन इन सब
द्रव्यों को पीसकर उसमें डाल देवे। व-
स्तिके प्रत्यागत होने पर कुछ गरम जलसे
देह धोकर जांगल मांसरस वा दूधके साथ
शाली चावलका भोजनकरे। इस वास्तिसे
दाह, अतिमार, प्रदर, रक्तपित्त, हृद्दोग,

पाण्डुरोग, विषमज्वर, गुल्म, मूत्रग्रह, वि-
बन्ध, तथा कामलादिक सम्पूर्ण प्रकारकी
पित्त व्याधिषां शान्त होजाती है।

द्राक्षादिकाश्मर्यमधुकसेव्यैःसशारिवाच-
न्दनशीतपाकयैः। पयःशृतश्रावणिमुद्रप-
र्णीतुमात्मगुप्तामधुपट्टिकलैः ॥ गोधूम-
चूर्णैश्चतथाक्षमात्रैःसक्षौद्रसर्पिमधुघृतेतैलैः
पथ्याविदारीधुरतैर्गुडेनवस्तिर्युतंपित्तहरं-
विदध्यात् ॥ हृन्नाभिपाश्र्वोत्तमदेहदाहेदाहे
ऽन्तरस्थेचसकृच्छूमे ॥ क्षीणक्षतरेतसि-
चापिनष्टेपैत्तेऽतिसारचनृणांमशस्तः ॥

अर्थ—द्राक्षादि द्रव्य, खेमाारी, महुआ,
उसीर, शारिवा, रक्तचन्दन, और खैरटी इनके
कल्क में चौगुना जल और अठगुना दूध
डालकर औठावे जब दूध शेष रहजाय तब
उसमें श्रावणी, मुद्रपर्णी, कैचके बीज,
मुलहठी, का कल्क मिलादेवे। फिर इसमें
देतोले गेहूं का चूर्ण, शहत, घी, मुलहठी
का तेल, हरड, विदारीकन्द, ईख का रस
और गुड मिलादेवे। यह वस्ति पित्तनाशक
होती है। इससे हृदय, नाभि, पसली और
मस्तक का दाह, अन्तरस्थ दाह, मूत्रच्छू-
की जलन, क्षीणक्षत रोग, नष्टशुक्रांग,
और पित्तज अतिसार दूर होजाते हैं।

कफनाशकवस्ति॥

कोशातकारम्बधदेवदारुशार्ङ्गमूर्वाकुटजा-
कपाठाः ॥ पकाकुलत्यानष्टहृत्तीचतोयै-
रसस्पतस्पपमृतादशस्युः ॥ तांसर्पपैला-
गदनैः सकुष्ठैरक्षममाणैःमसृतश्चयुक्तान् ॥
फलाहृतैलस्य समानिकस्य शारस्य-
तैलस्य च सर्पपस्य । दद्यान्निहृदक

फरोगिणेऽज्ञोमन्दाग्नियेचाप्यशतद्विपेच॥

अर्थ—फोशातकी, अमलतास, देवदारु, मरोडकली, शार्ङ्गगुग्गुलु, कुडा की छाल, आक, पाठा, कुलर्था और बड़ी कटेरी इनको अठगुने जलमें पकावै जब इसमें से दस प्रसृत रहजाय तब काथ को निकालले फिर इसमें सरसो, इलायची, मेनफल और कूठ इनसब द्रव्यों का दोदोपल फल्क, मेनफल का तेल दोपल, शहतदोपल, जवाखार दोपल और सरसोंकातेल दोपल मिलाकर निरूहण वस्ति देवै। इससे कफजन्यरोग, मन्दाग्नि और अन्नमें अरुचि होना ये सब मिटजाते हैं।

पटोलपथ्यामरदारुभिर्वा
सपिप्पलीकैःक्वथयितैर्जलारुहैः॥

अर्थ—परवल, हरड, देवदारु और पीपल इनका क्वाथ पान कराने से भी उत्तरोग दूर होजाते हैं।

द्विपञ्चमूलेत्रिफलासविल्वाफलानिगोमू
त्रयुतःकषायः॥ कलिङ्गपाठाफलमुस्तक
ल्कामसैन्धवःक्षारमधुःसतैलः॥ निरूह
मुख्यःकफजान्विकारान्सपाण्डुरोगाल
सकामदोषप्रणी॥

अर्थ—दोनों पंचमूल, त्रिफला, बेलगिरी और मेनफल इनका अठगुने जल में काथ करले। फिर इस काथ में गोमूत्र, इन्द्रजौ, पाठा, मेनफल और मोथा का कल्क, संधानमक, जवाखार, शहत और तेल मिलाकर निरूहण देने से कफरोग, पाण्डुरोग, अलसक और आमदोष दूर होजाते हैं।

वायुनाशक वस्ति ।

रास्नामृत्तरण्डविट्कदाहसतच्छदोशीरस
राहनिम्बः॥श्यामाकभूनिम्बपटोलपाठा
तिक्तासुपर्णीदशमूलमुस्तैः॥त्रायन्तिको
शिथुफलीत्रिकैश्चकाथःसपिण्डीतकतोयम्
त्रः॥ यष्ट्याहकृष्णाफलिनीशताहारसा
ञ्जनस्वेतवचाविट्कैः॥ कलिङ्गपाठाश्व
दसैन्धवश्चकल्कैःससर्पिमधुनैलमिश्रः॥अ
यंनिरूहःक्रिमिकृष्टमेहद्रव्णोदराजीर्णक
फातुरेभ्यः॥ रूक्षापथैरत्यपितपितेभ्यः
ऐतेपुरोगेष्वापिसत्सुदृढः॥ निहत्यवातं
ज्वलनंप्रदीप्यविजित्यरोगांश्चबलंकरोति
हन्यात्तथामारुतमृत्रसङ्गमवस्तेस्तथाटोप
मथापिघोरम्॥

अर्थ—रास्ना, गिलोय, अरंड की जड़, वायविङ्ग, देवदारु, सतच्छद, खस, देवदारु, नीम की छाल, सौंखिया, चिरायता, परवल, पाठा, कुटकी, मूषकपर्णी, दशमूल, मोथा, जावित्री, सहजना और त्रिफला इन को अठगुने जल में चढादे, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छान ले। फिर इस काथ में मेनफल का क्वाथ, गोमूत्र, मुलहठी, पीपल प्रियंगु, सोंफ, रसौत, सफेद वच, वायविङ्ग, इन्द्रजौ, पाठा, मोथा और संधानमक इनका कल्क तथा घी, शहत और तेल मिला देवै यह निरूह गरित क्रिमरोग, कुष्ठ, प्रमेह, गन्ध, उदररोग, अजीर्ण और कफको दूर करती है। जो रूक्ष औषधों के सेवन से अपतपित हुआ हो, उसको भी उपयोगी होती है इससे वायु नष्ट होती है, जठ-

राग्नि वढती है, यह रोगों को दूर कर के देह में बल बढ़ाती है, अधोवायु और मूत्र के विबन्ध को दूर करके वस्तिके घोर आटोप को भी दूर करती है ।

पुनर्नर्वण्डवृषाश्मभेददृश्चरभूतीकवला पलाशाः ॥ क्षिपञ्चमूलञ्चपलाशिकानि धुण्णानिर्घातानिपलानिचाष्टौ ॥ विल्वं यवान्कोलकुलत्पधान्यफलानिचैवप्रसृ तोन्मितानि ॥ पयोजलद्वयादकयोः शृ तंतत्क्षीरावशेषंसितवस्त्रपूतम् ॥ वचाश ताहामरदारुकुष्ठयष्ट्याहसिद्ध्यार्थकपिप्प लीनाम् ॥ कल्कैर्यवान्यामदनैश्चयुक्तंनःत्यु ण्णशीतंमुदसैन्धवाक्तम् ॥ सौद्रस्यतेलस्य चसर्पिपथतयैवयुक्तंमसृतंत्रिभिश्च । दद्या न्निरुद्दंविधिनविधित्तःसंसर्गसंसर्गकृताम यध्नः ॥

अर्थ—सांठ, अरंड की जड़, अइसा, पाखान भेद, सफेद सांठ, अजवायन, खरैटी ढाक, दसमूल, ये सब एक एक पल बेल-गिरी आठ पल, तथा जी, बेर, कुलथी, धनियां और मेनफल पृथक् २ दो दो पल अच्छी तरह कूटकर धोकर एक आढक जल और एक आढक दूध में कर के दूध शेष रहने पर सफेद वस्त्र में छान ले फिर उसी दूध में वच, सोंफ, देवदारु, कूठ, मुलहठी, पीपल, अजवायन और मेनफल का कल्क, गुड, सैधानमक, शहत दो पल, दो पल तेल, और दो पल घी मिलाकर न बहुत गरम, न बहुत, ठंडा कर के निरूहण देवै । यह वस्ति द्वन्द्वज रोगों को दूर करती है ॥

स्निग्धोष्णएकःपर्वनसमानौ । दौस्वाद्दु शीतोपयसाचपित्ते ॥ त्रयःसमूत्राःकटुको ण्णतीक्ष्णाःकफेनिरूहानपरविधेयाः ॥ रसेनवातेप्रतिभोजनस्यात्क्षीरेणपित्तु कफेचयूपैः ॥ तथानुवास्येषुचविल्वतेलं स्याज्जीवनीयंफलसाधितंच ॥

अर्थ—वातज व्याधि में एक समय में एक स्निग्धोष्ण निरूहण वस्ति देवै । पित्तज व्याधि में दूध के साथ स्वादु और शीतल दो वस्ति एक साथ देवै । कफ व्याधि में गोमूत्र के साथ कटु, उष्ण और तीक्ष्ण तीन वस्ति एक समय में देवै ।

वायुरोग में निरूह देने के पीछे मांसरस पित्त में दूध औरकफ में यूप के साथ पथ्य देवै । इन सब रोगोंमें अनुवासन देने के निमित्त वायुरोग में विल्वतेल, पित्तरोग में जीवनीय गण से सिद्ध किया हुआ तेल और कफरोग में मेनफलादि से सिद्ध किया हुआ तेल देना चाहिये ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन । इतीदमुक्तंनिखिलयंयथावद्वस्तिप्रदानस्य विधानमगम्यम् ॥ योऽधीत्यविद्वानिहवः स्तिकर्मकरोतिलोकेलभतेससिद्धिम् ॥

अर्थ—इस तरह इस अध्याय में वस्ति देने की युक्तियां यथावत् वर्णन की गई हैं, जो विद्वान् इन को सोच समझकर वास्ति कर्म करने में प्रवृत्त होता है वह संसार में सिद्धि पाता है ॥

इतिश्रीचरकसंहितायांसिद्धिस्थानेवस्तिसूची-

यसिद्धिर्नामवृत्तीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातःस्नेहव्यापादिकांसिद्धिव्याख्यास्या

मदतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तरभगवान् आत्रेय बोलें कि अब हम स्नेह व्यापादिका सिद्धि की व्याख्या करेंगे ।

स्नेहवस्तीन्निबोधेमान्वातपित्तकफापहा
न । मिथ्याप्रणिहितानाश्चव्यापदःसचि
किस्तिताः ॥

अर्थ....अबहम वात, पित्त और कफको दूर करनेवाली स्नेह वस्तियों का वर्णन करते हैं । इन वस्तियों के मिथ्या प्रयोग से जो २ दुर्घटना होती हैं, उनका और उनकी चिकित्साओं का वर्णन भी करेंगे ।

वातनाशक अनुवासन विधि ।

दशमूलं वलां रास्नामद्वगन्धां पुनर्नवाम्
गुह्यच्येरेण्डभूतीकभार्गवृषकरोहिषम् ॥

शतावरीसहचरं काकनासां पलांशिकम् ।

यवमापातसीकोलकुलत्थान्मसृतोन्मिता
न् ॥ चतुर्द्रोणैश्चभसःपक्त्वाद्रोणशेषेण

तेनच । पचेत्तैलाढकंक्षीरेजीवनीयैःपलो
न्मितैः ॥ अनुवासनमेतादिसर्वथातविका
रनुत् ॥

अर्थ....दशमूल, खैरी, रास्ना, असगंध सांठ, गिलोय, अरंडकीजड़, अजवायन भाइंगी, अदुसा, रोहिपतृण, सितावर, सहचरी, कौआटोंटी, ये सब एक २ पल, जो उरद, अलसा, बेर, कुलथी प्रत्येक दो २ पल इन सबका चारद्रोण जलमें पकावें । पकते २ घण्टे एक द्रोण रहजाय तब उसे छानले

फिर इस क्याधमें एकआढकदूध, एक आढक तेल और एक २ पल जीवनीय गणके द्रव्योंका फलक मिलाकर पकावें । इस तेलके अनुवासन वस्ति देने से सब प्रकारकी वात व्याधियां दूर हो जाती हैं ।

वसामयोगः ॥

आनूपानां वसातद्वज्जीवनीयोपसाधिता

अर्थ—उक्त दस मूलादि द्रव्यों के क्याध में दूध, जीवनीय गणोक्त द्रव्योंका फलक और तेलके बदलेमें एक आढक आनूप जीवों की चर्बी पकाकर अनुवासन देने से भी वातरोग दूर होते हैं ।

अन्यतैलः ।

घृताद्वायवविल्वाम्लैःसिद्धंतैलंसमीरणे ।

अर्थ—सोंफ, जो और बेलगिरी इनके फलक, कांजी और तेलको मिलाकर पकावें । फिर इस तेलकी अनुवासन वस्ति देवें तो उक्तफल होता है ॥

अनुवासनीयघृत ॥

सैन्धवेनाग्निवर्णेनतप्तं चानिलनुद्घृतम् ॥

अर्थ—सैन्धवमक को आगमें देकर लाल गरम करले फिर इसे घीमें डालदे । इस सुहते हुए गरम घीकी अनुवासनवस्ति देवें तो उक्तफल होता है ॥

जीवन्तीमदनं मेदांश्चावणीमधुकं वलाम् ।

शताह्वर्षगैकृष्णांकाकनासांशतावरी
म् ॥ स्वगुप्तांक्षीरकाकोलीकं कटारुयांश

टीवचाम् ॥ पिष्ट्वातैलंघृतंक्षीरेसाधयेत्
चतुर्गुणे ॥ दृढंघृतातपित्तघ्नं वलभृकामि

वर्दनम् । मूत्ररतो रजोदोषानहरेत्तदनुवा
सनम् ॥

अर्थ—जीवन्ती, मेनफळ, मेदा, श्रावणी, मुलहटी, खरैटी, सोंठ, ऋषभक, पीपल, कौभाटोंटी, सितावर, केच, के बीजू, क्षीर-काकोली, काकडासींगी, कचूर, वच, इन सबको पीसकर मिलाहुआ तेल और घी चार सेर, दूध सोलहसेर इन सबका पाक करै यह अनुवासन वृंहणकर्त्ता, वातपित्तनाशक घल, धीर्य और अग्निको बढानेवाला है । इस से मूत्रदोष वीर्यदोष, और रजोदोष दूर होजाते हैं ॥

लाभतश्चन्दनाद्यैश्चपिष्टैःक्षीरचतुर्गुणम् । तैलपादघृतंसिद्धं पित्तघ्नमनुवासनम् ॥

अर्थ ज्वर चिकित्सा में जो चन्दनादिक तेल के द्रव्य वर्णन कियेगये हैं उन में से जो जो मिलसके उनको पीसकर सनान तेल, तेल से चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध डालकर पाक करै यह वरित पित्तरोगों को दूर करती है ।

सैन्धवंमदनकुण्डशताह्वानिचुलंबलाम् । द्वाविंशधुकं भार्गोदिवदारुसकटफलम् ।

नागरं पुष्करं मेदां च विक्कां चित्रकं शटीम् ॥ विडङ्गातिविषे श्यामां हरेणुनीलीर्नीस्थिराम् ।

विल्वाजमोदौ कृष्णांच दन्तीं रास्नांच पेपयेत् ॥ साध्यमेरुण्डतैलं वा तैलं वा कफरोगानुत् । वध्मोदावर्तगुल्मार्शः प्रीहमेहाढ्यमारुतान् ॥ आनाहमश्मरीं चैव हन्यात्तदनुवासनम् ।

अर्थ—सैधानमक, मेनफळ, कूठ, सोंफ, हिज्जल, खरैटी, हाऊबेर, मुलहटी, भाडंगी देवदारु, कायफल, सोंठ, पौहकरमूल, मेदा, चव्य, चीता, कचूर, वायाविडंग, अतीस, श्यामानिसोथ, रेणुका, नीलिनी, शाळिपर्णी, विल्व, अजमोद, पीपल, दन्ती, रास्ना इन सबको समानभाग लेकर पीस लेंवै । इस कल्क के साथ अरंडका तेल वा सरसों आदि का तेल सिद्ध करके अनुवासन देंवै । तो कफरोग, वर्म, उदावर्त, गुल्म, अर्श, प्रीहा, प्रमेह, आढ्यवात, आनाह और अश्मरी, ये सबरोग दूर होजाते हैं ।

मदनैर्वाम्लसंयुक्तैर्विल्वाद्येन गणेन वा । तैलं कफहरैर्वापिकफघ्नं कल्पयेद्दिपकम् ।

अर्थ—मेनफळ का कल्क और काजी अथवा विल्वादि पंचमूल का क्वाथ और कल्क अथवा कफनाशक पिप्पल्यादि गण के क्वाथ के साथ तेल पकाकर अनुवासन देने से कफ दूर होता है ।

विडंगैरण्डरजनीपटोलत्रिफलामृताः । जातिमवालानिर्गुण्डीदशमूलाखुर्पीणकाः । निम्बपाठासहचरसम्पाकरवीरकम् । एपाकाथेन विपचेत्तैलमोभिश्च कण्ठिकैः ॥

अर्थ वायाविडंग, अरंडकांजड़, हल्दी, परवल, त्रिफला, गिलोय, चमेली के पत्ते, निर्गुंडी, दशमूल, मूषिकपर्णी, नीम, पाठा, सहचर, अमलतास, करवीरकी छाल इनके क्वाथ में इनही का कल्क डालकर तेल पकाकर अनुवासन देंवै तो कफरोग दूर होजाते हैं ।

फलविल्ववृष्टकृष्णारास्नाभूनिम्बदारुभिः । सप्तपर्णवचोक्षीरदावां हृष्टकालैः । लतावटिश्रिताद्गुग्गुली चोरकैः ॥

पौष्करैः । तत्कुष्ठानिक्रमीन्मेहानशीसि
ग्रहणीमदम् ॥ क्लीवतां विपमग्निं त्वमलदो
पत्रयंतथा । मयुक्तं प्रणुदत्वा शुभानाभ्यंगा
नुवासनैः ॥

अर्थ—मेन्फल, वेलगिरी, निसोय, पीपल,
रान्ता, चिरायता, देवदारु, सप्तपर्णी, वच,
खस, दारुहलदी, कूठ, इन्द्रजौ, प्रियंगु,
मुलहठी, सौंफ, चीता, कचूर, चोरक और
पुहकरमूल इन द्रव्यों के कल्क के साथ सि-
द्ध किया हुआ तेल पान, अभ्यंग और
अनुवासन में देने से फोड़, क्रिमि, प्रमेह,
अर्श, गृहणारोग, क्लीवता, विपमाग्नि और
त्रिदोष को दूर करता है ॥

स्नेह वस्ति के गुण ।

व्याधि व्यायाम कर्माध्वक्षीणा वलानिरौज-
साम् ॥ क्षीणशुक्रस्य चातीव स्नेहवस्तिर्व
लप्रदः । पादजघोरुपृष्ठस्य कठ्याश्चास्थि
रतापराम् ॥ जनयेदप्रजानां च प्रजां स्त्रीणां
तथानृणाम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य व्याधि, व्यायाम, कर्म,
मार्ग धमण से क्षीण हो गये हैं । वा और
किसी कारण से क्षीण हो गये हैं, वा जिन
के हृदय का ओजो धातु नष्ट हो गया है,
वा जिन का शुक्र क्षीण पड़ गया है उन के
पक्ष में स्नेह वस्ति बहुत ही यत्न बढ़ाने वाली
है । पाँच, जघ, ऊरु, पीठ और कमर को
अत्यन्त दृढ़ कर देती है । जिन स्त्री पुरुषों
के सन्तान नहीं होती है उन के सन्तान
होने लगती है ।

स्नेहवस्ति में छः आपति ।

वातपित्तकफान्यः न पुरीषा वृत्तस्य च ॥
अभुक्ते च गणीतस्य स्नेहवस्तेः पडापदः ॥

अर्थ—यह वात, पित्त, कफ, अन्न और
पाँचवें पुरीष से आवृत हो जाती है तथा
बिना भोजन किये भी इसका प्रयोग करने
से आपत्ति होती है । इस तरह स्नेह वस्ति
में छः विघ्न हैं ।

वस्ति में विघ्न के कारण ।

शीतोऽल्पो वाधिके वा तोषिते त्युष्णः कफे मृ-
दुः ॥ अतिभुक्ते गुरुर्वर्चः सञ्चयेऽल्पवल्-
स्तथा । दत्तस्तरावृतः स्नेहो न यात्यभिभ-
वादपि ॥ अभुक्तेनावृतत्वाच्च यात्यूर्ध्वं
तस्य लक्षणम् ।

अर्थ—अत्यन्त कुपित वात में शीतल
वा अल्प वस्ति देने से वह प्रत्यागमन नहीं
कर सकती है, इसी तरह पित्तकी अधिकता
में अत्युष्ण वस्ति, कफकी अधिकता में
अत्यन्त मृदु वस्ति प्रत्यागमन नहीं कर
सकती है । बहुत भोजन कर लेने पर भारी
वस्ति और विष्टा की अधिकता में अल्प-
वस्ति प्रत्यागमन नहीं कर सकती है तथा
जो अभुक्त अवस्था में वस्ति दी जाती है
उसका कोई रोकनेवाला नहीं होता है
इस से वह ऊपर की चली जाती है ।

वातावृत स्नेहवस्ति के लक्षण ।

अङ्गमर्दज्वराध्मानशीतस्तम्भोरुपीडनैः
पाद्वर्षरवेष्टनैर्विद्वान् स्नेहवातावृतं भिषक्
अर्थ—अंगमर्द, ज्वर, आप्मान, शीत,
स्तम्भता, ऊरुओं में पीड़ा, पसली में दर्द

और शरीर में अंगड़ाई आती हो तो यह समझना चाहिये कि स्नेहवस्ति वायुदारा आवृत है ।

वातावृत स्नेहवस्ति में उपाय ।

स्निग्धाम्ललवणोष्णोत्पैणस्तं रास्नापीतदु-
तिलवकैः ॥ सौवीरकसुराकोलकुलत्थयवसा-
धितैः ॥ निरुहैर्निर्हरेत्सम्यक्समूत्रैः पञ्च-
मूलिकैः ॥ ताभ्यामेव च तैलाभ्यां सायं भु-
क्तेऽनुवासयेत् ॥

अर्थ—वातावृत स्नेह के निकालने के लिये रास्ना, सरल काष्ठ, लोध का कल्क तथा सौवीरक, सुरा, बेर, कुलथी और जौ इनके क्वाथ के साथ सिद्ध करके स्नेह, कांजी, संधानमक डालकर उष्ण निरुहण वस्ति देवै । अथवा गोमूत्र और पंचमूल के क्वाथ के साथ निरुहण देवै ॥ अथवा उक्त दोनों प्रकारके द्रव्योंके साथ तेल सिद्धकर के भोजन करने के पीछे अनुवासन वस्ति देवै ।

पित्तावृतवस्ति के लक्षण ।

दाहरागवृषामोहतमज्ज्वरदूषणैः विद्या-
त्पित्तावृतं स्वादुस्तिक्तैस्तं वस्तिभिर्हरेत् ॥

अर्थ—स्नेहवस्ति देने के पीछे शरीर में दाह, लड़ाई, तृषा, मोह, तमक और ज्वर हो तो समझना चाहिये कि स्नेह पित्तावृत है इस में स्वादु और तिक्त निरुहण देकर स्नेह को निकाल देवै ।

कफावृत वस्ति के लक्षण ।

तन्द्राशीतज्वरालस्यप्रसेका रुचिगौरवैः ॥
समूर्च्छाम्लानिभिर्विद्यात्श्लेष्मणास्ने-
हमावृतम् ।

अर्थ—स्नेहन वस्ति के पीछे तन्द्रा, शीत-
ज्वर, आलस्य, प्रसेक, अरुचि, भारापन,
मूर्च्छा और ग्लानि हो तो स्नेहको कफा-
वृत समझना चाहिये ॥

कफावृत वस्ति में उपाय ।

कटुतिक्तकपायोष्णः सुरामूत्रोपसाधितैः ॥
फलतैलयुतैः साम्लैर्वस्तिभिस्तं विनिर्हरेत् ।

अर्थ—कफावृत वस्ति में कटु, तिक्त,
कपाय और उष्ण द्रव्य, तथा सुरा और
गोमूत्र के साथ सिद्धकी हुई निरुहण वस्ति
जिस में मेनफल का कल्क, तेल और कांजी
मिला हो देकर स्नेह को निकाल देवै ।

अतिभोजनावृत वस्ति के लक्षण ॥

छर्दिमूर्च्छारुचिग्लानिशूलनिद्रांगमर्दनैः ॥

आमलिंगैः सदाहैस्तं विद्यात्स्य शनावृतम् ।

अर्थ—वमन, मूर्च्छा, अरुचि ग्लानि,
शूल, निद्रा, अंगमर्द, आम के लक्षण और
दाह हो तो समझना चाहिये कि स्नेह
अत्यन्त भोजन से आवृत है ।

उक्तरोगमें उपाय ॥

कटूनां लवणानां च कषायैश्चूर्णैश्च पचनम् ।
विरेको मृदुरत्रामविहिता च क्रिया हिता ।

अर्थ—इस में कटु और लवण द्रव्यों
का क्वाथ और चूर्णद्वारा आमदोषका पचाना
ठीक है, इसी तरह मृदु विरेचन और
आमनाशक अन्य अन्य क्रिया भी हित हैं ।

पुरीषावृत वस्ति के लक्षणोपाय ।

विण्मूत्रानिलसज्जातिशुस्तत्वाध्मानहृद्ग्रहैः ।

स्नेहं विद्यावृतं ज्ञात्वा स्नेहस्वेदैः सवात्तिभिः ।

श्यामाविल्वादि सैद्धेयानि रुहैः सानुवा-

सनेः॥निर्हरेद्विधिनासम्पगुदावत्तर्हरेणच

अर्थ—स्नेहन वस्ति के ग्रहण करने के पीछे जो निष्ठा, मूत्र और अधोमायु का विवध हो, भारापन, अफरा और हृदय में शूल होता होतौ समझना चाहिये कि स्नेह निष्ठा से आवृत है। उसके निकालने के लिये स्नेह स्नेद और वार्ति प्रयोग करै तथा श्यामा निसोथ की जड़, और बिल्वा दि पचमूल के क्वाथ के साथ सिद्ध की हुई निरुह और अनुवासन वस्ति देवे॥तथा इस में उदावर्तनाशक क्रियाओंका करनाभी हितहै

ऊर्ध्वगतवस्ति के लक्षण ॥

अभुक्तेऽशून्यपायौवावेगात्स्नेहोऽतिपीडितः
धावत्सूक्ष्मततःकण्ठादूर्ध्वभ्यःखेभ्यएत्यापि

अर्थ—विना भोजन किये वा शून्य गुदा में स्नेह वस्ति का अत्यन्त पीडन करने से स्नेह ऊपर को दौडता है तब वह कठ से ऊपर के मार्ग मुख और नासिका द्वारा निकल पडता है ॥

ऊर्ध्वगतवस्तिमेंउपाय ।

मूत्रश्यामानिष्टसिद्धोयवकोलकुलस्थवान्
तत्सिद्धतैलद्रष्टोऽनिरुहःसानुवासनः

अर्थ—गोमूत्र, दोनों प्रकार की निसोथ इन की जौ, बेर, दुग्धी के क्वाथ के साथ सिद्ध करके निरुह देवे अथवा उक्त द्रव्यों के साथ सिद्ध करके तेल देवे तौ ऊर्ध्वगतवस्ति ठीक होजाती है ।

कण्ठादगच्छतःस्तम्भकण्ठग्रहविरेचनैः॥

छर्दिम्नीभिःक्रियाभिश्चतत्पर्यकार्यनिवर्तनम्॥

अर्थ—कण्ठ से स्नेह के निकलने पर कठ रुम्कर स्नेह को रोक देता है, इस का निवर्तन विरेचन और छर्दिनाशक चिकित्सा से होता है ।

उपेक्ष्य वस्ति

यस्यनोपद्रवंकुर्व्यात्स्नेहवस्तिरानिमृतः॥

सर्वोऽल्पोद्वृत्तरौक्ष्याद्वोपेक्ष्यःसहिविज्ञानता ॥

अर्थ—रुक्षताके कारण स्नेहनवस्ति विना निकले किसी प्रकार का उपद्रव न करे उसका सत्र वा थोडा स्नेह उपेक्षा करने के योग्य होता है।

मुक्तस्नेहका पश्चात् कर्म॥

मुक्तस्नेहंसुखोष्णंचलमुपधोपसेवनम्॥

भुक्तवान्मात्रयापोज्यमनुवास्यज्यहाज्यहात्धान्यनागरसिद्धहितोयंदद्याद्वि ।

चक्षण । व्युपितायनिशाकल्यमुष्णंवाके-
वलंजलम्॥

अर्थ—आवृत स्नेह के निकल जाने के पीछे सुखोष्ण हलका पथ्य मात्राके अनुसार देवे फिर तीसरे दिन अनुवासन देवे । पीने के लिये धनिया और सोंठ डालकर औटाया हुआ जल देवे, अथवा रात्रि में भोजन न कराके प्रातःकाल केवल उष्ण जल देवे ।

उष्णोदक के गुण

स्नेहोऽग्नीर्णजरयतिश्चेप्माणंतद्भिन्नति-
चा॥ मारुतस्यानुलोम्यंचकुर्व्यादुष्णोद-
कं वृणाम् ॥ यमनवाविरेकेचनिरुहसानु-

वासने ॥ तस्मादुष्णोदकंदेयं वातश्लेष्म प्रशान्तये ॥

अर्थ—उष्णजल अजीर्ण स्नेह को पचाता है। कफका भेदन करता है और वायुका अनुलोमन करता है इसी से वमन, विरेचन निरूहण वा अनुवासन में वातकफकी शान्ति के लिये उष्ण जल देना चाहिये। रुक्षनित्यस्तु दीप्ताग्निव्यायामीमारुताशयी वंक्षणश्रोण्युदावर्त्तवातार्त्तश्चादिनेदिने ॥

एपां चाधुन रास्नेहोपात्यम्युसिकतास्विव

अर्थ—नित्यप्रति रुक्ष सेवन करनेवाले दीप्ताग्नि वाले, व्यायामशील, वात कोष्ठ-वाले, तथा जिनकी वंक्षण, श्रोणी और उदावर्त्त-वातप्रस्त हों उन्हें दिया हुआ स्नेह शीघ्र ही ऐसे जीर्ण होजाता है जैसे बाद्धरेत में डाला हुआ जल शुष्क होजाता है।

अतोऽन्येपां त्र्यहात्प्रायः स्नेहं पचति वाक्-
कः ॥ न त्वामं प्रणयेत् स्नेहं स ह्यभिप्यन्दयेद्गु-
दम् ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए मनुष्यों से भिन्न मनुष्यों की अग्नि तीन दिन में स्नेह को पचा सकती है ॥ वस्ति द्वारा आम स्नेह का प्रयोग कदापि करना उचित नहीं है, क्यों कि इस से गुदा अभिष्यन्दित होजाती है ॥ सावशेषं चक्षुर्वीतवायुः शेषे हितिष्ठति ।

अर्थ—वस्ति में जितना स्नेह होता है उस सब का प्रयोग नहीं किया जाता है क्योंकि बचे हुए स्नेह के साथ वायु होती है न चैव गुदकण्ठाभ्यां दद्यात् स्नेहमनन्तरम् ॥ उभयस्मात्समं चक्षुर्वाद्यवगन्निदूषयेत्समं

अर्थ—एक ही समय में गुदा और कंठ दोनों से स्नेह का प्रयोग करना उचित नहीं है, क्योंकि एक साथ जानेसे वायु और अग्नि को दूषित करता है।

स्नेहवस्तिनिरूहवानैकमेवातिशीलयेत् ॥ उत्केशाग्निवधौ स्नेहाभिरूहात्पवनान्द्रयम् ॥ तस्मान्निरूहः स्नेहः स्यान्निरूहश्चा-
नुवासितः ॥ स्नेहशोधनयुक्त्यैव वस्तिक-
र्मत्रिदोपनुत् ॥

अर्थ—स्नेह वस्ति और निरूह वस्ति एक साथ देना ठीक नहीं है, क्योंकि स्नेहसे उत्केश और अग्निका नाश होता है और निरूह से वायुका भय होता है। इस लिये जिस-को निरूह देना हो उसे प्रथम स्नेहन देवै स्नेहन और शोधन की युक्तिही से वस्ति-कर्म त्रिदोपनाशक होता है।

कर्मव्यायामभाराध्वयानस्त्रीकर्पितेषु च ॥ दुर्बले वातभग्ने च मात्रावस्तिः सदा मत्तः
ह्रस्वायाः स्नेहमात्रायामात्रावस्तिः समो भवे-
त् ॥ यथेष्टाहारचेष्टस्य सर्वकालं निरत्ययः
वल्यं सुखोपचर्य च सुखं स्पष्टपूरीपकृत् ॥
स्नेहमात्राविधानं हि दृष्टं वातरक्तनुत् ।

अर्थ—परिश्रम, व्यायाम, भारवहन, मार्ग की थकावट, सवारी से थकित और स्त्रीसं-गम से कर्पित तथा दुर्बल और वातप्रस्त रोगों में नीचे लिखी हुई मात्रावस्ति देनी चाहिये। मात्रावस्ति स्नेह की ह्रस्वमात्रा के समान होती है। मात्रावस्ति ग्रहण करके यथेष्ट आहार विहार करना चाहिये जिससे किसी प्रकार का उपद्रव न हो। मात्रानु-

सार स्नेह प्रयोग करनेसे वह स्नेह बल को बढ़ाता है, मुख करता है दस्त मुख पूर्वक होता है । वातरक्त दूर होजाता है और पुष्टि बढ़ती है [नोस्नेह आधेदिन में पचजाता है और जो सुकुमार मनुष्यों के पक्ष में प्रयोग किया जाता है, उसेही स्नेह की हस्वमात्रा कहते हैं] ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकौ ।

वातादीनांशमायोक्ताः प्रवराः स्नेहवस्तयः । तेषांचाज्ञप्रयुक्तानां व्यापदः सचिकित्सिताः । प्राग्भोज्यं स्नेहवस्तेर्यद्भुवं येऽर्हास्त्यहाश्चये । स्नेहवस्तिविधिश्चोक्ता मात्रावस्तिविधिरस्तथा ॥

अर्थ—इस स्नेहव्यापद अध्याय में वातादिदोषोंकी शान्ति के लिये उत्तम २ स्नेह वस्तियों का वर्णन किया गया है, तथा अयोग्य रीति से प्रयोग की हुई स्नेहवस्तियों के रोग, उनकी चिकित्सा और वस्ति के प्रयोग करने से पहिले जो आहार किया जाता है, जो स्नेह प्रयोग के योग्य है, जो तीन दिन के भीतर स्नेहवस्ति के योग्य है, उनका भी वर्णन किया गया है । तथा इसमें स्नेहवस्ति की विधि और मात्रावस्ति की विधि भी वर्णन की गई है ॥

इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशाचारिण्यितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां सिद्धिस्थाने स्नेहव्यापादिकासिद्धिनाम

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथातो नेत्रवस्तिव्यापादिकां सिद्धिं व्याख्यास्यामः इति हस्माद्भागवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम नेत्रवस्तिव्यापादिका सिद्धि अध्यायका वर्णन करेंगे ॥

अथनेत्राणिवस्तींश्चशृणुवज्यानि कर्मसु नेत्रस्याज्ञमपीतस्य व्यापदः सचिकित्सिताः ॥

अर्थ—चिकित्सा में प्रयोग न कियेजाने के योग्य नेत्र और वस्ति तथा अज्ञान के हाथ से प्रयुक्त की हुई वस्तिनलकी विपत्ति और फिर उन रोगों में जो २ चिकित्सा कर्तव्य हैं, उन सब का वर्णन विस्तारपूर्वक किया जाता है ॥

वर्जित वस्तिनल ।

ह्रस्वदीर्घतनुस्थूलजीर्णशिथिलबन्धनमापार्श्वछिद्रं तथा चक्रमष्टानेत्राणि वर्जयेत् ॥

अर्थ—ह्रस्व, दीर्घ, पतला, मोटा, पुराना शिथिल बन्धन, पार्श्वछिद्र (जिसके श्पर विधर छेद हो) और टेढ़ा, ये आठ प्रकार के वस्तिनल वर्जित हैं ॥

ह्रस्वादि वस्तिनलके उपद्रवः ।

अप्राप्त्यतिगतिस्तोभकर्मणश्च नस्तथाः ।

गुदपीडागतिर्जिह्वातेपांदोपायथाक्रमम् ।

अर्थ—वस्तिनल छोटा होने से उचित स्थान पर नहीं पहुंचता है । दीर्घ होने से उचित स्थान से ऊंचा चला जाता है ॥ पतला होने से क्षोभ को प्राप्त होता है । स्थूल होने से वस्ति मलमार्ग को खींचती

है । पुराना होने से भीतर जाकर टूट जाता है । शिथिल बन्धन होने से स्राव होता है । पार्श्व में छिद्र होने से गुदा को पीड़ित करता है और टेढ़ा होने से वस्ति की गति टेढ़ी होती है ॥

यजित वस्ति ॥

विषमछिद्रमांसलस्थूलजालीकवातलाः ॥
छिन्नः क्लिन्नश्चतानष्टौवस्तीनकर्मसुव-
र्जयेत् ॥

अर्थ—विषम, सछिद्र, मांसल (जिसका चमड़ा उड़कर केवल मांस रह गया हो), स्थूल, जालीक [जालयुक्त], वातल [वायुयुक्त], छिन्न [फटी हुई] और क्लिन्न [गीली] ये आठ प्रकार की वस्ति यजित हैं ॥

विषमादिवस्तिषोके उपद्रव ।
गतिवैषम्यविसृत्त्वस्त्राव्यदौर्ग्राह्यनिस्रवाः ॥
फेनिलच्युतिघार्यस्त्ववस्तिः स्युर्वस्तिदो-
पतः ॥

अर्थ....विषम वस्ति होने से वस्ति की गति ऊँची नीची हो जाती है । मांसल होने से विसृत्त्व, सछिद्र होने से स्राव, स्थूल होने से पकड़ने के अयोग्य, जालयुक्त होने से स्राव, वातल होने से वस्ति के द्रव्य में क्षाग, छिन्न होने से वस्ति द्रव्य का निकलना, और क्लिन्न होने से वस्ति द्रव्य की रुकावट, ये उपद्रव होते हैं ॥

मणुता की अज्ञता के उपद्रव ।
सवातानिद्रुतोत्तिमतिर्यगुत्तिमकम्पिताः
अतिमन्दगमन्दातिवेगदोषाः मणेतुतः ॥

अर्थ—वस्ति की वायु के साथ प्रेरण होना अति उत्क्षिप्त, टेढ़ापन के साथ उत्क्षिप्त, कम्पन, अति मन्दागति, मन्द वेग और अतिवेग । ये सब दोष वस्ति के प्रणेता की अज्ञानता के हैं ।

अनुच्छासानुबन्धेवाद्येनिःशेष एव वा ॥
प्रविश्यशुभितोवायुः शूलतोदकरो भवेत् ।
तत्राभ्यगोमुदस्वेदोवातघ्नान्पशनानि च ॥

अर्थ—वस्ति के प्रयोग करने से पहिले उसे दावकर भीतर की सब वायु निकाल देनी चाहिये । ऐसा न करने से वस्ति शेष जब वायुका अनुबन्ध हो और उसका भी प्रयोग कर दिया जाय तब वायु उदर में प्रवेश करके कुपित होगी तथा शूल और तोद उत्पन्न करेगी । इस जगह तैल का मर्दन, गुदा में स्वेदन कर्म और वातनाशक अग्निपान सेवन करना चाहिये ।

द्रुतादि मणीत वस्ति के कर्म ।
द्रुतमणीते निष्कृष्टे महसोत्तिस एव वा ॥
स्यात्कटीगुदजंघाति वस्तिस्तभोरुभेद-
नम् । भोजनतत्रवातघ्नस्नेहः स्वेदाः सव-
स्तयः ॥

अर्थ—वस्ति के शीघ्रता से प्रयोग करने शीघ्रता से निकलने और सहमा उत्क्षिप्त होने से कमर, गुदा और जंघा में वेदना होने लगती है, वस्ति में स्तम्भता और ऊरुओं में भेदन होता है । इस में वात-नाशक भोजन, स्नेहन कर्म, स्वेदन कर्म तथा अनुवासन और निरुहण वस्तिषो के प्रयोग करना उचित है ।

तिर्यग्बन्धनकेलक्षण ।

तिर्यग्बन्धावृतद्वारेवदेवापिनगच्छति ॥
नेत्रेतद्वज्जुनिष्कृप्यसंशोध्यचपुनर्नपेत् ।

अर्थ—टेढेबन्धन से वस्तिका मार्ग रुक जाने पर अथवा और किसी कारण से बद्ध होनेपर, वस्ति जा नहीं सकती है । इस से उस समय वस्ति के नलको गुदा से अलग कर के उसे सीधा और शुद्ध कर के फिर प्रविष्ट करें ॥

पीडनकेउपद्रव ।

पीड्यमानेऽन्तरामुक्तेगुदेप्रतिहतोऽनिलः ॥

चरःशिरोरुजंसादमूर्ध्वोश्चजनयेद्वली ।

वस्तिःस्याच्चत्रविल्वादिफलश्यामादिभू
त्रवान् ॥

अर्थ—वस्ति पीडन पूर्वक वस्ति क्रिया के बिना समाप्त हुयेही जो वस्ति मुक्त क रदी जाय तौ गुदा में प्रतिहत वायु कुपित होकर हृष्टल, शिरोवेदना और ऊरुसाद उत्पन्न करती है । इसमें विल्वादिपंचमूल मैनफल, त्रिवृतादिगण और गोमूत्र इन से सिद्ध की हुई निरुहणवस्ति देवै ।

कम्पनकेउपद्रव ।

स्यादाहोदवधुःशोफःकम्पनाभिहेतुगुदे ।

कपायमधुराःशीताःसेकास्तत्रसवस्तयः ॥

अर्थ—वस्ति प्रयोग में कम्पन होजाने से गुदा में चोट लगकर दाह, जलन और सूजन उत्पन्न होती है इसमें कपाय मधुर शीतल परिपेक और अनुवासन तथा निरुहण वस्ति का प्रयोग करना ठीक है ॥

अतिप्रणीतवस्ति के उपद्रव ।

अतिमात्रप्रणीतेननेत्रेणक्षणनादलः ।

स्यात्सातिदाहनिस्तोदगुदयर्चःप्रवर्तनम् ॥

तत्रसर्पिःपिचुःक्षीरं पिच्छावस्तिश्चक्ष्यते

अर्थ—वस्ति के अत्यन्त बलपूर्वक प्रविष्ट करने से गुदामार्ग विदीर्ण होताहै है, इससे वेदना, दाह, सुई छिदनेक समान पीडा और गुदा के मलका निकलना ये लक्षण होते हैं । इसमें घृत, पिचु (घृत-प्लुत रुई का फोआ), दूध और पिच्छा-वस्ति हित हैं ।

मन्दप्रणीत वस्ति के लक्षण ।

नवावहीतमन्दस्तुवाहस्त्याशुनिवर्तते ।

स्नेहास्तत्रपुनःसम्यक्प्रणयःसिद्धिमिच्छता

अर्थ—मन्दप्रणीत वस्ति गमन नहीं करसक्ती है किन्तु शीघ्रही प्रत्यागमन करती है । इस जगह पुनः अच्छी रीति से स्नेहन वस्ति का प्रयोग करना उचित है ।

अतिपीडित वस्ति के लक्षण ।

अतिप्रपीडितःकोष्ठेतिष्ठत्यायातिवागलम्

तत्रवस्तिविरेकश्चगलपीडादिकर्मच ॥

अर्थ....अत्यन्त पीडित वस्ति कोष्ठ में रुकजाती है अथवा गले में आजाती है । ऐसी जगह पर अनुवासन वस्ति, विरेचन और गलपीडनादिकर्म करना ठीक है ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकः ॥

नेत्रवस्तिमणेतृणांदोषानेतान्समेषजान्

पेक्ष्यस्तेनमतिमान्वस्तिकर्माणि कारयेत्

अर्थ—इस अध्याय में वस्तिनल और

वस्ति के दोष, अज्ञान प्रणेतार से उत्पन्न
हुए उपद्रव और उनकी चिकित्सा वर्णन
की गई है। इन सब बातों को जो बुद्धिमान
जानता है उसीसे वस्ति कर्म कराना उचित है।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचिता-

यां चरकप्रतिसंस्कृतायांसांहितायांसिद्धि

२१ स्थानेनेत्रवस्तिव्यापादिकासिद्धिर्नाम

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

—•—•—•—•—•—

पष्ठोऽध्यायः ॥

अथातो वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिव्याख्या

स्पाम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय घोड़े
 कि अत्र हम वमन विरेचन व्यापत्तिद्धि
 नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

अयशोधनयोःसम्यग्विधिमुद्गानिलोमयोः
असम्यक्कृतयोश्चैवदोषान्ब्रह्मण्यमिसौप
धान् ॥

अर्थ....भवहम धमन विरेचनकी सम्यक् विधि

विधि तथा असम्यक् वमन विरेचन के दोष

और उनकी चिकित्सा का वर्णन करते हैं।

अत्युष्णवर्षशीताहिग्रीष्मवर्षादिमागमाः ॥

अन्तरेषुमाहृडाद्याःतेषांसाधारणास्त्रयः॥

अर्थ—शीष्मकृत में अत्यन्त गरमी प-

हती है, वर्षाप्रदुर्गुमें वर्षा अधिक होती है ।

गौर शतब्रत में जाड़ा अधिक होता है ।

न क्रतुओं के सन्धिकाल में प्रायुष्ट, शरत्

और वसन्त ये तीन ऋतु और होती है इन
वर्षा, गर्मी और शीत ऋतुओं में

संशोधनका समय ।

प्रावृद्धचिन्मौल्यैश्वर्यदूजासिद्धौ पुनः ।

तपस्यश्चमधुश्चैव वसन्तः शोधनं प्राप्ति ॥

एतानृतूनविकल्पयैवकुट्यात्संशोधनं

णाम् ॥

अर्थ....आषाढ और श्रावण इनदो महीने में प्रावृत्त होती है। कार्तिक और अगहन में शरद तथा फाल्गुण और चैत्र में बसन्त ऋतु होती है वमन विरेचन देने के येही तीन समय हैं ॥

स्वस्थवृत्तिमभिमेत्यव्याधौ व्याधिवशेन तु
कर्मपात्रं नृपस्य विनाशो

कर्मणां वमनादीनां अन्तरेष्वन्तरेषु च ॥
स्नेहस्वेदौष्ण्यहीनयोः ॥

स्नेहस्वेदौ प्रयुज्जीतस्नेहाद्यन्ते प्रयोजयेत् ।
अर्घ्यं स्वाध्यायान्तरे ॥

अर्थ....स्वस्थमनुष्यों को ऊपर कहीं
हुई ऋतुओं में वमन विरेचन देना उचित
है। परन्तु व्याधिग्रस्त मनुष्य को व्याधिके
कारण ग्राह्यादि ऋतुओं में भी संशोधन
दियाजासکتा है। वमनादि पंचकर्म कराने
के पहिले स्नेहन स्वेदन करना चाहिये और
पीछे वमनादि प्रयोग करें।

अविरेच्यरोगी ॥

विसर्पपिडकाशोफकामलापाण्डुरोगिणः।

अभिघातविपार्तादचनात्तिस्निग्धान्विरे-

चयेत् ॥

अर्थ—विसर्प, पिडका, सूजन, कामला
पांडुरोग, अभिघात और विष इन रोगों
से पीडित मनुष्य को अत्यन्त सिग्ध करके
विरचन न देये अर्थात् थोड़ा सिग्ध करकेही
विरचन देये ।

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम्
 स्नेहोत्क्रिष्टशरीरायस्नेहदद्याद्विरेचनम् ।
 स्नेहस्वेदोपपन्नेचजीर्णेमात्रावदौषधम् ॥
 एकाग्रमनसापीतसम्पयोगायकल्पते ॥
 स्निग्धात्पात्राद्ययातोयमयवेनमणुयते ।
 कफादयःमणुयन्तेस्निग्धाद्देहात्तथौषधैः ।
 आर्द्रिकापुंयथावह्निर्विष्यन्दयतिसर्वतः ॥
 तथास्निग्धस्वैदोपान्स्वेदोविष्यन्दयेत्
 स्थिरान् ॥

अर्थ—अतिस्निग्ध शरीर वाले को स्नेह विरेचन न देना चाहिये । स्नेह से उत्क्रिष्ट शरीर वालेको रुक्ष विरेचन देवे । पहिले दिन का आहार पचने पर स्नेह और स्वेद से युक्त होकर एकाग्रमन से वमन विरेचन औषधों का पान करने से वमन विरेचन का सम्यक् योग होता है । जैसे चिकने पात्रसे बिना प्रयत्नही पानी निकल जाता है उसी तरह स्निग्ध औषधियों द्वारा स्निग्ध देह से कफादि दोष शीघ्रही निकल जाते हैं ।

जैसे अग्नि गीले काष्ठ को चारों ओर से विष्यन्दित करदेती है अर्थात् उस के जल को खींच लाती है, उसी तरह से स्वेदन कर्म स्निग्ध देह के स्थिर दोषों को विष्यन्दित करदेता है ।

स्नेहस्वेद से संशोधन का दृष्टान्तः ॥
 क्रिष्ट्वासोपयोत्क्रैश्यमलैःसंशोध्यतेऽम्भसा ॥ स्नेहस्वेदस्तथोत्क्रैश्यशोध्यतेशो-
 धनैर्मलः ।

अर्थ—मैले घृत्न को जैसे साबुन, सजी

आदि से मसल कर जल से धोकर स्वच्छ करते हैं उसी तरह शरीरस्थ मल को स्नेहन स्वेदन से उत्क्रैशित करके संशोधन औषधियों द्वारा शुद्ध करते हैं ।

अजीर्ण भोजनमें संशोधन निषेध ॥
 अजीर्णवर्धतेग्लानिर्विवन्धश्चैवजायते ॥
 पीतसंशोधनश्चैवविपरीतमवर्त्तते ॥

अर्थ—अजीर्ण में वमन विरेचनादि औषध के सेवन करने से ग्लानि बढ़ती है और विवन्ध उत्पन्न होजाता है तथा वमन विरेचन की विपरीत गति होजाती है ।

मात्रावत् औषधके लक्षण ॥

अल्पमात्रंमहावेगंवहुदोषहरंमुखम् ॥
 लघुपाकंसुखास्वादंप्रीणनंव्याधिनाशनम्
 अविकाराविपन्नश्चनातिग्लानिकरश्चतत्
 गन्धवर्णरसोपेतंविद्यान्मात्रावदौषधम् ॥

अर्थ—जो औषध अल्पमात्रा होने पर भी महावेगवती होती है, बहुत दोषोंको नाश करनेवाली और सुखदायक होती है, जो लघुपाकी, सुखाद, प्रीणनकर्त्ता और व्याधिनाशक होता है, जो अविकारी, अव्यापन्न, ग्लानि न करनेवाली, गन्धवर्ण और रससे युक्त है वह मात्रावत् कहाती है ।

सम्यग्योग करनेवाली औषध ॥

विधूयमानसान्दोपान्कापादीनशुभोदयनाएकाग्रमनसापीतसम्पयोगायकल्पते ॥

अर्थ—औषध पीनेके समय कामकोधादि अशुभकर्त्ता मानसिक दोषों को दूर करके जो औषध एकाग्रमनसे सेवन की जाती है उसका सम्यग्योग होता है ।

वमनविरेचन का पूर्वकर्म ॥

नरः श्वो वमनं पाता भुञ्जीत कफवर्द्धनम् ।

सुजरं द्रवभूयिष्ठं लघुशीतं विरेचनम् ॥

उत्किष्टाल्पकफत्वेन क्षिप्रं दोषाः स्रवन्ति हि ।

अर्थ—जिस को प्रातःकाल वमनकारक औषध पान करानी है उसे आज कफका बढ़ाने वाला भोजन कराना चाहिये । जिस को प्रातःकाल विरेचनकर्ता औषध पान करानी है उसे आज ऐसा लघु और शीतल आहार देव जो बहुत शीघ्र ही पच जाय । इस प्रकार आहार सेवन करने से कफके बढ़ने के कारण वमन और घटने के कारण विरेचन बहुत शीघ्र ही होता है ।

शुद्धि के लक्षण ॥

पीतौषधस्य तु भिषक् शुद्धिर्लिङ्गानिलक्षणैव ।

ऊर्ध्वकफानुगेषिते विट्पित्तनुकफे त्वधः ॥

अर्थ—जिसने वमन विरेचन औषध पान करी हो उस के शुद्धि के लक्षण देखने चाहिये । वमन देने के पीछे जो प्रथम कफ उद्गर्ण हो और पीछे पित्त उद्गर्ण हो तो वमन से शुद्धि समझना चाहिये । विरेचनिक औषध के पीछे यदि विट् और पित्त के पीछे कफ आने लगे तो विरेचन द्वारा शुद्धि समझना चाहिये ।

हृतदोषं वदेत् काश्यपः शीतं च त्वलाघवे ।

वामये च ततः शेषमौषधं न त्वलाघवे ॥

स्तैमित्येऽनिलसङ्गे च निरुद्गारेऽपि वामये

त् ॥ आलाघवात्तनुत्वाच्च कफस्यापत्परं

भवेत् ॥ वमिते वद्धे ते वद्गुनि शमं दोषाग्रजं

न्ति हि ॥ वमिते लघये त्वस्य क्जीर्णलिङ्गा

न्यलक्षयन् ॥ तानि दृष्ट्वा तु पेयादिक्रमं कु

र्यान्नलंघनम् ॥

अर्थ—यदि रोगी को कृशता, दुर्बलता और देह में हलकापन हो जाय तो समझना चाहिये कि वमन ठीक होगाई, उस में जो औषध उस के आमाशय में शेष बची हो उसे वमन करके निकाल देव । यदि देह में हलकापन न हुआ हो तो औषध को न निकाले । जो देह में स्तिमिता हो, अधोवायु और डकार रुक गई हो तो भी वमन करावै । जब तक देह में हलकापन न होगा और थोड़ा सा भी कफ रहैगा तब तक व्याधि रहैगी, वमन कराने के पीछे अग्नि बढ़ती है और दोष सब शान्त हो जाते हैं । वमन कराने के पीछे भी जो कफके जीर्ण होने के सम्यक् लक्षण न दिखाई दें तो लंघन करावै यदि कफके जीर्ण होने के सम्यक् लक्षण दिखाई दें तो पेयादि क्रमका पालन करावै । लंघन कराना उचित नहीं है ।

पेयाके योग्य रोगी ॥

संशोधनाभ्यां शुद्धस्य दृढतदोषस्य देहिनः ॥

यात्यभिमन्दता तस्मात्क्रमेण पेयादिमाचरेत्

अर्थ—जिसका देह वमन विरेचन से शुद्ध हो गया है और जिसके दोष सब दूर हो गये हैं उसकी अग्नि मंद पड़ जाती है, इसलिये उसे पेयादिक्रमका पालन कराना चाहिये ।

र्यणादिकमर्कुर्यात्प्रेयाभिष्यन्दयोद्धतान्
अर्थ—जिस मयप और वात पित्तरोगी
काकफ पित्त वमन विरेचन द्वारा शुद्ध होगया
है उसे अल्प मात्राके द्वारा तर्पणादिक्रम का
पालन करावे । क्योंकि येया उसको अभि
ष्यन्दित करती है ।

जीर्णऔषधकेलक्षण ॥

अनुलोमोऽनिलःस्वास्थ्यंक्षुत्तृष्णोर्जोमन
स्विता ॥ लघुत्वमिन्द्रियोद्धारशुद्धिःजी
र्णौषधाकृतिः ।

अर्थ—वायु का अनुलोमन, स्वस्थता,
क्षुधा, तृप्ता, ऊर्जा, मन में प्रफुल्लता, इ-
न्द्रियों का हलकापन और शुद्ध डकार ये
सब जीर्ण औषध के लक्षण हैं ।

जीर्णविशिष्टऔषधकेलक्षण।

कृमोदाहोद्गमर्दश्चभ्रममूर्च्छाशिरोरुजा॥

अरतिर्वलहानिश्चसावशेषौषधाकृतिः॥

अर्थ—बलाति, दाह, अंगमर्द, भ्रम मूर्च्छा
शिर में वेदना, यातना और बलहानि ये
सब जीर्णविशिष्ट औषध के लक्षण हैं ।

अकालेऽल्पातिमात्रेचपुराणनचभावितम्।

असम्पक्वसंस्कृतंचैवव्यापयेतौषधद्रुतम्।

अर्थ—जो औषध कुसमय पानकी जाय,
अथवा अतिमात्रा वा अल्पमात्रा वा पुरानी,
वा अभावित वा अच्छीतरह संस्कार न कीहुई
औषध सेवन कीजाय तो उस से शीघ्रही
उपद्रव होते हैं ॥

असम्पक्वऔषधकेदशउपद्रवः

आध्मानपरिकर्तिश्चसावोद्ग्रात्रयोर्ग्रहः
जीषादानंसाविभ्रंशःस्तम्भःसोपद्रवःकलमः

अयोगादतियोगाच्चदशैताव्यापदोमहाः

अर्थ—औषध के अयोग वा अतियोगसे
आध्मान, परिकर्तिका, स्त्राव, हृद्ग्रह, अंग-
ग्रह, जीषादान, विभ्रंश, स्तम्भ, उपद्रव
और क्लान्ति ये दशरोग उपस्थित होते हैं ॥
प्रेत्यभैषज्यवैद्यानावैगुण्यादातुरस्यच ॥
शुद्धेक्लिष्टेनर्दुर्गन्धामहृद्यमतिवाच्यते ॥

अर्थ—परिचारक, औषध, वैद्या और
रोगी इनके विगुणता से शुद्ध दोष भी
उल्लिष्ट होकर दुर्गन्ध और अत्यन्त वा
बहुत अप्रियताको उत्पन्न करते हैं ।

योगःसम्पक्वप्रवृत्तिःस्यादतियोगोऽतिव
र्त्तनम्॥अयोगः प्रातिलोम्पेननचाल्पंवा
प्रवर्त्तनम् ॥

अर्थ—औषध का योग होने से दोषों की
सम्पक् प्रवृत्ति होती है । अतियोग होनेसे
अत्यन्त प्रवृत्ति होती है । औषधका अयोग
होने से दोषों की प्रतिलोमता के कारण
दोषों की प्रवृत्ति सर्वथा नहीं होती है अथवा
थोड़ी होती है ॥

अजीर्ण में विरेचनपानका अवगुणः॥

श्लेष्मोत्क्लिष्टेनर्दुर्गन्धमहृद्यमतिवाच्यम्॥

विरेचनमजीर्णचपीतमूर्ध्वमवर्त्तते ॥

अर्थ—अजीर्ण में विरेचन के पान कर-
ने से कफकी उल्लिष्टता के कारण थोड़ा वा
बहुत ऊपर के मार्ग से निकलजाता है ।

वमनकर्त्ता औषध से विरेचन ॥

क्षुधार्तृदुकोष्टाभ्यांस्वल्पोत्स्विकृष्टकफेन
वा । तीक्ष्णपीतस्थितंक्षुब्धवमनंस्याद्वि-
रेचनम्

अर्थ—जिसको भूखलगरहीहो, जिसका कोठा मृदु हो वा जिसका कफ बहुत उद्गीर्णनहो उसको तीक्ष्ण वमन कारक औषधके पान करानेसे वह औषध स्थिर और क्षुब्ध होकर दस्त लाने लगती है ।

प्रतिलोम्येनदोषाणांहरणात्तेजकृत्स्नशः
अयोगसंश्लेषेणयदागच्छतिचाल्पशः॥

अर्थ—इसतरह वमन औषध के विरेचनमें बदल जानेसे प्रतिलोम रीति से दोषों के निकलने पर भी यदि रोगी को किसी प्रकारका कष्ट नहो तौभी वमनका अयोग होताहै क्योंकि इस दशामें दोष थोड़े थोड़े वा कष्टसे निकलते हैं ।

पीतौषधोनशुद्धश्चज्जीर्णतस्मिन्पुनःपि
वेत् । औषधनतुजीर्णेऽन्यद्भयंस्यादति
योगतः ॥

अर्थ—संशोधन औषध के पान करनेसे यदि रोगी शुद्ध नहो तौ उस औषध के पचने पर फिर वही औषध पान कराना चाहिये । यदि औषध के बिना पचे ही और औषध पान करादी जायगी तौ अति योग के कारण अन्य भय होगा ।

कोष्ठस्फुगुरुतांज्ञात्कालघुत्वंचलमेवच ।
अयोगमृदुवादद्यादौषधतीक्ष्णमेववा ॥

अर्थ—संशोधन औषध के अयोग में कोष्ठका भारापन, हलकापन और चलका विचार कर फिर मृदु वा तीक्ष्ण औषधका पान करावै ।

वमनंनतुदुश्चर्दंद्भुकोष्ठंनचिरेचनम् ।
पाययेतापधभूयोह्न्यात्पीतं पुनार्हति ॥

अर्थ....जिसको वमन कठिनतासे होता है, उसे वमन न करावै । जिसका कोष्ठकड़ाहो उसे विरेचन न देवै । क्योंकि ऐसे मनुष्यों को वमन विरेचन करानेसे प्राणों की हानि होती है ॥

अस्निग्धास्विन्नदेहस्यरुसस्यानवमौषधम् ।
दोषानुत्कलेश्यानेर्हर्तुमशक्तजनयेद्भदान् ॥
विभ्रंशश्चयथुंहिकांतमसोदर्शनंशुशम् ।
पिण्डकोद्वेष्टनंकण्डूमूर्धोःसादं विवर्णताम् ॥

अर्थ....अस्निग्ध, अश्वेदित और रुक्ष देह वाले को पुरानी औषध देनेसे दोष उत्क्रिष्ठ तौ होजाते है परन्तु निकल नहीं सकते क्योंकि वह कीर्यहीन होती है ॥ तथा रोग उत्पन्न होजाते हैं । ऐसी औषधियोंसे विभ्रंश, सूजन, हिचकी, अन्धकार दर्शन, पिंडलियोंमें ऐठन, खुजली और ऊरुसाद ये उपद्रव होते हैं ॥

स्निग्धस्विन्नस्पृष्टात्पदोपाग्रेर्जीर्णमौषधम् ।
शीतैर्वास्तब्धमामैर्वादोषानुत्कलेश्यनाहरेत् ॥
तानेवजनयेद्गोमानयोगः सर्वएवसः ।
विधायमतिमांस्तत्रयथोक्तां कारयेत्क्रियाम् ॥

अर्थ....स्निग्ध और स्विन्नरोगी को यदि मात्रा थोड़ी दीजाय अथवा वह रोगी को दीप्ताग्निके कारण पचजाय, अथवा शीतल उपचार और आम द्वारा औषध स्तब्ध होजाय तो वह दोषों को उत्क्रिष्ठ कर के निकाल नहीं सकती है । ऐसा होनेसे ऊपर लिखेहुए सम्पूर्ण रोग उपस्थित होते हैं । इसी को औषध का अयोगमी कहते हैं ॥

इसतरह औषध का अयोग समझकर बुद्धिमान् वेष को उचित है कि नीचे लिखी हुई क्रिया का अवलंबन करे ॥

वमनविरचन के अयोगमैउपाय ॥

तैतिललवणाभ्यक्तस्विन्नं प्रस्तरस्वदे ॥

पाययेत् पुनर्जोषे समूत्रैर्वा निरुहयेत् । नि

रुहैश्चरसैर्धान्वैर्भोजयित्वा अनुवासयेत् ॥

फलमागधिकादाहसिद्धतैलेन मात्रया ॥

स्निग्धवातहरैः स्नेहैः पुनस्तीक्ष्णैश्शोध

येत् ॥

अर्थ—ऐसे मनुष्य को नमक मिलेहुये तेल से अभ्यक्त कर के प्रस्तरस्वेद और संकरस्वेद द्वारा स्वेदितकरे पहिले औषध वा आहार के पचनेपर गोमूत्र मिठी हुई निरुहण वस्ति देवे । तत्पश्चात् जांगल मांसरस के साथ भोजन कराके अनुवासन देवे । अनुवासन का तेल मात्रावत् मैनफल पीपल और देवदारु इन के फलक और काष्ठ के साथ सिद्ध करना चाहिये । फिर इस रोगी को वातनाशक तैलों से स्निग्ध करके तीक्ष्ण संशोधन देना उचित है ।

अतितीक्ष्णक्षुधार्तस्य मृदुकोष्ठस्य भेषजम् ॥
दृत्वा शुविदपित्तफान्धातून् विस्रावयेद्
द्रवान् ॥ वर्णस्वरक्षपदाहकण्डूशोषं भ्र-
मं वृषाम् ॥ कुर्याच्च मधुरैस्तत्र शोषमौषधमु-
ल्लिखेत् ॥

अर्थ—क्षुधा से पीडित और मृदु कोष्ठ वाले को तीक्ष्ण संशोधन देने से प्रथम विष्टा पित्त और कफ निकल जाते हैं । वही औषध फिर धातुओं को पिघलाकर स्थावित करती

है तथा वटवर्णनाश, स्वरमंग, दाह, बुन ली, शोष, भ्रम और तृषा इन उपद्रवों को उत्पन्न करती है । ऐसे स्थलपर मधुरद्रव्यों से मिश्रित वमन देकर विनाशची शोष औषध को वमन द्वारा निकाल देना चाहिये । वमनेतु विरेकः स्पाद्विरेकैवमनं मृदु ॥ परिपेकावगाहाद्यैः शुशीतैः स्तम्भयेच्च तत् ॥ कपायमधुरैः शीतैस्त्वनपानौषधैस्तथा । रक्तपित्तातिसारघ्नेर्दाहज्वरहरैरपि ॥

अर्थ—वमन के अतियोग में विरेचन और विरेचन के अतियोग में मृदु वमन देना हित है, तत्पश्चात् शीतल परिपेक और अवगाहनादि द्वारा उसका स्तम्भन करे । कसीली, मीठी और शीतल अन्नपान और औषधी तथा रक्त पित्तातिसारनाशक और दाहज्वर नाशक औषधादिका व्यवहार कर के स्तम्भन करना चाहिये ॥

अतियोगनाशक प्रयोग ।

अज्जनं च भद्रनोक्षीरमजामृच्छं करोदकं मूलाजचूर्णैः पियेन्मन्यमति योगहरं परं ॥ शुक्लाभिर्वा वटादीनां सिद्धां पेष्यां समाक्षिपाम् । वर्चःसां प्राहिकैः सिद्धां क्षीरभोज्यञ्च दापयेत् ॥ जांगलैर्वारसैर्भोज्यां पच्यं वस्तिश्च शस्यते ॥ मधुरैरनुवात्यश्वासिद्धे न क्षीरसर्पिषा ॥

अर्थ—रसोत, रक्तचंदन, खस, इनको पीसकर बकरे के रुधिर और खांड के शरवत के साथ खील के चूर्ण में मन्थ बनाकर पान करने से अतियोग दूर होजाता है । वटादि दूधवाले वृक्षों की टहनियों के अम-

भाग पेया में ढालकर सिद्ध करे फिर ठंडा होनेपर शहत मिलाकर पानकरे तो अति योग्य दूर होजाता है ॥

मूत्र को समग्रह करनेवाली औषधियां ढालकर सिद्ध कियाहुआ दूध पान करनेसे भी अतियोग दूर होजाता है तथा जांगलमांस रस के साथ भोजन कराना और पिच्छावस्ति भी दैना हित है तथा जीवनीयादि मधुर गणोक्त द्रव्य ढालकर दूध को पकावे फिर उस में से घी निकालकर उसकी अनुयासन वस्ति देवे ॥

ये ऊपर लिखे सब प्रयोग विरेचन के अति योग में हित हैं ॥

वमनातियोगमेंप्रयोग ॥

वमनस्यातियोगेतुशीताम्बुपरिपेचितम् पिबेत्फलरसैर्मन्थसघृतसौद्रशर्करम् ॥

सोद्वारायांभृशं वम्यांमूर्च्छायां धान्यमुस्तयोः समधूकाब्जनंचूर्णलेहयेन्मधुसंयुतम्

अर्थ— वमन के अतियोग में शीतलजल के छोटे रोगी के मारे और फलों के रसों के साथ मन्थ बनाकर उस में घी, शहत और शर्करा ढाल कर पान करे । डकार सहित अत्यन्त वमन में और मूर्च्छा में धानियां मोथा, मुलहठी और रसोत इनका चूर्ण शहत मिलाकर चटावे ।

वमतोऽन्तःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहाः

स्निग्धाम्ललवणाद्यायूपक्षीररसैर्हिताः

फलान्यस्लानिखोदयुस्तस्यचान्येऽग्रतो नराः ॥

अर्थ— वमन करते १ जो जिह्वाभीतर

को घुसगई हो तौ नमक और हृदय प्रिय यूप वा दूध वा मांसरसका केवल धारण करावे । ऐसे स्थलपर खट्टे अनार आदि के फल रोगी को खवावे अथवा रोगी के सामने किसी अन्य मनुष्य को खवावे ।

निःसृतजिह्वामें उपाय ॥

निःसृतांतुतिलद्राक्षाकल्कयुक्तांमवेशयेत् ॥

अर्थ— वमन करते करते जो जिह्वा बाहर निकल आई हो तौ जबि पर तिल और दाख का छेप करने से जिह्वा भीतर को चली जायगी ।

वाग्ग्रहमें चिकित्सा ॥

वाग्ग्रहानिलरोगेषु घृतमांसोपसाधितम् ॥

यवागृतनुकांदद्यात्स्नेहस्वेदांच बुद्धिमान् ॥

अर्थ— वमन करते करते वाणी के रुक जाने पर वा वायुके कुपित होने पर घृत और मांसरसके साथ सिद्ध की हुई पतली यवागू और स्नेह स्वेद का प्रयोग करना चाहिये ।

वामितश्चाविरिक्तश्चमन्दाग्निश्चाविलंघितः ॥

अग्निप्राणविट्छदयर्थक्रमपेयादिकं भजेत् ॥

अर्थ— वमन विरेचन द्वारा संशुद्ध, मन्दाग्नि और लंघन करने वाले की अग्नि का बल बढ़ाने के लिये पेयादि क्रमका पालन करना उचित है ।

बहुदोषस्य रूक्षस्य हीनाग्नेरल्पमौषधम् ॥

सोदावर्तस्य चोत्प्लेक्षदोषान्मार्गान्निर्वह्यते । भृशमाध्मापयेन्नाभिपृष्ठाभ्यक्षिरो रून् ॥ श्वासं विष्णुमूत्रवातानां सङ्कुर्वन् च चक्षुषम् ॥

अर्थ—बहुत दोषों से युक्त, रूक्ष वा मृदाग्नि वाले को अथवा उदावर्त रोगी को अल्पमात्रा में वैरेचनिक औषध का पान कराने से दोष उत्क्रिष्ट होकर मार्गों को रोक देते हैं। इससे नाभि के पास बड़ा अफरा होजाता है, पीठ, पसली और सिर में दर्द होने लगता है। श्वास, विष्टा, मूत्र और अधोवायु दारुण रीति से रुकजाते हैं ॥

अभ्यङ्गस्वेदवर्त्यादिसनिरूहानुवासनम् ॥ उदावर्तहरं सर्वकर्माध्मातस्य शस्यते

अर्थ—ऐसा अफरा होने पर तैल मर्दन स्वेद, वर्त्ति प्रयोग, निरूहण और अनुवासन तथा उदावर्तनाशक सम्पूर्ण प्रयोग इस जगह हित हैं।

एँटा होने का कारण ॥

स्निग्धेन गुरुकोष्ठेन सामेवलवदौषधम् ॥ क्षामेण मृदुकोष्ठेन श्रान्तेनाल्पवलेन वा ॥ पीतं त्वागुदं साममाशुदोषं निरस्यति ॥ तीव्रशूलांसपिच्छास्त्रां करोति परिकर्त्ति—काम् ॥

अर्थ—स्निग्ध मनुष्य को अथवा भारी कोठे वाले को अथवा आमदोष वाले को बलिष्ठ औषध देने से, अथवा क्षीण, मृदु कोष्ठ श्रान्त और अल्पबल वाले को वैसी ही औषध देने से आमसहित दोष उद्गर्ण होकर गुदाके मार्ग से निकलने लगते हैं। तब पेट में अत्यन्त शूल युक्त, पिच्छा युक्त और रुधिर सहित परिकर्त्तिका वा मरोडा होने लगता है।

पेटेकी चिकित्सा ॥

लघनपाचनं सामेरुक्षोष्णलघुभोजनम् ॥

घृह्णीयोविधिः सर्वज्ञामस्य मधुरस्तथा ॥
अर्थ—इस तरह आमयुक्त दोष में लघन पाचन तथा रूक्ष और उष्ण हलका भोजन हित है। यदि क्षीण पुरुष के ऐसा उपद्रव हो तो उसे घृह्णीय तथा मधुर औषधों का सेवन कराना हित है ॥

आमार्जर्णे तु बद्धश्चेत्क्षाराम्ललघुशस्यते ॥ पुष्पकासीसमिश्रांवाक्षारेण लवणेन वा । सदादिमरसं सर्पिःपिवेद्वातेऽधिके सति ।

अर्थ—आमार्जर्ण के कारण जो विवन्ध हुआ हो तो क्षार और खटाई डालकर हलका भोजन प्रशस्त है। जो वायुकी अधिकता हो तो पुष्पकासीस मिश्रित, अथवा क्षार और नमक युक्त अनार कारस मिला हुआ घृत हित है।

दध्यम्लं भोजने पाने संयुक्तं दाढिमत्त्वचा । देवदारुतिलानां वा कल्कमुष्णाम्बुनापि वेत् ॥ अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षकदम्बैर्वाशृतं पयः ॥

अर्थ—उसी तरह वायुकी अधिकता होने पर खाने पीने की द्रव्यों में अनारके छिलके के साथ खट्टे दही का सेवन करना चाहिये ॥ अथवा देवदारु और तिलके कल्कको गरम जल के साथ पान करें। अथवा पीपल गुल्मर पाफड़ और कदंब की छाल दूध में सिद्ध करके पान करावे ॥

कपायमधुरं वस्तिपिच्छावस्तिमथापिवा ॥

यष्टीमधुकसिद्धावस्नेहवस्तिमदापयेत् ।

अर्थ—कपाय और मधुर द्रव्यों की वस्ति अथवा पिच्छावस्ति अथवा मुलहृदी के साथ सिद्ध की हुई स्नेहवस्ति भी वायु की अधिकता में हित है। अल्पतुवहुदोषस्य दोषानुत्प्लेक्ष्य भेषजम् अल्पाल्पस्त्रावयेत्कण्टशांफकुष्ठानिगौरवम् कुर्याच्चग्निवधात्क्लेशस्तमित्यारुचिपाण्डुताम् ॥ परिस्त्रावश्चतुर्दोषांशमपेक्षामपेक्षी

अर्थ.... बहुत दोषों से युक्त मनुष्य को अल्प विरेचन देने से दोष उद्गर्ण होकर थोड़े थोड़े स्त्रावित होते हैं। ऐसा होने से जुकड़ी, सूजन, कोढ़, भारापन, अग्निनाश उत्पन्न होता है और स्त्राव भी होता रहता है। इस उपद्रव में संशमन औषध देकर दोषों की शान्ति करे, जो संशमन से भी शान्त न हों तो वमन करावे ॥

स्नेहिंवापुनस्तीक्ष्णाययेधविरेचनम् ।
शुद्धेचूर्णासवारिष्टान्संस्कृतांश्चमदा-
पयेत् ।

अर्थ.... रोगी को स्निग्ध करके फिर तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये। फिर शुद्ध होने पर चूर्ण, आसव, अरिष्ट और संस्कार किये हुए यूपदि का सेवन करावे ॥

पीतीपधस्यवेगानानिग्रहान्मारुतादयः
क्षुपिताहृदयंगरावाघां कुर्वन्तिहृदग्रहम् ॥
सहिकार्कासपार्श्वार्तिदैन्यलालासिबिभ्रमैः
जिह्वाखादतिनिःसंशोदन्तान्किटिकटाप-
पन् । नगच्छेद्विभ्रमंतत्रवामयेदांशुतंभिपकु

मधुरैः पित्तमूर्च्छां तैकटुभिः कफमूर्च्छितम् ।
पाचनीयैस्ततश्चास्पदोपशेषं विपाचयेत्
कामाग्निञ्च वलं चास्पक्रमेणोत्पापयेत्ततः

अर्थ.... वमन विरेचन कर्त्ता औषधि को पीकर जो वेगों का निग्रह करता है, उस के वातादिक दोष कुपित होकर हृदय में पहुंचकर घोर हृदयग्रह उत्पन्न करते हैं। हिचकी, खांसी, पसलीका दर्द, दीनता, नेत्र-स्तता और विभ्रम ये उपद्रव भी उत्पन्न होते हैं, रोगी बेहोश होकर जिह्वा को चया जाता है दांतों को किड़किड़ाने लगता है ऐसे समय पर वैद्य को उचित है कि विन घबड़ाये शीघ्र ही वमन करावे। जो रोगी पित्तकी अधिकता से मूर्च्छित हो तो मधुर द्रव्यों से और कफ मूर्च्छित को कटुद्रव्यों के प्रयोग से वमन करावे। फिर जो दोष शेष बचे हों उन्हें पाचनद्रव्यों से पक्व करे। तत्पश्चात् रोगी की जठराग्नि और बल के बढ़ाने का प्रयत्न करे।

पचनेनातिवमतो हृदयं यस्य पीड्यते ॥ तस्मै
स्निग्धाम्ललवणं दद्यात्पित्तकफेऽन्यथा ॥

अर्थ—अत्यन्त वमन करनेके कारण वायु जिस के हृदयको पीड़ित करे उसको स्निग्ध, नमकांन और खट्टी औषधें देनी चाहिये। परन्तु पित्तकफकी अधिकता होनेपर स्निग्ध खट्टी और नमकीन औषध न देनी चाहिये ॥

पीत औषधके वमन निग्रह में उपद्रव।
पीतौषधस्यवेगानानिग्रहेण कफेन वा ॥ रु-
द्धोतिवाविशुद्धस्य गृह्णात्यज्ञानिमारुतः
स्तम्भवेषु निस्तोदसादोद्वेष्टातिमूर्च्छितैः
तत्र वातहरं सर्वस्नेहस्वेदादिकारयेत् ॥

अर्थ—जिसने वमन करानेवाली औषध पानकी हो और वह अपने उस वेग को रोकले, उसका कफ प्रवृत्त हो जाता है और उस प्रवृत्त कफ से वायु रक्तकर अंगप्रद, स्तम्भ, कम्पन, सुई भिदने कीसी पीडा, अंगसाद, उद्वेष्टन, यातना और मूर्च्छा रोगों को उत्पन्न करती है । ऐसी जगह पर वातनाशक क्रिया तथा स्नेह और स्वेददेना आवश्यककीय है ।

अतितीक्ष्णमृदौकोष्ठेलघुदोषस्यभेषजम् ।
दोषानहत्वाविनिर्भयजीवंहरतिशोणि-

तम् ॥

अर्थ—लघुदोष वाले के मृदु कोष्ठ में अतितीक्ष्ण औषध का प्रयोग सम्पूर्ण दोषों को दूर करके तथा मन्थन करके जीव शोणित को निकाल देता है ।

शोणित की परीक्षा

तेनान्नमिश्रितंदद्यादायसायशुनेऽपिवा
भुंक्तेतच्चेद्देज्जीवंभुंक्तेपित्तमादिशेत् ।

अर्थ—तीक्ष्णवमन से जो रक्त निकलता है उसकी यह परीक्षा करनेके लिये कि यह शोणित जीवशोणित है वा रक्त पित्तका शोणित है, यह काम करना चाहिये कि उस वमनके रुधिरको अन्न में मिलाकर कौए कुत्ते को खवावे जो कुत्ते कौए उसे खाँले तो उसे जीवशोणित समझना चाहिये और जो न खाँय तो उसे पित्तरक्त समझना चाहिये ।

दूसरी परीक्षा ।

शुक्लंवाभावितं वस्त्रं साधानं कोष्णवारि
णा ॥ मसालितं विवर्णं स्यपित्तं शुद्धं तु
शोणितं ॥

अर्थ—दूसरी परीक्षा यह है कि एक सफेद कपड़े को इस रक्त में भिगोकर सुखा लेवे, फिर इसे थोड़े गरम जल से धोवे । यदि रंगत बिगड़ जाय तो रक्तपित्त का रक्त है, यदि शुद्ध बनी रहे तो जीवशोणित समझना चाहिये ॥

तृष्णामूर्च्छामदार्तस्य कुर्यादामरणात्कि-
याम् ॥ तस्यपित्तहरांसर्वामतियोगेचया
मता ।

अर्थ—विरचन के अतियोग में तृष्णा, मूर्च्छा और मत्तता होनेपर मरणपर्यन्त पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये तथा अतियोग में जो जो उपाय कहे हैं वे भी सब करने चाहिये ।

मृगगोमहिषाजानांसद्यस्कजीवतामसृक्
पाययेतांशुसन्धानं जीवो जीवेन गच्छति ।

तदेव दर्भमृदितं रक्तं वांस्तिप्रदापयेत् ॥

अर्थ—रक्त के अत्यन्त क्षीण होने पर हिरन, गौ, भैस वा बकरे का तत्काल नि-
कला हुआ रक्तपान करावे । इस से निकले हुए जीवशोणित का सन्धान होता है और रोगी भी शीघ्र ही सजीव हो जायगा । तथा इन्हीं पशुओं के रुधिर में दांभ रगड़कर वरित देनी चाहिये ।

श्यामाकाश्मर्ष्यवदरीर्द्वावीरैः मृतं जल-
म् ॥ घृतमण्डाञ्जनयुतं वांस्ति शीतं प्रदापयेत् ॥

अर्थ—अनन्तमूल, खभारी, घेर, दूध, और क्षीरकाकोली इनका काथ करले-उस काथ में घृतमण्ड और रसौत मिलाकर शीतल वरित देवे ।

पिच्छावस्तिमुशीतिवाधृतमण्डानुवासन
म् ॥ गुदंभ्रष्टं कपायैश्चस्तम्भयित्वा प्रवेश
येत् ॥ सामगान्धर्वशब्दांश्च संज्ञानाशेऽ
स्य कारयेत् ॥

अर्थ—अथवा शीतल पिच्छावस्ति देकर
धृतमंडकी अनुवासन देवे ॥ बहुत विरेचन
होने से जो गुदाभ्रंश होगई हो अर्थात् का-
च निकलती हो तो उसे क्षीर वृक्षों के क-
पाय से स्तब्ध कर के भीतर को प्रवेश
करा देवे ! जो रोगी वेहोश होगया हो तो
सामवेदकी ऋचाओं का गान और सुन्दर
गायों का शब्द रोगी के सम्मुख करे ॥

यदा विरेचनं पीतं विदन्तमत्रापि पृते ॥ व-
मनं भेषजान्तं वा कोपानुत्प्लेक्ष्य नावहेत् ॥
तदा कुर्वन्ति कण्ठवादीन् दोषाः प्रकुपिता
गदान् ॥ सविभ्रंशः पुनस्तत्र स्याद्यथाव्या
धिर्भेषजम् ॥

अर्थ—जो विषा के निकल चुकतेही
विरेचनिक औषध का फल जाता रहे और
पित्त न निकले, इसीतरह वमन औषध के
निकलतेही वमन क्रियाका फल जाता रहे और
कफ का दर्शन न हो तो उस मनुष्य के
खुजली आदिरोग उत्पन्न होजाते हैं, इसको
वमन विरेचन औषधों का विभ्रंश कहते हैं।

पीतं स्निग्धेन सस्नेहं तद्दोषान् मार्दवाद् दृ-
त्तम् ॥ नवाहयति दोषान् सुस्वस्थानात् स्व-
म्भये च्युतान् ॥ वातसङ्गुदस्तम्भशूलैः
क्षरति चाल्पशः ॥ तीक्ष्णं वास्ति विरेकं वा
सोर्ध्वं लघितपाचितः ॥

अर्थ—जो स्निग्ध मनुष्य स्नेहयुक्त वि-

रेचन पान करे तो वह विरेचन मृदुता के
कारण दोषों से रुकजाता है और अपने
स्थान से हटेहुए दोषों को भी स्तम्भित कर
देता है, इससे वातविषण्व, गुदस्तम्भ
और गुदशूल होता है, उस-के मल थोड़ा
थोड़ा निकलता है। ऐसी जगहपर तीक्ष्ण
वमन विरेचन वा लघन पाचन हित होता है।
रूक्षं विरेचनं पीतं रूक्षेणाल्पवलेन वा ॥
मारुतं कोपयित्वा शुकुर्याद्घोरानुपद्रवा-
न् ॥ स्तम्भशूलानि घोरानि सर्वगात्रेषु
मुह्यतः ॥ स्नेहस्वेदादिकस्तत्र कार्यो वा
तहरो विधिः ॥

अर्थ—रूक्ष वा थलहीन मनुष्य जो रूक्ष वि-
रेचनका पान करे तो वह विरेचन वायु को
कुपित करके घोर उपद्रवों को उत्पन्न करता है
इससे सम्पूर्ण देह में घोर स्तम्भ और शूल
होते हैं। इस में वातनाशक स्नेहन स्वेदन
विधि करनी चाहिये।

स्निग्धस्य गुणकोष्ठस्य मृदुत्वलेन यौपधं कफ
पित्तं वातं च संरुध्य सतन्द्रागौरवं बलम् ॥
दौर्बल्यञ्चांगसादञ्च शुकुर्यादाभ्युत्थितं
त् ॥ लघनं पाचनं चात्र स्निग्धे तीक्ष्णं च शो-
धनम् ॥

अर्थ—जो स्निग्ध और भारी कोठिवाला
मनुष्य मृदु औषध का पान करे तो वह
औषध उसके कफको उत्क्रिष्ट कर और वात
पित्त को रोककर तन्द्रा, भारापन, क्लान्ति,
दुर्बलता और अंगसाद को उत्पन्न करती
है। इस में उस औषध को शांघ्रही वमन
द्वारा निकलवा देवे, फिर लघन और पाचन

द्वारा स्निग्धता और गुरुता को दूर करके
तक्षिण विरचिन देवै ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन
तत्रश्लोकौ ।

इत्येताव्यापदः प्रोक्ताः सर्वाहिसचिकि-
त्सिताः ॥ वमनस्य विरेकस्य कृतस्याकुश-
लैर्नृणाम् ॥ एतान् चिन्नायमतिमानवस्था
श्चैव तत्त्वतः । कुर्यात्संशोधनं सम्यगारो-
ग्यार्थं नृणांसदा ॥

अर्थ—इस अध्याय में अप्रवीण वैद्य द्वारा यमन विरेचन के प्रयोग में जो जो व्याधियाँ होजाती हैं वे सब चिकित्सा सहित वर्णन की गई हैं । बुद्धिमान वैद्यको उचित है कि इन यातों को और अवस्था को जानकर आरोग्य की अभिलाषासे मनुष्यों को यमन विरेचन देवै ।

इति श्रीभाषाटीकाश्रित्यायां अग्निवेशविरचिता-
यां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां सिद्धि
स्थाने वनविरेचनव्यापत्तिस्त्रिनाम
पटोऽध्यायः ॥ ६ ॥

—•—|—+—|—•—

सप्तमोऽध्यायः ॥

अथातो नस्ति व्यापादिकां सिद्धिं व्याख्या
स्याम इति हस्माद् भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम व्यापादिका सिद्धि की व्याख्या
करेंगे ॥

धौधैर्यौदार्यगाम्भीर्यशमादमतपोनिधि
म् । पुनर्धमुंशिष्यगणःपप्रच्छविनयान्वि
तः ॥ काःकतिव्यापदोवर्ततेःकिसमुत्था

नलक्षणाः । काश्चिकित्साइतिप्रश्नान्
श्रुत्वातानब्रवीद्गुरुः ॥ ३ ॥

अर्थ—शिष्यगणों ने बुद्धि, धीरता, गंभीरता, उदारता, क्षमा, दम और तपकी निधि पुनर्वसु से अत्यन्त नम्रतापूर्वक प्रश्न किया कि हे भगवन् ! वसिष्ठ के रोग कैसे होते हैं, कितने हैं उन के उत्पन्न होनेके कारण और लक्षण क्या हैं और उनकी चिकित्स भी क्या हैं । इन प्रश्नों को सुनकर गुरु उनका समाधान करने लगे ॥

चस्ति के रोग ।

नातियो गौवलमाध्मातौह्रिकाहृतमासि
 ऋता । प्रवाहिकाशिरोऽङ्गार्तिःपरिकर्तः
 परिस्तवः ॥ द्वादशव्यापदोवस्तेरसम्य-
 ग्योगसम्भवाः । आसामेकैकशोरूपंदि
 कित्सांचनिबोधता॥

अर्थ—अयोग, अतियोग, क्लान्ति, आ-
प्मान, हिचकौ, हृदय में धक् २, उर्ध्वता
प्रगाहिका, शिरोवदना, अंगशूल, परिकर्त्तिका
परित्ताव । ये बारह रोग वस्ति के हैं, ये
सब रोग वस्ति के असम्यक् योग से होते
हैं अब हम इन में से प्रत्येकके रूप और
चिकित्सा का वर्णन करते हैं, श्रवण करो ।

अयोगव्यापल्लक्षण ।

गुरुकोष्ठेऽनिलमायेरुक्षेवातोल्वणेऽपिवा।
शीतोऽल्पलवणस्नेहद्रवमात्रोद्यनोऽपिवा॥
यस्तिःसंक्षोभ्यतंदोषदुर्बलत्वादानिर्हरन्।
करोतिगुरुकोष्ठत्ववातमूत्रशुद्धमहम्॥
नाभिवस्तिरुजंदाहेदृष्टेपेश्वयधुंगुदं। क-
ण्ठगण्डानिवैद्यर्षमरुचियहिमादिवम् ॥

अर्थ—घातप्राय भारी काण्ठवाला वा वा-
ाविक्य रूक्ष पुरुष इनको शीतल, थोडे
रंगकरी, थोडे स्नेह की, इसी तरह केवल
तली वा गाढी वस्ति दीजाय तौ यह व-
स्ति दोषको कुपित करती है परन्तु दुर्बलता
के कारण उसे निकाल नहीं सकती है, इससे
कोष्ठ में भारापन, अधोवायु, मल और मू-
त्रकी रुकावट, नाभिशूल, वास्तिशूल, दाह,
हृत्प्लेप, गुदमें सूजन, खुजली, गंडमाला,
विषर्णता, अरुचि और मन्दाम्नि ये लक्षण
होते हैं ॥

अयोगव्यापचिकित्सा ।

तत्रोष्णायाः प्रमथ्यायाः पानं स्वेदाः पृथग्वि-
धाः । फलवर्त्योऽथवाकालं शात्वाशस्तं
विरचनम् ॥ विल्वमूलत्रिट्टाक्षयवकील
कुलत्थवान् । सुरादिमूत्रवान् वस्तिः स
प्राक्पेप्यस्तमानयेत् ॥

अर्थ—इस रोगमें गरम प्रमथ्या पान
करानी चाहिये, अनेक प्रकारके स्वेदनकर्म,
फलवर्त्ति और यदि उचित समय होतौ
विरचन भी देवे । [दोषल चावलों को
फूटकर अठगुने जलमें पककर चौथाई
शेय रहने पर ग्रहण करै, इसे प्रमथ्या
कहते हैं] ॥

बेलकी जड़, निसेाथ, देवदारु, जी, बेर
और कुलधी इनका कल्क तथा सुरा और
गोमूत्र के साथ निरूहण देवे, परन्तु प-
हिले दीर्घ वस्ति को प्रथम निकाल लेना
चाहिये ।

अतियोगव्यापलक्षण ।

स्तिग्मस्विन्नोऽतितीक्ष्णोऽप्योमृदुकोऽप्येति

युज्यते । तस्य लिङ्गचिकित्सां च शोधना
भ्यांसमाभवेत् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्नेह स्वेदन करने के
पीछे मृदुकोष्ठ वाले मनुष्य को तीक्ष्ण
और उष्ण वस्ति देने से वस्ति का अति-
योग होता है । वमन विरेचन के अतियोग
के सदृश ही वस्ति के अतियोग के लक्षण
और चिकित्सा होती है ।

अतियोगव्यापचिकित्सा ॥

पृथिनपणीः स्थिरां पत्रं काश्मर्यं मधुकं वलाम् ॥
पिष्टाद्राक्षामधुकं च क्षीरैरुण्डुलधावनम् ।
द्राक्षायाः पञ्चलोद्गस्य ममादेमधुकस्य च ।
विनीय सृज्यते वस्तिदद्याद्वाहातियोगिने ।

अर्थ—दूधमें चावलों को धोकर उन में
महुआ का कल्क, वा दाख का कल्क, वा
जली हुई मृत्तिका, वा मुलहटी का कल्क
डालकर जो प्रसाद अर्थात् स्वच्छ पदार्थ
निकले उसमें पृथिनपर्णी, वा शालिपर्णी,
वा पत्रकाष्ठ वा खभारी वा मुलहटी वा
खरैटी इनमें से एक एक का वा जो सब
मिलसकें तौ सबका कल्क मिलाकर घीके
साथ वस्ति देने से अतियोगका दाह नष्ट
हो जाता है ।

वलमव्यापलक्षण ॥

आमदोषे निरूहणमृदुनां दोषैरितः ॥
रुग्निमार्गवातस्य हन्त्यग्निमृच्छयत्यपि ।
रुग्निविदाहं हृच्छं रुग्निमोहं हृच्छं गौरवम् ॥ कु-
र्यात्स्वेदैर्विरूक्षस्तं पानं दद्यात्पुपाचरेत् ॥

अर्थ—आमदोष में मृदु निरूहण वस्ति
देने से दोष उद्गर्ग होकर वात के मार्ग

को रोक देते हैं, तथा अग्नि को मन्द कर के मूर्च्छित भी कर देते हैं। इस में क्लान्ति विदाह, हृदयशूल, मोह, अंगडाई और भारापन होता है। इस में रूक्षस्वेदन और पाचन द्वारा चिकित्सा करनी उचित है।

कलमव्यापिचिकित्सा ।

पिप्पलीकतृणोशीरदारुमूर्चाशृतंजलम् ।
पिवेत्सौवर्चलोन्मिश्रदीपनंहृद्विशोधनम् ॥
वचानागरशुठ्योवादधिमण्डेनचूर्णिताः ।
पेयाःप्रसन्नयावास्युररिष्टेनासवेनवा ।
दारुत्रिकटुकपथ्यापलाशचित्रकंशठीम् ।
पिष्ट्वाकुष्ठश्चमूत्रेणपिवेत्क्षारांश्चदीपना
नावस्तिमस्यविदध्याच्चसमूत्रंदाशमूलि
कम् समूत्रमथवाव्यक्तलवणमधुतैलिकम् ॥

अर्थ—पीपल, रोहिणतृण, उशीर, देवदारु, मरोडफली इनके बन्ध में सचलनमक ढाळ कर पान करने से अग्निसंदापन और हृदय की विशुद्धि होती है
अथवा वच, सोंठ, कचूर [सज्जीला = सज्जी और छोटी इलायची पाठान्तर] इन के चूर्ण को दधि मंडके साथ, वा प्रसन्नाके साथ वा अरिष्ट के साथ, वा आसवके साथ पान करे ।

अथवा देवदारु, त्रिकुटा, हरड, पलास चीता, कचूर और कूठ इन को गोमूत्र के साथ पीसकर पान करे अथवा सब प्रकार के दीपनकर्त्ता क्षीर पान करे ।

अथवा दशमूल के बन्ध में गोमूत्र मिलाकर वारित देवे अथवा गोमूत्र में थोड़ा सानमक तथा शहत और तेल ढालकर वारित देना चाहिये ।

आध्मानव्यापहृत्क्षण ॥

अल्पवीर्योमहादोषरूक्षेक्षराशयेकृतः ॥

वस्तिर्दोषावृत्तो रुद्धमार्गो रुन्ध्यात्समीरणम् ॥ सविमार्गोऽनिलः कुर्यादाध्मानं मर्मपीडनम् । विदाहं गुरुकोष्ठस्य मुष्कवंक्षणवेदनाम् ॥ रुणद्धि हृदयं शुल्कैरितथेतदच

धावति ॥

अर्थ—कूर कोष्ठवाले बहुत दोषोंसे युक्त रूक्ष मनुष्यों को अल्पवीर्यवाली वस्ति देने से दोषों से आश्रित वायु ऊपर के और नीचे के सम्पूर्ण मार्गों को रोक देती है, वह विमार्ग गामी वायु मर्मपीडनकर्त्ता आध्मान उत्पन्न करती है विदाह, कोष्ठ में भारापन, अङ्कोप और वंक्षण में वेदना और हृदय में रोध होता है। और वायु शूल करती हुई पेट में इधर उधर दौडती है ।

आध्मानव्यापिचिकित्सा ॥

फलश्यामादिभिः कुष्ठकृष्णालवणसर्पपैः ।
धूममापवचाकिण्वक्षारचूर्णगुडैः कृताम् ।
करांगुष्ठनिर्भावंतियवमध्यानिघ्रापयेत् ॥
स्वभ्यक्तस्विन्नगात्रस्य तलाक्तस्तिरोहतगुदे ।
अथवा लवणागारधूमसिद्धार्थकैः कृताम् ॥
विल्वादिश्च निरुद्धः स्यात् पीलुसर्पपमूत्रवान् ॥
सरलामरदारुभ्यां सिद्धं चैवानुवासनम् ।

अर्थ—इस जगह सूत्रस्थान के अपामार्ग तण्डुलीय अध्याय में कहे हुए मेनफलादि और निसोथ आदि, कूठ, पीपल, संधानमक सरसों, धूमसा, माप, वच, सुराबीज और जवाखार इन सबको पीसकर गुड में सान-

कर हाथ के अंगूठे की बराबर बत्ती बनाकर उस में जौका चून भरदे, इस बत्ती को तेल में भिगोकर रोगीकी गुदा में रख देवै । बत्ती रखने के पहिले रोगी को अच्छी तरह से अभ्यक्त और स्वेदित करले और गुदा में भी तेल लगादेवै । अथवा सेंधानमक, धूमसा और सफेद सरसों इनकी बत्ती बनाकर पूर्ववत् गुदा में रखै । अथवा विल्वादि पंचमूल के काथ के साथ पीछ और सरसोका कल्क और गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्ति देवै, अथवा सरलकाष्ठ और देवदारु इन से सिद्ध की हुई अनुवासन वस्ति देवै ।

हिक्काव्यापचिकित्सा ।

मृदुकोष्ठेऽज्वलेवस्तिरतितीक्ष्णोऽतिनिर्हर न ॥ कुट्यादिक्वाहिततस्मै हिक्काघ्नं वृंहणञ्च यत् । वलास्थिरादिकाश्चर्मत्रिफला गुडसैन्धवैः । सुमसन्नारनालाम्लैस्तैल पक्त्वानुवासयेत् ॥ कृष्णालवणयोरक्ष पिबेदुष्णाम्बुनायुतम् ॥ धूमलेहरसंक्षी रस्वेदाश्चात्रं च वातनुत् ॥

अर्थ—मृदु कोष्ठवाले दुर्बल मनुष्य को तीक्ष्णवस्ति देने से वह वस्ति दोषों को नि-
कार कर हिचकी उत्पन्न करती है इस में हिक्कानाशक और वृंहण औषधदेना हित है । हिचकियों को रोकने के लिये खरैटी, शालिपपर्मादि पंचमूल, खंभारी, त्रिफला, गुड और सेंधानमक इन सबका कल्क एक सेर, तेल चारसेर, प्रसन्ना और अम्लकाजी सोलह सेर इन सबका मिलाकर पाक कर

के अनुवासन देवै । अथवा पीपल और सेंधानमक दोनों दो तोले लेकर गरम जल के साथ पीने चाहिये । इस में धूम, लेह, मांसरस, दूध, स्वेदन और वातनाशक अन्न हितकर होते हैं ॥

हृदयचिकित्सा ।

अतितीक्ष्णः सवातोवानवासम्यक्प्रपीडितः। घट्टयेद्घृदयं वस्तिस्तत्र काशकुशोत्कटैः स्यात्साम्ललवणस्कन्धकरीरवदरीफलैः शृतैर्वस्तिर्हितः सिद्धं वातत्रैश्चानुवासनम् अर्थ—वस्तिके अत्यन्त तीक्ष्ण होनेपर अथवा वायुयुक्त होनेपर अथवा ठीक रीति से पीडित न होनेपर वह हृदय में धक्काकाहट उत्पन्न करती है । इस में कांस, कुशा और ईख की जड़ का क्वाथ करके इस में अम्लस्कन्ध और लवणवर्गके द्रव्य करीर और बेर डालकर सिद्ध करके वस्ति देवै । तथा वातनाशक औषधियों से सिद्ध कियेहुए तेलकी अनुवासन वस्ति देवै ।

ऊर्ध्वव्यापचिकित्सा ।

वातमूत्रपुरीषाणां दत्तवेगान्निगृह्यतः ॥ अतिवापीडितो वस्तिर्मुखेनायाभिर्वेगवान् ॥ मूर्च्छाविकारं तस्यादौ दृष्ट्वा शान्तिम्बुना मुखम् ॥ सिञ्चेत्पाश्वोदरं चाधः प्रमृज्याद्यथ प्रयेच्च तम् ॥ केशेष्वालम्बचाकाशेषनुपात्रासयेद्भृशम् ॥ गोखराश्वगजैः सिंहैराजप्रेष्यैस्तथोरगैः । उल्काभिरवमन्यैश्च भीतस्याधः प्रवर्तते ॥

अर्थ—अधोवायु, मूत्र और पुरीष के उपस्थित वेगों को रोककर वस्ति ग्रहण

की जाय अथवा वस्ति अत्यन्त पीडित कीजाय
तो यह मुखके द्वारा बाहर निकल जाती है।
ऐसा होने पर यदि रोगी को मूर्च्छा रोग
होजाय तो प्रथमही मुख पर ठंडे जल के
छींटे मारे। पसली और उदर तथा अधो-
भाग में मार्जन करे और फिर उसे व्यम
करदे। उसके केश पकड़कर ऊंचे करे
और धनुष खींच कर उसे डरावे अथवा
गौ, घोड़ा, हाथी, सिंह, राजकर्मचारी, सर्प
और उल्का आदि दिखाकर डरावे जिस से
वस्ति नीचे को प्रवृत्त हो जाय।

वस्त्रपाणिग्रहैः कण्ठोरुन्ध्यान्मृपतेतदा
प्राणोदाननिरोधादिप्रसिद्धतरमार्गः
अपानः पवनोर्वस्तिपमाश्वेवापकर्पति ॥
ततः क्रमुककल्कासंपाययेताम्लसंयुतम् ।
औष्ण्यात्तैक्ष्ण्यात्सरत्वाच्चवस्तिचा-
स्यानुलोमयेत् ॥ पकाशवास्थितेस्तिन्नेनि
रुद्धोदाशमूलिकाः । यवकोल कुलत्थैश्च
विधेयो मूत्रभायितः ॥ विल्वदिपञ्चमूले
नसिद्धोवस्तिरुरःस्थिते । शिरःस्थेनाव
नधूमः प्रच्छाद्यं सर्पपैः शिरः ॥

अर्थ—वस्त्र और हाथ से कंठ को इस
तरह दबावे कि मरने न पावे, इस तरह कंठ
को दाबने से प्राण और उदान वायुके रुकने
के कारण अपान वायु का वेग नीचे को
बढ़ जाता है, इस से वस्ति शीघ्रही नीचे
को चली जाती है। तत्पश्चात् दो तोले
सुपारी का कल्क कांजी के साथ पान करावे
इस कल्क की उष्णता, तीक्ष्णता, और खर-
ता के कारण वस्ति शीघ्रही निकल आती

है। जो वस्ति पकाशय में स्थित हो तो
उसे निकालने के लिये दशमूलके काथ के
साथ जौ, बेर, कुलथी का कल्क तथा गो-
मूत्र मिलाकर निरुहण देवे। जो वस्ति
हृदय में स्थित होगई हो तो विल्वदि पंच-
मूल के काथ के साथ निरुहण देवे। जो
वस्ति शिर में स्थित हो तो नस्य और धूम
पान का प्रयोग करे और तिरसे ऊपर सरसों
का लेप करे।

प्रवाहिका व्यापच्चिकित्सा।

स्निग्धस्विन्नेमहादोषवस्तिर्मृद्वल्पभेषजः
उत्कृष्टयाल्पदेहैर्दोषजनयेच्चप्रवाहिका
म् ॥ सवस्तिपायुशोफेनजंघोरुसदनन
वा । निरुद्धमारुतो जन्तुरभीक्ष्णसंप्रवा
हतः ॥ स्वेदाभ्यङ्गान्निरुद्धांशशोधनीयानु
लोमिकान् । विदध्याल्लघ्वचित्वातुष्टत्ति
क्षुर्याद्विरिक्तवत् ।

अर्थ—बहुत दोषों से युक्त मनुष्य को
स्निग्ध और स्विन्न करके मृदु वीर्य और
अल्पवस्ति का प्रयोग किया जाय तो वह
सब दोषों को उद्गर्ण करके अल्पदोष को
निकालती है, इस से प्रवाहिका रोग हो-
जाता है “ प्रवाहिका उसे कहते हैं जो
पुरीपोतसर्ग की थोड़ी थोड़ी देर में शंका
होती है और गल थोड़ासा निकल जाता
है और पेट में दर्द सा रहता है ” । इस
वस्ति से गुदा में सूजन तथा जंघा और ऊरु
में अवसाद उत्पन्न करती है। रुकी हुई
वायुके कारण बार बार पुरीपोतसर्ग की
शंका होती है।

इस में स्वेदन, अभ्यंग, तथा शोधनीय और अनुलोमनकर्त्ता निरूहण देना उचित है। इस तरह रोगी को लघन कराके विरेचन दिये हुए रोगी की तरह पेयादिक्रमका पालन करावै।

शिरःशूल के लक्षण ।

दुर्बलेतीव्रदोषेचदुष्कोष्ठेचतनुर्मृदुः । शीतोऽल्पश्चावृतोदोषोवस्तिस्तद्विहितोऽनिलः ॥ मार्गैर्गात्राणिसन्धावनूर्द्धमूर्द्धन्युपाहितम् । ग्रीवांमन्येचयृक्कातिशिरःकण्ठभिन्नत्तिच ॥ वाधिर्यकर्णनादचपीनसंनेत्रविभ्रमम् ॥

अर्थ—ऐसे मनुष्य को जो दुर्बल हो और जिस के दोष तीव्र हों और कोष्ठ मृदु हो उसे ठंडी और अल्पवस्ति देनेसे वह वस्ति दोषों से धिरजाती है, वस्ति के इस तरह आवृत होनेपर वायु विहत होकर ऊपर को जाती है, वहां जाकर ग्रीवा और दोनों मध्याओं को जकड़ लेती है। सिर और कंठ में भिदने कीसी पीड़ा होती है। तथा वहरामन, कर्णनाद (कानों में शनकार), पीनस और नेत्रविभ्रम ये उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

शिरःशूलचिकित्सा ॥

कुर्यादभ्यञ्जनंतैललवणेनयथाविधि ॥ युञ्ज्यात्प्रथमनैनस्यैधूमैरास्यविरेचनैः । विरेचनैर्निरूहैश्चवस्तिभिश्चानुलोमिकैः । अर्थ—इसरोगमें विधिपूर्वक तेल और नमक का अभ्यंग करे। तथा प्रथमन, धूम, तथा विरेचन, निरूहणवस्ति और अनुलोमिक वास्तिका भी प्रयोग करे।

(१६२)

अंगशूललक्षण ॥

सुस्विन्नस्निग्धदेहस्यस्यवस्तिर्विधीयते अतितीक्ष्णोऽगुरुश्चैवसोऽतिमात्रं प्रवर्त्तयेत् ॥ सुतेपुतस्यदोषेषुनिरूढस्यातिमात्रशः । स्तब्धोदावृत्तकोष्ठस्यवायुःसंप्रतिहन्यते ॥ विलोममसमुद्भूतोरुजत्यङ्गानि देहिनः । गात्रवेष्टननिस्तोदभेदस्फुरणजृम्भणैः ॥

अर्थ—जिस रोगी को अच्छी तरह से स्निग्ध और स्विन्न करके अतितीक्ष्ण और भारी वस्ति दी जाती है, उसके दोष वद्धत निकलने लगते हैं। इस तरह दोषों के निकलने पर अत्यन्त निरूहित, स्तब्ध उदावृत्त कोष्ठवाले मनुष्य की वायु प्रतिहत होती है। तब वायु की विलोमताके कारण अंगोंमें शूल होने लगता है। देह में अंग-डाई, निस्तोद, भेद, स्फुरण और जंभाई ये उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

अंगशूलचिकित्सा ॥

तंतैललवणाभ्यक्तंसेचयेदुष्णवारिणा ॥ एरण्डपत्रनिष्कायैःप्रस्तरैश्चोपपादयेत् ॥ यवान्कुलत्थान्कोलानिपञ्चमूलेतथोभये । जलाटकद्रव्येष्वपत्वापादशेषेणतेनच कुर्यात्सविल्वतैलोष्णलवणेनानुवासनम् ॥ निरूहणसमाश्वस्तद्रोण्यांसमवगाहयेत् । ततोभुक्तवतस्तस्यकारयेतानुवासनम् ॥ यष्टीमधुकतैलेनविल्वतैलेनवाभिरुक् ।

अर्थ—उक्तरोगी के देहपर तेल और नमक का मर्दन करके उसे गरमजल से से-

चन करै तथा अरंड के पत्तों के क्वाथ से
सेचन कर प्रस्तरस्वेद का प्रयोग करै ॥
जो, कुलधी, बेर, दसमूल इनको अठगुने
जल में पक्व करके चौथाई दोष रहने पर
उतार लैवै, फिर इसमें प्रमाण से विल्वतैल
और सेंधानमक मिलाकर गरम २ से अनुवा-
सन देवै । तथा निरुहण देकर रोगी के
स्वस्थ होनेपर जलसे मरीड्डई द्रोणीमें स्नान
करावै फिर भोजन कराके भोजनके पचनेपर
अनुवासन देवै । इसमें मुलहटी के तेल का
वा विल्वके तेलका अनुवासन दियाजाता है ।

परिकर्तिकाकीचिकित्सा ।

मृदुकोष्ठाल्पदोपस्यरुक्षतीक्ष्णोऽतिमात्र-
वान् ॥ वस्तिदोषान्निरस्याशुजनयेत्परि-
कर्तिकां ॥ त्रिकबंधनवस्तीनांतोदनाभे-
रधोरुजम् ॥ चिवन्धाल्पाल्पमुत्थानंगुद-
निर्लेखनं भवेत् । स्वादुशीतौषधैस्तत्रपय-
इक्ष्वादिभिः शृतम् ॥ यष्ट्याहतिलक-
ल्काभ्यां वस्तिस्यात्क्षीरभोजिनः ॥

अर्थ—ऐसे रोगीको जिसका कोष्ठ मृदु
हो और दोष भी कमहों उसे रुक्ष, तीक्ष्ण
और अतिमात्रावाली वस्ति देने से दोषों के
निकलने पर परिकर्तिका रोग उत्पन्न होता
है । तथा त्रिक, बंधन और वस्तिमें सुई छि-
दने कीसी पीड़ा होतीहै, नाभिके नीचे धेदना
होताहै, विबन्ध और मलका थोड़ा थोड़ा
स्त्राव होताहै । वस्तिके अत्यन्त पीड़न कर-
नेसे गुदा विदीर्ण होजाती है । इस में
ईख आदि स्वादु और शीतल द्रव्योंके साथ
ओटायें हुए दूध में मुलहटी और तिलका

कल्क मिलाकर पान करावै । इस में केवल
दूध का पट्ट हित है ॥

पित्तरक्त में चिकित्सा ।

पित्तरक्तेऽम्लउष्णोवातीक्ष्णोवाल्बणो-
ऽधवा ॥ वस्तिर्लिखतिपायुतुतीक्ष्णोऽतिवि-
दहत्यापि सविदग्धः स्रवत्यसंपिचंचानेकव-
र्णवत् ॥ सार्यते बहुवेगेन मोंहं गच्छति चासकृद्
आर्द्रशाल्मलि वृन्तस्तु क्षणैराजं पयः शृतम् ॥
सर्पिपायोजितशीतवस्ति मस्मै प्रदापयेत्
वटादिपल्लवेष्पेपः कल्पोयवतिलेषुच ॥
सुवर्चलोपोदकयोः कर्बुदारेचशस्यते ॥
गुदसेकाः प्रदेहाश्च शीताः स्युर्मधुराश्च ये ॥
रक्तपित्तातिसाररुग्नीक्रियाचात्रप्रशस्यते

अर्थ—रक्तपित्तमें खटी, गरम, तीक्ष्ण
वा नमककी वस्ति देने से गुदा विदीर्ण
होजातीहै ॥ अत्यन्त तीक्ष्ण होने पर विदाह
भी होता है ॥ इस तरह गुदा के विदीर्ण
और विदग्ध होने पर अनेक रंगका पित्त
स्त्रावित होता है, तथा बहुत वेग से स्त्राव
होने पर मूर्च्छा भी हो जाती है ।

इस रोग में सेमर के कच्चे टंठलों को
कूटकर उनको साथ बकरीका दूध सिद्ध
करै फिर इस में घृत मिला कर टंडा होने
पर वस्ति देवै ।

इसी तरह से बट आदि वृक्षोंके पत्तों का
कल्क अथवा जो और तिलका कल्क अथवा
सुवर्चला और पोई अथवा रक्त केनेर इन-
के साथ दूध ओटाकर घृत मिला कर टंडा
होने पर वस्ति देवै ।

गुदा में शीतल परिषेक, मधुर द्रव्यों का शीतल लेप तथा रक्तपित्तनाशक और अति-सार नाशक चिकित्सा इसमें करना चाहिये ।

अध्यायकाउपसंहार ।

भवतिचान्न ॥

इत्येताव्यापदः प्रोक्तावस्तेः साकृतिभेष-
जाः ॥ बुद्ध्याकात्स्न्येन नान्वस्तीन्निमुञ्ज-
न्नापराध्यति ॥ तीक्ष्णत्वं मूत्रविल्वदिलव-
णक्षारसर्पपैः ॥ मासकालं विधातव्यं क्षीराद्यै-
र्मर्दवं नथा ॥ आपादतलमूर्द्धस्थानदोषान्-
पञ्चाशये स्थितः ॥ वीर्येण वस्तिरादत्ते स्ख-
स्थोऽर्को भूरसानिव ॥ यद्वत्कुमुम्भसंभि-
थात्तोयाद्रागं हरेत्पटः ॥ तद्वद्द्रवीकृता-
त्कायान्निरुद्धो निर्हरेत्तमलान् ॥

अर्थ—ऊपर लिखी हुई रीतिके अनुसार वस्ति की व्यापत् उन के लक्षण और चिकित्सा वर्णन की गई है । इन सम्पूर्ण बातों को विचारकर वस्ति का प्रयोग करने से वैद्य अपराध का भागी नहीं होता है ॥

यदि योग्य समझा जाय तौ गोमूत्र, विल्व, मेनफल, लवण, क्षार और सरसों सिलाकर वस्ति तैय्य कर ली जाती है ॥ तथा दूध और घृतादिके मिलाने से वस्ति मृदु हो जाती है जैसे आकाश में स्थित सूर्य पृथ्वी के रस को खींच लेता है उसी तरह से मलाशयस्थ वस्ति अपने बोर्यसे पाँव के तलुए से लेकर मस्तक के तलुए तक के दोपों को खींच लेती है जैसे वस्त्र कसूम मिले हुए जल में से छलाई को खींच लेता है उसी तरह स्नेहनस्वेदनादिसे

द्रवकी हुई देहमें से निरूहणवस्ति दोपों को खींच लेती है ।

इति श्री भाषाटीका न्विताया अग्निवेश विरचिता यांचरक प्रतिसंस्कृतायां संहितायां सिद्धि-

स्थाने वस्ति व्यापादिका सिद्धिर्नाम

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

—+—

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातः प्रासृतयोगिकां सिद्धिं व्याख्या-
स्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ.... तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम प्रासृतयोगिका सिद्धि की व्याख्या करेंगे ॥

अथेमानसुकुमाराणां निरुहान् स्नेहान् मृदून् ॥ कर्मणा विप्लुतानां च वक्ष्यामि

प्रसृतैः पृथक् ॥

अर्थ.... अब हम सुकुमार और परिश्रम से थके हुए मनुष्यों के लिये जिस तरह मृदु निरूह और स्नेह का प्रयोग करना चाहिये उनके प्रसृत द्वारा अलग अलग प्रमाणों को कहेंगे ॥

क्षीरात् द्रौमसृतां कायैर्मधुतैलघृतात् त्रयः ॥
स्वेप्तेन मधितो वस्तिर्वातघ्नो बलवर्णकृत् ॥

अर्थ.... दो प्रसृत दूध और शहत, तेल तथा घी तीनों मिले हुए तीन प्रसृत, इन सबको मिलाकर रई से मथकर वस्ति देवे । इससे वात दूर हो जाती है तथा बल और वर्ण बढ़ते हैं ॥

एकैकः प्रसृतस्तैलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिपः ॥
विल्वादिमूलकायात्क्षौद्रौलत्थात्क्षौस
वातनुत् ॥

अर्थ—तेल, प्रसन्ना, शहत और घी
एक २ प्रसृत, विल्वादि पंचमूल का क्वाथ
दो प्रसृत और कुलधी का क्वाथ दो प्रसृत,
ये सब मिलाकर रई से मथकर वस्ति देंगे
तो वात दूर होजाती है ।

पञ्चमूलरसात्पञ्चद्वौतैलात्क्षौद्रसर्पिपोः
एकैकः प्रसृतौ वस्तिः स्नेहनीयोऽनिलापहः

अर्थ—पंचमूल का क्वाथ पांच प्रसृत,
तेल दो प्रसृत, शहत और घी एक एक
प्रसृत इनको मिलाकर वस्ति देनेसे स्नेहन
होता है और वादी दूर होजाती है ।

वीर्यवर्द्धननिरुह ।

सैन्धवार्धाक्षएकैकः क्षौद्रतैलपयोघृतान् ।
प्रसृतो ह्युपायौ च निरुहः शुक्रकृत् परम्

अर्थ—सैधानमक एक तोला, शहत,
तेल, दूध और घी एक २ प्रसृत, इसी
तरह हवुपा का क्वाथ एक प्रसृत । इन
को मिलाकर निरुहण वस्ति देनेसे वीर्य
की अत्यन्त वृद्धि होती है ।

पञ्चतिक्त निरुह वस्ति ॥

पटोलनिम्बभूनिम्बरास्नासप्तच्छदाम्भ
सः ॥ चत्वारः प्रसृता एको घृतात्सर्पप
कल्कितः । निरुहः पञ्चतिक्तोऽयं मोहा
भिप्यन्दकुप्यनुत् ॥

अर्थ—परवळ, नीमकी छाल, चिरायता,
रास्ना और सप्तच्छद इनका क्वाथ चार प्र-
सृत, घी एक प्रसृत तथा उचित प्रमाण से

सरसों का कल्क । इन सब को मिलाकर व-
स्तिका प्रयोग मोह, अभिप्यन्द और कुप
को दूर कर देता है ।

क्रिमिनाशक वस्ति ।

विडङ्गत्रिफलाशिथुफलमुस्तासुपणिजात्
कपायात्प्रसृताः पञ्चतैलादेको विमथ्यता
न् । विडङ्गपिप्पलीकल्कानिरुहः क्रिमि
नाशनः ॥

अर्थ—वायविडंग, त्रिफला, सहजने के
बीज, मोथा और मृषिकपर्णी इनका क्वाथ
पांच प्रसृत और तेल एक प्रसृत । इनमें
योग्य प्रमाणसे वायविडंग और पीपल का
कल्क डोलकर मथ डाले । इस निरुहण
वस्ति से क्रिमि दूर होजाते हैं ।

दृष्यवस्ति ॥

पयस्येक्षुस्थिरारास्नाविदारीक्षौद्रसर्पिपः
एकैकः प्रसृतौ वस्तिः कृष्णाकल्को घृत्पत्व
कृत् ।

अर्थ—क्षीरकाकोली, ईख, शालिपर्णी,
रास्ना, विदारीकन्द, शहत और घी, इन
मेंसे क्वाथके योग्यों का क्वाथ और रसके
योग्यों का रस एक एक प्रसृत लेकर पी-
पलका कल्क डालकर वस्ति दीजाय तो
अत्यन्त दृष्यता होती है ।

चत्वारस्तैलगोमूत्रदधिमण्डाम्लकाक्षिका
त् ॥ प्रसृताः सर्पपः कल्कैर्विदसङ्गानाह
भेदनः ॥

अर्थ....तेल, गोमूत्र, दधिमंड और अ-
म्लकाजी एक एक प्रसृत और सरसों का

कल्क इनकी वस्ति देनेसे विष्टाका विन्ध और आनाह दूर होजाते हैं ।

श्वदंष्ट्राश्मभिदेरण्डरसात्तैलात्सुरातथा ॥
प्रमृताः पञ्चद्व्यष्ट्याकौन्तीमागधिकासि
ता । कल्कोवस्तिःसमानाहेमूत्रकृच्छ्रेपरो
मतः ॥

अर्थ—गोखरू, पालान भेद और अरंड की जड़ इनका क्वाथ तीन प्रमृत, तेल एक प्रमृत, और सुरा एक प्रमृत इनमें मुलहठी, रेणुका, पीपल और मिर्चा इनका कल्क उचित प्रमाण से डालकर वस्ति देवै । यह वस्ति आनाह और मूत्रकृच्छ्रमें अत्यन्त उत्कृष्ट है एतेसलवणाःकोष्णानिरूहाःप्रमृतानव ॥

अर्थ....ये जो ऊपर नौ प्रकार की वस्ति कही गई हैं, इनमें संधानमक डालकर कुछ गरम कर लेनी चाहियें और फिर इनका प्रयोग करना चाहिये ॥

मृदुवस्तौजडीभूवेतीक्ष्णोऽन्यावस्तिरिष्य
ते ॥ तीक्ष्णैर्विकर्षितैःस्वादुप्रत्यास्थापन
मेवच ।

अर्थ....मृदुवस्ति जब निकाम होजाय तब तीक्ष्ण वस्ति देनी चाहियें, तथा तीक्ष्ण वस्तिके प्रयोगसे रोगीके विकर्षित होने पर मधुर द्रव्योंके द्वारा आस्थापन करना हित है ॥

वातोपमृष्टस्योष्णैःस्फुर्गुदादाहादयोयदि
द्राक्षाम्बुनात्रिष्टुक्कल्कंदद्यादोपानुलोम
नम् ॥ तद्विपित्तशकृद्वातान्हुत्वादाहादि
कान्जयेत् ॥

अर्थ—जो वातरोगी मनुष्य को तीक्ष्ण

वस्ति देने से गुदा में दाह आदि उपद्रव उत्पन्न हों तो दाख के क्वाथ के साथ नि-
सोधका कल्क पान करावे । इससे दोषों का अनुलोमन होताहै और पित्त, विष्टा और वायु दूर होकर दाहादि उपद्रव शान्त होजाते हैं ।

शुद्धश्चापिपिबेत्शीतांयवागूंशर्करायुताम् ।

अर्थ—इस तरह रोगी के शुद्ध होने पर उसे शीतल यवामू में शर्करा मिलाकर पान करावे ।

अथवातिविरिक्तःस्यात्क्षीणविट्कःसभ
क्षयेत् । मापयूपेणकुत्मापान्पिबेद्ध्ययवा
सुराम् ॥

अर्थ—अत्यन्त विरेचनसे जिसका वि-
ष्टा क्षीण होगयाहो उसे मापयूपके साथ कुत्माप का भोजन देवै अथवा दही वा सुरा का पान करावे ।

सामंभेदतिसार्यंतमतिशूलैररोचकी । स
तदाहपुपाकुण्ठनतदारुचंचाःपिबेत् ।

अर्थ—वस्ति देने से पीछे शूल, अरु-
चि और आमोतिसार हो तो हाऊवेर, कूठ, तगर, देवदारु और वच इनका चूर्ण पान करै ।

शकृद्वातममृक्पित्तकंवायोऽतिसार्यते ।
पक्वस्तत्रस्ववर्गीयैर्वस्तिःश्रेष्ठंभिपग्नितम्

अर्थ—वस्ति प्रयोग के पीछे विष्टा, अ-
धोवायु रक्त पित्त और कफ अत्यन्त नि-
कलता हो तो अतिसारनाशक द्रव्यों से सिद्ध कीहुई वस्तिका प्रयोग अत्यन्त हित करहै ॥

पण्णामेपांसिंसर्गात्तत्रिंशद्भेदाभवान्ति ॥
केवलैः सह पट्त्रिंशद्विधा तसोपद्रवानापि ।

अर्थ—आम, विष्टा, वायु, रक्त, पित्त और कफ इन दो दो के मिलने से पन्द्रह भेद होते हैं तथा केवल आम आदि छः और नौ उपद्रव जो आगे वर्णन किये जायगे इन सब के मिलने से तीस भेद होते हैं ।

नौ उपद्रव ॥

शूलप्रवाहिकाध्मानपरिकर्त्तारुचिज्वरान्
सत्पण्णोदाहमूर्च्छादीश्चैषां विद्यादुपद्रवान् ।

अर्थ—उपद्रव नौ प्रकारके होते हैं यथा—शूल, प्रवाहिका, अध्मान, परिकर्त्तिका अरुचि, ज्वर, तृष्णा, दाह और मूर्च्छा ॥ तत्राभेदवर्णनं कार्त्तव्यं व्यापाम्ललवणैर्भुतम् ॥ पाचनं शस्यते वास्तिरामे हि पित्तिष्विध्यते ॥

अर्थ—आमातिसारमें त्रिकुटा, खटाई और नमक के साथ वमन कराना उचित है ॥ अथवा पाचन देना भी हित है परन्तु आम में वस्ति देना अहित है ॥

वातघ्नग्राह्यमौषधैर्वस्तिः शकृतिशस्यते ।
स्वादूम्ललवणः शुस्तः स्नेहवस्ति समीरणे
रक्तेरक्तेन पित्ते स्रक् कपायः स्वादुः तित्तकैः

अर्थ....विष्टा के अतिसार में वातनाशक और संग्राही वर्गकी औषधें देवें । वातातिसार में स्वादु, अम्ल और लवण द्रव्यों की स्नेहवस्ति देवें । रक्तातिसार में वकरे आदि के रक्तकी वस्ति देवें । पित्तरक्त में कपाय, स्वादु और तित्त द्रव्यों की वस्ति देवें ॥ कफातिसार में कपाय, कटु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवें ॥

सार्धमाणकफेवस्तिः कपायकटुतिक्तकैः ।
शकृतावायुनाचामेतेन वर्चस्यथाऽनिले ॥
संसृष्टेऽन्तरपानस्यादुव्योपाम्ललवणैर्भुतम् ॥

अर्थ—आमविष्टा से युक्त अतिसारमें वा आमवायुसे संसृष्ट अतिसारमें वस्ति कमेसे पीछे त्रिकुटाका चूर्ण, कांजी और सेवानमक पान करावें ।

पित्तेनामं संसृजावापितयोरामेनवापुनः ॥
संसृष्टयोर्भवेत्पानं सव्योपस्वादुतिक्तकम्

अर्थ—पित्त और आमके संसर्ग युक्त अतिसार में अथवा रक्त और आम के संसर्ग युक्त अतिसारमें, पित्तरक्त आम के संसर्ग युक्त अतिसारमें त्रिकुटा, स्वादु और तिक्त द्रव्यों का सेवन करना चाहिये ।

तथामेकफसंसृष्टेकेषां व्योपातिक्तकम् ॥
आमेतनुकफेव्योपकपायलवणैर्भुतम् ॥

अर्थ—आमकफातिसारमें कपाय, त्रिकुटा और तिक्तद्रव्यों का सेवन करे । तथा आमसंसृष्ट-शल्यकफ में त्रिकुटा, कपाय और नमक का सेवन हित है ॥

वातेन विशिपित्ते वा विट्पित्तास्त्रैस्तथानिले ॥
मधुराम्लकपायः स्यात्संसृष्टे वस्ति रक्तमः ॥

अर्थ—वातसंसृष्ट विष्टातिसारमें अथवा वातपित्तातिसार में अथवा वातपित्तयुक्त विष्टातिसारमें वातयुक्त पित्तरक्तातिसारमें मधुर, अम्ल और कपाय द्रव्योंकी वस्ति देना हित है ।

शकृच्छोणितयोः पित्तशकृतोरक्तापित्तयोः ।
वस्तिरन्योन्यसंसर्गकपायस्वादुतिक्तकः ॥

अर्थ—विष्टा और रक्त अथवा विष्टा और
पित्त अथवा रक्त पित्त इनके अतिसारमें अ-
थवा तीनों के सान्निपातिक अतिसारमें कपाय
स्वादु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवै ।

कफेनविंशपित्तैवाकफेविट्पित्तशोणितैः ।
व्योपतिक्तकपायः स्यात्संसृष्टवस्तिरुत्तमः

अर्थ—कफविष्टातिसारमें या कफपित्ताति-
सार में तथा कफ, विष्टा, पित्त और रक्तके
अतिसार में त्रिकुटां, तिक्त और कपाय
द्रव्यों की वस्ति हित है ।

स्याद्वस्तिव्योपतिक्ताम्लः संसृष्टो वायुना
कफः ॥ मधुरव्योपतिक्तस्तुरककफविमू-
च्छिते ॥

अर्थ—वात कफातिसार में त्रिकुटा और
तिक्त अम्ल द्रव्यों की वस्ति हित है । तथा
कफ रक्तातिसारमें मधुर, त्रिकुटा और
तिक्त द्रव्यों की वस्ति उत्तम है ।

मास्तेकफसंसृष्टव्योपा म्ललवणो भवेत् ॥

वस्तिर्वातेन रक्ते तु कार्यः स्वाद्वम्लतिक्तकः

अर्थ—कफसंसृष्ट वातातिसारमें त्रिकुटा
अम्ल और लवण द्रव्योंकी वस्ति देवै ।

तथा वातसंसृष्ट रक्तातिसारमें स्वादु, अम्ल
और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देनी चाहिये ॥

त्रिचतुःपञ्चपड्याग्निवमेव विकल्पयेत् ॥

युक्तिश्चैपातिसारोक्ता सर्वरोगेष्वपि स्मृतः

अर्थ—इसीतरह से आम, विष्टा, वायु
पित्त, रक्त और कफ इन छः मलों के तीन
तीन, चार चार, पांच पांच और छः दोषों

के मिलने से वीस प्रकार के उपद्रव होते
हैं, यथा आमविष्टावात, आमविष्टापित्त, आम
विष्टारक्त, आमविष्टाकफ, विष्टावातपित्त,
विष्टावातरक्त, विष्टावातकफ, वातपित्तरक्त,
वातपित्त कफ और पित्तरक्त कफ । चार ३
दोष वाले यथा आमविष्टा वातपित्त, आम
विष्टावातरक्त, आमविष्टावात कफ, विष्टा
वातपित्तरक्त, विष्टावातपित्तकफ और वात
पित्तरक्तकफ ॥ पांच पांच दोष वाले यथा
आमविष्टावातपित्तरक्त, आमविष्टावातपित्त
कफ और विष्टावातपित्तरक्त कफ ॥ छःवाला
एक, यथा—आमविष्टावात पित्तरक्तकफ ॥
अतिसार में कही हुई यही युक्ति सब
रोगोंमें स्मरण रखनी चाहिये ॥

युगपत्पट्त्रसंघर्षांसंसर्गपाचनं भवेत् ॥
निरामाणां पञ्चानां वस्तिपाद्वसिकोमतः

अर्थ—आमविष्टावातपित्तरक्तकफ इन
छःओंके संसर्ग में स्वादु अम्ललवणकटु
तिक्त कपाय इन छःओंका एक साथ प्रयोग
करने से मलका पाक होता है तथा आमर-
हित अन्य पांच उपद्रवों के संसर्गमें छःओं
रसोंकी वस्ति हित है ।

उदुम्बरशलाद्निजम्बवाभ्रोदुम्बरत्वचः ।

शंखसर्जरसलाक्षाकर्मचपलांशिकम् ॥

पिप्पलैः सर्पपः प्रस्थं क्षीराद्विगुणितं पचेत्

अतीमारोपुसर्वेषु पेयमेतद्यथावलम्बम् ॥

अर्थ—सूखा हुआ गूलर, जामनकी छाल
आमकी छाल, गूलरकी छाल, शंखका चूर्ण,
रंछ, लाख और कदन अलग २ एक एक

पल लेकर पीसलेथै इस में. एक प्रस्थ धी और दो प्रस्थ दूध मिलाकर पकावै । इस को सब प्रकारके अतिसारोंमें बलके अनुसार पान कराना उचित है ।

कच्छुराधातकीविल्वसमंगारक्तशालिभिः
मसूराश्वत्थशुंगैश्चयवागूःस्याज्जलेनृतैः ॥

अर्थ—कैचके बीज, धायके फूल, बेलगिरी, लज्जादू, रक्तशाली, मसूर और पीपलके वृक्षकी डंठल इनके क्वाथ के साथ सिद्ध कर के यवागू पीने से अतिसार दूर हो जाता है वालोदुम्बरकद्वंगसमंगामुक्षपल्लवैः ।

मसूरधातकीपुष्पवलाभिश्चतथाभवेत् ॥

अर्थ—नेत्रवाला, गूलर, श्यानाक, लज्जादू, पाकडके पत्ते, मसूर, धाय के फूल, और खरैटी इनके क्वाथके साथ पूर्ववत् यवागू पान करै स्थिरादीनांवलादीनांश्क्ष्वादीनामथापि वा । काथेपुसमसूराणांयवागूःस्यात्पृथक्पृथक् ।

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूल, अथवा वलादि गणोक्त द्रव्य, अथवा श्क्ष्वादि गणके द्रव्योंके क्वाथके साथ मसूरकी यवागू पान करै कच्छुरामूलशाल्यादितण्डुलैरुपसाधिताः दधितकारनालाम्लक्ष्मीरैःपिष्टुरसेऽपिवा शीताःसशर्कराशौद्राःसर्वातीसारनाशनाः संसर्पिमरिचाजार्गमधुरालवणाःशिवाः ॥

अर्थ....कैचकी जड़के क्वाथ के साथ शालीतंडुलोंकी यवागू अथवा दही, तक्र, कांजी, जवाखार और ईखके साथ सिद्ध की हुई यवागूके ठंडा होने पर उसमें चीनी और शहत मिलाकर पान करनेसे सब प्रकार

के अतिसार दूर होजातेहैं । सब प्रकारकी यवागू में धी, काली मिरच, जीरा, मधुर द्रव्य और नमक ये मसाले भी डाल देने चाहिये ।

अध्यायकाउपसंहार ।

तत्र श्लोकाः ।

स्निग्धाम्ललवणमधुरानं वस्तिश्चमात्र
तेकोष्णः ॥ शीतंतिक्तकपायंमधुरंपित्तं
चरक्तेच । तिक्तोष्णकपायकटुश्लेष्मणि
संग्राहिवातनुच्छकृति ॥ पाचनमामेपा
नंपिच्छासृग्भस्तयोरक्ते । अतिसारात्प
त्युक्तंमिश्रद्वन्द्वादियोगेज्वपिच ॥ तत्रो

द्रेकविशेषादोपेप्पक्रमःकार्यः ।

अर्थ....वातमें स्निग्ध, अम्ल, लवण और मधुर औषध सेवन करनी चाहिये और वस्ति कुछ कुछ उष्ण होना चाहिये । पित्त और रक्तमें शीतल, तिक्त, कपाय और मधुर औषधों का सेवन हित है । कफमें तिक्त उष्ण, कपाय और कटु द्रव्य सेवन करने चाहिये । मलमें संग्राही और वातनाशक औषधों का सेवन हित है । आममें पाचन द्रव्योंका सेवन हित है । रक्तमें पिच्छा वस्ति और रक्त वस्तिका सेवन उत्तम है । इसी तरहसे द्वन्द्वजादि और सान्निपातिक अतिसार में भी समझना चाहिये । मिश्रित दोषोंमें जिस दोषकी अधिकता दीखे पड़े उसीके अनुसार चिकित्सा करना चाहिये ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

प्रासूतिकाःसर्वापत्क्रियानिरूहास्तथा
तिसाराहिताः ॥ रसकल्पघृतयवाग्वंश्चो
क्तागुरुणाममृतसिद्धाविति ।

अर्थ....इस प्रासृतिकासिद्धि अध्याय में स-
म्पूर्ण प्रासृतिक योग, जुदे २ उपद्रव, उनकी
जुदी २ चिकित्सा, अतिसार को दूर करनेवाली
भिन्न २ प्रकारकी निरुद्धण वस्ति, रसोंकी
कल्पना, घृत और यवागु वर्णन कियेगये हैं ॥

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशधिरचिता-

यां चरकप्रातिसंस्कृतायां संहितायां सिद्धि

स्थाने प्रासृतियोगिकासिद्धिर्नामा-

ष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

—x—

नवमोऽध्यायः ।

अथातः त्रिमर्माणां सिद्धिं व्याख्यास्याम

इति हस्माद् भगवान्त्रयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि
अब हम त्रिमर्माय सिद्धि की व्याख्या करेंगे
सप्तोत्तरमर्मशतं अस्मिन् शरीरे स्कन्धशाखा

श्रितमग्निवेश ! तेषामन्यतमपीडायां स
मधिकपीडा भवति चेतनानिवद्धवैशेष्यात्

अर्थ—हे अग्निवेश ! इस शरीरमें स्कन्ध
और शाखाओं में आश्रित एकसौसात मर्म
हैं । इन मर्मों में से किसी एकमें भी पीडा
होनेसे सम्पूर्ण शरीर में अत्यन्त व्याकुलता
उत्पन्न होती है क्योंकि मर्मस्थानमें चेतना
विशेषरूपसे निवद्ध है ॥

मर्मस्थानों में गुरुता ॥

तत्र शाखाश्रितेभ्यो मर्मभ्यः स्कन्धाश्रि-
तानि गरीयांसि शाखानां तदाश्रितत्वात् ॥

स्कन्धाश्रितेभ्योऽपि दृष्टिः शिरांसितन्मू-
लत्वाच्छरीरस्या ॥

अर्थ—इनमें से जो मर्म शाखाओं (हाथ

पावों में) आश्रित हैं उनसे स्कन्ध के मर्म
गुरुतर हैं ॥ (स्कन्धसिर और धड) क्योंकि
शाखा भी स्कन्ध के आश्रित हैं ॥ स्कन्धा-
श्रित मर्मोंमें भी अन्य मर्मोंकी अपेक्षा हृदय
वस्ति और शिर अत्यन्त गुरुतर हैं, क्योंकि
येही शरीरके मूल हैं ॥

तत्र हृदि दशचधमन्यः प्राणोदानमनोबुद्धि-
चेतनामहाभूतानि च नाभ्यामराइव प्रति-
ष्ठितानि ॥

अर्थ—जैसे नाभिमें अमरानाडी रहती
है, उसीतरह हृदयमें दस धमनियां रह-
ती हैं । प्राण, उदान, मन, बुद्धि और
चेतना ये भी हृदयमें रहती हैं ॥ शरीर
के अन्य अंगोंकी अपेक्षा हृदयमें पंचमहा-
भूत का स्थान भी अधिकतर है ॥

शिरसीन्द्रियाणि इन्द्रियप्राणवाहानि च
स्रोतांसि सूर्यमिव गभस्तयः संश्रितानि ॥

अर्थ—जिस तरह सूर्यमें सम्पूर्ण किरण
आश्रित हैं उसीतरह मस्तकमें सम्पूर्ण
इन्द्रियां और इन्द्रियोंके प्राणवाही स्रोत
आश्रित हैं ॥

वस्तिस्तु स्थूलगुदमुष्णक्षेवनीशुक्लमूत्रवाहि-
नीनां नालीनां मध्ये मूत्राधारो म्बुवाहानां
सर्वस्रोतसामुद्रधिरिवापगानां प्रतिष्ठिता
भवति बहुभिश्च तन्मूलैर्मर्मसंज्ञकैः स्रोतो-
भिर्गगनमिव दिनकरैर्व्याप्तमिदं शरीरम्

अर्थ—स्थूल अंत्र, अंडकोष, सीमन, शुक्लवा-
हिनी नाडी और मूत्रवाहिनी नाडियों के
बीच में वस्ति होती है । जैसे समुद्र सब
नदियों के बीच में रहता है इसतरह यह

वस्ति भी सम्पूर्ण जलवाही स्रोतोंकी मूत्रा-
धार है अर्थात् मूत्र यहीं आकर इकट्ठा
होता है ॥ जैसे आकाश सूर्यकी किरण
जालों से व्याप्त है, उसीतरह से यह सम्पूर्ण
शरीर भी तन्मूल मर्मसंज्ञक स्रोतोंके जाल
से व्याप्त है ॥

तेपात्रयाणामन्यतमस्यापिभेदादाश्वमे
दःस्पादाश्रयनाशादाश्रितस्यनाशःतदु-
परताचुघोरव्याधिप्रादुर्भावस्तस्मादेतानि
विशेषेणरक्ष्याणिवाह्याभिघाताद्वातादि

दोषेभ्यश्च ॥

अर्थ....उक्त तीनों मर्मों मेंसे किसी एक
मर्मका भेद होनेसे शीघ्रही शरीर का भेद
होजाताहै, क्योंकि आश्रय का नाश होनेसे
आश्रित का भी नाश होजाता है ॥ इन मर्म-
स्थानोंके उपघातसे अनेक घोर व्याधियाँ
उत्पन्न होजाती हैं, इसलिये इन मर्मस्थानों
की बाह्य अभिघात और आन्तरिक वाता-
दिदोषों से विशेषरक्षा करना चाहिये ॥

हृदयाभिघातके उपद्रव ।

तत्रहृद्यभिहेतकासश्वासवलयक्षयकंठशोष
कलोमाकर्षणजिह्वानिर्गममुखतालुशो
षापस्मारोन्मादप्रलापचित्तनाशादयःस्युः

अर्थ—इन मर्मों में से हृदय में चोट
लगने पर खांसी, श्वास, वलयकी क्षीणता,
कंठशोष, क्लोमाकर्षण, जिह्वाका बाहर निक-
लना, मुखशोष, तालुशोष, अपस्मार, उन्माद,
प्रलाप और संज्ञानाश ये उपद्रव होते हैं ॥

शिरमें चोट के उपद्रव ।

शिरस्यभिहेतमन्यास्तम्भादितचक्षुर्विभ्र

ममोहवेष्टनचेष्टानाशकासश्वासहनुग्रहम्
फगद्रदत्वानिमीलनगण्डस्पन्दनजृम्भण
लालास्रावस्वरहानिवदनजिह्मत्वादीनि
अर्थ—शिरमें चोट लगनेसे मन्यास्तम्भ,
अदित, नेत्रविभ्रम, मोह, अंगडाई, चेष्टानाश,
खांसी, श्वास, हनुग्रह, मूकता, गदगदता,
चक्षुनिमीलन (आंखों में झपकीआना)गण्ड,
स्पन्दन, जंभाई, लालास्राव, स्वरभंगता और
मुखका टेढ़ा पड़ जाना, ये उपद्रव होते हैं
वस्ति में चोटके उपद्रव ॥

वस्तौतुवातमूत्रवर्चोनिग्रहवक्षणेहहनव
स्तिशूलकुण्डलोदावर्तगुल्मवर्ध्मानिला
प्लीलोपस्तम्भनाभिकुक्षिगुदश्रोणिग्रहा-
दयः ।

अर्थ—वस्ति में चोट लगनेसे अघोत्रायु
मूत्र और विष्टा का विवन्ध, वक्षणशूल,
लिगशूल- वस्तिशूल, वात कुंडल, उदावर्त,
गुल्म, वातप्लीला, उपस्तम्भ, नाभिग्रह, कु-
क्षिग्रह, गुदग्रह, और श्रोणिग्रह, ये उपद्रव
होते हैं ॥

वाताद्युपसृष्टानांत्वेपांलिङ्गानिचिकित्सि
तेसक्रियाविधीन्युक्तानि । किन्त्वेतानि
विशेषतोऽनिलाद्राक्षायनिलोहिपित्तक-
फसमुदीरणेहेतु ॥ प्राणमूलञ्चसचवस्ति
साध्यतमः । तस्मान्नवस्तिसमंकिञ्चित्क-
र्ममर्मपरिपालनम् ॥

अर्थ—चिकित्सितस्थान में वातादि दोषों
से संसृष्ट इन मर्मस्थानों के उपद्रवों के
लक्षण और उनकी चिकित्सा विधिपूर्वक
वर्णन करदी गई है, किन्तु ये तीनों मर्म

वायु से अधिकतर रक्षा के योग्य है क्योंकि वायुही पित्तकफ के उदीर्ण करने का हेतु है । यह प्राणमूल वायु अन्य उपायों की अपेक्षा वस्तिकर्म से अत्यन्त साध्य होती है । इसलिये मर्मों की रक्षाके लिये वस्ति कर्म से अधिक और कोई उपाय नहीं है । तत्रपडास्थापनस्कन्धान्विमानेद्वौचानुवासनस्कन्धाविहचविहितान्वस्तीन्वुद्ध्या विचार्यमहामर्मपरिपालनार्थप्रयोजयेद्वा

तव्याधिचिकित्साञ्च ।

अर्थ— इन में से विमानस्थान में छः आस्थापन स्कन्ध और सिद्धिस्थान में दो अनुवासन स्कन्ध वर्णन किये गये हैं । इनका बुद्धि द्वारा अत्यन्त विचार करके महामर्मों की रक्षा के लिये इनका प्रयोग करना चाहिये । यदि इन मर्मों में वेदना होने लगे तो वातव्याधिके अनुसार चिकित्सा करना चाहिये ।

वातोपमृष्टहृच्चिकित्सा ।

भूयश्चहृषुपमृष्टेवातेहिगुचूर्णलवणानामन्यतमचूर्णसंयुक्तमातुल्यस्यरसेनवान्येनवास्नेनहृद्येनवापाययेतस्थिरादिपञ्चमूलरसःसर्शर्करःपानार्थविल्वादिपञ्चमूलरससिद्धाचयवाग्दृष्टेगविहितश्चकर्म
अर्थ— वात द्वारा हृदय के उपमृष्ट होने पर हिगुचूर्ण या और किसी प्रकारके नमक के साथ पेया बनाकर विजौरे का रस या और किसी खट्टे द्रव्य का रस डालकर पान करें । शाटिपर्णादि पंचमूलके क्वाथ में शर्करा डालकर पानकरे अथवा विल्वादि पंच-

मूल के काथ में सिद्धकी हुई यवागू पान करें । तथा हृदयरोग में कही हुई विकित्सा भी हित है ।

वातोपमृष्टशिरकीचिकित्सा ॥

मूर्ध्निनुवातोपमृष्टेऽभ्यङ्गस्वेदनोपनाहन स्नेहपाननस्तःकर्मावपीडधूमादीनि ।

अर्थ— वातोपमृष्ट शिर में अभ्यंग, स्वेदन, उपनाहन, स्नेहपान, नस्यकर्म, अवपीडन और धूमादिकर्म प्रशस्त हैं ॥

वातोपमृष्टवस्तिर्मेचिकित्सा ॥

वस्तौतुकुम्भीस्वेदोवर्तयश्च ॥ श्यामादिभिर्गोमूत्रसिद्धोनिरुहः ॥ विल्वादिभिः स्वरससिद्धःशरकाशेक्षुदर्भगोक्षुरकमूलभृतक्षीरैश्च ॥ त्रपुसैर्वास्त्रराश्वामीजयवान्दृढीकलिकतोनिरुहः ॥ पीतदारुकसिद्धतैलानुवासनम् । तैलकञ्चसर्पिर्विरेकार्थम् ॥

अर्थ— वातोपमृष्ट वस्ति में कुम्भीस्वेद और वर्तिप्रयोगप्रशस्त हैं । त्रिवृतादि दसद्रव्यों काक्वाथकरके गोमूत्र में मिलाकर निरुहण देना चाहिये । विल्वादि पंचमूल के क्वाथ के साथ सरकंडे की जड़, कुशाकी जड़, ईख की जड़ और गोखरूकी जड़ इन से सिद्ध किया हुआ दूध मिलाकर वस्ति का प्रयोग उत्तम है ॥ अथवा खीरा फकड़ी के बीज, वन भजवायन इनके काथ में ग्राहि वृद्धि का कल्क डालकर निरुह देय । सरलकाष्ठ डालकर सिद्ध किये हुए तेल की अनुवासन देय ॥ तथा विरेचन करानेके लिये तिलक डालकर सिद्ध किया हुआ घृत हित है ॥

शतावरीगोक्षुरकटुहृतीकण्टकारिकागुडची
पुनर्नवोशीरमधुकादिशारिवालोधूश्रेयसी
कुशकाशमूलकपायशीरचतुर्गुणवलाटुपर्प
भक्तखराश्योपकुञ्चिकावत्सकत्रपुपैर्वारु
बीजशितिमारकमधुकवचाशतपुष्पाश्मभे
दमदनफलकल्कसिद्धतैलमुचरवस्तिनि
रुहशुद्धस्निग्धस्विन्नस्यवास्तिशूलमूत्रवि-
कारहरइति ॥

अर्थ—सितावरी, गोखरू, वडी कटेरी, छोटी
कटेरी, गिलोय, सांठ, उशीर, मुलहठी,
निसोधकी जड़, अनन्तमूल, लोध, गजपी-
पल, कुशाकी जड़, कांसकी जड़, इन सब
द्रव्यों का काथ, क्वाथ से चौगुना दूध तथा
खैरटी, अडूसा, ऋपमक, वन अजवायन
कालाजीरा, इन्द्रजौ, खीराके बीज, ककडी
के बीज, शितिमारक, मुलहठी, वच, सोंफ
पापाण भेद और मेनफल इन द्रव्यों का
कक्क और तेल मिलाकर पाक करे। पीछे
रोगी को निरुहित, शुद्ध, स्निग्ध और
स्वेदित करके इस तेलकी उत्तर वास्ति देनी
चाहिये इस से वास्तिशूल और मूत्रविकार
दूर होजाते हैं ॥

मर्मप्रकरण का उपसंहार ।

भवतिचात्र ।

हृदिमूर्ध्निचवस्ताचैनुणांभाणाःप्रतिष्ठिताः
तस्मात्तेपांसदायुक्तःकुर्वीतपरिपालनम्॥

अर्थ—हृदय, मूर्द्धा और वस्ति में
मनुष्यों के प्राण रहते हैं। इस लिये युक्ति
पूर्वक इन मर्मों की रक्षा करनी चाहिये ।

आयातयर्जनंनित्यंस्वस्थवृत्तानुवर्त्तनम् ।

उत्पन्नार्त्तिविधातश्चमर्मणांपरिपालनम्॥

अर्थ—मर्मोंकी रक्षाके लिये नित्य-प्रति-
चोटसे वचना, स्वस्थवृत्ति का अनुसरण
करना और उत्पन्न रोगों का नष्ट करना
यें ही उपाय हैं ।

अत ऊर्ध्वविकारायेत्रिमर्मायेचिकित्सिते ।
नमोक्तामर्मजास्तेपांकांश्चिद्वक्ष्यामिसौप-
धान् ॥

अर्थ—जो जो मर्म संबंधी रोग त्रिमर्माय
चिकित्सिताभ्याय में वर्णन करने से रहगये
हैं अब उनका चिकित्सा सहित वर्णन
किया जाता है ॥

अपतन्त्रकके लक्षण ।

कुद्धःस्वैःकोपनैर्वायुःस्थनादूर्ध्वप्रपद्यते ।
पीडयन्हृदयंगत्वाशिरःशंसौचपीडयन्॥
नमयेच्चाक्षिपेच्चांगान्युच्छासंनिरुणादि-
च । उच्छसितिसचकृच्छ्रेणस्तब्धाक्षोऽ-
थनिमीलनः ॥ कपोतइवकूजंश्चनिःस-
त्तथोऽपतन्त्रकः॥

अर्थ—अपने उदीर्ण होने के कारणों से
वायु कुपित होकर अपने स्थान से ऊपर
को जाती है और हृदय में पहुँचकर हृदय
को अत्यन्त पीडित करती है, शिर और
कनपटी में अत्यन्त वेदना उपस्थित करती
है । अंगों को झुकादेती है और आक्षेपण
करती है, श्वास को रोक देती है अथवा
श्वास कठिनता से आता है । आँख स्तब्ध
होजाती है अथवा आँख झपकी, चली जाती
है । कंठ में क्यूतर की गुटरगूँके सदृश
शब्द होने लगता है । बेहोशी छा जाती
है, इसे ही अपतन्त्रक कहते हैं ।

अपतानक के लक्षण ।

वृष्टिस्तम्भ्यसंज्ञाञ्चदृत्वाकण्डेनकृजति
हृदिमुक्तेनरःस्वास्थ्यंयातिमोहंवृतेपुनः ।

वायुनादारुणंमाहुरेकेतदपतानकम् ॥

अर्थ—नेत्रों का स्तब्ध होना, बेहोशी होना, कण्ठ में कूजन होना, हृदय से वायु के दूर होने पर स्वस्थता होना, तथा वायुके फिर आवृत होने पर अस्वास्थ्य होना ये सब लक्षण दारुण अपतानक के हैं ।
श्वसनःकफवाताभ्यांरुद्धस्तस्यविमोचयेत् । तीक्ष्णैःप्रधमनैःसंज्ञान्तामुमुक्तामुचिन्दति ।

अर्थ—जिस मनुष्य का श्वास कफ और वात से रुक गया हो उस श्वास को तीक्ष्ण प्रधमन द्वारा निकालने का यत्न करे । श्वास के खुलने पर चेतनी होजाता है ।
परिचंशिथुबीजानिविडङ्गचफणिज्झकम्
एतानिसूक्ष्मचूर्णानिदद्याच्छीर्षविरेचनम्

अर्थ—कालीमिरच, सहजने के बीज, वायविडंग, फणिज्झक, इनको महीन पीसकर शीर्ष विरेचन देवै ।

तुम्बुरुण्यभयाहिंणुपौंकरंलवणत्रयम् ॥
यक्कवाथाम्युनापेयंहृत्पार्श्वपतन्त्रके ।

अर्थ—धनियां, हरड, हींग, पौहकरमूल, संधानमक, संचरनमक और विडनमक इन के चूर्ण को जीके काथ के साथ पान करने से हृदयशूल, पार्श्वशूल और अपतन्त्रक दूर होजाते हैं ॥

हिंम्वल्लवतसंभृण्ठींससौर्वर्चलदाडिमम्
पिबेद्वातं कफघ्नं च कर्महृद्रोगनुद्धितम् ॥

शोधनावस्तयस्तीक्ष्णाहितास्तस्यचकृ-
त्स्नशः । सौर्वर्चलाभयाव्योपैःसिद्धन्तु
स्यादृतंहितम् ॥

अर्थ—हींग, अमलवेद, सोंठ, संचलन मक और अनारका छिलका इनका चूर्ण पान करने से उक्त रोग दूर होजाते हैं, इन में वातकफनाशक और हृद्रोगनाशक क्रिया भी हित है । इन रोगों में शोधन-कर्त्ता तीक्ष्णवस्ति पूर्णरति से उपयोगी होती है । तथा संचलनमक हरड और त्रिकुटा इन के साथ सिद्ध किया हुआ घृत भी हित है ।

तन्दारोगकाहेतु ।

मधुरस्निग्धगुर्वम्लसेवनाच्चिन्तनात्प्र-
मात् ॥ शोकाद्व्याध्यनुपज्ञाच्चवायुनोदी-
रितःकफः ॥ यदासौसमदस्कन्धहृदयं
हृदयाथयान । समावृणोतिज्ञानादींस्त-
दातन्द्रोपजायते ॥

अर्थ....मधुर, स्निग्ध, भारी और खट्टे पदार्थों के अत्यन्त सेवन से, चिन्ता करने से परिश्रम से, शोक से, व्याधि के अनु-पग से वायु के कारण कफ उदरिणी होकर जब रोगी के हृदय को आवृत कर लेता है तब हृदय के आश्रयभूत ज्ञान आदि को आवृत करलेता है उस समय तन्द्रानामक रोग उत्पन्न होता है ।

तन्द्रा के लक्षण ॥

हृदयेव्याकुलीभावोवाक्चेष्टेन्द्रियगौरव-
म् । मनोबुद्ध्याप्रसादश्चतन्द्रायांलक्षणं
मतम् ॥

अर्थ....हृदय में व्याकुलता, याणी में भारापन, चेष्टा में भारापन और इन्द्रियों में भारापन, मन और बुद्धिकी अप्रसन्नता ये सब तन्द्रा के लक्षण हैं।

तन्द्रा में चिकित्साक्रम ॥

कफघ्नं तत्र कर्तव्यं शोधनं शमनानि च ॥

व्यायामो रक्तमोक्षश्च भोज्यञ्च कटुतिक्त कम् ॥

अर्थ—तन्द्रारोग में कफनाशक संशोधन तथा रोगों के दुर्बल होने पर संशमन क्रिया करनी चाहिये यदि यह तन्द्रा अवरादि रोगों से उत्पन्न न हुई हो तो व्यायाम, रक्तमोक्षण और कटु तिक्त द्रव्यों के साथ भोजन भी हित है ॥

वस्तिरोगों के भेद ॥

मूत्रैकसादंजठरं कुण्डलं सोत्सङ्गसंक्षयम् ॥

मूत्रातीतोऽनिलाष्टीला वातवस्त्युष्णमाश्रुतौ ॥ वातकुण्डलिकाग्रन्थिविह्वलातो वस्ति कुण्डलमात्रयोदशैते मूत्रस्य दोषास्तां लिङ्गतः शृणु ॥

अर्थ—मूत्रैकसाद, मूत्रजठर, मूत्रकुण्डल, मूत्रोत्सङ्ग, मूत्रसंक्षय, मूत्रातीत, वाताष्टीला, वात वस्ति, उष्णवायु, वातकुण्डलिका, ग्रन्थि, विह्वला वात और वस्ति कुण्डल। ये तेरह मूत्र के विकार हैं। अब इनके लक्षणों का वर्णन करते हैं ॥

मूत्रैकसाद के लक्षण ॥

पित्तकफद्वयं वापि वस्तौ संहन्यते यदा ॥

मास्तेन तदा मूत्रैरक्तपीतघ्नं मुजेत् ॥ स

दाहश्च तसाम्द्रवासर्पैर्बालक्षणैर्धुतम् ॥

मूत्रैकसादं तं विद्वान्पित्तश्लेष्महरं जयेत् ॥

अर्थ....पित्त वा कफ अथवा दोनों पित्त कफ जब वायुके कारण वस्ति में इकट्ठे हो जाते हैं तब छाट, पीछा और गाढ़ा पेशाव होने लगता है अथवा दाहयुक्त सफेद और गाढ़ा पेशाव होता है अथवा समस्त लक्षणों से युक्त पेशाव होता है ॥ इसे मूत्रैकसाद कहते हैं। इसमें पित्तकफनाशक क्रिया करनी चाहिये।

मूत्रजठरकी सहेतु चिकित्सा ॥

विभारणात्प्रतिहतं वातोदावर्तिनं यदा ॥

पूरयत्युदरं मूत्रं तदा तदनिमित्तं रू ॥ अ

पक्तिमूत्रविदुस्त्रैस्तन्मूत्रजठरं वेदेत् ॥ मूत्र

वैरेचनीं तत्र चिकित्सां संप्रयोजयेत् ॥ हि

गुद्विरुत्तरं चूर्णीत्रमर्मीयप्रकीर्तितम् ॥ हन्या

न्मृशोदरानाहं ध्मापितं गुदमेद्रयोः ॥

अर्थ—मूत्र के उपस्थित वेगको रोकने से मूत्र प्रतिहत होकर जब वायुके कारण उलटा लौटता है तब उदर को पूरण करके मूत्र वहां स्थित हो जाता है और बिना कारण ही वेदना होने लगती है ॥ फिर धीरे २ पाचन शक्ति कम हो जाती है और मूत्र तथा विष्टाका वियन्ध हो जाता है इसे मूत्रजठर कहते हैं ॥ इसमें मूत्र के विरेचन करने वाली चिकित्सा करनी चाहिये। तथा त्रिमर्मीय चिकित्सित अध्यायमें जो द्विरुत्तर हिगुचूर्ण वर्णन किया गया है वह भी हित है इसके प्रयोग से मूत्ररोग, उदर रोग, आनाह, अफरा तथा गुदा और लिङ्ग के अन्य रोग भी दूर हो जाते हैं ॥

ते हैं। इस से वास्ति और उपस्थ में बड़ी वेदना होता है।

वातकुण्डलिका के लक्षण।

गतिसङ्गादुदावृत्तःसमूत्रस्थानमार्गियोः ॥
मूत्रस्याविगुणोवायुर्भग्नव्याविद्धकुण्डली।
मूत्रंविहन्तिस्तम्भभङ्गगौरववेष्टनैः ॥
तत्रैस्त्वमूत्रविट्सङ्गैर्वातकुण्डलिकेतिसा।
अर्थ....वायु विगुण होकर मूत्राशय और मूत्र के मार्ग को रोक देता है, इससे मूत्र ऊपर को फिर चढ़ने लगता है। यह वायु भग्न और व्याविद्ध होकर चक्कर खाजाती है, इससे मूत्राघात उत्पन्न होता है। इस रोग में स्तम्भता, दृढ़ने की सी वेदना, भारा पन, ऐंठन, तीव्रशूल, मूत्रविवन्ध और पुरीष विवन्ध ये लक्षण होते हैं। इसे घातकुण्डलिका कहते हैं ॥

मूत्रग्रन्थि के लक्षण।

रक्तंवातकफाददुष्टं वस्तिद्वारे सुदारुणम् ॥
ग्रन्थिकुर्यात्सकृच्छ्रेण सृजेन्मूत्रं तदावृत्तम् ।
अश्रमरीसमशूलन्तं मूत्रग्रन्थिप्रचक्षते ।

अर्थ....वायु और कफ के कुपित होजाने से विगड़ा हुआ रुधिर वस्ति के द्वारपर एक दारुण गांठ उत्पन्न करता है ॥ इस गांठसे रुकजाने के कारण मूत्र बड़ी कठिनाई से होता है। इसमें पथरी के समान घोर वेदना होती है। इस रोगको मूत्रग्रन्थि कहते हैं ॥

विट्प्रविघात के लक्षण।

रुक्खदुर्बलयोर्वर्तितोदावृत्तं शकृद्यथा ॥

मूत्रस्रोतःप्रपयेत्विट्समृष्टतदानरः । वि

द्वगन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विद्विघातं विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—रुक्ख और दुर्बल मनुष्यके घात के प्रकोप से उल्टा फिरा हुआ विट् मूत्रवाही स्रोत पर आक्रमण करेला है। ऐसा होने से विट् मिला हुआ मूत्र कठिनता से निकलने लगता है और इस में विट् की सी दुर्गन्ध आती है ॥ इसरोग को विट्प्रविघात कहते हैं ॥

वास्तिकुण्डल के लक्षण।

दुताध्वलङ्घनायासैरभीघातात्मपीडना
तुल्यस्थानाद्वस्तिरुद्धसंस्थूलस्तिष्ठति
गर्भवत् ॥ शूलस्पन्दनदाहार्तोविट्कुण्डल
स्रवत्यपि । पीडितः संसृजेद्वारा संस्तम्भो
द्वेष्टनार्तिमान् । वस्ति कुण्डलमाहुस्तघोर
शस्त्रविपोषमम् ॥ पवनमवलमायोदुर्नि

वार्यमबुद्धिभिः ।

अर्थ—जल्दी चलनेसे, भ्रमण करने से, छलांग मारनेसे, परिश्रम करनेसे, चौट लगनेसे, प्रपीडनसे वस्ति अपने स्थानसे उलटी फिरकर गर्भ की तरह स्थूल होकर ठहर जाती है ॥ इस से वस्ति में शूल, स्पन्दन, दाह और वेदना होती है और मूत्र बूद २ टपककर निकलता है। वस्ति को हाथ से दबाने पर मूत्र की धारा निकलती है परन्तु निकलते समय संस्तम्भन, उद्वेष्टन और बड़ी घोर वेदना होती है। इस रोगको वस्ति कुण्डल कहते हैं, या शस्त्र और विट् के समान दारुण रोग है। इस रोग में प्रायः वात की प्रचलता

है । यह रोग निर्वृद्धि वैद्य से अच्छा नहीं होसका है ॥

तस्मिन्पित्तान्वितेदाहःशूलमूत्रविवर्णता।

श्लेष्मणागौरवंशोफःस्निग्धमूत्रघनंसितम्

अर्थ—इन रोगोंमें यदि वायु पित्त-

न्वित होती है तौ दाह, शूल और मूत्र

की विवर्णता होती है ॥ यदि कफान्वित होती

है तो वस्ति में भारापन और सूजन, तथा

मूत्र में चिकनाई, गाढापन और सफेदाई

होती है ॥

श्लेष्मरुद्धाविलोचस्तिःपित्तोदीर्णो नसि-

द्ध्यति ॥ अविश्रान्ताविलःसाध्यो नचयः

कुण्डलीकृतः ।

अर्थ....जो वस्ति कफ से रुद्ध हो और

कुपित पित्त से युक्त हो वह असाध्य होती

है । परन्तु कुण्डलीकृत वस्ति कफद्वारा रुद्ध

न होनेपर भी असाध्य होती है ।

कुण्डलीभूतवस्ति के लक्षण ।

स्याद्वर्त्ताकुण्डलीभूतेतृह्मोहःश्वासपच

अर्थ—वस्ति के कुण्डलीभूत होनेपर तृपा,

मोह और श्वास ये उपद्रव होते हैं ॥

दोषाधिनयमपेक्ष्यतान्मूत्रकृच्छ्रहर्जयेत् ।

वस्तिपुत्तरवस्तिचसर्वेषामेवयोजयेत् ॥

अर्थ मूत्रतंत्रधी इन सम्पूर्ण रोगों में

जिस दोषकी अधिकता हो उसीके अनुसार

मूत्रकृच्छ्रको दूर करनेवाली चिकित्सा करनी

आविये । इन सब प्रकार के रोगों में उत्तर

वस्ति देना हित है

उत्तरवस्तिप्रार्थन ।

पुण्यनेत्रं तृहैतस्यान्तुस्ममौत्तरवस्तिकम् ।

जातीपुष्पस्यवृन्तेनसमंगोपुच्छसंस्थितम् ॥

रौप्यंवासर्पपच्छिद्राद्विकर्णदादशांगुलम् ।

अर्थ—उत्तरवस्ति का नल सुवर्ण का बना-

या जाता है इसका मुख चमेडीके फूल के

डंठल के समान सूक्ष्म होता है और यह

नल गौकी पूंछ के समान बीचमें मोटा

होता है, यदि सुवर्ण कान होसके तो चां-

दी के ही से काम चलजाता है । इसके मुख

का छिद्र सरसों के समान होता है इसकी

लम्बाई बारह अंगुल की होती है, तथा इन

में दो कर्णिका होती हैं ।

उत्तरवस्तिकीमात्राकाममाण ।

तेनाजवस्तिपुक्तेनस्नेहस्यार्धपलंनयेत् ।

यथावयोविशेषेणस्नेहमात्राधिकल्पया ।

अर्थ—दरकर की वस्ति से भी उत्तर

वस्ति बनाई जाती है । उत्तरवस्ति द्वारा

आधा पल स्नेह दिया जाता है । अथवा

अवस्था के अनुसार भी स्नेहकी मात्रा ग्यून

वा अधिक होसती है ॥

उत्तरवस्ति के देनेकी रीति ॥

स्नानस्यशुक्तभक्तस्पर्शेनपयसापिवा ॥

मृष्टविष्णुप्रवेगस्यपीठेनानुसमेमृष्टौ ॥

क्रजोगुस्तेपविष्टस्यकृष्टेमेदेष्टृनान्विते ॥

शलाक्यानिष्पगतिपयमानिदनाव्रजेत् ॥

नतःशोफःप्रमाणेनपुष्पनेत्रंमवेष्टयेत् । गुदं

मूत्रमार्गेणप्रणयेदनुसमेयनीम् ॥

अर्थ—रोगीको स्नान कराके मांसरस

वा दूध के साथ मांस का भोजन करावे ॥

फिर मज्जु का लग्न करके पुटने के

समान ऊँचे कोमल शासन पर बांधादिता

देवै परन्तु इसमें रोगीको किसी प्रकार हेश न होने पावैकिर चिकित्सक रोगीकोलिंगको दृष्ट और घृताभ्यक्त कर के उसके छिद्र में सलाई डालकर मार्ग को देखै कि मार्ग कहाँ तक ठीक है । यदि सलाई बिना रुके चली जाय तो लिंग के समान उस के भीतर वस्ति का नल प्रवेश करदे ॥ इसके प्रवेश करते समय बड़ीही सावधानी का काम है कहीं ऐसा नहो कि हाथ हिलजाय । प्रवेश करते समय इसका मुख लिंग और गुदाके बीच में जो सीवन होती है. उसकी ओर होना चाहिये ।

वस्तिर्कागतिर्का वर्णन ॥

हिंस्याद्ध्यतिगतं वस्तिदूनेस्नेहो न गच्छति ॥

अर्थ—अत्यन्त वेगसे प्रेरित की हुई वस्ति अनिष्ट संपादन करती है और अत्यन्त मन्द वेगसे प्रेरित वस्ति उचित स्थान पर नहीं पहुँच सकती है ।

सुखं प्रपीड्य निष्कम्पं निष्कर्षेत्नेत्रमेव च ॥

प्रत्यागते द्वितीयं तु तृतीयं च प्रदापयेत् ॥

अनागच्छन्नुपेक्ष्य स्तुरजनी व्युपितस्य च ॥

अर्थ—जिस तरह निष्कम्पता के साथ वस्ति नल प्रवेश किया गया है उसी तरह से पीडन करके निष्कम्पता के साथ निकाल लेना चाहिये । वस्ति के प्रत्यागत होने पर दूसरी और तीसरी वस्ति देवै । जो वस्ति प्रत्यागत न हुई हो तौ एक रात्रि तक उपेक्षा करनी उचित है ॥

प्रत्यागमनका उपाय ।

पिप्पली खल्वनागरधूमापामर्गसर्पदैः ।

वार्ताकुरसनिगुण्डीशम्पाकैः ससहाचरैः ।

मूत्राम्लपिष्टैः सगुदैर्वर्तिकृत्वा प्रवेशयेत् ।

अर्थ—पीपल, सैधानमक, धूमसा, आंगा के बीज, सरसों, बैंगनका रस, निगुण्डी, अमलतास का गूदा और सहचरी इनको गौमूत्र और कांजीके साथ पीसकर गुडे मिलाकर बत्ती बनाकर लिंगमें प्रवेश करने से वस्ति प्रत्यागमन करलेती है ॥

वत्तीका आकारादिवर्णन ।

अग्रेतु सर्पपाकारापश्चार्द्धमापसम्भिताम् ॥

नेत्रदीर्घा घृताभ्यक्तां सुकुमारामभंगुराम् ॥

नेत्रवनमूत्रनाड्यां तु पाप्यां वांगुष्ठसम्भिताम् ॥

अर्थ—वत्ती का मुख आगेकी ओर सरसों के समान और नीचे की आधे उरद के बराबर होना चाहिये । यह भी वस्ति नल के समान बारह अंगुल लम्बा बनाई जाती है । यह कोमल हो, टूटी हुई न हो और इसपर घी भी चुपड़ देना चाहिये । जो वत्ती मूत्रनाडी में होकर प्रविष्ट की जाती है उसका आकार वस्ति के नलके सदृश होता है और जो गुदामार्ग द्वारा प्रविष्ट की जाती है वह हाथके अंगुठके समान होती है ।

उत्तरवस्तिमें पथ्यादिवर्णन ॥

स्नेहप्रत्यागते ताभ्यां सानुवासनिको विधिः ।

परिहारश्च सव्यापत्तसम्पक्वदत्तस्य लक्षणः ।

अर्थ—स्नेहके प्रत्यागत होने पर वही पथ्यादि सेवन करने चाहिये जो अनुवासन में वर्णन किये गये हैं, उत्तर वस्तिमें किसी प्रकार का उपद्रव खड़ा होजाय तौ वही काम करना चाहिये जो अनुवासन संबंधी

उपद्रवोंमें वर्णन किया गया है । सम्यक् प्रदत्त उत्तर वस्ति के लक्षण सम्यक् प्रदत्त अनुवासन वस्ति के सदृश होते हैं ॥

स्त्रीको उत्तरवस्ति ॥

स्त्रीणां चात्तवकाले तु प्रतिकर्षतदाचरेत् ॥

गर्भाशनासुखं स्नेहं तदादत्ते ह्यपावृता ॥

गर्भयोनिस्तदाशीघ्रं जिते गृह्णाति मारुते ॥

अर्थ....जो स्त्री को उत्तरवस्ति देनी हो तो ऋतुकाल में देनी चाहिये क्योंकि उस समय योनिगर्भ ग्रहण के योग्य होती है और उसका मुख खुला रहता है इस लिये स्नेह को मुख-पूर्वक ग्रहण कर सकती है । उस समय उत्तर वस्ति के देने से बायु के दूर हो जाने के कारण गर्भ भी शीघ्र रह जाता है ।

वस्ति जे पुर्विकारे पुयोनि विभ्रंश जे पुच ॥

योनि शूल पुती त्रेपुयोनि व्यापत् स्वमृदरे ।

अमस्र वस्ति मूत्रे च विन्दुं विन्दुं स्रवत्यापि ॥

विदग्धादुत्तरवस्ति यथास्वोपपथ संस्कृतम् ॥

अर्थ—सब प्रकार के वस्ति विकार, योनि विभ्रंशजन्य विकार, तीव्र योनिशूल, योनिव्यापत्, रक्त प्रदर, मूत्ररोध, और मूत्र के विदुं विदुं टपकना । इन सब रोगों में स्त्रियों को भिन्न २ औषधियों से संस्कार की हुई उत्तर वस्ति देनी चाहिये ॥

स्त्रियों की वस्ति का प्रमाण ॥

पुष्पनेत्रप्रमाणन्तु प्रमदानां दशांगुलम् ॥

मूत्रस्रोतः परीणाहं मुहुरस्रोतोऽनुवाहि च ॥

गर्भमार्गं तु नारीणां विधेयं चतुरंगुलम् ।

द्व्यंगुलं मूत्रमार्गं तु बालायास्त्वेकमंगुलम् ॥

अर्थ—स्त्रियों की उत्तरवस्ति का नल दस

अंगुल का होता है । इसकी स्थूलता मूत्र के स्रोत की स्थूलता के समान बनवावे ॥

इसकी गति मूत्र के स्रोत के अनुरूप होती है ॥ नल का छिद्र भगकी बराबर होना चाहिये ॥ स्त्रियों के गर्भमार्ग में चार अंगुल वस्ति, मूत्रमार्ग में दो अंगुल और बालिका के एक अंगुल लम्बी वस्ति होनी चाहिये ॥

उत्तानायाः शयानायाः सम्यक् सङ्कोच्य सविथनी । अधास्याः प्रणयेन्नेत्रमनुवंश गतं मुखम् । द्विस्त्रिधनुरिति स्नेहान्दोरात्रे णयोजयेत् ॥ वस्ति वस्तौ प्रणीते च वस्ति-श्चान्तरा भवेत् ॥ त्रिरात्रं कर्म कुर्वीत स्नेहमात्रां विवर्द्धयेत् । अनेनैव विधानेन कर्मकृत्यात् पुनश्च द्यात् ॥

अर्थ....स्त्रियों को उत्तरवस्ति देने के समय चित्त शयन करा देवे, दोनों पांव इकट्ठे कर दे फिर योनि में पाँठ के बाँसे की ओर मुख करके वस्ति नल को प्रविष्ट करे । एक दिन रात में दो तीन या चार बार स्नेह का प्रयोग करे । इस तरह वस्ति के प्रायोगमन करने पर फिर वस्ति का प्रयोग करे । इस तरह तीन दिन करता रहे परन्तु वस्ति की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ा देनी चाहिये फिर तीन दिन ठहर कर इसी तरह से फिर वस्ति देनी चाहिये ॥

शंखक के सहित लक्षण ॥

अतः शिरोविकारानां काश्चिद्भेदः प्रवक्ष्यते ॥ रक्तपिचानिलादुष्णः शंखदेशे विमूर्च्छिताः । तन्निरुद्धाद्वारागं हिंसां कुर्वन्ति दारुणम् ॥ स शिरोविषवद्देगी निरुद्धा

शुगलंतथा । शंखकोऽग्निनिभःसिंघंवि
नाशयतिमानवम् ॥ जीवेत्यहंचेद्वैपज्यं
प्रत्याख्यायास्यकारयेत् । शिरोविरेक
सेकादिसर्पघातसर्पनुचयत् ॥

अर्थ—अब हम सिरके विकारों के कुछ
भेद वर्णन करते हैं । कनपटीमें रक्त पित्त
और वायु दूषित होकर उसजगह तीव्र वेदना
दाह, राग और शोक उत्पन्न करते हैं ।
यह शंखकनाम रोग विप के समान वेगवान्
होताहै और कंठको रोककर अग्निवत्
शीघ्रही मनुष्य को मार डालता है । यदि
रोगी तीन दिवस तक जीता रहै तब यह
कहकर कि रोगी असाध्यहै, चिकित्सा
करै । इस रोगमें शिरोविरेचन, परिपेक
और सब प्रकारकी विसर्पनाशक क्रिया करै ।

अर्द्धावभेदकके सहेतु लक्षण

रुक्षात्यध्यशनात्पूर्ववातावधपायमैथुनैः ।
वेगसन्धारणायासव्यायामैःकुपितोऽनि
लः । केवलःसकफोवाद्दृग्दृष्ट्वाशिरस
स्ततः ॥ मन्याभ्रशंखकर्णाक्षिललाटेपे
चवेदनाम् । शस्त्राशनिनिभांकुर्याच्छी
घ्रांसोऽर्द्धावभेदकः ॥ नगनंवाथवाश्रो
त्रमतिवृद्धोविनाशयेत्

अर्थ—रुक्षभोजन, अतिभोजन, अध्यशन,
पुरुषेया पवन, ओस, मैथुन, मलमूत्रादि
वेग धारण, परिश्रम और व्यायाम, इनसे
वायुः कुपित होकर स्वयं वा कफके साथ
मिलकर आधे मस्तकमें स्थित होजाती है,
और मन्या, भ्रकुटी, कनपटी कान और
नेत्र तथा आधे मस्तक तें शस्त्र वा वज्रके

समान तीव्र वेदना उत्पन्न करती है । यह
अर्द्धावभेदक रोग जब बहुत बढ़ जाताहै
तब नेत्र और कानोंको भी हानि पहुंचाताहै ।

अर्द्धावभेदककी चिकित्सा ॥

चतुःस्नेहोत्तमांमात्रांशिरःकायविरेचनम्
नाडीस्वेदोपनाहादिकुर्यादन्तेऽग्निनिकर्मच
जीर्णश्घृतदेयंयस्ति कर्मानुवासनम् ॥ प्र
तिश्यायेशिरोरोगेयचोद्दिष्टचिकित्सितम्

अर्थ....इस अर्द्धावभेदक रोगमें चार
प्रकार के स्नेह की उत्तम मात्राका पान
कराना चाहिये । नाडी स्वेद, उपनाह, अ-
ग्निनिकर्म, पुराना घृत और अनुवासन वस्ति
कर्म इस रोग में प्रशस्तहैं, तथा प्रतिश्याय
और शिरोरोगमें जो २ चिकित्साएं कही
गई हैं वेभी इस रोगमें करनी चाहिये ॥

सूर्यवर्च के सहेतुलक्षण ॥

सन्धारणाद्यजीर्णाद्यैर्मास्तिष्करक्तमारुतौ
दुष्टौदूषयतस्तच्चदुष्टताभ्यांविमूर्च्छितम्
सूर्योदयांशुसन्तापाद्दुःखविष्यन्दतेश
नैः ॥ ततोदिनशिरःशूलंदिनवृद्ध्याचव
र्द्धते । दिनक्षयेचतद्वस्त्यानामस्तिष्केसं
प्रशाम्यति ॥ सूर्यवर्तःसतत्रस्यात्सर्पि

रौत्तरभक्तिकम्

अर्थ—मल मूत्रादि वेगोंके संधारण और
अजीर्णादि कारणोंसे रक्त और वायु दूषित
होकर मस्तकको दूषित करदेतेहैं । इसतरह
रक्त वातसे दूषित मस्तकमें सूर्यकी किरणों
के तापसे उष्यो २ दिन चढ़ताहै मस्तक में
वेदना बढ़ती चलीजाती है, तथा दुपहर
पाँछे उष्यो २ दिन घटता है वेदना भी

घटती चली जाती है ॥ इस रोग को सूर्या
वर्च कहते हैं, इसमें भोजन के पीछे घृतपान
करना हित है ॥

सूर्यावर्चमें उपाय ॥

शिरःकायविरैकौचमूर्ध्नाचस्नेहधारणम् ।

जांगलैरुपनाहश्चघृतक्षीरैश्चसेचनम् ॥

वाहीतत्तिरिलावादिशृतक्षीरोत्थितं घृतम्
नावनं जीवनीयाष्टगुणक्षीरोपसाधितम् ॥

अर्थ—इस रोग में शिरो विरेचन, काय
विरेचन, मस्तकमें तैल धारण, जांगल मां-
सका उपनाह, तथा घृत और दुग्ध से से-
चन करना हित है । मोर, तातर, लवा
आदि जांगल पक्षियोंके मांस डालकर औ-
टाये हुए दूध का घी, जीवनीय गणोक्त द्र-
व्योंका कल्क और अष्टगुना दूध मिलाकर
पाक करै । इस घृतकीनस्य लेने से यह रोग
जाता रहता है ।

अनन्तवात के लक्षण ॥

उपवासातिशोकातिरुक्षशीतारूपभोजनेः ।

दुष्टादोषास्त्रयीमन्यापश्चाद्घाटेतुवेदनाम् ।

तीव्रांकुर्वन्ति सा चाक्षिभूशंखेव्यवतिष्ठिते ।

स्यन्दनं गण्डपाश्वर्यस्य नेत्ररोगं हनुग्रहम् ॥

सोऽनन्तवातस्तंहन्यात् शिरोर्कावर्तनाशनैः ।

अर्थ—उपवास करना, अत्यन्त शोक
करना, अत्यन्त रुखा और शीतल भोजन
करना वा अत्यल्प भोजन करना । इन
बातोंसे तीनों दोष कुपित होकर मन्या के
पिछले भाग में अत्यन्त तीव्र वेदना उत्पन्न
करते हैं, और यह वेदना आंख भ्रुकुटी
और कनपटी में स्थित होकर गण्डस्थल

के इधर उधर स्पन्दन, नेत्ररोग और हनु-
ग्रह को उत्पन्न करता है । इस रोग को
अनन्तवात कहते हैं इसमें उदावर्तना-
शिनी क्रिया हित है ।

शिरःकम्प के लक्षण ।

वातोरुशादिभिः कुब्जः शिरःकम्पमुदीरयेत् ।

स्नेहस्वेदातिवातघ्नं शस्तं नस्यश्च तर्पणं

अर्थ—रुक्षादि सेवनसे कुब्ज हुई वात

शिरःकम्पको उत्पन्न करता है इसमें वात-
नाशक स्नेह, स्वेद तथा नस्य और तर्पण
हित है ॥

शिरोरोग में नस्यको प्रधानता

नस्यकर्मचकुर्वीत शिरोरोगेषु सूक्ष्मवित् ॥

द्वारां हि शिरसो नासातेन तद्वाप्यहन्ति तान्

अर्थ—सब प्रकार के शिरोरोगोंमें नस्य-
कर्म करना हित है क्योंकि नासिका सिर
का द्वार है, इस द्वारसे प्रेरित औषध मस्त-
क में पहुँचकर उसके सब रोगोंको नष्ट
कर देती है ॥

नस्यकर्मके भेद ।

नावनञ्चावपीडश्च ध्यापनं धूमएव च ॥

प्रतिमर्पश्च विज्ञेयं नस्यकर्म तु पञ्चधा ॥

अर्थ—नावन, अवपीड, ध्यापन, धूम
और प्रतिमर्प । ये पाँच नस्य के भेद हैं ।

नावनादि के लक्षण

स्नेहनः शोधनश्चैव द्विविधं नावनं स्मृतम् ।
शोधनः स्तम्भनश्च नस्यादवपीडो द्विधामतम् ।
चूर्णस्यादध्यापनं नाम देहघ्नो तो विशोध-
नम् ॥ विज्ञेयस्त्रिविधो धूमः प्रागुक्तः शमना

दिकः । प्रतिमर्षो भवेत्स्नेहो निर्दोष उभयार्थकृत् ॥

अर्थ—नादन के स्नेह और शोधन दो-भेद हैं । शोधन और स्तम्भन ये दो भेद अवपीडके हैं ध्मापन नस्य उसे कहते हैं कि इसका चूर्ण दो मुख के नलमें भर कर फूंक मार कर नाक में पहुंचाया जाता है इस से देह के सम्पूर्ण स्रोत शुद्ध हो जाते हैं । धूमके शमनादिक तीन भेदों का वर्णन पहिले हो चुका है । प्रतिमर्ष में स्नेहका प्रयोग होता है, यह संशोधन और संशमन दोनों काम करता है और निर्दोष भी है ॥

नस्य के कर्म ।

एवं तद्रेचनं कर्म तर्पणं शमनं त्रिधा ।

अर्थ—इसी तरह रेचन, तर्पण और शमन ये नस्य के तीन कर्म हैं ।

रेचन साध्यरोग ।

स्तम्भमुत्तिष्ठुरुत्वायाः श्लेष्मिका ये शिरोगहाः ॥ शिरसो रेचनं तेषु नस्तः कर्ममशस्यते ॥

अर्थ—मस्तक की स्तम्भता, सुति, भारापन तथा अन्य कफजन्य रोगोंमें रेचन कर्म हित है ॥

तर्पण साध्यरोग ।

ये च वातात्मकारोगाः शिरःकम्पादि तादृयाः ॥ शिरसस्तर्पणं तेषु नस्तः कर्ममशस्यते ॥

अर्थ—जो शिरःकम्प और अर्द्धित से आदि लेकर वातात्मक रोगोंमें उनमें तर्पण नस्य प्रधान है ।

शमन साध्यरोग ॥

रक्तपित्तादिदोषेषु शमनं न स्यामिष्यते ॥

अर्थ.... रक्तपित्तादि दोषों में शमन नस्य हितकारी होती है ॥

ध्मापनं धूमपानञ्च यथायोग्येषु शस्यते ॥ दोषादिकं समीक्ष्यैव भिषक् सम्पक्चकारयेत् ॥

अर्थ—दोषादिक की परीक्षा करके यथायोग्य ध्मापन और धूमपान का प्रयोग करना चाहिये ॥

विरेचनद्रव्य ।

फलादिभेषजं मोक्तं शिरसो वा द्विरेचनम् ॥

तच्चूर्णकल्पयेत्तत्र पचेत्स्नेहविरेचनम् ॥

अर्थ—पहिले जो शिरोविरेचन के लिये फलादि द्रव्य वर्णन किया गया है उन्हीं द्रव्यों के साथ स्नेह को सिद्ध करके शिरोविरेचन देना चाहिये

तर्पणद्रव्य ॥

यदुक्तं मधुरस्कन्धे भेषजं तेन तर्पणम् ॥

साधयित्वा भिषक् स्नेहं नस्तः कुर्याद्विधानवित् ॥

अर्थ—मधुरस्कन्ध में जिन द्रव्यों का वर्णन किया गया है उन द्रव्यों के साथ स्नेह सिद्ध करके तर्पण देवे ॥

तर्पणकी रीति ॥

माकसूयं मध्यसूयं वा प्राक्कृतावश्यं कस्यच उत्तानस्य शयानस्य शयने वा स्वात्तृते मुखं प्रलम्ब्य शिरसः किञ्चित् किञ्चित् पादोन्मत्स्य च ॥ दधान्नासापुटे स्नेहं तर्पणं बुद्धिमान् भिषक् ॥

अर्थ—प्रातःकाल वा मध्याह्न के समय

मलमूत्रादि आवश्यकीय कर्मोंके पीछे रोगी को सुखदाई शय्यापर आराम से सीधा शयन कराके सिर कुछ नीचा करा देवे और पाँवों को सुकडवा देवे ॥ इस तरह शयन कराके नासिका के छिद्र में स्नेहिक तर्पण भर देवे ।

अनवाकृशिरसोनस्यंनशिरःप्रातिपद्यते ।
अत्यवाकृशिरसोनस्यंमस्तुल्लङ्घेचक्षिप्यते॥

अर्थ....बिना नीचा सिर किये नस्य देने से वह सिर में नहीं पहुँचती है और अत्यन्त नीचा सिर करके देने से भेजेमें पहुँचजाती है

अतएवशयानस्यशुद्धयर्थस्वेदयेच्छिरः
संस्वेद्यनासासुन्नाम्यवामेनाङ्गुष्ठपर्वणा
हस्तेनदक्षिणेनाथकुर्पादुभयतः समम् ॥
प्रणाल्यापिचुनावपिनस्तःस्नेहंयथाविधि
कृतेचस्वेदयेद्भूयआकर्षेच्चपुनः पुनः॥ तं
स्नेहंश्लेष्मणासाकंतथास्नेहोनतिपठति।

अर्थ—इस लिये रोगी को शयन कराके मस्तक की शुद्धि के लिये प्रथम सिर को स्वेदित करे पीछे बाँये अंगूठे के पोरु से नासिकाके पुटोंको उठाकर दोनोंको समान भावमें करके नलके से या रुईके फोए से विधिपूर्वक नस्यकर्म करे । इस तरह नस्य कर्म करके फिर स्वेदन देवे । ऐसा करनेसे स्नेह कफके साथ बाहर निकल आवेगा मस्तक के भीतर न रह सकेगा ॥

स्वेदनोत्प्लोशितः श्लेष्मानस्तः कर्मण्यु
पस्थिते । भूयःस्नेहस्यशैत्येनगिरसि
स्त्यापयेत्ततः । श्रोत्रमन्यागलाघेपुदिका
रामस्तकल्पयेत्॥

अर्थ—मस्तक का कफस्वेदन से उच्छिष्ट होजाता है परन्तु नस्यकर्म के स्नेह की शीतलता से फिर जमजाताहै । इससे कान मन्या और कंठ आदि में विकार उत्पन्न होजाते हैं ॥

ततोऽनस्तःकृतेभूमं पिवेत्कफविनाशनम् ।
हितान्नभुङ्गन्निवातोष्णसेवास्यानिदते-

न्द्रियः ॥

अर्थ—तब नस्यकर्म करने के पीछे कफ-नाशक धूमपान करे, पथ्य अन्न का सेवन, निर्वात स्थान में वास और उष्णसेवन करे तथा जितेन्द्रियतासे रहे ।

प्रध्मापन विधि ।

विधिरेपोऽवर्षादस्यकार्यःप्रध्मापनस्यतु।
तत्पदंशुल्यानाड्याधमेच्चूर्णमुत्तेनतु ॥

अर्थ—यह ऊपर लिखा हुई विधि अव-
र्षाडनकी कही गई है । छःअंगुलकी नली में नस्य का चूर्ण भरकर ढूंक मारने से जो चूर्ण मस्तक में पहुँचाया जाता है वह प्रध्मापन नस्य है ।

शिरोविरेचन के पञ्चात्तरूप ।

विरिक्तशिरसंतूर्णपायपित्वाभ्युभोजये-
त् । लघुभिष्यविहृद्भक्षनिवातस्यमनन्द्रि-
तम् ॥

अर्थ....शिरोविरेचन के पीछे रोगी को गरम जल पान कराके तीनो दोषों से अभि-
रुद्ध लघुभोजन कराके निवात स्थान में बैठे परन्तु नींद न लेने देवे ।

विरिक्तशुद्धादोपस्यकोपनंनस्यमेवेने । स
दोषोविचरंस्तत्रकरोतिस्वान्गदान्बहन्॥

शमनसाध्यरोग ॥

रक्तपित्तादिदोषेषु शमनं न स्यामिष्यते ॥

अर्थ.... रक्तपित्तादि दोषों में शमन न स्या
हितकारी होती है ॥ध्मापनं धूमपानञ्च यथायोग्येषु शस्यते ॥
दोषादिकं समीक्ष्यैव भिषक्सम्पक्चकारयेत्अर्थ—दोषादिक की परीक्षा करके य-
थायोग्य ध्मापन और धूमपान का प्रयोग
करना चाहिये ॥

विरेचनद्रव्य ।

फलादिभेजं मोक्षं शिरसो यद्विरेचनम् ॥

तच्चूर्णकल्पयेत्तत्र पचेत्स्नेहविरेचनम् ॥

अर्थ—पहिले जो शिरोविरेचन के लिये
फलादि द्रव्य वर्णन-किये गये हैं उन्हीं द्रव्यों
के साथ स्नेह को सिद्ध करके शिरोविरेच-
न देना चाहिये

तर्पणद्रव्य ॥

यदुक्तं मधुरस्कन्धे भेजं तेन तर्पणम् ॥

साधयित्वा भिषक् स्नेहं नस्तः कुर्याद्विधा-
नवित् ॥अर्थ—मधुरस्कन्ध में जिन द्रव्यों का
वर्णन किया गया है उन द्रव्यों के साथ स्ने-
ह सिद्ध करके तर्पण देवे ॥

तर्पणकीरीति ॥

प्राक्सूर्ये मध्यसूर्ये वा प्राक्कृतावश्यकस्य च
उत्तानस्य शयानस्य शयने वा स्वास्तृते सुस्तम्
प्रलम्बशिरसः किञ्चित्किञ्चित्पादोन्नत-
स्य च ॥ दद्यान्नासापुटे स्नेहं तर्पणं बुद्धिमा-
ना भिषक् ।

अर्थ—प्रातःकाल वा मध्याह्न के समय

दिकः । प्रतिमर्षो भवेत्स्नेहो निर्दोष उभ

यायकृत् ॥

अर्थ—नाशन के स्नेह और शोधन दो-
भेद हैं । शोधन और स्तम्भन ये दो भेद
अवपीडके हैं ध्मापन नस्य उसे कहते हैं

कि इसका चूर्ण दो मुख के नलमें भर

कर फूंक मार कर नाक में पहुंचाया जा-

ता है इस से देह के सम्पूर्ण स्रोत शुद्ध हो

जाते हैं । धूमके शमनादिक तीन भेदों

का वर्णन पहिले हो चुका है । प्रतिमर्ष में स्ने-

हका प्रयोग होता है, यह संशोधन और

संशमन दोनों काम करता है और निर्दो-
ष भी है ॥

नस्य के कर्म ।

एवं तद्वेचनं कर्म तर्पणं शमनं त्रिधा ।

अर्थ—इसी तरह रेचन, तर्पण और श-
मन ये नस्य के तीन कर्म हैं ।

रेचन साध्यरोग ।

स्तम्भमुत्तिगुरुत्वाद्याः श्लैष्मिका ये शिरोग-
दाः ॥ शिरसो रेचनं ते पुनस्तः कर्मप्रश-
स्यते ॥अर्थ—मस्तक की स्तम्भता, मुत्ति, भारा-
पन तथा अन्य कफजन्य रोगों में रेचन
कर्म हित है ॥

तर्पणसाध्यरोग ।

ये च वातात्मकारोगाः शिरःकम्पादित्वाद्
यः ॥ शिरसस्तर्पणं ते पुनस्तः कर्मप्रशस्यतेअर्थ—जो शिरःकम्प और अर्दित से
आदि लेकर वातात्मक रोग है उनमें तर्पण
नस्य प्रशस्य है ।

मलमूत्रादि आवश्यकीय कर्मोंके पीछे रोगी को सुखदाई शय्यापर आराम से सीधा शयन कराके सिर कुछ नीचा करा देवै और पाँवों को सुकडवा देवै ॥ इस तरह शयन कराके नासिका के छिद्र में स्नेहिक तर्पण भर देवै ।

अनवाकृशिरसोनस्यंनशिरःप्रतिपद्यते ।
अत्यवाकृशिरसोनस्यंमस्तुल्लङ्घेचनिष्ठते॥

अर्थ.....विना नीचा सिर किये नस्य देने से वह सिर में नहीं पहुँचती है और अत्यन्त नीचा सिर करके देने से भेजेमें पहुँचजाती है अतएव शयानस्यशुद्धयर्थस्वेदयेच्छिरः संस्वेधनासामुन्नाम्यवामेनाङ्गुष्ठपर्वणा हस्तेनदक्षिणेनाथकुर्यादुभयतः समम् ॥

प्रणाल्यापिचुनावापिनस्तःस्नेहंयथाविधि कृतेचस्वेदयेद्भूयआकर्षेच्चपुनः पुनः॥ तं स्नेहंश्लेष्मणासाकंतथास्नेहोनतिष्ठति।

अर्थ—इस लिये रोगी को शयन कराके मस्तक की शुद्धि के लिये प्रथम सिर को स्वेदित करै पीछे बाँये अंगूठे के पोरुए से नासिकाके पुटोंको उठाकर दोनोंको समान भावमें करके नलके से वा रुईके फोए से विधिपूर्वक नस्यकर्म करै । इस तरह नस्य कर्म करके फिर स्वेदन देवै । ऐसा करनेसे स्नेह कफके साथ बाहर निकल आवेगा मस्तक के भीतर न रह सकेगा ॥

स्वेदनोत्क्लेशितः श्लेष्मानस्तः कर्मण्यु पस्थिते । भूयःस्नेहस्यशैत्येनशिरसि स्त्यायतेततः । श्रोत्रमन्यागलाद्येपुविका रायसकल्प्यते॥

अथ—मस्तक का कफस्वेदन से उच्छिष्ट होजाता है परन्तु नस्यकर्म के स्नेह की शीतलता से फिर जमजाता है । इससे कान मन्या और कंठ आदि में विकार उत्पन्न होजाते हैं ॥

ततो नस्तःकृतेधूमं पिवेत्कफविनाशनम् ।
हितान्नभुङ्गनिवातोष्णसेवीस्यान्निहते ।
न्द्रियः ॥

अर्थ—तब नस्यकर्म करने के पीछे कफनाशक धूमपान करै, पथ्य अन्न का सेवन, निर्वात स्थान में वास और उष्णसेवन करै तथा जितेन्द्रियतासे रहै ।

प्रध्मापन विधि ।

विधिरेपोऽवपीडस्यकार्यःप्रध्मापनस्यतु ।
तत्पटङ्गुल्यानाड्याधमेच्चूर्णमुत्वेनतु ॥

अर्थ—यह ऊपर लिखा हुई विधि अवपीडनकी कही गई है । छःअंगुलकी नली में नस्य का चूर्ण भरकर झुक मारने से जो चूर्ण मस्तक में पहुँचाया जाता है वह प्रध्मापन नस्य है ।

शिरोविरेचन के पञ्चात्कर्म ।

विरिक्तशिरसंतूष्णपाययित्वाभुभोजयेत् ।
तत्तुल्यविष्वविष्वचनिवातस्थमतन्द्रितम् ॥

अर्थ.....शिरोविरेचन के पीछे रोगी को गरम जल पान कराके तीनों दोषों से अवि-रुद्ध लघुभोजन कराके निवात स्थान में बैठावे परन्तु नींद न लेने देवै ।

विरिक्तशुद्धौदोषस्यकोपनंयस्यसेवते । स दोषोविचरंस्तत्रकरोतिस्वान्गदान्बहून्॥

वर्ण, हृष्य, तथा शरीर में कोमलता और चिकनाई ये सब शीघ्रही बढ़ते हैं ।

वस्तियोंकेगुण ॥

अनुवासनं निरुह्योत्तरवस्तिश्च सत्रिविधः ॥ शाखावातार्तानां सकृच्चित्तस्तन्व भग्नरुणानाम् । विट्सङ्गाध्माना रुचिपरिकृतादिपुचशस्तः ॥

अर्थ—अनुवासन, निरुहण और उत्तर में तीन प्रकार की वस्तियां होती हैं । वस्ति प्रयोग शाखागत वात, गात्रसंकोच, स्तम्भता, भग्नता, वेदना, मलविकण्ड, आध्मान अर्चि और परिकर्तिका आदि रोगों में हितकारी है ।

उष्णार्तानां शीतान् शीतार्तानां तथा सुखोष्णांश्च । तथोग्रैरपथयुक्तान् वस्तीन् सर्वत्र धिनि युज्यन्त ॥

अर्थ—उष्णतासे पीड़ित मनुष्यों को शीतल वस्ति और शीत से पीड़ितों को सुखोष्ण वस्ति हितकर है । उपयुक्त औषधियों से संस्कार की हुई वस्ति सर्वत्र देनी चाहिये ॥

वृंहणवस्तिके अयोग्यरोगी ।

वस्तीन् वृंहणीयान् दद्याद्वाधिपुविशोधनीमेपु । मेदस्विनो विशोध्यो यच्च नराः कुष्ठमेहार्ताः ॥

अर्थ—शोधन के योग्य व्यक्तियों में वृंहणवस्ति नहीं दी जाती है । जो मेदस्वी भग्न विरेचन के योग्य तथा कुष्ठरोगी और प्रमेही हैं उनको आस्थापन नहीं दी जाती है ।

संशोधनवस्तिके अयोग्यव्यक्तिः । नक्षीणक्षतदुर्बलमूर्च्छितकुशुष्कदेहानां

म् । युञ्ज्याद्विशोधनीयान् दोषनिबद्धाय चोयेच ॥

अर्थ—क्षीणरोगी, क्षतरोगी, दुर्बल, मूर्च्छाग्रस्त, कुश, शुष्क देहवालों को और जिन के दोष आयु से निबद्ध हैं उन को संशोधन वस्ति नहीं देनी चाहिये ॥

वाजीकरणेऽसृक्पित्तयोश्च मधुघृतपयोयुताः । सर्वेऽस्ताः सतैलमूत्रारनाललवणश्च कफवाते ॥ युञ्ज्याद्द्रव्याणि वस्तिष्वम्लमूत्रंपयः सुराकाथम् । अविरोधाद्वातूनां रसयोनित्वाच्च जलमुष्णम् ॥

अर्थ—वाजीकरण के योग्य रोगों में और रक्त पित्त में शहत, घी और दूध की वस्ति देनी चाहिये । और कफवात में तेल, कांजी और सेंधेनमक की वस्ति देनी चाहिये । वस्ति में कांजी, गोमूत्र, दूध, मदिरा और काथ ये सब मिलाने चाहिये परन्तु इन द्रव्यों में से वे द्रव्य देने चाहिये जो रोगी की धातु से आविष्ट हो ॥ तथा जल सम्पूर्ण द्रव्यों की योनि अर्थात् उत्पत्ति का कारण है इस से गरम करके जल देना चाहिये ॥

सुरदारुशताह्वलाकुष्ठमधुकपिपलीमधुस्नेहाः । ऊर्द्धानुलोमभागानि सर्पपाशफेरालवणम् ॥ आदापो वस्तीनामंतः प्रयोज्यानि ये पुयानि स्युः ॥

अर्थ—देवदारु, सोंफ, इलायची, कूठ, मुलहठी, पीपल, स्नेह, यमनकारक द्रव्य, विरेचनिक द्रव्य, सरसों, शर्करा और सेंधानमक इन सब द्रव्यों की घोटकर वस्ति

में डालना चाहिये परन्तु इस बातपर ध्या-
न रहे कि जिससमय जौनसी डालनीहो वही
डालनी चाहिये ॥

युक्तानिसङ्कपायैस्तदुत्तरतः प्रवक्ष्यन्ते ।
चिरजातकठिनबलिपुण्याधिपुतीक्ष्णान्वि
पर्ययेचमृदून । सप्रतिवापकपायान् युञ्ज
त्यनुवासननिरुहान् ।

अर्थ—अथ कपायोपयोगी वस्तिद्रव्यों
का वर्णन करते हैं । जोरोग बहुत पुराने
कठिन और बलवान् हैं उनमें तीक्ष्ण द्रव्यों
से युक्त और तीक्ष्ण कपायों से युक्त
अनुवासन वा निरुहण दें । और जो
रोग इनसे विपरीत है अर्थात् नये साधारण
और दुर्बल हैं उनमें मृदु द्रव्योंकी अनु-
वासन और निरुहण देनी चाहिये ॥

अर्द्धदलोकैरतः सिद्धान्नानान्याधिपुवर्ग
शः ॥ वस्तीन्वीर्यसमैर्भागैर्यथार्हानिह
तानशृणु ॥

अर्थ....भिन्न भिन्न व्याधियोंमें लाभकारी
सम्पूर्ण वस्तियां यथावीर्य और यथाभाग
आधे आधे श्लोकोंमें नीचे लिखी जाती हैं,
उन्हें ध्यानसे श्रवण करो ॥

वातनाशकप्रयोग ॥

वित्वाग्निमन्यदयोनाकाः काश्मर्यः पाट
लिस्तथा ॥ शालपर्णीपृश्निपर्णीवृहत्यौ
वर्षमानकः । यवाः कुलत्थाः कोलास्थि
स्थिराचेतित्रयेऽनिलो ॥ शस्यन्तेतच्चतुः
स्नेहाः पिशितस्यरसान्विताः ॥

अर्थ—(१) वित्वा, अरुन्ती, श्योनाक,
खमारी और पाटला, (२) शालपर्णी,

पृष्णिपर्णी, दोनों कटेरी और अरंडकी जड़
(६) जौ, कुलथी, बेरकी गुठली और शालि-
पर्णी । इन तीन वर्गों के भिन्न ५ कपायों
में चारों प्रकार के स्नेह और मांसरस डा-
लकर वस्ति देनेसे वातरोग शान्त हो जाते हैं ।

पित्तनाशक प्रयोग ।

नलवञ्जुलवानारशतपत्राणिशेवळम् ॥
मञ्जिष्ठाशारिवानन्तापयस्यामधुयष्टिका
चन्दनपद्मकोशीरन्तुद्वज्रपैच्छिकेफ्रयः ॥

ससर्कराक्षौद्रघृताः सक्षीरावस्तयोहिताः
अर्थ....[१] नरसल की जड़, जलवेत,

वेत, पद्मकमल, और शैवाल, [२] मजीठ,
सारिवा, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, और
मुलहठी, (३) रक्तचन्दन, पद्माक्ष, खस,
और पुन्नाग । इन तीन भिन्न भिन्न वर्गों
के कपाय चीनी, घी, शहत, और दूध के
साथ मिलाकर वस्तिद्वारा प्रयोग करने से
पित्तज रोगों को दूर करते हैं ॥

कफनाशकप्रयोग ।

अर्कस्तथैवचालार्कएकाष्टीलापुनर्नवा ॥
हरिद्रात्रिफलासुस्तंपीतदारुकुटघ्नम् ।
पिप्पल्यः चित्रकश्चेतित्रयस्तेऽप्येपरोगि
णाम् ॥ सक्षारक्षौद्रगोमूत्रानातिस्नेहा
न्विताहिताः ॥

अर्थ—[१] सफेद आक, लाल आक,
वक वृक्ष और सांड, [२] हल्दी, त्रिफला,
मोथा, दारुहल्दी, और केवटी मोथा,
[३] पीपल और चीते की जड़ । इन
तीन भिन्न २ वर्गों का कपाय जवा-
खार, शहत, गोमूत्र और थोड़े से स्नेह के

वर्ण, हर्ष, तथा शरीर में कोमलता और चिकनाई ये सब शीघ्र ही बढ़ते हैं ।

वस्तियोंकेगुण ॥

अनुवासननिरूहश्चोत्तरवस्तिश्चसत्रिविधः ॥ शाखावातार्तानांसकुञ्चितस्तब्ध भग्नरुणानाम् । विट्सङ्गाध्मानारुचिपरिकर्तृगादिपुचशस्तः ॥

अर्थ—अनुवासन, निरूहण और उत्तर ये तीन प्रकार की वस्तियां होती हैं । वस्ति प्रयोग शाखागत वात, गात्रसंकोच, स्तम्भता, भग्नता, वेदना, मलविवन्ध, आध्मान अरुचि और परिकर्तिका आदि रोगों में हितकारी है ।

उष्णार्तानांशीतानशीतार्तानांतथासुखोष्णांश्च । तयोग्यौपधयुक्तान्वस्तीन्सर्वत्रधिनियुज्यत ॥

अर्थ—उष्णतासे पीड़ित मनुष्योंकोशीतल वस्ति और शीत से पीड़ितों को सुखोष्ण वस्ति हितकर है । उपयुक्त औषधियों से संस्कार की हुई वस्ति सर्वत्र देनी चाहिये ॥

वृंहणवस्तिके अयोग्यरोगी ।

वस्तीन्वृंहणीयान्दद्याद्वाधिपुविशोधनीषेपु । मेदस्त्विनोविशोध्योचनराकुष्ठमेहार्ताः ॥

अर्थ—शोधन के योग्य व्यक्तियों में वृंहणवस्ति नहीं दी जाती है । जो मेदस्वी वगन विरेचन के योग्य तथा कुष्ठरोगी और प्रमेही हैं उनको आस्थापन नहीं दी जाती है ।

संशोधनवस्तिके अयोग्यव्यक्ति ।

नशीणस्तदुपलभ्यैच्छितकृशशुष्कदेहाना

म् । युञ्ज्याद्विशोधनीयान्दोषनिवन्दायुषोयेच ॥

अर्थ—क्षीणरोगी, क्षतरोगी, दुर्बल, मूर्च्छाप्रस्त, कृश, शुष्क देहवालों को और जिन के दोष आयु से निवृद्ध है उन को संशोधन वस्ति नहीं देनी चाहिये ॥

वाजीकरणेऽमृकपित्तयोधमधुघृतपयोयुताः । सर्वेशस्ताःसतैलमूत्रारनाललवणश्चकफवाते ॥ युञ्ज्याद्दृव्याणिवस्तिष्वम्लमूत्रंपयःसुराकाथम् । अविरोधाद्वातूनारसयोनित्राच्चजलमुष्णम् ॥

अर्थ—वाजीकरण के योग्य रोगों में और रक्त पित्त में शहत, घी और दूध की वस्ति देनी चाहिये । और कफवात में तेल, कांजी और सेधेनमक की वस्ति देनी चाहिये । वस्ति में कांजी, गोमूत्र, दूध, मदिरा और काथ ये सब मिलाने चाहिये परन्तु इन द्रव्यों में से वे द्रव्य देने चाहिये जो रोगी की धातु से आविर्बुद्ध हों ॥ तथा जल सम्पूर्ण द्रव्योंकी योनि अर्थात् उत्पत्ति का कारण है इस से गरम करके जल देना चाहिये ॥

सुरदारुशताह्लाकुकुष्ठमधुकपिप्पलीमधुस्नेहाः । ऊर्दानुलोमभागानि सर्पपाशैर्करालवणम् ॥ आदापोवस्तीनामृतप्रयोज्यानिपेषुयानिस्त्युः ॥

अर्थ—देवदारु, सोंफ, इलायची, कूठ, मुलहठी, पीपल, स्नेह, यमनकाक द्रव्य, वैरेचनिक द्रव्य, सरसों, शर्करा और तैल आनमक इन सब द्रव्यों को घोटकर वस्ति

में डालना चाहिये परन्तु इस बातपर ध्यान रहे कि जिससमय जौनसी डालनीहो वही डालनी चाहिये ॥

युक्तानिसहकपायैस्तदुत्तरतःप्रवक्ष्यन्ते ।
चिरजातकठिनबलिपुण्याधिपुतीक्ष्णान्वि
पर्ययेचमृदून । समतिवापकपायान्मुञ्च
त्यनुवासननिरूहान् ।

अर्थ—अब कपायोपयोगी वस्तिद्रव्यों को वर्णन करते हैं । जोरोग बहुत पुराने कठिन और बलवान् हैं उनमें तीक्ष्ण द्रव्यों से युक्त और तीक्ष्ण कपायों से युक्त अनुवासन या निरूहण दें। और जो रोग इनसे विपरीत है अर्थात् नये साधारण और दुर्बल हैं उनमें मृदु द्रव्योंकी अनुवासन और निरूहण देनी चाहिये ॥

अर्द्धदलोकैरतःसिद्धाग्नानाव्याधिपुवर्ग
शः ॥ वस्तीन्वीर्यसमर्भागैर्यथाहानिह
तान्शृणु ॥

अर्थ....भिन्न भिन्न व्याधियोंमें लाभकारी सम्पूर्ण वस्तियों यथावीर्य और यथाभाग आधे आधे श्लोक्षोंमें नीचे लिखी जाती हैं, उन्हें ध्यानसे श्रवण करो ॥

वातनाशकप्रयोग ॥

वित्वाग्निमन्थशोनाकाःफागमर्पःपाट
लिस्तथा ॥ शालपर्णीपृष्ठपर्वणीवृहत्पौ
पर्वमानकः । पद्माःकुलत्थाःकोलास्पि
स्फिराचेतित्रयैःनिलो ॥ शस्यन्तेसचतुः
स्नेहाःपिशितस्परसान्विताः ॥

अर्थ—(१)वित्त, अजनी, शोनाक, तिनारी और पाटला, (२)शालपर्णी,

पृष्णिपर्णी, दोनों कटेरी और अरंडकी जड़ (६)जौ, कुलथी, बेरकी गुठली और शालिपर्णी । इन तीन वर्गों के भिन्न ९ कपायों में चारों प्रकार के स्नेह और मांसरस डालकर वस्ति देनेसे वातरोग शान्त हो जाते हैं।

पित्तनाशक प्रयोग ।

नलवज्जुलवानेरशतपत्राणिशैबलम् ॥
मक्षिष्ठाशारिवानन्तापयस्यामधुयष्टिका
चन्दनंपद्मकोशोरिन्तुङ्गश्वपैच्छिकैत्रयः ॥

सशर्करासौद्रघृताःसक्षीरावस्तपोहिताः

अर्थ....[१]नरसल की जड़, जलयेत, वेत, पद्मकमल, और शैवाल, [२]मजीठ, सारिवा, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, और गुलहटी, (३) रक्तचन्दन, पद्माख, खस, और पुन्नाग । इन तीन भिन्न भिन्न वर्गों के कपाय चीनी, घी, शहत, और दूध के साथ मिलाकर वस्तिद्वारा प्रयोग करने से पित्तज रोगों को दूरकरते हैं ॥

कफनाशकप्रयोग ।

अर्कस्तथैवचालार्कएकाष्टीलापुनर्नवा ॥
हरिद्रात्रिकलामुस्तंपीतदासकुटशतम् ।
विप्लव्यःचित्रकथेतित्रयस्तेऽश्लेष्मरोगि
णाम् ॥ सक्षारसौद्रगोमूत्रानातिस्नेहा
न्विताहिताः ॥

अर्थ—[१] सफेद आक, ठाठ आक, बक वृक्ष और सांठ, [२] हलदी, त्रिकला, मोथा, दाहहलदी, और केवटी मोथा, [३] पीपल और चीते की जड़ । इन तीन भिन्न २ वर्गों का कपाय जवा-खार, शहत, गोमूत्र और धोडे से स्नेह के

साध मिलाकर वस्ति द्वारा प्रयोग करने से
कफरोग दूर होजाते हैं ॥

पक्वाशयशोधनप्रयोग ।

फलजीमूतकेश्वाकूधामार्गवकवत्सकाः ॥
श्यामाचन्निफलाचैवस्थिरादन्तीद्रवन्त्य
पिप्रकीर्याचोदकीर्याचनीलिनीक्षीरिणीं
तथा ॥ सप्तलाशंखिनीलोघ्रफलकाम्पि
ल्लकस्यच । चत्वारोमृशसिद्धास्तेपक्वा
शयविशोधनाः ॥

अर्थ—(१] मेनफल, जीमूत, कटुतु-
म्बी, तोरई और इन्द्रजौ, [२] श्यामा-
निसोथ, त्रिफला, दन्ती और द्रवन्ती, [३]
दोनों प्रकार के कंजा, नीलिनी और क्षी-
रिणी, (४] सातला, शंखिनी, लोघ, मे-
नफल और कवीला । इन चार भिन्न २
वर्ग के प्रयोग को गोमूत्र में सिद्ध करके
वस्ति द्वारा प्रयोग करने से पक्वाशय शुद्ध
होजाता है ।

शुक्रवर्द्धन प्रयोग ।

काकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गपर्णीशितावरी
विदारीमधुयष्ट्याह्वातृगाटकेशरुके ॥
आत्मगुप्ताफलमापाःसगोधूमायवास्तथा
जलजानूपजंमांसमिष्येतेशुक्रवर्धनाः ॥

अर्थ—[१] काकोली, क्षीरकाकोली
मुद्गपर्णी और शितावर (२) विदारीकन्द,
मुल्हठी, सिन्धुदा और कसेरू, [३]
कैच के बीज, उरद, गेहूँ और जौ, (४)
जांगल और आनूप मांस । ये चार प्रयोग

शुक्र को बढ़ाने वाले हैं ।

सांग्राहिक प्रयोग ।

जीवन्तीचाग्निमन्थश्चधातकीपुष्पवत्स
कौ । प्रग्रहःखादिरःकुष्ठंशमीपिण्डीतकोय
वाः ॥ प्रियंगूरक्तमूलीचतुष्णीस्वर्णमूषि-
का । वटाद्याः किंशुकलोघ्रमिति सांग्राहि
कामताः ॥

अर्थ—(१) जीवन्ती, अरनी, धायके
फूल और इन्द्रजौ, (२) अमलतास, खैर,
कूठ, शमी, मेनफल और - जौ, [३]
प्रियंगु, लज्जालु, ग्वारपाठा और स्वर्णयूषी
(४) वटादि क्षीर वृक्ष, किंशुक और
लोघ । ये चारों प्रयोग संग्राही हैं ॥

परिस्ताव में प्रयोग ।

परिस्तावेष्टृक्षीरसंष्टृक्षीरपुनर्नवम् । आ-
सुपर्णिकयावापितण्डुलीयकयुक्तया ॥

अर्थ—सफेद सांठ और लालसांठ डाल
कर ओटाया हुआ दूध अथवा मूषिकपर्णी
और चौलाई डालकर ओटाये हुए दूध की
वस्ति देने से परिस्ताव दूर होजाता है ।

दाहनाशक प्रयोग ।

कोलंकतककाण्डेक्षुदर्भकालेक्षुशालिभिः ।
दाहघ्नःसघृतक्षीरोद्वितीयश्चोत्पलादिभिः

अर्थ—वेरकी गुठली, निर्मलीफल, कांडे-
क्षु, दाम, ईखकी जड़, और शालि की जड़
और घी इन को दूध के साथ ओटाकर वस्ति
द्वारा प्रयोग करने से दाह दूर होजाता है।
इसी तरह उत्पलादि गणोक्त द्रव्य और
दूध के सिद्ध साथ किये हुए घृत की वस्ति
दाहनाशक है ॥

कशुदारादकीनीपाविदुलैःक्षीरसाधितैः ॥

वस्तिःप्रदेयाभिपजाशीतःसमधुशर्करः ॥

अर्थ....सफेद कचनार, अडहरकी जड़, कंदर्प और वेत इन सम्पूर्ण द्रव्यों के साथ सिद्ध की हुई दूध की वस्ति को ठंडा करके शहत और चीनी डालकर प्रयोग करने से दाह दूर हो जाता है ।

परिकर्तिका में वस्ति ।

परिकर्तितथावृन्तैःश्रीपर्णाकोविदारजैः ॥
मुष्टिःशाल्मलिवृन्तानांक्षीरसिद्धोघृता
न्वितः ।

अर्थ....खंभारी और लाल कचनारके डंठलो को दूध और घी के साथ सिद्ध करै अथवा सेमर के डंठल एक पल और दूध इनके साथ घी को सिद्ध करके वस्ति देने से परिकर्तिका दूर होजाती है ॥

प्रवाहिकानाशक प्रयोग ॥

हितःप्रवाहणेतद्वृन्तैःशाल्मलिकस्यच ॥

अर्थ....प्रवाहिका में सेमर के डंठल और दूध के साथ सिद्ध घृतकी वस्ति भी हितकर है ॥

अतियोगनाशक प्रयोग ।

अश्वावरोहिकाःकाकनासारजकशेरुकैः
सिद्धाःक्षीरेऽतियोगेस्युःसौद्राक्षनघृतैर्यु-
ताः ॥ न्वप्रोपाद्यैश्चतुर्भिश्चतेनैवविधि-
नापरः ।

अर्थ—असगंध, कौआटोंटी और राजकसेरु इन के साथ सिद्ध दूधकी वस्ति में शहत, शर्करा और घी मिलाकर प्रयोग करने से अतियोग दूर होता है ।

इसी तरह से बड़, गुल्म, पीपल और पाकड़

इनके साथ सिद्ध दूधकी वस्ति भी अतियो-
गनाशक है ।

वृहतीक्षीरकाकोलीपृष्णिपर्णीशतावरी ॥

काश्मर्यवदरीदूर्वातयोक्षीरमियङ्गवः ।

जीवनीयैःशृतौक्षीरौद्वौघृताञ्जनसंयुतौ ॥

वस्तीप्रदेयाभिपजाशीतौमधुशर्करौ ।

अर्थ—[१] बड़ी कटेरी, क्षीरकाकोली, पृष्णिपर्णी, शितावर, [२] खंभारी, वेर की, गुठली, दूब, उक्षीर और मियंगु ।

इन दो वर्गों के साथ पृथक् २ दूध सिद्धकर के उस में घी, अंजन, शहत और चीनी मिलाकर वस्ति देने से अतियोग दूर हो-
जाता है ।

जीवशोणित में वस्ति ।

शशैणदसमार्जरमहिषाव्यजशोणितैः ॥

सद्यस्कैर्मृदितैर्वस्तिर्जीवादानमशस्यते ।

अर्थ—खरगोश, हरिण, मुर्गा, बिल्ली,

भैंस, भेड़ और बकरी इनका ताजा रुधिर

लेकर वस्ति द्वारा प्रयोग करनेसे अतियोग

से हुई जीवशोणित की क्षीणता दूर होजाती है

गौव्यजामहिषीक्षीरजीवनिययुतैस्तथा ॥

तेनैवविधिनावस्तिर्देयःसक्षौद्रशर्करः ।

अर्थ—गौ, भेड़, बकरी और भैंस इनका

दूध जीवनीय गणका कक, घी, शहत

और चीनी मिलाकर वस्ति देने से अतियोग

दूर होजाता है ॥

मधुकपधुकद्राक्षादूर्वाकाश्मर्यचन्दनैः ॥

शर्कराचन्दनद्राक्षामधुध्रात्रीफलोत्पलैः ।

अर्थ—रक्त के क्षीण होनेपर गहुआ,

मुल्हठी, दाण्ड, दूब, खंभारी और चन्दनकी

वस्ति । अथवा चीनी, रक्तचन्दन, दाख मुलहठी, आंवला और नीलकमलकी वस्ति हितकारी होती है ॥

रक्तपित्तप्रयोग ॥

रक्तपित्तप्रमेहेतुकपायःसोमयल्कजइति ॥

अर्थ—रक्तपित्त और प्रमेह में सफेद खैर के कवाथ की वस्ति हित होती है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ॥

त्रिकास्त्रयोऽनिलादीनांचतुष्पाश्चापरे
त्रयः ॥ पक्वाशयविशुद्धयैष्टुष्यासांग्राहि
कास्तथा ॥ परिस्त्रावेतथादाहपरिफर्तेप्र
वाहणे ॥ सान्त्वियोगौमत्तौद्वौजीवादा
नेतथात्रयः ॥ रक्तपित्तेद्वयमहएकत्रिशच
पञ्चच । मुलभालपौषधकेशवस्तयोगु-
णवत्तमाः ॥

अर्थ—इस वस्तिसिद्धि अध्यायमें वात-रोग में तीन, पित्तरोगमें तीन, कफरोग में तीन, पक्वाशय के शोधन में चार, शुक्-वर्द्धक तीन, संप्राहक तीन, परिस्त्राव में तीन, दाह में दो, परिकर्षिका में एक, प्र-वाहिकामें एक, अतियोग में पांच, जीवितर-क्त के क्षय में तीन, रक्तपित्त में एक और प्रमेह में एक इस तरह वस्ति के छत्तास प्रयोग वर्णन किये गये हैं ॥

अध्यायकाउपसंहार ॥

गुल्मातिसारोदावर्तस्तस्थसंकुचितादिपु
सर्वाङ्गैकाङ्गवेगेपुरोगेष्वेवाविषेपुच ॥ यथा
स्वमौषधैःसिद्धान्वस्तीन्द्रयाद्विचक्षणपूर्वो
क्तनविधानेनकृर्ष्यायोगान्पृथग्विधानिति

अर्थ—गुल्मरोग, अतीसार, उदावर्त, स्तब्धता, संकोच, सर्वाङ्गघात, एकाङ्गघात तथा इसी प्रकार के अन्यरोगों में भी उसी उसी रोग को नाश करनेवाली औषधियों के साथ सिद्ध की हुई वस्ति देना चाहिये ये वस्तियां विद्वान् वेद द्वारा पूर्वोक्त रीतिसे पृथक् २ फलपना करके दानासक्ती हैं । इतिश्रीभाषाटीकाश्रितायांअग्निवेशविरचिता-यांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धिः

स्थानेवस्तिसिद्धिर्नामदशमोऽ

ध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातःफलमात्रासिद्धिन्यास्यास्यामः ॥
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम फलमात्रा सिद्धि की व्याख्या करेंगे भगवन्तमुदारसत्त्वधीश्रुतिविज्ञानसम्पद मन्त्रिजम् । फलवस्तिवरत्वनिश्चयेसत्रि वादामुनयोऽप्युपागमन् ॥ भृगुकौशिक काप्यशौनकाःसपुलस्त्यासितगौतमाद-
यः ॥ कतमत्यवरंफलादिपुष्पतमास्था
पनयोजनास्त्विति ।

अर्थ—एक समय भृगु, कौशिक, काप्य, शौनक, पुलस्त्य, असित और गौतम आदि मुनियों में इसबात पर विवाद हुआ कि आस्थापन में कौन फल श्रेष्ठ है । इस शगडे को निवटाने के लिये ये सब मिलकर उदारसत्त्व, उदारधी, श्रुति विज्ञानसम्पन्न भगवान् अत्रिभन्दन के पास उपस्थित हुए

फल विषय में भिन्न २ मत ॥
 कफपित्तहरंपरफलेष्वयंजीमूतकमाहशौ-
 नकः। मृदुवीर्यतयाभिनेत्तितदित्तिचोवा
 चनृपोऽयवामकः। कटुतुम्बीफलमुत्तमं मतं
 वमनेदोषसमीरणञ्चतत् ॥ तदधृष्यमशैत्य
 तीक्ष्णताकटुरौक्षैरितिगौतमोब्रवीत् ॥
 कफपित्तनिवर्हणंपरं सतु धामार्गवमेष्वम-
 न्यतः। तदमन्यतवातलपुनर्यद्विशोऽग्लानिकरं
 वलापहमूकुटजं मशशंसचोत्तमं नवलघ्नं कफ-
 पित्तहारिच अतिविज्जलमूर्द्धभागिकपवन
 शोभिचकाप्य आहततुकृतवेधनामाश्ववातलं
 कफपित्तप्रवलं हरेदिति ॥ तदसाध्विति भद्र
 शौनकः। कटुचारोहि वलघ्नमिप्पीप ॥
 अर्थ—शौनक कहते थे कि कफपित्तनाशक हेने
 से जीमूतका फल उत्तम है। राजावामक
 का यह मत था कि जीमूत मृदुवीर्य और मलको
 भेदनकर्ता है, और कटुतुम्बी का फल वमन
 कराने में उत्तम है क्योंकि यह दोषों को
 शीघ्र ही उद्गीर्ण करता है। परन्तु गौतम
 की यह राय थी कि कटुतुम्बी उष्ण, तीक्ष्ण
 कटु और रुक्ष होती है इससे अधृष्य
 होती है और धामार्गव कफपित्त को नाश
 करनेवाली है इससे इस काम में धामार्गव
 श्रेष्ठ है। इसपर वद्विश थोड़े लठे कि
 धामार्गव घातकर्ता, ग्लानिकारक और वल-
 नाशक है, इससे तो इन्द्रजौ अच्छे हैं
 क्योंकि वे घल को दूर नहीं करते हैं और
 कफपित्तनाशक भी हैं। यह सुनकर काप्य
 बोले कि इन्द्रजौ अत्यन्त पिच्छिल, ऊर्ध्व-
 गामी और वातप्रकोपक है, किन्तु कृतवेधन

आशुकार, अवातल और प्रवल कफपित्त
 को दूर करनेवाली है ॥ भद्रशौनक बोले
 कि कृतवेधन अच्छी नहीं होती है, क्योंकि
 यह कडवी है और वलघ्न भी है ॥
 इतितद्वचनानि हेतुभिः सुविचित्राणि निश
 म्यतुष्टिमान् ॥ प्रशंसं सफले पुनिश्चयं पर
 मञ्चात्रिसुतोऽब्रवीदिदम् ॥

अर्थ—इन ऋषियों के सहेतु क भिन्न भिन्न
 वचनों को सुनकर अत्रिनन्दन फलों के
 विषय में अपना मत प्रकाश करने लगे।
 फलदोषगुणान्तरस्वतीप्रतिसर्वैरपि स-
 म्यगीरिता ॥ ननु किञ्चिददोषनिर्गुणं गु-
 णभूयस्त्वमवोचि चिन्त्यते ॥

अर्थ—आप सब लोगों ने इन फलों के
 गुण दोषों का वर्णन बहुत अच्छी रीति से
 किया है। परन्तु इनमें से कोई द्रव्य
 निर्दोष और निर्गुण नहीं है ॥ किन्तु
 प्रत्येक द्रव्य में स्थान की विशेषता से गुणों
 की अधिकता होती है।

विषयविशेष से फलों को उत्कृष्टत्व।
 इहकुप्टाहितागरागरीहितमिक्ष्वाकुतुमेहि
 नेमतम् ॥ कुटजस्य फलं हृदामये प्रवरं कोट
 फलञ्च पाण्डुपु। उदरेकृतवेधनं हितमदनं
 सर्वगदाविरोधितु ॥

अर्थ—जीमूत का फल कोट में हितकारी
 है, कटुतुम्बी प्रमेह में उत्तम है, इन्द्रजौ
 हृद्दोग में, कोटफल पाण्डुरोग में और कृत-
 वेधन उदररोग में हितकारी है, तथा मेनफल
 सब प्रकार के रोगों में अविरोधी है।

मदनफलकी उत्कृष्टता ।

मधुरंसकपार्यतिक्रंतदरुसंसकट्पणावि-
ज्जलम् ॥ कफपित्तदृढाशुकारिचाप्यन
पायंपवनानुलोमिच ॥ फलनामविशेषत
स्त्वत्तोलभतेऽन्येषु फलेषु सत्स्वपि ।

अर्थ—मेनफल मधुर, कुछ कसीला,
तिक्त, रूखापन से रहित, कटु, उष्ण और
पिच्छिल होता है, यह कफपित्तनाशक,
आशुकारी, उपद्रव रहित और घातानुलोमी
है, इस हेतु से बमनकारक अन्य फलों
के विद्यमान होनेपर भी मेनफल श्रेष्ठ होता है
गुरुणा च वचस्युदाहृतमुनिसंघैरिति पूजि-
तेततः । प्रणिपत्य मुद्रासमन्वितः स-

हितः शिष्यगणोऽनुपृष्टवान् ॥

अर्थ....गुरु के इस वचन को सुनकर
सब मुनियों ने पूजन किया और चरणों में
नमस्कार करके फिर पूछा ।

सर्वकर्मगुणकृद्गुरुणोक्तो वस्तिरुद्धमतम
ध्वेदिना ॥ नाभ्यधोगुदगतश्च शरीरा
त्सर्वतः कथमपोहतिदोषान् ॥

अर्थ....हे गुरु ! आपने पहिले कहा है
कि वस्ति सम्पूर्ण कर्मोंके करनेवाली और
सम्पूर्ण गुण करनेवाली है । परन्तु वस्ति
नाभिके नीचे गुदा में स्थिर होकर किस
तरह दोषोंका अपकर्षण करती है ।

तद्गुरुर्ब्रवीदिदं शरीरं तन्त्रयतेऽनिलः सद्ग
विधातात् ॥ केवल एव दोष सहितः स हि
वायुः प्रकोपमुपयाति ॥ तत्पवनं सपित्त
कफविदूकं शुद्धिकरोऽनुलोमयति वस्तिः ॥

सर्वशरीरगश्च गदसंघातका शनात्प्रशान्त
मुपयाति ॥

अर्थ—उक्त प्रश्नको सुनकर गुरु बोले
कि वायु शरीर के सम्पूर्ण द्रव्योंको इकट्ठे
रखती है ॥ और वायुही शरीरको धारण
करती है, अकेली वायु कुपित होजाती है
तथा अन्य दोषके साथ भी कुपित होती है
वस्ति पकाशय में जाकर पित्त कफ और
विष्टके साथ उस वायुको अनुलोमित क-
रती है । इस तरह शुद्ध हुई वायु सम्पूर्ण
शरीरमें गमन करके रोगों के समुद्र को
दूर करती हुई शान्त होजाती है । इसका
यह तात्पर्य है कि वायुका शरीर के सब
द्रव्योंसे संबंध है, इससे वायुके शुद्ध होने
पर शेष द्रव्य भी शुद्ध होजाते हैं । किन्तु
पकाशय वायुका प्रधान स्थान है और वस्ति
पकाशयकी वायुको मलके साथ शुद्ध करती
है । इस तरह वायुके शुद्ध होनेपर वह
सम्पूर्ण देह में विचरती हुई शरीर को शुद्ध
करके रोगों को शान्त कर देती है ॥

अथाभिगम्यार्थमखण्डितं यिया ।

गजोष्ट्रगोऽश्वव्यजवस्ति कर्म ॥

अपृच्छदेनं सच वस्ति मत्र वीत् ।

विधिश्च तस्या ह पुनः प्रचोदितः ॥

अर्थ—तत्पश्चात् शिष्योंने उक्त सब वर्णन
जानकर पूछा कि हे महाराज ! हाथी, ऊँट
गौ, घोड़ा, भेड़ और बकरी को वस्ति
किस तरह दीजाती है । यह सुनकर आत्रेय
उक्त पशुओं को वस्ति देनेकी विधि वर्णन
करने लगे ॥

अजात्रिके सौम्यगजोष्ट्रगोवाश्वयोर्व-
स्तिमुशन्ति माहिपम् ॥ अजात्रिकादन्त

सुवस्तिमुत्तरवदन्तिवस्तिविपरीतरूपम् ॥

अर्थ—वकरी, भेड, हाथी, ऊंट, गौ और घोड़े के लिये भैंसे की वस्तिपुट से वस्ति बनवानी चाहिये । वकरी, भेड आदि की वस्ति को सुवस्ति और उत्तरवस्ति को उत्तरसुवस्ति कहते हैं ॥

सुवस्तिकामप्राण ।

सुवस्तिमष्टादशपोडशांगुलंतयैवनेत्रश्चद
शांगुलंक्रमात् । गजोऽष्टगोऽश्वात्पञ्चवस्ति
संधौचतुर्थभागेचसकर्णिकंवदेत् ।

अर्थ—हाथी और ऊंट के लिये सुवस्ति के गज का प्रमाण अठारह अंगुल गौ और घोड़े के लिये सोलह अंगुल तथा भेड और वकरी के लिये दश अंगुलका होता है । इसकी कार्यका मनुष्यकी वस्तिसे चौगुनी होती है ॥

सुवस्तिकीमात्राकामप्राण ।

प्रस्थस्त्वजाव्योर्हिनिरूहमात्रागवादिषु
द्वित्रिगुणोयथावलम्बम् ॥ निरूहउष्ट्रस्यतथा
द्वकद्वयंगजस्यतृद्विस्त्वनुवासनेऽष्टमः ॥

अर्थ—वकरी और भेडकी निरूहण मात्रा एक प्रस्थ होती है । गौ और घोड़े की निरूहमात्रा बछ के अनुसार दो तीन प्रस्थकी होती है, ऊंटकी निरूहमात्रा दो आदक तथा हाथीकी मात्रा बछके अनुसार बढ़ा दी जाती है । इन सब जीवों को जो अनुवासन वस्ति देनी हो तौ निरूह से आठवां भाग काम में लाया जाता है ।

निरूहकासाधारणप्रयोग ।

कलिंगकुष्ठमधुकंसपिप्पलिवचाशताहाम
दनंरसाञ्जनम् । हितानिसवैपुण्डःससै-
न्धवोद्विपञ्चमूलंसविकल्पनात्विषम् ॥

(१६९)

अर्थ—इन्द्रजौ, कूठ, मुलहठी, पीपल, बच, सोंफ और मेनफल इनके क्वाथ में रसोत, गुड और सेंधानमक मिलाकर सब प्रकार के मनुष्यों को साधारण रीति से निरूहण दीजाती है । तथा दशमूल के क्वाथ की भी निरूहणवस्ति दीजाती है ।

हाथीकोनिरूहणप्रयोग ।

गजेऽधिकोऽश्वत्यवराश्वकर्णजाः ॥

सखादिराःप्रग्रहसालतालजाः ॥

अर्थ—विशेष कर के हाथी को पाँच बछ, सालकी निरूहण देवै, अधवा खैर, अमलतास साल और तालकी निरूहण वस्ति देनी चाहिये ॥

ऊंटका निरूहण प्रयोग ।

तथाचउष्ट्रेधवशिमुपाटली ।

मधूकसाराःसनिकुम्भचित्रकाः ॥

अर्थ—ऊंटके लिये धौ, सहजना, पाटला महुआ का सार, दन्ती और चीते का निरूह प्रयोग करे ।

गौ के लिये प्रयोग ॥

पलाशभूतीकसुरादरोहिणी ॥

कपायउक्तस्त्वाधिकांगवाहितः ॥

अर्थ—गौके लिये पलास, अजकामन, देवदारु और कुटकी इनके कपायकी निरूहण देवै घोड़े के लिये प्रयोग ॥

पलाशदन्तीसुरदारुकचृण ।

द्रवन्त्यउक्तास्तुरगस्यचाधिकाः ॥

अर्थ....घोड़े के लिये पलास, दन्ती, देवदारु, गन्धतृण और दन्तीकी निरूहण देवै ॥

खरोष्ट्र प्रयोग ॥

खरोष्ट्रयोःपीलकरीरखादिराः

शम्पाकविल्वादिगणस्य चच्छदाः

अर्थ....गंधे और ऊंट के लिये पीछ, करील, खैर, अथवा अनलतास और विल्वादि गण के पत्तों का प्रयोग करें ॥

भेड बकरीकेलियेप्रयोग ।

अजाविकानात्रिफलापरूपकं ।

कपित्थकर्कन्धुसविल्वकोलजम् ॥

अर्थ....भेड बकरियों के लिये त्रिफला और फालसा अथवा कैथ, वेर, विल्व और घडा वेर इनकी निरुद्धण दें ॥

आयग्निवेशः सततोन्तरान्तराहितंचपमच्छगुरुस्तदाहच ॥ सदातुराः श्रोत्रियराजसेवकास्तैथवेद्याः सहपण्यजीविभिः ॥

अर्थ—तदनन्तर आयग्निवेश ने फिर पूछा कि हे महाराज । श्रोत्रिय, राजसेवक, वेद्या और पण्यजीवी सदा रोगी क्यों रहते हैं, यह सुनकर गुरु बोले ॥

श्रोत्रियादिके रोगी रहने का कारण ॥

द्विजोहीशष्वाध्ययनव्रतान्हकक्रियादिभिर्देहहितंनचेष्टतेऽनृपोपसेवीनृपचित्रक्षणात्पराधुनोप्रादुर्दुचिन्तनाद्भयात् ॥

नृचित्रवर्तिन्युपचरत्स्वरापृजाविभूषानिरतापरांगनाः सदासनादर्थ्यनुवद्धवि

क्रयक्रयादिलोभादपिपण्यजीविनः ॥

अर्थ—ब्राह्मण सदा शिष्यों का पढ़ाने तथा व्रत और धार्मिक क्रिया में तत्पर रहते हैं, इससे शरीरकी भलाई की चेष्टा नहीं करते हैं । राजसेवक राजा के अनुकूल काम करने में तत्पर रहते हैं और पराधीनता, बहुचिन्ता और भय उनके जी में सदा बना रहता है इससे स्वस्थता-

का यत्न नहीं कर सकते हैं । वेद्या पर पुरुषों के चित्तको लुभाने में और पराई सेवाकरने में तत्पर रहती है और रात-दिन आमृषणादि से अपने देह को आभूषित करने में लीन रहती है इसीसे यह भी सदैव रोगिणी रहती है । दुकानदार एक स्थान पर बहुत बैठ रहते हैं, द्रव्योपाजन तथा क्रयविक्रय (खरीद फरोख्त) में लगे रहते हैं, एवं लोभ के कारण स्वास्थ्यपालन में असमर्थ होते हैं ।

अन्य सदारोगियों का वर्णन ।

सदैवतेह्यागतयेगनिग्रहंसमाचरन्तेचनकालभोजनम् । अकालनिर्हारविहारसेविनोभवन्तियेन्येऽपिसदातुराश्चेत्त ॥

अर्थ—ये लोग मलमूत्रके उपस्थित वेगों को रोक लिया करते हैं, ठीक समय पर भोजन नहीं करते हैं, कुसमय मलत्याग करते हैं और कुसमय डोलते फिरते हैं । इससे सदारोगी बने रहते हैं ॥ तथा और भी मनुष्य जो इसी तरह करते हैं वे भी सदैव रोगी बने रहते हैं ॥

समीरणवेगविधारणोद्धतं विवद्धसर्वाङ्गरुजाकरंभिषक् ॥ समीक्ष्यन्ते पांफलवर्तिमादितः सुकल्पितां स्नेहवर्ती प्रयोजयेत् ॥

अर्थ.... उपस्थित वेगों के रोकने से ऐसे मनुष्यों के वायु कुपित होजाती है, मल मूत्र का विवद्ध होजाता है और सम्पूर्ण अंग में वेदना होने लगती है । इसमें प्रथम ही अच्छी तरह तयार की हुई स्नेह युक्त फलवर्ती का प्रयोग करना चाहिये ।

निरुहणकापश्चात्कर्म ।

निरुहितंधनवरसेनभोजितं ।

निकुम्भतेलेनततोऽनुवासयेत् ॥

अर्थ—निरुहण के पीछे जांगल मांस-
रस के साथ भोजन कराके दन्तीके साथ
सिद्ध किये हुए तेलकी अनुवासन देवै ॥

बलाश्वगन्धामहविल्वचित्रकान्द्विपञ्च
मूलेकृतमालकोत्पले॥यवान्कुलत्थाश्च
पंचजलादेकरसःसपेप्यस्तुकलिङ्गकादि
भिः॥सतैलसर्पिर्गुडसैन्धवोदितःसदा
नराणांवलवर्द्धनःपरः ।

अर्थ—खरैटी, असगंध, बेल, चीता, दस-
मूत्र, अमलतास, नीलोकर, जौ, कुलधी,
इनको एक आढक जलमें पकाकर चौथाई
शेप रहने पर छानले, इस क्वाथ में इन्द्रय-
वादि दस द्रव्यों का कल्क तेल, घी, गुड़
और सेंधानमक मिलाकर पकावै । इसका
अनुवासन श्रोत्रिवादि रोगियों के बलका
वढ़ानेवाला है ॥

पुनर्नवरण्डनिकुम्भचित्रकान्
सदेवेदागवितृतानिदिग्धिकाम् ॥

महान्तिमूलानिचपञ्चतद्वयान्विषाच्य
पूत्रेदधिमस्तुसंयुते । सतैलसर्पिलवणैश्च
पञ्चभिर्विषार्चिष्ठंनवस्तिमथप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—सोठ, अरंड, दन्ती, चीता, देव-
दरु, निमोथ, कटेरी, गृहणचमूल इन को
दही के मोठ मिलेहुए गोमूत्र में पकावै ।
फिर इस क्वाथ में तेल, घी और पांचों
गमक मिलाकर बर्तन देवै ।

तथैवप्रसन्नमंभुजेनसाधितम्
फलेनाविलेपनंशुनाहयाथवा ॥

अर्थ—उक्तरीति से मुंढहटी, अथवा
बेलफल अथवा सोंफ के साथ सिद्ध किये
हुए तेलकी अनुवासन देवै ॥

वालकऔरवृद्धकोनिरुहण ।

सजीवनीयस्तुरसोनुवासनेनिरुहणेचाल
वणेशिशोर्हितः॥नचान्यदाश्वत्थलाभि-
वर्द्धनंनिरुहवस्तेःशिशुवृद्धयोःपरम् ॥

अर्थ....वालकों के लिये जीवनीय गण
के क्वाथ के साथ सिद्ध तेलकी अनुवासन
देनी चाहिये । वालकों को जो निरुहण
दाजाती है उस में नमक डाला नहीं जाता
है वालक और वृद्धों के लिये निरुहण के
अतिरिक्त शरीर के बलको शीघ्र बढ़ाने-
वाली और कोई औषध नहीं है ॥

अध्यायकारांक्षितवर्णन ।

तत्रश्लोकः ।

फलकर्मवस्तिरवरतत्त्वनिश्चयोवाज्याटी
नाम् । सततातुरांश्चदृष्टाःफलमात्रायां

• हितंचपाम् ॥

अर्थ—इस फलमात्रा सिद्धि नामक
अध्याय में वमनकारक औषधोंसे मेनफुल
को उत्कृष्टता, हाथी, घोड़े आदि जीवोंकी
वस्तियों का वर्णन, राजमेवक, पेरया आ-
दि परोपजीवी मनुष्यों के सदा रोगी रहने
का कारण और उनकी चिकित्सा विधि-
पूर्वक वर्णन की गई है ।

इतिश्रीभाषाटीकाश्रितायांअग्निवेशाविरचिता-
यां चरकप्रतिमंस्कृतयां संहितायांसिद्धि

स्थानकृतमात्रासिद्धिर्नैमाका

दशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

अधातुत्तरसिद्धिर्व्याख्यास्यामइतिहस्मा
ह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम उत्तर वस्ति सिद्धि की व्या-
ख्या करेंगे ।

संशोधनकेपीछेपेयादिविधि।

अथस्वत्वातुरन्ध्रैःसंशुद्धं वृषादिभिः ॥

दुर्बलकृशमल्पाग्निमुक्तसन्धानबन्धनम् ।

निर्हृतानिलविण्मूत्रकफपित्तकृशाशयम् ॥

शून्यदेहं पतीकारासाहिष्णुं परिपालयेत् ।

अर्थ—जो रोगी बमन विरेचनादि सं-
शोधन द्रव्योंके प्रयोगसे शुद्ध होकर दुर्बल
कृश, मन्दाग्नि, तथा मुक्तसन्धिवन्धन
[हाथ पांव आदि की सन्धियोंका दुर्बलता
के कारण ढीला होना] होगयाहो, तथा वायु
विष्टा, मूत्र, कफ और पित्तके निकलने से
उसका आशय कृश पड़गयाहो। एवं देहके
शून्य होजाने के कारण औषध को न सह
सकता हो उसको औषध न देकर केवल
परिपालन विधिका अवलम्बन करना चाहिये
यथैवतरुणपूर्णतैलपात्रंतथैवच ॥ गोपा
लाइवदण्डीगाःसर्वस्मादपचारतः ।

अर्थ—जैसे तैल से भरेहुए नवीन घड़ेकी
रक्षा यन्त्रपूर्वक कीजाती है और जिसतरह
बालिये छठ्ठी सहायता से गौओं की सब
प्रकारके अपचार से रक्षा करतेहैं, उसीतरह
वैद्य को उचित है कि रोगी की रक्षा करे ।

अग्निसंदीपनक्रम ।

अग्निसन्धुषणार्थमनुपूर्वपेयादिभिर्भिषक्
रसोत्तरैर्नैवचरेत्क्रमेणक्रमकोचिदः ।

अर्थ—जठराग्नि के बढ़ाने के निमित्त
प्रथम पेयादि का पालन करावै, पीछे मांस
रसका व्यवहार करना चाहिये ।

स्निग्धाम्लस्वादुहृद्यानिततोऽम्ललवणौर
सै ॥ स्वादुतिक्तौततोभूयःकपायकडुको
ततः ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रथम स्निग्ध, अम्लस्वादु
और हृद्य रस का सेवन कराके फिर खट्टे
और नमकीन रस देवै, उस से पीछे स्वादु
और तिक्तरस, फिर उससे पीछे कसीले
और कड़वे रसों का सेवन करावै ।

अन्योन्यप्रत्यनीकानारसानांस्निग्धरुक्ष
योः ॥ व्यत्यासादुपयोगेनमक्रातिगमये
द्भिषक् ।

अर्थ—इसतरह विपरीत क्रम से रोगी
को रसों का सेवन करावै अर्थात् किसी
दिन स्निग्ध रस देदवै और किसी दिन रु-
क्ष देवै। इस तरह क्रमसे उपचार करने पर
रोगी अपनी पूर्व प्रकृति पर आजायगा ।

प्रकृतिगतकेलक्षण ॥

सर्वक्षयोनिरासंगोरतिमुक्तःस्थिरेन्द्रियः
बलवान्सन्वसम्पन्नोविज्ञेयःप्रकृतिगतः

अर्थ—जब रोगी सब प्रकार के आहार
विहार करने में समर्थ होजाय, मलमूत्र का
विवन्ध जातारहै, विषयों में चित्त स्थिर
होने लगे, सब इन्द्रियां दृढ होकर अपने-
विषय में प्रवृत्त हो, शरीर में बल बढ़जाय
और मन सत्वयुक्त होजाय तब समक्षता
चाहिये कि मनुष्य अपनी पूर्वप्रकृति पर
आगया है ॥

अप्रकृतिगतकोवर्जितकर्म । :

एतांप्रकृतिमप्राप्तः सर्वदुर्ग्यानिवर्जयेत् ॥

महादोषकराण्यष्टाविमानितुविशेषतः ॥

उच्चैर्भाष्यैरथक्षोभमतिचक्रामणासने ।

अर्जाणांहितभोज्येचदिवास्वप्नसमैथुनम्

अर्थ—जबतक रोगी अपनी प्रकृति पर न आवै तबतक सब प्रकारके वर्जित द्रव्यों को सेवन करना ठीक नहीं है। विशेष कर के अत्यन्त उपद्रवकर्त्ता नीचे लिखे हुए आठ कर्मों का परित्याग कर देवै । यथा उच्च

भाषण [चित्लाकर घोलना] रथक्षोभ

(सवारी पर चढ़कर ऊँचे नीचे मार्गों पर

चलना), अतिचक्रमण [बहुत भ्रमण

करना] अत्यासन (एक स्थानपर बहुत

बैठना) अर्जाभोजन (पूर्वाह्न के बिना

पचे वा दुष्पाच्यभोजन), अहित भोजन

[अपच्य द्रव्य] दिवास्वप्न [दिनमें सोना]

और मैथुन [स्त्री सहवास] ।

वर्जोपचारसेवनके अवगुण ॥

तज्जादेहोऽर्थसर्वाधोमध्यपीडाभदोषजाः

इलेप्मजाः क्षयजाश्चैव व्याधयः स्युर्यथाक

मम् ॥

अर्थ—क्योंकि उच्चभाषण से देह के

ऊपर के भाग में रोग उत्पन्न होता है

रथक्षोभ से सर्वांगयातना, अतिचक्रमण से

नीचे के देहमें व्याधियाँ होती हैं, अत्यासन

से मध्य देह में रोग होते हैं, अर्जाभोजन

से आमदोषज व्याधियाँ होती हैं, अहित

भोजन से घातज व्याधियाँ, दिवास्वप्न से

कफजव्याधियाँ और मैथुन से क्षयज व्या-

धियाँ उत्पन्न होती हैं ।

तेषां विस्तरतोल्लिङ्गमेकैकस्य सभेदतः ॥

यथा च त्संभवक्षयामिसिद्धान्वस्तीश्च यानान् ।

अर्थ.... अब हम इन प्रत्येक व्याधियों के

जुदे २ भेद, लक्षण और चिकित्सा विस्तार

पूर्वक वर्णन करेंगे, तथा कुछ अनुभवकी

हुई यापनवस्तियों का वर्णन भी करेंगे ।

उच्चभाषणके उपद्रव ।

तत्रोच्चैर्भाष्यातिभाष्याभ्यां शिरस्तापः

कर्णशेखनिस्तोदस्रोतोरोधमुखतालुक-

ण्टशोपतैर्मिर्य पिपासाज्वरतमकहनुम-

न्याग्रहनिष्ठीवनोरः पार्श्वशूलस्वरभेदादि-

क्वाश्वासादयः स्युः ॥

अर्थ—उच्चभाषण वा अतिभाषण से

शिर में ताप, कान और कनपटी में सुई

छिदने की सी पीडा, स्रोतःसमूहका अवरोध

मुखशोष, तालुशोष, कण्ठशोष, अन्धकार

दर्शन, पिपासा, ज्वर, तमकधास, हनुमह,

मन्याग्रह, निष्ठीवन, वक्षःशूल, पार्श्वशूल,

स्वरभंग, हिचकी और श्वासादिकरोग उ-

त्पन्न होता है ॥

रथक्षोभके उपद्रव ॥

रथक्षोभात्सन्धिपर्वशैथिल्यहनुनासाकर्ण

शिरःशूलतोदवन्निविशोभाट्पान्त्रकृजना

ध्मापनहृदयेन्द्रियोपरोधस्फिकृपाश्वक्ष

णवृषणकटीपृष्ठवेदनासन्धिस्कन्धग्रीवाक्षौ

र्वल्याह्नाभितापपादशोकप्रस्वापहर्षणा

दयः ॥

अर्थ—रथक्षोभ से सन्धि और जोड़ों में

शैथिल्य, टोड़ी नाक कान और शिर में

शूल और सुई छिदने की सी वेदना, मन्दा-

प्रि, आटप, आंतों का कूजना, अफरा, हृदयोपरोध, इन्द्रियगणोपरोध, नितम्ब, पसली वंक्षण अंडकोप कमर और पीठ में वेदना, सन्धि कन्धे और ग्रीवा में दुर्बलता अंगाभिताप, पांशों पर सूजन, प्रस्वाप [शरीर का सुन्न होजाना] और रोमहर्षण ये उपद्रव होते हैं ।

अतिचक्रमण के उपद्रव ।

अतिचक्रमणात्पादजघोरुजानुवक्षणाश्रो-
णीपृष्ठशूलसकृधिसादनस्तोदपिण्डको
दृष्टनांगमर्दासाभितापशिराधमनीहर्षका
सश्यामाः ।

अर्थ—अतिचक्रमण से पांश, जांघ, ऊरू, जानु, वंक्षण, श्रोणी, पीठ में शूल होता है, सकृधियों में अवसन्नता और निस्तोद, पिण्ड लियों में ऐंठन, अंगमर्द, कंधों में ताप, शिरा और धमनियों में हर्षण, खांसी और श्वास आदि उपद्रव भी होते हैं ॥

अत्यासन के उपद्रव ।

अत्यासनाद्रथक्षोभजाःस्फिकृपाश्विवंक्ष
णवृषणकटीपृष्ठवेदनादयः ।

अर्थ....अत्यासन से वे सब उपद्रव होते हैं जो रथक्षोभ से होते हैं तथा नितम्ब पार्श्व, वंक्षण, अंडकोप, कमर और पीठ में भी वेदना होती है ॥

अजीर्ण भोजन के उपद्रव ।

अजीर्णाध्यशनाभ्यांमुखशोषाध्मानशूल
निस्तोदपिपासागात्रसादच्छर्द्यतीसारमू
च्छर्ज्वरप्रवाहणामविपादयः ॥

अर्थ....अजीर्ण भोजन और अध्यशन से मुखशोष, अध्मान, शूल, निस्तोद, मूर्च्छा

ज्वर, प्रवाहण और आमविष ये उपद्रव होते हैं ॥

अहित भोजन के उपद्रव ॥

विपमाहिताशनाभ्यामनन्नाभिलाषदौर्व
ल्यवैवर्ण्यकण्डूपामागात्रावसादयथादोष
प्रकोपजाश्चग्रहण्यशौविकारादयः ॥

अर्थ—विषम भोजन और अहित भोजन से अन्न में अराचि, देह में दुर्बलता, विवर्णता, खुजली, पामा, अंगावसाद और जैसा दोष प्रकुपित हो उसी के अनुसार ग्रहणी और अर्श रोग उत्पन्न होजाते हैं ।

दिवास्वप्न के उपद्रव ॥

दिवास्वप्नादरोचकाविपाकाग्निनाशस्तै
मित्यपाण्डुत्वकण्डूपामादाहच्छर्द्यगमर्दहृत्त
म्भजाड्यतन्द्रानिद्रामसंग्रन्थिजन्मदौर्व
ल्यरक्तमूत्राक्षितातालुलेपाःपिपासाच ॥

अर्थ—दिन में सोने से अराचि, अविपाक, मन्दाग्नि, स्तिमिता, पाण्डुत्व, खुजली, पामा, दाह, वमन, अंगमर्द, हृत्तम्भ, जडता, तन्द्रा, निद्रानाश, गांठ, होना, दुर्बलता, मूत्र और नेत्रों का लाल पडजाना, तालु में कफकी सी हिंसायट और पिपासा, ये उपद्रव होते हैं ।

मैथुन के उपद्रव ॥

व्यवायादाशुबलसादोरुसादयस्तिशो
गुदमेद्वंक्षणोरुजानुजंघापादशूलहृदय
स्पन्दननेत्रपीडाशैथिल्यशुक्रमार्गशोणि
तागमनकासश्वासशोणितप्ठीवितस्वरा
पसादकटीदौर्वैल्यैकांगमर्गारोगमुष्क
श्वपशुयातवर्चोमूत्रासंगशुक्रावसर्गजाड्य
चेपशुवाधिर्पिपादाः । उत्पात्यतइवगुद

स्ताड्यतइवमेद्रमवसीदतीवमनोवेपतेहृद-
येपीड्यन्तेसन्धयस्तमःप्रविश्यतइवचेत्येव
मेभिरष्टभिचारैरेतेप्रादुर्भवन्त्युपद्रवाः॥

अर्थ—स्त्रीगमन से घटहानि, ऊरुसाद,
वस्ति, प्रदेश, सिर, गुदा, मेदू, वक्षण, ऊरु, जानु,
जंघा, और दोनों पांखों में वेदना, हृदय का
धड़कना, नेत्रों में दर्द, अंग में शिथिलता, वीर्य
के मार्ग से रुधिरका निकालना, खांसी,
श्वास, कफके साथ रुधिर आना, स्वरभंग,
कमरमें दुर्बलता, एकांगरोग, सर्वांगरोग,
आँडकोप सूजन, अधोवायु विष्टा और
मूत्रका में विवन्ध, बिना इच्छा ही वीर्यपात
होना, जडता, कम्पन, बहिरापन, और वि
पाद आदि उपद्रव होते हैं । गुदामें फटने
कीसी पीड़ा होती है, मेदूमें चोट लगने
कीसी पीड़ा होती है, मन अवसन्न होजाता
है, हृदय में कम्पन होता है सन्धियों में
पीड़ा होती है, और आँखों के साम्हने अ-
धेरांसा छाजाता है ॥

इन आठ प्रकार के वर्जित कर्मोंके सेवन
करने से ऊपर लिखेहुए उपद्रव होते हैं ।

उच्चभाषणजन्यरोगों में उपाय ॥

तेषांसिद्धिरुच्चैर्भाष्यातिभाष्यजानाम-
भ्यंगस्वेदोपनाहधूमनस्योपरिभक्तस्नेहपा-
नरसक्तीरादिभिर्वातहरःसर्वोविधिर्मानश्च

अर्थ—उच्चभाषण और अतिभाषण
जन्यरोगों में अभ्यंग, स्वेद, उपनाह, धूम,
गन्ध, भोजन के पीछे धूपपान, दुग्धादिसे-
वन, सब प्रकारकी वातनाशकविधि और
मौनधारण करने चाहियें ॥

रथक्षोभजन्यरोगोंमेंउपद्रव ॥

रथक्षोभातिचक्रमणात्यासनजानांस्नेह-
स्वेदादिवातहरं कर्मसर्वनिदानवर्जम् ।

अर्थ—रथक्षोभ से उत्पन्न हुए रोगों में
तथा अतिचक्रमण और अत्यासन से हुए
रोगों में स्नेहन और स्वेदन से आदिलेकर
वातनाशक कर्म करने चाहियें तथा जिन
जिन कारणों से वे रोग उत्पन्न हुए हैं उन्हें
भी छोड़ देना चाहिये ।

अजीर्णाध्यशनजन्यरोगोंमेंउपायः॥

अजीर्णाध्यशनजानांनिरवशेषपचर्दनं
रूक्षस्वेदधूमपानलंघनीयपाचनीयदीप-
नीयौषधावधारणश्च ॥

अर्थ—दुग्धाद्य भोजन करने से तथा
अध्यशन से जो रोग होते हैं उनमें निः-
शेष वमन, रूक्षस्वेदन, धूमपान तथा लंघ-
नीय, पाचनीय और दीपनीय औषधोंका
प्रयोग करना चाहिये ।

विषमभोजनादिजन्यरोगोंमेंउपायः ।

विषमाप्यहताशनजानांयथास्वंदीपक्रियाः

अर्थ—विषम भोजन और अद्विजभोजन
करने से जो उपद्रव होते हैं उन में जैसा
दीप हो उसीको नाश करनेवाली चिकित्सा
करनी चाहिये ।

दिवास्वप्नजन्यरोगोंमेंउपायः ॥

दिवास्वप्नजानांधूमपानलंघनवमनविरे-
चनन्यायामरूक्षाशनानिद्रीपनीगौपवः
प्रयोगः । मर्कपेणान्मर्दनपरिपेचनादि

दृक्श्लेष्महरःसर्वोविधिः ॥

अर्थ—जो रोग दिन में सोने से उत्पन्न
हुए हैं उन में धूमपान, लंघन, वमन,

शिरोविरेचन, व्यायाम, रूक्षभोजन और अनिष्ट दीपनीय औषधों का प्रयोग हित है इस में छेदन, उन्मर्दन और परिपेचनादि क्रियाओं का करना भी आवश्यक है ॥

मैथुनजन्यरोगोंमें उपाय ।

मैथुनजानांजीवनीयसिद्धयोः क्षीरसर्पि-
पोरूपयोगः। तथा वातहराः स्वेदाभ्यंगोप-
नाहा वृष्याश्चाहाराः स्नेहास्नेहविधयो
यापनवस्तयोऽनुवासनश्च ॥ मूत्रवैकृत-
वस्तिशूले पुचोत्तरवस्तिः। विदारीगन्धा-
दिगणजीवनीयगणक्षीरससिद्धैर्तैलस्या
घापनाश्च वस्तयः सर्वकालं देयास्तानुपदे-
क्ष्यामः ॥

अर्थ—मैथुन से उत्पन्न हुए रोगों में जीवनीय गणोक्त द्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुए दूध और घीका प्रयोग करे। तथा वातको दूर करने वाले स्वेद, अभ्यंग, उपनाह, पुष्टिकारक आहार स्नेहनकर्म, स्नेहविधि, यापनवस्ति और अनुवासन वस्तिका प्रयोग भी हित है, मैथुन के कारण जो मूत्र में विकार हो वा वस्ति में शूल होतौ उत्तर वस्ति का प्रयोग करना उचित है । विदारीगन्धादि गण, जीवनीय गण और दूध के साथ सिद्ध किया हुआ तैल और यापनवस्ति सदाही हित है ॥

अत्र यहाँ से यापन वस्तियोंका वर्णन करेंगे
यापनवस्ति की विधि ॥

मुस्तोक्षीरपलाशवधरारनामाञ्जिष्ठाफटुरो-
हिणीप्रायमाणापुनर्नवाविभीतकगुडची-
स्थिरादिपञ्चमूलानिपालकानिखण्डशः-
सिंहान्यष्टौचमदनफलाणिमक्षाल्यजला

ढकेपरिक्वाभ्यपादशेषेरसः क्षीरद्विप्रस्थसं-
युक्तः पुनः गृतः क्षीरावशेषेरसः क्षीरद्विप्रस्थ
संयुक्तः पुनः पुनः शृतः क्षीरशेषः पादजांगल-
रसस्तुल्यमधुघृतः शतकुसुममधुकुटज-
फलरसाञ्जनप्रियंगुकल्कीकृतः ससैन्धवः
सुखोष्णवस्तिः शुक्रमांसबलजननः क्षतक्षी-
णकासगुल्मशूलविपमज्वरवर्ध्मकुण्डलो-
दावर्तकुक्षिशूलमूत्रकृच्छ्रासृग्रजोविसर्पप्र-
वाहिकाशिरोरुजाजानूरुर्जघावस्तिग्रहा-
श्मथुन्मादार्शः प्रमेहाध्मानरक्तपित्तश्लेष्म-
व्याधिहरः सद्योबलजननोरसाचनश्च ।

अर्थ.... मोथा, उसीर, खरैटी, अमलतास, रासना, मजीठ, कुटकी, त्रायमाणा, साठ, बहेडा, गिलोय, और शालिपर्ण्यादि पंच-
मूल इन सब द्रव्यों को एक २ पल लेंवै तथा आठ मेंनफल इन सब के टुकड़े २ फर के पानी से धोकर एक आढ़क जल में पकावै । जब चौथाई शेष रहजाय तब उसे छानकर फिर उस में दो प्रस्थ दूध डालकर फिर ओटावै, जब दूध शेष रहजाय तब उतारले और इस से चौथाई जांगल मांस-
रस और बराबर का दूध और घी डालै और इसी में सोंफ, गुलहटी, इन्द्रजौ, रसोत और प्रियंगु इन के कल्क में संधानमक मिलाकर डालदे फिर गुनगुना करके वस्ति देवै । यह वस्ति शुक्र, मांस और बलको बढ़ाती है । तथा क्षतक्षीण, खांसी, गुल्म, शूल, विपमज्वर, वर्ध्म, कुण्डल, उदावर्त, कुक्षिशूल, मूत्रकृच्छ्र, रक्तमदर, विसर्प, प्र-
वाहिका, शिरोरोग, जानुग्रह, ऊरुग्रह, जघाग्र-

ह, वस्तिग्रह, अस्मरी, उन्माद, अर्शरोग, प्रमेह, आध्मान, रक्तपित्त, तथा कफजन्य व्याधियाँ इस वस्ति से दूर होजाती हैं। यह वस्ति सद्यः बलाकारक और रसायन है। दूसरीयापनवस्ति।

एरण्डमूलपलाशात्पदपलंशालपर्णीपृश्निपर्णीवृहतीकण्टकारिकागोक्षुरकरास्नाग्गन्धागुह्चीवर्पाभूः आरग्वथदेवदार्चितिपलिकानिखण्डशः कलूसानिफला-निचाष्टौप्रक्षाल्यजलाढकेक्षीरपादेपचेत्। पादशेषं कपायं पूतं शतकुसुमाकुपुमुस्तापि प्लीहपुपाविल्ववचावत्सकफलरसाञ्जनप्रियंगुयवानीसंक्षेपकलिकतं मधुघृततैलसैन्धवयुक्तं मुखोष्णं निरुहगेकंद्वौत्रीनवाद्यात्। सर्वेषां प्रशस्तो विशेषतो जलितकुमारक्षतक्षीणस्थविरार्शसामपत्यकामानाञ्च।

अर्थ—अरंडकी जड़, और टाक छः २

पल। शालिपर्णी, प्रणिपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, रास्ना, असगंध, गिलोय, सांठ अमलतास, और देवदार इन में से प्रत्येक एक २ पल लेकर टुकड़े टुकड़े करले फिर इन्हें जल से धोकर एक आढक जल में चौथाई आढक जल मिलाकर पकावै, जब चौथाई शेष रहजाय तब इनको छान लेवै फिर इस काथ में नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कलक तथा शहत, घी, तेल और सेंधाननरू मिलाकर एक, दो, या तीन निरुहण वस्ति देवै। कलकके द्रव्य, यथाः—सोंफ, कूठ, मोथा, पीपल, हाऊबेर, निलंब, वच, इन्द्रजौ, मेनफळ,

रसीत, प्रियंगु और अजवायन हैं। यह वस्ति मुखोष्ण दीजाती है। यह वस्ति प्रायः सबके लिये हित है परन्तु विशेष करके ललित, सुकुमार, क्षतक्षीण, स्थविर और अर्शरोगियोंको हित है तथा जो संतान की इच्छा करते हैं उनके लिये भी हित है ॥

तिसरीविधि।

सहचरबलामूर्वामूलगारिवासिद्धेनपयसा तथा वृहतीकण्टकारीशतावरीछिन्नकहाशृतेनपयसामधुकमदनपिप्पलीकलकतेन पूर्ववद्वस्तिः ॥

अर्थ—सहचरी, खैरटी, मरोडफली और अनन्तमूल इनके साथ दूध सिद्ध करके अथवा बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, सितावर और गिलोय इनके साथ दूध ओंटाकर उसमें मुलहटी, मेनफळ और पीपल का कलक मिलाकर पहिलेकी तरह वस्ति देवै।

चौथीविधि।

तथाबलातिबलाविदारीशालपर्णीपृष्णिपर्णीवृहतीकण्टकारिकादर्भमूलयवकाश्मर्यविल्वफलसिद्धेनपयसामधुकमदनकलकीकृतेनमधुघृतसौवर्चलप्रयुक्तेनकासज्वरगुल्मप्लीहादित्तीक्ष्णमद्यक्षिप्तानांसद्यो बलजननोरसायनश्च ॥

अर्थ—इसी रीतिसे खैरटी, अतिबला, विदारीकन्द, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, दोनों कटेरी, दामकी जड़, जौ, खभासि, बेलफल और मेनफळ इनके साथ में सिद्ध कियेहुए दूध में महुआ और मुलहटी का कलक तथा शहत, घी और संचर नमक डालकर वरितदेवै ॥ यह वस्ति खांसी, ज्वर, गुल्म

और घृहीते पीडित, अर्दितरोगी, स्त्री कापित और मद्यकर्षित रोगियों को तत्काल बलको देनेवाली और रसायन है ।

पांचवीं विधि ॥

तथाबलातिबला रास्ना रग्मधमदनविल्व गुहची पुनर्नवैरण्डाश्वगन्धा सहचरपला-
शदेवदारुद्विपञ्चमूलानिपलिकानियवको
लकुलत्थद्विप्रसृतं शुष्कमूलकानाञ्च जलद्रो
णासिद्धं निरुह्यमाणेशेपकपायं पूतं मधुकम
दनशतपुष्पाकुष्ठपिप्पलीवचावत्सकफल
रसाञ्जनप्रियंगुयवानीकल्कीकृतं गुडघृततै
लक्षौद्रसीरमांसरसाम्लकाञ्जिकसैन्धवयु
क्तसुखोष्णं वस्ति देयात् । शुक्रमूत्रवर्चः सं
गेऽनिलजेगुल्महृद्रोगाध्मानवर्ध्मपाश्वर्षपृष्ठ
कटीग्रहसंज्ञानाशबलक्षेयपुच ॥

अर्थ—इसीतरह बला, अतिबला, रास्ना
अमलतास, मेनफल, बेलफल, गिलोय, सांठ
अरंडकाजड, असगंध, सहचर, ढाक, दे-
वदारु और दशमूल इन को एक एक पल
लेंवे तथा जी, बेर और कुलथा तथा सूखी
मूली दोदो प्रसृत लेकर एक द्रोण जलमें
पाककर । जितना निरुहके लिये काथ
आवश्यक होता है उतना शेष रहने पर
छान ले । फिर इस काथ में मुलहठी,
मेनफल, सोंफ, कूठ, पीपल, वच, इन्द्रजी,
रसौत, प्रियंगु और अजवायन का कल्क मि-
लावे तथा गुड, घी तेल, शहत, दूध
मांसरस, अम्लकाजी और संधानमक मि-
लाकर सुखोष्ण वस्ति देवे । यह वस्ति
शुक्र, मूत्र और विण्डा के विवन्ध में, तथा
यात्रा गुल्मरोग, हृद्रोग, आध्मान, वर्ध्म,

पार्श्वग्रह, पृष्ठग्रह, कटीग्रह, संज्ञानाश और
बलक्षय में बहुत उत्तम है ॥

छठी विधि

हृषुपार्द्धकुडवदिगुणार्द्धशुण्णयवः क्षीरो-
दकसिद्धः क्षीरशेषो मधुघृततैललवणयुक्तः
सर्वांगविस्तृतावातरक्तसक्तविण्मूत्रस्त्रीखेदि
सहितो वातहरो युद्धिमेधाग्निबलजननश्च ।

अर्थ—हाऊबेर आधा कुडव, आधे कुटे हुए
जौ एक कुडव, इनको समानभाग मिले हुए
दूध और जल में औटावे, जब दूध शेष
रहजाय तब इस में शहत, घी, तेल, और
नमक मिलाकर वस्ति देवे तो सर्वांगगत
वातरक्त, विण्डा का विवन्ध, मूत्रका विवन्ध
तथा अत्यन्त स्त्री प्रसंग से उत्पन्न हुई
क्षीणता को दूर करता है, यह वस्ति वात
नाशक, बुद्धिवर्द्धक, मेधावर्द्धक, अग्नि-
वर्द्धक और बलवर्द्धक होती है ।

सातवीं विधि

ह्रस्वमूलपञ्चकपायक्षीरोदकसिद्धः पिप्प-
लीमधुकमदनफलकाः सगुडघृततैललवणः
क्षीणविपमज्वरकर्षितस्त्ववस्तिः ॥

अर्थ—लघु पञ्चमूलको समानभाग दूध और
जलमें सिद्ध करके दूधके शेष रहने पर इसमें
पीपल, मुलहठी, मेनफलका कल्क तथा गुड,
घी, तेल और नमक मिलाकर यह वस्ति वि-
पमज्वरके कारण हुआ हुए रोगी को देवे ॥

आठवीं विधि ।

बलातिबलापामार्गात्मगुप्ताष्टपलार्द्धशुण्ण
यवाञ्जलिकपायः पूर्ववद्वास्तिः स्थविरदुर्ब-
लक्षीणस्त्रीनिपेविण्मां पथ्य उत्तमः ।

अर्थ—बला, अतिबला, ओमा, कैंचके

बीज ये सब आठपल तथाभाधे कुटे हुए जौ एक अंजलि इन को समानभाग दूध और जल में क्वथित करके इस क्वाथ में पूर्वोक्त पीपल आदिका कल्क डालकर तथा गुड, घी, तेल और नमक मिलाकर वृद्ध दुर्बल, क्षीण और स्त्रीसेवियों को वस्ति देवै । यह वस्ति बहुत उत्तम है ।

नवीं विधि ।

बलामधुकविदारीर्दभमूलपृद्धाकायवैःकपा
समाजेनपयसापक्त्वामधुकल्कितंसमधुघृ
तसैन्धवज्वरार्तेभ्योवस्तिदद्यात् ॥

अर्थ—खरैटी, मुलहठी विदारीकन्द, दामकी जड़, किसमिस और जौ इनको बकरीके दूध में पकाकर मुलहठी का कल्क तथा घी, शहत और सेंधानमक डालकर ज्वरपीडित रोगियों को वस्ति देवै ।

दसवीं विधि ।

शालपर्णीपृश्निपर्णीगोक्षुरकमूलकाश्मर्य
परूपकखर्जूरफलमधुकपुष्पैरजाक्षीरजल
प्रस्थाभ्यांरिद्धःकपायःपिप्पलीमधुको
त्पलकल्कितःसघृतसैन्धवोक्षीणेन्द्रियावि
पमज्वरकर्पितस्पवास्तिः ॥

अर्थ....शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, गोखरु की जड़, खंभारी, फाउसा, खजूर, मेनफळ, और महुआ इन को एक प्रस्थ बकरी के दूध और जल में कथितकरके, इस क्वाथमें पीपल, मुलहठी और नीलकमल का कल्क तथा घी और सेंधानमक मिलाकर दुर्बलेन्द्रिय और विषम ज्वर से कर्पित रोगी को वस्ति देवै॥

ग्यारहवीं विधि ।

स्थिरादिपञ्चमूलीपञ्चपलनशालिपाटि

कयवगोधूममापकपायपञ्चमसृतेनछाग
पयःशृतं । पादशेषकुक्कुटाण्डरसमधुघृतं
शर्करासैन्धवसौवर्चलयुक्तोवस्तिवृष्यत
मोबलजननश्च ॥

अर्थ....शालिपर्ण्यादि पंचमूल के पांचों द्रव्य पांचपल, शालिचांवल, साठी चांवल, जौ, गेंहू और उर्द ये सब पांच प्रसृत इन को बकरी के दूध में सिद्ध करै चौथाई शेष रहने पर उस को छानकर उसमें मुर्गे के अंडे का रस, शहत, घी, चीनी, सेंधानमक, संचरनमक, मिलाकर वस्ति देवै । यह वस्ति अत्यन्तवृष्य और बलकारक होती है ।

बारहवीं विधि ।

कल्पशैवपांशिखिगोनर्दहंसाण्डरसेस्यात् ॥

अर्थ....उक्त क्वाथ में भुर्गे के अण्डे के रसकी जगह मोर, सारस वा हंस के अंडों का रस डालकर वस्ति दीजाय तौ भी वही गुण करती है ॥

तेरहवीं विधि ।

सतिक्षिरिःसमयूरःराजहंसपंचमूलीपयः
सिद्धं । शतकुसुममधुकरास्नाकुटजफल
पिप्पलीकल्कः ॥ घृततैलगुडसैन्धवयुक्तो
वस्तिवर्चलवर्णशुक्रजननोरसायनश्च ॥

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूलको समान भाग दूध और जल में क्वथित करके उन का क्वाथ छेलेवै इस क्वाथ में सांतिर, मोर वा राजहंस का मांसरस तथा सोंफ, मुलहठी, रास्ना, इन्द्रजौ और पीपल इनका कल्क तथा घी, तेल, गुड और सेंधानमक मिलाकर वस्ति देनेसे बल, वर्ण और वीर्य की वृद्धि होती है ॥ यह वस्ति रसायन है ।

चौदहवीं विधि ।

द्विपञ्चमूलीकुक्कुटरसासिद्धपयःपादशेषं
पिप्पलीमधुकरास्नामदनमधुकंकलकंशर्कं
रामधुघृतयुक्तस्त्रीप्रातिकामानांवलजन
नोवस्तिः ॥

अर्थ—दसमूल और मुर्गे के मांसरसको एकत्र करके दूध में औटावै जब चौथाई शेष रहजाय तब पीपल, मुलहठी, रास्ता, मेनफल और मुलहठी का कल्क तथा चीनी शहत और घी मिलाकर उनको वस्ति देवै जो स्त्रियों में अत्यन्त आसक्ति रखते हैं । यह वस्ति बलकारक भी है ।

पन्द्रहवीं विधि ॥

मयूरमपिचपक्षपादास्यान्त्रंस्थिरादिभिः
पलिकैःसहजलेपयसिपक्ववाक्षीरशेषमद
नायिदारीशतकुसुमामधुकलकीकृतंम
धुघृतसैन्धवयुक्तंवस्तिदद्यात् । स्त्रीप्राति
मसक्तक्षीणेन्द्रियेभ्योहितोवलवर्णकरः ॥

अर्थ—एक मोर के पिच्छे, पंख, पांव, मुख और आंतों को दूर करके केवल मांस और हड्डियों को लेलेवै ॥ फिर इस मांसको पांच पल जल और दूध में सिद्ध करके दूध शेष रहने पर छानले, फिर इसमें मेनफल, विदारीकन्द, सोंफ और मुलहठी का कल्क तथा शहत, घी और संधानमक मिलाकर वस्ति देवै, यह वस्ति स्त्रियों में अत्यन्त प्रसक्त और क्षीणेन्द्रिय वालों के लिये हितकारी और बल तथा वर्ण को बढ़ानेवाली है ॥

सोलहवीं विधि ।

फलपद्वैपविफिरमगुदप्रसहाम्बुचरेपुस्या

दक्षीरोहितादिपुमत्स्येषु ।

अर्थ—मोर के मांस के बदले बिब्रिकर, प्रतुद, प्रसह और जलचारी जीवों का मांस प्रयोग करै, परन्तु रोहू मछली के प्रयोग के साथ दूध का प्रयोग न करना चाहिये
सत्रहवीं विधि ।

गोधानकुलेमार्जारमूपकशलुकमांसानां
शपलान्भागान्सपञ्चमूलान्पयसिपक्वत्वा
तत्पयःपिप्पलीफलकल्कसैन्धवसौवर्चलश्च
कैरामधुघृततैलयुक्तंवास्तिवर्ण्योरसायनः
क्षीणक्षतस्यसन्धानकरोमथितोरस्करथ
गजहयभग्नवातवलासकफप्रवृत्तुदावर्त्तवा
तसक्तमूत्रवर्चःशुक्राणांहिततमश्चः

अर्थ—गोह, नौडा, बिल्ली, चूहा और सेह इन सबका मांस पांचपल, पंचमूल पांचपल, इन को दूध और जल समान भागमें औटावै, दूध शेष रहनेपर छानकर इनमें पीपल और मेनफल का कल्क संधानमक, संचरनमक, चीनी, शहत, घी मिलाकर वस्ति देवै, यह वस्ति बलकारक और रसायन होती है । क्षत और क्षीणरोगी को संधान करने वाली है । जिसका हृदय फट गया हो, जिसका शरीर रथ, हाथी वा घोड़े से टूट गया हो, जिसको वातवलास और उदावर्त्त रोग हो, तथा वातके कारण जिसका मूत्र, विष्टा और वीर्य रुकगया हो, ऐसे रोगियों को यह वस्ति बहुत हित है ।

अठारहवीं विधि ।

कूर्मादीनांअन्यतमपिशितसिद्धपयोगोद
पनागहयनक्रहंसकुक्कुटान्हरसमधुघृतश
कैरासैन्धवेधुरकात्मगुप्तफलकल्कसंयुष्टो

वस्तिः वृद्धानामपि बलजननः ॥

अर्थ—कछुए, आदि दस प्रकार के जलजन्तुओं में से किसी एकके मांसको दूध में सिद्ध करके उस दूधमें गौ बैल हाथी, घोड़ा का मांसरस, हंस और मोर के अंडों का रस, शहत, घी, चीनी, सेंधानमक, तालमखाना, केंचके बीज और मेन फल इनका कल्क मिलाकर वस्ति देने से वृद्ध मनुष्य भी बलवान् होजाते हैं ।

उत्तीसर्वा विधि ।

गोवृषवस्तवराहवृषणकर्कटचटकसिद्धं क्षीरमुच्चटकेक्षुरकात्मगुप्तामधुघृतयुतं काश्चैलवणितं वस्तिः ॥

अर्थ—बैल, बिजार, बकरा और हूकर इनके अंडकोप, तथा किरकोटा और चिड़ा इन का मांसरस इन को डालकर औटाये हुए दूध में उच्चटक, तालमखाना और केंचके बीज का कल्क तथा शहत घी और थोड़ा सा नमक मिलाकर वस्ति देवै ।

बीसर्वा विधि ।

कर्कटकरसश्चटकाण्डरसयुक्तः समधुघृतशर्करो वस्तिः इत्येते वस्तयः परमवृण्याः ॥

अर्थ—कर्कटरस, चिरोटे के अंडे का रस शहत घी और चीनी मिलाकर वस्ति देवै, ये वस्ति अत्यन्त वृध्य होती है ।

इकीसर्वा विधि ।

उच्चटकेक्षुरकात्मगुप्ताः शृतक्षीरमतिभोजनानुपानाः स्त्रीशतगामिनं कुर्युः ॥

अर्थ—उच्चटा, तालमखाना और केंचके बीज इन के साथ सिद्ध किया हुआ दूध भोजन करनेके साथ वा भोजनसे पछे

पान करै तो है । द्विधोसे भोगकी शक्ति होवै ।
आईसर्वा विधि ।

दशमूलमधुरहंसकुक्कुटकाथात्पञ्चप्रसृतं तैलघृतवसामज्जचतुष्प्रसृतयुक्तं शतपुष्पां मुस्तहपुपाकल्कीकृतं सलवणो वस्तिः पादगुल्फोरुजानुजंघात्रिकवंक्षणवस्तिवृषणां निलहरः ।

अर्थ—दशमूल, तथा मोर, हंस और मुर्गा इनके मांसका काथ करके पांच प्रसृत लेवै और इस काथमें तेल, घी, चर्वी और और मज्जा चार प्रस्थ तथा सोंफ, मोथा, हाऊवर इनका कल्क और थोड़ा सा नमक मिलाकर वस्ति देवै । यह वस्ति पांव, टकना, ऊरु, जानु, जंघा, त्रिक, वंक्षण वस्ति और अंडकोपके वायुतंत्रवधी रोगोंको दूर करती है
तेईसर्वा विधि ।

मृगविष्कराक्षूपविलेशयानामेतै नैव कल्पेन वस्तयो देयाः ।

अर्थ—मृग, बिष्कर, आनूप और विलेश्यों के मांस की वस्ति भी इसीतरह से दीजाती है ॥

चौवीसर्वा विधि ।

मधुघृताद्विप्रसृतं तु लोप्पोदकं शतपुष्पाद्धि पल्यसंभवाद्धि क्षिपुको वस्तिर्दीपनो बृंहणं बलवर्णकरो निरुपद्रवो घृष्यतमोरसायनः क्रिमिकुष्ठोदायस्तं गुल्माशोत्रघ्नं गुहमेहहरः ।

अर्थ—शहत और घी दो प्रसृत, गरम जल दो प्रसृत, सोंफ आधापल, सेंधानमक आधा तोला इनको मिलाकर वस्ति देवै । यह वस्ति दीपन, बृंहणकर्ता, बलवर्णवर्द्धक, निरुपद्रव, अत्यन्त वृध्य और रसायन है ।

एपवृष्योवर्ष्योवृंहणआयुष्योवलीपलित
लुत् । क्षतक्षीणनष्टशुक्राविषमज्वरार्त्ता

नाड्यापन्नयोनीनाञ्चपथ्यतमः ॥

अर्थ—खरैटी, गोखरू, रास्ता, असर्गंध
सितावर और सहचर इनमें से प्रत्येक सू २
पल लेकर सौ द्रोण जल में पकावे जब
पकोते २ एक द्रोण रहजाय तब उसे वस्त्र
में छानलेवे । फिर विदारीकन्द और आंवले
का रस एक २ प्रस्थ, बकरा, भेंसा, सुअर,
बैल, मुर्गा, मोर, हंस, कारण्डव और सारस
इनका मांसरस एक २ प्रस्थ, घृत और
तेल एक २ प्रस्थ और दूध आठ प्रस्थ
इन सबको इकट्ठा करे फिर चन्दन, गु-
लहटी, मधूलिका, वंशलोचन, कमलनाल,
मृणाल, नीलोत्तर, परवल, मेनफल, केंचके
बीज, अन्नपाकी, तालका गूदा, खजूर,
किसमिस, भूआंवला, कटेरी, जीवफ, ऋष-
भक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, सितावर, मेदा,
पीपल, नेत्रवाला, दालचीनी और तेजपात
इनका कल्क । इन सबको मिलाकर पूर्ववत्
वेदध्वनि के साथ सिद्ध करे और फिर
इसका प्रयोग करे । इस वस्ति के सेवनसे
मनुष्य में सौ स्त्रियों से गमन करनेकी शक्ति
होजाती है इसमें आहार विहारकी किसी
प्रकारकी रोक टोक नहीं है । यह वस्ति
पुष्टिकारक, वर्णकारक, वृंहण, आयुवर्द्धक और
बली पलित नाशक है । यह वस्ति क्षतक्षीण
रोगी, नष्टशुक्ररोगी विषमज्वरपीडित तथा
योनिरोग से पीडित स्त्रियों के लिये हित है ।

सहचरादिस्नेह ।

सहचरपलशतमुदकद्रोणचतुष्टयेपेक्त्वा

द्रोणशेपेरसेमुपूताविदारीशुरसप्रस्था-
भ्यामष्टगुणक्षीरघृततैलप्रस्थवलामधुकम
धूकचन्दनमधूलिकाशारिवामेदामहामे-
दाकाकोलीक्षीरकाकोलीपयस्यागुग्गा
गैष्टाव्याघ्रनखशटीसहचरसहस्रार्पाव
रांगलोघ्राणामक्षसमैद्विगुणशर्करैः कर्क-
साधयित्वाव्रक्षयोपादिविधिना । तत्
सिद्धं वास्तिदद्यादेतत्पर्यारोगहरोरसायनो-
ललितानां श्रेष्ठोऽन्तःपुरचारिणीनां क्षत-
क्षयवातपित्तवेदनाश्वासकासहरस्त्रिभा-
गमाक्षिकोवलीपलितनुद्वर्णरूपवलमांस
शुक्रवर्द्धनः ॥

अर्थ सौपल सहचर को चारद्रोणजल
में पकावे, चौथाई शेष रहने पर उतार
कर छानले । फिर विदारीकन्दका रस एक
प्रस्थ, ईख का रस एक प्रस्थ, दूध आठ प्रस्थ
घृत एक प्रस्थ तेल एक प्रस्थ ग्रहण करे ।
तथा खरैटी, गुलहटी, महुआ, चन्दन, मधूलिका,
शारिवा, मेदा, महामेदा काकोली, क्षीरकोली,
भूमिकूष्मांड, अगर, शार्जैष्टा, वघनखी,
कचूर, सहचरी, दूध, दालचीनी और लोघ
प्रत्येक एक एक तोला तथा इन सब से
दूनी चीनी मिलाकर वेदध्वनि के साथ
पूर्ववत् पाक करे । सिद्ध होने पर वस्ति
द्वारा इसका प्रयोग करे । यह वस्ति सम्पूर्ण
रोगोंके नाश करनेवाली, रसायन, सुकुमार
तथा अन्तःपुर में रहनेवालों के लिये हित
है इससे क्षतरोग, क्षयरोग, वातज वेदना,
पित्तज वेदना, श्वास और खांसी दूर हो
जाती है । इस स्नेह में तिहाई शहत मि-

लाकर सेवन करनेसे बली पलित दूर होजा-
ता है । इससे वर्ण, रूप, बल, मांस और
वीर्य बढ़ता है ।

इत्येतेरसायनाः स्नेहवस्तयः । सतिभिभ
वेशतपाकावासहस्रपाकावाकार्यावीर्यव-
लाधानार्थमिति ॥

अर्थ—इस तरह सब रसायन प्रयोग
और स्नेह वस्तियोंका वर्णन किया गया
है । विभव होने पर वीर्य और बल बढ़ाने
के निमित्त इन स्नेहों का शतपाक और स-
हस्रपाक करके वस्तिद्वारा प्रयोग करना चाहिये-

भवान्तिचात्र ।

इत्येतेवस्तयः स्नेहाश्चोक्ताप्राणिपुसाद्धि-
ताः । सुस्थानामातुराणाञ्चट्टानाञ्चा-
वरोधिनः ॥ अतिव्ययायशीलानांशुक
मांसवलप्रदाः । सर्वरोगप्रशमनाः सदैव
तृप्योगिकाः ॥ नारीणाममजातानांनरा-
णाञ्चाप्यपत्यताम् । उभयार्थकरादृष्टा
स्नेहवस्तिनिरूहयोः ॥

अर्थ—प्राणियों के हित के लिये इन
स्नेहवस्तियों का वर्णन किया गया गया है, ये
वस्तियाँ रोगरहित, रोगप्रस्त और वृद्ध
सब ही को अनुकूल हैं । जो अत्यन्त स्त्री-
सेवी है उनके शुक, मांस और बलको व-
ढाती हैं, सम्पूर्ण रोगों को नाशकरनेवाली
हैं ये सब ऋतुओं में दी जा सकती हैं । इन
का सेवन बन्ध्या स्त्री और निःसन्तान पुं-
रूपोंके सन्तान उत्पन्न करता है ये वस्तियाँ
अनुपान और निरूहण दोनों का कामदेती हैं
वस्तिसेवनमें वर्जितकर्म ।

व्यायामोमैथुनमयमधूनिशिशिराम्बुच ।

(१६८)

सम्भोजनं रक्षोभेवस्तिष्वेतेषुगर्हितम् ।

अर्थ—इन वस्तियों में व्यायाम, मैथुन,
मद्यपान शहत सेवन, शीतल जल, अत्यन्त
भोजन और रथक्षोभ वर्जित हैं ।

वस्तियोंकी संख्या ।

शिखिगोनर्दहसाण्डैर्दक्षवद्वस्तयस्त्रयः ।
विंशतिर्विष्किरैस्त्रिंशत्प्रतुदैः प्रसहैस्तथा
त्रिंशदेकास्तथासप्तविंशतिश्चाम्बुचारिभिः
नवमत्स्यादिभिश्चैव शिखिकल्पेन वस्तयः ॥
दशकर्कटकाद्यैश्च कूर्मकल्पेन वस्तयः ॥ मृगैः
सप्तदशैकोनविंशतिर्विष्किरैर्नव । आनू
पैर्दशशिखिवद्भुशयैश्च चतुर्दश ॥ एकोन
त्रिंशदित्येते सप्तहस्नेहैः समासतः । प्रोक्ता
विस्तरशोभिन्नाद्देशेतेषां दशोत्तरे ॥ एते
माक्षिकसंयुक्तः कुर्वन्त्यतिवृषं नरम् ।

अर्थ—मोर, सारस और हंस के अंडे
की तीन वस्ति, मुर्गेकी एक, विष्किर पक्षी
बीस प्रकार के होते हैं इस से उनकी बीस
वस्ति, प्रतुद तीस प्रकार के होते हैं इससे
उनकी तीस वस्ति, प्रसहोंकी इकतीस वस्ति
जलचारियों की सत्ताईस, मछलियों की नौ,
कर्कटकादि की दस, हिरनों की सत्रह, वि-
ष्किरो की उन्नीस, आनूप की नौ, भुशयों
की चौदह तथा उन्तीस प्रकार के स्नेह ।
इस तरह सब प्रकार की वस्तियाँ मिलकर
दो सौ सोलह हैं पर इनकी संख्या कुछ
अधिक होती है ।

इन वस्तियों में यदि शहत और मिलादिय
जाय तो अत्यन्त पुष्टिकारक हो जाती हैं ।

नातियोगं न चायोगं स्तम्भितास्ते च कुर्वन्ते
अर्थ—इन वस्तियोंके प्रयोग से भोग